मराठों का नवीन इतिहास

[*Hindi Edition of* New History of the Marathas
by G S Sardesai]

तृतीय खण्ड

महाराष्ट्र में सूर्यास्त

(१७७२—१८४८)

मूल लेखक
गोविन्द सखाराम सरदेसाई
['मराठी रियासत' के रचयिता]

समर्पण

सेना-खास-खेल, शमशेर बहादुर, ग्रांड कमांडर ऑव दि स्टार आव इण्डिया

बडौदा-नरेश सयाजीराव गायकवाड

[१८७५-१९३९]

की

पुण्य स्मृति मे

जिनके राज्य मे मेरा समस्त सेवा काल व्यतीत हुआ
और जिन्होने मुझे तरुणावस्था मे ही इतिहास
के सुखद मार्ग पर प्रेरित किया।

—गो० स० सरदेसाई

प्रकाशकीय

प्रथम हिन्दी सस्करण के प्रति

मराठा-इतिहास के महान् अन्वेषक श्री गोविन्द सखाराम सरदेसाई से हमने उनके प्रख्यात इतिहास-ग्रन्थ 'New History of the Marathas' (तीन खण्डो मे) का हिन्दी अनुवाद करने की आज्ञा माँगी, उन्होने कृपा कर हमारी प्राथना को बडे उत्साह और प्रेम से स्वीकार किया—इसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी है।

हम पाठको की सेवा मे प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम और द्वितीय खण्ड का हिन्दी अनुवाद पहले ही प्रस्तुत कर चुके है। अब हम तृतीय खण्ड का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद पाठको के समक्ष प्रस्तुत करते हुए बडी प्रसन्नता का अनुभव कर रहे है।

आशा है इतिहास के इन उत्कृष्ट ग्रन्थो के द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी मे एक बडे अभाव की पूर्ति होगी, साथ ही इन ग्रन्थो के द्वारा अन्य सुयोग्य विद्वानो को मराठा इतिहास के उच्चकोटि के ग्रन्थो को लिखने की प्रेरणा मिलेगी।

मकर-सक्रान्ति
१३ जनवरी, १९६४

राधेमोहन अग्रवाल

लेखक की विदाई

इस पुस्तक को समाप्त करने पर मेरी प्रथम अनुभूति यह हे कि इस दीघ-कालीन तथा श्रमसाध्य काय की समाप्ति पर मै वणनातीत शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ। जिन मित्रो ने केवल अपनी सहायता द्वारा यह काय मेरे लिए शक्य बना दिया, उनके प्रति मेरी मौन भावनाएँ कृतज्ञता लिये हुए है। हस्त-लिखित प्रति को मुद्रणालय के लिए तैयार करने, प्रथम मुद्रित पृष्ठो को पढने तथा विभिन्न अन्य उपायो से डा० वी० जी० दिघे ने मुझे बहुत सहायता दी है। इन तीन खण्डो की हस्तलिखित प्रति तथा प्रथम मुद्रण की प्रत्येक पक्ति को मेरे आजीवन मित्र सर जदुनाथ सरकार ने स्वय देखने का कष्ट उठाया हे। इस ग्रन्थ मे वर्णित प्रत्येक समस्या तथा प्रत्येक सन्देहग्रस्त विषय पर हम दोनो मे वार्तालाप हुआ है, जिसमे कभी-कभी उष्णता भी आ गयी है। यद्यपि अनेक अवसरो पर अन्त मे मैंने अपने ही दृष्टिकोण का अनुसरण किया है तो भी उनकी विरोधी युक्तियो का मेरे निणयो के अन्तिम रूप पर सदैव निग्रहात्मक प्रभाव पडा हे। समस्त भारत के अन्य विद्वानो ने अपने अवसरोचित सुझाव तथा जानकारी भेजकर मुझको सहायता दी हे। यदि मै यहाँ पर उन सबके नाम नही दे सकता तो इसका अथ यह नही हे कि उनके प्रति अपनी कृतज्ञता की चेतना ही मुझको नही है।

मैने इस ग्रन्थ का नाम 'नवीन इतिहास' रखा है, परन्तु इससे में यह दावा नही करता कि इस पुस्तक को निर्णायक प्रमाणभूत ग्रन्थ माना जाय। मेरा लक्ष्य तो इसकी अपेक्षा बहुत ही लघु अर्थात यह रहा हे कि मै सहानुभूतिभरे पाठक के समक्ष उन समस्त विचारो तथा भावनाओ को व्यक्त कर दू जो महाराष्ट्र के एक साधारण पुत्र के हृदय मे अपने जीवन मे ४८ वष से भी अधिक समय तक अपने देश के दीघकालीन भूतकाल का अध्ययन तथा चिन्तन करने पर उठे। यद्यपि मेरे द्वारा रचित ऐतिहासिक पुस्तको की सूची कुछ लम्बी है, परन्तु मेरा यह अभिप्राय नही है कि मै विद्वान हूँ या प्रशिक्षित इतिहासकार हूँ। मै तो केवल सतत उत्सुक कायकर्ता हूँ। यदि आप चाहे तो

विषय-सूची

तिथिक्रम

अध्याय १

१० अगस्त, १७५५	नारायणराव का जन्म।
१७५७	सुमेरसिंह गार्दी पेशवा की सेवा मे।
१३ अप्रैल, १७६३	नारायणराव का गगाबाई से विवाह।
१७६५	नारायणराव अपने भाई के साथ कर्नाटक मे।
३० अप्रैल, १७६९	नारायणराव निजगल मे घायल।
१० अगस्त, १७७२	रायगढ दुर्ग दृढ हुआ।
१३ अक्टूबर, १७७२	मोस्टिन का ब्रिटिश रेजीडेन्ट के रूप मे पूना पहुँचना।
१९ नवम्बर, १७७२	पेशवा माधवराव प्रथम की मृत्यु।
१३ दिसम्बर, १७७२	नारायणराव को पेशवा की पोशाक प्राप्त।
जनवरी, १७७३	सबाजी तथा मुधोजी भोसले मे युद्ध।
७ फरवरी, १७७३	दुर्गाबाई का पाडुरग जोशी से विवाह।
१५ माच, १७७३	नारायणराव द्वारा नासिक मे अपनी माता के दशन।
१५ माच, १७७३	रघुनाथराव का बन्धन से निकल भागना।
११ अप्रैल, १७७३	रघुनाथराव पुन बन्धन मे, उसके साथ अधिक कठोर व्यवहार।
ग्रीष्म, १७७३	भोसले के दूत तथा व्यकटराव काशी पूना मे।
जुलाई, १७७३	रघुनाथराव द्वारा अनशन की धमकी।
अगस्त, १७७३	अपने छुटकारे के लिए रघुनाथराव का हैदरअली के साथ षड्यन्त्र।
१६ अगस्त, १७७३	पेशवा द्वारा सबाजी भोसले नागपुर मे अपने पुराने पद पर नियुक्त।
३० अगस्त, १७७३	अन्य दस लोगो के साथ नारायणराव की हत्या।
सितम्बर, १७७३	विसाजी कृष्ण का राजकोष सहित दिल्ली से लौटना।
२५ सितम्बर, १७७३	निजाम तथा हैदर के विरुद्ध रघुनाथराव का पूना से प्रस्थान।
१० अक्टूबर, १७७३	रघुनाथराव ने पेशवा की पोशाक पहनी।

१० अक्टूबर, १७७३	पेशवा की हत्या के विषय मे रामशास्त्री का निणय । रामशास्त्री का पदच्युत होना ।
१६ अप्रैल, १७७४	माधवराव द्वितीय का जन्म ।
जुलाई, १७७४	इन्दौर मे सुमेरसिह की मृत्यु ।
२६ सितम्बर, १७७४	रामशास्त्री अपने पद पर पुन नियुक्त ।
१७७५	मुहम्मद यूसुफ गार्दी को मृत्युदण्ड ।
जनवरी, १७७६	खडगसिह को मृत्युदण्ड ।
१७६०	तुल्या पवार की हत्या ।

अध्याय १

नारायणराव का नौ मास का शासन

[१७७२–१७७३ ई०]

१ पूना के शासन की अन्तिम साँसें। २ नारायणराव पेशवा नियुक्त। ३ पूना की परिस्थिति—गार्दी लोग। ४ उत्तेजना का आरम्भ—विसाजी पन्त लेले। ५ नागपुर का उत्तराधिकार—प्रभु लोग। ६ नारायणराव को राज्यच्युत करने का षडयन्त्र। ७ हत्या सम्पन्न। ८ रामशास्त्री द्वारा अपराधी का अन्वेषण व दण्ड।

१ पूना के शासन की अन्तिम साँसें—यदि हम अपने वतमान ज्ञान का आधार लेकर मराठा इतिहास के अतीत पर दृष्टिपात करे, तो हमारा ध्यान इस ओर अवश्य जायेगा कि १७७२ ई० मे पेशवा माधवराव प्रथम की मृत्यु से राष्ट्र के भाग्य मे महान् परिवतन हुआ था, पर उस समय उसे कोई जान नही पाया। आगामी ३० वष मराठा सरकार के स्वरूप मे परिवतन लाने वाले हुए। साथ ही बाह्य शक्तियो मे अपेक्षाकृत वृद्धि भी हुई। इन दोनो कारणो ने मिलकर मराठा स्वतन्त्रता को हानि पहुँचाई तथा मराठा राज्य की एकता नष्ट कर दी। अब तक मराठा जाति की गतिविधियाँ पूना से सचालित होती थी जो उनका केन्द्रीय स्थान था। अब तक उनकी केन्द्रीय सरकार का एक स्थायी अध्यक्ष रहा था, जिसे सभी सेअपनी आज्ञा पालन कराने का वैध अधिकार प्राप्त था। यह वैध अध्यक्ष चार क्रमागत शासनो मे सदैव वीर पुरुष रहा था। वह युद्ध अथवा कूटनीति और कभी-कभी दोनो का जन्मजात नेता होता था।

परन्तु नारायणराव के राज्यारोहण (नवम्बर, १७७२ ई०) के साथ ही मराठा राज्य अध्यक्षहीन हो गया। यह सत्य है कि पेशवा का स्थान कभी रिक्त नही रहा, परन्तु कभी पेशवा अल्पवयस्क होता था अथवा अन्तहीन गृह-युद्ध से अपनी रक्षा करने मे असमथ होने के कारण अपनी

राजधानी और देश से भाग जाता था । इस दशा मे प्रशासन की सचालन-शक्ति का किसी मन्त्री या मन्त्रिमण्डल मे निहित हो जाना स्वाभाविक था । कोई मन्त्री चाहे कितना ही अधिनायक क्यो न हो, राज्य के वैध स्वामी की स्थान-पूर्ति पूण रूप से नही कर सकता । एक बात तो यह हे कि मन्त्री एक वेतनभोगी सेवक हाता हे, वह लगभग प्रतिनिधि के रूप से अपने स्वामी की शक्ति का व्यवहार करता हे । वह उस दपण के समान है जो सूय-किरणो को प्रतिबिम्बित करता है । यह मन्त्री किसी भी समय अपने स्वामी द्वारा पदच्युत किया जा सकता हे, जबकि वैध शासक आजीवन राजसत्ता हथियाये रहता है।

दूसरी बात यह है कि मन्त्री सदैव प्रतिद्वन्द्वियो से घिरा रहता है जो उसके अधिकारो को चुनौती देते है और प्रकट या गुप्त रूप मे उसके विरुद्ध षड्यन्त्र करते रहते है । अत उसको अपना अधिकाश समय तथा ध्यान सदैव इस प्रकार के प्रतिद्वन्द्वियो पर देना पडता है, जिससे उनके षड्यन्त्र कभी इस प्रकार प्रबल न हो जाये कि वह उनका नियन्त्रण न कर सके । वह सकट काल मे अपने नाम की दुहाई देकर समस्त राष्ट्र का आह्वान नही कर सकता । जब सम्राट् अबोध शिशु हो तथा मन्त्री उसका वैध अभिभावक एव सरक्षक हो, तब वह सम्राट् के प्रतिनिधि के रूप मे काम कर सकता है ।

सावजनिक मान्यता प्राप्त राजा की तुलना मे महानतम मन्त्री की भी स्थिति निबल रहती हे। इसका स्पष्ट उदाहरण बाजीराव प्रथम की अनिश्चित स्थिति हे जो उसके पद-ग्रहण के प्रथम ८ वर्षों की अवधि मे रही—जब तक कि शाहू ने पेशवा को अपने प्रशासन का निर्विवाद अध्यक्ष न बना दिया । बाजीराव द्वितीय के पेशवा होने के बाद वृद्धावस्था मे नाना फडनिस की जो दशा हुई, जिस अशक्त अवस्था तथा अपमान को वह प्राप्त हुआ, वह इस निबलता का अधिक प्रबल तथा दुखद प्रमाण है, जबकि इस मराठा चाणक्य ने गत चौथाई शताब्दी मे जगद्विख्यात सफलता प्राप्त की थी तथा राष्ट्र की अविस्मरणीय सेवा की थी । यह कथन सत्य हे कि वादविवाद मण्डली युद्ध का सचालन नही कर सकती । अत बार भाइयो की परिषद् को भंग करने तथा अपने आपको एकमात्र अनियन्त्रित अधिपति बना लेने का काय नाना फडनिस ने स्वाथ भावना से प्रेरित होकर नही किया था, वरन् यह काय उसने देश के जीवन-मरण के सघर्ष मे उसकी आवश्यकता से विवश होकर किया था, क्योकि शत्रुओ ने सम्पूर्ण महाराष्ट्र को घेर लिया था और वे उसकी आन्तरिक शक्ति को क्षीण कर रहे थे ।

अस्थिर स्वभाव वाला १७ वष का अपरिपक्व किशोर नारायणराव

१७७२ ई० मे पेशवा की गद्दी पर बैठा और नो मास पश्चात् उसकी मृत्यु हो गयी। आगामी पेशवा रघुनाथराव को पेशवा होने के तीन मास के अन्दर ही पूना से भागना पडा। इसके बाद बहुत दिनो तक राजप्रतिनिधि का शासन रहा, जिसका अन्त उस समय हुआ जब बाजीराव द्वितीय ने अपने पूवजो की गद्दी प्राप्त करने के बाद नाना फडनिस का दमन कर दिया। फिर भी वह बाजीराव प्रथम या बालाजीराव के समान अपने घर का मालिक न बन सका। राज्य का प्रधान अपने आन्तरिक मामलो मे तभी प्रभुता प्राप्त कर सका था जबकि उसके विद्रोही सामन्त बसई की सन्धि (१८०२ ई०) से भयभीत होकर भाग खडे हुए थे। परन्तु खेद इस बात का था कि उस समय जरीपटका (मराठो का राष्ट्रध्वज) झुका हुआ था और उसके ऊपर यूनियन जैक (ब्रिटिश राष्ट्रध्वज) गवपूवक फहरा रहा था।

नारायणराव की मृत्यु से दस वष के भीतर ही मराठा राजनीति का गुरुत्वाकषण केन्द्र पूना से हटकर उत्तर भारत मे चला गया। सालबई की सन्धि तथा हैदरअली की मृत्यु के बाद यह परिवतन निर्भ्रान्ति रूप से स्पष्ट हो गया। मराठा साम्राज्य की एकता समाप्त हो गयी जो भारतीय महाद्वीप के आरपार दक्षिण मे कृष्णा तथा उत्तर मे हिमालय के नीचे रामगगा नदियो के बीच फैला हुआ था।

इस प्रकार इतिहास के दीघकालीन अनासक्त अवलोकन के पश्चात इस खण्ड मे वर्णित युग को 'महाराष्ट्र मे सूर्यास्त' की अपेक्षा अधिक उपयुक्त सज्ञा नही दी जा सकती।[1]

२ **नारायणराव पेशवा नियुक्त**—अपने छोटे भाई नारायणराव को पेशवा पद पर मनोनीत करने के बाद १६ नवम्बर, १७७२ ई० को पेशवा माधवराव का देहान्त हो गया। उसने नारायणराव को सलाह दी थी कि प्रशासन का

---

[1] राजनीति-विज्ञान की भाषा मे पेशवा को राजा कहना मेरे विचार मे न्यायसगत है, क्योकि उसका वास्तव मे वही स्थान था जो पवित्र रोम साम्राज्य के अधीन किसी घटक राजा का था। उसको राजभवन का महापौर (मेयर) कहना उचित नही है, क्योकि फ्रेच इतिहास का सादृश्य व्यापक नही हे। पेशवा स्वय युद्ध तथा शान्ति की स्थापना करता था। वह प्रथापालन के रूप मे सतारा के स्वप्नमग्न नाममात्र के छत्रपति को अपने द्वारा किये गये कार्यो की सूचना मात्र भेज देता था। १७७२ ई० के बाद इस प्रथा का भी लोप हो गया, यद्यपि परम्परा का सम्मान किया जाता था, क्योकि छत्रपति से पेशवा को पोशाक देने की प्राथना की जाती थी।

सचालन सखाराम बापू तथा नाना फडनिस के परामश स करे जो राज्य के सर्वाधिक योग्य तथा अनुभवी सेवक थे। उसने लिखित रूप मे विशेप निर्देश दिया था कि रघुनाथराव को निरन्तर बन्धन मे रखा जाये, जिससे वह कोई शरारत न कर सके। रघुनाथराव मे साहस नही था कि वह मरणोन्मुख पेशवा की उपस्थिति मे नारायणराव की नियुक्ति का स्पष्ट रूप से विरोध कर सके। समस्त दरबार की उपस्थिति मे बहुत समय तक पूणरूप से विवाद हुआ तथा परिवार के इष्टदेव के सम्मुख गम्भीरतापूवक घोषणा की गयी, अत इस व्यवस्था के प्रति वह ऊपरी मन से सहमत हो गया। पेशवा की मृत्यु के कुछ समय पहले रघुनाथराव ने वास्तव मे एक षड्यन्त्र रचा था तथा बन्धन से भाग निकला था, परन्तु शीघ्र पकड लिया गया था तथा उसे कुचेष्टा नही करने दी थी। माधवराव की मृत्यु से उसका भविष्य कुछ भी आशापूण नही हुआ। वह व्यक्तिगत महत्वाकाक्षा से अन्धा था, इसलिए अधीन स्थिति मे रहकर सन्तोप न कर सका।

पेशवा का श्राद्ध थेउर मे किया गया तथा २ दिसम्बर को दरबार पूना को वापस आ गया। छत्रपति से पोशाक प्राप्त करने के लिए नारायणराव सतारा जाने की तैयारियाँ करने लगा। उसके चाचा ने साथ जाने मे आनाकानी की। वह चाहता था कि उसको तथा उसके परिवार पहले ही २५ लाख वार्पिक की स्वतन्त्र जागीर दे दी जाय। उससे अनुनय किया गया कि विपम परिस्थिति के कारण इस समय वह अपनी माँग को छोड दे। नारायणराव को पेशवा की पोशाक सतारा मे छत्रपति से १३ दिसम्बर को प्राप्त हो गयी। उस समय सखाराम बापू को प्रशासक (कारभारी) का पद दिया गया, तथा अन्य अधिकारी अपने-अपने पदो पर स्थिर कर दिये गये।

बालाजीराव के तीनो पुत्रो मे कनिष्ठ नारायणराव का जन्म १० अगस्त, १७५५ ई० को हुआ था। इस समय उसकी आयु १७ वर्ष थी। उसका विवाह १८ अप्रैल, १७६३ ई० को गगाबाई साठे से हो गया था, जबकि वह पूरे ८ वष का भी नही था। सदाशिवराव भाऊ की विधवा पार्वतीबाई से उसका बहुत स्नेह था, क्योकि वह विषम परिस्थिति की वेदना कम करने के उद्देश्य से उसकी देखरेख मे रहा था। १७६५ ई० मे प्रथम बार तथा दूसरी बार १७६९ ई० मे नारायणराव अपने भाई स्वर्गीय पेशवा के साथ उसके अभियानो मे करनाटक गया था। द्वितीय अभियान के समय अप्रैल, १७७० ई० के अन्त मे निजगल के गढ पर सहसा आक्रमण करने मे उसकी कलाई मे घाव आ गया था। उसे पढने, लिखने तथा गणित की शिक्षा दी गयी थी। सस्कृत

ग्रन्थो का भी उसे कामचलाऊ ज्ञान था। विगत शासन के अन्तिम एक-दो वर्षो मे नारायणराव को सखाराम बापू के साथ कर दिया गया था ताकि उसे प्रशासनीय कार्या के सचालन की शिक्षा मिल जाये। उसके चरित्र तथा कायकुशलता से उसके भाई माधवराव को कभी सन्तोष नही हुआ। उसके भविष्य के सम्बन्ध मे वह प्राय आशका प्रकट किया करता था। उसके राज्यारोहण के तुरन्त पश्चात पूना के दरबार से उसकी कायक्षमता के विषय मे यह मत प्राप्त हुआ था—"श्रीमन्त अधीर तथा कोपशील है, उनकी चचलता स्पष्ट झलकती हे। उनको तुच्छ तथा अनुत्तरदायी व्यक्तियो से जो सूचना प्राप्त होती हे, उस पर बिना विचार किये हुए काय कर बैठते है। वह अभी तक शिशु है, तथा सखाराम बापू के मागदशन का अनुसरण नही करते। सिह तो चला गया, अब गीदड ही रह गये है। ईश्वर ही राज्य का रक्षक हे।"[२] आरम्भ मे कुछ समय तक चाचा तथा भतीजे मे अच्छी प्रकार बनती रही। नारायणराव शीघ्र ही मृत पेशवा की कठोर वृत्ति का अनुकरण करने लगा। वह सखाराम बापू तथा अन्य वृद्ध अधिकारियो का स्पष्ट अपमान करने से अपने को नही रोक पाता था।

हमको इस समय के राजनीतिक क्षितिज का निरीक्षण करना चाहिए। ऐसा मालूम होता था कि समस्त भारत मे क्षणिक शान्ति विद्यमान हे। महादजी शिन्दे तथा अन्य मराठा सरदार दिल्ली के शाही कार्यो मे व्यस्त थे तथा उत्तर भारत के जिलो मे राजस्व सग्रह कर रहे थे, जहाँ मराठा शक्ति की स्थापना उसी समय पर हुई थी। मराठो के मित्र गाजीउद्दीन इमादुल्मुल्क की उत्कट इच्छा थी कि महादजी को पुन शाही वजीर के पद पर नियुक्त कर दिया जाये, जिस पर वह पहले स्थित था। इस समय वह गृहहीन घुमक्कड था तथा अपने पक्ष को उपस्थित करने के लिए दिसम्बर, १७७२ ई० मे स्वय पूना गया, जिससे नये पेशवा को उत्तरी प्रदेश मे काय-प्रबन्ध की नई योजना लागू करने के लिए उकसावे।[३] सम्राट् शाहआलम को गाजीउद्दीन से घोर घृणा थी, क्योकि उसने उसके पिता की हत्या की थी, तथा इस राक्षस के प्रति किसी प्रकार की अनुकम्पा के लिए वह अपनी अनुमति नही दे सकता था। गाजीउद्दीन मराठो का पुराना मित्र था और उसने पानीपत के युद्ध से पहले मराठो का बहुत हित किया था, जिससे उसकी वर्तमान दरिद्रावस्था मे पूना मे

---

[२] खरे, १२४३

[३] पुरन्दर ३, ११२, खरे, १२४३

लोगो को उससे बहुत सहानुभूति थी। नाना फडनिस ने उचित समय पर उसके वापस होने से पहले ही उसे बुन्देलखण्ड मे एक छोटी-सी जागीर दे दी, ताकि नारायणराव के दिखावटी वचन की पूर्ति हो सके। यह वचन सम्भवत स्वय नारायणराव ने उसको दिया था।

भूतपूव नवाब मीरकासिम मराठो का दूसरा महत्त्वपूण मित्र था, जिसने इस समय अपने भरण-पोषण के लिए इसी प्रकार की याचना की थी। परन्तु उसे सन्तुष्ट करना पेशवा के अधिकार की बात नही थी। दक्षिण मे मैसूर का हैदरअली और हैदराबाद का निजामअली इस समय मराठो को कोई कष्ट नही देना चाहते थे। दोनो अपनी भावी नीति को स्थिर करने के लिए पूना की परिस्थिति का ध्यानपूवक अवलोकन कर रहे थे। इस प्रकार नारायणराव के सम्मुख कोई बाहरी दबाव न था जो उसके प्रशासन के सुचारु सचालन मे विघ्न उपस्थित कर सके।

३ **पूना की परिस्थिति—गार्दी लोग**—परन्तु उसके घर मे ही शीघ्र उसकी परिस्थिति ऐसी हो गयी, जिस पर अधिकार करना उस जैसे किशोर युवक के लिए कठिन था। प्रथम महान सकट उसके रिक्त कोष के कारण उत्पन्न हुआ। अपने ऋण चुकाने मे माधवराव ने समस्त सचित धन व्यय कर दिया था। उसकी कुछ वर्षो की रुग्णता के कारण धन-सग्रह के लिए होने वाली साधारण वार्षिक कायवाही शनै-शनै शिथिल हुई और अन्त मे लगभग समाप्त हो गयी। गार्दी सिपाहियो के हल्ला करने के कारण परिस्थिति गम्भीर हो गयी। वे अपने वेतन का शेष धन माँग रहे थे और इस समय राजभवन के चारो ओर तथा नगर मे देखरेख के काय पर नियुक्त थे। पैसे के लालची इन पैदलो की शक्ति निस्सन्देह शासन के लिए सकटप्रद हो गयी थी। पेशवा और उसके परामशदाता किसी ने भी इसकी ओर पर्याप्त ध्यान नही दिया। बुस्सी के कानून के अनुसार ये लोग केवल अपनी मजदूरी के लिए काय करते थे, स्वामी से उनका कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध न था। उनमे अधिकाश उत्तर भारत के लोग, पठान, हब्शी, अरब, राजपूत तथा पुरबिये थे। प्रत्येक का मासिक वेतन ६ रुपये से १५ रुपये तक था। मराठे प्राय नियत्रण सहन नही कर सकते थे। अत उनमे से बहुत थोडे लोग अनुशासित दलो मे भरती होने की इच्छा करते थे। बुस्सी तथा इब्राहीमखाँ की मृत्यु हो चुकी थी। इस समय कोई प्रमुख नेता न था जो इन हल्लागुल्ला करने वाले उद्धत व्यक्तियो को नियत्रण मे रख सकता तथा उनसे उपयोगी काय करा सकता। इस समय उनकी सख्या ५ हजार से अधिक न थी। मुहम्मद यूसुफ, सुमेरसिह, खडगसिह

उनके नेता थे जिन्होने १७५७ ई० के लगभग सेवा मे प्रवेश किया था। यूसुफ वास्तव मे वीर तथा योग्य सैनिक था, जो १७७० ई० मे शिरा के गढ पर अधिकार प्राप्त करके गत पेशवा से प्रशसा प्राप्त कर चुका था। ये नेता तथा उनके अधीन सैनिक उस समय पेशवा के शरीर तथा भवन के रक्षक थे। उनकी स्थिति लगभग कुस्तुन्तुनिया के जनिसेरियो के सदृश थी। मुहम्मद यूसुफ को कतव्य की उपेक्षा के कारण कुछ समय पहले निकाल दिया गया था।

पेशवा के नवीन शासन के लिए चिन्ता का दूसरा कारण पूना मे ब्रिटिश दूत मोस्टिन की उपस्थिति थी। अप्रैल, १७७२ ई० मे, जबकि माधवराव मृत्यु-शैय्या पर पडा था, बम्बई परिषद् (कौसिल) के अध्यक्ष को ब्रिटेन के गृह अधिकारियो की ओर से आज्ञा प्राप्त हुई थी कि वह भारत की मुख्य भूमि पर स्थित साल्सेट (साष्टी), बसइ, एलिफैंटा, करजा तथा बम्बई के समीप कुछ अन्य टापू मराठो से प्राप्त करने के लिए प्रयास करे, तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पूना मे एक ब्रिटिश दूत को नियुक्त कर दे। मोस्टिन पूना के दरबार से पूव-परिचित था, क्योकि वह १७६७ ई० के ब्रिटिश मिशन का नेता रह चुका था। अत वह पूना भेजा गया। वह १३ अक्टूबर, १७७२ ई० को वहाँ पहुँच गया। वह पूरे दो वष तक पूना मे रहा और उन स्थानो की प्राप्ति के विचार से घटनाक्रम का अवलोकन करता रहा तथा पूना की परिस्थिति के अनुसार उपाय करने के लिए बम्बई के अधिकारियो को परामश देता रहा।

माधवराव की मृत्यु होते ही पश्चिमी तट पर स्थित थाना, बसई, विजयदुग तथा रत्नागिरि के मराठा अधिकृत स्थानो पर ब्रिटिश नौ-सेना ने उपयुक्त अवसर समझकर अकारण आक्रमण कर दिया। नारायणराव ने उपद्रव को रोकने के लिए तुरन्त उपाय किया। उसने त्रिम्बक विनायक को बसइ तथा कोकण का सर-सूबा नियुक्त कर दिया, तथा आवश्यक धन एव नौ सैनिको सहित ब्रिटिश प्रगति का प्रतिकार करने की आज्ञा प्रदान की। विजयदुग के मराठा नौ-सेनाधिकारी धुलप ने त्रिम्बक विनायक को अपना सहयोग दिया और वे दोनो कुछ समय के लिए ब्रिटिश धावे को विफल करने मे समथ हुए। परन्तु मोस्टिन पूना मे दूसरे उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करता रहा, जो शीघ्र ही उपस्थित हो गया।

बम्बई के ब्रिटिश व्यापारियो की भाँति जजीरा का सिद्दी भी ऐसे अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था जबकि वह मराठा शासन मे किसी प्रकार की निबलता से लाभ उठा सके—विशेषकर इस उद्देश्य से कि वह रायगढ पर पुन

अविकार कर ले, जिसका मराठे आदर करते थे, क्योकि वह शिवाजी के समय की पुरानी राजवानी थी ओर जो इस समय नाममात्र को छत्रपति के अविकार मे थी। गत पेशवा के जीवन-काल ही मे नारायणराव को सकट का पूर्वाभास हो गया था तथा उसने उस गढ की रक्षा का उपाय कर लिया था। इन घटनाओ से वह परिस्थिति स्पष्ट हो जाती हे जिससे नारायणराव का अपने शासन के आरम्भ मे निपटना पडा। सौभाग्यवश उस समय अपने चाचा के साथ उसके सम्बन्ध प्रेमपूर्ण थे। ७ फरवरी, १७७३ ई० को रघुनाथ की पुत्री दुर्गाबाई का विवाह सानन्द तथा सोल्लास सम्पादित हुआ। नारायणराव ने इसके प्रवन्ध के निरीक्षण मे विशेष भाग लिया।

४　**उत्तेजना का आरम्भ—विसाजी पन्त लेले**—प्रथम घटना का सम्बन्ध विसाजी पन्त लेले स था, जिसके कारण चाचा तथा भतीजे मे सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। लेले चतुर कूटनीतिज्ञ, दक्ष अविकारी तथा याग्य सैनिक था। वह बहुत दिनो से बसइ का सूबेदार था। सवप्रथम उसने ही थाना तथा बसइ सम्बन्वी ब्रिटिश षड्यन्त्रो का भडाफोड किया था, तथा वहाँ पर मराठा हितो की रक्षा करने का यथासमय उपाय किया था। सखाराम बापू को उस पर बहुत विश्वास था, तथा कई विपम परिस्थितियो मे उसने बापू की निष्ठा-पूवक सेवा भी की थी जिनमे पारस्परिक सहायता की आवश्यकता थी। विसाजी पन्त के भ्रष्टाचार का माधवराव को बहुत दिनो से पता था जिसके फलस्वरूप वह माधवराव का विश्वास खो बैठा था। एक बार पशवा को सूचना मिली कि विसाजी पन्त ने एक जलमग्न व्यापारी पोत की २० लाख की सम्पत्ति को हजम कर लिया हे जबकि वह उस धन को राजकोष मे जमा करने के लिए कतव्यबद्ध था। इस अपराध के कारण माधवराव ने अपने अन्तिम दिनो मे पन्त को सेवा से निकाल दिया था। कुछ मास बाद जब नारायणराव पेशवा हो गया, विसाजी पन्त ने अपनी पुनर्नियुक्ति के लिए प्राथना की तथा सखाराम बाबू ने उसका समथन किया। नारायणराव ने कठारता-पूवक बापू के अनुरोध को ठुकरा दिया, तथा बसइ के शासन पर त्रिम्बक विनायक को नियुक्त कर दिया।[४]

यह घटना उस प्रकार का प्रतिरूप उदाहरण है जिसके कारण नवीन

४　बाद मे विसाजी पन्त ने कई लाख रुपये का भारी दण्ड पेशवा के शासन को चुका दिया और वह जून, १७७४ ई० मे पुन बसई का अविकारी नियुक्त कर दिया गया। इस विषय पर देखो—पेशवा दफ्तर, जिल्द ३५, पृष्ठ ५ तथा आगामी, खरे न० १२३४, १२३५, १२३८ आदि।

पेशवा को शासन मे अपना गौरव स्थापित करना दुस्साध्य काय प्रतीत हुआ। पटवधन सरदारो को गत पेशवा के समय मे अपनी एकनिष्ठ सेवा के कारण महान् शक्ति प्राप्त हो गयी, तथा इस कारण वे लोग रघुनाथराव तथा सखा राम बापू दोनो की आँखो मे खटक रहे थे। अब इन दोनो का यह ध्येय हो गया कि नारायणराव की इच्छा के विरुद्ध पटवधनो के गौरव को घटा दे। शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि नवीन पेशवा तथा सखाराम बापू मे अधिक नही पट सकती। उन्होने निश्चय किया कि वे अपने मतभेदो को निणयाथ, पेशवा-परिवार की एकमात्र ज्येष्ठ सदस्या अनुभवी गोपिकाबाई के समक्ष उपस्थित कर दे। इस काय के लिए नारायणराव, बापू तथा वामनराव पट वधन (गोपालराव का भाई तथा इस समय उस परिवार का मुख्य पुरुष) माच के मध्य मे उस महिला से परामश करने गगापुर गये। उन्होने कुछ दिनो तक स्पष्ट वार्तालाप किया, परन्तु वे कोई निश्चित हल न निकाल सके।

इसी बीच पूना मे अपनी विवशता पर खिन्न रघुनाथराव ने नारायणराव की अनुपस्थिति से लाभ उठाकर नये पेशवा के नियत्रण से भाग निकलने के लिए एक अभिनव षड्यन्त्र की रचना की। वह अपनी निजी सेना भरती करने लगा तथा उसने हैदरअली को सहायता के लिए पत्र लिखा। पूना मे शान्ति तथा व्यवस्था के प्रति उत्तरदायी अधिकारी नारो अप्पाजी ने अविलम्ब उपाय किया जिससे रघुनाथराव भागने न पाये। इस निमित्त उसने राज भवन तथा नगर के समस्त बाहरी मार्गों पर पहरा लगा दिया। रघुनाथराव ने एक अभियान पर बाहर जाने की घोषणा करके अपने डेरे नगर से बाहर लगा लिये। इस घटना का समाचार नारायणराव को नासिक मे प्राप्त हुआ। वह शीघ्रतापूवक पूना वापस आ गया। वह अपने चाचा से उसके डेरे मे मिला, तथा ११ अप्रैल को उसे पुन राजभवन मे वापस ले आया। यहाँ उसने अपने चाचा का पलायन रोकने के लिए उस पर अधिक पहरा लगा दिया। इसके परिणामस्वरूप उन दोनो के बीच उत्तेजना अधिक बढ गयी। अपनी परिस्थिति को असह्य देखकर रघुनाथराव ने नागपुर के भोसले-परिवार से सहायता के लिए प्राथना की।

५ **नागपुर का उत्तराधिकार—प्रभु लोग**— मई, १७७२ ई० मे जानोजी भोसले की मृत्यु पर उस परिवार मे सदा की भाति उत्तराधिकार-कलह उत्पन्न हो गयी, तथा माधोजी एव सबाजी दोनो भाइयो के बीच गृह-युद्ध आरम्भ हो गया। पूना से रघुनाथराव तथा सखाराम बापू ने माधोजी का समथन कया। सबाजी का समथन नारायणराव, नाना फडनिस तथा अन्य व्यक्तियो

ने किया जो दिवगत पेशवा की नीति का पालन कर रहे थे। इसके अतिरिक्त सबाजी को निजामअली की सहानुभूति भी प्राप्त थी। जनवरी, १७७३ ई० मे दोनो भाइयो मे कुछ अनिर्णायक युद्ध भी हुए। कुछ निष्पक्ष शुभचिन्तको की मध्यस्थता के द्वारा यह भ्रातृघातक युद्ध अस्थायी रूप से शान्त हो गया तथा सहमति की स्थापना हो गयी। इसके अनुसार माधोजी का पुत्र रघुजी नागपुर का शासक माना जाने को था। पेशवा द्वारा इस प्रबन्ध की पुष्टि के लिए प्रभु जाति के दो दूत, वकटराव काशी गुप्ते और उसका भाई लक्ष्मण, रघजी के लिए सेनासाहेब सूबा की पोशाक प्राप्त करने के लिए पूना भेजे गये। जब ये दोनो १७७३ ई० की ग्रीष्म ऋतु मे पूना पहुँचे तो उनको पता चला कि पेशवा तथा उसके चाचा के बीच तीव्र तनाव चल रहा है। नागपुर के प्रसिद्ध षड्यत्रकारी तथा कूटनीतिज्ञ देवाजीपन्त चोरघोडे ने उनको गुप्त रूप से उत्तेजित किया कि वे इस परिस्थिति से लाभ उठाये। यह वही व्यक्ति था जिसके गव का दलन दिवगत पेशवा माधवराव ने किया था तथा जो रघुनाथ-राव ओर सखाराम बापू के प्रति बहुत दिनो से स्पष्ट सहानुभूति प्रकट कर रहा था। नागपुर के इन दूतो ने नारायणराव के विरुद्ध रघुनाथराव का पक्ष लेकर कुचेष्टा आरम्भ की।

इस समय प्रभु जाति को नारायणराव के विरुद्ध विशेष ईर्ष्या थी, यद्यपि इस सकट की उत्पत्ति बहुत पहले हो चुकी थी। अपने धार्मिक कतव्यो के पालन मे प्रभु लोग क्षत्रियो के समान अधिकार चाहते थे। उनका आग्रह था कि उस कार्य के लिए वे वैदिक सूक्तो का उपयोग करे। शिवाजी के समय मे इस प्रकार के व्यवहार पर कलह उपस्थित हो गयी थी। उनके विश्वासपात्र सचिव बालाजी आवजी चिटनिस ने, जो प्रभु जाति का था, अपन पुत्रो का यज्ञोपवीत सस्कार उस समय किया था जब स्वय शिवाजी का यह सस्कार हुआ था। इस अवसर पर प्रसिद्ध नागाभट्ट के निर्देशन मे वैदिक ऋचाओ का उपयोग हुआ था। उस समय से कट्टर ब्राह्मणो के हस्तक्षेप के बिना उस प्रथा का प्रचलन हो गया था क्योकि शाहू तथा उसके पेशवा किसी प्रकार की उत्तेजना फैलाने वाली नई प्रथा से विवेकपूवक दूर रहे थे। परन्तु इस समय नारायणराव ने अविवेकवश कट्टर दल का पक्ष धारण कर लिया, तथा सम्भवत नाना फडनिस की प्रेरणा से उसने प्रभुओ के क्षत्रिय पद का अपहरण कर लिया और कठोर दण्डो की भत्सना देकर उनको बलपूवक शूद्रो के लिए विहित प्रथाओ को ग्रहण करने के लिए विवश कर दिया, जिनको वैदिक सूक्तो के उपयोग का कोई अधिकार नही है। इस कार्य के लिए पूना मे प्रभु जाति

के कुछ प्रमुख नेता पररस्पर एकत्र किये गये तथा कठोर शारीरिक यातनाओ द्वारा, जिनमे भूखा रखना भी सम्मिलित था, उन्हे ६ विशेष धाराओ की सहमति पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया गया। इन धाराओ का आशय था कि उन्होने शूद्र का पद स्वीकार कर लिया हे तथा वे क्षत्रिय पद का त्याग कर रहे हैं। इस काय के कारण पेशवा के हाथ से उस प्रभावशाली जाति की सहानुभूति निकल गयी। क्रुद्ध होकर वे उस षडयन्त्र मे सम्मिलित हो गये जिसकी रचना इस समय मन्दगति से तथा गुप्त रूप से रघुनाथराव कर रहा था। अपने ऊपर लगे हुए प्रतिबन्धो से रघुनाथराव इस प्रकार क्रुद्ध हो गया कि उसने अपनी वधू तथा अपने दत्तक पुत्र के साथ आमरण अनशन प्रारम्भ करने की धमकी तक दे डाली। इस विचित्र परिस्थिति मे नारायणराव शान्त तथा जनप्रिय माग का अवलम्बन न कर सका। उसे अपने किसी परामशदाता पर विश्वास न था। नाना फडनिस कुछ समय पहले ही विरक्त हो गया था तथा वतमान प्रशासन से अलग रहने लगा था क्योकि उसके प्रति स्पष्ट रूप से अविश्वास प्रकट किया गया था। नाना का अपने ज्येष्ठ सहकारी बापू से भी मतभेद हो गया था, इस कारण वह तब तक प्रशासन मे कोई सीधा भाग न लेता था जब तक कि ऐसा करना नितान्त आवश्यक ही नही होता था। यही कारण है कि अपने स्वाभाविक पयवेक्षण सहित नाना ने नगर मे उस समय प्रचलित षड्यन्त्रो तथा योजनाओ की सूचनाओ पर ध्यान नही दिया तथा उनके दमनाथ यथासमय उपाय नही किया। स्थानीय परम्परा मे विद्यमान यह तुच्छ घटना कि पेशवा ने अपनी छडी से नाना की पगडी उसके सर से गिरा दी, केवल एक निकृष्ट कोटि का उपहास था जो नारायणराव की अस्थिर प्रकृति के अनुरूप था। वह प्राय गवपूवक तथा बे-समझे-बूझे भव्य योजनाओ तथा आयोजनाओ के अनुकरण की बात करता था जो उसके प्रसिद्ध पूवजो के योग्य थी, परन्तु जिनको कार्यान्वित करने की उसमे कोई क्षमता तथा धीरता नही थी।

६ **नारायणराव को राज्यच्युत करने का षडयन्त्र**—नागपुर के दूत वैंकटराव काशी तथा उसका भाई लक्ष्मण पूना को मुख्यतया इस उद्देश्य से आये थे कि माधोजी के पुत्र रघुजी के लिए नागपुर की गद्दी के प्रति उत्तराधिकार के लिए पेशवा की स्वीकृति प्राप्त कर ले, और इस प्रकार उस पद पर सबाजी के मिथ्या अभियोग का अन्त हो जाये। किन्तु नारायणराव सबाजी के अभियोग का समथक था तथा उसने खाडेराव दरेकर के अधीन उसके भाई के विरुद्ध उसकी सहायता के लिए सशस्त्र सहायक सेना भेज दी थी। माधोजी

इस प्रतिघात पर बिगड गया तथा उसने अपने दोनो दूतो को लिखा कि वे पूना मे ही ठहरे रहे और नारायणराव के प्रति प्रबल विरोध का सगठन करे। माधोजी ने लिखा—"अब पेशवा के अत्याचार को शान्तिपूवक सहन करना व्यथ है। जिस प्रकार आप ठीक समझे, अपने विवेक से ऐसा काय करे जिससे रघुनाथराव के पक्ष का समथन करके हम अपना उद्देश्य प्राप्त कर सके।" वास्तव मे यह निर्देश सदिग्ध था परन्तु इसके द्वारा दूतो को यह अधिकार अवश्य प्राप्त हो गया कि वे शासनकर्ता पेशवा के विरुद्ध रचे गये किसी भी षडयन्त्र मे भाग ले सके।

ये दूत (एजेन्ट) तब तक किसी योजना पर विचार नही कर सकते थे जब तक कि स्वय रघुनाथराव से पूरी तरह बातचीत न कर ले परन्तु उस पर इतना कडा पहरा लगा हुआ था कि कोई भी बाहरी व्यक्ति उसके साथ बातचीत नही कर सकता था। इस विचित्र स्थिति मे नागपुर के इन वकीलो ने सखाराम हरिगुप्ते से परामश किया जो रघुनाथराव का निष्ठावान पक्षपाती था, तथा नारायणराव के इस काय पर पहले से ही अत्यन्त रुष्ट था कि उसने प्रभु जाति पर सामाजिक प्रतिबन्ध लगा दिये थे। उन्होने मिलकर रघुनाथराव के साथ गुप्त रूप से बातचीत करने का प्रबन्ध कर लिया। इस अवसर पर यह षड्यन्त्र निश्चित हुआ कि नारायणराव को पकडकर कैद मे डाल दिया जाये तथा रघुनाथराव को पेशवा की गद्दी पर बैठा दिया जाये। इस योजना की सफलता के लिए यह आवश्यक था कि रघुनाथ स्वतन्त्र होकर सशस्त्र दल का सगठन कर सके। अगस्त मास की एक अँधेरी रात मे रघुनाथ-राव ने लक्ष्मण काशी का सहारा लेकर भाग निकलने का प्रयत्न किया, परन्तु पहरे वालो ने उसको पहचान लिया और अपनी देखरेख (कस्टडी) मे वापस ले लिया। लक्ष्मण काशी बच निकला तथा अपनी प्राणरक्षा के लिए पूना से बाहर भाग गया। नारायणराव को जब इस घटना का समाचार मिला तो उसने अपने चाचा पर और भी कडा पहरा लगा दिया तथा आज्ञा दी कि उसको अपने कमरे के बाहर न निकलने दिया जाये। उसकी समस्त आवश्यकताएँ एक सीमित क्षेत्र के भीतर पूरी कर दी जाती थी। रघुनाथराव की एक यह प्राथना थी कि वह खुले मैदान मे खडा होकर सूय की ओर टकटकी बाँधकर बहुत देर तक देखता रहे। इस प्रकार की प्राथना स्वीकृत न होने से वह क्रुद्ध हो गया और स्थिति सकट की ओर बढ़ने लगी। उसी समय उसका असीम व्यय बहुत घटा दिया गया।

दिवगत पेशवा के समय मे भी इस प्रकार की उत्तेजनापूर्ण घटनाएँ कम

नही हुई थी, परन्तु माधवराव सावधान रहता था कि चाचा को सहन-सीमा के बाहर न सताया जाये जबकि नारायणराव मे आवश्यक विवेक का अभाव था। माधवराव ने सखाराम बापू, सखाराम हरि, चिन्तो विट्ठल, गगाधर यशवन्त, विसाजी लेले, अबाजी माधव सोहोनी तथा अपने चाचा के अन्य कट्टर पक्ष-पातियो से उपयोगी सेवा भी ले ली तथा उनको कोई सगठित काय भी न करने दिया। परतु नारायणराव ने इस पूव-सावधानी की उपेक्षा की। इन असन्तुष्ट व्यक्तियो को अपनी शत्रुवत प्रवृत्ति तथा प्रतिशोध की भावना की तृप्ति के लिए अब अनुकूल परिस्थिति प्राप्त हो गयी। नारायणराव के विरुद्ध इस भावना को वे बहुत दिनो से गुप्त रखे हुए थे। इन सहायको के अतिरिक्त रघुनाथराव अप्पाजी राय की सहानुभूति भी प्राप्त करने मे सफल हो गया, जो पूना मे हैदरअली का स्थायी राजदूत था। अप्पाजी रघुनाथराव की योजनाओ मे सम्मिलित हो गया, तथा उसने अपने स्वामी को राजी कर लिया कि पेशवा परिवार के इस भाग्यहीन सदस्य को वह अपना समथन प्रदान करे। जेम्स फोर्ब्स ने, जो बाद को रघुनाथराव तथा उसके मण्डल के साथ गुजरात मे रहा, लिखा है कि "नारायणराव के दुरगेपन तथा दुव्यवहार के कारण राघोबा अन्त मे विवश हो गया कि वह हैदरअली के राजदूत से मिलकर अपने पलायन के निमित्त उपायो को सगठित करे। यह समाचार जब अल्पवयस्क पेशवा को प्राप्त हुआ, तो उसने राघोबा को अपने राजभवन के अन्दर बन्दी कर दिया, तथा न उसके किसी मित्र को उससे मिलने की अनुमति दी और न उसके किसी सेवक को उसके पास जाने दिया। चाहे वह अपने जीवन से ऊब गया हो, अथवा अपने भतीजे को डराना चाहता हो, राघोबा ने आमरण अनशन का गम्भीर व्रत धारण कर लिया। उस दशा में उसकी मृत्यु का कारण नारायणराव की निष्ठुरता मानी जायेगी तथा राष्ट्र उस पर यह कलक लगा देगा कि वह हत्यारा है। इस प्रकार निश्चय कर उसने अपने व्रत का पालन आरम्भ किया, तथा १८ दिनो तक प्रतिदिन केवल १ छटाक हरिणी के दूध के अतिरिक्त कुछ भी ग्रहण नही किया जब तक कि उसके अत्यन्त निबल हो जाने पर नारायणराव करुणाद्र न हो गया और उसने प्रतिज्ञा न कर ली कि उसको ५ दुर्गो के सहित एक जिले का शासन तथा १२ लाख वार्षिक आय की जागीर दी जायेगी, किन्तु शर्त यह थी कि कुछ (पाच) बडे सरदार उसके भावी आचरण के लिए उत्तरदायी बन जाये।[1]

---

[1] 'ओरिएण्टल मेमॉयस', १, पृ० ३०१

नागपुर के दोनो दूतो (एजेन्टो) के षड्यन्त्रो से चिढकर नारायणराव ने आवेशपूवक तुरन्त आज्ञा दे दी कि वह सबाजी भोसले को सेनासाहेब सूबा के रूप मे अपनी मान्यता प्रदान करता है। उसने दोनो दूतो को आज्ञा दी कि वे अविलम्ब नागपुर को वापस जाये और अपने साथ तीसरे दूत भवानी शिवराम को भी लेते जाये जो उसी समय नागपुर से आया था। नागपुर की गद्दी पर सबाजी की नियुक्ति की आज्ञा पर १६ अगस्त अर्थात् पेशवा की हत्या के दो सप्ताह पूव की तारीख थी। इस प्रकार यह तारीख उस तूफान का आरम्भ हे जो एकत्र हो रहा था। रघुनाथराव तथा आनन्दीबाई का अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तिगत सेवक तुलाजी पवार इस समय दूसरे षड्यन्त्र का प्रेरक पुरुष बन गया। उस षड्यन्त्र की रचना उसने चतुरतापूवक की तथा उसको निर्भीकतापूवक कार्यान्वित किया। मूल योजना यह थी कि नारायणराव को पकडकर बदी बना लिया जाये ओर रघुनाथराव को मुक्त करके पेशवा बना दिया जाये। इस तुलाजी ने ही हत्या के भावी षड्यन्त्र का सगठन किया। इस षडयन्त्र की जॉच पर यह तुलाजी मुख्य अपराधी पाया गया। वह बहुत दिनो तक पकडा नही जा सका, तथा जब १७८० ई० मे उसका बयान लेख-बद्ध किया गया तो उसने कहा कि षड्यन्त्र "थेउर के दिनो मे आरम्भ हुआ था।" उसका अथ था कि यह निश्चय रघुनाथराव ने उस समय किया था जबकि दिवगत पेशवा थेउर मे था। उसका अभिप्राय था कि पेशवा की मृत्यु के बाद उसका पद रघुनाथराव को प्राप्त हो जाये। रघुनाथराव इस निश्चय को कभी नही भूला था, हा परिस्थितिवश वह इसको कार्यान्वित न कर सका था। समय की इस दूरी को देखते हुए तथा एकत्रित लेखबद्ध प्रमाणो के आधार पर इस घटना पर विचार करते हुए हमे दुख होता है कि नारायणराव सवथा उपेक्षाशील तथा अयोग्य था। उसने आत्मरक्षा के अत्यन्त साधारण पूर्वोपायो का भी ध्यान न रखा जो उसकी स्थिति वाले शासक के लिए सुलभ थे। उसका स्वभाव ककश था जिसके कारण उसके उत्तम मित्र भी शत्रु हो जाते थे।

सखाराम बापू की नीति समझौते द्वारा समस्याओ को सुलझाने की थी। वह आत्यन्तिक उपायो से दूर रहकर परस्पर विरोधी हितो का सामजस्य करना चाहता था। जब रघुनाथराव तथा उसकी पत्नी आनन्दीबाई उससे दुखी होकर शिकायत करते कि उनके प्रति पेशवा का व्यवहार कठोर है, तभी उत्तरदायी प्रशासक के रूप मे सखाराम बापू को ममस्पर्शी कतव्य का पालन करना पडता। जिस हत्या के षड्यन्त्र की रचना हो रही थी, उसका सम्भवत उनको ज्ञान न था।

१६ से ३० अगस्त तक पूना मे अपूव हलचल रही। रघुनाथराव के विभिन्न पक्षपातियो मे गुप्त वार्तालाप तथा वादविवाद होते रहे, परन्तु पेशवा के राजभवन की ये घटनाएँ साधारण थी, इस कारण किसी उत्तरदायी अधिकारी ने उनकी ओर गम्भीरतापूवक ध्यान नही दिया। २५ जुलाई को ब्राह्मणो को श्रावण मास का वार्षिक दान यथापूव समाप्त हो गया। इसके आगे के दस दिन गणपति समारोह के दिन थे जबकि समस्त प्रशासक वग को छुट्टी मिल जाती थी तथा समस्त अधिकारी और उनका सहकारी मण्डल उत्सव के विभिन्न कार्यो मे व्यस्त रहते थे—प्रात तथा साय दैनिक पूजा, वेद पाठ, सगीत, नत्य, दरबार, भोज तथा जलूस। यह समारोह २१ अगस्त को आरम्भ हुआ तथा भाद्रपद अनन्त चतुदशी ३१ अगस्त को समाप्त होने वाला था। पेशवा की हत्या ३० अगस्त को दोपहर के कुछ ही बाद हुई।

गणपति समारोह के इन दिनो मे तुल्या पवार ने अपना काय अत्यन्त तत्परता से आरम्भ किया। वह गार्दी नेताओ के पास गया तथा पेशवा और उसके चाचा के प्रति उनकी सहानुभूति का पता चलाया। उसमे अपने स्वामी को उच्चतम आसन पर आसीन देखने तथा उस वास्तविक या कल्पित अन्याय का प्रतिशोध प्राप्त करने के लिए विचित्र उत्साह तथा निभय इच्छाशक्ति थी, जिसको उसने नारायणराव तथा सम्भवत स्वय माधवराव के कारण सहन किया था। वायुमण्डल मे विद्यमान षड्यन्त्र के सदिग्ध तथा बिखरे तत्त्वो को निश्चित रूप देने का, उसके सम्पादनाथ योग्य व्यक्तियो को चुनने का तथा उनको वे काय सौपने का जिनकी उनसे अपेक्षा थी, तुलाजी ने यथाशक्ति प्रयत्न किया। चूकि वह राजभवन का पुराना तथा सुपरिचित व्यक्तिगत सेवक था, अत उसको तब तक अकस्मात् नही निकाला जा सकता था, जब तक उस पर गम्भीर षड्यन्त्र का सन्देह न हो जाये। उसको अपने स्वामी के पास निर्बाध प्रवेश की सुविधा प्राप्त थी। वह राजभवन मे बन्दी रघुनाथराव तथा उसकी पत्नी आनन्दीबाई के साथ और राजभवन के बाहर उपस्थित गार्दी सरदारो के साथ परामश द्वारा सुविधापूवक षड्यन्त्र के विभिन्न भागो की रचना कर सकता था। षडयन्त्रकारियो का आरम्भ मे केवल यह विचार था कि नारायणराव को बन्दी बना ले तथा रघुनाथराव को उसके आसन पर बैठा दे। अत रघुनाथराव ने सावधानीपूवक अपनी अभीष्ट योजना के प्रति सखाराम बापू की प्रतिक्रिया जानने का प्रयत्न किया। सम्भवत बापू का सचाई के साथ यह विश्वास था कि रघुनाथराव किसी भी प्रकार अपने भतीजे से कम योग्य नही है। इसमे सन्देह नही है कि नारायणराव के पक्ष के प्रति बापू उत्साहशील न

था किन्तु वह पेशवा की कोई व्यक्तिगत हानि नही चाहता था, इसलिए सखाराम बापू ने कोई सक्रिय प्रयास नही किया कि वह इस योजना को सहायता दे या रोके ।

मोरोबा फडनिस भी कायकारी सरकार का सदस्य था, परन्तु अपने ज्येष्ठ सहयोगी बापू की भाति उसकी वृत्ति भी उदासीन थी । हरिपन्त फडके भी अपने मित्र नाना की भाँति विराग भावना धारण किये हुए थे । इस प्रकार यदि इन पृथक-पृथक उत्तरदायी परामशदाताओ के परस्पर विरोधी विचारो का ध्यान रखा जाये, तो हत्या की रोकथाम न होने पर आश्चर्य नही होना चाहिए । नारायणराव ने अपने बन्दी चाचा को गार्दी लोगो के अधिकारी सुमेरसिह के निकट निरीक्षण मे रख छोडा था । इस प्रकार उसका प्रवेश राघोबा तक स्वतन्त्र था । तुलाजी ने उसको तैयार कर लिया कि वह मुहम्मद यूसुफ, खडगसिह तथा बहादुरखा के साथ षड्यन्त्र मे सम्मिलित हो जाये । इस प्रकार योजना को कार्यान्वित करना सरल हो गया । नारायणराव को बन्दी बना लेना ही एकमात्र उपाय प्रतीत हुआ जिसके द्वारा रघुनाथराव के कष्ट दूर हो सकते थे । तुलाजी ने आग्रहपूवक इस प्रकार कहा—"आप चार सरदारो मे से प्रत्येक के पास एक-एक हजार आदमी हे तथा आप सुविधापूवक इस काय को कर सकते हे ।" सुमेरसिह ने उत्तर दिया—"इस साहसिक काय मे यदि हम असफल रहे तो हमारे प्राण सकट मे पड जायेगे । अत हमको कुछ ठोस पुरस्कार मिलना चाहिए ।" अत इस बात पर सहमति हो गयी कि उद्देश्य-पूर्ति होने पर गार्दी सरदारो को तीन लाख रुपये का नकद पुरस्कार दिया जायेगा । रघुनाथराव की लिखित आज्ञा प्राप्त करके भी इन चार गार्दी सरदारो को दे दी गयी किन्तु इसका आशय था कि पेशवा को "पकड लिया जाये ।" बाद को ये शब्द मिटा दिये गये तथा 'पेशवा बखर' के अनुसार आनन्दीबाई ने उनके स्थान पर "मार दिया जाये" लिख दिया । परन्तु वास्तव मे यह परिवर्तन किसने किया, इस रहस्य का उद्घाटन कभी नही हुआ । आनन्दीबाई ने सदैव यही कहा कि इस घटना म उसका कोई हाथ नही था । 'नागपुर बखर' के अनुसार लक्ष्मण काशी ने गार्दी सरदारो को रघुनाथराव द्वारा लिखित वचन दिया जिसमे प्रतिज्ञा की गयी थी कि नारायण-राव को बन्दी बना लेने पर उनको तीन लाख रुपये का पुरस्कार दिया जायगा । इस प्रकार रघुनाथराव द्वारा षड्यन्त्र की रचना की गयी । उसके साथी गार्दी लोग तथा साधन तुलाजी पवार और लक्ष्मण काशी थे । डफ के कथनानुसार जब रामशास्त्री ने इस काण्ड की पूरी जाँच की, तो वह पत्र उसके सम्मुख उपस्थित

किया गया जिसमे "पकड लिया जाये" को मिटाकर उसके स्थान पर "मार दिया जाये" लिख दिया गया था। इस समय उस पत्र का पता नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि जब रघुनाथराव की प्रेरणा पर गार्दी सरदारो ने इस साहसिक काय को अगीकार किया, तो उनको आभास हुआ कि बन्दी बनाने के काय मे पेशवा की ओर से सशस्त्र प्रतिरोध उपस्थित होने पर पेशवा की हत्या की भी सम्भावना है। अत जब उन्होने इस कठिनाई को मध्यस्थो द्वारा प्रस्तुत किया, तब रघुनाथराव ने सघष के बीच पेशवा की मृत्यु होने पर उन लोगो को हत्या के उत्तरदायित्व से मुक्त कर देने का अश्वासन दिया। यही कारण है कि अनुबन्ध के महत्त्वपूण शब्दो मे परिवतन कर दिया गया था।

७ **हत्या सम्पन्न**—१६ अगस्त से षड्यन्त्र जोर पकडने लगा। इस महत्त्वपूण समय मे नारायणराव मानो मरने ही के लिए घोर असावधान रहा। कोलाबा का रघुजी आग्रे पूना आया हुआ था। वह पेशवा से मिला। पेशवा को इस भेट के बदले मे भेट करनी थी, जो सोमवार को ३० अगस्त के प्रभात के लिए निश्चित की गयी। लगभग १० बजे प्रात काल नारायणराव नगर के बाहर आग्रे के निवास स्थान को हरिपन्त फडके के साथ गया। अपने वार्तालाप मे रघुजी ने पेशवा का ध्यान उन प्रवादो की ओर आकृष्ट किया जिनको उसने सुना था, तथा उसको सावधान किया कि वह अपने जीवन के प्रति आने वाले सकट से सतक रहे। इस भेट के समाप्त होने पर पेशवा तथा फडके पावती के मन्दिर को गये जहा पर अतिथि तथा निमन्त्रित सज्जनो के साथ उनका उस दिन का नाश्ता निश्चिल था। नाश्ता समाप्त होने पर हरिपन्त के साथ पेशवा अपने राजभवन को वापस आ गया। माग मे पेशवा ने हरिपन्त को बताया कि उसने आग्रे से क्या-क्या सुना था तथा उससे कहा कि इस दुष्कम को रोकने के लिए अविलम्ब उपाय करे। हरिपन्त ने पेशवा को विश्वास दिलाया कि मध्याह्न का भोजन करने के बाद वह इस काड की ओर ध्यान देगा क्योकि उसको यह भोजन अपने एक मित्र के साथ करना था। पेशवा राजभवन मे पहुँचकर विश्राम के लिए अपने कमरे मे चला गया। तुल्या पवार को किसी प्रकार इसकी गन्ध लग गयी कि पेशवा को पूव-चेतावनी प्राप्त हो गयी है। उसने गार्दी सरदारो को सकेत किया कि यदि वे अपनी योजना को तुरन्त कार्यान्वित नही करेंगे तो सब के सब मारे जायेंगे क्योकि उनका भेद खुल गया है। इस सूचना पर अपने चारो सरदारो के अधीन लगभग ५०० गार्दियो का सशस्त्र दल तुरन्त राजभवन मे घुस आया। वे राजभवन के पीछे के उस फाटक से घुसे थे जो चौडा किया जा रहा था। फाटक पर नियुक्त कुछ

कतव्यनिष्ठ व्यक्तियो को उन्होने काट डाला तथा अपने चिरविलम्बित वेतन को चुकाने की माग की ।

तीसरे पहर के लगभग एक बजे का समय था । उपस्थित कर्णिको (लिपिको) तथा नौकरो ने विद्रोहियो को समझाया । उन्होने कहा कि वे हल्लागुल्ला करके अपने स्वामी के विश्राम मे विघ्न न डाले और उनकी शिकायते तथा दुख-दद कार्यालय मे सुने जायेगे । इस पर वे विरोधी कर्णिक भी काट डाले गये । उनमे से एक ने एक गाय के पीछे शरण ली जो वहा सदैव ताजे दूध के लिए रखी जाती थी । गार्दियो ने उस गाय तथा मनुष्य के टुकडे-टुकडे कर दिये । उन्होने अगले फाटक को बन्द कर दिया तथा ऊपर के जीने से पेशवा के कमरे की ओर बढे । उनके हाथो मे नगी तलवारे थी तथा वे कान फोडने वाला भारी शोर कर रहे थे । निवासियो के त्रास तथा शोक के चीत्कारो से राजभवन गूज उठा, परन्तु दुर्निवार आक्रमण का विरोध किसी से न हो सका । अपने जीवन के प्रति भयग्रस्त तथा सवथा निरस्त्र नारायणराव अपने कमरे के पिछले द्वार से अपनी चाची पावतीबाई के कमरे मे भाग गया । उसने पेशवा को निर्देश दिया कि अपने चाचा के पास जाये तथा उससे रक्षा की याचना करे । तब वह उस स्थान पर गया जहा रघुनाथराव पूजा कर रहा था । उसने रघोबा के पैर पकडकर अपनी रक्षा की प्रार्थना की तथा उससे पेशवा होने एव अपने लिए प्राणदान की याचना की । सुमेरसिह तथा गार्दियो ने, जो इस बीच पेशवा का अति निकट से पीछा कर रहे थे, उसको उसके चाचा के पास से खीच लिया । तुल्या पवार उसको निदयतापूवक घसीटकर बाहर ले आया, तथा सुमेरसिह ने उसके टुकडे-टुकडे कर दिये । नारायणराव का सेवक चपाजी तिलेकर रक्षा करने के उद्देश्य से अपने स्वामी के शरीर पर लेट गया । उसके साथ कुछ दासियाँ भी थी । वे सब भी निदयतापूवक काट डाले गये । इस प्रथम भीडभाड के कुछ समय बाद नारोबा नायक नामक एक वृद्ध तथा विश्वस्त व्यक्ति जो राजभवन मे सेवा-काय पर नियुक्त था, वहाँ आया । उसने रघुनाथ-राव की उसकी स्वय की उपस्थिति मे इस पाप-कम की सम्पन्नता के लिए घोर निन्दा की । इस पर क्रुद्ध गार्दियो ने उस निरपराध व्यक्ति को भी मार डाला । इस प्रकार आधे घण्टे के अल्प समय मे ही उस प्रसिद्ध राजभवन मे निदयतापूवक ग्यारह व्यक्तियो की हत्या की गयी । इनमे से सात ब्राह्मण थे तथा दो मराठा नौकर और दो दासियाँ थी । इसके अतिरिक्त एक गाय भी थी जो जीवन के लिए उनसे कम पवित्र न थी । यह समस्त घटना एक ब्राह्मण नगर के बीच घटित हुई । फोब्स ने इन विवरणो का समर्थन करते हुए लिखा हे कि

"इस दुखद परिणाम के अनेक विवरण हे। पेशवा परिवार तथा अधिकाश मराठा राष्ट्र ने हत्या का आरोप राघोबा पर किया। कुछ मराठा सरदारो तथा उसके अनेक पक्षपातियो ने उसकी निर्दोषता का प्रतिपादन किया। किन्तु जब हम उसके महत्त्वाकाक्षी चरित्र तथा उस समय उसकी विचित्र परिस्थितियो पर विचार करते है, तो उसको दोष-मुक्त करना कठिन हो जाता है।"

इस समाचार को सुनते ही हरिपन्त फडके ने अति शीघ्रता से सेना तथा तोपखाने सहित महल को घेर लिया, परन्तु उसको पता न था कि अन्दर क्या हो रहा हे, इसलिए वह भवन पर गोलाबारी नही कर सका। इस बीच मे सरदार लोग तथा उच्च अधिकारी बुधवार की पुलिस चोकी पर एकत्र हो गये। इनमे नाना फडनिस भी था। उन्होने भविष्य की योजनाओ पर विचार-विनिमय किया। भवनराव प्रतिनिधि, मालोजी घोरपडे तथा अन्य प्रभावशाली व्यक्ति घटना का वास्तविक समाचार प्राप्त करने के लिए राज-भवन मे गये। गार्दी लोग राजभवन की रक्षा कर रहे थे। उन्होने इन लोगो को रघुनाथराव के पास जाने की आज्ञा तभी दो जबकि उन्होने अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र बाहर जमा कर दिये। अन्दर जाकर उन्होने देखा कि रघुनाथराव नीचे की मजिल के प्रागण मे बैठा हुआ हे तथा नगी तलवारे लिये हुए गार्दी लोग उसके चारो ओर खडे है। इस बीच उन लोगो ने राजभवन के उपकरणो, रसोई तथा मन्दिर के बतनो, सोने-चॉदी के थालो तथा अन्य अनेक वस्तुओ को लूट लिया था। आगन्तुको ने इन अत्याचारो का दोष रघुनाथराव पर लगाया तथा नगर के कुछ साहूकारो की सहायता से हल्ला करने वाले गार्दियो को शान्त कर दिया। अधरात्रि के पहले गार्दियो ने शवो को हटाने तथा दाह-सस्कार करने तक की अनुमति नही दी। पेशवा के शरीर के कटे हुए टुकडे एकत्र किये गये तथा एक बोरे मे भरकर दाह-सस्कार के लिए भेज दिये गये। गार्दियो ने इसके पहले ही रघुनाथराव को राज्य का स्वामी घोषित कर दिया था तथा उसके चुने हुए अधिकारी उसके पास पहुँच चुके थे। सखाराम बापू को इतना धक्का लगा कि उसने नवीन प्रशासन मे कोई भी भाग न लेने की इच्छा व्यक्त की। वह इतना पराभूत तथा विक्षिप्त हो गया कि वह नगर से भाग गया। उसको यह विचार व्यथित कर रहा था कि वह माधवराव तथा रमाबाई से की गयी नारायणराव की रक्षा करने की अपनी प्रतिज्ञा का पालन नही कर सका। उसको सती के शाप का भय था।

नाना फडनिस ने भी अपने पद का त्याग कर दिया तथा रघुनाथराव की नवीन व्यवस्था से पृथक रहा। रघुनाथराव को उससे कोई प्रेम न था। ऐसा

मालूम होता हे कि रघुनाथराव के विरोध करने पर भी सर्वोच्च न्यायाधीश के रूप मे रामशास्त्री ने तुरन्त इस काण्ड की जॉच प्रारम्भ कर दी । जाच काय लगभग छह सप्ताह तक चला और न्यायालय की पूछताछ की सामान्य पद्धति द्वारा निणय किये गये । रघुनाथराव ने पुराने मन्त्रियो की अनुपस्थिति मे चिन्दो विट्ठल तथा मोरोबा फडनिस की सहायता से राज्य का प्रशासन आरम्भ कर दिया । चूकि पेशवा के परिवार मे उत्तराधिकार पद पर अपना स्वत्व रखने वाला कोई अन्य पुरुष नही था, अत अधिकाश लोग केवल आवश्यकतावश नवीन शासन से सहमत हो गये यद्यपि हृदय से उनकी इच्छा हत्यारे के शासन को स्वीकार करने की नही थी ।

पूना की इस भयानक घटना के कारण समस्त भारत मे मराठा राज्य के शत्रुओ को यह प्रेरणा हुई कि वे इस सत्ता के विरुद्ध विद्रोह करे तथा उनके घर के विप्लव से लाभ उठाये । समस्त देश मे सनसनी की लहर फैल गयी जिसके कारण प्रत्येक दिशा मे मराठा शासन के लिए सकट उपस्थित हो गया । सौभाग्यवश किसी ने स्वय पूना पर सीधा आक्रमण नही किया । नासिक मे पेशवा की माता अपने पुत्र की मृत्यु पर अत्यन्त शोकातुर हो गयी । उसके तीन पुत्र थे । ज्येष्ठ पुत्र विश्वासराव का देहान्त १६ वष की आयु मे पानीपत के रणक्षेत्र मे हुआ था । माधवराव का देहान्त ओजस्वी जीवन के पश्चात् २८ वप की आयु मे घातक रोग के कारण हो चुका था । अब उसके एकमात्र जीवित पुत्र की हत्या हो गयी थी । वह इतनी दुखित हुई कि उन्माद की अवस्था मे उसने जीवन की समस्त सुविधाओ का त्याग कर दिया तथा नारियल के आधे खोल को भिक्षा-पात्र के रूप म ग्रहण कर घर-घर भिक्षा मागने लगी । एक वष से अधिक वह ऐसा ही आचरण करती रही । जब मन्त्रीगण हत्यारे को पूना से निकालने मे सफल हो गये ओर नारायणराव की पत्नी गगाबाई ने सौभाग्यवश उत्तराधिकारी को जन्म दे दिया, तब मन्त्रियो के बहुत आग्रह पर उसको अपनी साधारण मन शान्ति प्राप्त हो सकी ।

स्वय रघुनाथराव ने कभी किसी प्रकार के साहस या निणयकारी शक्ति का परिचय नही दिया । बहुत दिनो तक उसको यह हिचकिचाहट रही कि वह किस प्रकार से अपने दल का उत्तम सगठन करे तथा उस क्रोधपूण विरोध ओर विक्षुब्ध वातावरण मे अपनी स्थिति को सुरक्षित बनाये । फोब्स लिखता है कि "वह कातर, अकमण्य तथा सन्देहग्रस्त हो गया था । उसकी बुद्धि को अन्ध-विश्वास ने घेर लिया था । उसका मन निबल हो गया था । इसका कारण या तो वह घोर यातना थी जिसका सहन उसने कुछ ही पहले तक किया था, या

आहत अन्त करण की व्याकुलता थी।" मोस्टिन उस समय पूना मे था और प्राय रघुनाथराव से मिलता रहता था तथा उसको आवश्यकता पडने पर ब्रिटिश सहायता का आश्वासन दिया करता था।

नागपुर के दोनो दूत (एजेन्ट) रघुनाथराव के प्रति अपनी भक्ति मे निश्चल रहे। हत्या के दिन उसने लक्ष्मण काशी को एक प्रेमपूण पत्र देकर मुधोजी भोसले के पास भेज दिया था तथा उसको निमन्त्रण दिया था कि वह अपना समस्त दल लेकर अविलम्ब पूना पहुँच जाये। नागपुर का दूसरा दूत वेकटराव प्रशासन पर रघुनाथराव के नियन्त्रण को पुष्ट करने मे सहायता करने के विचार से पूना मे ठहरा रहा। दशहरा का त्यौहार २५ सितम्बर को साधारण रूप से मनाया गया। उस दिन रघुनाथराव ने डेरे मे ही वास किया। उसका अभिप्राय निजामअली तथा हैदरअली की ओर से राज्य के लिए धमकी के रूप मे उपस्थित किये गये सकट का यथाशक्ति प्रतिकार करना था। इस बीच मे वह मुख्यतया गार्दी सरदारो की चिन्ताजनक मागो को निपटाने मे व्यस्त था। व्यावहारिक रूप मे समस्त सत्ता इन्ही के हाथो मे थी। इस समय उनका एकमात्र उद्देश्य यह था कि अपनी सेवाओ के निमिन्त जितना भी धन तथा पुरस्कार ले सके, ले ले। उस समय गार्दियो की मागो को निपटाने मे भवनराव प्रतिनिधि ने रघुनाथराव के वकील का काय किया, तथा कुछ कठोर वाग्युद्ध के बाद वह राजभवन के इन अशुभ मित्रो से छुटकारा पाने मे सफल हो गया। उसने इनको ५ लाख का समस्त धन चुका दिया। इसके अतिरिक्त उनको ३ लाख रुपये उन तीन गढो के स्थान पर दिये जिनको वे अपने सुरक्षित आश्रय-स्थान के लिए माँगते थे। इन सन्धि-प्रस्तावो के बीच गार्दी लोग यहाँ तक बढ गये थे कि उन्होने रघुनाथराव को धमकी दी कि यदि उनकी मागे स्वीकार न की गयी तो वे अलीबहादुर (शमशेर बहादुर के पुत्र) को पेशवा बना देगे। उन्होने बलपूवक उससे एक लिखित प्रतिज्ञा-पत्र भी प्राप्त कर लिया कि वह बाद मे भी समस्त प्रकार की परिस्थितियो से उनकी रक्षा करेगा। अब रघुनाथराव के पास गार्दी सरदार, सखाराम हरि, सदाशिव रामचन्द्र, वेकटराव काशी, अबाजी महादेव, तुल्या पवार, मोरोबा फडनिस, मालोजी घोरपडे, गोविन्दराव गायकवाड, मानाजी फडके तथा मुधोजी भोसले जैसे द्वितीय श्रेणी के व्यक्तियो के अतिरिक्त कोई शक्तिशाली सहायक या समथक नही था। आगामी घटनाओ के वृत्तान्त मे उन सबके दशन होगे। रघुनाथराव के एक शक्तिशाली सहायक गगाधर यशवन्त की २९ फरवरी, १७७४ ई० को मृत्यु हो जाने से उसका पक्ष बहुत निबल पड गया।

पूना तथा बाहर के स्थानो मे जनता मे यह भावना प्रबल थी कि यदि रघुनाथराव हत्यारा सिद्ध हो जाये तो उसे पेशवा के आसन पर न रहने दिया जाये, क्योकि "पवित्र ब्राह्मण जाति मे एक भी उदाहरण ऐसा न था कि उस जाति के एक व्यक्ति ने उसी जाति के दूसरे व्यक्ति की हत्या की हो। हिन्दुओ के इतिहास मे एक भी ब्राह्मण की हत्या का उल्लेख नही है। उसी पवित्र जाति के एक निकट सम्बन्धी द्वारा प्रेरित तलवार के कारण इस काय की जघ यता और भी अधिक भयानक रूप मे बढ जाती है।"[८]

हत्यारे को शासक रूप मे मान्यता न देने के इस प्रस्ताव की पुष्टि गुप्त रूप से दसवे के दिन (८ सितम्बर) हो गयी जब सम्बन्धी तथा अधिकारीगण तिलाजलि दान द्वारा मृतक आत्मा के प्रति अपनी अन्तिम श्रद्धा अर्पित करने श्मशान भूमि मे एकत्र हुए। इस अवसर पर विरोध के प्रथम चिह्न दृष्टिगत हो गये तथा सखाराम बापू, नाना हरिपन्त, पटवधन परिवार, रस्ते परिवार तथा अन्य व्यक्तियो ने यह निश्चय किया किया कि यदि रामशास्त्री द्वारा की जा रही जॉच से यह सिद्ध हो गया कि उस हत्या का अपराधी रघुनाथराव है तो वे उसका साथ नही देगे।

इसका कोई कारण नही बताया जा सकता कि रघुनाथराव को छत्रपति से पेशवा की पोशाक इतने विलम्ब से क्यो प्राप्त हुई ? उसने अमृतराव को सतारा भेजा। १० अक्टूबर को उसे पोशाक प्राप्त हो गयी, परन्तु उसने पूना के पूण दरबार मे उसे विधिपूवक धारण न किया। उसने अक्टूबर के अन्तिम दिवस को भीमा नदी के समीप आलेगॉव नामक स्थान पर उसे धारण किया। इस समय उसने अपनी मुद्रा भी तैयार की जिस पर से जानबूझकर रामराजा का नाम हटा दिया क्योकि वह अशुभ था।

अपनी मृत्यु के पहले नारायणराव ने उत्तर भारत मे नियुक्त अपनी सेनाओ की वापसी के लिए आज्ञा भेज दी थी। तदनुसार विसाजी कृष्ण अपने हिसाबो को साफ करके तथा अपने अभियान के शेप कार्यो को समाप्त करके वापस आ गया। वह पेशवा की हत्या के बाद शीघ्र पूना पहुँचा। वह अपने साथ २२ लाख रुपये नकद लाया था। इसके अतिरिक्त आभूपण तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ भी थी। इन पर रघुनाथराव ने लोभवश अधिकार कर लिया जिससे उसका समुपस्थित आर्थिक कष्ट निस्सदेह दूर हो गया।

फोब्स कृत 'ओरिएण्टल मेमॉयस', पृ० ३०३। पेशवा का दम्भ था—"हमारी प्रजा विश्वासघाती कार्य नही करती है।" हिगने दफ्तर, जिल्द १, पृ० ११७

८ **रामशास्त्री द्वारा अपराधी का अन्वेषण तथा दण्ड**—इस बीच मे रामशास्त्री ने ३० अगस्त को घटित हत्याओ की जॉच समाप्त कर ली थी। पूव-वृत्तान्त से यह स्पष्ट हो गया होगा कि पेशवा की हत्या पूणतया विचारपूवक की गयी थी, जिसके लिए रघुनाथराव के कई अनुचर बहुत दिनो से गुप्त तैयारिया कर रहे थे। वैसे उनका मूल अभिप्राय पेशवा को केवल बन्दी बनाना था। रामशास्त्री ने रघुनाथराव को मुख्य दोषी तथा उसके अतिरिक्त लगभग ५० व्यक्तियो—४९ पुरुष तथा एक दासी—को अपराध के लिए न्यूनाधिक रूप से उत्तरदायी पाया। इन ४९ मे से १३ गार्दी थे—८ हिन्दू तथा ५ मुस्लिम। इन १३ के अतिरिक्त २६ ब्राह्मण, ३ प्रभु तथा ७ मराठे अपराधी सिद्ध हुए। ये २६ ब्राह्मण अधिकाशत कर्णिक थे जिन्होने षड्यन्त्र के विविध अगो की रचना मे तथा इसके अन्तिम सम्पादन मे भाग लिया था। यह घोषणा की गयी कि तीन प्रभुओ—वेकटराव काशी, उसके भाई लक्ष्मण तथा सखाराम हरिगुप्ते—ने षडयन्त्र के पोषण मे मुख्य भाग लिया है।

ऐसा ज्ञात होता है कि नाना फडनिस का विश्वास था कि सखाराम बापू तथा मोरोबा फडनिस न्यूनाधिक रूप से मुख्य षड्यन्त्र की रचना से सम्बन्ध रखते थे। जब सत्ता उसके हाथ मे आयी तो इनको कारावास का दण्ड दिया गया, यद्यपि उस समय उन पर अन्य प्रकार के अपराधो के भी आरोप लगाये गये। नाना फडनिस आनन्दीबाई को भी अपने पति के साथ समान रूप से उत्तरदायी समझता रहा, परन्तु इस चतुर तथा सावधान महिला का नाम किसी प्रामाणिक पत्र मे नही था जो उसके अपराध की घोपणा करता हो। सम्भवत पेशवा परिवार की महिला होने के कारण (उस समय उसकी अवस्था लगभग २५ वष थी) उसका नाम जानबूझकर छोड दिया गया था, परन्तु नाना फडनिस ने सदैव उसके साथ इस प्रकार का व्यवहार किया मानो वह घृणित अपराधी हो तथा उसको जीवन भर कारागार मे रखा।

सत्ता इस समय रघुनाथराव के हाथ मे थी तथा दण्ड को कार्यान्वित करना भी उसी का काय था इसलिए दण्ड को कार्यान्वित करने का काम बहुत दिनो तक स्थगित रखा गया, तथा बाद को ब्रिटिश-मराठा-युद्ध के कठिन समय मे उनका अलग-अलग करके पालन किया गया। जब रघुनाथराव ने पेशवा का पद ग्रहण कर लिया, तो रामशास्त्री (सम्भवत आले गॉव मे) उसके पास गया तथा उससे उन आज्ञाओ का पालन करने के लिए कहा जो उसने दी थी। रघुनाथराव ने तक किया कि हत्या व्यक्तिगत रूप से हुई थी तथा रामशास्त्री का उससे कोई सम्बन्ध न था। परन्तु वीर न्यायाधीश ने स्वय उसके साथ इस

विपय पर तक किया तथा उसके सम्मुख कह दिया कि वह स्वय मुख्य अपराधी पाया गया है, इसलिए मृत्युदण्ड का पात्र हे। इस प्रकार रघुनाथराव तथा जनता दोनो को मालूम हो गया कि सुशासित राज्य मे न्याय-विभाग को क्या अधिकार प्राप्त हे तथा उसकी सुरक्षा के निमित्त वह विभाग क्या सहायता दे सकता हे। फिर भी रघुनाथराव ने इस महान न्यायाधीश को उसके पद से अलग कर दिया। रामशास्त्री शान्तिपूवक अपने जन्म-स्थान को चला गया। जब एक वप से भी अधिक समय के बाद बार भाइयो के शासन ने उसको उसके स्थान पर वापस बुलाया तो उसने तब तक आसन ग्रहण करना स्वीकार नही किया जब तक कि उसको गम्भीर शपथ सहित उसके कतव्यपालन मे कभी कोई हस्तक्षेप न करने तथा न्यायाधीश के रूप मे उसके द्वारा दी गयी प्रत्येक आज्ञा को सचाई से कार्यान्वित करने के विपय मे लिखित प्रतिज्ञा न दे दी जाये।[७]

बाद मे बार भाइयो ने इगलैण्ड के राजा को लिखकर स्पष्ट स्वीकार किया कि रघुनाथराव ने अपने भतीजे की हत्या की हे तथा ब्रिटिश सत्ता से प्राथना की कि वह अपराधी का समथन न करे। इस पत्र को ५ नवम्बर, १७७७ ई० को गवनर जनरल वारेन हेस्टिग्ज ने राजा के पास भेज दिया। इस प्रकार यह प्रकट हो जायेगा कि दोपियो को अविलम्ब दण्ड देने का कोई साधन भी प्राप्त नही था। जैसे ही रामशास्त्री ने रघुनाथराव को मुख्य अपराधी घोपित किया, प्रशासन तथा जनता मे से अनेक लोगो ने रघुनाथराव को राज्य का वैध मुख्य पुरुप मानने से इनकार कर दिया। शीघ्र ही बार भाइयो (बारह साथियो) की सभा का निर्माण हुआ, जिसने रघुनाथराव को उसके स्थान से निकाल दिया। इसके कारण ब्रिटेन से युद्ध हुआ जो प्रथम मराठा युद्ध कहलाता हे। यह युद्ध १७७४ से १७८२ ई० तक ८ वप चलता रहा।

मुख्य हत्यारे रघुनाथराव को न्यायसगत दण्ड देने तथा ब्रिटिश आक्रमण से राज्य की रक्षा करने के लिए इस दीघकालीन तथा अति-व्ययसाध्य युद्ध को अगीकार करना पडा। इसका परिणाम यह हुआ कि अन्त मे रघुनाथराव तथा उसका परिवार गिरफ्तार कर लिया गया और उनको दण्ड दिया गया। अपने आत्मसमर्पण के बाद रघुनाथराव बहुत दिनो तक जीवित न रहा। उसने अपने अपराध को स्वीकार कर लिया और अपनी मृत्यु से पहले नासिक के स्थान पर अपने पाप का प्रायश्चित किया। उस अवसर पर उसने यह मानने से इनकार

---

[७] देखो 'सिलेक्शन्स फ्राम द पेशवाज दफ्तर', ४६, ५४, ५७। अन्तिम पत्र पर २६ सितम्बर, १७७४ ई० का दिनाक है।

कर दिया था कि उसके भतीजे की हत्या मे उसका सीधा हाथ था, परन्तु अपने उत्तरदायित्व को इस अश तक स्वीकार किया था कि उसने नारायणराव को पकडने के प्रयास मे उसकी हत्या हो जाने पर गार्दी सरदारो को लिखित रूप से दोषमुक्त कर दिया था। इस कथा का समथन मुहम्मद यूसुफ अपनी साक्षी मे करता है। उसने कहा था कि "पेशवा की हत्या का कोई षड्यन्त्र या इरादा न था। उनका उद्देश्य केवल इतना था कि उसको बन्धन मे डाल दे।" आनन्दीबाई को अवश्य पता रहा होगा कि क्या हो रहा है परन्तु उसने हत्या का रोकने की चेष्टा नही की।

मुख्य अपराधियो मे रघुनाथराव का एक व्यक्तिगत सेवक तुल्या पवार तथा ४ गार्दी और ३ प्रभु सरदार भी थे। रघुनाथराव अपने पूण सामथ्य से उनकी बहुत दिनो तक रक्षा करता रहा। युद्ध मे उन सबने भी उसका साथ दिया तथा निष्ठापूर्वक सेवा की। परन्तु उसको शीघ्र पता चल गया कि वह उनकी रक्षा नही कर सकता। तब उसने समीपवर्ती सत्ताओ से अनुरोध किया कि वे उनको अपने यहाँ शरण दे। उसने मुहम्मद यूसुफ को मुधोजी भोसले के पास भेज दिया तथा तुल्या पवार और खडगसिह को हैदरअली के पास। इसी प्रकार सुमेरसिह को इन्दौर भेज दिया गया जहा जुलाई, १७७४ ई० मे उसकी मृत्यु हो गयी। १८ अप्रैल को मृत पेशवा की पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसको पेशवा पद के वस्त्र प्रदान किये गये। इस घटना के कारण रघुनाथराव अपनी स्थिति से अविलम्ब पृथक हो गया तथा आजीवन घूमते रहने पर विवश हो गया। मराठा राज्य पर बार भाइयो का शासन पुष्ट हो गया। उस समय तक अधिकाश अपराधी पकड लिये गये तथा उनको दण्ड दिया गया। बार भाइयो ने मुधोजी भोसले को मुहम्मद यूसुफ की रक्षा का भार छोडने पर विवश कर दिया। वह कुछ समय नक मध्य भारत के जगलो मे छुपा रहा परन्तु उसका पता लगाकर पकड लिया गया तथा १७७५ ई० मे उसको प्राण-दण्ड दिया गया। खडगसिह तथा तुलाजी पवार को १७८० ई० मे हैदरअली ने पूना के शासन को लौटा दिया। उनका वध शारीरिक यातनाएँ देकर किया गया। वेकटराव काशी तथा सखाराम हरि को आजीवन कारावास भोगना पडा। अन्य अपराधियो मे से अधिकाश अपनी कारावास अवधियाँ समाप्त करने पर उन्मुक्त कर दिये गये। इस प्रकार नाना फडनिस उचित रूप से यह गव कर सकता था कि उसने ८ वर्षों तक सतत एव घोर परिश्रम के बाद नारायणराव की मृत्यु का पूण प्रतिशोध ले लिया था।

तिथिक्रम

अध्याय २

१७ सितम्बर, १७७३	अग्रेजो का तुलाजी से तजौर छीनना ।
अक्टूबर, १७७३	रघुनाथराव का पूना से कर्णाटक जाना ।
१८ नवम्बर, १७७३	रघुनाथराव तथा निजामअली का बीदर के समीप मिलन ।
२ दिसम्बर, १७७३	थाना के विरुद्ध ब्रिटिश अभियान का आरम्भ ।
८ दिसम्बर, १७७३	मोस्टिन का पूना से बम्बई पहुँचना ।
१३ दिसम्बर, १७७३	रघुनाथराव का बीदर से अर्काट जाना ।
२८ दिसम्बर, १७७३	थाना पर ब्रिटिश अधिकार ।
६ जनवरी, १७७४	रघुनाथराव का तुगभद्रा नदी पर पहुँचना ।
१८ जनवरी, १७७४	गगाबाई का पुरन्दर पहुँचना और रघुनाथराव के विरुद्ध युद्ध आरम्भ ।
१७ फरवरी, १७७४	रघुनाथराव के राज्यापहारी होने की घोषणा ।
३ माच, १७७४	पेठे, सबाजी तथा निजामअली का गुलबर्गा मे मिलन, रघुनाथराव के विरुद्ध योजनाएँ तैयार ।
मार्च, १७७४	रघुनाथराव का तुगभद्रा से मिरज जाना ।
२६ माच, १७७४	कासेगाम की लडाई—पेठे घायल ।
२ अप्रैल, १७७४	पेठे की मृत्यु, रघुनाथराव का उत्तर को भागना ।
१८ अप्रैल, १७७४	गगाबाई का पुत्र को जन्म देना ।
अप्रैल का अन्त, १७७४	रघुनाथराव का इन्दौर पहुँचना ।
२८ मई, १७७४	माधवराव द्वितीय को पेशवा की पोशाक प्राप्त ।
जुलाई, १७७४	सिन्धिया तथा होलकर के साथ रघुनाथराव का पूना जाने के लिए नमदा पार करना ।
अक्टूबर, १७७४	रघुनाथराव का बुरहानपुर पहुँचना ।
२६ अक्टूबर, १७७४	वारेन हेस्टिग्ज गवनर-जनरल नियुक्त ।
२४ नवम्बर, १७७४	बापू तथा नाना का पुरन्दर से बुरहानपुर जाना ।
१० दिसम्बर, १७७४	रघुनाथराव का धार को जाना ।
३ जनवरी, १७७५	रघुनाथराव का गोधरा होकर बडौदा पहुँचना ।
२६ जनवरी, १७७५	पचगाम का युद्ध, सबाजी भोसले की मृत्यु ।

१७ फरवरी, १७७५	अडास का युद्ध, रघुनाथराव परास्त, उसका कैम्बे को भागना ।
६ माच, १७७५	रघुनाथराव का सूरत पहुँचना ।
८ मार्च, १७७५	हेस्टिग्ज द्वारा सूरत का सन्धि पत्र अनधिकृत घोषित ।
१५ माच, १७७५	रघुनाथराव का सूरत से ब्रिटिश सेना सहित कैम्बे को जाना ।
२८ माच, १७७५	माही नदी पर अनिर्णायक युद्ध, दोनो सेनाएँ वर्षा ऋतु के कारण वापस ।
१० जुलाई, १७७५	हेस्टिग्ज का अपटन को मन्त्रिमण्डल से शान्ति प्रस्ताव करने पूना भेजना ।
अक्टूबर, १७७५	बम्बई की सरकार का टेलर को कलकत्ता भेजना ।
अक्टूबर, १७७५	अपटन का कलकत्ता से चलना ।
२८ दिसम्बर, १७७५	अपटन का पूना पहुँचना, पुरन्दर मे वार्तालाप आरभ ।
फरवरी, १७७६	रत्नागिरि मे धोखेबाज सदाशिवराव कारागार से मुक्त ।
१ माच, १७७६	पुरन्दर की सन्धि सम्पन्न ।
१८ जून, १७७६	हरिपन्त सेना सहित पुरन्दर को वापस ।
१९ जून, १७७६	पेशवा द्वारा भरे दरबार मे नेताओ का स्वागत ।
नवम्बर, १७७६	आग्रे द्वारा धोखेबाज (सदाशिवराव) गिरफ्तार ।
१८ दिसम्बर, १७७६	धोखेबाज (सदाशिवराव) को मृत्यु-दण्ड ।

अध्याय २

अकारण ब्रिटिश आक्रमण

[१७७४–१७७६ ई०]

१	**बार भाइयो की परिषद् ।**	२	**हत्यारा भागा ।**
३	**मोस्टन की शरारत (अपकार), थाना हस्तगत ।**	४	**कासेगाम की लडाई, पेठे का वध ।**
५	**माधवराव नारायण का जन्म ।**	६	**अडास का युद्ध, सूरत की सन्धि ।**
७	**पूना मे अपटन का दौत्य ।**	८	**पुरन्दर की सन्धि ।**

९ धोखेबाज का अन्त ।

१ **बार भाइयो की परिषद्**—प्रशासन का मुख्य पुरुष नियुक्त होने के लिए पेशवा के वश मे कोई पुरुष सन्तान उपलब्ध नही थी, इसलिए रघुनाथराव को असदिग्ध रूप से अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करने की प्रत्येक सुविधा प्राप्त थी। यदि उसमे लोगो को सन्तुष्ट करने की योग्यता तथा कूटनीतिक एव राजकीय चातुय का अभाव न होता तो वह अपनी प्रभुता भी स्थापित कर लेता चाहे उस पर अपने भतीजे के रक्तपात का ही कलक लगा हुआ था। वह अयोग्य था तथा उसमे अन्ध प्रतिशोध की प्यास बुरी तरह व्याप्त थी। हत्या के बाद दो मास तक साधारण प्रशासन के प्रमुख के रूप मे वह प्राय स्थिर ही रहा जबकि पडोसियो के साथ सन्निकट सघष का कोई कारण भी विद्यमान नही था। ये पडोसी निजामअली तथा हैदरअली थे। नागपुर मे सबाजी तथा माधोजी नामक दो भाइयो के बीच चलने वाला युद्ध केवल विघ्न रूप मे उपस्थित था। सबाजी का साथ निजामअली की सेना दे रही थी। उसका कनिष्ठ भ्राता रुक्नुद्दौला उस सेना का नायक तथा इब्राहीमखाँ योग्य सेनापति था। मृत पेशवा द्वारा प्रदत्त सेनासाहेब सूबा की उपाधि के बल पर सबाजी ने नागपुर राज्य की समस्त सत्ता पर अधिकार कर लिया था। सबाजी के विरुद्ध न्याय प्राप्त करने के लिए मुधोजी ने अपने वकील वेकटराव काशी के द्वारा, जो उस समय पूना मे था, रघुनाथराव से प्राथना की थी। इस प्रकार सबाजी के आक्रमण का दमन करने के लिए निजामअली के विरुद्ध प्रयाण करना रघुनाथराव के लिए आवश्यक हो गया।

इस बीच मे हेदरअली का विश्वस्त वकील अप्पाजी राम पूना मे अकमण्य नही रहा था। उसने मराठा राजधानी की घटनाओ का वृत्तान्त अपने स्वामी को भेजकर प्रोत्साहित किया कि मराठा शासन की वतमान अव्यवस्था से लाभ उठाये तथा कर्नाटक मे अपनी पूव स्थिति को प्राप्त करने का अवसर हाथ से न निकलने दे। हैदरअली ने तुरन्त इस सकेत के अनुसार काय किया। उसने मराठा दुगस्थ उन सेनाओ को सरलता से बाहर निकाल दिया जो पटवधन तथा रस्ते परिवारो की जागीरो की रक्षा कर रही थी। विसाजी कृष्ण उत्तर भारत से जो धन लाया था उससे शक्ति सगठित करके रघुनाथराव ने एक अभियान का सगठन किया तथा अविलम्ब पूर्वीय कर्नाटक की ओर प्रयाण कर दिया। ऐसा प्रतीत हुआ कि निजामअली तथा हैदरअली दोनो के विरुद्ध वह सावधानीपूवक अपना माग निश्चित कर रहा हे, परन्तु गुप्त रूप से वह यह प्रयत्न कर रहा था कि यदि अपने शासन मे उसकी स्थिति सुरक्षित न रहे तो उसे उन दोनो की सहायता प्राप्त हो सके। पर उसके भाग्य मे अपने पूवजो की राजधानी के फिर से दशन करना नही लिखा था। वह १७७३ ई० मे दशहरे के लगभग पूना से चल पडा। वह अपने प्रयाण मे पूना से थोडी ही दूर था कि रामशास्त्री ने उसके सम्मुख नारायणराव की हत्या के सम्बन्ध मे अपनी जाँच का परिणाम घोषित किया। इससे रघुनाथ-राव को पहली बार आगामी सकट का आभास हुआ। इसमे कहा गया था कि हत्या मे रघुनाथराव का मुख्य भाग है। यह घोषणा अनेक असन्तुष्ट व्यक्तियो के लिए अप्रत्यक्ष आह्वान सिद्ध हुई कि वे उसकी सत्ता को अस्वीकार कर दे तथा विधवा गगाबाई का साथ दे जिसके उदर मे कुछ मास का गभ होने का उन्हे ज्ञान हो गया था। चूकि उसे (गगाबाई को) अपने जीवन के विरुद्ध कुछ षडयन्त्रो का पता चल गया था इसलिए उसने बापू, नाना तथा अन्य व्यक्तियो से अपनी रक्षा के लिए करुण याचना की। इस कारण रघुनाथराव के शासन के विरुद्ध सगठन का आन्दोलन आरम्भ हो गया। सखाराम बापू पहले से ही रघुनाथराव के प्रति सम्मान तथा प्रेम खो चुका था। सखाराम बापू तथा मराठा परिवार के अन्य शुभचिन्तको द्वारा सकटो से गगाबाई की रक्षा करने के लिए क्रमश सतारा के छत्रपति तथा मिरज के पटवधनो से उस महिला को शरण देने की प्राथना की गयी। इस सकटपूण काय को कोई भी स्वीकार नही करना चाहता था क्योकि इसके अन्तगत रघुनाथराव की सत्ता के प्रति विरोध छुपा हुआ था।

माधोजी भोसले अपनी सेना सहित आलेगाव मे रघुनाथराव के साथ हो

गया । वहाँ से ये दोनो साथ-साथ नलदुर्ग की ओर बढे । यहा पर निजामअली के वकील ५ नवम्बर को रघुनाथराव से मिले । उनके द्वारा रघुनाथराव ने निजामअली से उस सेना को वापस बुलाने का अनुनय किया जो सबाजी भोसले की ओर से युद्ध कर रही थी तथा इस समय सबाजी के नेतृत्व मे पूना की ओर प्रयाण-रत थी । निजामअली ने रघुनाथराव की प्राथना अस्वीकार कर दी । इस समय पेशवा की सेना का नायक त्रिम्बकराव पेठे था । सबाजी पूना के लिए सकट उपस्थित कर रहा था, अत रघुनाथराव ने सबाजी के विरुद्ध पेठे को भेज दिया और स्वय निजामअली से मिलने के विचार से बीदर की ओर बढा । वे १८ नवम्बर को मिले तथा उन्होने मित्रता की सन्धि के विषय मे वार्तालाप किया । इस प्रकार रघुनाथराव ने औपचारिक भेटो तथा वार्तालापो मे एक मास का मूल्यवान समय नष्ट कर दिया । २३ दिसम्बर को वह बीदर से चलकर अर्काट की ओर बढा । उसका उद्देश्य तजौर के मराठा राजा को पुन गद्दी पर बैठाना था जिससे नवाबअली ने पैतृक सम्पत्ति छीन ली थी ।[1] रघुनाथराव दूर तक न बढ सका और वापस लौटने के लिए विवश हो गया ।

लगभग नवम्बर के आरम्भ मे रघुनाथराव भीमा नदी से बीदर की ओर बढा । उसके शासन के प्रति अब तक जो काल्पनिक सामान्य असन्तोष था उसने अब स्पष्ट विरोध का रूप धारण कर लिया । निजामअली ने रघुनाथराव को दिया अपना वचन भग कर दिया तथा सबाजी भोसले से मैत्री कर ली । इसका समाचार रघुनाथराव को उस समय प्राप्त हुआ जब वह जनवरी, १७७४ ई० मे तुगभद्रा के समीप था । फिर भी वह रायदुग की ओर बढा और गुट्टी से मुराराव घोरपडे को अपने पास बुलाया । उठने वाले तूफान का प्रथम गजन रघुनाथराव को यही पर सुनायी दिया । उसको उन गुप्त षडयन्त्रो की सूचनाएँ प्राप्त होने लगी जो उसके शिविर मे कारभारी लोग कर रहे थे । मुख्य षडयन्त्रकारी उस समय का एकमात्र कायकारी अधिकारी सखाराम बापू तथा निजाम के दरबार मे स्थायी मराठा राजदूत कृष्णराव काले थे । इस प्रकार षड्यन्त्र का आरम्भकर्ता सखाराम बापू हुआ जिसने भारी व्यक्तिगत सकट उठाकर भी वीरतापूवक रघुनाथराव की सत्ता के उन्मूलन का नेतृत्व ग्रहण कर

---

[1] पाठक को परामश है कि वह तजौर के अपहरण तथा उसकी पुन प्राप्ति के जटिल काण्ड का अध्ययन करे । १७ सितम्बर, १७७३ ई० को मुहम्मद अली ने इस पर अधिकार कर लिया था तथा ११ अप्रैल, १७७६ ई० को यह पुन राजा तुलाजी के अधिकार मे आ गया । इसके लिए इगलैण्ड के अधिकारियो से विशेष आज्ञा प्राप्त हुई थी ।

लिया। बापू तथा कृष्णराव ने मिलकर गुप्त रूप से लगभग दो महीनो तक निजामअली के साथ मत्री सम्बन्धी वार्तालाप किया। बाह्य रूप से वे उसको रघुनाथराव के पक्ष मे लाने का प्रयत्न कर रहे थे, परन्तु गुप्त रूप से उसे उच्छिन्न करने को प्रोत्साहित कर रहे थे। सबाजी भोसले के शिविर मे भी यही चाल चली जा रही थी। उसको मिलाने के लिए त्रिम्बकराव पेठे पहले से ही गुप्त रूप मे प्रयत्नशील था। बापू का पूना के प्रशासन से घनिष्ठ सम्पर्क था, जहा पर सम्भवत नाना फडनिस कायभार पर नियुक्त था। अत दिवगत पेशवा की मृत्यु के बाद दसवे दिन जो धीमा विचार उठा था, उसने शनै-शनै विशेप आकार धारण कर लिया तथा वष के अन्त तक परिपक्व हो गया। सखाराम बापू ने परिस्थिति की सम्भावनाओ पर सावधानी से विचार किया तथा सकट से गगाबाई की रक्षा के लिए चतुरतापूवक एक योजना बनायी जिसके अनुसार यदि बालक का जन्म होगा तो समस्या सरल हो जायेगी और यदि बालिका का जन्म हुआ तो पेशवा पद के लिए अलीबहादुर के नाम पर विचार किया जायेगा, क्योकि वह वीर बाजीराव का सीधा वशज था। अधिकाश मराठा सरदारो पर बापू का प्रभाव था जो ढिलमिल थे। उन्हे उसने प्रोत्साहन दिया। उसने प्रत्येक साधन का कुशलतापूवक उपयोग किया तथा किसी भी प्रकार भीरु स्वामी के सन्देह को जाग्रत न होने दिया। सितम्बर तथा अक्टूबर के महीनो मे रघुनाथराव के शिविर मे रहकर बापू ने पूरी तैयारी कर ली। इसके बाद बीमारी का बहाना करके नवम्बर मे किसी समय वह पूना वापस आ गया। यहा पर उसने धीरे-धीरे पटवधन परिवार तथा अन्य मुख्य सरदारो को अपनी ओर मिला लिया तथा एक सगठन स्थापित किया जिसे बाद मे बार भाइयो की परिषद् कहा गया। नाना फडनिस, हरिपन्त फडके, सखाराम बापू, त्रिम्बकराव पेठे, मोरोबा फडनिस, बाबूजी फडनिस, बाबूजी नायक, मालोजी घोरपडे, भवनराव प्रतिनिधि, रस्ते एव पटवधन परिवार—इस परिषद् के मूल सदस्य थे। बाद को महादजी शिन्दे तथा तुकोजी होलकर भी इस परिषद् मे सम्मिलित हो गये। उन सबसे राज-विप्लव को कार्यान्वित करने की प्रतिज्ञा करायी गयी। अधिकाश व्यक्ति तो नाममात्र के सदस्य थे। बापू तथा दोनो फडनिस बन्धु क्रियाशील सदस्य तथा कायवाहक नेता थे। कुछ वप बाद जब मोरोबा फडनिस तथा सखाराम बापू कारागार मे डाल दिये गये, तब शिशु रूप मे पल रहे पेशवा के नाम से मराठा शासन के सचालन का काय केवल नाना फडनिस के हाथ मे आ गया।

२ **हत्यारा भागा**—पूना मे जो उपाय किये गये, उनकी समुचित सूचना

कृष्णराव काले को भेज दी गयी जो उस समय रघुनाथराव के शिविर मे था। वह तुरन्त कायरत हो गया, तथा शासनाऽयक्ष पेशवा रघुनाथराव के प्रति निष्ठा रखने वालो को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। ये परिवतन रघुनाथराव को तभी ज्ञात हो गये थे जब वह फरवरी के लगभग बेलारी के समीप था। उसने तुरन्त भवनराव प्रतिनिधि तथा रामचन्द्र गणेश को कारागार मे डाल दिया। कुछ ही समय बाद उसने सुना कि त्रिम्बकराव तथा हरिपन्त ५० हजार सेना सहित विभिन्न दिशाओ से उसके विरुद्ध शीघ्रगति से प्रयाण कर रहे है। इस सूचना पर रघुनाथराव भयभीत होकर माच के प्रारम्भ मे मिरज की ओर लौट आया। माग मे उसने रस्ते, पटवधन परिवारो तथा उन अन्य सरदारो की जागीरो को विनष्ट कर दिया, जिनको वह अपने विरुद्ध समझता था। सम्भवत रघुनाथराव का उद्देश्य उस समय यह था कि सतारा तथा छत्रपति पर अधिकार प्राप्त कर ले जिससे कि बार भाइयो के विरुद्ध उसकी स्थिति दृढ हो जाये। नाना फडनिस ने ३ फरवरी १७७४ ई० के पत्र मे सतारा स्थित अपने वकील बाबूराव आप्टे को इस प्रकार लिखा—"बापू, मोरोबा दादा तथा मैने यह निश्चय कर लिया है कि हम उस स्वामी की सेवा करेगे जिसका नमक हम चार पीढियो से खा रहे हे। हमको त्रिम्बकराव सबाजी भोसले, वामनराव पटवधन, तथा हजरत सेना का समथन प्राप्त हो गया है। हमारा उद्देश्य गगाबाई के शरीर की रक्षा करना है। हम रक्षा के लिए उसको पुरन्दरगढ ले आये है, तथा हमारा विचार उसे शीघ्र ही सतारा ले जाने का है। सखाराम बापू हमारी योजना से सवथा सहमत हे। उस पर आप कोई सन्देह न करे।" १७ फरवरी को छत्रपति के नाम से यह घोषणा की गयी

"रघुनाथ बाजीराव ने पेशवा नारायणराव की हत्या तथा हमसे बलपूवक पेशवा पद के वस्त्र प्राप्त करने का जघन्य पाप किया है। अब वह पद उससे छीन लिया गया है, तथा त्रिम्बकराव पेठे के अधीन उसके विरुद्ध सेना भेज दी गयी है। प्रत्येक व्यक्ति को आह्वान है कि वह इस पवित्र काय मे हमारा समथन करे।" इसी प्रकार के पत्र समस्त प्रमुख मराठा सरदारो को लिखे गये।[२]

बाबूराव आप्टे बहुत दिनो से सतारा मे छत्रपति के साथ रहता था। इस समय उसने रघुनाथराव की उस प्रत्येक चाल का खण्डन कर दिया जो वह

---

२ पत्रेयादी, २३०

सतारा पहुँचकर छत्रपति के शरीर पर अधिकार प्राप्त करने के लिए चल रहा था । रघुनाथराव की योजनाओ का प्रतिकार करने के लिए बापू तथा पेठे दोनो सतारा गये । फरवरी से पुरन्दर का गढ मराठा परिषद् का केन्द्र घोषित किया गया । इसके पश्चात् बार भाइयो ने शासन सूत्र सँभाला । तभी नारायण-राव के हत्यारो को दण्ड देने की नीति प्रकाशित की गयी तथा रघुनाथराव के राज्यच्युत होने की घोषणा की गयी । मुख्य अपराधियो को पकडने मे तो बहुत समय लग गया, परन्तु फरवरी तथा माच के महीने मे छोटे-छोटे अपराधियो से शीघ्र ही निपट लिया गया । अपराधियो के परिवार तथा उनके सम्बन्धी अविलम्ब पकड लिये गये तथा बन्धन मे रहने के लिए वे विभिन्न गढो को भेज दिये गये । इस प्रकार बार भाइयो का प्रथम काय अपराधियो को दण्ड देना था । इस काय के सम्पादन के कारण मुख्य अप-राधियो तथा उनके सहायको के विरुद्ध लगातार युद्ध करना पडा ।

आरम्भ मे कई अर्थो मे रघुनाथराव की स्थिति अपने शत्रुओ की अपेक्षा अधिक दृढ थी । वह असदिग्ध रूप से अपना स्वामी आप ही था, तथा गार्दी सरदार उत्साहपूवक उसकी सेवा कर रहे थे । बार भाई परस्पर प्राय बुरी तरह विभक्त थे तथा एक-दूसरे पर सन्देह करते थे । योजना का युद्ध-सम्बन्धी भाग त्रिम्बकराव तथा हरिपन्त के प्रबन्ध मे था । वे दोनो अपने ढग से योग्य तथा निष्ठावान थे, परन्तु पेठे का स्वभाव क्रूर था । वह सवसाधारण का प्रेमपात्र नही था, किन्तु हरिपन्त मधुरभाषी तथा उपकारक स्वभाव का था । उनका महत्तम कष्ट धनाभाव था । जो कुछ भी धन मिल सकता था, उसे रघुनाथराव ने झपट लिया था ।

सबाजी भोसले से दोनो दलो ने सम्पक स्थापित किया । रघुनाथराव बिना सोचे-समझे किन्ही भी शर्तो को स्वीकार कर सकता था । सखाराम बापू ने देवाजी पन्त चोरघोडे पर अपना पूण प्रभाव डाला कि बार भाइयो के पक्ष मे नागपुर राज्य का सम्पूण बल उसको प्राप्त हो जाये । त्रिम्बकराव ३ माच को सबाजी तथा निजामअली से गुलबर्गा के समीप मिला । उन्होने आग्रह किया कि जब तक बापू तथा नाना दोनो वहा पर अविलम्ब न आ जायेगे, तथा उनके साथ शिविर मे स्वय निवास न करेगे, तब तक न युद्ध का सचालन सफलतापूर्वक हो सकेगा, और न अधिकार तथा उत्तरदायित्व सहित नाना प्रकार के उपायो का उचित समन्वय हो सकेगा । इस प्रस्ताव को स्वीकार नही किया जा सकता था, यद्यपि प्रथम दृष्टि मे यह कल्याणकारी प्रतीत हो रहा था । स्वय पुरन्दर इस प्रकार अरक्षित था कि रघुनाथराव उस पर सहसा

धावा कर सकता था। अत जब तक बापू तथा नाना दोनो वहाँ पर स्वय उपस्थित न रहे, सारा खेल कभी भी बिगड सकता था। पेठे तथा हरिपन्त जब गुलबर्गा के समीप पहुँचे तो उनको मालूम हुआ कि रघुनाथराव सतारा की ओर प्रयाण कर रहा है। उन्होने अपनी सेना को तुरन्त एक पक्ति मे गुलबर्गा से सतारा तक फैला दिया, उनका उद्देश्य उसे छत्रपति तक जाने से रोकना था। इस प्रकार की चाल से रघुनाथराव चक्कर मे पड गया, तथा अपनी स्वाभाविक भीरुतावश उसने पुरन्दर के पास अपने दूत भेजकर सधि की शर्तो की प्राथना की। किन्तु यह चाल केवल अपने को निकटवर्ती सकट से मुक्त करने के लिए थी। अपने पीछे आने वालो को उसने चतुरता-पूवक बहकाकर सतारा पर आक्रमण कर दिया। पर पूना की सेना शीघ्र ही उसके समीप पहुँच गयी, तथा उसके आक्रमण का इस प्रकार विरोध किया कि वह पढरपुर की ओर मुडने को विवश हो गया। त्रिम्बकराव पेठे उसके पीछे-पीछे वहाँ भी पहुँच गया। ठीक उसी समय ब्रिटिश दूत मोस्टिन ने, जो पूना मे निवास करता था, नवीन सकट उपस्थित कर दिया।

३ **मोस्टिन की शरारत, थाना हस्तगत**—किसी को सन्देह भी नही था कि पूना मे मोस्टिन की उपस्थिति किसी प्रकार हानिकारक है। माधवराव प्रथम के अन्तिम दिनो से वह पूना के घटनाचक्र का ध्यानपूवक अवलोकन कर रहा था। इसका एकमात्र उद्देश्य मराठा सत्ता को निबल करना था। इस विचार से वह बम्बई की कोसिल को नित्य मूल्यवान सूचनाएँ भेज देता तथा अपने देशवासियो को मराठा शासन के सकटो से लाभ उठाने के लिए प्रोत्साहित करता था। उसने अपने स्वामियो को परामश दिया कि वे बम्बई के आसपास के उवर मराठा प्रदेशो पर अधिकार कर ले। इसी प्रयोजन से मोस्टिन पूना से अकस्मात चल दिया तथा ८ दिसम्बर १७७३ ई० को बम्बई पहुँचा। उस समय बम्बई की कौसिल का अध्यक्ष हॉर्नबी था। वह भली-भाँति जानता था कि गम्भीर कष्टो के कारण पूना का प्रशासन विचलित है। अत उसने मोस्टिन के परामश से थाना के गढ पर अविलम्ब आक्रमण की योजना तैयार की। यह गढ समस्त साल्सेट क्षेत्र की रक्षा का मुख्य स्थान था। दोनो राज्यो के बीच घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध वतमान होने से इगलिश लोगो की ओर से इस आकस्मिक तथा अकारण आक्रमण के कारण मराठा मन्त्रि-मण्डल अत्यन्त व्यग्र हो उठा, तथा रघुनाथराव को तुरन्त बन्दी हो जाने की दशा से अपनी रक्षा करने का अनुकूल अवसर मिल गया। अपने इस अकारण तथा अकस्मात काय का अग्रेज लोगो ने कोई कारण नही बताया

और न कोई चेतावनी ही दी । मराठा मन्त्रिमण्डल ने तुरन्त उनकी चुनौती स्वीकार कर ली, तथा शीघ्र ही थाना की रक्षा के लिए उपाय किये । २ दिसम्बर को अग्रेजी सेनाएँ बम्बई से चली, कुछ स्थल माग से तथा कुछ पोतो से । वे सर्वथा अरक्षित उस दुग मे स्थित छोटी-सी सेना पर टूट पडी । बिसाजी कृष्ण पूना से तुरन्त भेजा गया, परन्तु वह समय पर सहायता न पहुँचा सका । थाना के सैनिक अधिकारी आनन्दराव बिवलकर ने साहस तथा विवेक सहित उस स्थान की रक्षा का यथाशक्ति प्रयास किया । अन्त मे उसको पता चला कि अधिक प्रतिरोध व्यथ है । जब उसके अधिकाश सैनिक मर गये, तो उसने २८ दिसम्बर को वह स्थान समर्पित कर दिया । वह सैनिक अधिकारी के पूण सम्मान सहित बम्बई भेज दिया गया । उसके अधीन भवनराव कदम नामक किलेदार—अर्थात् स्थानीय रक्षाधिकारी—था, जिसने अग्रेज लोगो से घूस स्वीकार कर ली थी तथा प्रतिज्ञा की थी कि वह गढ उनको दे देगा । इस विश्वासघाती चाल का पता पहले ही चल गया था तथा कदम पकड लिया गया था । कुछ समय बाद जब गढ का विधिपूवक समपण कर दिया गया तो अग्रेजो ने कदम की रक्षा करने के स्थान पर उसको तोप से उडा दिया । इस प्रकार, उन्होने उसको वही दण्ड दिया, जिसके वह योग्य था ।[3]

यद्यपि उस समय थाना अस्थायी रूप से हाथ से निकल गया था, पर मराठो ने अकारण आक्रमण के लिए अग्रेजो का प्रतिकार करने मे विलम्ब नही किया । उन्होने अग्रेजो का तट-व्यापार बन्द कर दिया तथा उस सामग्री को बम्बई पहुँचने से रोक दिया जो बाहर से आती थी । थोडे ही दिनो मे मराठा प्रवृत्तिया के कारण अग्रेज इस प्रकार गतिशून्य हो गये कि उन्होने न केवल युद्ध का त्याग कर दिया, अपितु शीघ्र ही पूना से पुन मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया । भावी मराठा इतिहास के अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियो—रघुजी आग्रे, आनन्दराव धुलप, शिवाजी विट्ठल विचूरकर, विसाजी केशव लेले, विसाजी कृष्ण बिनिवले आदि—ने न केवल तट की ही रक्षा मे सहयोग दिया अपितु स्थल पर भी मूल्यवान सेवा की । दुर्भाग्य है कि उन्होने नौका युद्ध मे कुशलता का परिचय नही दिया । अग्रेजो ने थाना पर अपने आक्रमण को इस आधार

---

[3] पेशवा दफ्तर, जिल्द ३५, १२८ तथा आगामी पृष्ठ । फोरेस्ट, जिल्द १, पृष्ठ २०४, पेशवा दिनचर्या, जिल्द ६, पृष्ठ ४१६-४१७ । आनन्दराम को अग्रेजो ने बाद मे मुक्त कर दिया । तुलाजी आग्रे के समय के रामजी महादेव का वह पुत्र था ।

पर न्याय-सगत सिद्ध किया कि पुर्तगालियो ने उस स्थान पर प्रबल नाविक आक्रमण की योजना तैयार कर ली हे। अग्रेजो ने पुर्तगाली अधिकार हो जाने से पहले ही उस गढ को घेर लेने का बहाना किया। किन्तु यह काण्ड दो महीनो ही मे समाप्त हो गया।

४ **कासेगाम की लडाई, पेठे का वध**—पूना के मन्त्री इसस मय चारो ओर से पीडित हो रहे थे। प्रत्येक दृष्टि से इस बात की सम्भावना थी कि रघुनाथराव पुरन्दर मे गगाबाई पर सहसा धावा करेगा। निराश भगोडे राघोबा से सतारा तथा पुरन्दर दोनो की रक्षा करने मे हरिपन्त को बहुत कष्ट हुआ। पटवधन तथा रस्ते लोग पहले से ही उसके पीछे लगे हुए थे, तथा वे उसको घेरकर पकडने का प्रयास कर रहे थे। कुछ समय तक रघुनाथराव की स्थिति अनिश्चित रही।

पेठे को असावधान करने के लिए रघुनाथराव ने पत्र लिखकर प्रस्ताव किया कि वह वतमान कलह के शान्तिपूण समझौते पर वार्तालाप करना चाहता हे। इस चाल के बाद रघुनाथराव ने कासेगाम के समीप पेठे पर अकस्मात आक्रमण कर दिया। यह स्थान पढरपुर से ८ मील दक्षिण मे है। पटवधन, रस्ते, नारो शकर, विट्ठल शिवदेव—सबने अविलम्ब शीघ्रतापूवक प्रयाण किया कि विपद्ग्रस्त अवस्था मे पेठे की सहायता करे। परन्तु लम्बी यात्राओ के कारण वे थक गये थे, इसलिए समय पर न पहुँच सके। चैत्र शुक्ला प्रति-पदा—तदनुसार २६ माच, १७७४ ई०—को रघुनाथराव ने अपने तोपखान को पेठे की छोटी-सी सेना पर केन्द्रित कर दिया। पेठे परास्त हुआ तथा निभयतापूवक युद्ध करता हुआ अत्यन्त घायल अवस्था मे पकड लिया गया। एक सप्ताह के बाद इन घावो के कारण उसका देहान्त हो गया।[४] इसी प्रकार पटवधनो को परास्त कर दिया गया। कासेगाम पर अल्पकालीन किन्तु कठोर युद्ध हुआ था। इसके परिणाम किसी प्रकार निर्णायक सिद्ध न हुए। इससे केवल एक लाभ हुआ कि कुछ समय तक मन्त्रियो का दल हतोत्साह हो गया, तथा युद्ध की अवधि बढ गयी। पूना के सर्वोत्तम सेनानी को बन्दी बना लिया जाना ही बार भाइयो को आने वाले सकट के प्रति जाग्रत करने के लिए पर्याप्त था। हरिपन्त ने तुरन्त सतारा से शीघ्रतापूवक प्रयाण किया। परिस्थिति की रक्षा करने के लिए वह समय पर वहाँ पहुँच गया। उसने उत्साहहीन सेना मे नवीन

---

४ पेशवा दफ्तर, जिल्द ५४३ मे इसकी व्याख्या है कि पेठे को किस प्रकार सावधान रखा गया।

साहस फूक दिया तथा उनको अभिनव युद्ध के लिए सगठित कर लिया। इसके पहले ही भोसले तथा निजामअली की सेनाएँ शीघ्रतापूर्वक उसके साथ हो गयी थी। रघुनाथ को साहस न हुआ कि इन सम्मिलित सेनाओ से मोर्चा ले। उसने पलायन के एकमात्र साधन का आश्रय ग्रहण किया जो उस समय उपलब्ध हो सकता था। जितनी जल्दी उससे बन सका, वह उत्तर की ओर भाग गया। पेठे पर विजय से उसको कोई भी लाभ न हुआ। पुरन्दर सुरक्षित रहा।

हरिपन्त ने तुरन्त परिस्थिति पर अधिकार करके बलपूवक रघुनाथराव का पीछा करना प्रारम्भ कर दिया। शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि देश की आशामय अपेक्षा के विपरीत यह सघर्ष दीघकालीन तथा दृढ सिद्ध होगा। बहुसख्यक पीछा करने वालो के सामने से अपने गार्दी साथियो के साथ भाग निकलने मे इस समय रघुनाथराव ने असाधारण तत्परता प्रदर्शित की, जिसके कारण उसको राघो भरारी—'राघो भगोडे'—की उपाधि प्राप्त हो गयी। उसने अब नैतिक नियमो से विहीन षड्यन्त्र तथा विश्वासघात का आश्रय लिया। उसको राज्य के सम्मान या हित की कोई चिन्ता नही थी। उसने अपने विरोधियो के सेनानियो को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए विदेशी सत्ताओ से सम्पक स्थापित किया। इनमे उत्तर के राजपूत तथा मुसलमान शासक, पश्चिमी समुद्र-तट के सिद्दी तथा पुर्तगाली, दक्षिण के हैदरअली और मुहम्मदअली सम्मिलित थे। वास्तव मे वे समस्त शत्रु इस सगठन मे सम्मिलित हो गये जिनको परास्त करने मे रघुनाथराव के पूवजो ने कई पीढियो तक अपना रक्त बहाया था। अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए रघुनाथराव ने समस्त भारत मे अपने गुप्तचरो का जाल बिछा दिया। अप्रैल के मध्य मे गोदावरी को पारकर वह बुरहानपुर के माग से नमदा की ओर भाग गया। उसको आशा थी कि उसको सिन्धिया, होलकर तथा गायकवाड की सहानुभूति प्राप्त हो जायेगी, क्योकि उन लोगो ने बहुत समय तक सहकारियो के रूप मे उसकी निजी सेवा की थी। उसे विश्वास था कि ये लोग स्वभावत उसको हानि पहुँचाने की चेष्टा नही करेंगे।

५ माधवराव नारायण का जन्म—१८ अप्रैल, १७७४ ई० को पुरन्दर मे गगाबाई ने पुत्र को जन्म दिया। इसी के साथ रघुनाथ की वैध पेशवा बने रहने की आशा का अन्त हो गया। केवल इस सुखद घटना के कारण, जिसकी उत्सुकतापूवक आशा की जा रही थी, राजनीतिक परिस्थिति मे परिवतन हो गया। इससे बार भाइयो के साथ राष्ट्र की आशाएँ उसी मात्रा मे उन्नत हो गयी जिस मात्रा मे रघुनाथराव की शक्ति तथा योजनाएँ नष्ट हुई। समस्त

देश मे शान्ति तथा हर्ष की धारा अपूव रूप से प्रवाहित हो गयी । जनता मे यह अन्धविश्वास फैल गया कि नवजात शिशु के रूप मे दिवगत पेशवा माधवराव ने नवीन जन्म धारण किया है जिससे वह अपने काय के उस भाग को पूरा करले जिसको वह अपनी अकाल मृत्यु के कारण नही कर सका था । बापू तथा नाना राष्ट्र की दृष्टि मे देवता हो गये । उनको सभी दिशाओ से असीम साधुवाद प्राप्त हुए । जनता ने विभिन्न मन्दिरो को उपहार तथा सुपात्रो को दान देकर ईश्वर के प्रति भी समान रूप से कृतज्ञता प्रकट की ।

रघुनाथराव ने अपना यह सन्देह प्रकट करने मे देर न की कि यह शिशु वास्तविक शिशु नही अपितु बदला हुआ है । परन्तु इस प्रकार के अनधिकृत प्रवादो का शीघ्र ही निराकरण हो गया । जब ब्रिटिश राजदूत कनल अपटन दो वष बाद पुरन्दर आया और पूण अन्वेषण के बाद उसे विश्वास हो गया कि नवजात वास्तविक शिशु ही है, बदला हुआ नही, तब उसने मत्रिमण्डल के साथ इस आधार पर सन्धि सम्बन्धी वार्ता आरम्भ की । इस सम्बन्ध मे नाना तथा बापू को पत्र लिखकर स्वय आनन्दीबाई ने शिशु की औरसता को स्वीकार कर लिया । उसने उनको परामश दिया कि वे उसके पति के प्रति अपनी उग्रता कम कर दे, अन्यथा निराश हो जाने पर उसके राज्य का नाश कर देने पर भी उतारू हो जाने की आशा है । स्वय छत्रपति ने इस देवी घटना पर अपने हार्दिक साधुवाद भेजे तथा शिशु को तुरन्त पेशवा के वस्त्र भेज दिये । उसके जन्म के ४०वे दिन, २९ मई, १७७४ ई० को, पुरन्दर मे एक विशेप दरबार के अवसर पर ये वस्त्र उसको पहना दिये गये ।

६ **अडास का युद्ध, सूरत की सन्धि**—यदि हरिपन्त के दोनो मित्रो—सबानी तथा निजामअली—के मन्द प्रयाण के कारण माग मे विघ्न उपस्थित न होता तो वह भूतपूव भगोडे पेशवा को सुविधापूवक पकड सकता था । हरिपन्त ने बुरहानपुर को अपना आधार स्थान बनाया तथा रघुनाथराव के कुछ सहायको को अपनी ओर मिला लिया । नवीन पेशवा के जन्म के बाद उन्होने शीघ्र गति से उसका पक्ष-त्याग आरम्भ कर दिया था । अप्रैल के अन्तिम सप्ताह मे रघुनाथराव करीब ३ हजार आदमियो के साथ इन्दौर पहुँचा । अब वह आक्रमणात्मक युद्ध नही कर सकता था । वह लाभ भी शीघ्र उसके हाथ से निकल गया जो उसको कासेगाम मे प्राप्त हो गया था । इस समय उसको केवल यही एक चिन्ता थी कि वह किस प्रकार आत्मरक्षा करे । तुकोजी होलकर तथा महादजी सिन्धिया उससे उज्जैन के समीप मिले, तथा उसकी प्रेरणा पर उन्होने पुरन्दर के मन्त्रियो से सन्धि वार्ता आरम्भ की ।

होलकर तथा सिन्धिया मे परस्पर किसी प्रकार पूर्ण मैत्री न थी। अत वे निर्णायको का स्थान आसानी से ग्रहण कर सकते थे। वे व्यक्तिगत हितानुसार किसी भी पक्ष का साथ देने की धमकी दे सकते थे। इन शक्तिशाली सरदारो को विद्रोही राघोबा का साथ देने से रोकने के लिए मन्त्रियो ने अपने विश्वास-पात्र दूत महादजी बल्लाल गुरुजी को शीघ्र इन्दौर भेज दिया, तथा भगोडे को घेर लेने के लिए उसको पर्याप्त अधिकार तथा पूर्ण निर्देश दिये। परन्तु यह सुयोग्य कूटनीतिज्ञ कुछ अधिक सफलता न प्राप्त कर सका। वह न युद्धकाल को कम कर सका, न भगोडे को पकड सका। दोनो सरदारो से कहा गया कि वे उसको पकडकर बन्दी के रूप मे पूना भेज दे। स्पष्ट है कि वे शिष्टाचार के नाते उस व्यक्ति को हाथ न लगा सकते थे जिसको स्वामी मानकर उन्होने दीर्घ समय तक सेवा की थी, तथा जो इस समय उनसे रक्षा की याचना कर रहा था। इसके अतिरिक्त सिन्धिया तथा होलकर को अपने व्यक्तिगत कष्ट भी थे। वे उसी समय दिल्ली के क्षेत्र मे अपने कर्तव्य का पालन कर वापस आये थे, तथा उनके सिपाही अपने वेतन के लिए शोर मचा रहे थे।[५]

रघुनाथराव स्वभाव से सर्वथा निर्दय हो गया था, तथा प्रतिशोध के आवेश मे वह कुछ भी कर सकता था। उसने अपने इन्दोर के मार्ग पर महादजी के दामाद देवजी तपकिर को सहसा पकडकर बन्दी बना लिया जबकि वह दक्षिण की ओर अपने गाव को जा रहा था। रघुनाथराव इस प्रकार लिखता तथा आचरण करता था मानो कि वह वास्तव मे वैध पेशवा हो। वह बार भाइयो को विद्रोही तथा राज्य के शत्रु बताता था। मुरारराव घोरपडे ने वास्तव मे पुरन्दर के त्रिम्बकते को चेतावनी दी कि वे रघुनाथराव को अधिक रुष्ट न करे। उसने उनको क्षति न करने तथा समस्त शक्य उपायो द्वारा उससे मेल करने का परामर्श दिया। परन्तु इस प्रकार के मार्ग को नाना कभी स्वीकार नही कर सकता था, क्योकि वह हत्यारे को दण्ड देने पर तुला हुआ था। अपेक्षाकृत उसके दोनो सहकारियो—बापू और मोरोबा—की भावनाएँ कुछ कोमल थी। नाना ने अविराम गति से वास्तविक हत्यारो के साथ-साथ उन सब व्यक्तियो का पीछा करके दण्ड दिया, जिन्होने विवश होकर या स्वार्थवश रघुनाथराव के पक्ष का समर्थन किया था। महादजी सिन्धिया प्राय नाना का समर्थक था। तुकोजी विरोधी पक्ष की ओर झुका हुआ था। अब

---

५ ऐ० पत्र व्यव०, न० १४२ मे महादजी बल्लाल का बोलता हुआ वृत्तान्त है।

रघुनाथराव ने इन्दौर से अपने दूत कलकत्ता तथा सूरत को भेजकर अपनी छिनी हुई स्थिति को पुन प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश सहायता की याचना की। उसने यथासम्भव उत्तर भारत मे भी अधिक से अधिक मित्र बनाने का प्रयत्न किया।

सिन्धया तथा होलकर ने यथाशक्ति रघुनाथराव को उस विद्रोही माग से रोकने का प्रयत्न किया जिसका वह अनुसरण कर रहा था। उन्होने यह तक किया "आप पेशवा पद से अपना स्वत्व त्याग दे, नवजात शिशु को अपना स्वामी मान ले तथा जब तक वह वयस्क न हो जाये, उसके नाम से आप राज्य का प्रबन्ध करे। यदि आप युद्ध करना चाहते हैं तो आपको बाहर पर्याप्त क्षेत्र प्राप्त हे, यदि आप हमारे परामश को स्वीकार करे, तो हम आपको विश्वास दिलाते है कि बापू तथा नाना आपका समथन करेगे तथा आपकी आज्ञा का पालन करेंगे।" परन्तु रघुनाथराव वज्र-तुल्य कठोर था। उसने कहा—"मै सदैव प्रयत्न करता रहा हूँ कि पेशवा के रूप मे शासन करू, इसी उद्देश्य से मैने दिवगत माधवराव से राज्य का अधभाग मॉगा था। केवल इसी उद्देश्य से मैने पुत्र को गोद लिया है। मैने इसीलिए नारायणराव को उसके स्थान से हटाने का भी प्रयास किया था।" इस प्रकार मई तथा जून मास उज्जैन मे समझौते के व्यथ वार्तालाप मे नष्ट कर दिये गये जिसका प्रस्ताव सिन्धिया तथा होलकर की ओर से होने को था। उनके लाभदायक परामश के विरुद्ध रघुनाथराव ने अपने दूत शुजाउद्दौला तथा वारेन हेस्टिग्ज के पास भेजकर उनसे सहायता की प्राथना की। बहुत प्रयास के बाद सिन्धिया तथा होलकर रघुनाथराव को इस बात के लिए राजी कर सके कि वह वापस लौट जाये और बुरहानपुर जाकर मन्त्रिमण्डल से व्यक्तिगत रूप से वार्तालाप करे। परन्तु वह चतुर वचक था। उसने वापस जाकर मन्त्रियो से मिलने की प्रतिज्ञा की, परन्तु उत्तर मे भूपाल की ओर प्रयाण कर गया। सिन्धिया तथा होलकर उसका पीछा करके बलपूर्वक वापस ले आये। वे धीरे-धीरे साथ-साथ दक्षिण को वापस हो गये, तथा जुलाई के अन्त मे उन्होने नमदा को पार कर लिया।

धूलकोट के समीप अपना पडाव डालकर सरदारो ने मन्त्रियो को निमन्त्रण भेजा कि वे व्यक्तिगत वार्तालाप के लिए पुरन्दर से आ जाये। इस बीच मे रघुनाथराव ने अपने सिपाहियो का वेतन चुकाने के लिए भारी धन मॉगा, पर उसे गार्दी सरदारो को निकाल देने के लिए विवश कर दिया गया। हरिपन्त ने विवेक तथा दक्षता से काय किया। भूतपूव पेशवा का दत्तक पुत्र

अमृतराव पूना मे था, और वह नाना प्रकार के प्रवाद फैला रहा था जिससे बार भाइयो के पक्ष की हानि होती थी। पुरन्दर मे भी कुशल मगल नही था। वहाँ की आद्र जलवायु का प्रभाव शिशु पेशवा के स्वास्थ्य पर बुरा पडा, दूसरे, रघुनाथराव के गुप्त दूतो ने यहाँ उसके जीवन पर वार किया। अत मन्त्रियो का विचार हुआ कि शिशु को अकेला छोडकर रघुनाथराव से मिलने जाना सकटपूण काय है। लम्बे तक-वितक के बाद बापू तथा नाना बडे-बडे दलो को अपने साथ लेकर नवम्बर के अन्तिम सप्ताह मे बुरहानपुर के लिए चल पडे। उन्होने पुरन्दर तथा शिशु को पुरुषोत्तम दाजी पटवधन की सुरक्षा मे रख दिया, जो अपने साहस तथा वीरता के कारण पूना के इतिहास मे प्रसिद्ध हो गया था। बुरहानपुर मे कुछ समय तक सन्धि प्रस्ताव सोत्साह चलते रहे। इस बीच मे रघुनाथराव को सन्देह हुआ कि वह अविलम्ब पकड लिया जायेगा, अत वह १० दिसम्बर की रात्रि को अकस्मात शिविर से भागकर गुजरात की ओर चला गया। वह इस जाल से नवीन सकट उत्पन्न करने के लिए भाग निकला था।

इस विपत्तिग्रस्त काल मे उसके मित्र मोस्टिन ने सहायता की। भूतपूर्व पेशवा की हत्या के समय से रघुनाथराव से मोस्टिन का सम्पक था। वह उसको ब्रिटिश सहायता प्राप्त कराने की तैयारी कर रहा था। अक्टूबर, १७७४ ई० मे जब रघुनाथराव सन्धि वार्ता के लिए बुरहानपुर आया, तभी उसने अपने दूतो को पूना मे मोस्टिन तथा सूरत मे राबट गैम्बायर के पास भेज दिया था कि वे सशस्त्र सहायता के लिए शर्ते निश्चित कर ले। परन्तु इस काय की समाप्ति के पहले ही वह दिसम्बर मे बुरहानपुर से भाग गया। वह पहले धार पहुँचा जहाँ पर अपनी पत्नी आनन्दीबाई को उसने खण्डेराव पवार की सुरक्षा मे छोड दिया, तथा स्वय ब्रिटिश रक्षा-दल के अधीन गोधरा होकर बडौदा की ओर चल पडा। वहाँ उसने गुप्त रूप से अग्रेजो से सन्धि-वार्ता की। इस वार्ता का पता उसके मन्त्रियो तक को न चल पाया। सिन्धिया तथा होलकर उसके पलायन को रोक सकते थे, परन्तु वे अपने ऊपर यह कलक लगाना नही चाहते थे कि उन्होने पेशवा परिवार के एक व्यक्ति पर हाथ डाला। उन्होने जानबूझकर हरिपन्त को रघुनाथराव को घेर लेने से रोक दिया। उनका कहना था कि उसको अपने जीवन का भय है इस कारण हमे उसके साथ नम्र व्यवहार करना चाहिए। इस बहाने रघुनाथराव को पलायन का एक अवसर मिल गया, तथा बार भाइयो को दीर्घकालीन तथा अतिव्ययी युद्ध करना पडा। इसके लिए नाना फडनिस ने सदैव केवल इन दो

सरदारो को उत्तरदायी समझा, तथा उनके साथ भविष्य मे इसी दृष्टि से व्यवहार किया।

हरिपन्त ने अविलम्ब सिन्धिया तथा होलकर के साथ भूतपूव भगोडे पेशवा का पीछा बडौदा तक किया जहाँ हरगोविन्दराव गायकवाड ने उसको शरण दे रखी थी। बापू तथा नाना दुखी होकर वहाँ से पुरन्दर वापस आगये। उन्होने युद्ध तथा प्रशासन के काय सोत्साह ग्रहण कर लिये। उन्होने दौलताबाद का गढ निजामअली को वापस देकर प्रसन्न कर लिया। यह एक महान हानि थी जो इस सकट-वेला मे विवश होकर मन्त्रिमण्डल को सहन करनी पडी। यदि धार का पवार तथा बडौदा का गायकवाड रघुनाथराव का साथ न देते तो वह सुविधापूवक नियन्त्रण मे लाया जा सकता था। मराठा राज्य के क्षय का महत्तम कारण यह था कि उसके विविध सदस्यो मे एकता का अभाव था।

रघुनाथराव ३ जनवरी, १७७५ ई० को बडौदा पहुँचा जहाँ पर उसको मालूम हुआ कि सिन्धिया तथा होलकर के साथ हरिपन्त उसका पीछा कर रहा है। वह गोविन्दराव गायकवाड की सहायता से तुरन्त उत्तर को भाग गया। माही के घाट पर वतमान वासद रेलवे स्टेशन के समीप उसका सामना मन्त्रियो की सेना से हो गया। करीब दो सप्ताह तक दोनो दल एक दूसरे के सम्मुख पडे रहे, तथा सन्धि प्रस्ताव चलते रहे, जिनका इस धूत भगोडे ने कभी विरोध नही किया। हरिपन्त तथा वामनराव पटवधन ने शत्रु पर तुरन्त आक्रमण नही किया, क्योकि इस काय का शुभ मुहूर्त न था। हरिपन्त ने १७ फरवरी तक प्रतीक्षा की। बाद मे घोर युद्ध हुआ, जिसमे ईश्वर की कृपा से हरिपन्त को विजय प्राप्त हुई। रघुनाथराव की सेना सर्वथा परास्त हो गयी। उसके साथियो मे सखाराम हरि तथा नानाजी फडके को गहरे घाव लगे। रघुनाथराव की अधिकाश सम्पत्ति, उसका समस्त तोपखाना, उसके हाथी-घोडे और उसका अपना झण्डा भी विजेता के हाथ लगे।[६] केवल अन्धकार के कारण वह पकडा न जा सका। वह अपने थोडे से अनुचरो तथा बहुसख्यक रखैलो को साथ लेकर तुरन्त कैम्बे (खम्भात) पहुँचा। वहाँ के नवाब ने उसको प्रवेश देने से इनकार कर दिया। उस बन्दरगाह मे ब्रिटिश कारखाने का प्रतिनिधि मैलेट उपस्थित था। रघुनाथराव ने उससे शरण देने तथा वहाँ से सकुशल सूरत पहुँचा देने की प्रार्थना की।

मोस्टिन ने पहले ही आधारभूमि तैयार कर ली थी, तथा विभिन्न

---

६ यह युद्ध अनेक नामो से प्रसिद्ध है। ये नाम उस क्षेत्र मे कई गाँवो के नाम पर है—नापर, आनन्द मोग्री तथा अडास। ये सब माही नदी के उत्तरीय तट पर वासद रेलवे स्टेशन के समीप है।

ब्रिटिश कार्यकर्ताओ को निर्देश दे दिये थे कि वे भगोडे मराठा राजकुमार का सत्कार करे। मैलेट ने रघुनाथराव को भावनगर के बन्दरगाह तक स्थल माग से यात्रा करने के योग्य कर दिया। यहा से अग्रेजी पोतो द्वारा वह २३ फरवरी को सूरत पहुँच गया।

रघुनाथराव इस समस्त काल मे मोस्टिन तथा गैम्बेयर के साथ उन शर्तो को निश्चित करता रहा जिनके अनुसार ब्रिटिश लोग उसको पूना मे उसकी गद्दी पर पुन स्थापित करते। ६ माच, १७७५ ई० को इन शर्तो पर दोनो दल अन्तिम रूप से सहमत हो गये। इसको सूरत की सन्धि कहते है। शर्ते ये थी

(१) २५०० सैनिको की सेना रघुनाथराव की इच्छा पर नियुक्त कर दी जायेगी, जिनमे से पर्याप्त तोपखाने सहित कम से कम ७०० यूरोपीय होगे।

(२) इस दल के व्यय के निमित्त डेढ लाख रुपये प्रति मास अग्रिम रूप से दिये जायेगे।

(३) ६ लाख रुपये या उसके बराबर के आभूषण अग्रेजो के पास न्यास रूप मे रख दिये जायेगे।

(४) इसके अतिरिक्त रघुनाथराव अग्रेजो को सदा के लिए बम्बई के समस्त टापू दे देगा। इनमे थाना, बसइ तथा सालसेट और सूरत के समीप जम्बूसार तथा औलपद के तालुके सम्मिलित होगे।

रघुनाथराव ने कम्पनी के पास ६ लाख रुपये के आभूषण न्यास रूप मे रख दिये जो अनेक परिवर्तनो के बाद जून, १७९८ ई० मे उसके पुत्र को वापस कर दिये गये।

इस सहमति के अनुसार कनल कीटिग के नेतृत्व मे एक ब्रिटिश सेना बम्बई से चली ओर २८ फरवरी को सूरत पहुँच गयी अर्थात् यह सेना रघुनाथराव के वहा पहुँचने के ५ दिन बाद पहुँची। जेम्स फोब्स को असैनिक अधिकारी के रूप मे इस सेना के साथ भेजा गया।[७]

---

७ इसी के बाद उसने अपना प्रसिद्ध ग्रथ 'ओरिएटल मेमॉयम' लिखा, जिसके चार खण्ड है। अन्य महत्त्वपूण बातो के अतिरिक्त उसने इसमे अपने उन विचारो एव अनुभवो को भी लेखबद्ध किया है जो उसको रघुनाथराव तथा उसके अनुयायियो के साथ लगभग ५ वर्षो के सहवास मे व्यक्तिगत सम्पक द्वारा प्राप्त हुए थे। इनमे से कुछ का तत्कालीन इतिहास से गहरा सम्बन्ध है। उसके चरित्र और योग्यता के प्रशसक जब फोब्स द्वारा लिखित इस विवरण को पढेगे तो उनका भ्रम दूर हो जायेगा। उन्हे ज्ञात होगा कि रघुनाथराव अत्यन्त दूषित जीवन व्यतीत करने वाला था। उसका यह विवरण बिलकुल पक्षपात रहित है।

ब्रिटिश सेना गुजरात मे स्थित मन्त्रियो की सेना का दमन करने के विचार से रघुनाथराव को साथ लेकर १५ माच को जलमाग द्वारा सूरत स कैम्बे (खम्भात) के लिए चल दी। उसका विचार अन्त मे पूना पहुँचने का था।

हरिपन्त ने इस बीच मे भावी घटनाओ की पूव कल्पना से अपनी सेना तथा अपने साधनो का मगठन कर लिया, तथा अपने और महादजी सिन्धिया के मतभेदो को भी दूर कर लिया। शिन्दे को धनाभाव का कष्ट था और उसके सैनिको का वेतन बहुत दिनो से शेष था। जब मन्त्रियो ने उससे अपने कतव्य की उपेक्षा का कारण पूछा तो वह रुष्ट हो गया तथा उज्जैन को वापस चला गया। इस प्रकार बढते हुए शत्रु का सामना करने के लिए हरिपन्त अकेला रह गया। महादजी का अनुकरण करते हुए होलकर ने भी हरिपन्त का साथ छोड दिया और वह मालवा को चला गया। इन दो सरदारो के वापस होने का अर्थ रघुनाथराव ने यह लगाया कि उन्होने मन्त्रियो के पक्ष का त्याग कर दिया है, तथा उसके पक्ष को स्वीकार कर लिया हे। उसने अपना यह अनुमान अग्रेजो को भी बताया। जब बाद को पता चला कि इन दिनो सरदारो का अभिप्राय रघुनाथराव की सहायता करना नही था तो अग्रेजो को अत्यधिक कष्ट हुआ।

कर्नल कीटिग को अपना काय अत्यन्त कष्टसाध्य तथा द्वेषजनक मालूम हुआ। रघुनाथराव अपनी तथा अपने मित्रो की सेना को कभी भी नियमपूवक वेतन न दे सका। लगभग माच के अन्त मे वे खम्भात पहुँचे, परन्तु वे उन सुविधाओ को नही छीन सके, जिन्हे हरिपन्त ने पहले ही प्राप्त कर लिया था। हरिपन्त ने गुरिल्ला युद्ध का आश्रय लिया जिससे अग्रेज लोग बहुत पीडित हो गये। एक मास तक दोनो दलो ने माही नदी के उत्तरी क्षेत्र मे कुछ निर्णायक लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न किया तथा उनके बीच मे कुछ हलकी झडपे भी हुई। २८ मई को लगभग उसी स्थान पर जहा गत फरवरी मे अडास का युद्ध हुआ था घोर युद्ध हुआ। हरिपन्त ने अग्रेजो पर सहसा धावा किया और उनकी यूरोपीय सेना के लगभग ३०० सिपाहियो को मार गिराया। इनमे से ११ उच्च पदस्थ अधिकारी भी थे। परन्तु यह सघष किसी दल के लिए निर्णायक सिद्ध नही हुआ। वर्षा ऋतु के आगमन पर रघुनाथराव तथा उसके मित्रो ने अपना शिखर डभोई नामक स्थान मे लगाया। हरिपन्त सोनगढ लौट गया। कनल कीटिग को पता चला कि हरि भिडे, जो रघुनाथराव का एक विश्वस्त अधिकारी था, कुछ विश्वासघातक व्यवहार कर रहा है। इस कारण उसने

रघुनाथराव के विरोव तथा निवारण करने पर भी उसे तोप से उडा दिया ।

७ **पूना मे अपटन का दूतावास**—इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि मोम्टिन के परामश पर बम्बई के शासको ने उत्साहपूवक जो युद्ध आरम्भ किया था, वह उनकी आशा के अनुकूल अल्पकालीन तथा सहज साध्य नही था । कम्पनी के प्रशासकीय स्वरूप मे परिवतन हो जाने से इस युद्ध के कारण अनेक अकल्पित समस्याएँ उठ खडी हुई ।

हेस्टिग्ज पहले केवल बगाल का गवनर था, परन्तु अब ब्रिटिश पार्लमिट के नवीन रेगुलेटिग ऐक्ट द्वारा वह तीनो प्रान्तो का गवनर-जनरल अर्थात् सर्वोपरि मुख्य पुरुप हो गया था । २६ अक्टूबर, १७७४ ई० को उसने अपना नवीन पद ग्रहण कर लिया, परन्तु बम्बई के अध्यक्ष हानबी की इच्छा न थी कि वह हेस्टिग्ज के अविकार को अपने अविकार से बढकर माने । इसलिए उसने स्वतन्त्र रूप से कार्य किया । गवनर जनरल के काय का नियन्त्रण करने के लिए चार सदस्यो की परिषद् की नियुक्ति से और भी जटिल समस्याएँ उपस्थित हो गयी । इन सदस्यो मे से तीन इगलैण्ड से प्रथम बार भारत आये थे । उनके और हेस्टिग्ज के बीच गम्भीर मतभेद उपस्थित हो गये, जिनके कारण ब्रिटिश भारतीय इतिहास मे अभूतपूव गडबडी उत्पन्न हो गयी ।

भोसले बन्धुओ अर्थात् मुधोजी तथा सबाजी मे २६ जनवरी, १७७५ ई० को नागपुर मे १० मील दक्षिण मे पचगाम के स्थान पर घोर युद्ध हुआ, जिसमे सबाजी की मृत्यु हो गयी । इस कारण पूना शासन को घोर क्षति पहुँची, क्योकि सबाजी उनका समथक था । विजेता मुधोजी रघुनाथराव का पक्षपाती था । उसने हत्यारे राघोवा के पक्षपोपण मे अपनी सम्पूण शक्ति का उपयोग किया ।

हेस्टिग्ज ने कलकत्ते मे सर्वोपरि सत्ता धारण करते ही इस परिवतन की सूचना बम्बई के शासको को भेज दी, परन्तु सचार की तत्कालीन मन्द गति के कारण अप्रत्याशित कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गयी । हानबी को हेस्टिग्ज के पत्र बम्बई मे ७ दिसम्बर, १७७४ ई० को ठीक उस समय मिले जबकि थाना के विरुद्ध नौका-अभियान आरम्भ किया जा रहा था, तथा पूना के प्रशासन मे घोर अवरोध उपस्थित था । २८ दिसम्बर को थाना पर अधिकार प्राप्त कर लिया गया । परन्तु इस घटना का कोई भी समाचार आगामी ३१ माच, अर्थात् ३ मास बाद तक कलकत्ता को नही भेजा गया, और न उन परिवतनो

की ओर कोई ध्यान दिया गया जो रेगुलेटिग ऐक्ट के कारण उपस्थित हो गये थे। इनके अनुसार थाना पर अधिकार अनधिकृत था। परन्तु कलकत्ता के अधिकारी वारेन हेस्टिग्ज के पास सूचना पहुँचने के पहले ही इस घटना तथा उस सेना का समाचार पहुँच गया था जो रघुनाथराव की सहायता को भेजी गयी थी। उसने ८ मार्च को बम्बई को कडा विरोध पत्र भेजा। उसने अध्यक्ष को पुन स्मरण दिलाया कि मराठा शासन से वतमान सम्बन्धो को भग करते हुए उसने सूरत की सन्धि के अनुसार अवैध रूप से काय किया है। उसने बम्बई के शासको को आज्ञा दी कि वे अपनी सेनाओ को हटा ले, तथा उस युद्ध को बन्द कर दे जिसको उन्होने आरम्भ कर रखा है। बम्बई मे यह विरोध पत्र २१ मई को प्राप्त हुआ, जबकि परस्पर विरोधी दोनो सेनाएँ उत्तर गुजरात मे घोर युद्ध मे व्यस्त थी। बम्बई के शासको ने सर्वोपरि शासन की इन आज्ञाओ की ओर कोई ध्यान नही दिया तथा उनकी स्पष्ट अवहेलना करते हुए अपने उत्तरदायित्व पर युद्ध जारी रखा। अपनी आज्ञाओ की इस प्रकार घोर अवहेलना पर कलकत्ता की सभा को बहुत क्रोध आया। उसने ३१ मई को दूसरा कडा विरोध पत्र बम्बई भेजा। इसमे कहा गया "कतव्य के कारण हमारे सन्मुख यह स्पष्ट करने की खेदजनक आवश्यकता आ पडी है कि हम उन कार्यो की सवथा निन्दा करते है जिन्हे आप कर रहे है। हम उस सन्धि को अप्रमाणिक मानते है जो आपने रघोबा से कर रखी है। आप मराठा राज्य से इस समय जो व्यवहार कर रहे है वह नीतिविरुद्ध, विपत्तिजनक, अनधिकृत तथा अन्यायपूण है। ये दोनो काय पार्लामेण्ट के नवीन विधान के विरुद्ध है, जैसा कि स्पष्ट है। आपने अपने ऊपर समस्त मराठा साम्राज्य को विजय करने का भार लाद रखा है। यह काय आपने उस व्यक्ति के हित मे ग्रहण कर रखा है जो आपको इस काय मे कोई प्रभावशाली सहायता देने मे असमथ मालूम होता है। जो योजना आपने बना रखी है, उसका उद्देश्य निर्णायक विजय नही है। यह अनिश्चित कष्टो की पूवसूचना है। आपके पास पर्याप्त दल, नौ-सेना तथा निश्चित साधन नही है जिनके द्वारा आप अपना पिण्ड छुडा सके। जिस पक्ष को आपने शत्रु बना रखा है, उससे कोई क्षति होने का भी कारण आप नही बता सकते। आपने जिस व्यक्ति का पक्ष ले रखा है, उसकी रक्षा करने के लिए भी आप पहले से बाध्य नही है। हम गम्भीरतापूवक आपको समस्त परिणामो के प्रति चेतावनी देते है तथा अविलम्ब आज्ञा देते है कि आप कम्पनी की सेनाओ को अपने शिविर-स्थानो मे वापस बुला ले—यदि उनकी वापसी से उनकी अपनी कुशलता सकट मे न पड जाये। आपकी स्थिति चाहे

जो कुछ भी हो, हम आशा करते हे कि आप हमारी आज्ञाओ का तुरन्त पालन करेगे । हमारा अभिप्राय यह है कि हम यथाशीघ्र पूना मे मराठा राज्य के शासक दल के साथ सन्धि प्रस्ताव आरम्भ करे ।"[८]

१० जुलाई को हेस्टिग्ज ने पूना के प्रशासन को अपने उस पत्र का साराश लिख भेजा जो उसकी सभा ने बम्बई को भेजा था । उसने यह भी लिखा कि वह शीघ्र अपना एक विश्वस्त तथा योग्य दूत पूना भेज रहा हे जो युद्ध को बन्द कर देगा तथा मराठो के साथ मैत्रीपूण व्यवहार का प्रस्ताव करेगा । इस पर सखाराम बापू ने २९ जुलाई को वारेन हेस्टिग्ज को अनुनयपूण उत्तर भेजा । उसमे कहा गया था कि आपका जो पत्र प्राप्त हुआ है, उसकी भाषा मैत्रीपूण हे । उसमे बताया गया कि रघुनाथराव विद्रोही हे तथा उसने अपने भतीजे की हत्या करने का पाप किया हे । दिवगत पेशवा के न्याय सगत उत्तराधिकारी का जन्म हो गया हे । इस समय उसी के नाम से मराठा शासन का सगठन किया गया है । बापू ने अन्याय तथा बम्बई के शासको के काय की गुरुता को पूणत व्यक्त कर दिया ।[९]

बम्बई मे हानबी तथा उसकी सभा कलकत्ता के इस हस्तक्षेप पर बहुत अप्रसन्न हुए । उन्होने स्थिति की व्याख्या करने के लिए अपने विशेष दूत टेलर को व्यक्तिगत रूप से भेजा । वह अक्तूबर, १७७५ ई० को कलकत्ता पहुँचा तथा उसने व्यक्तिगत वार्तालाप द्वारा तथा लिखित रूप से भी पश्चिमी प्रान्त की वस्तुस्थिति को सवथा स्पष्ट कर दिया । बम्बई के शासको ने कलकत्ता की आज्ञाओ का सवथा उल्लघन किया तथा अपनी शिकायतो को इगलैण्ड के गृहाधिकारियो के पास निर्णयाथ भेज दिया । इस उपाय द्वारा और भी अधिक जटिलताएँ उत्पन्न हो गयी । स्वय कलकत्ता की सभा फूट तथा कलह का केन्द्र बन गयी ।

वारेन हेस्टिग्ज की आज्ञा पर अक्तूबर, १७७५ ई० मे कनल अपटन कलकत्ता से चल दिया । उसके साथ लगभग डेढ हजार अनुचरो की पक्ति के अतिरिक्त हाथी, पालकियाँ तथा ब्रिटिश सत्ता की महत्ता के अनुरूप अन्य उपकरण थे । सखाराम बापू ने उसको बुन्देलखण्ड तथा मालवा के मराठा प्रदेशो मे होकर यात्रा करने के लिए आज्ञापत्र दे रखे थे । हेस्टिग्ज ने उसको माग

---

८ फोरेस्ट, मराठा सीरीज, पृ० २३८ । नाटुकृत महादजी सिन्धिया, पृ० २८० गुप्त समिति का पचम वृत्तान्त—पृ० ८०

९ फारसी पत्र—बी० आई० एस० एम० न० १९

स्थित विभिन्न सरदारो के नाम परिचयात्मक पत्र दिये थे। सखाराम बापू के पूछने पर हेस्टिंग्ज ने स्वीकार किया था कि कनल अपटन को शान्ति की शर्तो को निश्चित करने के सम्बन्ध मे पूण अधिकार दे दिये गये हे। वह जो कुछ सन्धि करेगा, उसका बम्बई तथा कलकत्ता दोनो के द्वारा श्रद्धापूवक पालन किया जायेगा। इस समय पर रघुनाथराव ने भी कलकत्ता को अपने प्रतिनिधि भेजे। उन्होने अपटन के आयोग का तीव्र विरोध किया तथा सूरत की सन्धि के पालन की माँग उपस्थित की।[१०] परस्पर विरोधी हितो का सामजस्य करने तथा पश्चिमी तट पर बम्बई-मराठा सम्बन्धो को दूषित करने वाले कलह का शान्तिमय समझौता करने मे हेस्टिंग्ज को बहुत कष्ट हुआ। बम्बई के शासको ने अपटन से प्राथना की कि पूना जाने के पहले वह उनसे मिल ले, परन्तु उसने इस प्रस्ताव को न मानने मे ही बुद्धिमत्ता समझी। अपटन ने नवम्बर मे कालपी मे यमुना को पार किया तथा २८ दिसम्बर को पूना पहुँचा। वहाँ पर पेशवा शासन द्वारा उसका भव्य रूप मे स्वागत किया गया। ३१ दिसम्बर को पुरन्दरगढ मे आयोजित पूरे दरबार मे उसका स्वागत किया गया। इसका सभापति शिशु पेशवा था, जिसकी आयु उस समय लगभग २० मास की थी। इस समय रघुनाथराव तथा हरिपन्त के विरोधी दल सोनगढ के समीप गुजरात तथा काठियावाड की सीमा पर पडाव डाले पडे हुए थे। अपटन के आगमन पर उनको अपनी सैनिक प्रवृत्ति को रोक देने की आज्ञा दी गयी।

पूना के मन्त्रीगण बम्बई तथा कलकत्ता के बीच की नीति भिन्नता से इतने तग आ गये कि उन्होने सीधे रघुनाथराव से शातिपूण निपटारे का प्रयास करना ही श्रेयस्कर समझा। परन्तु रघुनाथराव मे इतनी बुद्धि नही थी। उसकी मनोदशा भी किसी प्रकार का समझोता स्वीकार करने योग्य नही थी। बम्बई के अधिकारियो को भी घटनाचक्र से कुछ कम चिन्ता नही थी। यद्यपि गुजरात पर व्यवहार रूप मे उनका अधिकार था, परन्तु इस दीर्घकालीन अभियान का व्यय इस समय इतना बढ गया था कि वे इसको सहन नही कर सकते थे। हरिपन्त ने उनकी परिस्थिति को अधिक कष्टप्रद बना देने मे विलम्ब नही किया। वर्षा ऋतु के शीघ्र पश्चात उसने अपना आक्रमण आरम्भ कर दिया। इस प्रकार मराठो के दोनो दलो तथा अग्रेजो को इस युद्ध के कारण घोर असुविधा सहन करनी पडी। केवल दो शासको को इससे महत्त्व-

---

[१०] इस विषय पर 'फारसी पजिका', जिल्द ४ न० १६१६-३०४१ मे मुद्रित पत्र-व्यवहार देखो।

पूण लाभ पहुँचा—वे थे हेदराबाद का निजाम तथा मैसूर का हेदरअली । वे दोनो अपने-अपने क्षेत्रो मे जिन प्रदेशो पर अधिकार कर सकते थे, उन पर उन्होने अधिकार जमा लिया ।

रघुनाथराव की मक्कारी के कारण पूना शासन को बहुत कष्ट हुआ । उसने खानदेश के कोलियो को विद्रोह की उत्तेजना दी, तथा उसी क्षेत्र मे रणाला के गुलजारखॉ को मराठा शासन के विरुद्ध लूट-मार करने के लिए प्रोत्साहित किया । इस प्रकार बार भाइयो को अनेक दिशाओ से असीम कष्ट सहना पडा । मानाजी फडके, त्रिम्बक सूर्याजी तथा रघुनाथराव के अन्य पक्ष-पातियो ने पूना की सभा को पगु कर देने के लिए अपकारक प्रवृत्तियो का आश्रय लिया । इस अकारण अपकार के परिणाम स्वरूप भी रघुनाथराव को अपने उद्देश्य की प्राप्ति मे किसी प्रकार की कोई सहायता प्राप्त न हुई । उल्टा वह घोरतम सकट मे फसा रहा । २३ जनवरी, १७७६ ई० को वह अग्रेजी शिविर से इस प्रकार लिखता हे "मै अपनी वतमान दशा पर भयानक रूप से दुखी हूँ । मै भूखा मर रहा हूँ, मेरे पास धन नही हे, मेरी सेना मे विद्रोह फैल रहा है, मेरे अग्रेज मित्रो की सख्या इतनी कम हे कि उनके बनाये कुछ भी नही बन सकता । मुझे पहले उनकी शक्ति मे प्रबल विश्वास था, परन्तु इस विषय मे मुझे बहुत धोखा हुआ है । हरिपन्त किसी भी क्षण मुझे पकड सकता हे ।" रघुनाथराव के अत्यन्त उत्साही समथक सखाराम हरि ने भी उसी प्रकार शोकपूण शब्दो मे पत्र लिखा हे ।

८ **पुरन्दर की सन्धि**—पूना मे अपटन के आगमन से भी किसी प्रकार परिस्थिति न सँभली । दीघकालीन वार्ता तथा चिन्तापूण विवाद गतिरोध आ जाने से तीन मास तक ज्यो के त्यो बने रहे । सखाराम बापू, नाना तथा कृष्णराव काले पूना की सभा के प्रमुख थे । गम्भीर शपथो द्वारा दोनो पक्ष गोपनीयता के लिए बाध्य थे । ये अधिवेशन पुरन्दरगढ के नीचे कोडिन गाव के एक डेरे मे प्रतिदिन तीसरे पहर को आरम्भ होकर प्राय सायकाल तक होते रहते थे । अपटन के पास एक सहायक के अतिरिक्त एक द्विभाषिया भी रहता था । अत वार्तालाप की गति बहुत मन्द रही । अपने आगमन के शीघ्र पश्चात ही अपटन ने शिशु पेशवा के जन्म के विषय मे सूक्ष्म अन्वेषण किया तथा जब उसको पूण विश्वास हो गया कि शिशु जाली नही है, तभी उसने पूना शासन को सन्धिप्रस्ताव के निमित्त मान्यता प्रदान की ।

अपने समस्त वार्तालाप मे अपटन ने यथाशक्ति प्रयास किया कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी को कुछ ठोस लाभ प्राप्त हो जाये । उसने कहा कि वह

रघुनाथराव के पक्ष से ब्रिटिश समथन को हटा लेने के लिए अपनी सहमति उसी समय देगा, जब बसई, साल्सेट (साष्टी) तथा भडोच पर उसको स्थायी अधिकार दे दिया जायेगा। अग्रेजो का यह पक्का निश्चय था कि जिस प्रकार कलकत्ता तथा मद्रास के समुद्रवर्ती क्षेत्रो पर उनका बहुत दिनो से अधिकार है, उसी प्रकार बम्बई के लम्बे समुद्रतट पर उनका विवादरहित अधिकार होना चाहिए। परन्तु मराठा शासन किसी भी आधार पर बसई को छोडने के लिए सहमत नही हो सकता था, क्योकि बसइ बम्बई का प्रतिद्वन्द्वी था तथा स्वतन्त्र सत्ता के रूप मे उनके लिए यह मम स्थान था। पूना शासन के इस कडे रुख पर अपटन को घोर निराशा हुई।

दोनो पक्षो के बीच घोर मतभेद का एक अन्य विपय रघुनाथराव की स्थिति तथा उसके भावी पालन-पोषण से सम्बन्धित मामला था। अपटन ने हठ किया कि रघुनाथराव को सव प्रबन्धाधिकार प्राप्त सरक्षक नियुक्त कर दिया जाये, क्योकि पेशवा अल्पवयस्क शिशु है। इस प्रस्ताव को स्वीकार करने से मन्त्रियो ने न्यायपूवक इनकार कर दिया। मन्त्रियो का यह आग्रह था कि रघुनाथराव हत्यारा तथा विद्रोही है, किसी कारण से भी उसको पूना लौटने की आज्ञा नही मिल सकती। उस पर विश्वास नही किया जा सकता कि दिवगत पेशवा का औरस शिशु उसकी रक्षा मे सकुशल रह सकेगा। इसके विपरीत उन्होने रघुनाथराव को पूणत सौप देने की मॉग की। अपटन ने कहा कि रघुनाथराव उनका अतिथि हे, बन्दी नही। उसके साथ वे केवल इतना कर सकते है कि उससे अपना समथन वापस ले ले, परन्तु वे उसको स्वय समर्पित न करेंगे। जब अग्रेज उसकी सहायता न करेंगे, तब पूना की परिषद उसके साथ जैसा चाहे वैसा व्यवहार कर सकती है। मन्त्रियो द्वारा प्रस्तावित स्वत्वो के औचित्य पर अपटन ने वादविवाद नही किया, परन्तु बम्बई के अधिकारी बसई तथा रघुनाथराव के समपण के विषय पर सवथा दृढ थे। अपटन ने अपनी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए अपने दूत बम्बई भेजे। इस कारण सन्धिवार्ता मे बहुत विलम्ब हो गया। रघुनाथराव ने बहुत ऋण कर लिया था। स्वय अग्रेजो का उसको भारी ऋण चुकाना था। अपटन ने यह ५० लाख का ऋण चुका देने की मॉग प्रस्तुत की। मन्त्रियो ने यह ऋण चुकाने से इनकार कर दिया। इस प्रकार एक मास से भी अधिक समय के विचारविनिमय के बाद सन्धिवार्ता भग हो गयी, तथा फरवरी के प्रथम सप्ताह मे अपटन ने आगे वार्तालाप करने से इनकार कर दिया। उसने विदा होने की आज्ञा प्राप्त कर ली तथा वारेन हेस्टिग्ज को भी लिख दिया कि पूना की सरकार के साथ शान्ति स्थापना नही

हो सकती। हरिपन्त फडके को तुरन्त युद्ध आरम्भ करने का आदेश दे दिया गया। इस प्रकार बार भाइयो को पूण रूप से यह ज्ञान हो गया कि अपटन या वारेन हेस्टिग्ज की मधुर इच्छा पर निभर रहना व्यथ है। उन्होने देख लिया कि केवल सैनिकगति से ही कूटनीतिक प्रगति मे सफलता प्राप्त हो सकती हे। ७ माच को हेस्टिग्ज ने युद्ध पुन आरम्भ करने की नवीन आज्ञा दे दी।

इस सकटमय क्षण मे एक ऐसी घटना घटित हो गयी जिसके कारण मन्त्रियो को अपनी शर्ते नम्र करने तथा किसी भी मूल्य पर शान्ति स्थापित करने के प्रलोभन ने घेर लिया। छद्मवेशी व्यक्ति जो अपने को सदाशिवराव भाऊ बताता था और १७६५ ई० से नजरबन्द था, अकस्मात १९ फरवरी, १७७६ ई० को रत्नागिरि के गढ से भाग निकला तथा उसने विद्रोह खडा कर दिया। इस विद्रोह के कारण अभीष्ट स्थानो मे इस प्रकार के कष्ट आरम्भ हो गये कि पूना की सभा ने अपनी पुरानी मागो को शिथिल कर दिया। उन्होने अपटन के साथ अपने प्रस्ताव पुन आरम्भ कर दिये तथा १ माच को उन्होने निम्नलिखित शर्तो पर सन्धि कर ली

(१) थाना का गढ तथा साल्सेट का टापू अग्रेजी अधिकार मे रहेगे।

(२) १२ लाख रुपये नकद अग्रेजो को दिये जायेगे। यह उस व्यय के निमित्त होगे जो उन्होने रघुनाथराव के कारण किया था।

(३) रघुनाथराव को अपने पालन-पोषण के निमित्त ३ लाख १५ हजार का वार्षिक भत्ता मिलेगा तथा वह अपने को राज्य काय से सवथा दूर रखेगा।

(४) गुजरात मे जो प्रदेश अग्रेजो ने विजय कर लिया है, उसको वे अपने अधिकार मे रखेगे, तथा वे गायकवाड के कार्या मे हस्तक्षेप न करेगे।

इस सन्धि को पुरन्दर की सन्धि कहते हे। परिस्थिति जटिल होने के कारण इस सन्धि की व्यवस्था अत्यन्त शीघ्रता मे की गयी थी। अपटन ने इसकी सूचना तुरन्त बम्बई तथा कलकत्ता को भेज दी, और बम्बई कहला भेजा कि वे अपनी युद्ध प्रवृत्तियो को बन्द कर दे। वह पूना से जाने के लिए उत्सुक था, परन्तु मन्त्रियो की साग्रह प्राथना पर वह पूना मे बहुत दिनो तक ठहरा रहा जिससे सन्धि की शर्तों को उचित रूप से कार्यान्वित करा सके। एक असत्य समाचार फैल गया कि अपटन को बलपूर्वक रोका जा रहा है।

पुरन्दर की यह सन्धि वास्तव मे समझौतो की थेगली मात्र थी। यह इस प्रकार का करार न था जिसको दोनो पक्षो की हार्दिक स्वीकृति प्राप्त हो। इसकी अनेक मूलभूत धाराए अस्पष्ट थी तथा इसके कारण अल्पकाल ही मे दोनो पक्षो को इस प्रकार उत्तेजना हुई कि स्पष्टत युद्ध का अन्त अभी नही

हुआ है। सर्वप्रथम रघुनाथराव को इस समझौते पर क्रोध आया, क्योकि वह इससे सहमत न था। शरारत करने की असीम शक्ति हाने के कारण रघुनाथराव ने इसे किसी भी प्रकार स्वीकार नही किया। उसके समान ही बम्बई की सरकार को भी इस सन्धिपत्र से घृणा थी, क्योकि उनको उस समस्त व्यय के बदले मे कुछ भी वास्तविक प्राप्ति नही हुई थी जो वे गत दो वर्षों मे कर चुके थे। तात्कालिक समस्या यह थी कि रघुनाथराव का नियन्त्रण किस प्रकार किया जाये। उसने समस्त दिशाओ मे अपना असाधारण प्रपच आरम्भ कर दिया था। उसने बम्बई, कलकत्ता तथा लन्दन के ब्रिटिश अधिकारियो को पत्र लिखने, विरोध प्रदशन करने, तथा उनसे सहायता की याचना करने के अतिरिक्त सिन्धिया तथा होलकर जैसे शक्तिशाली मराठा सरदारो की निष्ठा पूना शासन के प्रति विचलित करने का प्रयत्न किया। ऐसा मालूम हुआ कि समस्त भारतीय महाद्वीप सहसा अराजकता मे फँस गया है। यदि बम्बई के अधिकारी चाहते तो इस परेशानी को सरलता से दूर कर सकते थे। परन्तु अपनी चिरवाञ्छित योजनाओ मे केन्द्रीय शासन के हस्तक्षेप पर वे अतिक्रुद्ध हो रहे थे। अत रघुनाथराव को नियन्त्रण मे रखने तथा अपटन की सन्धि की शर्तो का पालन करने से उन्होने इनकार कर दिया। इसके स्थान पर उन्होने गवनर जनरल तथा उसकी कौसिल की उपेक्षा करके इस सब झगडे को लन्दन के अधिकारियो के पास भेज दिया। कनल कीटिग ने जो सूरत के समीप ब्रिटिश सेना का कमान-अधिकारी था, रघुनाथराव की रक्षा की, जिससे पूना की सेनाएँ उसको पकड लेने का प्रयास न करे। रघुनाथराव ने छलपूवक कहा कि वह हरिपन्त फडके के प्रति आत्मसमपण कर देगा तथा सधि की धाराओ की व्यवस्था के बहाने से उसने अपने दूत सखाराम हरि तथा नानाजी फडके को उसके पास भेज दिया, परन्तु हरिपन्त ने इन दोनो दूतो को ममझा-बुझाकर अपने पक्ष मे मिला लिया। अब ऋतु युद्धयोग्य न रह गयी थी और रघुनाथराव भी व्यवहार रूप से अनिष्टकारी नही रह गया था। उसके पास न सेना थी, न साधन। अत हरिपन्त ने पीछा करना छोड दिया तथा १८ जून को पुरन्दर वापस आ गया। उसको विश्वास हो गया था कि युद्ध अब समाप्त हो गया है। कनल कीटिग युद्ध का विचार नही कर सकता था, क्योकि वर्षा आरम्भ हो गयी थी। व्यवहार रूप मे युद्ध प्रवृत्तियाँ बन्द हो गयी। सभी ने रघुनाथराव का पक्ष त्याग दिया था। शिशु पेशवा इस समय दो वष के ऊपर हो गया था तथा मराठा जाति के स्वामी के रूप मे स्वीकार कर लिया गया था।

इस समय मन्त्रियो ने पुरन्दर के समीप एक विशेप योजना स्वीकार की। उन्होने १९ जून को विशाल शामियाने मे एक भव्य स्वागत समारोह किया। समस्त सरदारो तथा वेतनभागियो को निमन्त्रण मिला तथा उनको आदेश दिया गया कि अपने नये स्वामी पेशवा के प्रति अपनी निष्ठा की शपथ ग्रहण करके, उसको नम्रतापूवक प्रणाम करे तथा प्रथानुसार उसके हाथो से पान ग्रहण करे। तीन घण्टे तक अल्पायु बालक ने इस आयास को विशेष धैयपूवक सहन किया तथा अपनी मधुर क्रीडाशीलता से प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित कर दिया। रघुनाथराव के समस्त उत्साही सहायको मानाजी फडके, सखाराम हरि तथा सदाशिव रामचन्द्र को भी इस समारोह मे उपस्थित होने की आज्ञा दी गयी थी, परन्तु उनका स्वागत पृथक स्थान पर किया गया, क्योकि साधारण सभा मे उपस्थित होने पर उनके गुप्त रूप से कोई अहित कर बैठने की आशका थी। मुधोजी भोसले भी सुदूर नागपुर से इस समारोह मे उपस्थित होने आया था। वृद्ध सखाराम बापू ने सभा के सम्मुख प्रभावशाली भाषण किया, उसने राज्य के प्रति पेशवा परिवार की सेवाओ का वणन किया तथा प्रत्येक व्यक्ति से आशा की गयी कि वह वतमान कठिन परीक्षा के समय पर राज्य के हित मे अभूतपूव परिश्रम तथा प्राणवान प्रयास करेगा। इस प्रभावकारी घटना से दो उद्देश्य सिद्ध हुए—मराठो मे उस समय एकता स्थापित हो गयी तथा रघुनाथराव एक हठी शत्रु के रूप मे अकेला पड गया। अब उसके पास न सेना थी, न उसके पक्ष पर किसी को विश्वास था। उसके निरथक गव तथा साधनहीन स्थिति से उसके अग्रेज मित्रो को भी पूरी घृणा हो गयी थी। मन्त्रिगण बम्बई के अधिकारियो से बराबर उसके समपण की माग करते रहे। रघुनाथराव ने अग्रेजो को इसका अथ यह बताया कि उस पर आरोपित हत्या के लिए वे उसको मृत्यु दण्ड देना चाहते है, यह माग उसी का सकेत मात्र है। अग्रेज इसको अच्छा समझते थे कि वे भगोडे की रक्षा करते रहे। वे अपने शरणागत अतिथि का साथ छोड देना अपमान की बात समझते थे। उन्होने पूना सरकार को उत्तर दिया कि उन्होने पहले ही रघुनाथराव से अपना समथन हटा रखा है, पर पुरन्दर सन्धि की शर्तों के अनुसार वे उसको समर्पित करने के लिए बाध्य नही है। यह मन्त्रियो का काय है कि जिस प्रकार उनकी इच्छा हो, वे उसको पकड ले। पूना प्रशासन मे नाना फडनिस का प्रभाव निरन्तर बढ रहा था तथा रघुनाथराव को पकड लेने के उसके हठ के कारण नवीन कष्ट उपस्थित हो गया था।

९ **धोखेबाज का अन्त**—युद्ध-काय से छुटकारा मिलने पर पूना शासन

की धोखेबाज सदाशिवराव भाऊ की प्रगतियो की ओर गम्भीरतापूवक ध्यान देना पडा। रत्नागिरि गढ के रक्षक रामचन्द्र नायक पराजपे ने, जो मराठा शासन का विश्वस्त अधिकारी था, अपने किसी निजी कारणवश फरवरी मे बन्दी को मुक्त कर दिया। यद्यपि रघुनाथराव को अच्छी तरह मालूम था कि वह व्यक्ति धोखेबाज है, वास्तव मे वह भाऊ नही हे, फिर भी उसने धोखे-बाज की गतिविधियो से लाभ उठाकर मन्त्रियो को निबल कर देना चाहा। विद्रोही ने अनेक अनुचर एकत्र कर लिये थे। इनमे कुछ तो रघुनाथराव के अनुचर थे तथा कुछ वे व्यक्ति थे जो किसी न किसी कारणवश वतमान शासन के प्रति ईर्ष्यालु थे। वह स्वय कोकण से घाट तक के पहाडी भाग को कभी पार न कर सका, परन्तु उसके कुछ अनुचरो ने सिहगढ तक पहुँच जाने का साहस किया। हरिपन्त ने इन अनुचरा को पूणतया परास्त कर दिया तथा इनके नेता रामचन्द्र पराजपे के पुत्र को मार डाला। महादजी सिन्धिया तथा भीमराव पन्से धोखेबाज के पीछे लगा दिये गये जो कोलाबा तथा पेन के माग से बम्बई पहुँचने का प्रयत्न कर रहा था। नवम्बर के आरम्भ मे रघुजी आग्रे उसको पकड लेने मे सफल हो गया तथा उसको महादजी सिन्धिया के सुपुद कर दिया गया जो उस समय कोलाबा पहुँच गया था। पन्से ने विद्रोही के अनुचरो को बोरघाट के नीचे सुविधापूवक तितर-बितर कर दिया। महादजी तथा रघुजी बन्दी को उसके सहायको सहित कठोर पहरे मे तालेगाम के माग से पूना ले आये। पूना के प्रमुख नागरिको की सभा ने, जिसमे रामशास्त्री, हरिपन्त, कृष्णराव काले, बाबूजी नायक तथा कुछ व्यापारी और साधारण जन सम्मिलित थे, एक सप्ताह तक अपराधी की परीक्षा ली तथा समस्त वणनो को लेखबद्ध किया। उसने अपने आरम्भिक जीवन की कथा सुनायी तथा उन लोगो के नाम बताये जिन्होने उसको इस दुष्ट योजना मे फँसा दिया था। उसको दोषी घोषित किया गया तथा मृत्युदण्ड दिया गया। सब लोगो को भलीभाँति दिखाने के उद्देश्य से पूना की सडको पर उसका प्रदशन किया गया तथा १८ दिसम्बर, १७७६ ई० को तीसरे पहर उसका बध कर दिया गया। जिन्होने उसके पक्ष का समर्थन किया था, उन्हे भी कुछ हल्के दण्ड दिये गये।

तिथिक्रम

अध्याय ३

१० जनवरी, १७७५	रघुनाथराव के पुत्र बाजीराव का जन्म।
१० जनवरी, १७५५	नेलसन का बम्बई आना तथा पश्चिमी तट पर कुछ बन्दरगाहो का निरीक्षण करना।
४ जुलाई, १७७६	अमरीकी स्वतन्त्रता की घोषणा।
अगस्त, १७७६	रघुनाथराव का सूरत से भागना तथा पुतगाली शरण की प्राथना करना।
११ नवम्बर, १७७६	रघुनाथराव का एक ब्रिटिश पोत पर तारापुर से बम्बई को प्रस्थान करना।
जनवरी, १७७७	आनन्दीबाई तथा उसका पुत्र हस्तगत तथा मण्डलेश्वर मे बन्दी।
जनवरी, १७७७	महादजी सिन्धिया द्वारा कोल्हापुर के विरुद्ध प्रयाण।
माच, १७७७	मोस्टिन का पूना पहुँचना तथा अपटन को मुक्त करना।
१५ माच, १७७७	सेन्ट लूबिन का चेउल मे उतरना तथा पूना को जाना।
१५ माच, १७७७	हैदर द्वारा गुट्टी पर चढाई तथा मुरारराव को बन्दी बनाकर ले जाना।
१२ जुलाई, १७७७	गगाबाई की पुरन्दर मे मृत्यु।
१५ सितम्बर, १७७७	रामराजा का साहू द्वितीय को गोद लेना।
९ दिसम्बर, १७७७	रामराजा की मृत्यु।
२३ माच, १७७८	हेस्टिग्ज द्वारा पूना के विरुद्ध युद्ध घोषणा।
२६ माच, १७७८	मोरोबा फडनिस द्वारा बलपूवक पूना मे सत्ता हस्तगत।
३० माच, १७७८	महादजी द्वारा कोल्हापुर मे काय समाप्त तथा पूना के लिए प्रस्थान।
मार्च, १७७८	कनल लेस्ली द्वारा कालपी पर अधिकार तथा बुन्देलखण्ड मे प्रवेश।
१२ जून, १७७८	महादजी तथा सखाराम बापू का पूना के समीप मिलन।
१० जुलाई, १७७८	अग्रेजो का चन्द्रनगर को हथियाना।

१० जुलाई, १७७८	मोरोबा फडनिस बन्दी तथा २० वर्ष तक नजरबन्द।
१२ जुलाई, १७७८	सेन्ट लूबिन पूना से अन्तिम रूप मे विदा।
१६ अक्तूबर, १७२८	अग्रेजो का पाण्डिचेरी हथियाना।
अक्तूबर, १७७८	कनल लेस्ली की मृत्यु तथा उसके स्थान पर गोडाड की नियुक्ति।
२४ नवम्बर, १७७८	रघुनाथराव का ब्रिटिश सेना सहित बम्बई से पूना को प्रस्थान।
दिसम्बर, १७७८	गोडार्ड का सम्पूण सेना सहित नर्मदा को पार करना।
१ जनवरी, १७७९	मोस्टिन की मृत्यु।
४ जनवरी, १७७९	कार्ला मे कैप्टिन स्टुअर्ट का बध।
८ जनवरी, १७७९	रघुनाथराव तथा अग्रेजो का वडगॉव पहुँचना।
९ जनवरी, १७७९	रघुनाथराव तथा अग्रेज घेर लिये जाते है।
१४ जनवरी, १७७९	ब्रिटिश दूतो द्वारा आत्मसमपण की शर्तों की प्राथना।
१६ जनवरी, १७७९	बडगॉव के समझौते पर हस्ताक्षर।
१७ जनवरी, १७७९	रघुनाथराव का अपनी समस्त मण्डली सहित महादजी को आत्मसमर्पण।
२४ फरवरी, १७६९	रघुनाथराव का झॉसी को प्रयाण।
२७ फरवरी, १७७९	सखाराम बापू राजद्रोह के कारण कैद मे।
२१ अप्रैल, १७७९	पेशवा का यज्ञोपवीत सकार तथा पूना मे आगमन।
अप्रैल, १७७९	रघुनाथराव द्वारा नमदा पर अपने रक्षको की हत्या तथा सूरत को पलायन।
२ अगस्त, १७८१	सखाराम बापू की रायगढ मे मृत्यु।

अध्याय ३

ब्रिटिश चुनौती

[१७७६–१७७९ई०]

१ बार भाइयो की समस्याएँ। **२ भारतीय राजनीति मे अन्तर-राष्ट्रीय तत्त्व।**
३ मोरोबा फडनिस द्वारा विश्वासघात। **४ अग्रेजो का तलेगॉव मे पराभव।**
५ महादजी घटनास्थल पर। **६ रघुनाथराव का नवीन प्रपच।**

१ **बार भाइयो की समस्याएँ**—रघुनाथराव के अग्रेज सरक्षको को उसके जीवन तथा आचरण से इस प्रकार घृणा हो गयी कि उन्होने उसकी गतिविधि पर प्रतिबन्ध लगा दिया तथा नजरबन्द के रूप मे उस पर पहरा बैठा दिया। एक बार सूरत मे वह एक गुजराती व्यापारी की लडकी को भगा ले गया, जिसके कारण घोर उपद्रव उठ खडा हुआ तथा लोगो को अग्रेजो से द्वेष हो गया। इस प्रकार रघुनाथराव को सूरत मे अपना जीवन बहुत कष्टमय प्रतीत हुआ तथा उसको विश्वास हो गया कि उसके अग्रेज मित्र किसी भी क्षण उसको पूना के मन्त्रियो के हाथो मे दे देंगे। अत उसने गोवा के पुतगाली शासन से सुरक्षा प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इस उद्देश्य से वह अगस्त, १७७६ ई० मे सूरत से चल दिया। वह दमन तथा तारापुर होकर आगे बढ रहा था। उसको अकस्मात पता चला कि गणेश पन्त बेहेरे के अधीन पूना के एक दल ने उसका मार्ग रोक रखा है। अति विपत्तिग्रस्त दशा मे उसने तुकोजी होलकर को मध्यस्थ बनाकर पूना के मन्त्रियो को एक नम्रतापूण पत्र लिखा, जिसमे उसने अपनी अधीनता का प्रस्ताव किया तथा उनसे दया याचना करते हुए नमदा तट पर अपने सुखपूण निवास के प्रबन्ध का अनुरोध किया। इस समय महादजी सिन्धिया बम्बई के समीप था, क्योकि वह धोखेबाज सदाशिवराव भाऊ का पीछा कर रहा था। उसने रघुनाथराव को भी पकड लेने का यत्न किया। अपने जीवन के लिए भयभीत होकर रघुनाथराव अपने पुत्र अमृतराव सहित ११ नवम्बर को एक ब्रिटिश पोत द्वारा तारापुर से बम्बई भाग गया। उस समय उसकी पत्नी आनन्दीबाई धार मे घेरे मे पडी हुई थी। वहाँ पर उसने

पूना के शत्रुओ से वीरतापूवक अपनी रक्षा की। धार मे १० जनवरी, १७७५ ई० को उसने एक पुत्र को जन्म दिया जिसने बाद मे बाजीराव द्वितीय के नाम से पेशवा होकर मराठा राज्य के अन्तिम सवनाश को पूण कर दिया। १७७७ ई० के आरम्भ मे धार के स्थान पर पूना की सेना ने आनन्दीबाई तथा उसके पुत्र को हस्तगत कर लिया, तथा अहल्याबाई के आश्वासन पर उनको मण्डलेश्वर मे रहने की आज्ञा दे दी। स्वय अहल्याबाई मण्डलेश्वर से लगभग १२ मील पश्चिम मे स्थित महेश्वर मे रहती थी। आनन्दीबाई अपने पति से १७७९ ई० मे मिली, जब उसने तलेगॉव के स्थान पर मन्त्रिमण्डल के समक्ष आत्मसमपण कर दिया था।

पुरन्दर की सन्धि की रचना के बाद पूरे एक वष तक कनल अपटन पूना मे ठहरा रहा। मन्त्रिगण सन्धि की सब शर्ते पूरी न होने तक उसके जाने की आज्ञा नही देना चाहते थे। एक बार उसने धमकी दी कि वह अकस्मात चल देगा, तब मन्त्रियो ने उसके स्थान पर दूसरा उत्तरदायी व्यक्ति भेजने की प्राथना की। इस पर बम्बई के अधिकारियो ने माच, १७७७ ई० मे मोस्टिन को पुन पूना भेज दिया। इस प्रकार मुक्त होकर अपटन हैदराबाद तथा मसुलीपाटन के माग से कलकत्ते वापस चला गया।

पुरन्दर के सन्धि-पत्र पर स्पष्ट रूप से अल्पवयस्क पेशवा माधवराव नारायण के नाम मे हस्ताक्षर किये गये थे। अत उसके बाद रघुनाथराव वैधानिक रूप से उस सन्धि की उपेक्षा नही कर सकता था। ब्रिटिश तथा अन्य बाह्य शक्तियो के साथ पत्र-व्यवहार मे वह कुछ समय तक अपने को पेशवा कहता रहा। १७७७ ई० के आरम्भ मे मन्त्रिगण साधारण प्रशासन की ओर ध्यान देने के लिए निश्चिन्त थे तथा रघुनाथराव भी बम्बई मे अग्रेजो के अतिथि के रूप मे शान्त था। आर्थिक कष्ट को दूर करने के लिए पूना के मन्त्रियो ने सवप्रथम कर-सग्रह के काय का सगठन किया, शान्तिमय जीवन के उपायो का आरम्भ किया तथा नवीन कर लगाये। उन्होने हैदरअली की ओर भी ध्यान दिया, जिसने गत कुछ वर्षों से कर्नाटक मे उपद्रव मचा रखा था। उसने गुट्टी के मुरारराव को अधीन कर लिया, जिसका अस्तित्व इस समय सवथा उसकी दया पर निभर था। १७७७ ई० के आरम्भ मे हैदरअली ने गुट्टी को भूमिसात कर दिया, मुरारराव को पकड लिया तथा उसको काबुल दुर्ग के कठोर कारावास मे डाल रखा था। जब यह समाचार पूना पहुँचा तो हरिपन्त को शीघ्रतापूवक मुरारराव की सहायता के निमित्त भेजा गया, परन्तु इसमे अति विलम्ब हो गया था।

हमने पहले ही देख लिया है कि पूना के मन्त्रियो की सभा किस प्रकार

अस्तित्व मे आई तथा घोर शत्रुदल के समक्ष उसने किस प्रकार सफलता प्राप्त की। घटनाचक्र के शीघ्र परिवतन के कारण उस सस्था के मूल-सगठन मे परिवतन हो गया, जिसके परिणाम स्वरूप केवल बापू तथा नाना इसके स्थायी सदस्य रह गये। इन दोनो मे भी बापू राज्यकाय पर अपना नियन्त्रण शीघ्र गति से खो रहा था तथा सत्ता शीघ्र ही अकेले नाना के हाथो मे एकत्र हो रही थी। बापू की नीति की टक्कर नाना के कठोर तथा दृढ आचरण से हुई—विशेषकर उन दण्डो के सम्बन्ध मे जो वह रघुनाथराव के अनुचरो तथा साथियो को देना चाहता था। बापू ने क्षमा तथा दया के पक्ष का समथन किया। नाना उग्र तथा अडिग था। इसका परिणाम यह हुआ कि पुराने घाव बहते ही रहे। नाना ने अविराम गति से प्रत्येक अपराधी का पता लगाया ओर उसको परिवार तथा सम्बन्धियो सहित दण्ड दिया।

इसका एक उपयुक्त उदाहरण सखाराम हरि के साथ किया गया व्यवहार है। वह वीर तथा अनुभवी सरदार था। रघुनाथराव के प्रति उसकी निष्ठा थी, इसलिए उसने मन्त्रियो के सामने घुटने टेक्ने से इनकार कर दिया, यद्यपि जून, १७७६ ई० मे वह विधिपूवक उनकी सेवा मे वापस आगया था। शीघ्र ही उस पर विश्वासघात का सन्देह हुआ तथा वह तीन वष तक (अक्तूबर, १७७६ ई० से नवम्बर, १७७६ ई० तक) कारावास मे रखा गया और उसकी स्वाधीनता पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। उसकी पत्नी तथा बच्चो का भी अपमान किया गया तथा उनको क्लेश दिया गया। उसकी मृत्यु कारागार मे हुई। वह अपनी अन्तिम श्वास तक बन्दी बनाने वालो को शाप देता रहा तथा रघुनाथराव के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करता रहा।

इस प्रकार के अनेक सन्देहास्पद व्यक्ति थे, जिनमे से कुछ प्रमुख थे—चिन्तो विट्ठल, मानाजी फडके, आबाजी महादेव, तथा सदाशिव रामचन्द्र। मानाजी अपने प्राण बचाने मे सफल हो गया, परन्तु रघुनाथराव तथा उसके परिवार के प्रति वह अपनी निष्ठा मे अडिग रहा। इसी प्रकार गार्दी नेताओ का पता लगाया गया। रघुनाथराव के व्यक्तिगत सेवक तुलाजी पवार को हेदरअली ने शरण दे रखी थी। परन्तु जब १७७९ ई० मे हैदरअली तथा नाना फडनिस के बीच मैत्री सम्बन्ध हो गया तो उसने अपराधी मन्त्री को सौप दिया, जहा शारीरिक यातनाएँ देने के बाद उसका बध कर दिया गया। खडगसिह सदैव सूरत तथा बम्बई मे अपने स्वामी के साथ रहा था। १७७९ ई० मे तलेगॉव मे जब उसने आत्मसमपण कर दिया तो उसके साथ भी उसी प्रकार का व्यवहार किया गया।

इस सम्बन्ध मे यह स्मरण रखना आवश्यक है कि नाना फडनिस ने अपने सहकारियो-बापू तथा मोरोबा को भी दण्ड देने से नही छोडा, क्योकि उन्होने मेल-मिलाप और समझौते द्वारा रघुनाथराव के साथ स्थायी सम्बन्ध स्थापित करने का यत्न किया था। न्याय-अन्याय की भावना को छोडकर इस प्रकार के प्रतिशोधपूर्ण कार्यो के कारण भी राज्य के कई शक्तिशाली अग उससे विमुख हो गये तथा समस्त सत्ता एक व्यक्ति के हाथो मे केन्द्रित हो गयी। यदि नाना की नीति मे पुराने शत्रुओ के प्रति दया तथा क्षमा का पुट होता तो उसका माग सम्भवत निष्कण्टक हो जाता और वह राज्य की सेवा अधिक उत्तम रूप से कर सकता। आनन्दीबाई तथा रघुनाथराव को नाना की ओर से सदैव भयानक दण्ड की आशका रही, इसीलिए उन्होने यथाशक्ति प्रयत्न किया कि युद्ध निरन्तर होता रहे ओर पूना सरकार के लिए सकट उत्पन्न होते रहे। जब तक सत्ता बापू के हाथ मे रही, तब तक विभिन्न विरोधी तत्त्वो का विवेक-पूण अनुरजन तथा नियन्त्रण किया गया। यह काय प्राय मैत्रीपूण प्रोत्साहन, अनुनय-विनय तथा स्पष्टीकरण द्वारा सम्पन्न किया जाता था। लोगो को प्रेरणा दी जाती थी कि वे व्यक्तिगत हित का विचार न करके उच्च राष्ट्रीय आदर्श के निमित्त अपने-अपने काय मे अग्रसर हो। नाना का स्वभाव गोपनीयता को पसन्द करने वाला, विरोधी तथा प्रतिशोधपूण था। वह पीडाजनक तथा क्रूर उपायो का अवलम्बन करता था। उसका आग्रह तत्त्व की अपेक्षा शब्दो पर अधिक रहता था। इन कारणो से आगे चलकर मराठा राज्य के प्रशासकीय कार्यों मे बहुत हानि पहुँची।

२ **भारतीय राजनीति मे अन्तरराष्ट्रीय तत्त्व**—जब १७७६ ई० के नवम्बर मास मे मन्त्रियो को मालूम हुआ कि बम्बई के अधिकारियो ने गम्भीर सन्धि को स्पष्टतया भग करते हुए रघुनाथराव को अपना पूर्ण समथन दे दिया है तो उन्होने पेशवा माधवराव नारायण के नाम के आधार पर कनल अपटन को प्रबल विरोधपत्र लिखकर भेजा। इस पत्र मे उन महत्त्वपूण घटनाओ का स्पष्ट वर्णन है जहाँ पर बम्बई शासन ने पुरन्दर की सन्धि के अनुच्छेदो का तिरस्कार किया था और वह भी उस राजदूत की उपस्थिति मे जिसके द्वारा इस सन्धि की रचना की गयी थी।[1] परन्तु इस प्रदशन तथा विरोधपत्र से कुछ लाभ न हुआ। रघुनाथराव ने कहा कि दोनो शक्तिशाली सरदार, सिन्धिया तथा होलकर, पूना शासन के शत्रु है, जिसके कारण बाह्य जगत मे

---

[1] फोरेस्ट, मराठा ग्रन्थमाला, जिल्द १, पृ० २८६

पूना शासन का गौरव घट गया। वास्तव मे पुरन्दर की सन्धि द्वारा किसी प्रश्न का समाधान नही हुआ था। इसके कारण पूना की मन्त्रिपरिषद पर भारी आर्थिक सकट आ पडा था तथा उसको अपने न्यायसगत हितो का बलिदान करना पडा था। निजामअली का अनुरजन करने के लिए उनको विशाल क्षेत्र छोडने पडे थे। हैदरअली ने कर्नाटक के विस्तीण भागो पर अधिकार कर लिया था। कोल्हापुर के राजा ने, खानदेश के कोलियो ने तथा मराठा राज्य के अन्य सामन्तो ने चारो दिशाओ मे विद्रोह कर दिया था, जिससे शासन की शक्ति को क्षति पहुँच रही थी तथा मन्त्रिपरिषद की स्थिति सकटपूण हो गयी थी। इस समय केवल महादजी सिन्धिया की निष्ठा अचल रही तथा उसने परिस्थिति के सुधरने मे सहायता दी। अन्यथा इस सकटमय अवसर पर मराठा शासन विनाश की सीमा तक पहुँच गया था। इस प्रकार पुरन्दर की सन्धि के बाद के दो वष उन भयानक प्रयत्नो का परिचय देते हे जो रघुनाथराव ने पूना मन्त्रिमण्डल की शक्ति का सवनाश करने के लिए किये, पर उनसे उसको कोई लाभ नही हुआ। उसने वारेन हेस्टिग्ज, ब्रिटेन के राजा तथा वहाँ के अधिकारियो को बारम्बार प्रबल पत्र लिखे। उसने मराठा सरदारो, पुतगाल जैसी विदेशी शक्तियो, उत्तरी राजपूत तथा अन्य शक्तियो की ईर्ष्यालु प्रवृत्तियो को उत्तेजना दी। स्वय पूना मे उसने बापू तथा मोरोबा फडनिस की भावनाओ पर इस प्रकार प्रभाव डाला कि मुख्य उद्देश्य के प्रति उनकी सहानुभूतिया शान्त होने लगी।

१७७६ ई० की समाप्ति के लगभग रघुनाथराव बम्बई पहुँचा। बम्बई के अधिकारियो ने उसका स्वागत तथा समथन किया। सूरत की सन्धि की मूल भावनाओ के पालनाथ उन्होने एक निश्चित योजना की रचना की, चाहे उनको स्पष्ट युद्ध ही क्यो न करना पडे। उन्होने इगलैण्ड की सरकार को पहले ही शक्तिशाली निवेदन पत्र भेज दिया था, जिसमे उन्होने हेस्टिग्ज तथा उसकी कौसिल के हस्तक्षेप का विरोध किया गया था तथा सूरत की सन्धि के पालनार्थ निश्चित आदेशो की प्राथना की गई थी। पाठको को ज्ञात है कि कलकत्ता की कौसिल मे व्यक्तिगत ईर्ष्याओ के कारण घोर मतभेद था, तथा अपने ही निर्णायक मत के बल पर हेस्टिग्ज शासन चला रहा था।

इस समय भारत मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी की गतिविधि पर प्रभाव डालने वाले अन्तरराष्ट्रीय तत्त्व भी उपस्थित थे। इगलैण्ड के अमरीकी उपनिवेशो ने ४ जुलाई, १७७६ ई० को अपनी स्वाधीनता की घोषणा करके युद्ध आरम्भ कर दिया था, जिसमे फ्रास ने इगलैण्ड के विरुद्ध उपनिवेशो का साथ दिया था।

१७७७ ई० के अन्त के समीप इगलैण्ड को घोर पराजय सहन करनी पडी और जनरल बर्गोइन को अमरीका के जनरल गेट के सामने अपने समस्त दल सहित आत्मसमपण करना पडा था। इन विपत्तियो के समाचार भारत मे १७७८ ई० के आरम्भिक मासो मे प्राप्त हुए तथा उनके कारण हेस्टिग्ज की महत्त्वाकाक्षा जाग्रत हो गयी कि भारत मे नवीन साम्राज्य की स्थापना द्वारा वह इगलैण्ड की खोयी हुई समृद्धि की पूर्ति कर दे। इस बीच बम्बई कोसिल का निवेदन प्राप्त करने के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गृहाधिकारियो ने यह निश्चिय कर लिया था कि कलकत्ता कोसिल की आपत्तियो को रद्द कर दे तथा भारत की मुख्य भूमि बम्बई के समीप कुछ मराठा प्रदेशो पर अधिकार कर सकने के अवसर से लाभ उठाये। ये प्रदेश उनके लिए अत्यन्त आवश्यक थे, क्योकि उनके आवास को अन्न, पशु तथा इधन वही से प्राप्त होते थे।

पूना की सभा को इन घटनाओ की प्रवृत्ति का बोध हो गया तथा वह साहस तथा धैय द्वारा परिवर्तित परिस्थिति का सामना करने को तैयार हो गयी। इसका श्रेय फडनिस को हे। ब्रिटिश नीति के कष्टप्रद स्वभाव, उनके द्वारा सन्धियो के प्रत्यक्ष गम्भीर उल्लघन तथा उनकी दुष्ट महत्त्वाकाक्षा का उसने कठोरता से विरोध किया। नाना को पूरा पता था कि बम्बई तथा कलकत्ता मे क्या हो रहा है। यह पता पाकर कि फ्रास ने इगलैण्ड के विरुद्ध युद्ध-घोपणा कर दी हे, उसने निश्चय कर लिया कि ब्रिटिश आक्रमण के सन्तुलन के रूप मे वह फ्रेच लोगो से मैत्री कर ले। सेण्ट ल्यूबिन नामक एक फ्रेच व्यक्ति १५ माच, १७७७ ई० को बम्बई के निकट चेउल के स्थान पर उतरा। उसके पास बहुत-सी विक्रय सामग्री थी। उसने पूना जाकर व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने की सुविधाओ के लिए मराठा सरकार से प्राथना की। उसने अपने को फ्रास के राजा का विश्वासपात्र दूत बताया। फ्रास के साथ मैत्री स्थापित करने के इस अवसर का नाना फडनिम ने स्वागत किया, जैसा कि हैदरअली पहले ही कर चुका था। उसने स्वच्छन्द रूप से विपुल प्रदशन सहित सेण्ट ल्यूबिन का सत्कार किया। ठीक इसी क्षण पर (माच १७७७ ई०) मोस्टिन पूना आ पहुँचा तथा उसने कनल अपटन को कायभार से मुक्त कर दिया। मोस्टिन के आगमन की ओर ध्यान नही दिया गया तथा उसका स्वागत इतना निष्प्राण रहा कि उसमे और फ्रेच दूत के लिए किये गये सोत्साह स्वागत मे विचित्र विषमता स्पष्ट थी। नाना फडनिस ने फ्रेच पुरुष के स्वागताथ विशेष तैयारियाँ की। उसकी यात्रा के लिए आज्ञापत्र तुरन्त ही दे दिये गये,* यात्रा की सुविधाएँ भी तुरन्त प्रस्तुत कर दी गयी तथा जो सामग्री वह

अपने साथ लाया था, उस पर सीमा शुल्क (चुगी) भी नही लिया गया। बोग्घाट पर अतिथि की अभ्यथना करने तथा उसे विशेष सम्मान सहित पूना ले आने के लिए एक हौदे सहित सुसज्जित हाथी, विपुल रक्षादल तथा कुछ मुख्य अधिकारी भेजे गये। वे उसको पुरन्दर ले गये, जहाँ खुले दरबार मे बालक पेशवा ने उसका स्वागत किया। वहा पर सेण्ट ल्यूबिन ने एक विशाल चित्र दिखाया, जिसमे अतिम पेशवा की हत्या का दृश्य अकित था। इस पर दुख की धारा उमड पडी तथा कुछ दशको के आसू भी निकल पडे। यह चित्र फ्रास मे बनाया गया था तथा वह फ्रेंच पुरुष इतनी दूर से उसको यहाँ लाया था।

सेण्ट ल्यूबिन पूना मे एक वष से अधिक ठहरा तथा उसने प्रयास किया कि चेउल अथवा दाण्डा का बन्दरगाह राजगढ तथा कोलोई के समीपस्थ दुर्गों सहित उसको दे दिया जाये। नाना फडनिस ने उससे फ्राम के साथ रक्षात्मक मैत्री का प्रस्ताव किया तथा ब्रिटेन के विरुद्ध पूना मन्त्रिमण्डल द्वारा छेडे गये युद्ध के लिए समथन चाहा। सेण्ट ल्यूबिन ने कहा कि वह ढाई हजार यूरोपीय सैनिक उपस्थित करेगा जो स्थल तथा जल सम्बन्धी अस्त्र-शस्त्रो तथा अन्य सैन्य सामग्री से सुसज्जित होगे। इनके अतिरिक्त वह दस हजार भारतीयो को पश्चिमी शैली पर युद्ध के लिए प्रशिक्षित कर देगा। नाना भली-भाँति जानता था कि ल्यूबिन प्रामाणिक राजदूत नही है, परन्तु ब्रिटेन को धमकी देने के लिए साधन के रूप मे उसका उपयोग किया गया।

पूना मे मोस्टिन के दीघकालीन निवास से मन्त्रियो को उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियो का पर्याप्त प्रमाण मिल गया था। इस समय जब वह अपटन को काय-भार से मुक्त करने आया तो उसको पुरन्दर की सन्धि अस्वीकृत करके रघुनाथ-राव को पूना मे पुन स्थापित करने की अपनी अपूण योजना को पूण करने की लगन थी। नाना फडनिस ने इस प्रवृत्ति को रोकना अपना कतव्य समझा तथा इस काय के लिए उसे अपनी स्थिति सुदृढ करने के लिए सेण्ट ल्यूबिन से नवीन स्फूर्ति मिली। मोस्टिन ने जो अपने स्वागत पर जानबूझकर प्रदर्शित की गयी उपेक्षा पर रुष्ट था, किस मम वेदना से इन घटनाओ का अवलोकन किया होगा, इसका सरलता से अनुमान किया जा सकता है। मोरोबा फडनिस को प्रलोभन देकर उसने नाना की योजना का काट तैयार कर लिया। १७७८ ई० की ग्रीष्म ऋतु मे इस सकट वेला का पूण विकास हो गया। पूना मे सेण्ट ल्यूबिन के कार्यो तथा अमरीका मे पराजय का वारेन हेस्टिग्ज के विचारो तथा नीति पर यह प्रभाव पडा कि उसने पूना के मन्त्रियो के प्रति अपने पूव मैत्रीपूण विचारो को त्याग दिया तथा उनके साथ खुले युद्ध की घोषणा करके

एकदम विपरीत हो गया। उसने गृहाधिकारियो से प्राप्त निर्देशो का परित्याग कर दिया जिनमे कहा गया था कि वह रघुनाथराव के हित मे नवीन युद्ध को स्वीकार न करे। ये निर्देश जिन पर लन्दन ४ जुलाई, १७७७ ई० की तिथि अकित हे, इस प्रकार है

"जब तक राघोबा आपके साथ हे, आप उसको पूना मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध किसी भी योजना की रचना कर सकने से अवश्य रोके। हम इस निर्देश द्वारा आपको स्पष्ट आज्ञा देते हे कि निर्देशको की सभा की स्वीकृति के बिना आप उसको अपनी स्थिति पुन प्राप्त करने की किसी भी योजना मे साथ देने के सम्बन्ध मे कोई भी वचन न दे। इनके साथ ही आप आक्रमण से उसकी शरीर-रक्षा अवश्य करे।"[२]

इन आज्ञाओ के होते हुए भी वारेन हेस्टिग्ज ने पुरन्दर की सन्धि का तिरस्कार कर दिया तथा २३ माच, १७७८ ई० को बम्वई कौसिल को अधिकार दे दिया कि वह रघुनाथराव को पूना ले जाये तथा उसे अपने द्वारा नियोजित पुरुष के रूप मे पेशवा की गद्दी पर बैठा दे एव पश्चिम तटवर्ती मराठा प्रदेशो को हस्तगत कर ले। अपने सभासदो फ्रासिस तथा ह्वीलर के परामश के विरुद्ध हेस्टिग्ज ने बम्बई को आज्ञा दे दी कि पुरन्दर के सन्धिपत्र द्वारा समाप्त युद्ध को वे पुन आरम्भ कर दे। इस काय के लिए उसने तुरन्त एक विशेष सुसज्जित सेना को भेज दिया, जिसने इलाहाबाद से बुन्देलखण्ड होकर स्थलमाग द्वारा प्रयाण किया। इस दल का कमान अधिकारी कनल लेस्ली नियुक्त हुआ। २६ फरवरी, १७७८ ई० को हेस्टिग्ज ने बम्बई को लिखा—"अपने सामथ्य के अनुसार आपको अत्यन्त प्रभावकारी सहायता देने के लिए हमने कालपी के समीप एक दल एकत्र कर लिया हे तथा सुविधापूण माग से बम्बई को प्रयाण करने की उसे आज्ञा दे दी है। हम दूसरे लोगो के इन प्रयत्नो से अत्यन्त भयभीत हे कि वे मराठा राज्य मे राजनीतिक प्रभाव प्राप्त करने के लिए मलाबार समुद्र-तट पर आवास स्थान प्राप्त कर लेगे। इसका उद्देश्य यही हो सकता है कि हमारा बम्बई का आवास नष्ट कर दिया जाये। चूकि चेउल के गढ मे हमारी कोई सम्पत्ति नही है, अत हम आपको यह अधिकार नही दे सकते कि आप उस स्थान पर फ्रेच लोगो के पैर न जमने दे। सीधा युद्ध आरम्भ करके आप किसी भी कारण आक्रान्ता न बन जाये।" हेस्टिग्ज ने फ्रेच अधिकृत प्रदेश चन्द्रनगर पर १० जुलाई, १७७८ ई० को तथा

---

[२] फोरेस्ट, जिल्द १, पृ० ३१४

पाण्डिचेरी पर आगामी १६ अक्तूबर को अधिकार कर लिया। इस प्रकार मराठे तथा फ्रेंच दोनो के विरुद्ध युद्ध आरम्भ करने का सुलभ कारण उसको आग्ल-फ्रेंच युद्ध मे प्राप्त हो गया।[3]

यह देखने की बात हे कि प्रथम आग्ल-मराठा युद्ध (१७७४-१७८३ ई०) के समय का इतिहास पहले बम्बई मे हानबी तथा मोस्टिन की, तत्पश्चात् कलकत्ते मे वारेन हेस्टिग्ज की विकल महत्त्वाकाक्षा को पूणत प्रकट करता है। राज्य हथियाने की महत्त्वाकाक्षा को तृप्त करने तथा भारत मे नवीन प्रदेशो की प्राप्ति के द्वारा अमरीकी उपनिवेशो की क्षति को पूरा करने की इच्छा से ही ब्रिटिश अधिकारियो ने भगोडे पेशवा रघुनाथराव को आश्रय दिया तथा उसका समथन किया। मराठो की पारिवारिक फूट पेशवा के परिवार तक ही सीमित न थी। नागपुर के भोसले तथा बडौदा के गायकवाड परिवारो मे भी उसी प्रकार की पारिवारिक कलह उपस्थित थी। इन राज्यो के कार्यो मे हस्तक्षेप करने मे भी अग्रेजो ने विलम्ब नही किया। अपने व्यापार के लिए उनको सूरत के क्षेत्र का लोभ था, जिस पर गायकवाड का अधिकार था। उनके दोनो पूर्वीय प्रान्तो को दो राज्य असुविधाजनक रूप मे एक दूसरे से अलग करते थे। उडीसा पर नागपुर का अधिकार था तथा गजम पर निजाम का। ब्रिटिश सचार के लिए पूरबी समुद्र-तट की समस्त पट्टी को जोडना आवश्यक था। अत उन्होने इन सरदारो के कार्यो मे भी हस्तक्षेप करने के कारण ढूढ निकाले। ब्रिटिश राजनीति ने सावधानी से प्रगति की तथा विस्तार के किसी भी अवसर को हाथ से न जाने दिया। शायद यह घटना सुविदित नही है कि बोनापाट के भावी प्रतिद्वन्द्वी होरेशियो नेल्सन ने १७७५ ई० मे प्रथम मराठा युद्ध के समय बम्बई का दौरा किया तथा हानबी और मोस्टिन के परामश से कई महीनो तक वह पश्चिमी तट की नाविक सम्भावनाओ का निरीक्षण करता रहा। उसका उद्देश्य इस क्षेत्र मे इगलैण्ड की जलशक्ति को सुदृढ करना था।

३ **मोरोबा फडनिस द्वारा विश्वासघात**—पूना के मन्त्रिमण्डल मे सवप्रथम वे व्यक्ति सम्मिलित किये गये थे जो कूटनीति तथा युद्ध मे योग्यतम हो, परन्तु उस मन्त्रिमण्डल ने सुसगठित सस्था के रूप मे कभी काय नही किया, क्योकि उसका कोई व्यवस्थित सविधान न था। नाना तथा बापू

---

[3] प्लासी का रण, सप्तवर्षीय युद्ध, अमरीकी स्वाधीनता का युद्ध, लाड वेलेजली तथा उसके भाई की भारत मे विजय—ये आग्ल फ्रेंच प्रतिद्वन्द्विता की लम्बी शृखला की कडियाँ है। यूरोपीय राजनीति के दृष्टिकोण से उनका अध्ययन करना चाहिए।

ही केवल दो ऐसे सदस्य थे जो बहुत समय तक कार्य सचालन करते रहे । सभी आज्ञाएँ और सन्देश उन दोनो के सम्मिलित नामो से निकलते थे । नाना का चचेरा भाई मोरोबा लगभग उसी की आयु का था । उसने भूतपूव पेशवा माधवराव के विश्वस्त सचिव के रूप मे लम्बे काल तक काय किया था । अब उसको प्रतीत हुआ कि उसकी उपेक्षा हो रही है । यह बात भी स्पष्ट थी कि वतमान प्रशासन से अपने बहिष्कार पर वह रुष्ट हे और रघुनाथराव के प्रति उसकी सहानुभूति सुविदित हे । उसको अपकार से रोकने के लिए कुछ समय पूव ही उसको मन्त्रिमण्डल मे स्थान दिया गया था तथा दो के स्थान पर तीनो के नाम सरकारी पत्रो मे प्रकट होने लगे थे । कलकत्ते को भी इस परिवतन की सूचना भेज दी गयी, जहाँ से आने वाले पत्र अब तीनो के नाम अलग-अलग आने लगे । परन्तु यह उपाय विनाशक सिद्ध हुआ । जब मोस्टिन दूसरी बार पूना आया तो उसने मोरोबा को पूरी तरह अपने पक्ष मे कर लिया । उसने आकषक युक्तिया द्वारा उसको विश्वास दिला दिया कि अनिष्टकारी नाना का मन्त्रिमण्डल से निराकरण करके युद्ध सरलतापूवक समाप्त किया जा सकता हे । मोरोबा बिना गम्भीर विचार के यह सोचकर इस सुझाव से सहमत हो गया कि अग्रेजा के उद्देश्य तथा उनके कथन सत्यपूण तथा विशुद्ध हे । रघुनाथराव को मनाने तथा नाना को आजीवन बन्दी बनाकर मन्त्रिमण्डल से उसके निराकरण के लिए उन दोनो ने एक गुप्त योजना की रचना की ।

रघुनाथराव के उत्साही पक्षपाती चिन्तो विट्ठल, सदाशिव रामचन्द्र, नानाजी फडके तथा तुकोजी होलकर भी नाना के प्रति घृणा के कारण सत्ता पर अधिकार करने के लिए अति उत्सुक थे । नाना को अपनी निबलता का पता था कि वह सैनिक नही हे, अत उसने सकटमय परिस्थिति मे उपयोग के लिए बुद्धिमत्तापूवक महादजी सिन्धिया का हार्दिक सहयोग प्राप्त कर लिया था । बापू तथा नाना बहुत दिनो से मोरोबा के षडयन्त्रो से सुपरिचित थे । एक बार रघुनाथराव ने गुप्त रूप से नाना तथा बापू की हत्या करने के लिए कुछ व्यक्तियो का उपयोग किया । मोरोबा इस षड्यन्त्र को जानता था, परन्तु चूकि उसके विरुद्ध कोई प्रमाण प्राप्त न हो सका, इसलिए उसको दण्ड नही दिया जा सकता था । यह सिद्ध हो गया कि मोरोबा को मन्त्रिमण्डल मे स्थान देकर बापू तथा नाना ने भूल की है ।

१७७७ ई० के वर्ष मे पूना की सभा कोल्हापुर के राजा के षड्यन्त्रो तथा आक्रमणो के दमन मे व्यस्त थी । उसने रघुनाथराव की प्रेरणा से हैदरअली के साथ पूना की सरकार के विरुद्ध अभियान का सचालन कर रखा था ।

१७७८ ई० के आरम्भ मे पूना सवथा रक्षाहीन था। हरिपन्त उस समय पटवधन लोगो के साथ कर्नाटक मे व्यस्त था। अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिए मोरोबा फडनिस को यह अवसर बहुत शुभ प्रतीत हुआ। जेजुरी जाकर वह तुकोजी होलकर से मिला तथा उसको ५ लाख रुपये देकर अपने पक्ष मे कर लिया। तुकोजी ने पूना सरकार तथा बालक पेशवा के शरीर को हस्त-गत करने मे मोरोबा को सहायता देने का वचन दिया। गत वप (१२ जुलाई, १७७७ ई०) पुरन्दर मे अल्पकालीन असाध्य ज्वर के कारण उसकी माता गगा बाई का देहात हो गया था। केवल नाना फडनिस वहा पर था। सकट का सामना करने के लिए उसके साथ कोई अन्य व्यक्ति न था। सखाराम बापू को उस समय प्रशासन के प्रति कोई रुचि न रह गयी थी तथा नाना की सहायता करने की उसकी कोई इच्छा न थी। रघुनाथराव बम्बई से चलकर पूना मे सत्ता पर अधिकार करने के लिए १७७८ ई० मे पहुँचने वाला था, जहाँ पर मोरोबा तथा तुकोजी उसके स्वागताथ तैयार थे।

मोस्टिन शीघ्रतापूवक ब्रिटिश सैन्य सहित रघुनाथराव की वापसी का प्रबध करने के लिए तुरन्त बम्बई गया। जब नाना को इस गुप्त योजना का सविस्तार पता चला तो वह बहुत घबडा उठा। उसने हरिपन्त तथा महादजी को अनुरोधपूवक सदेश भेजे कि वे शीघ्र से शीघ्र पूना पहुँच जाये। सखाराम बापू ने उदासीन वत्ति धारण कर ली। शायद वह विजयी पक्ष का साथ देने की प्रतीक्षा कर रहा था। नाना के निराकरण मे वह मोरोबा का साथ देने के लिए सहमत हो गया परन्तु बम्बई से रघुनाथराव को लाने मे वह उसका साथ देने को तैयार न था। बापू को भलीभाँति पता था कि यदि रघुनाथराव घटनास्थल पर प्रकट हो गया तो उसके प्रतिशोध का पहला शिकार वह (बापू) ही होगा। मोरोबा ने निश्चय किया कि वह स्वय सर्वोपरि सत्ता पर अधिकार कर ले, बालक पेशवा को पकड ले तथा नाना का निराकरण कर दे। फरवरी मे नाना को पुरदर से अनुपस्थित होना पडा, क्योकि शिवरात्रि महोत्सव के लिए उसको अपने गाँव मेनावली जाना पडा। इसी समय मोरोबा ने पुरन्दर पर आक्रमण किया, परन्तु इसका कुछ परिणाम न हुआ, क्योकि नाना शीघ्र वापस आ गया और उसने महादजी तथा हरिपत के वापस आने तक गढ की रक्षा करते रहने का उपाय कर लिया। रक्तपात से बचने के लिए उसने मोरोबा को अस्थायी विराम सन्धि पर राजी कर लिया। उसने प्रस्ताव किया कि यदि रघुनाथराव तथा अग्रेजो को पूना मे प्रवेश न करने दिया जाये तो वह राजनीति को सवथा त्याग देगा। इस प्रकार मोरोबा २६ माच को पुरन्दर के

गढ मे बापू, चिन्तो विट्ठल तथा बजावा पुरन्दरे की उपस्थिति मे (अन्तिम दो रघुनाथराव के पक्षपाती थे) सत्तारूढ हो गया। गढ के नीचे दरबार किया गया, जहा पर नवीन व्यवस्था के प्रमाण मे पेशवा को नजरे दी गयी। पेशवा परिवार की ज्येष्ठ सदस्या के रूप मे वही रहने वाली पावतीबाई इस अवसर पर उपस्थित थी। मोरोबा ने पूना मे कोष तथा कार्यालय के पत्रो पर अधिकार कर लिया तथा अपना शासन प्रत्यक्ष सन्तोष एव उत्साहपूवक आरम्भ किया।

इस कष्ट का मूल कारण, जिसके फलस्वरूप प्रशासन मे यह परिवतन उपस्थित हुआ, वास्तव मे नाना का फ्रेंच दूत सेण्ट ल्यूबिन को पूना मे स्थान देने का काय था। महादजी तीक्ष्णबुद्धि था। उसने तुरन्त जान लिया कि इस मनुष्य की उपस्थिति के कारण ब्रिटेन का अनावश्यक प्रकोप हो रहा हे। वह जानता था कि भारत मे ब्रिटिश सत्ता दृढतापूवक स्थापित हो गयी है जिसको उखाड फेकना सरल नही हे और फ्रेंच सत्ता अपने पॉव जमाये रखने के लिए भी असमथ हे। अत महादजी ने नाना को परामश दिया कि वह फ्रेंच दूत को निकालकर कष्ट के मूल कारण का निराकरण कर दे। नाना ने इस परामश के महत्त्व को स्वीकार कर लिया तथा मोरोबा को अनुमति दे दी कि वह सेण्ट ल्यूबिन को निकाल दे। उसने स्पष्ट शब्दो मे घोषणा की कि उसने फ्रेंच राष्ट्र के प्रति कोई प्रतिज्ञाएँ नही की थी तथा भविष्य मे वह कभी उनकी मित्रता प्राप्त करने का प्रयास नही करेगा। सेण्ट ल्यूबिन को २५ जून, १७७८ ई० को जाने की विधिपूवक आज्ञा दे दी गयी ओर वह १२ जुलाई, १७७८ ई० को पूना से चल दिया। उसके लिए गाडियो तथा मजदूरो का प्रबन्ध कर दिया गया था, जिससे वह दमन के पुर्तगाली बन्दरगाह तक पहुँच जाये।

मोरोबा ने पूना मे सत्ता पर अधिकार करते ही बम्बई स्थित रघुनाथराव के पास शीघ्र तथा बारम्बार बुलावे भेजे कि वह तुरन्त आ जाये और पेशवा की गद्दी पर बैठ जाये। परन्तु बम्बई के अधिकारियो के पास उस समय पर्याप्त सेना न थी जो रघुनाथराव को सकुशल पूना पहुचा सके। एक और अडचन यह थी कि बम्बई के अध्यक्ष को इगलैण्ड के अधिकारियो तथा गवनर जनरल हेस्टिग्ज दोनो की ओर से आदेश प्राप्त थे कि उसको रघुनाथराव से किसी प्रकार की सन्धि करने का तब तक अधिकार नही हे जब तक केवल प्रधान मन्त्री सखाराम बापू से या उसके साथ अन्य मन्त्रियो से उसको उस आशय का विधिपूबक लिखित निमन्त्रण न प्राप्त हो। सखाराम बापू ने स्पष्ट इनकार कर दिया कि बम्बई के इस प्रकार के निमन्त्रण पर वह कदापि हस्ताक्षर नही करेगा। उसका यह काय उसके द्वारा विश्वासघात का प्रत्यक्ष प्रमाण होता।

केवल मोरोबा के निमन्त्रण को बम्बई के अधिकारी पर्याप्त नही समझते थे। कनल लेस्ली की सेना, जो बुन्देलखण्ड से आ रही थी, अभी तक नही पहुँची थी तथा ऋतु अनुकूल न रहने के कारण रघुनाथराव पूना पहुँचकर मोरोबा की योजना का समथन करने के लिए ठीक समय पर बम्बई से नही चल सका। इस अदृष्ट बाधा के कारण मोरोबा का सवनाश हो गया।

लगभग साढे तीन मास—२ माच से ११ जुलाई तक—मोरोबा फडनिस ने मराठा राज्य के प्रशासन की सम्पूण सत्ता का उपयोग किया। इस समय बापू उदासीन था तथा नाना बालक पेशवा के साथ पुरन्दर मे लगभग बन्दी था। नाना ने कोल्हापुर मे महादजी को तथा कर्णाटक मे हरिपन्त को बारम्बार मौखिक सन्देश भेजने का प्रबन्ध किया। उसने इन सन्देशो मे पूना की परिस्थिति की व्याख्या की तथा उनसे आग्रह किया कि वे तुरन्त अल्पवयस्क पेशवा की सहायताथ आ जाये। यद्यपि रघुनाथराव घटनास्थल पर नही पहुँचा था, परन्तु बिना युद्ध का आश्रय ग्रहण किये हुए मोरोबा को मन्त्रिमण्डल से अलग कर सकने की कोई सम्भावना नही थी। युद्ध के आरम्भ होने पर उसका नियन्त्रण कोई नही कर सकता था। सखाराम हरि तथा रघुनाथराव के अन्य अनुचरो को कारावास से मुक्त करके महत्त्वपूण स्थानो पर नियुक्त कर दिया गया था किन्तु सामान्य मराठा भावना इसके अनुकूल न थी कि रघुनाथराव सत्ता ग्रहण करे।

अप्रैल के अन्त मे महादजी ने कोल्हापुर के विरुद्ध अपने युद्ध को समाप्त कर दिया तथा पूना को प्रस्थान किया। वह सावधानी से अपना माग टटोलता हुआ व्यक्तिगत भावनाओ का अध्ययन करता गया। उसने इस बात का लेशमात्र भी चिह्न प्रकट न होने दिया कि वह किस प्रकार काय करने वाला है। ऊपर से पूना प्रशासन के प्रति उसने सवथा उदासीन वृत्ति धारण कर ली। इस प्रकार उसने मोरोबा के सन्देह को जाग्रत न होने दिया, क्योकि इस विषय मे निर्णायक तत्त्व केवल उसकी शक्तिशाली भुजा थी। मोरोबा ने चिन्तो विट्ठल को बम्बई भेज दिया था कि वह अविलम्ब रघुनाथराव को पूना ले आये। जून के आरम्भ मे महादजी पूना के समीप पहुँच गया तथा हरिपन्त फडके और परशुराम भाऊ कर्नाटक से वापस आकर उसके साथ हो गये। पूना के अधिकाश सम्भ्रान्त जनो को महादजी से मिलने की इच्छा हुई। प्रत्येक ने उसका समथन प्राप्त करने का प्रयत्न किया। मोरोबा, बापू, तुकोजी आदि सबने यथाशक्ति बारी-बारी से मिलने तथा उसके कृपापात्र बनने का प्रयत्न किया। महादजी को परिस्थिति के प्रत्येक विषय का अच्छी तरह ज्ञान था, अत उसने ध्यान रखा कि वह किसी व्यक्ति से भी न

मिले। उसने पूना की ओर अपनी यात्रा के मार्ग को भी प्रकट न होने दिया। बापू के साथ मोरोबा जेजुरी को गया, जहाँ पर महादजी के पहुँचने की आशा थी। परन्तु महादजी मोरगाम को चला गया और मोरोबा उससे न मिल सका। बापू अकेले ही उससे १२ जून को मिला तथा क्षमायाचना की कि वह पेशवा के विरुद्ध मोरोबा के षडयन्त्र मे सम्मिलित हो गया है। बापू ने महादजी से प्रार्थना की कि वह मोरोबा के आगमन का स्वागत करे। महादजी ने पहले तो साफ इनकार कर दिया, परन्तु अगले दिन वह स्वय शिष्टाचार के नाते मोरोबा से मिलने गया, किन्तु वह एक शब्द भी न बोला।

तुकाजी होलकर ही एकमात्र सरदार था जिसके पास युद्ध की सामग्री थी तथा जो महादजी के प्रति बिलकुल भी मित्र भाव न रखता था। महादजी बिना पूर्व सूचना के उससे मिलने पहुँच गया तथा बहुत देर तक उसको निजी तौर पर समझाता-बुझाता रहा। उसने उसके विचारो को जानने का प्रयत्न किया तथा यह स्पष्ट कर दिया कि बालक पेशवा के मुख्य सेवक होने के कारण वे दोनो सम्मिलित रूप से उसके प्रति उत्तरदायी है और किस प्रकार वर्षों तक भारी व्यक्तिगत हानि सहन कर तथा बलिदान करके उन्होने रघुनाथराव को दूर रखा है। यदि वह इस समय उनका स्वामी बन गया तो अग्रेज लोग किस प्रकार समस्त सत्ता का अपहरण कर लेगे। तुकोजी ने इस निवेदन की प्रबलता का अनुभव किया तथा वचन दिया कि जो कुछ भी उपाय महादजी करेगा उसमे वह अपना सम्पूर्ण हार्दिक सहयोग देगा। इसके बाद महादजी ने बापू तथा नाना को अपनी गुप्त बैठक मे सम्मिलित होने के लिए एकत्र किया तथा एक विशिष्ट योजना का निश्चय किया, जिसमे बालक पेशवा के समर्थन के लिए वे सब अपना सहयोग निष्कपट रूप से देने को थे। महादजी ने तुरन्त समस्त योजना को लेखबद्ध करा लिया तथा बापू और नाना को गम्भीर शपथ ग्रहण कराकर उस पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश कर दिया। जून के मध्य तक ये वैधानिक कारवाइया सम्पूर्ण हो गयी। महादजी की आज्ञा पर सखाराम बापू, हरिपन्त तथा परशुराम भाऊ के बीच भी निष्ठा तथा विश्वास की उसी प्रकार की शपथो का आदान-प्रदान हुआ। इस प्रकार उस अवसर पर निश्चेष्ट बार भाइयो की सभा के समस्त प्रमुख सदस्य परस्पर सम्बद्ध हो गये। उस योजना के समर्थन के लिए महादजी तथा तुकोजी दोनो सैनिक नेता अपने सैनिक बल सहित उपस्थित थे। महादजी ने यह भी प्रबन्ध कर लिया कि चिन्तो विट्ठल, नारो गणेश (होलकर का सचिव) तथा ऐसे अन्य दुष्टात्माओ को इस योजना से कठोरतापूर्वक अलग रखा जाये, जिनको रघुनाथराव के प्रति

सहानुभूति थी। नीति के इस भव्य प्रकार का उपयोग महादजी ने गुप्त रूप से किया, जिससे रक्तमय गृहयुद्ध की भयानक सम्भावनाओ से परिपूण परिस्थिति पर उसे नियन्त्रण प्राप्त हो सके। उसने मराठा राज्य के भविष्य के सम्बन्ध मे निपुण परिज्ञान तथा अद्‌भुत दूरदृष्टि का परिचय दिया, जिसन रघुनाथराव को दूर रखकर ब्रिटिश महत्त्वाकाक्षा को समाप्त कर दिया।

अब मोरोबा भय के मारे कापने लगा। उसके साथ कोई दल विशेप न था। केवल सत्ता धारण कर लेना ऐसा अपराध न था जो दण्डनीय हो। परन्तु उसे अपराधी सिद्ध करके दण्ड का भागी बनानेवाले अनेक अपराध सिद्ध हो गये थे। गत वष मोरोबा ने षडयन्त्र किया था कि महादजी को उसके सिन्धिया राज्य से पदच्युत कर दिया जाये तथा उसके स्थान पर मानाजी सिन्धिया को बैठा दिया जाये। इस उद्देश्य से उसने मानाजी को हस्तलिखित पत्र भेजा था जिसमे उसको हैदरअली की सेवा छोडकर शीघ्र पूना आजाने का निमन्त्रण दिया गया था। यह पत्र परशुराम भाऊ के हाथ पड गया और उसने महादजी को दे दिया। इस प्रकार मोरोबा के विरुद्ध काय करने के लिए महादजी का पक्ष सबसे सबल हो गया। उसके पास व्यक्तिगत प्रतिशोध प्राप्त करने का सुपुष्ट आधार था जिसको स्वय मोरोबा ने अपने अल्पकालीन शासन काल मे असावधानी से उपस्थित कर दिया था। महादजी की पैतृक सम्पत्ति का अपहरण करना इस प्रकार की कुचेष्टा थी जिसको वह क्षमा नही कर सकता था। इस प्रकार मोरोबा ने नाना तथा महादजी दोनो की ओर से अपने विरुद्ध कठोर प्रतिशोध को निमन्त्रण दिया था। अपनी भावी दुगति का उसको पहले ही स्पष्ट आभास हो गया था, तथा उसने अत्यन्त किकतव्यविमूढ होकर तुकोजी से प्राथना की कि वह दण्ड से उसकी रक्षा करे। परन्तु तुकोजी अब उसका मित्र न था। मोरोबा अपनी रक्षाथ गुप्त रूप से पूना भाग निकला। परन्तु उसका पीछा किया गया और ११ जुलाई को वह नारो गणेश, बजाबा पुरन्दरे तथा अन्य व्यक्तियो सहित पकड लिया गया जो इस षड्यन्त्र मे उसके साथ थे। मोरोबा तुरन्त कारागार मे डाल दिया गया, तथा नाना ने बापू के साथ प्रशासन सम्बन्धी अपने पूव काय को सँभाल लिया। इस प्रकार राष्ट्र पर आयी घोर विपत्ति शीघ्रता तथा सरलता से टल गयी। इसका श्रेय महादजी को है, जिसने गम्भीर तथा सकटपूण परिस्थिति मे राज्य की रक्षा की। मारोबा ने अपने जीवन के आगामी २२ वष अनेक दुर्गों की काराओ मे कष्टपूवक व्यतीत किये। नाना ने उसको व्यक्तिगत सुविधाए देने मे कृपणता न की। १८०० ई० मे नाना की मृत्यु के बाद

ही वह कारावास से मुक्त हुआ, फिर भी वह अपने क्लेशो से मुक्त न हो सका।

४ **अग्रेजो का तलेगाव मे पराभव**—मोरोबा की योजना असफल हो जाने के कारण रघुनाथराव का पूना मे पुन शक्ति प्राप्त करने का अवसर नष्ट हो चुका था, परन्तु वारेन हेस्टिग्ज द्वारा उत्सुकतापूवक पुन युद्ध छेडने से उसे दुबारा आशा बधने लगी। उसने इस काय के लिए बगाल से सेना, धन तथा सामग्री भेजी और मद्रास के अधिकारिया को भी इस प्रयास मे हाथ बटाने की आज्ञा दी। उसने बम्बई मे हानबी को पूण कार्याधिकार दे दिया। भारत मे आग्ल-फ्रेंच प्रतिस्पर्धा का फल तथा हेस्टिग्ज के कार्यो का अभिप्राय केवल महादजी की समझ मे आया।

वारेन हेस्टिग्ज तत्परतापूवक प्रयत्न कर रहा था कि समस्त उपलब्ध साधनो द्वारा मराठो को पराजित कर दे। सतारा का छत्रपति रामराजा इस समय मृत्यु-शय्या पर था। वारेन हेस्टिग्ज ने मराठा राज्य को किसी प्रकार वश मे करने के उत्साह से प्रयत्न किया कि वह नागपुर के मुधोजी भोसले को छत्रपति बना दे और इस प्रकार मराठा सत्ता के केन्द्र पर सीधा प्रभाव स्थापित कर ले। हेस्टिग्ज के प्रयास के प्रतिकार रूप मे बापू तथा नाना तुरन्त ही मुधोजी के अल्पवयस्क पुत्र रघुजी को पूना ले आये तथा ब्रिटिश हस्तक्षेप के विरुद्ध उसका समथन प्राप्त कर लिया। वह इस समय नागपुर राज्य का प्रमुख पुरुप था। साथ ही मन्त्रियो ने यह भी प्रबन्ध कर लिया कि वे अपने नियोजित व्यक्ति बावी शाखा के त्रिम्बकजी के पुत्र बिठोजी भासले को रामराजा की गोद बैठा दे। वह १५ सितम्बर, १७७७ ई० का गोद ले लिया गया। इस नवीन अधिकारी का नाम शाहू रखा गया। इसके शीघ्र पश्चात् ही ६ सितम्बर को रामराजा का देहान्त हो गया। हेस्टिग्ज इस पर भी निरन्तर प्रयत्न करता रहा कि वह मुधोजी को ब्रिटिश रक्षा मे सतारा जाने तथा गद्दी पर अपना स्वत्व उपस्थित करने को तैयार कर ले, परन्तु मुधोजी ने बुद्धिमत्तापूवक इस निरथक योजना को अस्वीकृत कर दिया।[४]

---

४ नागपुर के भोसले राजा की खुशामद करना तथा मराठा शासन के प्रति उसकी निष्ठा विचलित कर देना वास्तव मे ब्रिटिश नीति का पुराना उद्देश्य था। इसका आरम्भ १७६६ ई० मे क्लाइव द्वारा हुआ था, जब उसने अपने प्रतिनिधि स्काट को स्वतन्त्र मैत्री का प्रस्ताव करने नागपुर भेजा था। इसके या भावी दूत-मण्डलो के कोई वास्तविक परिणाम न निकले। इस समय उनके वृत्तान्तो का केवल ऐतिहासिक महत्त्व है तथा उनसे ब्रिटिश नीति की अनिष्ट वृत्तियाँ प्रकट होती है। विल कृत 'नागपुर' ईरानी पजिका, नाना फडनिस के पत्र, राजवाडे—१९७,१९९

वारेन हेस्टिंग्ज ने यथाशक्ति यह भी प्रयत्न किया कि वह पूना के प्रति महादजी सिन्धिया की निष्ठा समाप्त कर दे। उसकी विवेकहीन कूटनीति उस विशालकाय पत्रव्यवहार से स्पष्ट है जो उसने इगलैण्ड, बम्बई तथा मद्रास के अधिकारियो, पूना के मन्त्रियो, रघुनाथराव, मराठा राज्य के व्यक्तिगत सदस्यो, निजामअली तथा भारत के अन्य शासको के साथ किया। इन प्रमाणो को एक साथ पढने से सत्य, अधसत्य तथा असत्य का विचित्र सम्मिश्रण प्राप्त होता हे।[५] बम्बई के अधिकारियो द्वारा रघुनाथराव को पूना मे प्रतिष्ठित करने का अभियान सफल न होने की दशा मे वारेन हेस्टिंग्ज ने पूना मन्त्रिमण्डल के साथ अनुकूल शान्ति का प्रबन्ध करने के लिए गोडाड को सम्पूण अधिकार देकर दूसरा उपाय भी कर लिया था। गोडाड उस समय नमदा नदी पर था। गोडाड ने अपने व्यक्तिगत सहायक ले० वेदरस्टोन को नागपुर भेजा कि वह मुधोजी भोसले को अग्रेजो की ओर से पूना की मन्त्रिपरिषद् के साथ मध्यस्थता करने को तैयार कर ले। परन्तु किसी स्पष्ट परिणाम के प्राप्त होने से पहले ही मराठो ने ब्रिटिश सेना को तलेगाँव के स्थान पर बुरी तरह परास्त कर दिया, जिससे हेस्टिंग्ज की योजनाए असफल रह गयी। अन्त मे भारत स्थित ब्रिटिश अधिकारियो को बोध हो गया कि रघुनाथराव का पक्ष समथन करके वे निकम्मे का साथ दे रहे है।[६] स्वय हेस्टिंग्ज इलियट को इस प्रकार लिखता है

"आप उस सामान्य नीति से पहले से ही परिचित है, जिसे मै भारत मे स्थिर

---

५ अलेक्जाण्डर इलियट (१७७८ ई०) तथा डेविड ऐण्डरसन (१७८९ ई०) के उज्ज्वल वृत्तान्तो से प्रकट हे कि किस लगन से हेस्टिंग्ज ने अपनी योजनाओ का अनुसरण किया। डाडवेल कृत 'वारेन हेस्टिंग्ज के पत्र', 'भारतीय नीति' जिल्द १ पृष्ठ २ पर कीथ की व्याख्याओ तथा प्रमाणपत्रो मे जनवरी, १७७७ ई० का अलेक्जाण्डर इलियट के नाम लिखा गया पूरा पत्र देखो। पृ० ६६ पर लारेन्स सुलीवान का पत्र भी देखो।

६ रघुनाथराव की क्षमता तथा चरित्र के विषय मे नाना प्रकार के विचार तथा सम्मितियाँ है, जिनका सम्भवत कोई ठोस प्रमाण नही है। इस विषय पर किसी भी सन्देह का निराकरण उस सम्मति से हो जायगा जो रघुनाथराव के समकालीन निजामअली ने लिखित रूप मे छोडी है। २३ जुलाई, १७७८ ई० को निजामअली ने वारेन हेस्टिंग्ज को इस प्रकार लिखा—

"हाल मे कनल अपटन पुरन्दर से वापस होते समय मुझसे मिला। मैने उसके साथ रघुनाथराव के विश्वासघात, उसकी दुष्टता तथा पण्डित प्रधान के साथ अपने सन्धिपत्र के नवीनीकरण पर वार्तालाप किया।" देखो, ईरानी पजिका, जिल्द ५, पृ० १०८०

करने का अधिकार चाहता हू—अर्थात अपने इस प्रकार के पडोसियो की निष्ठा को स्वीकार कर लेना, जिनकी इच्छा अपना नाम ग्रेट ब्रिटेन के राजा के मित्रो तथा सहायको की सूची मे सम्मिलित कराने की हो। उन विभिन्न आज्ञाओ का समन्वय करना असम्भव हे जो निदशक सभा ने भारतीय शक्तियो के प्रति हमारे आचरण के विषय मे दी हे। उनकी इच्छा हे कि किसी भी कारण हम किसी युद्ध मे प्रवेश न करे—चाहे उससे कम्पनी को लाभ ही क्यो न पहुँचता हो। वे यह भी निर्देश भेजते हे कि हम बम्बई के प्रान्त से सहयोग करे, जिससे हमारा अधिकार उन टापुओ पर बना रहे जो राघोबा ने सन्धिपत्र द्वारा हमको दे दिये हे। पहली आज्ञा सवथा निषेधात्मक है कि हम भारत की राजनीति मे हस्तक्षेप न करे। दूसरी आज्ञा सुस्पष्ट है कि हम हस्तक्षेप करे तथा भारत मे सवशक्तिशाली सत्ता के विरुद्ध युद्ध मे व्यस्त हो जाये।"

हेस्टिग्ज के अनुसार शान्ति को स्थिर रखने का उत्तम उपाय युद्ध के लिए सदैव तैयार रहना था। इसी सिद्धान्त के अनुसार उसने काय भी किया। अहल्याबाई होलकर ब्रिटिश नीति के उपायो को अच्छी तरह समझती थी। उसने उन उपायो की तुलना लोमावत्त रीछ की चालो से की हे जो सीधा वार न करके अपने शिकार को अति दृढ आलिगन द्वारा मार डालता हे।

अब हमको उस माग का अनुसरण करना हे जो रघुनाथराव को पूना पहुँचाने के लिए बम्बई के अधिकारियो ने अपनाया था। उसकी पत्नी आनन्दीबाई उस समय मण्डलेश्वर मे रहती थी। वह अपने समस्त साधनो से अपने पति की योजनाओ मे सहायता पहुँचाती थी। परन्तु वह पर्याप्त रूप से चतुर थी और नाना तथा बापू को अपने व्यक्तिगत पत्रो मे उचित परामश दे सकती थी। उसने उनका ध्यान उन ब्रिटिश प्रयत्नो की ओर आकृष्ट किया जिन्हे वे रघुनाथराव का किसी भी प्रकार अनुरजन न कर सकने की अवस्था मे मराठा राज्य को नष्ट करने के लिए कर रहे थे। उसने बताया कि वे (अग्रेज) राघोबा के अविवेकपूण उपायो से उसी प्रकार सुपरिचित हे जिस प्रकार कि वह (आनन्दीबाई) स्वय हे।[७] मारोबा के पतन के बाद भी बम्बई मे मोस्टिन अपने उच्चाधिकारियो से बराबर यह आग्रह कर रहा था कि यदि वर्षा ऋतु के तुरन्त बाद रघुनाथराव यहाँ पहुँचा दिया जाये तथा निकट भविष्य मे बगाल दल के समयोचित आगमन तथा पूना पहुँचने के पहले उसके साथ मिल जाने

---

[७] देखो आनन्दीबाई के पत्र—इतिहास सग्रह—ऐतिहासिक टिप्पणी, जिल्द १-१९ तथा ३३

के कारण अधिक बलशाली बनी हुई बम्बई की सेना यदि उसको कुशलतापूर्वक पूना ले जाये तो पूना मे ब्रिटिश प्रभाव स्थापित होने का अब भी अवसर है।

इस सकट का सामना करने के लिए बापू तथा नाना ने सामयिक तैयारियाँ की। उन्होने हेस्टिंग्ज को विरोधपत्र लिखा कि ब्रिटिश सेनाएँ मराठा प्रदेश से होकर क्यो आ रही है, जबकि उनका साधारण क्रम कलकत्ता से बम्बई आने के लिए समुद्र मार्ग का आश्रय लेना था। जब बापू ने इन सेनाओ को प्रवेश-पत्र दिये थे तब हेस्टिंग्ज से उसकी मैत्री थी। मराठो ने कालपी मे कर्नल लेस्ली का विरोध किया, परन्तु मई, १७७८ ई० मे उसने उस स्थान पर अधिकार कर लिया। परन्तु जब वह दक्षिण की ओर बढा तो उसको जल तथा अन्न के अभाव के कारण घोर कष्टो को सहन करना पडा। उसके अनेक सैनिक मृत्यु तथा निराहार के शिकार हो गये। अक्तूबर मे स्वय लेस्ली की मृत्यु हो गयी तथा उसका उत्तराधिकारी कर्नल गोडार्ड कष्टो तथा यातनाओ को वीरतापूर्वक सहन करता हुआ होशगाबाद पहुँच गया। यहाँ पर नागपुर के भोसले से उसका सामना हुआ। नदी पार करके मार्ग प्राप्त करने मे उसके दो मास नष्ट हो गये। बम्बई सरकार की सेना इस समय रघुनाथराव को पूना ले जा रही थी। उनका साग्रह आह्वान था कि वह (गोडार्ड) दक्षिण की ओर बढे। उस आज्ञा के पालन के लिए वह दिसम्बर के आरम्भ तक ही समर्थ हो सका। परन्तु गोडार्ड को बुरहानपुर पहुँच सकने से पूर्व ही यह दुःखद सूचना प्राप्त हो गयी कि जनवरी, १७७९ ई० मे तलेगाव के स्थान पर बम्बई की छोटी-सी ब्रिटिश सेना सर्वथा परास्त हो गयी है। रघुनाथराव ने बार भाइयो के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया था, मोस्टिन का देहान्त हो गया था तथा बम्बई के अधिकारियो की समस्त योजना मिट्टी मे मिल गयी थी। अतः गोडार्ड बुद्धिमत्तापूर्वक बुरहानपुर से सूरत की ओर चल पडा। उसका विचार था कि बम्बई के अधिकारियो के साथ परामर्शपूर्वक वे समस्त उपाय करे, जिनसे गुजरात मे मराठो की शक्ति नष्ट हो जाये। वह फरवरी के अन्त मे सूरत पहुँचा। उसने सैनिक प्रतिभा द्वारा एक महान कार्य किया था। वह तोपखाने से सुसज्जित अल्प सेना सहित विद्वेषी राज्यो से होकर भारतीय महाद्वीप को पार कर गया तथा मार्ग मे सामने आने वाले समस्त विरोध को सफलतापूर्वक तिरस्कृत कर दिया। इसी समय से पाश्चात्य ढग की सैनिक शिक्षा महादजी के हृदय मे घर कर गयी, तथा उसका प्रथम ध्येय यह हो गया कि भारत मे प्रभुता के निमित्त सघर्षशील ब्रिटिश प्रतिस्पर्धियो के विरुद्ध वह भारतीय युद्धप्रणाली मे पश्चिमी शैली को प्रविष्ट करे।

७ हजार निजी सेना तथा बम्बई की सेना लेकर जिसमे ५०० यूरोपीय तथा लगभग २ हजार भारतीय थे, रघुनाथराव बम्बई से चलने के लिए तैयार हो गया। २४ नवम्बर, १७७८ ई० को उसने बम्बई के अध्यक्ष के साथ नया समझोता किया, जिसमे माधवराव नारायण को पेशवा तथा मराठा शासन का प्रमुख पुरुष स्वीकार किया गया था और पूना पहुँचने पर रघुनाथराव उसकी बाल्यावस्था मे अभिभावक (रीजेंट) के रूप मे काय करेगा। बालक को पुरन्दर तथा पूना मे ब्रिटिश सन्तरियो के कठोर सरक्षण मे रहना था। इस अभियान के कमान अधिकारी का स्थान कर्नल इजाटन को दिया गया, जिसे राजनीतिक विषयो मे दो असैनिक अधिकारियो—जॉन कानक तथा टॉमस मोस्टिन—के परामश के अनुसार काय करना था। ये उसके दल से सम्बन्धित कर दिये गये। वे उसी दिन २४ नवम्बर को बम्बई के बन्दरगाह से चल पडे। उनको पनवेल के माग से खण्डाला घाट की चोटी पर पहुँचने मे एक मास लग गया। पूना के मन्त्री इस आक्रमण का सामना करने के लिए गुरिल्ला पद्धति द्वारा तैयार हो गये। वे शत्रु के चारो ओर चक्कर काटते तथा उसकी सामग्री को उस तक नही पहुँचने देते थे, परन्तु वे उसकी तोपो की मार के बाहर रहते थे। जब ब्रिटिश सेनाएँ घाटो पर चढने लगी तो मराठा सैनिको ने पीछे से उन पर आक्रमण करके सदैव ही सेना के पृष्ठभाग मे रहने वाले रघुनाथराव को पकड लेने का प्रयत्न किया।[८]

३० दिसम्बर को ब्रिटिश सेना खण्डाला से पूना की ओर बढी। उसका मार्ग लगभग वतमान रेलपथ ही था—अर्थात् काल तथा तलेगॉव होकर। मराठो ने प्रत्येक दिशा से सशस्त्र आक्रमण किया। उन्होने माग स्थित बाजारो तथा गाँवो को जला दिया। इनमे तलेगॉव की प्रसिद्ध गल्ला मण्डी शामिल थी। नाना फडनिस ने पूना के समस्त नगर को खाली कर दिया तथा अधिकाश नागरिको को अपने-अपने गॉवो को चले जाने के लिए विवश कर दिया। उसने बडे-बडे घरो को फूस तथा ज्वलनशील पदार्थो से भर दिया, जिससे शत्रु को समर्पित करने की अपेक्षा वह सारे नगर को भस्म कर सके।

---

८ मोस्टिन का सहायक लेविस इस पूरे समय मे पूना मे था। वह अग्रेज कमाडर को समस्त महत्त्वशाली विषयो से सुपरिचित रखता था। मोस्टिन स्वय अभियान के साथ था, परन्तु खण्डाला मे वह बीमार हो गया। वह चिकित्साथ बम्बई वापस आया और वहाँ पर १ जनवरी, १७७९ को ४८ वष की आयु मे उसका देहान्त हो गया। यह क्षति ब्रिटिश योजनाओ के लिए भारी आघात सिद्ध हुई।

४ जनवरी, १७७६ ई० को कैप्टिन स्टुअट कार्ला के समीप एक वृक्ष की चोटी से निरीक्षण कर रहा था, तभी उसके अचानक एक गोली लगी और वह मर गया। कनल के भी इसी प्रकार घायल होकर बम्बई को वापस चला गया। चीफ कमाडर कनल इमटन सख्त बीमार हो गया तथा काकबन को अपना कायभार देकर लौट गया। उच्च अधिकारी वग सम्बन्धी इन क्षतियो के कारण छोटी-सी ब्रिटिश सेना बहुत हतोत्साह हो गयी। लगातार सताये जाने के कारण उसकी सख्या पहिले ही कम हो गयी थी। कार्ला से चलने पर उनको मालूम हुआ कि पग-पग पर लडाई करनी पड रही है। मराठा तोपखाने के अध्यक्ष भीवराव पसे ने अपने निपुण पुतगाली तोपची नोरोन्हा की सहायता से ब्रिटिश सेना को बहुत हानि पहुँचाई। वे ७ जनवरी को खडकला (वतमान कामशेट रेलवे स्टेशन) पहुँचे, आगामी दिवस बडगॉव, तथा ६ जनवरी को तलेगॉव। यह यात्रा अग्रेजो के लिए इतनी हानिकारक सिद्ध हुई कि उनको पूना पहुँचने की अपनी योजना केवल पागलपन मालूम पडने लगी। एक पत्ती या घास का तिनका भी माग मे देखने को न मिल सका। रघुनाथराव तथा मोस्टिन ने उन्हे झूठा विश्वास दिलाया था कि जब वे घाटो पर पहुँचेगे तभी अधिकाश प्रमुख मराठा सरदार ब्रिटिश अभियान मे सम्मिलत हो जायेगे, परन्तु इस दल के एक भी प्राणी ने पक्षत्याग नही किया। इसके विपरीत अग्रेजो को पता चला कि श्रमिको, सामग्री तथा निवास सम्बन्धी सुविधाओ के अभाव के कारण स्वय उनका जीवन दूभर हो गया है। पानी मिलना भी कठिन हो गया। तलेगाव का बडा तालाब सवथा जलहीन मिला। इससे वडगॉव तथा तलेगॉव के बीच मे अग्रेजो को अपनी स्थिति सकटग्रस्त प्रतीत हुई। १० तथा ११ जनवरी पूरे दो दिन तक तलेगॉव मे उनकी युद्धसमिति का सम्मेलन हुआ तथा अपनी सकटग्रस्त परिस्थिति से छुटकारा पाने के लिए उन्होने विभिन्न उपायो पर विचार-विनिमय किया। आगे चलकर वे चिचवाड मे ठहरने को थे, परन्तु सूचना प्राप्त हुई कि वह स्थान आग लगाये जाने के लिए तैयार कर लिया गया है।[६] अग्रेजो ने निश्चय किया कि वे गुप्त रूप से वापस हो जाये तथा जो कुछ भी बच सके, बचा ले जाये, परन्तु यह काय भी असम्भव हो गया। जब वे वडगॉव की ओर दो मील पीछे हटे तो उनको मालूम हुआ कि

६ रघुनाथराव को साहस न हुआ कि वह समिति के सम्मुख जाये। वह अपनी प्राणरक्षाथ घबडा उठा। ब्रिटिश सेना के भयानक कष्टो का अध्ययन 'ईरानी पजिका' (पर्शियन कलेडर) जिल्द ५, न० १४४६ आदि मे किया जा सकता है।

वे सब ओर से पूरी तरह घिर गये है। ब्रिटिश सेना की पाँच तोपे तथा दो हजार से अधिक बन्दूके नष्ट हो चुकी थी। इस समय पनवेल तथा पहाडियो के बीच वाले घाटो के नीचे मराठो की टोलियाँ वीरतापूवक आक्रमणशील हो गयी थी। समस्त देश भभक उठा था, जिससे ब्रिटिश सेनाएँ वापस नही हो सकती थी। नाना तथा महादजी ने पूण सहयोग से काय किया तथा वडगाँव के समीप एक पहाडी पर बने अपने अड्डे से उन्होने प्रत्येक गतिविधि का निर्देशन किया। उन्होने फँसी हुई ब्रिटिश सेना को भूखो रखकर उससे अधीनता स्वीकार कराली। अत्यन्त कष्ट के कारण ब्रिटिश समिति सखाराम बापू से बम्बई लोटने के लिए सुरक्षित माग का प्रस्ताव करने के लिए विवश हो गयी।

इस समय सर्वोपरि अधिकार महादजी सिन्धिया के हाथो मे था। उसको सखाराम बापू पर कुछ विशेष विश्वास नही था। रघुनाथराव ने तुकोजी होलकर से व्यक्तिगत रूप से प्राथना की कि वह उनकी तथा ब्रिटिश सेना की प्राणरक्षा करे। महादजी ने तुकोजी की मध्यस्थता को स्वीकार न करके सन्धि प्रस्ताव आरम्भ होने के पहिले रघुनाथराव द्वारा बिना किसी शत के आत्मसमपण कर देने की माँग रखी। इस परिस्थिति मे बचने का कोई उपाय न था। रघुनाथराव महादजी के हाथो मे आत्मसमपण करने के लिए सहमत हो गया। समपण की शर्तो को निश्चित करने के लिए महादजी तथा नाना से भेट करने फामर को भेजा गया। फामर की आखो पर पट्टी बाँधकर तथा पालकी मे बैठाकर १४ जनवरी को दोनो सरदारो के सम्मुख उपस्थित किया गया। उनकी ओर से यह माँग रखी गयी कि रघुनाथराव को समर्पित कर दिया जाये। इसके बदले मे वे मराठा सरक्षण मे ब्रिटिश सेना को बम्बई वापस होने की आज्ञा देने और उनकी भोजन सामग्री का प्रबन्ध करने के लिए सहमत हो गये। महादजी से कई बार मिलने के बाद अन्त मे फामर को निम्नलिखित शर्ते प्राप्त हुई

१ रघुनाथराव का समपण।

२ साल्सेट, थाना तथा गुजरात के उस इलाके की वापसी जिस पर अग्रेजो ने अधिकार कर लिया था।

३ बगाल की सेना को वापस होने की आज्ञा।

४ दो अग्रेज मराठो के पास उस समय तक नजरबन्द रहे जब तक शर्तों का पूणत तथा सत्यत पालन न हो जाये, क्योकि वडगाव की इस स्वीकृति गवर्नर जनरल की ओर से होनी थी।

जब ये सन्धि प्रस्ताव हो रहे थे तब अग्रेजो ने अपने तोपखाने की रक्षा मे गुप्त रूप से भाग जाने का प्रयत्न किया, परन्तु १४ जनवरी की प्रभात वेला मे चारो ओर से मराठा दल ने उन्हे रोक लिया। उस समय मुठभेड मे ५० यूरोपियन तथा ४०० भारतीय मारे गये। १६ जनवरी को फामर एक सादा कागज लाया, जिस पर विधिपूर्वक हस्ताक्षर थे तथा मोहर लगी हुई थी कि विजेतागण उस पर अपनी आज्ञापूण मनमानी शर्तें लिख दे। महादजी का आचरण सयत तथा शोभनीय रहा। उसने उत्तर दिया कि जब रघुनाथराव तथा नजरबन्द लोग पहुँच जायेंगे तब मैत्री भावना से सब व्यवस्था हो जायेगी तथा पराजितो के प्रति किसी कटुता का प्रदशन नही किया जायेगा। १७ जनवरी को सन्धिपत्र की सयमित पाण्डुलिपियो का आदान प्रदान हो गया। १८ जनवरी को रघुनाथराव तथा दोनो नजरबन्द—फामर और स्टुअट—मराठा शिविर मे पहुँच गये। तुरन्त ब्रिटिश दल के लिए प्रचुर सामग्री उपलब्ध कर दी गयी तथा वे २० हजार मराठो के सरक्षण मे बम्बई को वापस हो गये। बाद मे स्वय अग्रेज लोगो ने पराजित शत्रु के प्रति इस विचित्र उदारता की भूरिभूरि प्रशसा की।

वडगॉव की इस सन्धि को बम्बई तथा कलकत्ता के ब्रिटिश अधिकारियो ने कभी स्वीकार नही किया। हेस्टिंग्ज ने इसकी शर्तों का पालन करने से इनकार कर दिया। उसने कहा कि जिन लोगो ने यह सन्धि की थी, उनको इसे करने का कोई अधिकार नही था। ब्रिटिश लेखक इस सन्धि को प्रतिज्ञा (कनवेशन) कहना पसन्द करते है। महादजी ने अग्रेजो के प्रति अपने व्यवहार मे कोमल तथा उदार नीति का अनुसरण किया। उसने विपुल कष्ट और व्यय से बचने के लिए उस क्रूरता को बलपूर्वक रोक दिया जिसके समर्थक नाना तथा वडगाव मे उपस्थित अन्य सरदार थे। महादजी का आग्रह था कि ब्रिटिश सत्ता की उपेक्षा नही की जा सकती और न उसको अकारण कोई कष्ट ही देना चाहिए। ब्रिटिश अनुशासन, उनके तोपखाने की कुशलता तथा उनके सुव्यवस्थित उपायो का उस पर भारी प्रभाव पडा था। युद्ध मे मराठो का अव्यवस्थित व्यवहार इसके सर्वथा विपरीत था। महादजी ने वतमान युद्ध-प्रवृत्तियो को समाप्त करने तथा ग्रहण की गयी शिक्षा को व्यवहार मे लाने की तीव्र इच्छा प्रकट की।

वडगॉव की सन्धि को स्थिर करने मे फामर का भी हाथ था। उसने इस शोचनीय प्रकरण पर कुछ टिप्पणियाँ छोडी है जो उद्धृत करने योग्य है

"बम्बई की सरकार को गोडाड की सेना के आगमन की प्रतीक्षा करनी

चाहिए थी तथा उसके साथ मिलकर अपनी ही ओर से मराठा सरकार के विरुद्ध काय करना चाहिए था। रघुनाथराव के स्वत्व-प्रतिपादन से इसका कोई भी सम्बन्ध नही होना चाहिए था। इसके स्थान पर बम्बई की सरकार ने वेचारे मोस्टिन के उन आश्वासनो से पथभ्रष्ट होकर बिना किसी विचार के रघुनाथराव के अधिकारो का प्रतिपादन करने तथा समस्त जगत के प्रति उसको वे अधिकार पुन दिला देने सम्बन्धी अग्रेज विचारो की घोषणा करने की विचित्र योजनाओ को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार के प्रयास तथा इस प्रकार की नीति के कारण स्वभावत मराठा साम्राज्य के समस्त प्रमुख सरदार तथा समस्त शक्तियाँ हमारे विरुद्ध सगठित हो गयी, क्योकि उनके पास हमारी महत्त्वाकाक्षा से भयभीत होने के कारण थे। उनकी (बम्बई सरकार की) इच्छा इस योजना का समस्त श्रेय स्वय ही प्राप्त करने की थी और वे गोडार्ड की सहायता की प्रतीक्षा नही करना चाहते थे, इसलिए उनका प्रयास असफल हुआ जिसकी पहले ही आशका हो सकती थी। उनकी कारवाई के प्रति निश्चय ही हेस्टिग्ज उत्तरदायी नही हे और न वह उस कारवाई के परिणाम-स्वरूप होने वाले भयानक अपमान का ही उत्तरदायी हे जिसने हमारी सैनिक शक्ति के सम्बन्ध मे दृढ धारणा को नष्ट कर उस सघ को स्थापित होने मे सहायता दी जो भविष्य मे हमारे विरुद्ध सक्रिय हो गया।"[१०]

वडगाँव के समपण पर ग्लीग की टिप्पणी इस प्रकार है "जिस समय से अग्रेज लोगो ने सवप्रथम अपने को पूव मे शक्तिशाली सत्ता के रूप मे स्थापित किया था, इस प्रकार की एक भी अपमानपूण घटना घटित नही हुई थी। भारत की समस्त दिशाओ मे इसके परिणाम तुरन्त दृष्टिगत हो गये। निजाम तथा हैदरअली की ओर से असन्तोप की भावना प्रकट होने लगी। बरार का राजा स्वय आयोजित सन्धि प्रस्ताव से पीछे हट गया। अग्रेजो के विरुद्ध मराठा दल को नवीन साहस प्राप्त हो गया।"[११]

लायल लिखता हे "समस्त प्रकरण का सार यह हे कि इस समय मराठे अत्यधिक शक्तिशाली तथा अति सुसगठित थे, अत वे उन दलो से परास्त अथवा भयभीत नही किये जा सकते थे, जिनको अग्रेज लोग उनके विरुद्ध एकत्र कर सकते थे या ला सकते थे।" खरडा के युद्ध तथा अल्पवयस्क पेशवा माधव-राव द्वितीय की मृत्यु तक इस अपेक्षाकृत स्थिति मे कोई परिवतन नही हुआ।

---

[१०] डाडवेल, 'वारेन हेस्टिग्ज', पत्र, पृ० १७६

[११] 'वारेन हेस्टिग्ज के सस्मरण', जिल्द २, पृ० २२६

तलेगाव की पराजय से समस्त ब्रिटिश राष्ट्र क्रोधातुर हो उठा तथा सारे देश मे दण्ड देने की प्रबल इच्छा व्याप्त हो गई। ऐसा पहिले कभी किसी भी कारण से नही हुआ था। बम्बई मे बहुत समय तक इस सम्बन्ध मे जॉच होती रही। काकबन तथा इगटन को नौकरी से निकाल दिया गया, क्योकि वे ही इस विपत्ति के कारण थे। वारेन हेस्टिंग्ज ने वडगाव की सन्धि का तीव्र विरोध किया तथा मराठो के विरुद्ध नवीन युद्ध आरम्भ करके इस कलक को धो डालने के लिए यथाशक्ति प्रत्येक उपाय किया। मराठो ने भी ऐसी ही दृढता से इस चुनोती को स्वीकार कर लिया। कूटनीति के लिए उपयुक्त नाना फडनिस की विलक्षण बुद्धि चमक उठी, जिसके परिणामस्वरूप चार शक्तियो का ब्रिटिश विरोधी सघ स्थापित हो गया।

५ **महादजी प्रकाश मे**—तलेगॉव मे मराठा विजय से देश का साहस इतना बढ गया, जितना पहिले कभी नही बढा था। बालक पेशवा की, उसके सौभाग्य पर, प्रत्येक स्थान मे प्रशसा होने लगी। महादजी सिन्धिया की निष्ठा, वीरता तथा दक्षता का गुणगान होने लगा। इस विजय मे तुकोजी होलकर का भी अल्प परन्तु सन्तोषजनक भाग था। आत्मसमपण के समय रघुनाथराव के पास लगभग ३०० देशी सवार, लगभग १२०० गार्दी सिपाही, १३ तोपे, तथा लगभग २०० व्यक्तियो की सेवक-मण्डली थी। उसका सचिव चिन्तो विट्ठल और उसके दो अनुचर सदाशिव रामचन्द्र तथा खडगसिह इनके अतिरिक्त थे। ये सब १८ जनवरी, १७७९ को वडगॉव के स्थान पर महादजी के शिविर मे आ गये। रघुनाथराव की विशेष प्राथना पर उसके आत्मसमपण सम्बन्धी समस्त काय को नाना के हस्तक्षेप के बिना स्वय महादजी ने नियन्त्रित किया। नाना तथा बापू शिष्टाचार के नाते भी रघुनाथराव से मिलने नही गये, क्योकि वे हत्यारे का मुह देखना भी पाप समझते थे। रघुनाथराव के भावी निवास स्थान का प्रश्न वडगॉव मे लगभग डेढ मास तक विवादास्पद बना रहा। माच के आरम्भ मे मराठा सरकार पुरन्दर को वापस हो गयी। इस प्रकार तीन वष के युद्धकाल मे अपने सफल नेतृत्व के कारण महादजी को मराठा शासन मे सर्वोच्च सत्ता तथा अधिकार प्राप्त हो गये जो लगभग उसकी मृत्यु के समय तक उसके हाथ मे रहे। कूटनीति की विजय उसी समय होती है, जब उसकी पीठ पर शस्त्र-बल होता है। महादजी को इसी प्रकार का अवसर मिल गया। नाना फडनिस निस्सन्देह इससे अप्रसन्न था, परन्तु वह इसको रोक नही सकता था। इस समय से महादजी शक्तिसम्पन्न नेता माना जाने लगा, क्योकि मध्य भारत के बहुत से भाग पर पहिले ही से उसका अधिकार था।

अन्त मे रघुनाथराव ने निम्नलिखित समझोते पर शपथपूवक हस्ताक्षर कर दिये—(१) माधवराव नारायण को उसने न्यायोचित पेशवा स्वीकार किया है। (२) उसने उस पद से अपने स्वत्व का त्याग कर दिया हे। (३) मराठा राज्य के विरुद्ध युद्ध करने के अपने पाप को उसने स्वीकार कर लिया है। (४) वह समस्त राजनीतिक कार्यो से अवकाश ग्रहण करने के लिए सहमत हो गया है तथा १० लाख की जागीर स्वीकार करके वह आजीवन झासी मे निवास करेगा। (५) उसने प्राथना की कि उसके पुत्र बाजीराव को पेशवा के प्रशासन का सचालन करने की अनुमति दी जाये, जब वे दोनो—बाजीराव तथा माधवराव नारायण—वयस्क हो जाये। इसका पूव उदाहरण नानासाहेब तथा भाऊसाहेब का प्रशासन है।[12]

इन शर्तो के उचित अनुपालन के लिए महादजी तथा तुकोजी उत्तरदायी हुए। खडगसिह को तुरन्त प्राणदण्ड दे दिया गया, क्योकि नारायणराव की हत्या मे उसका हाथ था। चिन्तो विट्ठल सदृश अन्य सहायक कठोर कारागार मे डाल दिये गये।

वडगॉव मे होने वाली सरदारो की सभा अनेक कारणो से उल्लेखनीय हे, जिसके बाद २४ फरवरी को रघुनाथराव अपनी झॉसी की यात्रा पर चल पडा। उसके रक्षको का अध्यक्ष हरिबाबाजी केतकर नामक महादजी का कुशल पदाधिकारी था।

वडगॉव की विजय का एक दुखदायी परिणाम वयोवृद्ध अधिकारी सखाराम बापू का सवनाश था। वह पूना शासन का वरिष्ठ सदस्य था तथा उसने विवेक एव साहस से दीघकाल तक पूना मन्त्रिमण्डल का नेतृत्व किया था। जब रघुनाथराव तथा उसके अनुचरो ने आत्मसमपण किया तब विशेषकर चिन्तो विट्ठल और सदाशिव रामचन्द्र को दण्ड देने के प्रश्न पर विचार किया गया। वृद्ध मन्त्री बापू के विरुद्ध प्रतिशोध की भावना से रघुनाथराव ने उसका एक हस्तलिखित पत्र उपस्थित कर दिया जो गत वष मोरोबा फडनिस द्वारा सत्ता को हस्तगत करने के अवसर पर उसको बम्बई से निमन्त्रित करने के लिए लिखा गया था। बापू के सदिग्ध आचरण के कारण नाना तथा महादजी दोनो पहिले से ही उसके विरुद्ध थे तथा उसके इस काय को राजद्रोह मानकर उसको २७ फरवरी को पकडकर सिहगढ मे बन्द कर दिया और उसकी समस्त

[12] इतिहास सग्रह ऐतिहासिक टिप्पणी १-७। पारसनिस कृत-सन्धियाँ तथा सविद पृ० १३।

सम्पत्ति का हरण कर लिया । इस वृद्ध कूटनीतिज्ञ ने दीघ समय से पेशवा के परिवार की जो उत्कृष्ट सेवाएँ की थी उनके बदले इस प्रकार का व्यवहार निश्चय ही कठोर था । आगामी मई मे बापू प्रतापगढ भेज दिया गया, जहाँ पर लगातार दो वष अधिक वृष्टि होने से आद्र जलवायु के कारण उसका स्वास्थ्य बिगड गया । इसके बाद उसे रायगढ को हटा दिया गया जहाँ पर २ अगस्त, १७९१ को उसकी मृत्यु हो गयी ।

सखाराम बापू के निष्कासन से बार भाइयो की सभा का लगभग ६ वर्ष का जीवन समाप्त हो गया । इसके बाद महादजी शिन्दे की सहायता से पेशवा के शासन का एकमात्र प्रबन्धक नाना फडनिस हो गया तथा १७९५ मे अल्पवयस्क पेशवा की मृत्यु तक उसने सत्ता का पूण उपभोग किया । महादजी अधिकतर उत्तर भारत मे रहता था, इसलिए नाना फडनिस ने हरिपन्त फडके को अपना विश्वस्त सहकारी बना लिया और वे सैनिक काय दे दिये जिनके लिए वह अपनी शारीरिक अवस्था के कारण अयोग्य था । महादजी, तुकोजी तथा कृष्णराव काले भी प्रशासन मे नाना के सतत सहायक बने रहे ।

इस समय से नाना तथा महादजी मराठा सरकार के स्थायी सहकारी हो गये । उनका स्वभाव परस्पर विरुद्ध था तथा वे एक दूसरे पर सन्देह करते थे, तथापि उनका सहयोग एक दूसरे के लिए अनिवाय था । दोनो सत्तालोलुप तथा स्वाथपरायण थे । नाना लेखन-कला तथा षड्यन्त्र मे निपुण था और महादजी युद्ध तथा कूटनीति मे कुशल था । उन्होने आगामी १५ वर्षों के इतिहास पर अपना प्रभाव डाला । वे प्राय सम्बन्ध विच्छेद की सीमा तक एक दूसरे से घोर रूप से असहमत हो जाते थे तथा उनके निवासस्थान भी एक दूसरे से बहुत दूर थे । लेखपत्रो की विशाल राशि सुरक्षित है, जिससे उनके परस्पर दोषारोपण प्रकट है, और जो ऐतिहासिक अध्ययन की सामग्री प्रदान करती है ।

नाना वास्तव मे कठोर तथा नियमबद्ध कायकर्ता था, उसको जिह्वा की अपेक्षा लेखनी पर अधिक विश्वास था । महादजी उसके सर्वथा विपरीत था । वह बहुभाषी तथा वादविवादप्रिय था । वह आवश्यकतानुसार विषय-परिवतन तथा वाक्छल कर सकता था, परन्तु इस सबसे बढकर वह एक कार्य कुशल व्यक्ति था । एक के व्यक्तिगत प्रतिनिधि दूसरे के शिविर मे उपस्थित रहते थे तथा जो कुछ भी कोई कहता या करता, उसकी सूचना वे अपने स्वामी को भेजते रहते थे । उनके स्वभाव के कारण उत्पन्न मतभेद शीघ्र ही दोनो सरदारो मे कलह तथा अविश्वास की सीमा तक पहुँच गये । जब उनके

पारस्परिक सम्बन्ध विच्छेद की सीमा तक पहुच गये तथा उनके कारण बाह्य जगत मे भय उत्पन्न हो गया तो प्रशासन का निर्विघ्न सचालन असम्भव हो गया। सोभाग्यवश उनमे अपने मतभेदो के कुपरिणामो को समझने की सद्बुद्धि थी। वे पारस्परिक अपकार से दूर रहने के लिए लिखित रूप से शपथो का आदान-प्रदान कर लेते थे तथा एक दूसरे के प्रति भ्रातृवत व्यवहार की प्रतिज्ञा करके अपने हितो को एक बना लेते थे। शपथो का यह आदान-प्रदान १५ माच को पुरन्दर के स्थान पर हुआ, जब वडगॉव की सभा के विसजन के बाद दोनो दल अपने सामान्य अधिपति अल्पवयस्क पेशवा का अभिवादन करने उपस्थित हुए। परन्तु व्यावहारिक राजनीति पर इन प्रतिज्ञाओ तथा शपथा का कोई प्रभाव न पडा। महादजी ने मालवा को अपना कायक्षेत्र बना लिया तथा अपना ध्यान उत्तर भारत के कार्यो तक सीमित रखा। इसी प्रकार नाना ने अपने को दक्षिण तक सीमित रखा। उनकी आयु की भारी असमानता ने भी उनके विवाद को बढने न दिया, क्योकि नाना महादजी से १५ वष छोटा था।

२१ अप्रैल को पावती के मन्दिर मे बालक पेशवा का यज्ञोपवीत सस्कार हुआ और तीसरे पहर नगर मे स्थित अपने पूवजो के राजभवन मे उसने विधिपूवक प्रथम बार प्रवेश किया। यहॉ पूरे दरबार की योजना की गयी। महादजी, नाना तथा अन्य सरदारा ने मुजरे दिये ओर नवीन विजय पर उसको बधाई दी। परन्तु इसी अवसर पर समाचार प्राप्त हुआ कि रघुनाथराव सूरत को पुन भाग गया हे, जिससे हर्षोत्सव मे विघ्न फैल गया ओर समाप्त मान लिया गया युद्व पुन आरम्भ हो गया।

६ **रघुनाथराव का नवीन प्रपच**—नमदा पर अपने शिविर मे जनरल गोडाड को, जो वारेन हेस्टिग्ज द्वारा प्रेषित बगाल दल का आज्ञापक था, वडगाव मे ब्रिटिश सेना की पराजय का समाचार प्राप्त हुआ। इस अशुभ समाचार पर बदले की भावना से जलकर गोडाड शीघ्र ही सूरत की ओर बढा जो उस समय पश्चिम मे ब्रिटिश सत्ता का मुख्य स्थान था। गुजरात के सभी साधन उसी की इच्छा के अधीन थे। वडगॉव मे हुए अपने पति के आत्मसमपण पर आनन्दीबाई बहुत दुखित थी। उस समय उसका निवासस्थान मण्डलेश्वर था। उसने झासी की ओर जा रहे अपने पति के साथ होने के विचार से बुरहानपुर की यात्रा मे गोडाड से घनिष्ठ सम्पक स्थापित कर लिया। रघुनाथराव अत्यन्त व्याकुल था। वह उस नियन्त्रण पर क्रुद्ध था जो उसे विवश होकर स्वीकार करना पडा था। उसने अपने कुछ उत्साही अनुचरो—मानाजी फडके, बाजीराव बर्वे, केशवकृष्ण दातार—तथा अन्य व्यक्तियो को प्रोत्साहन दिया कि वे

उत्तर खानदेश मे अपनी सेनाओ को एकत्र करे, जहा पर कुछ विद्रोही व्यक्ति (जैसे कि स्थानीय कोली लोग, सुल्तानपुर का गुलजारखॉ, धार का खाण्डेराव पवार आदि) पहले से ही पूना सरकार के लिए कष्ट उत्पन्न कर रहे थे। १७७९ की ग्रीष्म ऋतु मे इन प्रवत्तियो को नवीन उत्तेजना प्राप्त हुई जब रघुनाथ राव अप्रैल मे बुरहानपुर के समीप तथा मई मे नमदा तट पर पहुँचा। उसका सरक्षक हरिबाबाजी अपनी यात्रा मे पर्याप्त रूप से सावधान था। वह अपने बन्दी की योजनाओ तथा कार्यो को देख रहा था। इस बन्दी के पास अपना ही सैनिक दल, अपना तोपखाना, अपने अनुचर तथा यात्रा की सुसज्जा थी। इसका शिविर नमदा तट पर था। वे नदी को पार करने के लिए नावो के पहुँचने की प्रतीक्षा कर रहे थे। एक दिन हरिबाबाजी को ज्वर हो गया, जिसके कारण वह अपने डेरे से बाहर न निकल सका। रघुनाथराव की तोपो को बैल घसीट रहे थे। उसने उनको रक्षक दल पर चला दिया। हरिबाबाजी को उसके डेरे मे मार दिया गया तथा इस प्रकार होने वाली गडबडी मे वह अपनी प्राण रक्षा के लिए नदी के दक्षिण तट के साथ-साथ भाग निकला। सूरत मे गोडाड ने उसका स्वागत किया। मालूम होता है, इस योजना से वह गुप्त रूप से परिचित था। गोडाड ने बडौदा के शासक फतेहसिह गायकवाड को अपनी ओर कर लिया तथा उन दोनो ने मिलकर गुजरात मे नवीन युद्ध आरम्भ कर दिया। उनका उद्देश्य वडगाव की क्षति की पूर्ति करना था। इस प्रकार पूना के शासन को पुन घोर सघष मे फॅसना पडा और गत कई वर्षों का परिश्रम तथा व्यय निष्फल सिद्ध हो गया।

पूना मे नाना तथा महादजी ने रघुनाथराव के पलायन का समाचार बडे आश्चय के साथ सुना। नाना ने महादजी पर कतव्योपेक्षा तथा जानबूझकर लापरवाही करने का दोषारोपण किया। महादजी अपने उपार्जित विश्राम काल को जामगॉव के अपने ग्रामीण निवास का परकोटा बनाने मे तथा अपने और अपने अनुचरो के रहने के लिए विपुल स्थान सहित स्थायी विनोद-गृहो के निर्माण मे व्यतीत कर रहा था।[१३] यहा पर उसने लादोजी शितोले देशमुख के साथ अपनी कन्या बालाबाई का भव्य विवाह सस्कार किया। इन आमोदपूण कार्यो के बीच उसको समाचार प्राप्त हुआ कि रघुनाथराव अपने रखवालो के बीच से भाग गया हे। इस समय वर्षा ऋतु आरम्भ होने वाली थी

---

[१३] इस महल का नाम माधवविलास है तथा महादजी के मुस्लिम गुरु शाह मन्सूर के नाम पर प्राचीर का नाम साहेबगढ हे।

अत अत्यन्त वेग से पीछा करना भी असफल सिद्ध होता । परन्तु नाना ने शीघ्र उपाय का आग्रह किया तथा सवथा अकारण ही सन्देह किया कि महादजी गुप्त रूप से इस काण्ड से परिचित था । इस कारण ने दोनो सरदारो मे अपूर्व मतभेद तथा अविश्वास उत्पन्न कर दिया । महादजी ने नाना के सम्पक से हरिपन्त के निष्कासन की माँग रखी । इसके कारण पूना तथा जामगाव के बीच कटु पत्र-व्यवहार तथा कठोर सन्देशो का आदान-प्रदान हुआ । महादजी तब तक गोडाड से युद्ध करने गुजरात नही जाना चाहता था जब तक कि पर्याप्त सेना तथा धन उपलब्ध न कर दिये जाये । इस प्रकार पूना के वातावरण मे घोर उदासी तथा निराशा छा गयी, और पिछली गर्मियो का आमोद अदृश्य हो गया । काफी गर्मागिम बहस तथा सन्देशो के आदान-प्रदान के बाद दोनो सरदारो ने अपने को अवसर के अनुसार सुधार लिया तथा गुजरात मे मराठा शासन ने युद्ध करने की ब्रिटिश चुनौती को स्वीकार कर लिया । वास्तव मे नाना ने अपने जीवन का अद्भुत कार्य एक बार ओर कर दिखाया । उसने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध गुप्त रूप से अखिल भारतीय सघ सगठित कर लिया । परन्तु यह विपय हमारे आगामी अध्याय की सामग्री होगा ।

तिथिक्रम

अध्याय ४

फरवरी, १७७४	कल्याण दुग मे हैदरअली के साथ रघुनाथराव की सन्धि।
अप्रैल, १७७४	हैदरअली की शिरा पर विजय, बापूजी शिन्दे का आत्मसमर्पण।
१५ मार्च, १७७६	हैदरअली का गुट्टी पर आक्रमण, मुरारराव का बन्दी होना।
५ अप्रैल, १७७६	भगवन्तराव प्रतिनिधि की मृत्यु।
६ नवम्बर, १७७६	कर्णाटक मे हैदरअली के विरुद्ध मराठो की फौजी कारवाई।
६ जनवरी, १७७७	हैदरअली द्वारा सॉची मे पटवधन-परिवार की पराजय —कोन्हेरराव की मृत्यु तथा कुछ व्यक्ति बन्दी।
३० अगस्त, १७७७	भवनराव प्रतिनिधि की मृत्यु, उसके पुत्र परशुराम का जन्म।
जनवरी-अप्रैल, १७७८	महादजी शिन्दे का कोल्हापुर के विरुद्ध युद्ध।
२३ अप्रैल, १७७८	महादजी शिन्दे का सन्धि द्वारा कोल्हापुर युद्ध को समाप्त करना।
१६ माच, १७७६	कनल ब्रेथवेट का माहिम पर अधिकार।
जून के बाद, १७७६	रघुनाथराव सूरत मे अत्यन्त दुखित अवस्था मे।
२६ जनवरी, १७८०	फतेहसिंह गायकवाड पृथक सन्धि द्वारा गोडाड के साथ।
७ फरवरी, १७८०	नाना फडनिस का हैदरअली को ब्रिटिश-विरोधी सघ मे मिला लेना।
१३ फरवरी, १७८०	गोडाड तथा फतेहसिंह का अहमदाबाद पर अधिकार।
२० फरवरी, १७८०	चार शक्तियो का ब्रिटिश-विरोधी सघ स्थापित।
२४ फरवरी, १७८०	खॉडोजी भोसले का कटक मे कनल पियस को स्वतन्त्र माग देना।
८ मार्च, १७८०	ब्रिटिश नजरबन्द फार्मर तथा स्टुअर्ट महादजी द्वारा मुक्त।
अप्रैल, १७८०	बडौदा के समीप गोडार्ड तथा महादजी मे युद्ध आरम्भ।

१५ अप्रैल, १७८०	जजीरा का सिद्दी ब्रिटिश-विरोधी सघ मे सम्मिलित।
३ मई, १७८०	होलकर की गोडाड पर विजय।
११ मई, १७८०	अग्रेजो का थाना पर अधिकार।
२४ मई, १७८०	कल्याण के समीप मराठो की घोर पराजय।
२४ मई, १७८०	पनवेल के समीप कनल हार्टले की पराजय।
जून, १७८०	गुजरात मे गोडाड तथा मराठा सेनाएँ क्रमश डभई तथा मालवा को वापस।
जून, १७८०—मार्च, १७८४	हैदरअली तथा टीपू द्वारा पूर्वी कर्णाटक पर विजय।
अगस्त, १७८०	हैदरअली द्वारा मद्रास को भयभीत करना।
४ अगस्त, १७८०	पोफम का ग्वालियर के गढ पर अधिकार।
१२ दिसम्बर, १७८०	गोडाड का बसई पर अधिकार—रामचन्द्र गणेश का वध।
आरम्भ, १७८१	सफ्रे का शक्तिशाली नौ समूह सहित फ्रास से प्रस्थान।
जनवरी, १७८१	मराठो द्वारा उत्तर कोकण मे अग्रेजो पर आक्रमण।
६ फरवरी, १७८१	गोडाड खण्डाला मे १५ अप्रैल तक स्थित, अन्त मे बम्बई को वापस होने पर विवश।
६ फरवरी, १७८१	कनल कामक का सिरोज पहुँचना और महादजी की भत्सना करना।
२४ माच, १७८१	कामक द्वारा महादजी परास्त।
४ अप्रैल, १७८१	कनल म्यूर कामक के साथ।
जून, १७८१	मैकार्टने मद्रास का गवनर।
१ जुलाई, १७८१	महादजी द्वारा सीपरी के समीप कनल म्यूर परास्त।
१६ जुलाई, १७८१	दिवाकर पण्डित की मृत्यु।
अगस्त, १७८१	हेस्टिग्ज द्वारा मराठो के साथ कई मार्गों से शान्ति प्रस्ताव का उपक्रम।
अगस्त, १७८१	हेस्टिग्ज द्वारा चेतसिह पर अत्याचार।
११ सितम्बर, १७८१	मैकाटने, मैक्फर्सन तथा ह्यूग्स द्वारा पूना से शान्ति की वार्ता।
११ सितम्बर, १७८१	रघुनाथराव के दूत हनुमन्तराव तथा मनियार पार्सी का इगलैण्ड जाना और एक वष बाद वापस आना।
१३ अक्तूबर, १७८१	म्यूर तथा महादजी के बीच अल्पकालीन युद्धविराम।
१४ दिसम्बर, १७८१	चेतसिह द्वारा महादजी से रक्षा की प्रार्थना।
२१ दिसम्बर, १७८१	ऐण्डरसन का महादजी के शिविर मे आगमन।
१७८२	हेस्टिग्ज द्वारा एक वर्ष तक अवध की बेगमो पर अत्याचार।

आरम्भ, १७८२	सफ्रें तथा बुस्सी का पूर्वीय समुद्र-तट पर आगमन ।
जनवरी-मार्च, १७८२	ऐण्डरसन का महादजी से सन्धि-प्रस्ताव ।
१२ अप्रैल, १७८२	अग्रेजो तथा फ्रासीसियो मे मद्रास के समुद्र-तट के समीप प्रबल नौकायुद्ध ।
१७ मई, १७८२	सालबई की सन्धि निश्चित ।
१३ सितम्बर, १७८२	सफ्रें द्वारा ऐड्मिरल ह्यूग्स की घोर पराजय ।
७ दिसम्बर, १७८२	हैदरअली की मृत्यु ।
११ जनवरी, १७८३	इगलैण्ड के जाज तृतीय के नाम रघुनाथराव का पत्र ।
१० फरवरी, १७८३	पेशवा माधवराव द्वितीय का विवाह ।
२४ फरवरी, १७८३	नाना फडनिस का सालबई की सन्धि पर हस्ताक्षर करना ।
९ अप्रैल, १७८३	धुलप का ब्रिटिश पोत रेजर पर आक्रमण करना ।
जून, १७८३	फ्रास तथा इगलैण्ड मे शान्ति निश्चित —भारतीय समुद्र मे युद्ध समाप्त ।
जुलाई, १७८३	रघुनाथराव का ढोडप के समीप हरिपन्त को आत्म-समपण—कोपरगाम मे उसका निवास ।
४ अगस्त, १७८३	रघुनाथराव द्वारा प्रायश्चित करना—गोपिकाबाई से भेट करना ।
११ दिसम्बर, १७८३	कोपरगाम मे रघुनाथराव की मृत्यु ।
२३ मार्च, १७८४	आनन्दीबाई का चिमनाजी अप्पा को जन्म देना ।
७ जनवरी, १७८५	बुस्सी का भारत मे देहान्त ।
१२ माच, १७८४	आनन्दीबाई का देहान्त ।

अध्याय ४

ब्रिटिश-मराठा युद्ध का अन्त

[१७७९–१७८३ ई०]

१ **रघुनाथराव तथा गोडार्ड**—बगाल से नवीन सेना सहित गोडार्ड के सामयिक आगमन के कारण बडगाव मे ब्रिटिश पराजय की गम्भीरता बहुत कुछ मन्द पड गयी । उसके साथ परामश के बाद बम्बई के अधिकारियो ने निश्चय किया कि वे सन्धि का परित्याग कर दे तथा उन्होने गवनर जनरल से आग्रह किया कि वह उनकी नीति का समथन करे ।[1] हेस्टिग्ज ने तुरन्त मराठा दरबार को सूचित किया कि वडगॉव का समझौता स्वीकृत नही हो सकता, क्योकि वह अनधिकृत हे तथा ब्रिटिश ख्याति के लिए अपमानजनक है । उसने गोडाड को अधिकार दे दिया है कि पुरन्दर मे अपटन द्वारा निश्चित सन्धि के आधार पर वह नवीन सन्धि की व्यवस्था करे । इसके तुरन्त बाद रघुनाथराव सूरत पहुँच गया तथा सम्पूण स्थिति मे सहसा परिवतन हो गया । नाना ने सन्धि प्रस्ताव को पुन आरम्भ करने के पहले रघुनाथराव और थाना के गढ के समपण की स्पष्ट मॉग रखी । गोडाड इस मॉग के औचित्य को तो मान गया, परन्तु उसने स्वेच्छा से शरणागत अतिथि को वापस करना दृढतापूवक अस्वीकार कर दिया । इस भ्रान्ति नीति के कारण बम्बई की सरकार अतिव्ययी युद्ध मे फँस गयी तथा उनके अवाञ्छित अतिथि ने उन पर अपने निर्वाह के लिए १० हजार मासिक

[1] देखो, फोरेस्ट, जिल्द १, १९ फरवरी तथा ३० माच के गोडाड के पत्र ।

वत्ति का भी भार डाल दिया । उस दरिद्र भगोडे के शरीर तथा मन मे शक्ति का एक भी चिह्न शेष नही रह गया था । उसकी असयत तथा अव्यवस्थित जीवनचर्या के कारण गोडाड तथा उसके साथियो के मन मे घृणा उत्पन्न हो गयी थी । वह अत्यन्त विषाद और निराशा के लक्षण प्रकट करता तथा प्राय असगत बाते करता था । जब वह खुली वायु मे प्रार्थना करने के लिए बाहर आता तो उसको तीन सेवको की आवश्यकता पडती थी । अर्धरात्रि मे थोडे-से चावलो के अतिरिक्त वह कुछ खाता न था । उसकी पत्नी आनन्दीबाई उसकी रखैलो की विपुल सख्या पर अपने क्रोध को छिपाने मे असमर्थ होने के कारण मुश्किल से सप्ताह मे एक बार उससे मिलती थी । पति-पत्नी परस्पर प्राय कटु आक्षेप करते थे । पति अपने दुर्भाग्य का दोषी अपनी पत्नी को समझकर अपने अल्पवयस्क पुत्र बाजीराव को अपनी माता के पास रहने देता था । उसको यह निराशा अत्यन्त पीडा दे रही थी कि वह अपने जन्म-स्थान के २० मील समीप तक पहुँचकर भी उसके दर्शन न कर सका । सूरत मे उसको उपदश रोग हो गया तथा स्वास्थ्य-लाभ के लिए उसे बहुत समय तक चिकित्सा करानी पडी । अब उसका एकमात्र कार्य भारत तथा बाहर की विभिन्न शक्तियो को पत्र और दूत भेजकर उनसे सहायता की प्रार्थना करना रह गया था ।

बम्बई मे एक बार पुन परामर्श करके गोडाड सूरत वापस आ गया । उसने अभियान की योजना बनाकर फतेहसिह गायकवाड को अपने साथ मिला लिया, ताकि वह अहमदाबाद तथा गुजरात मे पेशवा द्वारा अधिकृत विभिन्न स्थानो पर सम्मिलित आक्रमण कर सके । इस बार गोडाड के साथ रघुनाथराव नही था, उसका दत्तक पुत्र अमृतराव था ।

२ **ब्रिटिश-विरोधी राज्य सघ**—जबकि पूना सरकार का सरदार गायकवाड पहले से ही अग्रेजो के साथ हो गया था और खानदेश उनके प्रति स्पष्ट विद्रोह कर रहा था, ऐसे मे पूना सरकार के लिए सुदूर गुजरात मे अग्रेजो से युद्ध करना सरल कार्य नही था । इस सकटमय अवसर पर नाना फडनिस की राजनयिक प्रतिभा प्रकाश मे आयी । वह अवसर के अनुकूल योग्य सिद्ध हुआ । उसने ब्रिटिश आक्रमण का विरोध करने के लिए चार शक्तियो का विशाल सघ स्थापित किया । ये चार शक्तियाँ थी—पेशवा की सरकार, हैदराबाद का निजाम, मैसूर का हैदरअली और नागपुर का भोसले । यद्यपि स्पष्ट रूप से ब्रिटिश-विरोधी सघ मे सम्मिलित होने वाले सदस्य ये चार ही राज्य थे, परन्तु इस समय समस्त भारत मे वारेन हेस्टिग्ज की सर्वग्रासी नीति के विरुद्ध इसी प्रकार की भावना व्याप्त थी । अधिकाश भारतीय शक्तियो ने वर्तमान प्रयत्न

का हृदय से स्वागत किया, क्योकि ब्रिटिश महत्त्वाकाक्षा के कारण उनके हितो के साथ किसी न किसी रूप मे अन्याय हुआ था तथा उनको अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के प्रति भय का आभास होने लगा था। वाराणसी के राजा चेतसिह, अवध के नवाब वजीर, बगाल के नवाब तथा दिल्ली के सम्राट के उदाहरणो के कारण भी ब्रिटिश नीति से सब सुपरिचित हो गये थे। ब्रिटिश-फ्रेच युद्ध चल रहा था तथा पश्चिमी समुद्रतट पर स्थित माही के फ्रेच बन्दरगाह पर १९ माच, १७७९ को कनल ब्रेथवेट के अधीन एक ब्रिटिश नौ-समूह ने अधिकार कर लिया था। इस महत्त्वशाली स्थान की हानि के कारण हेदरअली तुरन्त ब्रिटिश सत्ता का कट्टर शत्रु बन गया, क्योकि उसे अस्त्र-शस्त्र तथा सैनिक रूप मे स्वतन्त्र फ्रेच सहायता इसी बन्दरगाह से प्राप्त होती थी। जब इस बात का पता पूना के मन्त्रियो को चला तो उन्होने हैदरअली के विरुद्ध अपने युद्ध को बन्द करने तथा ब्रिटिश आक्रमण का सामना करने के लिए उसको अपने साथ मिलाने का निश्चय किया। नाना तथा महादजी ने अविलम्ब सुयोग्य दूत कृष्ण राव जोशी को आक्रमण तथा रक्षा दोनो के लिए मैत्री का प्रस्ताव करने के लिए उसके पास भेजा। इसके बदले वे तुगभद्रा के दक्षिण मे समस्त नव-विस्तृत मराठा-प्रदेश उसको देने के लिए सहमत हो गये। इवर हैदरअली अर्काट तथा दक्षिण कर्णाटक के प्रदेशो का विनाश करने के लिए प्रस्तुत हो गया जो उस समय मुहम्मद अली के अधिकार मे थे और अग्रेजो के आश्रित थे। मैत्रीपूण सन्धि की शर्तों के उचित पालन के लिए महादजी शिन्दे तथा रस्ते मराठो की ओर से उत्तरदायी बने और २० फरवरी, १७८० को इस सन्धि की वैध स्थापना हो गयी। हैदरअली ने किस प्रकार भक्ति तथा उत्साहपूवक अपने हाथ मे लिया हुआ काय पूरा किया, अग्रेजो के विरुद्ध प्रतिशोध की प्रतिज्ञा की, मद्रास के समीप कई बार उनको घोर रूप से पराजित किया—तत्कालीन इतिहास की ये बाते सवविदित है, यहा पर इनके वणन की आवश्यकता नही है।[२]

इस विशाल ब्रिटिश-विरोधी सघ का विचार सवप्रथम निजामअली को सूझा। १७७९ की ग्रीष्म ऋतु मे उसने अनेक बार पूना के नाना तथा नागपुर के दिवाकर पण्डित को पत्र लिखकर प्रस्ताव किया कि यदि भारतीय शक्तिया अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखना चाहती है तो ब्रिटिश आक्रमण के बढते हुए

---

२ राजवाडे, जिल्द १९ मे सन्धि के इस विषय पर कृष्णराव जोशी के सम्पूण पत्र है। 'सन्धिया तथा सहमतिया' भी देखा, पृ० ८५। सवाई माधवराव कृत 'पेशा की दिनचर्या', न० ३८६। राजवाडे, जिल्द १०, पृ० २३५ आदि।

भय का दमन करने का यही उपयुक्त समय है। नाना ने निजामअली के इन पत्रो को प्राप्त करने के बाद अविलम्ब जामगॉव से महादजी तथा वफगाव से तुकोजी को बुलाया और उनके साथ परामश के बाद एक विशाल योजना का निर्माण इतने गुप्त रूप से किया कि कई महीनो बाद तक भी वारेन हेस्टिग्ज को इसका कुछ पता न पडा। इस शताब्दी के सप्तम दशक मे अग्रेज जब मद्रास तथा बगाल के स्वामी बन चुके तब उनको पता चला कि इन दो प्रान्तो के बीच उनके स्वतन्त्र सचार माग के दो मध्य स्थित क्षेत्र बाधा बन रहे हे—१ उडीसा, जिस पर नागपुर के भोसले का अधिकार था, २ कृष्ण नदी के दक्षिण मे गुण्टुर का जिला, जिस पर निजामअली का अधिकार था। गुण्टुर का जिला उस समय उत्तरी सरकार के नाम से प्रसिद्ध था और अग्रेजो ने इसे पहले से ही हथिया रखा था, जबकि इस समय यह पूर्वी समुद्र-तटवर्ती रेखा ब्रिटिश सेनाओ के स्वच्छन्द प्रयाण के लिए रणकौशल की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वशाली हो गयी, क्योकि उन्हे मराठो तथा फ्रासीसियो के विरुद्ध एक साथ युद्ध करना पड रहा था। निजामअली ने गुण्टुर के इस जिले को अपने भाई बसालतजग को दे दिया था, जिसे मद्रास के गवनर रम्बोल्ड ने अपनी ओर मिलाकर यह जिला अग्रेजो को सोपने पर विवश कर दिया। अग्रेजो द्वारा फलाये इस कपट प्रपच के कारण दोनो भाइयो—निजामअली तथा बसालतजग—मे शत्रुता उत्पन्न हो गयी। अपने राज्य के वास्तविक स्वामी के रूप मे निजामअली गुण्टूर के इस समपण पर अत्यन्त खिन्न हुआ तथा उसने इस काय का घोर विरोध किया।

इस ब्रिटिश-विरोधी शक्तिशाली सघ द्वारा उपस्थित सकट को हेस्टिग्ज समझ गया, उसने गवनर रम्बोल्ड को अपदस्थ कर दिया तथा गुण्टुर का जिला निजामअली को वापस कर दिया। इस प्रकार उसने इस सघ के कम से कम एक सदस्य को कम कर दिया, क्योकि इसके बाद निजामअली सवथा उदासीन हो गया। सघ की प्रेरक शक्ति नाना फडनिस था। केवल उसी को समस्त भारतीय दरबारो से विचित्र रूप से सच्ची खबरे प्राप्त होती थी। इस काय के लिए उसने दिल्ली के सम्राट तथा उसके मन्त्री मिर्जा नजफखा की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी। मराठो का परम्परागत शत्रु जजीरा का नवाब सिद्दी भी १५ अप्रैल, १७८० को एक पृथक स्वीकृति द्वारा इस सघ मे सम्मिलित हो गया। इसी प्रकार पुतगाली तथा फ्रेच उपनिवेश भी इस सघ मे सम्मिलित होने के लिए राजी कर लिये गये। भारत मे डच कोठियो के अध्यक्ष वैण्डरग्राफ्ट ने मराठा सहयोग से सूरत पर अधिकार करने की योजना बनायी। इस योजना को प्रगतिशील बनाने के लिए

नाना ने गोआ शासन के साथ एक गम्भीर सधि पर ३ जून, १७८० को हस्ताक्षर किये। इस सघ को पराजित करने के लिए वारेन हेस्टिग्ज को जो युद्ध समूह स्वीकार करने पडे, उनके कारण अग्रेज लोगो पर आर्थिक सकट आ पडा। इसी सकट ने वारेन हेस्टिग्ज को चेतसिह तथा अवध की बेगमो पर अत्याचार करने के लिए विवश कर दिया।

७ फरवरी, १७८० को नाना ने हैदरअली को निम्नाकित पत्र लिखा "अब तो अग्रेज असह्य रूप से उत्तेजक हो गये है। इन पाँच वर्षों मे अपने अव आक्रमणो के कारणो उन्होने गम्भीर सहमतियो तथा प्रतिज्ञाओ का उल्लघन किया है। पहले तो वे इतने आकषक स्वर मे मधुर शब्दो का उच्चारण करते है कि मनुष्य को विश्वास हो जाता है कि इस ससार मे वास्तविक आत्मीयता तथा सज्जनता केवल इन लोगो मे ही मिल सकती है। परन्तु शीघ्र ही मनुष्य की आँखे खुल जाती है। शीघ्र ही उनकी दुष्ट वृत्ति का बोध हो जाता है। वे राज्य के असन्तुष्ट व्यक्ति को अपने पक्ष मे करके उसके द्वारा उस राज्य को नष्ट कर देते है। उनका मुख्य नियम है—फूट डालो और अपना उद्देश्य सिद्ध करो। वे अपने स्वार्थ मे इस प्रकार अन्धे हो गये है कि कभी भी लिखित सहमतियो तथा गम्भीर प्रतिज्ञाओ का पालन नही करते। केवल ईश्वर ही उनके नीच षड्यन्त्रो को जान सकता है। उनका सकल्प एक-एक करके पूना, नागपुर, मैसूर तथा हैदराबाद के राज्यो को अपने अधीन कर लेने का है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए उनके पास यही साधन है कि वे एक की सहानुभूति प्राप्त करके दूसरे का दमन कर दे। वे यह अच्छी तरह जानते है कि किस उत्तम रूप से भारतीय सगठन का नाश कर सकते है। सकपट भेदभावो को उत्पन्न करने की तथा राज्य की एकता को नष्ट करने की विद्या मे वे पारगत है।"[3]

३ नागपुर के भोसले परिवार का प्रलोभन—निजामअली ने पहले नागपुर के मन्त्री दिवाकर पण्डित को नाना के सघ की योजना स्वीकार करने तथा सहयोग देने के लिए सहमत कर लिया। बाद मे नाना तथा महादजी ने आकर भूमि को तैयार करके भोसले से अपना काय शीघ्रतापूवक करने तथा ब्रिटिश समृद्धि को पगु बनाने के लिए बगाल पर वीरतापूवक आक्रमण करने को कहा। भोसले परिवार ने बगाल को बहुत पहले ही पददलित करके उस पर चौथ लगा दी थी। परन्तु जब क्लाइव ने सम्राट से उस प्रान्त की दीवानी प्राप्त कर ली तो अग्रेजो ने भोसले को चौथ देना बन्द कर दिया। जानोजी

[3] राजवाडे, जिल्द ५६

तथा उसके भाइयो ने बहुत दिनो तक ब्रिटिश गवनरो का यान अपने स्वत्वो की ओर आकृष्ट किया था, परन्तु उनके समस्त प्रयास व्यथ सिद्ध हुए थे।[४] मराठा साम्राज्य की अखण्डता के लिए समस्त सदस्य राज्यो के समान रूप से प्रयत्न तथा केन्द्रीय शासन के सहयोग से काय करने की अपेक्षा थी। पेशवा माधवराव ने भोसले परिवार को यह शिक्षा एक अतिव्ययी भयानक युद्ध के द्वारा दी तथा ककपुर की सन्धि द्वारा उनका पूना के राष्ट्रीय शासन की सेवा करने के लिए विवश कर दिया। इस शिक्षा के रचयिताओ—जानाजी तथा माधवराव—का देहान्त होते ही यह शिक्षा भुला दी गयी। बाद मे मुधोजी इस सीमा तक बढ गया कि उसने वारेन हेस्टिग्ज से प्रस्ताव किया कि वह उसको इगलैण्ड के राजा का वशवद सामन्त स्वीकार कर ले, तो वह पूना शासन के प्रति अपनी निष्ठा त्याग देगा। ब्रिटिश-मराठा युद्ध के प्रथम चरण मे वारेन हेस्टिग्ज ने मुधाजी को विशाल धनराशि तथा दिखावटी प्रतिज्ञाओ द्वारा अपनी ओर मिला लिया। धूततापूण ब्रिटिश कूटनीति के कारण भारतीय शक्तियो के बिखरने का युग आरम्भ हो गया। वारेन हेस्टिग्ज के प्रति भोसले परिवार का हृदय सदैव करुणापूण रहा।[५]

नाना फडनिस ने ब्रिटिश-विरोधी सघ का सगठन करके उसके प्रत्येक सदस्य को विभिन्न काय सौप दिये। भोसले का काय बगाल मे अग्रेजो पर आक्रमण करना था, हैदरअली को मद्रास पर चढाई करनी थी, पूना की सेनाओ का कतव्य गुजरात तथा बम्बई के कोकण प्रान्त मे उनका विरोध करना था तथा निजाम पूर्वी समुद्रतट पर उन्हे डराने-धमकाने को नियुक्त किया गया था। तदनुसार एक विशाल तथा सुसज्जित सेना सगठित की गयी और उसने नागपुर से उडीसा की ओर प्रयाण किया। इस सेना का नेता मुधोजी का छोटा पुत्र खण्डोजी भोसले था जिसको जनसाधारण चिमनाजी कहते थे। वह वीर तथा साहसी पुरुष था। उसको स्पष्ट निर्देश थे कि वह बगाल पर आक्रमण करे तथा बलपूवक पिछली बकाया सहित चौथ वसूल करे परन्तु इस योजना

---

४ भोसले-ब्रिटिश सम्बन्धो के इस दु खद अध्याय का सर्वोत्तम अध्ययन ईरानी पजिका के ग्रन्थो मे किया जा सकता है।

५ बनारस मे चेतसिह के विद्रोह के समय नागपुर राज्य के दो ब्राह्मण राजदूतो—बेनीराम तथा विशम्भर—ने वारेन हेस्टिग्ज की प्राण-रक्षा की थी। वे उसका भेष परिवतन करके अपनी पालकियो तथा नावो मे कुशलपूवक चुनारगढ ले गये। देखो, फोरेस्ट कृत 'इम्पीरियल रेकाड्स' (राजकीय पत्र सग्रह), जिल्द ३१

के कार्यान्वित हाने से पहले चिमनाजी का बडा भाई रघुजी भोसले, जो नागपुर शासन का नेता था, तथा उसका मायावी मन्त्री दिवाकर पण्डित वारेन हेस्टिग्ज द्वारा प्रदत्त धन के लालच मे आ गये। उन्होने खण्डोजी को मुख्य उद्देश्य को कार्यान्वित करने से रोक दिया। कम से कम ५० लाख का धन इस हेतु दिया गया जो विभिन्न नामो से प्रसिद्ध हे—इसे उपहार, दान, ऋण सेनाव्यय, घूस चाहे जिस नाम से पुकार सकते हे। इस प्रकार यह महत्त्वशाली सदस्य इस सकटवेला मे सघ से हट गया। भोसले-हेस्टिग्ज सम्बन्धो की कई वर्षो तक चलने वाली कहानी लम्बी है। १७७८ के लगभग अन्त मे गोडाड नमदा के समीप पहुँचा। उसका मुधोजी से प्राय विचार-विमश होता रहा और इस प्रकार वह नदी पार वाले भोसले प्रदेश मे होकर गुजरात का माग प्राप्त करने मे सफल हो गया। बदले मे मुधोजी को क्या पुरस्कार प्राप्त हुआ, इसका उल्लेख कही पर नही है। मुधोजी के इस प्रकार के व्यवहार पर नाना बहुत रुष्ट हुआ। उसने रघुजी तथा दिवाकर पण्डित को पूना बुलाकर उनसे चार शक्तियो की मैत्री को अगीकार तो करा लिया था[६] परन्तु इसप्र तिज्ञा का पालन कभी नही हुआ।

चार सदस्यो वाले प्रस्तावित मैत्री सघ से दो सदस्यो के निकलने मे भी समय लग गया। इस बीच मे जब इस प्रकार के अखिल भारतीय विद्रोह का समाचार प्रथम बार हेस्टिग्ज को प्राप्त हुआ तो वह कुछ समय तक पूर्णत किकतव्यविमूढ हो गया। कलकत्ते मे मराठा दूत लाला सेवकराम ने उस विभीषिका का चित्रोपम वणन किया है, जिसने हेस्टिग्ज तथा उसके सलाहकारो को अभिभूत कर लिया था। सेवकराम लिखता है--"अति व्याकुल होकर हेस्टिग्ज ने जनरल कूट को तुरन्त अपने सम्मुख बुलाया तथा अवध के नवाब वजीर से बलपूवक एक करोड अस्सी लाख रुपये छीन लिये। वजीर ने अपनी पगडी फश पर फेक दी और तीन दिन तक निराहार रहा। तब हेस्टिग्ज ने अपनी कौसिल का अधिवेशन बुलाया तथा उनके सामने सारी परिस्थिति स्पष्ट की। उसने कहा—'मराठा युद्ध मे पहले ही पॉच करोड रुपये व्यय हो चुके है, साथ ही इस समय हमको ओर भी अधिक धन की आवश्यकता है।' तब उसने कलकत्ते के धनी व्यापारियो को बुलाकर व्यक्तिगत रूप से एक करोड रुपये देने के लिए स्वय विवश किया। इस धन से उसने एक आक्रमणशील सेना को सगठित किया तथा उसे कूट के नेतृत्व मे मद्रास भेज दिया। नवम्बर,

---

६ ऐतिहासिक पत्रव्यवहार, पृ० १६८

१७७६ मे उसने बेनीराम पण्डित तथा उसके भाई विश्वम्भर को बुलाकर कटक मे खण्डोजी भोसले के समीप निम्नलिखित प्राथनाएँ करने भेजा १ कनल पियस के अधीन ब्रिटिश सेना को मद्रास जाने के लिए स्वतन्त्र माग देना, २ नागपुर के राजा के साथ मैत्री सम्बन्ध, ३ बगाल पर आक्रमण स्थगित करना। खण्डोजी के लिए असख्य सुन्दर उपहार भेजे गये। इनमे एक लाख रुपयो के आभूषण, दो लाख के वस्त्र और चार लाख मोहरे नकद थी। खण्डोजी को अपनी ओर कर लेने मे हार्दिक सहयोग प्राप्त करने के लिए दोनो दूतो को भी इसी प्रकार उपहार दिये गये। बेनीराम पर हेस्टिग्ज को पूरा विश्वास था। वह अपने स्वामी तथा पूना सरकार के हितो के विरुद्ध तत्परता से काय करता था।"[७]

यदि खण्डोजी को इस प्रकार लुभाकर उसका आयोजित अभियान बीच ही मे न रोक दिया जाता तो बगाल सरलता से पददलित हो सकता था, क्योकि उस समय वह प्रात सेनाविहीन था और आक्रमण करने पर उसे जीतना सहज था। २४ फरवरी, १७८० को खण्डोजी ने शेष धन बाद मे चुकाने की प्रतिज्ञा पर विश्वास करके कनल पियस की सेना को उडीसा होकर जाने का स्वतन्त्र माग दे दिया। स्वय हेस्टिग्ज लिखता हे—"हमने कनल पियस को आज्ञा दी कि वह प्रयाण करे तथा बरार सरकार से सम्पक बनाये रखने के लिए विचारपूवक प्रत्येक सावधानी बरते। उसी समय ऐण्डरसन को कटक भेजा गया कि वह चिमनाजी भोसले को इन आज्ञाओ की सूचना दे दे। कनल पियस ने सुवणरेखा नदी को सुगमतापूवक पार कर लिया। चिमनाजी ने माग के विषय मे तुरन्त अपनी स्वीकृति भेज दी। उसने कहलाया कि वह उसकी समस्त आवश्यकताओ को पूरा करेगा। यह काय उसने पर्याप्त रूप मे किया। गजाम तक अभियान शान्त तथा सुकर रहा। हम सहमत हो गये हे कि १६ लाख का अनुदान देकर चिमनाजी की सेना के कष्टो को दूर कर दे। चिमनाजी दो हजार सवार देने के लिए सहमत हो गया है। ये कनल पियस के आज्ञाकारी रहेगे। उनका वेतन एक लाख रुपये मासिक की दर से हम देगे। मैंने प्रयत्न किया है कि (मराठा) राज्य की प्राप्ति के लिए मुधोजी की महत्त्वाकाक्षा को जाग्रत कर दिया जाये, परन्तु मुझको आशका है कि वह अल्पवयस्क पेशवा के विरुद्ध किसी योजना को अगीकार नही करेगा।"[८]

---

७ ऐतिहासिक टिप्पणी, जिल्द २३, जिल्द २०। परराष्ट्राच्या दरबारातील मराठे वकील, पृ० ६३-६८

८ ग्लीग कृत 'वारेन हेस्टिग्ज के सस्मरण', जिल्द २, पृ० ३५८

सेवकराम लिखता है—'भोसले परिवार के दूत बेनीराम पण्डित तथा रघुनाथराव के दूत राजाराम पण्डित ने हेस्टिग्ज को मराठा प्रदेशो के विजयाथ युद्ध आरम्भ करने के लिए प्रोत्साहित किया। उसने तुरन्त गोडाड को गुजरात के तथा कनल पामर को बुन्देलखण्ड के विजयाथ गोहद के राणा के पास भेज दिया। राणा के पास कनल कामक के अधीन एक और दल भी था। समाचार प्राप्त हुआ कि ३० हजार मेना सहित खण्डोजी भोसले बगाल आ रहा है। इस सेना द्वारा होने वाली हानि से बचने के लिए बेनीराम ने मुधोजी से खण्डोजी के बगाल की ओर न बढने के आदेश प्राप्त कर लिये। हैदरअली ने पहले से ही मद्रास मे सवनाश कर रखा है। यदि इस अवसर पर खण्डोजी ने सहयोग से काय किया होता तो ब्रिटिश सत्ता सवनाश के समीप पहुँच गयी होती। हेस्टिग्ज तुरन्त चौथ का शेष धन चुका देता तथा अपनी ओर से शर्तो की माँग करता। इस समय तक ४० लाख से अधिक रुपये भोसले लोगो को दिये जा चुके थे।"[९] स्वय मुधोजी ने, जो सघ का प्रतिज्ञा-बद्ध सदस्य था, सवप्रथम योजना की अशुभ सूचना हेस्टिग्ज को दी थी।[१०]

कई योग्य तथा निष्पक्ष लेखको ने वारेन हेस्टिग्ज की नीति की कठोर आलोचना की है, परन्तु कुछ ऐसे भी लेखक हे जो भारत मे उसके ब्रिटिश साम्राज्य के प्रथम सस्थापक होने पर उसके साहस तथा उद्योग के अन्ध प्रशसक है। प्रश्न यह है—क्या वही लक्ष्य अधिक सम्मानपूण तथा कम बबरता वाले उपायो द्वारा अर्थात मराठो के प्रति ही नही, चेतसिह और अवध के वजीर के प्रति भी वचनो तथा गम्भीर प्रतिज्ञाओ का निष्ठापूवक पालन करने के द्वारा प्राप्त नही हो सकता था? मराठे आत्मरक्षा के लिए युद्ध कर रहे थे। उनका युद्ध न्यायसगत था और उनका आधार नीतियुक्त था। कानवालिस ने, जो किसी प्रकार अपने राष्ट्र की सेवा मे हेस्टिग्ज से कम न था, हेस्टिग्ज की इस दुष्ट नीति को प्रकट कर दिया। माल्कम तथा अन्य लेखको ने भी वैसा ही किया है। पी० ई० राबट्स लिखता है—"यह कहने मे थानटन अधिक उग्र शब्दो का उपयोग नही करता है कि इस समय मद्रास के वातावरण मे अनैतिकता का सक्रामक रोग प्रतीत होता है। सात वर्षो मे दो गवनर पदच्युत किये जा चुके है तथा तीसरा गवनर जनरल द्वारा पदच्युत कर दिया गया है जिसकी मृत्यु कारागार मे हुई है। इन स्पष्ट निन्दाओ तथा शासन के सतत परिवतनो का

---

९ ऐतिहासिक टिप्पणी, जिल्द ३-२३

१० दिनाक ३० अप्रैल, १७८१ का 'निर्देशक सभा' को हेस्टिग्ज का वृत्तान्त, फोरेस्ट कृत 'साम्राज्य सग्रह', जिल्द २, ग्लीग जिल्द २, पृ० ३१४

स्वाभाविक परिणाम असम्बद्ध तथा नियमहीन नीति हे, जिसके कारण मद्रास प्रान्त हेदरअली के विरुद्ध युद्ध मे फँस गया हे। राघोबा के साथ हमारी मैत्री पर निजाम बहुत दिनो से अत्यन्त अप्रसन्न हो रहा था तथा उसने सक्रिय रूप मे भारत की समस्त देशी शक्तियो का भारतीय सघ स्थापित कर लिया। मैसूर, हेदराबाद, पूना, नागपुर सब भारत के ब्रिटिश शासन पर जोरदार आक्रमण करने के विचार से इसमे सम्मिलित हो गये हे।" लायेल कहता हे—"यह हेस्टिग्ज के ही आचरण थे जिनके कारण भारत मे अग्रेजो की दशा हीन स्थिति को पहुँच गयी थी। ये युद्ध केवल भारतीय शक्तियो की ओर से ही उपस्थित न थे, फ्रास ने पहले से ही इगलैण्ड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी थी तथा स्पेन, हालैण्ड ओर उत्तरी अमरीका के राज्यो को अपने साथ मिलाकर एक सघ स्थापित कर लिया था। हेदरअली मराठो के साथ मिल गया था तथा उसने निजाम को भी अग्रेज-विरोधी सघ मे घसीट लिया था। साथ ही उसने पश्चिमी समुद्रतट पर फ्रेच सहयोग के वचन प्राप्त कर लिये थे।"[११]

४ गुजरात तथा मद्रास मे युद्ध—मराठो के लिए १७८० का वष मेघाच्छादित आकाश के रूप मे आरम्भ हुआ। गत ग्रीष्म ऋतु मे गोडाड ने बम्बई के अधिकारियो के साथ परामश के बाद निश्चय किया कि वह पहले गुजरात म और उसके बाद उत्तर कोकण मे अभियान का आरम्भ करेगा। बडोदा के गायकवाड भाइयो के साथ गोडाड ने उन्ही उपायो का उपयोग किया जिनका हेस्टिग्ज ने मुधोजी भोसले के साथ किया था। इन प्रयत्नो के सत्य समाचार नाना को प्राप्त हो गये थे तथा उसने महादजी और तुकाजी के साथ परामश करके अपनी योजनाओ का निर्माण कर लिया था।[१२] ये दोनो सरदार खानदेश होकर गुजरात की ओर बढे तथा उन्होने माग स्थित कष्टप्रद व्यक्तियो का दमन कर दिया, जैसे कोली, चन्द्रराव पवार तथा अन्य वे व्यक्ति जिनका उल्लेख पहले हो चुका हे। नाना ने पेशवा के दो सेनानायको—गणेश पन्त तथा विसाजी लयाजी अठावले—को होलकर तथा शिन्दे की सहायता के लिए भेजा। ये पहले से खानदेश मे काय कर रहे थे तथा वहा पर इन्होने कई लडाइया लडी थी। इन्ही मे से एक युद्ध मे ऊदाजी का कनिष्ठ पुत्र

---

[११] 'भारत मे ब्रिटिश राज्य', पृ० १९५

[१२] इस समय नाना तथा महादजी के सम्बन्धो मे घोर कटुता उपस्थित हो गई थी, क्योकि अनेक तुच्छ विषयो पर उनको एक दूसरे पर सन्देह हो गया था। परन्तु सौभाग्यवश वह शीघ्र समाप्त हो गयी। फिर भी इस बीच अभियान योग्य कुछ मूल्यवान मास व्यथ नष्ट हो गये।

चन्द्रराव पवार दिसम्बर मे माग गया था। सुलतानपुर का गुलजार खॉ भी (रघुनाथराव का मित्र) पर्याप्त विवश तथा अपराध करने के अयोग्य कर दिया गया था।

दोनो गायकवाड बन्धुओ—गोविन्दराव तथा फतेहसिह—के बीच कलह के कारण फतेहसिह अग्रेजो की शरण मे चला गया। बडौदा की पैतृक सम्पत्ति पर दोनो अपना स्वत्व रखते थे। गोडाड ने पूना शासन के विरुद्ध अग्रेजो का साथ देने पर फतेहसिह के स्वत्व को मान्यता देने का प्रस्ताव किया। फतेहसिह का सलाहकार गोविन्द गोपाल काम्टेकर नामक चतुर मनुष्य था। उसने गोडाड के साथ सन्धि निश्चित की, जिस पर २६ जनवरी, १७८० को हस्ताक्षर हो गये।[13]

महादजी शिन्दे तथा नाना दोनो ने फतेहसिह को उसके द्वारा अपनाये गये माग के दुष्परिणामो की लिखित चेतावनी दी। पूना से नाना ने उसको कुछ कडे विरोध पत्र भी लिखकर भेजे। इतने पर भी फतेहसिह ने गोडाड का साथ देना ही निश्चित रखा। गोडाड ने सूरत से प्रस्थान किया और फतेहसिह डभई के समीप उसके साथ हो गया। दोनो मिलकर अहमदाबाद की ओर बढे। अपने आगमन से तीन दिन के अन्दर ही उन्होने उस महत्त्वपूण स्थान पर अधिकार कर लिया (१३ फरवरी, १७८०)।

यह जानकर कि शिन्दे तथा होलकर उनसे युद्ध करने के लिए वेग से बढ रहे है, गोडाड तथा फतेहसिह ने अपने भारी सामान और तोपखाने को कुशलता पूवक सुरक्षा के उद्देश्य से खम्भात भेज दिया तथा पूना की सेना का सामना करने के लिए अहमदाबाद से हल्की तैयारी के साथ बडौदा की ओर बढे। ८ माच, १७८० को अकस्मात फामर तथा स्टुअट से भेंट होने के कारण गोडाड को बहुत आश्चय हुआ। ये दोनो महादजी के स्थान से सहसा उसके शिविर मे प्रकट हो गये। ठीक एक वष पहले वे नजरबन्द के रूप मे बडगॉव के स्थान पर समर्पित कर दिये गये थे। इस समय अग्रेजो को प्रसन्न करने के लिए बुद्धि सगत उपाय के रूप मे महादजी ने उन्हे स्वतन्त्रतापूवक वापस होने की आज्ञा दे दी थी। महादजी के इस काय से हरेक दिशा मे हलचल उत्पन्न हो गयी। नाना को भी यह कष्टदायक सन्देह होने लगा कि कही स्वय महादजी विरोधी पक्ष मे सम्मिलित होने वाला तो नही है। महादजी ने यह सुचिन्तित तथा चातुयपूण उपाय समय प्राप्त करने और यदि सम्भव हो सके तो शान्ति

---

[13] फोरेस्ट कृत मराठा ग्रन्थमाला, पृ० ३९४

प्रस्तावो द्वारा युद्ध को ममाप्त करन के उद्देश्य से किया था, क्योकि वह तुरन्त शत्रु का सामना कग्ने के लिए तैयार नही था। उसे आशा थी कि यदि अभियान किसी प्रकार वर्षा ऋतु के आगमन तक खिच जाये तो वह अन्त मे गोडाड को पराजित कर देगा। होलकर ने भी सम्पूण हृदय से महादजी का साथ नही दिया। उसने जानबूझकर छल के साथ यह प्रसिद्ध कर दिया कि वह नाना की शक्ति का दमन करने पूना जा रहा हे। महादजी को विश्वास हो गया था कि नजरबन्दो को अधिक रोके रखने से कोई लाभ नही हो सकता। उनके ही कारण पुराना घाव अब तक बह रहा था। जब ये दोनो सज्जन गोडाड से मिले तो उन्होने उसको बताया कि महादजी ने उनके साथ कैसा उत्तम व्यवहार किया था तथा वह अग्रेज जाति के प्रति किस प्रकार की प्रेम और सम्मान की भावनाएँ रखता है। उन्होने यह भी स्पष्ट किया कि बडगाव के काण्ड मे वह किस प्रकार उनके प्रति दयालु तथा उपयोगी रहा था। उन्होने यह भी बताया कि यदि महादजी ने उनकी ओग से सिफारिश न की होती तो उन्हे कितना कठोर अपमान सहन करना पडता। महादजी ने गोडाड को अपनी सदभावनाएँ भेजकर सूचित किया कि यदि रघुनाथराव उसके सरक्षण मे वापस कर दिया जाये तो वह अविलम्ब युद्ध बन्द कर देगा तथा समस्त कष्ट का अन्त हो जायेगा। गोडाड इस प्राथना को स्वीकार न कर सका, क्योकि अपने सम्मानित अतिथि को त्याग देने से अग्रेजो की कीर्ति कलकित हो सकती थी। महादजी की इस चाल से कुछ समय तक पूना मे नाना क्षुब्ध रहा। जब वे बाद को एक दूसरे से मिले ओर उन्होने परिस्थिति पर स्वय वार्तालाप किया तो तत्कालीन समस्त रोष दूर हो गया।

फरवरी तथा माच के दो महीनो तक शान्ति प्रस्ताव चले, परन्तु वे असफल रहे और अप्रैल के आरम्भ मे बडौदा के समीप लडाई शुरू हो गयी। मराठे यथापूव ब्रिटिश तोपखाने की मार के बाहर रहते और गुरिल्ला पद्धति के युद्ध की चालो को प्रभावकारी रूप से काम मे लाते थे। ३ अप्रैल को ब्रिटिश सेना ने महादजी के शिविर पर अकस्मात धावा किया, परन्तु कोई निर्णायक युद्ध नही हुआ। एक मास बाद ३ मई को होलकर ने घोर युद्ध किया तथा उसको कुछ लाभ भी प्राप्त हुआ। इससे गोडाड को विश्वास हो गया कि भागदौड की लडाई मे अपने विरोधियो पर विजय प्राप्त करने की आशा करना व्यथ है, क्योकि इस प्रकार के युद्ध मे उसको अपने तोपखाने से प्रभावशाली काम लेने का अवसर नही मिल सकता। वर्षा ऋतु के आगमन पर गोडार्ड सूरत की ओर वापस जाने को विवश हो गया। माग मे उसको घोर

कष्ट सहन करना पडा। जून मे महादजी और तुकोजी मालवा वापस आ गये। गोडाड ने अपना शिविर डभई मे बनाया तथा पूना के आकस्मिक आक्रमण को रोकने के लिए उसने सोनगढ का माग रोक लिया।

जब गुजरात मे इस प्रकार अभियान चल रहा था, मद्रास के समुद्रतटवर्ती मैदान मे आग लगाने तथा जनसहार करने के सकल्प से हेदरअली की सेनाएँ कर्नाटक के दर्रो से नीचे वाले प्रदेश पर टूट पडी। वे दो वष तक यह काय करती रही, जिससे आग्ल-मराठा युद्ध को सवथा भिन्न रूप प्राप्त हो गया। महादजी घटना-स्थल पर था। उसको राजनीतिक परिस्थिति की सामान्य गतिविधियो का ज्ञान नाना की अपेक्षा अधिक था। नाना पूना मे काय करता था और उसको बाह्य पुरुषो तथा घटनाओ का कोई व्यक्तिगत ज्ञान न था। इस समय भारत मे ब्रिटिश सत्ता का अस्तित्व ही सकट मे पड गया था। हेस्टिग्ज ने तुरन्त वीरतापूवक उपाय किये तथा सकट का सामना करने के लिए तैयार हो गया। युद्ध के समथन की आवश्यकता के कारण उस महान शासक को चेतसिह तथा अवध की बेगमो पर अमानुषिक अत्याचार करने पडे। नाना अपना ध्यान रघुनाथराव की गतिविधियो तथा षडयन्त्रो तक ही सीमित रखता था। महादजी को राष्ट्रीय अस्तित्व के व्यापक रूप का बोध था तथा उसने युद्ध मे विजय प्राप्त करने के निमित्त उत्तम उपायो की ओर अपने विचार प्रेरित किये।

हेस्टिग्ज ने वयोवृद्ध सर आयर कूट के नेतृत्व मे हैदरअली द्वारा किये जाने वाले सवनाश का प्रतिकार करने के लिए समुद्र माग से मद्रास को भारी सैनिक सहायता (कुमुक) भेजी। उसने उसी समय बुन्देलखण्ड तथा मालवा होकर स्थल माग से नवीन सेनाएँ भेजी—पहले कैप्टिन पोफम के नेतृत्व मे, बाद को कनल कामक तथा कनल म्यूर के नेतृत्व मे। नाना ने महादजी को परामश दिया कि वह अपना वर्षाकालीन शिविर बुरहानपुर तथा कोण्डाई के प्रसिद्ध घाट के बीच खानदेश मे बनाये। यह घाट धूलिया के पश्चिम मे करीब ५० मील पर है तथा इसकी स्थिति उस माग पर है जिस पर सूरत तथा सोनगढ से चलकर रघुनाथराव महाराष्ट्र मे प्रवेश कर सकता था। महादजी ने नाना के सुझाव का तिरस्कार करके मालवा मे वास किया। इस पर नाना अत्यन्त क्रुद्ध हो गया तथा इसके कारण उन दोनो मे दीघकालीन तथा कटु पत्रव्यवहार आरम्भ हो गया। महादजी ने बल देकर कहा कि वह पूना की रक्षा केवल मालवा से कर सकता है, क्योकि वहा से दक्षिण पर टूट सकने वाली सेनाएँ उसी प्रान्त मे रहकर रोकी जा सकती है। उसका आग्रह था कि यदि

मालवा हाथ से निकल गया तो मराठा राज्य का अन्त ही हो जायेगा। महादजी के रणकोशल के विस्तृत फन्दो को नाना कभी न समझ सका। महादजी ने नाना को बारम्बार सकेत किया कि इस समय ब्रिटिश नीति का केन्द्र स्थान रघुनाथराव नही हे, अपितु उनका उद्देश्य सूरत तक बम्बई कोकण को अधीन करना हे, जिससे पश्चिमी समुद्रतट पर भी उनका उसी प्रकार अधिकार हो जाये, जिस प्रकार कि पूर्वी समुद्रतट पर हे। उन्होने पहले ही बडोदा के गायकवाड और नागपुर के भोसले को लगभग अपना वशवर्ती शासक बना लिया था। इसी प्रकार सम्राट तथा उमकी राजधानी दिल्ली पर भी नियन्त्रण प्राप्त करन की योजना बना रहे थे। महादजी ने साग्रह कहा कि केवल मालवा मे उसकी उपस्थिति से ही भारतीय उपद्वीप को आत्मसात् करने वाला ब्रिटिश घेरा रोका जा सकता हे। यह घेरा मराठा स्वाधीनता का भी अन्त कर सकता हे। इस परिस्थिति को नाना के सम्मुख स्पष्ट करने तथा उसका यह विश्वास दिलाने मे महादजी को बहुत कष्ट उठाना पडा कि यदि वह अपने वतमान स्थान को छोड देगा तो उसे शत्रु के हाथ की कठपुतली बनना पडेगा। उसने नाना को परामश दिया कि वह हेदरअली के वीरतापूवक डट जाने से साहस ग्रहण करे, भोसले को पुन अपने पक्ष मे करने का प्रयत्न करे तथा उत्साहित करे ओर सघ की सफलता के लिए अपनी प्रतिज्ञाओ का पालन करने के लिए निजामअली को प्रोत्साहित करे।

इस समय महादजी ने एक अन्य उत्कृष्ट रूप अपनाया। गाविन्दराव गायकवाड उसका मित्र था, जिसका फतेहसिह ने निकालकर वाहर कर दिया था। महादजी ने उसको धन तथा सेना दी ओर बडोदा पर अधिकार करने के लिए गुजरात भेज दिया। गोविन्दराव का उधर भेज देने से गोडाड की योजनाए लगभग अस्त-व्यस्त हो गयी। महादजी ने मुधोजी भोसले को भी बगाल मे प्रवेश करने की प्रेरणा दी। यदि उस सरदार ने अनुकूल उत्तर दिया होता तो अग्रेजो के विरुद्ध महादजी की योजनाएँ सफल हो जाने की पूरी सम्भावनाए थी। महादजी का सुझाव था कि यदि ब्रिटिश सत्ता के मूल स्थान कलकत्ता को भयभीत किया जा सके तो शत्रु विवश होकर शरण मे आ जायेगा।[१४]

अगस्त मे महादजी ने नाना को लिखा—"अपने आज्ञावर्ती दक्षिणी सरदारो

[१४] महादजी शिन्दे के ग्वालियर पत्र—विशेषकर जून से सितम्बर १७८० तक, क्रम-सख्या १०७ से ११७ तक।

की सहायता से आप गुजरात तथा कोकण की रक्षा का प्रबन्ध अवश्य करे। होलकर भी आपके साथ है। उसको खानदेश की रक्षा करनी चाहिए। हैदरअली तथा निजामअली को दक्षिण और पूव मे अपना काय पूरा करने के लिए प्रलोभन दिया जाये। इधर मैं बुन्देला सरदारो, सम्राट तथा उसके मन्त्रियो के सहयोग से ब्रिटिश प्रगति का विरोध करूँगा। हम सबको यथाशक्ति प्रयास करना है तथा अपने कतव्यपालन मे हमको प्रत्येक कष्ट सहन करना है। मुझे निश्चय है कि अपने सहायक बालक पेशवा के सौभाग्य से अन्त मे हम इस युद्ध मे विजयी होगे। बहुत तक-वितक के बाद नाना ने महादजी की रणयोजना को स्वीकार कर लिया। तुकोजी होलकर से उपयोगी काय कराना नाना को अत्यन्त दुष्कर था, क्योकि स्वय तुकोजी के सम्बन्ध अहिल्याबाई से अच्छे नही थे। इस कलहपूण होलकर परिवार के कारण मराठो के ब्रिटिश-विरोधी प्रयास सदैव विफल होते रहे।

महादजी तथा हैदरअली ही दो प्रमुख व्यक्ति थे जिन्होने इस सकट-ग्रस्त क्षण मे ब्रिटिश आक्रमण के विरुद्ध भारतीय परिस्थिति की रक्षा कर ली। १७८० के आरम्भ से ११ माच, १७८४ की मगलोर की सन्धि तक मद्रास के समस्त कर्णाटक प्रदेश पर पहले हैदरअली का तथा ७ दिसम्बर, १७८२ को उसके देहान्त के पश्चात उसके पुत्र टीपू सुलतान का व्यवहारिक रूप से अधिकार रहा। जून, १७८० मे ७० हजार सेना तथा १०० तोपे लेकर हैदरअली अपनी राजधानी से चलकर मद्रास पर टूट पडा तथा काँची के मैदान मे उसने अनेक प्रसिद्ध ब्रिटिश कमाडरो—जैसे मनरो, बेयली तथा फ्लेचर—का सवनाश कर दिया और लगभग ७० ब्रिटिश अधिकारियो, ३०० यूरोपीय सिपाहियो, तथा बहुसख्यक भारतीय सैनिको को तलवार के घाट उतार दिया। सर आयर कूट बगाल से समुद्र माग से आया। उसके पास १ करोड ३६ लाख रुपयो का विपुल धन था। कनल पियस स्थल माग से आया। उन्होने यथाशक्ति कुछ समय तक प्रयास किया कि हैदरअली से युद्ध करे और उसको भगा दे। कूट ने हैदरअली को रण मे परास्त कर दिया, परन्तु उसके शीघ्र पश्चात् ही उसकी मृत्यु हो जाने से अग्रेज लोगो की स्थिति निबल हो गयी। लगभग चार वष के लम्बे समय तक मैसूर के लोग पूर्वीय कर्णाटक को पददलित तथा भयभीत करते रहे, जिससे लोग वहाँ पर ब्रिटिश राज्य का अन्त समझने लगे। हैदरअली को अपने कार्यो पर इतना गव हुआ कि उसने श्रीरगपट्टन मे अपने राजभवन की दीवारो पर अपनी विजयो तथा शत्रुओ की दुगति के सुललित दृश्य चित्रित करा दिये जो आज भी देखे जा सकते है।

जून, १७८१ मे इगलैण्ड से लाड मैकार्थे मद्रास का नवीन गवनर होकर आ गया तथा उसने खोई हुई स्थिति को शनै-शनै पुन प्राप्त कर लिया ।

५ **गोडार्ड की विचित्र असफलता**--१७८० की ग्रीष्म ऋतु मे जब गोडार्ड गुजरात मे व्यस्त था, पूना की सेना की बडी-बडी टुकडिया घाटो से उतर आइ और उन्होने बम्बई के समीपवर्ती प्रदेश को इस प्रकार नष्ट कर दिया कि वहाँ के अधिकारी बहुत भयभीत हो गये। १७७४ मे थाना पर अधिकार के समय से उनको आशा थी कि वे बसई तथा कल्याण सहित बम्बई के समस्त महत्त्वशाली टापुओ को सरलता से विजय कर लेगे। परन्तु कोकण के मराठा गवनर विसाजी पन्त लेले के समक्ष वे कुछ प्रगति न कर सके। उसने वीरतापूवक उन टापुओ की रक्षा की। बम्बई से भारी दबाव पडने पर गोडाड ने मराठा दबाव को कम करने के लिए ८ मई को बडौदा से कनल हाटले को भेजा। पनवेल के समीप पन्से तथा बाजीपन्त जोशी ने हाटले का विरोध करके उसे भगा दिया। उसे ५०० सैनिको तथा ५ तोपो की क्षति उठानी पडी। इस प्रकार उस वष कुछ समय तक ब्रिटिश अभियान का कुछ प्रभाव न हुआ तो उनकी थाना स्थित सेना ने अकस्मात् १३ मील उत्तर मे स्थित कल्याण के विरुद्ध धावा किया ओर कोई रक्षा सेना न होने से उस समृद्ध बाजार पर ११ मई को अधिकार कर लिया। यह अग्रेजो की महान विजय थी। उन्होने प्रतिशोध की भावना से वहा के धनी व्यापारियो को लूट लिया तथा बहुत प्रसन्नचित्त होकर वे लूट का माल बम्बई उठा ले गये। कल्याण की सहायता के लिए एक मराठा दल शीघ्र आ पहुँचा, परन्तु २४ मई को हाटले ने इसको भी बुरी तरह पराजित कर दिया। अब वर्षा आ पहुँची और दोनो प्रतिद्वन्द्वियो को नयी योजना के लिए अवकाश मिल गया। उनमे किसी की इच्छा इस समय हार मानने अथवा युद्ध बन्द करने की नही थी।

अब बम्बई के अधिकारियो ने बसई के विरुद्ध प्रबल प्रयत्न करने का निश्चय किया। मराठो का यह अत्यन्त महत्त्वशाली स्थान बम्बई से उत्तर मे मुख्य भूमि पर स्थित था। गोडाड को गुजरात से वापस बुलाकर उस स्थान पर धावा करने की आज्ञा दी गयी। वह १६ अक्तूबर को सूरत से चला और अगले मास उसने बसई पर घेरा डाल दिया। समय पर कोई सहायता प्राप्त न हो सकने से वहाँ की सेना पर इतना भारी दबाव पडा कि विसाजी पन्त ने १२ दिसम्बर को बसई गोडाड को सौप दी। मराठा गव पर यह कठोर प्रहार था, क्योकि बसइ उनके पूर्व पराक्रम का जीवित स्मारक था। उत्तर भारत

मे प्रसिद्धि प्राप्त मराठा सरदार वीर रामचन्द्र गणेश को आज्ञा हुई कि वह सहायक सेना लेकर बसइ पहुँचे । वह अविलम्ब पूना से चल दिया । परन्तु १२ दिसम्बर को प्रातकालीन कुहरे मे अकस्मात शत्रु की एक गोली लगने से उसका देहान्त हो गया । उस समय उसका शिविर वज्रेश्वरी की पहाडी पर था और वह कनल हाटले को जीवित पकड लेने का प्रयत्न कर रहा था । उसी दिन बसइ का पतन हो गया ।

इस घटना से न तो मराठो का साहस क्षीण हुआ और न युद्ध का अन्त ही समीप आया । इस समय भारत मे ब्रिटिश-विरोधी प्रबल भावना व्याप्त थी, क्योकि उन्होने अधिकाश भारतीय शक्तियो के साथ अन्यायपूवक व्यवहार किया था । नाना फडनिस तथा महादजी ने बारम्बार नागपुर के भोसले परिवार को कायशील होने की प्रेरणा दी, परन्तु ब्रिटिश धन ने उनको अकमण्य बना दिया । इस प्रकार एक स्वण अवसर हाथ से जाता रहा, क्योकि यदि भोसले परिवार इस प्रकार का प्रयास करता तो महादजी स्वय उनके समथन के लिए बुन्देलखण्ड से बगाल मे प्रवेश करने के लिए अधीर हो रहा था । परन्तु नागपुर के मुख्य आधार दिवाकर पण्डित का १६ जुलाई, १७८१ को देहान्त हो गया तथा उस दिशा मे समस्त काय स्तब्ध हो गया । भोसले लोग अपनी पूव महत्ता पुन कभी प्रात नही कर सके ।

बसई पर अधिकार करने के बाद बम्बई के अधिकारियो ने दो वष पहले के समान बोरघाट होकर मराठा राजधानी पर पुन आक्रमण करने का निश्चय किया । इस काय के लिए उन्होने अपने योग्यतम सेनापतियो गोडाड तथा हाटले को चुना । हरिपन्त फडके तथा पटवधत्त परिवार ने पूना से अग्रेजो के विरुद्ध युद्व के निमित्त प्रयाण किया । बगाल दल को आगे बढने से रोकने के लिए महादजी मालवा मे रहा तथा उत्तर कोकण मे पूना की सेना की सहायताथ तुकोजी होलकर ने खानदेश होकर प्रयाण किया । जनवरी के अन्त मे वह खण्डाला के दर्रे से गोडाड का सामना करने के लिए बढा । परशुराम भाऊ ने अविलम्ब उसका अनुसरण किया । ६ फरवरी, १७८१ को गोडाड घाटो के ऊपर पहुँच गया तथा १५ अप्रैल तक २ महीने बराबर खण्डाला मे डटा रहा ।

परशुराम भाऊ, हरिपन्त तथा तुकोजी ने समीपवर्ती भूमि तथा शत्रुदल के स्थान की गवेषणा करके अपनी चिरअभ्यस्त गुरिल्ला पद्धति द्वारा शत्रु को निकालने की योजना बनायी । पूना तथा पनवेल के बीच का प्रदेश एक बार पुन इस प्रकार विनष्ट कर दिया गया कि शत्रु को कोई सामग्री प्राप्त

न हो सकी ओर गोडाड खण्डाला के आगे प्रगति न कर सका। फरवरी से अप्रैल तक घाटो के नीचे तीन महीनो तक लगातार झडपे होती रही जिनमे मराठो ने अनेक बार शत्रु को परास्त किया। उन्होने शत्रु की बहुत हानि की ओर बहुत-सा माल लूट लिया। बम्बई से शीघ्रतापूवक सहायक सेनाएँ (कुमुक) भेजी गयी, परन्तु वे पनवेल से आगे बढते ही तितर-बितर कर दी गयी। जब गोडाड को पता चला कि अन्य ब्रिटिश ठिकानो से उसका सम्बन्ध विच्छेद हो गया है तो उसे पूना की ओर सफल प्रगति की आशा न रही। वह बम्बई को वापस हुआ तथा इस प्रतियात्रा मे उसको भारी हानि एव कष्टो का सामना करना पडा। १७७६ के पहले अभियान के समान इस अभियान मे अग्रेजो के १६ अधिकारी तथा ३ हजार सैनिक मारे गये अथवा घायल हो गये। उनकी ४ हजार बन्दूको की भी हानि हुई। बम्बई का एक समाचार पत्र ५ मई को लिखता है—"अग्रेजो ने कभी पहले इस प्रकार के पराभव का अनुभव नही किया था। समस्त बम्बई प्रत्यक्ष उपहास द्वारा इस कृत्य की निन्दा करता है। वस्तुओ के दाम भयानक रूप से बढ गये हे तथा समरत प्रान्त मे दुर्भिक्ष फैल गया हे। अधिकाश साहूकारो ओर व्यापारियो का दिवाला निकल गया है तथा देश लगभग जनहीन हो गया हे। जो भी लोग बच गये हे, उनके पास खाने को अन्न नही हे। बम्बई की दशा अत्यन्त शोचनीय है। तथा यहा के अधिकारी उन शर्तो की याचना कर रहे हे जो मराठे उन पर लगाना चाहे।"[१५]

गोडाड के साहसिक काय की इस असफलता से अग्रेज अत्यन्त हतोत्साह हो गये। वह उनका योग्यतम सेनापति था और गोला बारूद, युद्ध-सामग्री तथा कायदक्ष तोपखाने द्वारा सुसज्जित था। उसके तीन वर्षो के अभियान पर कम्पनी को अपने कोप से सवा तीन करोड रुपये व्यय करने पडे थे।

६ **मालवा मे महादजी की स्थिति दृढ**—गोडाड ने जब १७७८ मे मध्य भारत से अपना प्रथम प्रयाण किया, तभी उसने हेस्टिग्ज को इस प्रकार का वृत्तान्त भेजा था कि जब तक मालवा मे मराठो का बल क्षीण नही कर दिया जायेगा, पश्चिमी भारत मे युद्ध का अन्त नही होगा। इस सुझाव पर हेस्टिग्ज ने पोफम को सुसज्जित तोपखाने सहित लगभग २५०० सैनिको के

---

[१५] इतिहास सग्रह, ऐतिहासिक टिप्पणी जिल्द ३-१८ तथा २८, पत्रे यादी ३२७, खरे, २६२०, २६२३, २६२५,२६३४ मराठो की क्षतियो की सविस्तार सूचिया देते है जिनसे सिद्ध होता है कि मराठा सरकार इस प्रकार के वृत्तान्तो की ओर ध्यान देती थी। डाडवेल, हेस्टिग्ज के पत्र, पृ० १४२

साथ भेजा। गोहद के राणा को, जो बहुत दिनो से मराठो के अधीन था, अब हेस्टिग्ज ने अपने पक्ष मे कर लिया। पहले उमके अधिकार मे ग्वालियर तथा गोहद के दो सामरिक महत्त्व के गढ थे जो मालवा तथा बुन्देलखण्ड मे महादजी की शक्ति के आधार थे। जब महादजी का शिविर उज्जैन मे था तो हेस्टिग्ज ने पोफम को राणा की सहायता के लिए भेजा तथा दोनो ने ग्वालियर पर अकस्मात धावा करके ४ अगस्त, १७८० को उस ऐतिहासिक गढ पर अधिकार कर लिया। महादजी इस गढ की रक्षा का कोई उपाय न कर सका। दुर्ग अजेय माना जाता था, परन्तु महादजी की सेवा मे रहने वाले सरूपचन्द गुप्त नामक एक व्यक्ति ने विश्वासघात करके गोडाड को गढ के भीतर जाने वाला गुप्त मार्ग बता दिया, जिममे होकर ब्रिटिश सेनाएँ बिना किसी कष्ट के उसमे प्रविष्ट हो गयी। महादजी के विश्वस्त सेनापति अम्बूजी इग्ले ने वीरतापूर्वक उस स्थान की रक्षा की, परन्तु किलेदार रघुनाथ रामचन्द्र मारा गया, उसके परिवार के अनेक व्यक्तियो ने अपने सम्मान की रक्षा के लिए आत्महत्या कर ली तथा अम्बूजी गढ का समर्पण करने पर विवश हो गया। बदले मे उसको तथा उसके परिवार को सकुशल जाने की आज्ञा मिल गयी। कुछ और सरदार, जो मराठा शासन से असन्तुष्ट थे, अंग्रेज लोगो के साथ हो गये। इस प्रकार शत्रु ने स्वय महादजी पर आक्रमण करने के विचार से दक्षिण की ओर आन्तरी तथा सीपरी नामक स्थानो को प्रयाण किया। हेस्टिग्ज ने तुरन्त कर्नल कामक को पोफम की सहायता के लिए भेज दिया। उसने कालपी पर यमुना को पार किया तथा फरवरी, १७८१ मे सीवा सिरोज पहुँच गया। इस स्थान पर भोपाल के नवाब का अधिकार था। वह मराठो का अधीनस्थ सामन्त तो था, परन्तु उनका पक्षत्याग कर अंग्रेजो से मिलने के लिए तैयार था। महादजी ने अम्बूजी इग्ले तथा खाडेराव हरि को बढते हुए ब्रिटिश लोगो से युद्ध करने के लिए भेजा और वह स्वय भेलसा के समीप कामक का सामना करने के लिए ठहर गया। थोडे ही समय मे उसने कामक के छोटे दल को इस प्रकार पीडित कर दिया कि वह महादपुर की ओर पीछे हट गया। वहा पर अपनी युद्ध सामग्री को पूरा करके उसने २४ मार्च को सहसा महादजी पर आक्रमण करके उसे बुरी तरह परास्त कर दिया और कुछ समय तक महादजी की स्थिति अनिश्चित कर दी, क्योकि ४ अप्रैल को कर्नल म्यूर की अधीनता मे कामक के पास अधिक सहायक सेना (कुमुक) पहुँच गयी थी। ऐसा मालूम होता था कि मध्य भारत मे मराठा शासन का अन्त होने वाला है।

इस प्रकार जब १७८१ के ग्रीष्म मे पूना की सेनाएँ पनवेल तथा कल्याण

के मध्यवर्ती क्षेत्र मे गोडाड को परास्त कर रही थी, तब महादजी मालवा मे घोर युद्ध कर रहा था। उस समय वह उत्सुकतापूवक वर्षा ऋतु के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था जबकि युद्ध मे विराम उपस्थित हो जाना अनिवाय हे। उसकी साग्रह प्राथना पर अहिल्याबाई ने इन्दोर से उसको कुछ सहायता भेजी और बलवन्तराव ढोडदेव के अधीन पूना से भी एक दल आ पहुँचा। इस प्रकार महादजी ने अपनी स्थिति सँभाल ली तथा उसने नाना को लिखा कि किसी भी कारण से वह गोडाड से शान्ति की शर्तो की याचना न करे। अब उसने वीरतापूवक आक्रमणात्मक युद्ध आरम्भ किया और अन्न तथा विश्राम की साधारण सुविधाएँ प्राप्त किये बिना दिन-रात परिश्रम किया। १ जुलाई को सीपरी के समीप उसने कनल म्यूर को बुरी तरह परास्त कर दिया और अपना शिविर झासी के समीप उस स्थान पर स्थापित किया जिसको बूढा पहाड कहते हे। कनल म्यूर ने अपना शिविर सीपरी मे डाला। इन दोनो स्थानो के बीच मे ४० मील से अधिक अन्तर नही हे।

ब्रिटिश परिस्थिति के विषय मे वारेन हेस्टिग्ज अत्यन्त भयभीत हो गया था। उसकी उत्कट इच्छा थी कि वह मराठा युद्ध को समाप्त करके अपनी समस्त शक्ति हेदरअली पर केन्द्रित कर दे। अपनी कौसिल मे हेस्टिग्ज को कडा विरोध सहन करना पडता था। जब उसे मिरोज के समीप कनल कामक की पराजय का समाचार मिला तो उसने मराठो से सन्धि करने के लिए एक साथ अनेक दिशाओ मे प्रयास किये। इसी उद्देश्य से उसने नागपुर के भोसले से प्राथना की, पूना मन्त्रिमण्डल का रुख जानने के लिए गोडाड को आदेश दिया तथा बुन्देलखण्ड मे कनल म्यूर से उसने कहा कि वह महादजी के विचारो का पता लगाये। इन एक साथ किये हुए प्रयासो की प्रतिक्रिया ब्रिटिश नीति के लिए दुखजनक सिद्ध हुई। पूना की सरकार हैदरअली के साथ सघ की पवित्र प्रतिज्ञा द्वारा किसी भी कारणवश अलग सधि न करने के लिए और प्रत्येक प्रयास मे सम्मिलित रूप मे काय करने को बाध्य थी। वास्तव मे यही प्रतिज्ञा शान्ति के माग मे मुख्य बाधा थी, अन्यथा इसके लिए मराठे भी उतने ही उत्सुक थे जितना कि स्वय वारेन हेस्टिग्ज।

७ **सालबई की सन्धि**—जब १७८१ की ग्रीष्म ऋतु मे हेस्टिग्ज को ये समाचार प्राप्त हुए कि गोडाड अपने कोकण अभियान मे बुरी तरह हार गया है और पेशवा के साथ बातचीत द्वारा शान्ति स्थापना मे मुधोजी असफल हो गया है तो वह अत्यन्त व्याकुल हो उठा तथा उसको धनाभाव का बहुत कष्ट हुआ। वह अगस्त मे दो उद्देश्यो से बनारस गया—चेतसिह से बलपूर्वक

कुछ धन प्राप्त करे तथा महादजी के साथ प्रत्यक्ष सन्धि प्रस्ताव प्रारम्भ करे अथवा यदि सम्भव हो सके तो स्वय उससे भेट करे। इसी उद्देश्य से उसने नागपुर से दिवाकर पण्डित को बनारस बुलाया, परन्तु वह यह जानकर हताश हो गया कि ठीक उसी समय दिवाकर का देहान्त हो गया।

चेतसिह के विद्रोह से हेस्टिग्ज की निराशा और भी बढ गई। इसके कारण वह वैयक्तिक रूप से सकट मे पड गया। अपनी घोर आवश्यकता मे उसने कनल म्यूर को स्मरण किया, जिसका शिविर उस समय बुन्देलखण्ड मे महादजी के समीप ही था। उसने कर्नल म्यूर से यह पता लगाने का प्रयत्न करने को कहा कि महादजी को समझोता करने का प्रलोभन दिया जा सकता है या नही। गत सात वर्षो के सतत कष्टप्रद अभियान तथा चिन्ता-जनक युद्ध से बिना अपमान के मुक्त होने की चिन्ता महादजी को भी कुछ कम न थी। अगस्त मे चतुर मध्यस्थो—सम्भवत फामर तथा स्टुअट—द्वारा कनल म्यूर को पता लग गया कि महादजी शान्ति प्रस्ताव के लिए इस शत पर तैयार है कि साल्सेट बसई तथा बम्बई के समीप के अन्य टापू मराठा सरकार को वापस कर दिये जाये और गोहद के राणा को पुन उसका विश्वास-पात्र बनने पर विवश कर दिया जाये। म्यूर तुरन्त इस प्रस्ताव से सहमत हो गया, परन्तु उसने वचन लिया कि राणा के पिछले आचरण के कारण प्रतिशोध की भावना से उसके साथ दुर्व्यवहार न किया जाये। यह मामला बनारस मे गवनर जनरल के पास भेज दिया गया तथा म्यूर और महादजी के बीच १३ अक्तूबर, १७८१ को एक प्रकार की विराम सन्धि स्थापित हो गयी। शर्ते ये थी

१ म्यूर तथा महादजी दोनो युद्ध बन्द कर दे।

२ एक सप्ताह के भीतर दोनो प्रतिद्वन्द्वी अपने मुख्य स्थानो को वापस चले जाये—म्यूर यमुना पार तथा महादजी उज्जैन को।

३ महादजी पहले अग्रेजो तथा पूना शासन के बीच और बाद को ब्रिटिश लोगो तथा हेदरअली के बीच मध्यस्थ बनकर शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न करे।

४ बुन्देलखण्ड मे अग्रेजो द्वारा विजित प्रदेश, उन शासको के साथ मराठो को वापस कर दिया जाये जो अग्रेजो से मिल गये है।

इनके अतिरिक्त महादजी ने म्यूर तथा हेस्टिग्ज को यह भी स्पष्ट कर दिया कि उत्तर भारत, विशेषकर सम्राट सम्बन्धी विषयो के प्रबन्ध का उसको सर्वथा स्वतन्त्र अधिकार प्राप्त है। हेस्टिग्ज ने अविलम्ब उन सब धाराओ को

स्वीकार कर लिया जो महादजी ने उपस्थित की। इस प्रकार स्थायी रूप से सन्धि के लिए माग बन गया।

हेस्टिंग्ज जानबूझकर बनारस मे बहुत दिनो तक ठहरा रहा तथा म्यूर ने उसको और बम्बई मे गोडाड को सूचना भेज दी कि विराम सन्धि और उसकी शर्ते निश्चित हो गयी है तथा उस क्षेत्र मे युद्ध बन्द हो गया है। इस समाचार से हेस्टिंग्ज का हृदय प्रफुल्लित हो गया। २० अक्तूबर को म्यूर ने हेस्टिंग्ज को लिखा कि अगले दिन विराम सन्धि के अनुसार वह यमुना पार करने जा रहा है। हेस्टिंग्ज ने यह समाचार कलकत्ता, बम्बई तथा यूरोप को भी भेज दिया। उसने विभिन्न अंग्रेज कमाण्डरो तथा प्रान्तो को आज्ञाएँ भेज दी कि वे मराठो के विरुद्ध युद्ध की गतिविधि सर्वथा बन्द कर दे। इससे हैदरअली के सम्बन्ध मे नाना फडनिस की स्थिति बिगड गयी, क्योकि इस प्रकार चार शक्तियो के सघ की प्रथम धारा का उल्लघन हो गया था। हैदर-अली की मृत्यु के समय तक, जो ७ दिसम्बर, १७८२ को हुई, नाना ने सालबई की सन्धि पर हस्ताक्षर नही किये। वरन नाना ने महादजी को परामर्श दिया कि वह अपनी सेना तथा तैयारियो को समाप्त न करे, क्योकि किसी भी क्षण युद्ध पुन आरम्भ हो सकता है। एक विशाल फ्रेंच नौ-समूह सुप्रसिद्ध ऐडमिरल सफ्रे के अधीन यूरोप से १७८१ के आरम्भ मे प्रस्थान कर चुका था। इसका उद्देश्य था कि वह हैदरअली की सहायता करे तथा उसके द्वारा कारोमण्डल तट पर अंग्रेजी शक्ति का सर्वनाश कर दे। सफ्रे के आगमन मे विलम्ब तथा हैदरअली की आकस्मिक मृत्यु के कारण फ्रेंच लोगो का आक्रमण विफल हो गया। मद्रास की परिस्थिति उस समय किस प्रकार सकटग्रस्त थी, इसका ज्ञान मद्रास की सेलेक्ट कमेटी के उस पत्र से हो सकता है जो उसने २२ मार्च, १७८२ को हेस्टिंग्ज के पास भेजा था। इसमे कमेटी के सदस्यो ने कहा—"मराठो के साथ शान्ति हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक हो गयी है। यदि इसका निश्चय शीघ्र नही हुआ तो इस समुद्रतट पर ब्रिटिश हितो के लिए घातक परिणामो की आशका करने के पर्याप्त कारण हो जायेंगे।"[१६]

इस युद्ध की प्रगति के लिए एक अनपेक्षित दिशा से भी जटिलता उपस्थित हो गई। जब ब्रिटिश सेनापति सर आयर कूट तथा भारत मे ब्रिटिश नौ-समूह का अध्यक्ष उनका एडमिरल ह्यूग्स दक्षिणी प्रान्त मे ब्रिटिश सत्ता की रक्षा का यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे थे, तभी जून, १७८१ मे लार्ड मैकार्टनी का आगमन मद्रास मे हुआ। वह मद्रास का नवनियुक्त गवर्नर था। उसके साथ ही सर

जान मैक्फर्सन आया जो ठीक उसी समय गवनर जनरल की कौसिल का सदस्य नियुक्त हुआ था। इन दोनो महत्त्वशाली अधिकारियो को यूरोप की राजनीतिक परिस्थिति तथा ब्रिटिश-फ्रेच युद्ध का वास्तविक ज्ञान था। मद्रास आते ही इन्होने अविलम्ब कूट तथा ह्यूग्स के साथ परामश किया और वे इस निश्चय पर पहुँचे कि वारेन हेस्टिग्ज की भ्रान्त नीति के कारण भारत मे ब्रिटिश सत्ता को धन, जन तथा गोरव की महान क्षति हुई हे। उन्होने नि शक होकर साधारण वैधानिक रीति का त्याग करके सीधे पेशवा को पत्र लिखा और युद्ध को समाप्त करने का प्रस्ताव किया। यह पत्र मद्रास से ११ सितम्बर १७८१ को लिखा गया। उसका आशय यह है

''अभी-अभी आज्ञाएँ प्राप्त हुई है। ये केवल कम्पनी की ओर से नही, ग्रेट ब्रिटेन के राजा की ओर से है। ये उस समय दी गई थी जब इगलैण्ड मे जनरल गोडाड की विजयो के समाचार प्राप्त हुए थे और जब वकील लोग राजा तथा कम्पनी के पास रघुनाथराव के पत्र लाये थे जिनमे अनेक उपहारो के प्रस्ताव थे। इन आज्ञाओ का सार यह हे कि भारत मे उनके सेवको का उद्देश्य नवीन विजय नही होना चाहिए। उनको भारत की समस्त शक्तियो के साथ शान्ति तथा प्रेमपूवक रहना चाहिए। इस बुद्धिसगत नीति के उल्लघन पर इस प्रकार प्रबल रोष प्रकट हुआ कि हम चारो को उक्त आज्ञाएँ स्पष्ट रूप से दी गई है और हम सम्मिलित रूप से यह पत्र उन आज्ञाओ का पालन करने के उद्देश्य से लिख रहे हैं कि आपके शासन के साथ तुरन्त शान्ति तथा मित्रता की सन्धि स्थापित की जाये। इगलैण्ड का राजा तथा ससद इसे प्रमाणित करेगी। भारत स्थित कम्पनी का कोई भी सेवक इसमे परिवतन नही कर सकेगा। हमने जनरल गोडाड तथा बम्बई प्रा त को कम्पनी की आज्ञाए भेज दी है कि आपके विरुद्ध युद्ध सम्बन्धी समस्त गतिविधि बन्द कर दी जाये। हमको स देह नही है कि आप अपने विरुद्ध युद्ध बन्द करने का आदेश देगे। कृपया स्थायी मैत्री के निमित्त आप अपनी इच्छानुसार विशेष शर्तें गवनर जनरल तथा उसकी कौसिल को अविलम्ब लिखे। इस पत्र द्वारा हम अपनी ही नही, कौसिल स्थित गवनर जनरल, कम्पनी तथा राजा का भी सम्मान बधक रखते है कि सत्यतापूण तथा दढ सन्धि द्वारा आपको प्रत्येक न्यायसगत सन्तोष दिया जायेगा। इन आश्वासनो के बाद आपको केवल शान्ति या युद्ध मे से एक को चुनने की बात रह जाती है। यदि स्थायी शान्ति मे आप हमारा साथ देते है तो आप उन समस्त लाभो का उपभोग करेगे जो हमारी मित्रता इच्छा तथा सामथ्य के अनुसार आपको प्रस्तुत कर सकेगी।

ईश्वर से प्राथना हे कि वह आपको न्यायसगत तथा उचित माग अपनाने की प्रेरणा दे।"[१७]

इस प्रकार इस समय शान्ति का प्रयास करने वाले तीन-चार साधन उपलब्ध थे—१ कैप्टिन म्यूर तथा महादजी के द्वारा हेस्टिग्ज, २ हेस्टिग्ज की पुरानी आज्ञानुसार कायशील मुधोजी भोसले, ३ जनरल गोडाड का विश्वस्त दूत कैप्टिन वादरस्टोन जिसको उसने पूना भेजा था ओर जो सीधे नाना फडनिस से मिला था, ४ मद्रास का उक्त पत्र जिसकी मध्यस्थता अर्काट का नवाबअली कर रहा था। नाना इन समस्त प्रयासो का अभिप्राय अच्छी तरह समझता था। उसने अग्रेजो की अव्यवस्थित परिस्थिति से अधिकतम लाभ उठाने का प्रयत्न किया, क्योकि अग्रेज लाग अधिक हानि से बचने के लिए अधीर हो उठे थे। उसने महादजी से कहा कि वह डटा रहे तथा इस आधार पर सन्धि प्रस्तावो को खीचता रहे कि हैदरअली के साथ परामश किये बिना कोई पृथक शान्ति स्थापित नही की जा सकती। मसूर के इस शासक (हेदरअली) को शान्ति की कोई इच्छा नही थी। उसको आशा थी कि फ्रेंच नो-सेना किसी क्षण पहुँच जायेगी तथा वह प्रायद्वीप से ब्रिटिश सत्ता का अन्तिम रूप से सवनाश कर देगा। उसके अधिकार मे पहले से ही विशाल भू क्षेत्र था जिसे वह छोडना नही चाहता था। बनारस मे ठहरे हुए हेस्टिग्ज को यह सब स्पष्ट था। इसीलिए उसने महादजी के साथ अपरिवतनीय सन्धि स्थापित करने मे एक क्षण का भी विलम्ब नही किया। इस काय के लिए वह बनारस मे बहुत दिना तक ठहरा रहा तथा उसने अपने व्यक्तिगत दूत डेविड ऐण्डसन को पूण अधिकार सहित भेजा कि वह म्यूर की विराम सन्धि के आधार पर अविलम्ब शर्तो का निश्चय कर ले। स्वय हेस्टिग्ज व्यक्तिगत रूप मे महादजी शिन्दे से भेट करके अपने निपुण कूटनीतिक चातुय ओर प्रलोभन द्वारा उस शक्तिशाली सरदार को सघ से पृथक कर देना चाहता था, जिससे हैदरअली अकेला रह जाये। हेस्टिग्ज ने ऐण्डसन से कहा कि वह दोआब मे फरुखाबाद के समीप किसी स्थान पर महादजी के साथ उसकी भेट का प्रबन्ध करे, क्योकि बुन्देलखण्ड स्थित महादजी के शिविर मे स्वय जाना उसके लिए अपमानजनक होगा। महादजी इन सूत्रो के बल का अनुमान करते हुए व्यक्तिगत भेट से कतराता रहा और उसने नाना के परामश से काय किया। १४ दिसम्बर, १७८१ को भगोडा चेतसिह महादजी के पास आया। एक सप्ताह बाद उसे

[१७] फोरेस्ट कृत मराठा ग्रन्थमाला, पृष्ठ ४६१, ऐतिहासिक टिप्पणी जिल्द ३-४३, जिल्द ४-१६, इतिहास सग्रह, चिनापट्टनची राजकरणे।

सूचना मिली कि गवनर जनरल के व्यक्तिगत दूत के रूप मे ऐण्डसन का प्रतिनिधि मण्डल आ रहा है। ऐण्डसन के महादजी से मिलने के पहले ही ब्रिटिश दूत ने चेतसिह को निकाल दिये जाने की माँग रखी, क्योकि वह ब्रिटिश सरकार का शत्रु था। महादजी ने शान्तिपूवक उत्तर दिया कि चेतसिह को निकाला नही जा सकता, यदि इसी कारण ऐण्डसन उससे नही मिलना चाहता तो वह अपनी इच्छा से वापस जा सकता हे और भेट करना छोड सकता हे। इस नम्र भत्सना का अभीष्ट परिणाम हुआ, क्योकि ऐण्डसन के पास दूसरा कोई माग नही था। वह २३ दिसम्बर, १७८१ को प्रथम बार महादजी से मिला।

हेस्टिग्ज को निश्चय नही था कि ऐण्डसन अपने ध्येय मे सफल हो सकेगा। उसको भय था कि नाना और हेदरअली उसकी शान्ति योजना भग कर देगे। अत द्वितीय उपाय के रूप मे उसने पहले से ही बेनीराम तथा विश्वम्भर दोनो भाइयो को बनारस बुला लिया था। ये नागपुर के वकील थे ओर हेस्टिग्ज की आज्ञाओ के पालनाथ सदैव प्रस्तुत रहते थे। हेस्टिग्ज ने इन्हे एक लाख रुपया नकद तथा २५ हजार रुपया वार्षिक आय की स्थायी जागीर इनाम मे दी।[१८] बाद मे उन्हे पूना सरकार से सन्धि की प्राथना करने के लिए मुधोजी के पास नागपुर भेजा। इन दोनो के काय पर निगाह रखने के लिए उसने अपना व्यक्तिगत दूत चैपमैन नागपुर भेजा। बनारस, कलकत्ता, मद्रास, बम्बई तथा पूना के बीच अनेक दूत विभिन्न दिशाओ मे एक साथ कायरत होने के कारण अत्यन्त जटिलता, चिन्ता तथा विलम्ब उपस्थित हो गया। ऐण्डसन योग्य कूटनीतिज्ञ था। उसने १७८२ के आरम्भिक मासो मे अपने प्रशसनीय चातुय तथा सावधानीपूवक अपना ध्येय पूरा कर लिया। नाना ने सभी विषयो की चर्चा का स्थान पूना बदलने का प्रयत्न किया। पूना मे वेदरस्टोन ने पहले ही कुछ शर्तो का प्रस्ताव कर दिया था। उसने महादजी को ऐण्डसन के साथ पूना आकर अल्पवयस्क पेशवा के विवाहोत्सव मे भाग लेने को कहा। नाना ने इस समय इस सस्कार का प्रस्ताव समस्त प्रमुख मराठा सरदारो के अतिरिक्त निजामअली तथा हैदरअली को भी विशेष निमन्त्रण पर बुलाने और भरी सभा मे सन्धि का निश्चय करने के विचार से किया। हैदरअली सदैव नाना को पृथक सन्धि के विरुद्ध चेतावनी देता रहता था। अत नाना की

[१८] यह माना जाता है कि इस समय तक वही परिवार उस जागीर का उपयोग कर रहा है। सालबई की सन्धि के इस दीघ आख्यान मे हेस्टिग्ज के चरित्र के उजले तथा मैले पक्ष पूणत विद्यमान है।

योजना समस्त भारतीय शासको पर उन्नतिशील पेशवा की छत्रछाया मे बढ रहे मराठा राज्य की शक्ति तथा वैभव का प्रभाव डालने की थी ।

नाना की योजना मे भी शक्ति थी, परन्तु महादजी ने एक भिन्न शक्तिशाली विचार रखा कि जब तक अन्तिम रूप से शान्ति का निश्चय न हो जाये, तब तक युद्ध के लिए एकत्र विशाल सेनाओ का विसजन न किया जाये। इलाहाबाद के समीप अग्रेजो की स्थिति सुदृढ थी तथा उत्तर के अनेक सरदार मराठा स्थिति मे किसी भी प्रकार की निबलता के प्रवेश से लाभ उठाने को तैयार थे । सन्धि प्रस्तावो के लिए वारेन हेस्टिग्ज से बारम्बार निर्देश प्राप्त करना आवश्यक था । उसने बनारस के समीप अपने को सुदृढ कर लिया था तथा युद्ध या शान्ति का अन्तिम निणय इस समय भी उसके अधिकार मे था । इस परिस्थिति मे महादजी ने पूना जाने से इनकार कर दिया। उसने कहा कि सम्भवत पूना के विवाह सस्कार के शान्ति तथा आमोद-प्रमोदपूण वातावरण की अपेक्षा वह उत्तर के सनिक वायुमण्डल मे अन्तिम समझोते के लिए उत्तम शत प्राप्त कर सकता है । पूना म हेदरअली उपस्थित नही हो सकता था, क्योकि कर्णाटक से उसकी अनुपस्थिति उसकी स्थिति के लिए आपत्तिजनक थी । इस प्रकार सन्धि प्रस्ताव का विषय अन्त मे महादजी के ही हाथो मे रह गया ।

विराम सन्धि की आरम्भिक समस्याए तो शीघ्र सुलझ सकती थी, परन्तु वास्तविक शर्तो के निश्चय की प्रक्रिया दीघकालीन तथा चिन्ताजनक लग रही थी, क्योकि युद्ध का क्षत्र विस्तृत होने के कारण अधिकाश भारतीय शक्तियो के साथ अन्तिम निश्चय का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध था । साथ ही महादजी और नाना के बीच सतत परामश भी आवश्यक थे । मैकाटने तथा गोडाड द्वारा प्रारम्भ किये गये शान्ति प्रयास शीघ्र शिथिल कर दिये गये तथा यह काय केवल डेविड ऐण्डसन तथा महादजी के अधिकार मे रह गया जिनका हेस्टिग्ज से सीधा सम्पक था ।

नाना फडनिस की ओर से विवाद का मुख्य विषय उन प्रदेशो का लौटाना था जिन पर सात वर्षो के युद्ध मे अग्रेजो ने अधिकार कर लिया था— विशेषकर थाना, साल्सेट, बसई और गुजरात के प्रदेश अर्थात भडोच और अहमदाबाद—क्योकि युद्ध मराठो के कारण आरम्भ नही हुआ था । नाना ने इस विचार से महादजी को भी परिचित करा दिया था । ऐण्डसन के द्वारा जिन शर्तो का प्रस्ताव हेस्टिग्ज ने प्रथम बार किया, वे ये थी

१ महादजी एक ओर अग्रेजो और मराठो के बीच तथा दूसरी ओर

अग्रेजो एव हेदरअली के बीच अनाक्रामक तथा रक्षात्मक सन्धि स्थापित करा देने का काय करना स्वीकार करे ।

२ अग्रेज बम्बई तथा गुजरात के जीते हुए प्रदेशो को अपने पास रखे ।

३ रघुनाथराव को निर्वाह के पर्याप्त साधन दिये जाये ।

४ इस सन्धि का प्रभाव उन प्रतिज्ञाओ पर न पडेगा जो अग्रेजो ने नागपुर, बडौदा तथा हैदराबाद के साथ कर रखी हे, ओर महादजी अपनी इच्छानुसार गोहद के राणा के साथ व्यवहार कर सकेगा ।

५ मराठे अन्य यूरोपीय जातियो को अपनी सेवा मे नही रखेगे ।

प्रस्तावो के आदान-प्रदान सहित इन तथा अन्य धाराओ पर पूरे चार महीनो तक घोर विवाद होता रहा । विजित प्रदेशो की वापसी समझौते का बहुत कठोर विषय सिद्ध हुआ । महादजी ने हठ किया कि समस्त स्थान वापस कर दिये जाये । ऐण्डसन तथा महादजी के बीच शीघ्र ही सद्भावना, सम्मान तथा मैत्री का विकास हो गया और कटुता बहुत कुछ दूर हो गयी । इस समस्त काल मे नित्य उष्ण वादविवाद तथा वार्तालाप होते रहते थे, परन्तु इन दोनो सरदारो मे प्राय भोजो तथा आमोद-प्रमोदो का सभ्य आदान-प्रदान होता रहता था । महादजी को अपने पक्ष मे करने के लिए ऐण्डसन को सभी साधन काम मे लाने की पूण स्वच्छन्दता देकर हेस्टिग्ज फरवरी, १७८२ मे फोट विलियम को लौट गया ।

जब महादजी ने कहा कि हैदरअली की स्वीकृति के बिना पृथक सन्धि का निश्चय नही हो सकता तो ऐण्डसन ने पूछा— 'तब आप बताये कि हेदरअली क्या शर्ते चाहता हे ।" महादजी ने कहा—"मैने अभी तक उससे परामश नही किया है । मै उसे पत्र लिखकर पूछूगा ।" "इसमे तो कई मास और सम्भवत कई वष लग जायेगे । हम इतनी देर तक कैसे प्रतीक्षा कर सकते है ?" ऐण्डसन ने कहा और तब उन्होने हेस्टिग्ज द्वारा प्रेषित शर्तों पर विचार किया । १४ फरवरी, १७८२ को महादजी ने नाना को लिखा—"हेस्टिग्ज की शर्तो को लेकर ऐण्डसन यहाँ आया है । कृपया मुझको बताये कि मै उसको पूना भेजू या नही । क्या यह सम्भव हे कि मै हैदरअली के साथ बिना परामश के सन्धि रचना कर लू ? यदि हम इस समय कोई समझोता नही कर लेते, तो हमे दूसरे युद्ध का सामना करना पडेगा, जिसके लिए हमारे पास न धन है न सुसज्जा । यदि आप मुझको लगभग १५ लाख रुपये दे तो मै बगाल पर चढाई कर सकता हूँ । यदि नही, तो हमको यह काय उन उत्तम शर्तो पर समाप्त कर देना चाहिए जो हम प्राप्त कर सकते है । ऐण्डसन की माँग हे कि हम किसी

यूरोपीय का समथन न करे, बदले मे अग्रेज भी हमारे किसी ऐसे भारतीय मित्र का समथन नही करेंगे जो अपनी इच्छा से हमारा पक्ष त्याग देगा। यदि भोसले अग्रेजो के विरुद्ध काय करने को तैयार नही है तो यह अच्छा होगा कि हम उनके साथ शर्तो का निश्चय कर ले और इम भारी सोदे को समाप्त कर दे।"

शान्ति स्थापन के लिए हेस्टिग्ज किस प्रकार अधीर हो गया था, इसका ज्ञान ऐण्डसन को लिखे गये उसके पत्रो से हो सकता हे। ६ अप्रैल, १७८२ को उसने ऐण्डसन को लिखा—"महादजी के प्रति व्यक्त किये गये अधिक सम्मान (शान्ति स्थापना के लिए) से निजामअली खाँ तथा मुधोजी भोसले मुझसे बहुत रुष्ट हो गये है। उनके पत्रो से प्रकट होता हे कि महादजी उनकी ईर्ष्या का पात्र हे तथा उनकी ओर नाना फडनिस की समान रूप से इच्छा हे कि शान्ति स्थापना का श्रेय उसको प्राप्त न होने पाये। उस शैली तथा भाषा द्वारा, जिन पर आपको अधिकार हे आप ये बाते महादजी का बता दे तथा उससे आग्रह कर कि यदि यह काय उससे हो सके तभी वह अपना निश्चय करे।"[१८]

इस प्रकार महीना के कष्टप्रद वार्तालाप तथा असीम पत्र व्यवहार के बाद अन्तिम सन्धि का निश्चय हा गया। इस पर सालबई के स्थान पर १७ मई, १७८२ को महादजी तथा ऐण्डसन के हस्ताक्षर हो गये जो ग्वालियर के २० मील दक्षिण मे हे। इसकी १७ धाराओ मे मुख्य ये हे

१ बसई सहित वे समस्त स्थान पेशवा को दे दिये जायेगे जिन पर अग्रेजो ने पुरन्दर की सन्धि के पश्चात् युद्धकाल मे अधिकार कर लिया हे।

२ साल्सेट के टापू पर तथा बम्बई के समीप छोटे टापुओ पर अग्रेजो का अधिकार बना रहेगा।

३ इसी प्रकार भडोच नगर पर भी अग्रेजो का अधिकार रहेगा।

४ गुजरात मे अग्रेजो द्वारा विजित वे प्रदेश पेशवा तथा गायकवाड को वापस कर दिये जायेगे जिन पर पहले उनका अधिकार था।

५ इसके बाद अग्रेज रघुनाथराव को धन या अन्य प्रकार से कोई सहायता नही देगे। वह अपने निवास स्थान को चुन लेगा तथा पेशवा की ओर से उसके निर्वाहार्थ २५ हजार रुपये मासिक मिला करेंगे।

६ फतेहसिह गायकवाड अपने पूव के अधिकृत प्रदेश को अधिकार मे रखेगा तथा यथापूव मराठा राज्य की सेवा करेगा।

---

[१८] ऐण्डर्सन के साथ हेस्टिग्ज का पत्रव्यवहार, देखो, ग्लीग, जिल्द ८, पृ० ५२९-५५७

७ पेशवा प्रतिज्ञा करता हे कि हैदरअली से वह प्रदेश छीन लिया जायेगा जिस पर उसने हाल मे अधिकार कर लिया है ।

८ इस धारा मे मराठो तथा अग्रेजो के मित्रो का वणन था । दोनो पक्ष यह प्रतिज्ञा करते हे कि वे एक दूसरे के मित्रो को कष्ट नही देगे ।

९ अग्रेज लोग यथापूव व्यापार के विशेष अधिकारो का उपभोग करते रहेगे ।

१० पेशवा प्रतिज्ञा करता है कि वह किसी अन्य यूरोपीय राष्ट्र की सहायता नही करेगा ।

११ ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा पेशवा माधवराव पण्डित प्रधान इस सन्धि की शर्तो के उचित पालनाथ उभयपक्ष का उत्तरदायी बनने के लिए महाराजा माधवराव शिदे से प्राथना करते हे । यदि उनमे से कोई भी शर्तों का उल्लघन करे तो वह आक्रान्ता के दमन का प्रयास करेगा ।

१२ कनल अपटन की सन्धि की शर्तों के अनुसार वे प्रदेश वापस कर दिये जायेगे जो रघुनाथराव ने अग्रेजो को दे दिये थे ।

इस सन्धि का प्रमाणीकरण हस्टिग्ज ने आगामी ६ जून को फोट विलियम मे कर दिया, परन्तु नाना फडनिस ने बहुत बाद २४ फरवरी, १७८३ को इस पर हस्ताक्षर किये जबकि हैदरअली की मृत्यु हो गयी ।

भारत के राजनीतिक इतिहास मे यह सन्धि एक महत्त्वशाली सीमा चिह्न है । इसकी रूपरेखा निश्चय करने मे एक वप से अधिक समय लग गया था । अग्रेजो ने मराठो के विरुद्ध अपनी क्षमता की परीक्षा की थी और वे परास्त हो गये थे । उनको पता चल गया कि इस क्षति के बाद अपनी स्थिति पुन प्राप्त करना कठिन काय है । नाना बहुत दिनो तक इस मूखतापूण सन्धि की त्रुटियाँ और न्यूनताएँ महादजी को बताता रहा । उसने कहा कि अपटन की सन्धि तथा बडगाव के समझौते का पूणतया पालन होना चाहिए । परन्तु महादजी के पास कोई उपाय न था । यह स्वीकार करना होगा कि उसने उत्तम लाभ प्राप्त करने का सचाई से यथाशक्ति प्रयत्न किया था । थाना का गढ तथा साल्सेट का उपजाऊ द्वीप अन्त मे हाथ से निकल गये, जिसका मराठा राष्ट्र को सदैव दुख रहा । शर्तो के उचित पालनाथ उत्तरदायित्व का पद स्वीकार करके महादजी ने अपना महत्त्व अवश्य बढा लिया था । उससे व्यक्तिगत मित्रता करके तथा शाही कार्यो के प्रबन्ध मे उसको स्वतन्त्रता देकर हेस्टिग्ज ने उसको सम्मानित किया । इसके कारण ब्रिटिश कूटनीतिज्ञो ने हेस्टिग्ज की निदा की तथा महादजी इसको अपनी भावी उन्नति का आधार बनाने मे सफल हो गया ।

१७ दिसम्बर, १७८३ को हेस्टिग्ज लिखता हे—"निजामजली खा आरम्भ से ही किसी भी ऐसी शान्ति के विरुद्ध रोष प्रकट करता रहा हे, जिसका निर्माण उसके द्वारा न हुआ हो। मुधोजी भी अपनी शिकायत के साथ वही आपत्ति करता हे। मैने मुधोजी को सविस्तार पत्र लिखे हे और उससे प्राथना की हे कि वह शिन्दे को मित्र बना लेने सम्बन्धी अपने पिछले परामश पर ध्यान दे। वह महादजी शिन्दे के सम्बन्ध मे अत्यन्त विनयपूवक लिखता हे, परन्तु उसको शिकायत हे कि वह स्वय सन्धि के निर्माण मे सम्मिलित नही किया गया।" वास्तव मे भारतीय शासको मे शान्ति का रचयिता होने के लिए प्रतिस्पर्धा थी, और अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए हेस्टिग्ज ने योग्यतम साधन का चयन किया था।

नाना ने महादजी का ध्यान सन्धि मे इस प्रकार की एक स्पष्ट शत रखने की ओर आकृष्ट किया, जिसके द्वारा बगाल की चोथ मराठो को मिलती रहे। परन्तु नागपुर का भोसले परिवार अपने इस स्वत्व पर २५ वर्षो से भी अधिक समय से मोन था तथा उसने पतनशील साहसहीनता दिखाई। वैसे इस क्षति का मुख्य दुख उन्ही को होना चाहिए था। अत महादजी इस समय मराठो के इस लुप्तप्राय हित तथा मृतप्राय स्वत्व को पुनरुज्जीवित नही कर सकता था। उसने बुद्धिमत्तापूवक हेस्टिग्ज के प्रति व्यावहारिक तथा अनुरजनकारी वत्ति धारण कर ली। अपनी चोथ की माग उसने किसी अन्य अवसर के लिए सुरक्षित रहने दी। आरम्भिक पेशवाओ के समय मे भारतीय राजनीति का केन्द्र दिल्ली से हटकर पूना आ गया था। अब वह पुन उत्तर को वापस हो रहा था, जहाँ पर घटनाचक्र शीघ्र ही यह निश्चय करने वाले थे कि कोनसी सत्ता भारत मे सर्वोपरि रहेगी।

यह महान राजनीतिक परिवतन सालबई मे स्पष्ट हो गया तथा इस बात का केवल दुख ही मनाया जा सकता है कि मराठा राज्य का कूटनीतिज्ञ नाना फडनिस तथा योद्धा महादजी शिन्दे इस महत्त्वशाली लेखपत्र के निर्माण के समय घटना स्थल पर एकत्र न हो सके। यह अत्यन्त दुख की बात हे कि पानीपत के समय अपने अल्पकालीन प्रथम अनुभव के बाद नाना फिर कभी उत्तर को नही गया। यद्यपि वे व्यक्तिगत रूप से नही मिले, परन्तु पत्र-व्यवहार द्वारा पूर्ण तथा निष्कपट विचार विनिमय करते रहे। निम्न टिप्पणी द्वारा प्रतिपादित कीन का निणय तथ्यो के सामने असत्य सिद्ध होता हे "इस सन्धि ने इतिहास मे एक नये युग का निर्माण किया। इसके द्वारा ही बिना एक वग मील भूमि पर भी अधिकार किये ब्रिटिश सत्ता भारतीय प्राय-द्वीप के अधिकाश भाग मे व्यवहारिक रूप से प्रधान हो गयी। केवल मैसूर को

छोडकर प्रत्येक प्रान्त उसे सबसे बडी शक्ति और सवत्र शान्ति निर्माता स्वीकार करता था ।" पर वास्तव मे शान्ति निर्माण का कतव्य अब कुछ समय के लिए महादजी को प्राप्त हो गया था ।

८ **सालबई का निणय**—महादजी ने जिस प्रकार मराठा परिस्थिति की रक्षा की, स्वय डेविड ऐण्डसन ने इसका स्पष्ट चित्रण किया है । वह लिखता है—"शिन्दे ने मुझे ऐसे स्पष्टीकरण दिये जो पूणत सन्तोषजनक थे तथा मेरे मन मे किसी प्रकार का कोई भी सन्देह नही रहा । मैने उसको आश्वासन दिया कि मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि हमारी सरकार की ओर उसकी अनुकूल भावनाएँ उन भावनाओ से बढकर नही थी जो हमारी सरकार उसकी ओर रखती है । मैने शिन्दे को आश्वासन दिया कि मुझको उसकी मित्रता का पूण विश्वास है तथा अग्रेज लोगो को उसका पूरा भरोसा है । मुझे अपनी परिस्थिति के कारण असत्य वणन के प्रभावो से सावधान रहना अत्यन्त आवश्यक था तथा शिन्दे को भी यह ज्ञान अवश्य रहा होगा कि ऐसे अनेक व्यक्ति थे जो उस प्रत्येक शब्द को पकडने के लिए प्रस्तुत रहते थे जिसका प्रतिकूल अथ निकाला जा सके ।"[२०] ऐण्डसन की यह दैनदिनी या उसका यह वृत्तान्त सन्धिपत्र सम्बन्धी अनेक सन्देहास्पद विषयो को स्पष्ट कर देता है ।

स्वय हेस्टिग्ज को महादजी की सत्यपरायणता मे परम विश्वास था तथा ब्रिटिश हितो के लिए वह उसके साथ अपनी मित्रता को सर्वाधिक महत्त्व देता था । उसने यह एक सिद्धान्त बना दिया था कि किसी भी कारण ब्रिटिश लोग महादजी से शत्रुता मोल न ले । हेस्टिग्ज के उत्तराधिकारियो कानवालिस और शोर ने इस नियम का अत्यन्त सावधानी से पालन किया । अग्रेजो के साथ महादजी की मित्रता तथा घनिष्ठता के कारण उसके मराठा हितो के विषय मे निष्ठाहीन होने के अनेक निराधार सन्देह उत्पन्न हो गये, परन्तु कोई बुद्धिमान समालोचक महादजी पर इस नीचता का आरोप नही कर सकता । वह मराठा राज्य का प्रमुख स्तम्भ था ।[२१]

नाना फडनिस की आश्चयकारी प्रतिभा तथा योग्यता की विश्वव्यापी प्रशसा न्यायसगत है क्योकि उसने ब्रिटिश सत्ता रूपी महान सकट से मराठा राज्य की रक्षा की, जबकि रघुनाथराव जैसा पेशवा परिवार का प्रमुख व्यक्ति अग्रेजो का साथ दे रहा था । उसने तुकोजी होलकर का सहयोग प्राप्त किया

---

[२०] फोरेस्ट कृत शाही पत्र, जिल्द ३ पृ० ६७८

[२१] देखो, २२ अप्रैल, १७८४ का लिखा हुआ व्हीलर के नाम हेस्टिग्ज का पत्र । फोरेस्ट कृत शाही पत्र, जिल्द १, पृ० १०८७

जो वीर होने के साथ-साथ एक असभ्य मराठा सरदार था ओर जिसकी राजनीति मे कोई गति नही थी। इस प्रकार नाना ने महादजी को सहायता पहुँचाई। नाना ने बुद्धिमत्तापूवक मोरोबा तथा सखाराम बापू की दुष्ट महत्त्वाकाक्षाओ का नियन्त्रण किया। उसने रघुजी आग्रे की सेवाओ का उत्तम उद्देश्य से उपयोग किया तथा रघुजी भोसले एव गायकवाड परिवार मे समयोचित कतव्य ज्ञान जाग्रत कर दिया। उसने अहिल्याबाई तथा रामशास्त्री सदृश साधु व्यक्तियो की प्रशसा भी प्राप्त कर ली तथा राज्य के लिए हरिपन्त फडके, परशुराम भाऊ, कृष्णराव काले, महादजी बल्लाल गुरुजी, विसाजी कृष्ण तथा रामचन्द्र गणेश जैसे अनेक भक्त तथा योग्य सहायक प्राप्त कर लिये। उसने ब्रिटिश लोगो को झुकाने के लिए शक्तिशाली अखिल भारतीय सघ का सगठन किया। इस स्थायी अविस्मरणीय तथा उत्कृष्ट नीति के सम्पादन का श्रेय उसी को प्राप्त हे।

इस दीघकालीन युद्ध की एक शाखा वह विचित्र पराक्रम है जो आनन्दराव धुलप के नेतृत्व मे मराठा नौ-समूह ने प्रदर्शित किया। इसने उस शान्ति को लगभग ध्वस्त कर दिया जिसका निर्माण सालबई मे इस प्रकार परिश्रमपूवक हुआ था। पश्चिमी तट की इस घटना का वणन फोरेस्ट इस प्रकार करता है—"सालबई की सन्धि की रचना के कुछ समय बाद एक घटना घटित हो गई, जिसके कारण शान्ति मे विघ्न की आशका उपस्थित हो गयी। १२ तोपो का छोटा-सा दल, जिसे रेजर कहते हे, लेफ्टीनेन्ट प्रुयेन के निदेशन मे कालीकट जा रहा था। रत्नगिरि तट के समीप ८ अप्रल, १७८३ को मराठा नौ-समूह ने इस पर सहसा आक्रमण कर दिया। देर तक भयानक रूप से युद्ध होता रहा। गोलियो की भारी वर्षा की गयी। आक्रान्ता पोत मे घुस आये। नोकापृष्ठ मृत तथा मृतप्राय अग्रेजो से भर गया।"[२२] अग्रेजो के ५ अधिकारी तथा २८ व्यक्ति मारे गये। मराठो के ८ पराक्रमी सैनिक खेत रहे तथा लगभग ७५ घायल हुए। धुलप ५ अग्रेज पोतो को अपने अधिकार मे करके अपने बन्दरगाह विजयदुग को ले गया। युद्ध के बलपूवक सचालन मे वह ईमानदारी से अपने कतव्य का पालन कर रहा था। उसको ज्ञात नही था कि शान्ति की स्थापना पहले ही हो चुकी है। इस घटना मे अग्रेजो का क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। उन्होने तुरन्त महादजी के पास विरोध पत्र भेजा। उसने नाना पर दोषारोपण किया और क्षति की पूर्ति करने के लिए कहा। नाना ने अविलम्ब काय किया। उसने

---

[२२] फोरेस्ट कृत मराठा ग्रन्थमाला, प्रस्तावना।

अधिकार मे किये गये पोतो को सामान सहित लौटाकर यह घटना समाप्त कर दी। निस्सन्देह इस घटना से बम्बई प्रान्त को उपयोगी शिक्षा प्राप्त हुई। उनको मालूम हो गया कि यदि शान्ति की स्थापना न हो गयी होती तो मराठा नौसेना क्या कुछ कर सकती थी।

सफ्रे १७८२ के आरम्भ मे शक्तिशाली फ्रेच नौसेना सहित मद्रास के निकटवर्ती समुद्र मे पहुँच गया था। उसको हैदरअली से प्रत्येक समथन प्राप्त हुआ। सफ्रे के पास अग्रेजो के मद्रास बन्दरगाह के समान कोई उपयुक्त जहाजी अड्डा नही था, जहा वह अपने टूटे-फटे जहाजो की मरम्मत करके उन्हे फिर काम मे आने योग्य बना सके। यही उसके मार्ग मे सबसे बडी बाधा थी। दोनो नौ-सेनापतियो सफ्रे तथा ह्यू ग्स के बीच १२ अप्रैल, १७८२ को मद्रास तट के समीप घोर नौ-युद्ध हुआ जिसमे दोनो पक्षो की भारी क्षति हुई। जुलाई मे गुड्डलुर के स्थान पर सफ्रे ने स्वय हैदरअली के साथ वार्ता की इस सम्मेलन मे उन्होने ब्रिटिश-विरोधी अभियान की भव्य योजना का निश्चय किया। वृद्ध कमाण्डर बुस्सी के अधीन फ्रेच स्थल सेनाएँ भी आ पहुँची। सफ्रे ने शीघ्र ही त्रिकोमाली पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया। यह लका मे ब्रिटिश बन्दरगाह था। १३ सितम्बर को उसने ऐडमिरल ह्यू ग्स को बुरी तरह परास्त कर दिया। बुस्सी ने पूना स्थित नाना फडनिस को अपने आने की सूचना भेजी और कहा कि वह अग्रेजो के विरुद्ध सशक्त अभियान के लिए तैयार हो जाये। परन्तु सालबई की सन्धि पहले ही हो चुकने के कारण नाना अब नवीन युद्ध आरम्भ नही कर सकता था। फ्रासीसियो ने मद्रास को समुद्र माग से प्राप्त होने वाली सामग्री कठोरतापूवक रोक दी, जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश उपनिवेश मे कष्टदायक अकाल पड गया और बहुत-से लोगो की मृत्यु हो गयी। १७८३ के आरम्भिक मासो मे ब्रिटिश सेना को बुस्सी के अधीन फ्रेच सेना तथा टीपू सुल्तान के सयुक्त आक्रमणो का बहुत भय था। ब्रिटिश परिस्थिति की रक्षा केवल इस समाचार के सामयिक आगमन से हो गयी कि यूरोप मे फ्रास तथा इगलैड के बीच जून मे शान्ति स्थापित हो गयी है। परिणाम यह हुआ कि भारत मे दोनो राष्ट्रो के बीच युद्ध स्वत बन्द हो गया। दिसम्बर १७८२ मे हैदरअली की मृत्यु से लगभग समस्त भारत मे सामान्य राजनीतिक शान्ति उत्पन्न हो गयी। ऐडमिरल सफ्रे फ्रास को वापस हो गया। वहाँ उसे अपूव सम्मान प्राप्त हुआ। बुस्सी की मृत्यु आगे चलकर ७ जनवरी, १७८५ को भारत मे ही हुई। उसे कोई उपयोगी सफलता नही मिल सकी।

नारायणराव की हत्या से सालबई की सन्धि तक लगभग नौ वष चलने

वाला यह आग्ल-मराठा युद्ध मराठा राज्य की जीवन-शक्ति का सबल परिचायक है, जिसका क्षय न तो पानीपत की विपत्ति से हुआ और न उनके महान पेशवा माधवराव की मृत्यु से। मराठा कूटनीतिज्ञ तथा योद्धा यथापूर्व अपनी दृढता का परिचय देते रहे। उन्होने वारेन हेस्टिग्ज की विचित्र सूझ बूझ के विरुद्ध अपनी स्थिति की रक्षा की, जिसके सहायक हानबी, कूट, गोडाड, ह्यू्ग्स तथा मोस्टिन[23] जैसे योग्य व्यक्ति थे तथा जो महानतम ब्रिटिश शासको मे से एक था।

गुरिल्ला पद्धति की परम्परागत युद्धकला मे परिवर्तन इस युद्ध का एक स्थायी परिणाम था। एक समय यह पद्धति बहुत उपयोगी थी, परन्तु इस समय वह अति प्राचीन समझी गयी। महान मराठा नेता महादजी को पश्चिमी शैली स्वीकार करने मे पूर्ण श्रद्धा तथा विश्वास था यद्यपि नाना, हरिपन्त तथा उसके अन्य सहकारी लोगो ने मराठा राज्य के स्वातन्त्र्य को सुरक्षित रखने मे महादजी की इस इच्छा को तुरन्त व्यावहारिक रूप नही दिया।

९ रघुनाथराव का अन्त—यहा रघुनाथराव की शेष जीवन कथा समाप्त कर देनी चाहिए। मई, १७७९ मे महादजी की सुरक्षा से पलायन करके वह कुछ भी लाभ नही उठा सका। वैसे यह कार्य अत्यन्त चतुरता तथा दक्षतापूर्ण था। कष्ट, वेदना तथा अपमान के रूप मे उसको अपने पापो का पर्याप्त दण्ड मिल गया जो अपने दरिद्रतापूर्ण निवास के जीवन मे उसे कई वर्षों तक सहन करने पड़े। सालबई की सन्धि के बाद भी वह सूरत मे रहता रहा तथा एक वर्ष से अधिक समय तक अंग्रेज उसके निर्वाह का भार सहन करते रहे, जबकि अपनी व्यर्थ तथा अव्यावहारिक इच्छाओ का पालन न होने के कारण वह अपने आश्रयदाताओ को शाप देता रहा। उसके ही कारण अपनी समस्त सत्ता तथा प्रतिष्ठा के नाश का खतरा उठाकर भी उन्होने अतिव्ययी युद्ध किया था इसके लिए वह धन्यवाद देना भी भूल गया। अन्त मे अंग्रेजो ने उससे ऊबकर उसका भत्ता बन्द कर दिया। नाना तथा महादजी कुछ समय तक उसके समर्पण की माग करते रहे, परन्तु शीघ्र ही उन्हे उसकी कुछ भी चिन्ता नही रह गयी, क्योकि अब उसमे अपकार की कोई क्षमता नही रह गयी थी। जब १७८१ की गर्मियो मे जनरल गोडार्ड पूना की ओर अपनी प्रगति

---

[23] मराठे इतने उदार थे कि उन्होने अंग्रेज सज्जन कैप्टिन स्टुअर्ट को उसकी वीरता के लिए 'फकडा' की उपाधि देकर सदा सर्वदा के लिए स्मरणीय बना दिया। इसकी उपमा आधुनिक 'विक्टोरिया क्रास' से दी जा सकती है। इसी प्रकार रामचन्द्र गणेश को वज्रेश्वरी के स्थान पर वीर गति प्राप्त हुई थी। वह भी समान रूप से चिरस्मरणीय है। वारेन हेस्टिग्ज की गर्वोक्ति, देखिए शाही सग्रह, जिल्द १, परिचय पृ० ६१

मे असफल हो गया और इसके शीघ्र पश्चात ही बुन्देलखण्ड मे कनल म्यूर के द्वारा हेस्टिंग्ज ने महादजी के साथ सन्धि प्रस्ताव प्रारम्भ कर दिये तो रघुनाथ-राव ने सीधे इगलैण्ड प्रतिनिधि मण्डल भेजने की पागल योजना का आश्रय लिया, जिससे वह भारत स्थित ब्रिटिश अधिकारियो की उपेक्षा करके इगलैण्ड के राजा तक पहुँच कर ले और अपने नष्टप्राय वैभव को पुन प्राप्त करने के लिए उससे भारी सैनिक सहायता की प्राथना करे। इस काय के लिए उसने अपने विश्वस्त दूत हनुमन्तराव नामक ब्राह्मण (पश्चिमी तट पर राजापुर का निवासी) को चुना तथा मनियर नामक पारसी सज्जन को उसका सहायक नियुक्त कर दिया। वे ११ सितम्बर १७८१ को बम्बई से एक जहाज मे चल पडे तथा सम्भावना के अनुसार बिना कुछ लाभ प्राप्त किये हुए एक वष बाद वापस आ गये। आधुनिक काल मे हिन्दुओ की यह प्रथम समुद्र-यात्रा थी। यदि किसी जिज्ञासु पाठक की यह जानने की इच्छा हो कि वे इगलैण्ड मे किस प्रकार रहे तो एडमण्ड बक का निम्नाकित पत्र उनकी जिज्ञासा पर्याप्त शान्त कर देगा।

सम्माननीय एडमण्ड बक की ओर से रघुनाथराव की सेवा मे
(दिनाक १७८२ का अन्त)

आपने पत्र द्वारा मेरा जो सम्मान किया है, उसके लिए मै आपका अत्यन्त आभारी हूँ। मुझे आपकी रीतियो का पर्याप्त परिचय नही है जो आप जैसे उच्च पदस्थ तथा चरित्रवान व्यक्तियो को पत्र लिखने के लिए प्रचलित सबोधन का प्रयोग कर सकू। मुझे आशा है कि मेरी इस विवशता को आप उदारतापूवक क्षमा करने की कृपा करेगे। मै आपसे विश्वास करने की प्राथना करता हूँ कि मेरी इच्छा उस शैली के उपयोग की है जो आपकी सुप्रसिद्ध तथा पवित्र जाति, अभी तक चल रहे आपके उस उच्च पद, आपकी व्यक्तिगत योग्यता तथा आपके महान कष्टो के प्रति सफल रूप से यथाशक्य सम्मान प्रकट कर सके।

जो थोडी सी सेवा मै आपके दूत हनुमन्तराव तथा उसके सहायक मनियर पारसी की कर सका हूँ, उसको आप बहुत अधिक महत्त्व देते है। यह केवल मेरा कतव्य था जो एक मनुष्य का दूसरे के प्रति होना चाहिए। थोडे समय तक मेरा अतिथि बनकर हनुमन्तराव ने मुझे सम्मानित किया है। मैने अपने स्थान को उसके लिए इतना सुखद बना देने प्रयत्न किया है जितना मै या कोई अन्य व्यक्ति बना सकता था जिससे उस जैसा व्यक्ति अपने जन्म-जात धम की समस्त विधियो तथा रीतियो का पालन कर सके। वह अपने

जीवन के प्रति स्पष्ट सकट होने पर भी कठोरता से उनका पालन करता था। इसका साक्षी मै स्वय हूँ। श्रीमान, कुछ भी हो आपकी जीवन-विधि के सम्बन्ध मे जो निर्देश उसने दिये हे, उनसे हमे लाभ हुआ हे। अब जब कभी उचित सूचना देकर ओर अधिकारियो से वैध आज्ञा प्राप्त करके उच्च जाति के हिन्दुओ को इस राज्य मे किसी कायवश भेजा जायेगा तो हम इस प्रकार का प्रबन्ध कर देगे जिससे हमारे ससग मे उनको न्यूनतम कष्ट हो तथा यह देश उनके लिए यथासम्भव सह्य हो जाये, जहा वप मे कठिनाई से ६ अच्छे मास होते हे। जो कष्ट इन सज्जन को यहा पर पहले हुआ, उसका कारण इस राष्ट्र की निदयता नही, अज्ञान हे।

श्रीमन, यह सूचित करते हुए मुझे खेद होता हे कि मै यहाँ से सैनिक सहायता प्राप्त करने की किसी प्रकार की आशा आपको कभी नही दे सकता, जिसकी आपको आवश्यकता हे। जब ऐसा काय करने का हमे अधिकार नही है तो स्पष्ट मना कर देना ही उत्तम हे।

हनुमन्तराव आपका निष्ठापूण तथा योग्य सेवक हे, ओर मनियर पारसी ने उसका समथन करने का प्रत्येक प्रयास किया हे। यह उनका दोष नही हे कि आपको अपने कार्यो मे इच्छानुसार सफलता प्राप्त नही हो सकी।"[२४]

---

२४ (मूल टिप्पणी) इस पत्र की सामग्री पूण नही है और बक के पत्रो मे रघुनाथराव के उस पत्र का कोई पता नही लग सका हे, जिसके उत्तर मे यह पत्र लिखा गया हे। इस पत्र-व्यवहार का उद्गम यह प्रतीत होता हे— १७८१ के आरम्भ मे उच्चजातीय ब्राह्मण हनुमन्तराव तथा मनियर पारसी रघुनाथराव के दूतो के रूप मे इगलैण्ड पहुँचे। उनको ईस्ट इण्डिया कम्पनी के निर्देशको तथा ब्रिटिश सरकार से कुछ काय था। श्री बक ने लन्दन मे उनको बहुत दुखद परिस्थिति मे पाया, जिसका कारण उनकी विचित्र जीवन-विधि तथा उनके आवश्यक धार्मिक कृत्य थे। बक अपरिचित व्यक्तियो के प्रति ध्यान देने के लिए प्रसिद्ध था। इस कारण वह उनको बेकन्स्फील्ड ले गया तथा उस समय ग्रीष्म ऋतु होने के कारण उन्हे हरे रग का एक बडा मकान दिया, जहा पर अपनी जाति के नियमो के अनुसार वे अपना भोजन बनाते, स्नान करते, अपने धम और रीतियो तथा अन्य कतव्यो का आवश्यकता और परिस्थिति की सुविधानुसार पालन करते थे। श्रीमान तथा श्रीमती बर्क की सगति मे उनको बहुत सुख प्राप्त हुआ तथा उनके बेकन्स्फील्ड के निवास काल मे अनेक प्रसिद्ध व्यक्ति उनसे मिलने आये। शिशिर ऋतु मे वे भारत की ओर लौट पडे तथा उनके भारत आगमन पर रघुनाथराव ने अपने दूतो के प्रति दयालुता प्रदर्शित करने पर श्री बक को धन्यवाद का पत्र लिखा। बर्क के उत्तर का कुछ अश जो यहा पर दिया गया है, सम्भवत १७८२ के अन्त मे लिखा गया था।

हनुमन्तराव के शिष्टमण्डल की असफलता से रघुनाथराव की आखे नही खुली। १८ जनवरी, १७८३ को इगलैण्ड के राजा जाज तृतीय को एक अन्य दीनतापूण पत्र लिखकर रघुनाथराव ने मूखता का दूसरा काय भी कर डाला। जब अग्रेजो द्वारा सूरत मे उसका भत्ता बन्द कर देने से वह बहुत भयभीत था, वह महादजी के पास जाने तथा अपने भावी निवास-स्थान के निमित्त उसके द्वारा प्रस्तावित किसी भी प्रबन्ध को स्वीकार करने के लिए तैयार हो गया। महादजी ने उसके साथ उदारता का व्यवहार किया। उसने रघुनाथराव को राजी कर लिया कि वह नासिक के समीप गोदावरी तट पर कोपरगाम मे निवास करे। रघुनाथराव ने १७८३ की मध्य जुलाई के लगभग चादवाड के पास ढोडप नामक स्थान पर हरिपन्त फडके के समक्ष अत्यन्त अनिच्छा तथा मानसिक वेदना के साथ सपरिवार आत्मसमपण कर दिया। वह अब जो पत्र लिखता था उनमे अपने को पन्त, प्रधान या पेशवा न कहकर अल्पवयस्क माधवराव को पेशवा स्वीकार करता था। अपने वार्तालाप तथा पत्र-व्यवहार मे अब उसने अत्यन्त्र नम्र तथा दीन भाव धारण कर लिया तथा शीघ्र ही नाना फडनिस के प्रति उसने स्नेह तथा सम्मान प्रकट किया। उसने नाना को १९ जुलाई को निम्नाकित पत्र लिखा

"आपके प्रति बहुत दिन से पल रही समस्त द्वेष तथा दुर्भावना अब मैने अपने मन से निकाल दी है। आप भी मेरे प्रति शत्रुता की सम्पूर्ण भावनाएँ निकाल दे। हम आपकी उन्नति देखकर प्रसन्न होगे तथा हम आपकी उस विधि का आदर करते है जिसके द्वारा आपने मराठा राज्य को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है।" परस्पर शपथ ग्रहण द्वारा उनके बीच मे पहले ही स्पष्ट गम्भीर समझौता हो गया था। इसमे रघुनाथराव ने मराठा राज्य को हानि पहुँचाने की अपनी समस्त इच्छाओ का त्याग कर दिया था। जैसे ही वह कोपरगाम मे पहुँचा, उसकी इच्छा हुई कि वह अपनी भाभी गोपिकाबाई को प्रणाम करने जाये। समस्त राष्ट्र उस महिला की पूजा करता था तथा इस समय वह नासिक के समीप एकान्त मे अपना धार्मिक जीवन व्यतीत कर रही थी। परन्तु गोपिकाबाई ने उस पापी रघुनाथराव से, जिसने उसके विश्वासानुसार उसके पुत्र की हत्या कर दी थी, तब तक मिलना स्वीकार नही किया जब तक गोदावरी नदी मे उसके द्वारा नियुक्त ब्राह्मण समाज की उपस्थिति मे विधानपूवक प्रायश्चित न कर ले। कुछ सोच-विचार के बाद रघुनाथराव आवश्यक रीति का पालन करने के लिए सहमत हो गया। यह प्रायश्चित उसने ४ अगस्त को किया और समस्त श्रोताओ के सम्मुख उच्च

स्वर से घोषणा की कि उसने भतीजे को कैद करने के निमित्त अवश्य प्रेरणा दी थी कि‍तु उसका बध करने की उसकी कोई इच्छा नही थी। इस सस्कार के तुरन्त बाद उसने गगापुर मे उस देवी के दशन किये उससे तथा अपने मोक्ष के निमित्त आशीर्वाद देने की प्राथना की। फिर रघुनाथराव कोपरगाम के समीप कचेश्वर नामक स्थान को वापस आ गया तथा ४८ वष की आयु मे ११ दिसम्बर, १७८३ को वही पर उसका देहा‍त हो गया। उसका समस्त बल तथा जीवन शक्ति पहले ही नष्ट हो चुकी थी। उसने कोपरगाम मे भव्य भवन निर्माण किये, जिनमे से कुछ आज तक देखे जा सकते है। यहा पर उसकी पत्नी आनन्दीबाई तथा उसका पुत्र बाजीराव रहने लगे। उसकी मृत्यु के बाद ३० माच, १७८४ को आन दीबाई ने एक पुत्र को जन्म दिया। माता की उपस्थिति मे कोपरगाम मे दोनो भाइयो का पालन-पोषण अवश्य हुआ, परन्तु नाना फडनिस ने कडे पहरे का कठोर प्रबन्ध कर रखा था। विधान के अनुसार इनमे से ज्येष्ठ बाजीराव अ‍ितम पेशवा होने वाला था। आनन्दीबाई का देहान्त १२ माच, १७९४ को हो गया। उसने अपने शेष जीवन मे व्यावहारिक कारावास का भोग किया ओर उसका जीवन क्लेश तथा अपमानपूण रहा।[२५]

रघुनाथराव के अनुचरो के साथ किस प्रकार व्यवहार किया गया, इसका वणन पहिले हो चुका हे। रघुनाथराव के योग्य तथा निष्ठावान सचिव चिन्तो विट्ठल को स्थान-स्थान पर कठोर कारावास मे रखा गया। जून, १७८३ मे उसका देहान्त हो गया तथा उसकी पत्नी और पुत्री ने विषपान द्वारा आत्म-हत्या कर ली। इसी प्रकार प्रसिद्ध रामचन्द्र बाबा के पुत्र सदाशिव रामचन्द्र का देहान्त अपनी पत्नी तथा अपने परिवार के अन्य व्यक्तियो के साथ कारावास मे हो गया। बाजीराव गोविन्द बर्वे को कुछ समय तक अहिल्याबाई ने शरण दी। उसका भी देहान्त कष्ट मे ही हुआ। केवल मानाजी फडके वैयक्तिक वीरता तथा साहस द्वारा बहुत दिनो—अप्रैल १८०० मे अपनी मृत्यु तक—सुखपूवक जीवित रहा।

१० **हैदरअली तथा अन्य व्यक्ति**—युद्ध की मुख्य धारा की ओर ध्यान देने के कारण पूना सरकार को कुछ अन्य काय भी स्थगित रखने पडे थे। केन्द्रीय प्रशासन मे दो दल थे ओर यह रोग न्यूनाधिक मात्रा मे व्यावहारिक रूप से समस्त मराठा सरदारो को लग गया था। उदाहरणार्थ, प्रतिनिधि परिवार मे फूट थी, भवनराव तथा भगवन्तराव मे खुला युद्ध था—भवनराव

[२५] उसके शेष जीवन का विस्तारपूवक अध्ययन सक्षिप्त पेशवा दफ्तर, जिल्द ४ मे हो सकता है।

पूना के मन्त्रिमण्डल के साथ था और भगवन्तराव रघुनाथराव के पक्ष मे था। पूना से रघुनाथराव के निकालने पर भवनराव ने उसका पीछा करने मे हरिपन्त फडके का साथ दिया, परन्तु १७७४ के अन्त के आसपास वह अपने मुख्य स्थान को वापस आ गया तथा अपने चचेरे भाई भगवन्तराव का विरोध करने लगा। यह वीर योद्धा था। इन दोनो ने अपने धावा तथा झडपो से १७७५ मे सतारा के जिले को नष्ट कर दिया। इस कलह का अन्त ५ अप्रैल, १७७६ को भगवन्तराव के देहान्त पर हुआ। अगले वष ३०, अगस्त १७७७ को भवनराव का भी देहान्त हो गया। तभी परशुराम नामक उसके पुत्र का जन्म हुआ था। बाद को यह इस परिवार का प्रतिनिधि हुआ तथा उसका सुख-दु खमय जीवन अन्तिम पेशवा के समय मे बीता।

कोल्हापुर का छत्रपति पेशवा सरकार के लिए सदैव काटा ही सिद्ध हुआ। सिद्धान्त रूप से इस राजा का पद उसके सतारा वाले चचेरे भाई के समान ही था, परन्तु सतारा का राजा पेशवाओ का बन्दी था और उस पर कठोर पहरा लगा रहता था। कोल्हापुर का राजा पूण रूप से स्वतन्त्र था तथा पेशवाओ के कष्ट से लाभ उठाने के किसी अवसर को हाथ से नही जाने देता था। राजा शिवाजी को १७६२ मे गोद लिया गया था। राजमाता जीजाबाई ने उसकी बाल्यावस्था मे प्रशासन का सचालन किया। १७ फरवरी, १७७३ को रानी की मृत्यु हो जाने के पश्चात उसके भाई येसाजी शिन्दे ने, जो चतुर तथा साहसी प्रशासक था, पशवा परिवार के गृहयुद्ध से पूण लाभ उठाकर पूना सरकार को निबल बना देने के मुख्य उद्देश्य से कोल्हापुर राज्य का काय सचालन किया। इचल करणजी का छोटा-सा राज्य, जिसकी शासक बाजीराव प्रथम की बहन रानी अनुबाई घोरपडे थी, येसाजी की लूटमार का सुलभ शिकार हो गया। पूना की सरकार इचल करणजी को कोई सहायता न भेज सकी। दोनो पडोसियो की कठोर शत्रुता बहुत बाद तक बनी रही। येसाजी शिन्दे हैदरअली के साथ मिल गया तथा उसने दक्षिण के पेशवा द्वारा अधिकृत प्रदेशो को इस प्रकार भयभीत कर दिया कि पूना की सरकार को कठोर उपाय करने पडे। यह तभी सम्भव हो सका जब अपटन की सन्धि के कारण ब्रिटिश-मराठा युद्ध शान्त हो गया और पूना की सेनाएँ १७७६ मे अपनी छावनियो को वापस आ गयी। नकली भाऊ का दमन करने के बाद महादजी शिन्दे ने सशक्त तोपखाने सहित कोल्हापुर के विरुद्ध प्रयाण किया। १७७८ के आरम्भ मे उसने कोल्हापुर पर घेरा डाल दिया। महादजी ने उस राज्य की सेनाओ को कई बार कठोर रूप से परास्त करके येसाजी शिन्दे को

अधीनता स्वीकार करने पर विवश कर दिया। महादजी ने २३ अप्रैल, १७७८ को कोल्हापुर से सन्धि कर ली तथा इस बीच मोरोबा फडनिस द्वारा आरम्भ किये गये विद्रोह का दमन करने के लिए ठीक समय पर पूना वापस आ गया।

मराठा राज्य के हितो के लिए जो घटना अत्यन्त विनाशक सिद्ध हुई—वह थी मैसूर के हेदरअली का आक्रमण। उसने अग्रेज तथा उस क्षेत्र की अन्य शक्तियो का उद्धत तिरस्कार करते हुए कर्णाटक के मराठा अधिकृत प्रदेश छीन लिये। जब १७७३ के अन्त मे रघुनाथराव ने कर्णाटक की ओर प्रयाण किया ता उसने अपना उद्देश्य हेदरअली के आक्रमण का दमन प्रसिद्ध किया। परन्तु जब बार भाइयो की तैयारियो के कारण रघुनाथराव की स्थिति उसका दमन करने के लिए अनिश्चित हो गयी तो उसने फरवरी, १७७४ मे हेदरअली के साथ गुप्त समझौता कर लिया जो कल्याण दुग की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध हे। इसके अनुसार हेदरअली ने रघुनाथराव को न्यायसम्मत पेशवा स्वीकार कर लिया तथा आगामी ६ वर्षो तक वह उसका बराबर समथन करता रहा। वह उसकी इस प्रकार सेवा करता रहा कि उसके अपने हितो को कोई हानि न पहुँचे और कोई विशेप व्यय भी न हो। उसने नारायण-राव की हत्या के कारण छिप हुए व्यक्तियो—तुलाजी पवार, बाजीराव बर्वे, मानाजी फडके आदि—को शरण दी। इनकी सुरक्षा के लिए रघुनाथराव ने प्रायना की थी। हेदरअली का यह पता लगाने म देर न लगी कि रघुनाथराव का पक्ष अरक्षित हो गया हे ओर पूना मे वह अपनी स्थिति की रक्षा करने मे अब समथ नही हे। किसी पक्ष क साथ अपना सम्बन्ध जोडे बिना हैदरअली ने मराठा राज्य को बुरी तरह नष्ट कर दिया। उसने केवल पेशवा माधवराव द्वारा अधीन किये गये प्रदेश पर ही पुन अधिकार नही कर लिया, अपितु पटवधनो की शक्ति का सवनाश कर दिया। हेदरअली ने मुराररराव घोरपडे का भी अन्त कर दिया जो गुट्टी मे बहुत समय से कठिन परिस्थिति मे पडकर भी अपनी सत्ता की रक्षा कर रहा था। हेदरअली ने पेशवा के अधीनस्थ दो सरदारो—सावनूर के नवाब तथा मुराररराव—को अत्यन्त कष्ट दिया, क्योकि पूना से उनको कोई सहायता प्राप्त न हो मकी।

अप्रैल, १७७४ मे हैदरअली ने शिरा पर अधिकार कर लिया तथा इसके रक्षक मराठा वीर बापूजी शिन्दे को अधीनता स्वीकार करने पर विवश कर दिया। इसके बाद उसने बालापुर तथा मुदगिरि पर अधिकार कर लिया। १७७५ मे जब पूना की सेनाएँ रघुनाथराव के विरुद्ध गुजरात मे व्यस्त थी, हैदरअली किट्टूर के देसाई तथा कोल्हापुर के राजा से मिल गया। कोन्हेरराव

पटवर्धन ने कुछ समय तक उसकी प्रगति पर सशक्त अकुश रखा। १७७६ के आरम्भ मे हैदरअली ने मुरारराव की ओर ध्यान दिया, क्योकि उसने बची-खुची मराठा शक्ति को उस क्षेत्र मे बहुत दिनो से सुरक्षित कर रखा था। हैदरअली भारी सेना लेकर गुट्टी पर टूट पडा तथा वहाँ के वयोवृद्ध सरदार को आत्मसमपण की आज्ञा दी। उसने हैदरअली का आदेश वीरतापूवक अस्वीकार कर दिया तथा ६ मास तक अपनी राजधानी की रक्षा करता रहा। उसको पूना से सहायता पहुँचने की प्रतिक्षण आशा थी। गुट्टी दुग मे जल समाप्त हो जाने से, १५ माच, १७७६ को मुरारराव विजेता के समक्ष अपने समस्त परिवार सहित आत्मसमपण करने के लिए विवश हो गया। मुरारराव द्वारा गुट्टी की रक्षा मराठा इतिहास का रोमाचकारी अध्याय है। इसमे अनेक आश्चयकारी घटनाएँ घटित हुई जिनसे मराठा वीरता को गौरव प्राप्त होता है। हैदरअली ने मुरारराव पर दबाव डाला कि वह अपने बहुमूल्य पदार्थो का खजाना बता दे। जब उसने ऐसा करने से इनकार कर दिया तो हैदरअली ने उसे अकथनीय यातनाएँ दी। वह निदयतापूवक काबलदुग के बन्द कारागार मे डाल दिया गया, जहाँ पर अत्यन्त अमानवीय व्यवहारो को सहन कर मुरारराव ने अपना जीवन समाप्त कर दिया। जनमत के अनुसार हैदरअली जैसे शत्रु को भी ऐसा व्यवहार करना अशोभनीय था। मुरारराव का देहान्त कहाँ और किस प्रकार हुआ, इसका उल्लेख नही है। बाद को प्रायश्चित के रूप मे पेशवा की सरकार ने उसकी पत्नी और उसके परिवार के अन्य जीवित सदस्यो के लिए निर्वाह का प्रबन्ध कर दिया। उसके भाई के वशज बेलारी के समीप सन्दूर मे शासन करते रहे।

मुरारराव के दुखद अन्त पर समस्त राष्ट्र मे असीम क्रोध तथा प्रतिशोध की भावना जाग्रत हो उठी। नाना फडनिस ने निजामअली को, जिसको हैदर-अली के आक्रमण से समान हानि हुई थी, साथ लेकर तुरन्त कर्णाटक मे मराठा स्थिति को पुन प्राप्त करने का काय आरम्भ कर दिया। परन्तु इसके पहले कि कोई प्रभावोत्पादक काय किया जा सकता, हैदरअली उत्तर मे बहुत दूर तक प्रवेश कर गया तथा हुबली और धारवाड पर अधिकार कर लिया। इन कारणो से उसकी स्थिति अत्यन्त शक्तिशाली हो गयी। हरिपन्त फडके ने पाण्डुरगराव तथा कोन्हेरराव पटवधन के साथ १७७६ के अन्त के लगभग हैदरअली के विरुद्ध प्रयाण किया। ८ जनवरी, १७७७ को सासी मे (धारवाड के समीप) विकट तथा रक्तमय रण हुआ जिसमे भारी हानि के साथ पटवधन लोग परास्त हो गये। कोन्हेरराव मारा गया तथा कुछ घोरपडे लोगो के

साथ उसके तीन चचेरे भाई घायल हो गये और पकड लिये गये। इस समय अन्य क्षेत्र मे व्यस्त होने के कारण हरिपन्त इस रण मे उपस्थित नही था। रघुनाथराव के दूत बाजीराव बर्वे ने, जो उस समय हैदरअली के शिविर मे उपस्थित था, इन मराठा बन्दियो का कष्ट कम करने का यथाशक्ति प्रयास किया। पाण्डुरगराव का देहान्त घावो के कारण शत्रु की कैद मे ही हो गया। बाद मे अन्य व्यक्ति छोड दिये गये।

१७७७ तथा १७७८ मे हरिपन्त तथा परशुराम भाऊ ने यह प्रयास किया कि वे इन क्षेत्रा मे खोई हुई स्थिति को पुन प्राप्त कर ले। परन्तु वे इस काय को बिना समाप्त किये ही छोडने को विवश हो गये, क्योकि नाना ने उनको साग्रह वापस बुला लिया। नाना चाहता था कि वे पहले मोरोबा फडनिस के विद्रोह से शासन की रक्षा करे और बाद मे उस वष की वर्षा ऋतु के पश्चात पूना पर ब्रिटिश चढाई का सामना करे। १७७७ की वर्षा ऋतु मे मानाजी फकडे पूना सरकार के सेवक के रूप मे हरिपन्त के साथ था। परन्तु वह हृदय से रघुनाथराव का पक्षपाती था, इसलिए उसने एक कुत्सित कम किया। उसने विश्वासघातपूवक हैदरअली के साथ हरिपन्त तथा परशुराम भाऊ का नाश करने की गुप्त योजना बनाई। सोभाग्यवश उसके षड्यन्त्रो का समय पर पता चल गया। मानाजी पर आक्रमण किया गया ओर वह परास्त हो गया। यदि वह तत्काल पलायन द्वारा अपने जीवन की रक्षा न कर लेता तो तत्काल उसका बध कर दिया जाता। १७७८ के मध्य मे कर्णाटक स्थित मराठा सेनाएँ पूना को वापस आ गयी। महादजी शिन्दे ने पहले ही कोल्हापुर के राजा का दमन कर दिया था और हैदरअली शीघ्र ही नाना फडनिस द्वारा सगठित ब्रिटिश-विरोधी सघ मे सम्मिलित हो गया था। सालबई की सन्धि तथा १७८२ मे हैदरअली की मृत्यु से मराठा तथा मैसूर शासन के भावी सम्बन्धो का झुकाव भिन्न दिशा मे हो गया।

११ अल्पवयस्क पेशवा का सन्धन—ससार मे पेशवा के प्रवेश की घोषणा ब्रिटिश-मराठा युद्ध के साथ की गयी। भाग्य के ऐसे उलट-फेर की छाया मे सम्भवत कभी किसी शिशु का जन्म नही हुआ होगा। १८ अप्रैल, १७७४ को पूना तथा बाह्य जगत मे उसके जन्म का अत्यन्त हर्षपवक स्वागत किया गया। जनता की यह धारणा थी कि दिवगत पेशवा माधवराव ने ही उसके रूप मे अवतार ग्रहण किया हे। इसी कारण शिशु का नाम वही रखा गया। नाना फडनिस तथा अन्य अभिभावको ने पेशवा के स्वास्थ्य तथा सुरक्षा के सम्बन्ध मे किसी भी पूव सावधानी की लेशमात्र भी उपेक्षा नही की। जब

बालक की आयु तीन वष की थी तभी अल्पकालीन ज्वर होने के कारण पुरन्दर मे उसकी माता का देहान्त हो गया। उस गढ की अतिवष्टि तथा शीत मे उसने अपने प्रथम पाच वष व्यतीत किये। जिस कमरे मे पेशवा निवास करता था उसके द्वार पर पुरुषोत्तमदाजी पटवधन सदैव रक्षक के रूप मे उपस्थित रहता था। समस्त सावजनिक अवसरो पर—उदाहरणाथ दरबारो तथा स्वागतो के अवसरो पर—पुरुषोत्तमदाजी मुख्य स्थान ग्रहण करता ओर शिशु उसकी गोद मे बैठता था। वह गवपूवक उसको मराठा राज्य के भावी शासक के रूप मे प्रदर्शित करता। जब जनवरी, १७७४ मे ब्रिटिश सेना बडगाव मे बुरी तरह परास्त हो गयी तो प्रत्येक व्यक्ति उचित हष से चिल्ला उठा कि यह सफलता बालक पेशवा के सौभाग्य के कारण प्राप्त हुई हे।

नाना फडनिस ने पेशवा का विवाह सस्कार १० फरवरी, १७८३ को थट्टे परिवार की रमाबाई नामक कन्या से पूना मे कर दिया। पेशवा की आयु इस समय ६ वष से कुछ कम थी। इस अवसर पर वैभव का विपुल प्रदशन किया गया। इस उत्सव मे सतारा के छत्रपति तथा अधिकाश प्रमुख सरदारो ने भाग लिया। केवल महादजी सम्मिलित न हो सका, क्योकि मालवा मे उसकी उपस्थिति की अत्यन्त आवश्यकता थी। इस अवसर पर निजामअली का ज्येष्ठ पुत्र हैदराबाद से आया। नाना फडनिस की सगठनात्मक शक्तियाँ तथा इस अवसर को प्रत्येक प्रकार से सफल बनाने के लिए सूक्ष्म विवरण की ओर उसका नियमित ध्यान पर्याप्त रूप से प्रकट हुआ। समस्त अतिथियो और राज्य के सदस्यो ने इस बात को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया। इस उत्सव की इस प्रकार की समाप्ति से समस्त राष्ट्र का उत्साह बहुत बढ गया तथा वे भविष्य मे विश्वासपूवक महान कार्यो को अगीकार करने के लिए समथ हो गये।

तिथिक्रम

अध्याय ५

८ मार्च, १७५१	दि बायने का जन्म ।
१७७८	दि बायने का मद्रास मे आगमन तथा ब्रिटिश सेवा मे प्रवेश ।
१६ अप्रैल, १७७८	जयपुर के पृथ्वीसिह की मृत्यु, प्रतापसिह उसका उत्तराधिकारी ।
१७८२	दि बायने का कलकत्ता जाना ।
६ अप्रैल, १७८२	मिर्जा नजफखॉ की मृत्यु ।
मार्च, १७८३	स्थायी ब्रिटिश प्रतिनिधि के रूप मे जेम्स ब्राउन का दिल्ली मे आगमन ।
ग्रीष्म, १७८३	मराठा राजदूत हिगने का ग्वालियर मे महादजी से मिलना ।
३० जून, १७८३	आगरा के समीप महादजी का जवॉबख्त से मिलना ।
२७ जुलाई, १७८३	महादजी द्वारा ग्वालियर पर अधिकार ।
२३ सितम्बर, १७८३	मिर्जा शफी की हत्या ।
दिसम्बर, १७८३	शिन्दे की रेजीडेन्सी से डैविड ऐण्डसन का अवकाश ग्रहण, उसका भाई जेम्स उसका उत्तराधिकारी ।
२६ फरवरी, १७८४	शिन्दे के समक्ष गोहद का आत्मसमर्पण ।
आरम्भ, १७८४	दि बायने शिन्दे की सेवा मे ।
मार्च २७-अगस्त २७, १७८४	वारेन हेस्टिंग्ज लखनऊ मे ।
अप्रैल, १७८४	मिर्जा जवॉबख्त का दिल्ली से पलायन तथा लखनऊ मे हेस्टिंग्ज से मिलना ।
अगस्त, १७८४	अन्त मे जवॉबख्त का ब्रिटिश वृत्ति पर बनारस मे निवास ।
५ अक्तूबर, १७८४	महादजी का ग्वालियर से आगरा जाना ।
३ नवम्बर, १७८४	हमदानी द्वारा अफ्रासियाबखॉ की हत्या ।
१४ नवम्बर, १७८४	सम्राट द्वारा अपने दरबार मे शिन्दे का स्वागत तथा उसे वकीले-मुतलक नियुक्त करना ।

५ फरवरी, १७८५	वारेन हेस्टिग्ज भारत से विदा।
२१ फरवरी, १७८५	जाबिताखा की मृत्यु।
२१ फरवरी, १७८५	ब्राउन का दिल्ली से वापस बुलाया जाना।
२६ माच, १७८५	शिन्दे द्वारा आगरा का किला हस्तगत।
जून, १७८५	शिन्दे द्वारा मथुरा मे स्थायी शिविर स्थापित।
जून, १७८५	शिन्दे द्वारा लाडोजी देशमुख सम्राट का प्रबन्धक नियुक्त।
जून, १७८५	मचेरी के प्रतापसिह से शिन्दे की मैत्री।
अगस्त, १७८५	शिन्दे द्वारा राघोगढ का घेरा।
२० नवम्बर, १७८५	शिन्दे द्वारा रामगढ उफ अलीगढ पर अधिकार।
१७८६	शिन्दे द्वारा राघोगढ के राना को हस्तगत करके अपनी ओर मिलाना।
१७८६	शिन्दे के विरुद्ध गोसाइ भाइयो का षडयन्त्र।
आरम्भ, १७८६	शिन्दे तथा सम्राट का बलपूवक कर प्राप्त करने के लिए जयपुर मे प्रवेश—राजा का भुगतान करने से इनकार—रायजी पाटिल बलपूवक कर प्राप्त करने के लिए जयपुर मे नियुक्त।
१० माच, १७८७	डीग मे सम्राट के राज्यारोहण का अनुरूप उत्सव, उसका तथा शिन्दे का जयपुर के विरुद्ध प्रयाण।
ग्रीष्म, १७८७	तैमूरशाह का पेशावर मे आगमन, उसके द्वारा भारत पर आक्रमण की तैयारी।
जून, १७८७	हमदानी द्वारा शिन्दे का पक्ष त्याग तथा जयपुर के राजा से मिलना, शिन्दे के विरुद्ध राजा प्रतापसिह का आक्रमण आरम्भ।
२८, २९ जुलाई, १७८७	लालसोट के समीप दो लडाइयाँ—हमदानी का वध।
३० जुलाई, १७८७	मुगल सैनिको द्वारा शिन्दे का पक्ष त्याग तथा राजपूत सघ मे सम्मिलित होना।
अगस्त, १७८७	महादजी अलवर को वापस।
२४ अगस्त, १७८७	लाडोजी देशमुख द्वारा आत्मरक्षाथ दिल्ली का त्याग।
२७ अगस्त, १७८७	अजमेर पर शिन्दे का अधिकार समाप्त।
५ सितम्बर, १७८७	गुलाम कादिर का सम्राट से सत्ता छीन लेना।
५ सितम्बर, १७८७	कार्नवालिस का लखनऊ आगमन।
१६ सितम्बर, १७८७	इस्माइल बेग का आगरा नगर पर अधिकार। होलकर तथा अली बहादुर का उत्तर को प्रस्थान।

१४ नवम्बर, १७८७	सम्राट के कष्ट निवारण मे असमथ होकर अम्बूजी इगले का लौटना।
८ दिसम्बर, १७८७	जवाँबख्त का दिल्ली आगमन।
फरवरी, १७८८	जवाँबख्त बनारस को वापस।
फरवरी, १७८८	शिन्दे चम्बल को वापस।
१७ फरवरी, १७८८	गुलाम कादिर का अलीगढ़ पर अधिकार।
२७ अप्रैल, १७८८	इस्माइल बेग तथा गुलाम कादिर चकसन मे परास्त।
१ जून, १७८८	जवाँबख्त की बनारस मे मृत्यु।
१८ जून, १७८८	इस्माइल बेग आगरा के समीप पददलित—शिन्दे की सत्ता पुन स्थापित।
४ जुलाई, १७८८	शिन्दे का मथुरा पर अधिकार—रामसिह जाट द्वारा उसका साथ देना।
४ जुलाई, १७८८	इस्माइल बेग शाहदरा मे गुलाम कादिर के साथ—उनमे समझौता।
८ जुलाई, १७८८	रावलोजी पाटिल तथा भगीरथ शिन्दे द्वारा सम्राट को सहायता प्रस्तुत—उनका प्रस्ताव अस्वीकृत।
२४ जुलाई, १७८८	सम्राट द्वारा गुलाम कादिर की माँगे स्वीकार।
३० जुलाई, १७८८	गुलाम कादिर का दिल्ली पर अधिकार, सम्राट् ६८ दिनो तक कारागार मे।
३१ जुलाई, १७८८	सम्राट सिहासनच्युत—बेदारबख्त सिहासनारूढ।
१० अगस्त, १७८८	शाहआलम का अन्धा किया जाना।
२३ अगस्त, १७८८	शाह निजामुद्दीन द्वारा गुलाम कादिर पर आक्रमण—शाह परास्त।
२६ अगस्त, १७८८	गुलाम कादिर का सम्राट से मिलना तथा मीरबख्शी का पद माँगना।
५ सितम्बर, १७८८	गुलाम कादिर मीरबख्शी नियुक्त—आतकपूण शासन का आरम्भ—उसका निवासियो को भूखा मार डालना—राजभवनो तथा नगर-गृहो को खोद डालना।
२३ सितम्बर, १७८८	मसूरअली नाजिर की तगडी पिटाई।
२८ सितम्बर, १७८८	रानाखाँ तथा जीवबा बख्शी का दिल्ली पर अधिकार।
२ अक्तूबर, १७८८	इस्माइल बेग द्वारा रानाखाँ का साथ दिया जाना।
१० अक्तूबर, १७८८	दिल्ली के गढ के बारूदखाने मे विस्फोट—गुलाम कादिर द्वारा दिल्ली के गढ का त्याग।

११ अक्तूबर, १७८८	मराठो का दिल्ली के गढ मे प्रवेश ।
१२ अक्तूबर, १७८८	गुलाम कादिर का पीछा किया जाना ।
१६ अक्तूबर, १७८८	शाह आलम अपने सिहासन पर पुन प्रतिष्ठित ।
३ नवम्बर, १७८८	रानाखा द्वारा गुलाम कादिर का पीछा करना ।
४ नवम्बर, १७८८	अली बहादुर का शिन्दे के शिविर मे आगमन ।
६ नवम्बर, १७८८	रानाखा का मेरठ मे आगमन ।
१७ नवम्बर, १७८८	अली बहादुर मेरठ मे रानाखाँ के साथ ।
१७ दिसम्बर, १७८८	गुलाम कादिर का मेरठ से पलायन ।
१८ दिसम्बर, १७८८	गुलाम कादिर का पकडा जाना ।
१४ फरवरी, १७८९	गलाम कादिर का मथुरा लाया जाना ।
३१ दिसम्बर, १७८९	अली बहादुर द्वारा गुलाम कादिर प्रकरण का पूण वृत्तान्त नाना फडनिस को देना ।
४ मार्च, १७८९	गुलाम कादिर तथा बेदारबख्त का वध—गौवध निषेधाज्ञा का प्रकाशन ।
अप्रैल, १७८९	तुकोजी होलकर का मथुरा पहुँचना ।
दिसम्बर, १७८९	दि बायने द्वारा अवकाश ग्रहण ।
१८३०	दि बायने की चम्बेरी मे मृत्यु ।

अध्याय ५

मराठो का दिल्ली मे पुनरागमन

(१७८३–१७८८ ई०)

१ **दो समकालीन व्यक्ति—नजफखाँ तथा महादजी**—ब्रिटिश-मराठा युद्ध से भारतीय शक्तियो की आखे अच्छी तरह खुल गयी। यदि भारतीय शक्तिया समय पर क्रियाशील नही हो जाती तो यूरोप द्वारा भारत की विजय अब व्यावहारिक रूप से निश्चित हो गयी थी। क्लाइव के समय से ही भारत की युद्ध-शैली मे शनै-शनै क्रान्ति हो रही थी। अधिकाश भारतीय शक्तियो ने अपनी सेनाओ का सगठन पश्चिमी शैली पर आरम्भ कर दिया था, तथा वे इगलिश, फ्रेच तथा अन्य यूरोपीय लडाको को अपनी सेवा मे नियुक्त करने लगी थी। इस समय ये लोग धाराप्रवाह रूप मे झुण्ड के झुण्ड भारत आने लगे थे। सम्राट के काय इस समय मिर्जा नजफखा नामक एक योग्य सैनिक कूटनीतिज्ञ के प्रबन्ध मे थे। बाबर के पतनोन्मुख वश को सहायता देने की इच्छा वाला वह अन्तिम विलक्षणबुद्धि महान मुस्लिम था। उसका पालन-पोषण ब्रिटिश लोगो के सम्पक मे हुआ था। नजफखा ने अपने सभी बहुमूल्य अनुभव सम्राट के उपयोग के लिए प्रस्तुत कर दिये। सर यदुनाथ कहते है—"नजफखा ने रणक्षेत्र मे ब्रिटिश सेनाओ का सामना किया तथा बाद मे उन्ही के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर युद्ध किया। वह नवीन युद्ध-शैली को जानता था तथा उसका आदर करता था। उसने शीघ्र ही अपने आप को परिवतन के अनुकूल बना लिया। उसने सफलतापूवक विदेशी तत्त्वो तथा विभिन्न यन्त्रो को अपनी

सेना मे सम्मिलित कर लिया। उसने अपना ध्यान आग्नेय अस्त्रो पर केन्द्रित किया तथा यूरोपीय ढग पर प्रशिक्षित दस हजार पैदल बन्दूकची और विकसित भारी तोपखाना एकत्र कर लिया। उसने इन दो सेनाओ मे उस समय भारत मे मिलने वाले उत्तम सवार तथा मुगल घोडे सम्मिलित कर लिये।"[1] उसने सम्राट् की सेवा कुछ योग्य फ्रासीसियो— काउट द मोडेव, रेने मेडेक—जमन वाल्टर रेनहाट (उपनाम समरू) तथा उसकी बेगम को नियुक्त कर दिया। समरू तथा उसकी बेगम बाद के इतिहास मे बहुत प्रसिद्ध हुए। इनके अतिरिक्त उसकी सेवा मे उसकी इच्छानुकूल योग्य मुसलमान भी थे, जैसे, उसका दत्तक पुत्र अफ्रासियाबखॉ, उसकी बहन का पुत्र मिर्जा शफी तथा मुहम्मद बेग हमदानी नामक एक वीर योद्धा जिसको नजफखॉ ने आगरा के शाहीगढ का सरक्षक नियुक्त किया। दो गोसाइ बन्धु उमराव गिरि तथा अनूपगिरि भी शाही सेना मे नियुक्त किये गये। उनके पास अपनी गोसाइ सेनाए थी।

प्रमुख रूप से महादजी शिन्दे के कारण १७७२ मे शाहआलम अपनी दिल्ली की राजधानी मे पुन स्थापित हुआ था। वह उस काय के निमित्त ब्रिटिश समथन प्राप्त करने मे असफल हो गया था। उसी समय से महादजी की यह महत्त्वाकाक्षा थी कि वह सम्राट् के कार्या का नियन्त्रण प्राप्त कर ले, परन्तु पेशवा नारायणराव की हत्या के कारण महादजी को ब्रिटिश-मराठा युद्ध के सचालनाथ वापस जाना पडा। इस युद्ध मे १७७३ से लगभग १० वष लग गये। उसकी अनुपस्थिति मिर्जा नजफखा के लिए लाभकारक सिद्ध हुई। परन्तु ६ अप्रैल, १७८२ को इस सरदार की मृत्यु तथा सालबई की सन्धि के कारण, जो एक मास बाद निश्चित हुई, महादजी पुन सम्राट के कार्यो की ओर अपना ध्यान देने के लिए स्वतन्त्र हो गया। इस समय उसे नजफखॉ द्वारा रिक्त किया गया पद ग्रहण करना था।

जब मिर्जा नजफखॉ की मृत्यु हो गयी और महादजी ने मराठा परिस्थिति पर अधिकार प्राप्त कर लिया तो सम्राट ने तुरन्त उससे प्राथना की, क्योकि वही राजनीतिक क्षितिज पर एकमात्र उदीयमान नक्षत्र था। अपने कार्यो को विश्वासपूवक महादजी के अधीन करने के लिए सम्राट इस प्रकार उत्सुक थे कि उन्होने दिल्ली-स्थित मराठा राजदूत को भावी योजनाओ का पूर्ण निर्देश देकर महादजी के शिविर मे भेजा। हिगने ने महादजी को इस प्रकार लिखा— "इस अवसर पर आप केवल आर्थिक लाभ के अतिरिक्त अनेक अन्य टोस लाभ

---

[1] मुगल साम्राज्य का पतन, जिल्द २, पृष्ठ ४२

भी प्राप्त कर सकते है। हो सकता है कि इस प्रकार का अवसर फिर कभी न आये। तत्कालीन सन्धि के कारण उत्पन्न अनेक कष्टप्रद परिणामो से मुक्त होने मे महादजी को बहुत समय लग गया था। इसलिए हिगने ने १७८३ के ग्रीष्म मे दिल्ली से ग्वालियर की यात्रा की तथा व्यक्तिगत रूप से शाही परिस्थिति को महादजी के सामने स्पष्ट किया, जिससे वह सम्राट का पक्ष ग्रहण करने के लिए उसको अविलम्ब राजी कर ले।

महादजी के पास बहुत समय तक झिझकने के लिए सबल कारण थे। वह जानता था कि उसे धन अथवा सेना किसी भी रूप मे पूना से कोई सहायता नही मिलेगी, क्योकि पूना-दरबार उस समय अपनी ही रक्षा नही कर सकता था। महादजी को यह भी अच्छी तरह पता था कि सकट के समय मुगल दरबार पर भरोसा नही किया जा सकता। दिल्ली का साहसिक काय स्वीकार करने के लिए उसे बुन्देलखण्ड मे बहुत शक्तिशाली केन्द्र की तथा अपनी आज्ञा मे रहने वाली बहुत ही सुसज्जित सेना की आवश्यकता थी। इस प्रकार के केन्द्र की सुरक्षा के निमित्त उसको अपने चिरकालीन शत्रु गोहद के राना को परास्त करना था। महादजी की निजी सेना विशाल अभियान के लिए किसी भी प्रकार सगठित न थी, क्योकि इस समय पश्चिमी युद्ध-शैली तथा प्रशिक्षित तोपखाना नितान्त आवश्यक हो गये थे और एक क्षण की सूचना पर इनका किसी भी प्रकार प्रबन्ध नही हो सकता था। इस अन्धकारमय परिस्थिति मे उसके लिए एकमात्र सहायक शक्ति डेविड ऐण्डसन के साथ घनिष्ठ मित्रता थी। ऐण्डसन का हेस्टिग्ज को दृढ विश्वास था। जब तक हेस्टिग्ज तथा ऐण्डसन अपनी निष्ठा का त्याग नही करते, तब तक महादजी की सुरक्षित स्थिति असदिग्ध थी, यद्यपि अन्य—ब्राउन, मैक्फसन और कक पैट्रिक आदि—सब के सब अग्रेज उत्सुक थे कि महादजी को दिल्ली के दरबार मे अपना प्रभाव स्थापित न करने दे। महादजी की इच्छा थी कि वह ऐण्डसन को लाभदायक जागीर देकर उसके साथ अपनी घनिष्ठ मित्रता सुपुष्ट कर ले, क्योकि इस शाही चक्र मे महादजी अग्रेजो की मित्रता के सहारे ही मनमानी कर सकता था। ऐण्डसन के लिए उक्त जागीर के विषय मे जो उत्साहपूण प्रयास महादजी ने किये, उसका यही कारण था। नाना फडनिस ने इन प्रयासो का तीव्र विरोध किया।

महादजी के साथ समझौता करने के विषय मे अधीर होकर सम्राट ने अपने ज्येष्ठ पुत्र मिर्जा जवाँबख्त को अफ्रासियाबखॉ तथा मिर्जा शफी के साथ आगरा भेजा। वहॉ पर उन्होने मराठा सरदार को साक्षात्कार के लिए निमन्त्रण

दिया। शहजादा आगरा पहुँचा ओर उसने महादजी को लिखा—"हम आप से ग्वालियर मे मिलने आ रहे है।" महादजी ने उत्तर दिया—"आप मेरे पास न आये। मै ही आपके पास आऊँगा।" तदनुसार उमराव गिरि गोसाई मुगलो की ओर से महादजी को लेने तथा उनके सम्मिलन की विस्तृत योजना का प्रबन्ध करने के लिए आया। जून, १७८३ मे ५ हजार हल्की सेना ओर १० तोपे लेकर शिन्दे आगरा गया। वह पहले अफ्रासियाबखा से मिला और तब वे ऐण्डसन तथा चेतसिह को साथ लेकर जवाँबख्त से मिलने आगे बढे। उनका स्वागत खडे-खडे किया गया। महादजी ने नजर पेश की। शहजादा ने उसको तथा शेप मण्डली को प्रथानुसार वस्त्र भेट किये दूसरे दिन शहजादा ने महादजी से प्रार्थना की कि वह दिल्ली आकर प्रशासन का भार सँभाल ले। महादजी ने उत्तर दिया—"मे अभी यह काय स्वीकार नही कर सकता। गोहद के राना का दमन कर चुकने के पश्चात वर्षा ऋतु के बाद ऐसा हो सकेगा।" महादजी से कहा गया कि वह नजीबखाँ रुहेले के पुत्र जाबिताखाँ से मिल ले, परन्तु उसने यह बात नही मानी। वह शहजादा से विदा होकर ग्वालियर वापस आ गया।[1]

२ **बेनौय दि बायने**—सालवई की सन्धि के समय से महादजी गोहद के राना को दबाने मे व्यस्त था। उसका राज्य आगरा तथा दोआब की सीमा पर बुन्देलखण्ड के उत्तर-पश्चिमी भाग मे था। अपने राज्य की स्थिति के कारण वह महादजी के पार्श्व मे काटा-सा हो गया था तथा उस दिशा मे मराठा राज्य की रक्षा के लिए उसका सर्वनाश आवश्यक होग या था। ग्वालियर का सबल गढ उसके अधिकार मे था और यद्यपि अग्रेजो ने इस समय उसका साथ देना छोड दिया था, परन्तु वह महादजी के लिए प्रत्येक प्रकार का कष्ट उपस्थित करता रहता था। महादजी ने उसके दमनाथ अपना शिविर सालबई मे लगाया। वह वीरतापूर्ण प्रयास के बाद २७ जुलाई, १७८३ को ग्वालियर के गढ पर अधिकार करने मे सफल हो गया। उसने राना को इस प्रकार निबल कर दिया कि उसने २६ फरवरी, १७८४ को गोहद भी समर्पित

---

[1] जवाँबख्त तथा महादजी का यह मिलन २७ जून, १७८३ से ५ दिन तक होता रहा। लखनऊ निवासी प्रतिनिधि विलियम पामर इस वार्तालाप मे उपस्थित था। आगरा के गढ का रक्षक हमदानी गोहद के राना से मिला था। अत वह महादजी का स्पष्ट शत्रु था। महादजी के सकेत पर उसको मिलने के अवसर पर उपस्थित होने की आज्ञा न मिली।

—सतारा समाज, जिल्द १, पृष्ठ ६६

कर दिया। इस युद्ध की एक उल्लेखनीय घटना यह हुई कि महादजी की दृष्टि दि बायने की विलक्षण मैनिक प्रतिभा पर पडी। भारत के युद्धप्रिय साहसिको मे सर्वाधिक प्रसिद्ध दि बायने का जन्म ८ माच, १७५१ को सेवाय मे हुआ था। फ्रास की प्रसिद्ध आयरिश ब्रिगेड मे उसको एन्साइन का पद मिला। १७७४ मे उसने त्यागपत्र दे दिया तथा ग्रीक टापुओ मे वह रूसी कमाण्डर के साथ हो गया। रूस और तुर्की के बीच होने वाले एक अभियान मे तुर्कों ने उसको बन्दी बनाकर कुस्तुन्तुनिया मे बेच दिया। तब वह सेण्ट पीटसबग गया, जहा रूसी दरबार मे तत्कालीन ब्रिटिश राजदूत लाड मैकाटने की कृपा से वह रूम की साम्राज्ञी कैथराइन की दृष्टि मे आ गया। साम्राज्ञी की इच्छा भारतीय व्यापार का मौलिक ज्ञान प्राप्त करने की थी। अत इस काय के लिए उसने दि बायने को नियुक्त कर दिया तथा मैकाटने के अनुरोध पर दि बायने मिस्र से भारत आया। वह १७७८ मे मद्रास पहुँचा। १७८० की शिशिर ऋतु मे वह कनल बेली के दल के साथ था, जिसका सवनाश हैदरअली ने काजीवरम् के समीप कर दिया था। उसका मित्र मैकाटने उस समय उस उपनिवेश का गवनर होकर आ गया तथा उसके अनुरोध से १७८२ मे दि बायने कलकत्ता चला गया और मध्य एशिया होकर रूस वापस पहुँच जाने तथा माग मे साम्राज्ञी कैथराइन के लिए व्यापार सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने के अभिप्राय से वारेन हेस्टिग्ज से मिला। वारेन हेस्टिग्ज की सिफारिश लेकर वह लखनऊ गया। वहाँ पर नवाब वजीर आसफउद्दौला ने उसके साथ बहुत सम्मान का व्यवहार किया। यहा पर अपने ५ मास के निवास काल मे वह हिन्दुस्तानी बोलना सीख गया तथा स्थायी ब्रिटिश प्रतिनिधि के रूप मे बादशाह के पास दिल्ली जा रहे मेजर ब्राउन के साथ हो लिया। माग मे ब्राउन ने उसका परिचय डेविड ऐण्डसन से करा दिया जो उस समय स्थायी ब्रिटिश प्रतिनिधि के रूप मे महादजी शिन्दे के पास नियुक्त था। शिन्दे उस समय गोहद के राना के विरुद्ध अभियान का सचालन कर रहा था। दि बायने ने महादजी को परास्त करने के लिए गुप्त रूप से राना को एक रण-योजना का सुझाव दिया। शिन्दे ने इस षड्यन्त्र का पता लगा लिया तथा ब्रिटिश दूत के अतिथि को इस प्रकार गोहद के युद्ध मे अपने विरुद्ध हस्तक्षेप करते देखकर उसे बहुत क्रोध आया। इसी कारण उसने दि बायने को कलकत्ता भिजवा दिया। परन्तु इस घटना से महादजी उस फ्रेंच सज्जन की विलक्षण बुद्धि को जान गया तथा उसने बाद मे शीघ्र ही वारेन हेस्टिग्ज द्वारा उसकी सेवाएँ प्राप्त कर ली। इस प्रकार १७८४ के आरम्भ मे शिन्दे की सेवा मे उसका प्रवेश हो गया और उसने ११ वष बाद

१७९५ के अन्त मे बीमारी के कारण अवकाश ग्रहण किया। सितम्बर, १७९६ मे उसने इगलैण्ड को प्रस्थान किया। भारत मे एक मुस्लिम महिला से उसने विवाह कर लिया, जिससे उसके चार्ल्स अलेक्जैण्डर नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो १८३० मे उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसका भव्य स्मारक सेवाय मे शैम्बरी के स्थान पर है।[२]

महादजी ने उसको अपनी सेवा मे नियुक्त करने पर सर्वप्रथम युद्धो के लिए पैदल सैनिको के दो दल तैयार करने का काम दिया। उसने अपना कार्य इस निपुणता से किया कि वह शनै-शनै शिन्दे की दृष्टि मे ऊँचा उठता गया। उसने सुन्दर सेना का एक नवीन रूप सगठित कर लिया और अन्त मे उच्चतम पूर्णता तक पहुँचा दिया। इसी सुन्दर नवीन उपाय के द्वारा महादजी ने अपने जीवन की अधिकाश विजयो को प्राप्त किया।

३ **दिल्ली मे ब्रिटिश महत्त्वाकाक्षाएँ**—यद्यपि वारेन हेस्टिग्ज ऊपर से महादजी के साथ मित्रता का व्यवहार रखता था, परन्तु राजनीतिक दृष्टि से उसने दिल्ली मे मराठा प्रवेश का प्रबल विरोध किया तथा मुगल दरबार मे मेजर ब्राउन को ब्रिटिश रेजीडेण्ट नियुक्त कर दिया। वह मार्च, १७८३ को दिल्ली पहुँचा। इसके कारण केवल महादजी और नाना फडनिस को ही नही, उन समस्त भारतीय शासको को वेदनामय अनुभव हुआ, जिनको ब्रिटिश आक्रमण का भय था। ५ फरवरी, १७८४ को इस विषय पर हिगने अपने वृत्तान्त इस प्रकार भेजता है—"ब्राउन सम्राट से मिला जो धनाभाव के कारण क्षुधा-पीडित था। ब्राउन ने सम्राट से प्रस्ताव किया कि यदि आप ब्रिटिश सहायता स्वीकार कर ले तो मै आपकी सब आर्थिक आवश्यकताएँ पूरी कर दूगा। इस प्रकार ब्रिटिश आधिपत्य स्वय सिद्ध था।" कुछ समय तक सम्राट इस विकल्प मे पडा रहा कि अग्रेजो तथा मराठो मे से वह किसकी सहायता स्वीकार करे।

आगरा के किले का रक्षक तथा अभिभावक मुहम्मद बेग हमदानी शक्तिशाली सरदार था। वह दिल्ली मे मराठा प्रवेश का प्रबल विरोधी था। उसने बहुत दिनो से गोहद के राना का साथ दिया था। इस कारण वह महादजी का

---

२ उसने अपने भारतीय सेवाकाल मे सग्रहीत धन से शैम्बरी मे एक विशाल भवन बनवाया और वहाँ अपने अवकाश का दीर्घकालीन जीवन व्यतीत किया। उसने नैपोलियन के युद्धो से अपना कोई सम्बन्ध नही रखा। फ्रेच भाषा मे उसकी दो जीवनियाँ प्राप्त है।
देखो हि० रे० क०, जिल्द ९, १९२६—बिनौय दि बायने पर पत्र।

घातक शत्रु था । सम्राट द्वारा महादजी से किये गये प्रस्तावो तथा उसके साथ शहजादा जवाँबरत की वार्ता पर वह बहुत चिढा हुआ था, तथा सामान्य मुगल प्रथानुसार उसने २३ सितम्बर, १७८३ को महादजी के समथक तथा नजफखाँ के उत्तराधिकारी मिर्जा शफी की हत्या करा दी । इस घटना के कारण दोनो दलो के बीच खुला युद्ध आरम्भ हो गया । अफ्रासियाबखाँ तथा गोसाइयो ने महादजी को साग्रह आह्वान भेजे कि वह विद्रोही हमदानी के दमन मे उनकी सहायता करे । महादजी ने तुरन्त अम्बूजी इगले को भेज दिया तथा गोहद के सम्मुख अपने युद्ध-प्रयासो मे से जो कुछ सेना बचा सका, वह उसके साथ कर दी ।

हेस्टिग्ज तथा उसके सलाहकार कलकत्ते मे इन गतिविधियो का उत्साह-पूवक अवलोकन कर रहे थे । डेविड ऐण्डसन ने, जो महादजी का पक्का मित्र था, १७८३ के अन्त मे अवकाश ग्रहण कर लिया । उसका भाई जेम्स उसका उत्तराधिकारी हुआ जो पहले उसके सहायक के रूप मे काय कर रहा था और जो महादजी के प्रति प्रेमभावना नही रखता था । उत्तरदायी ब्रिटिश लोगो ने हेस्टिग्ज की शिन्दे से मित्रता करने तथा राजधानी दिल्ली के कार्यो मे उसको स्वतन्त्र अधिकार देने की नीति का अनुमोदन नही किया । हेस्टिग्ज जानता था कि उसका सेवाकाल समाप्त हो रहा है तथा उसकी इच्छा कोई निणयात्मक काय करने की नही थी । तथापि वह कलकत्ता से चल पडा और २७ माच, १७८४ को लखनऊ पहुँचकर ठहर गया । वहा पर उसने जेम्स ऐण्डसन को दिल्ली के जटिल कार्यो के सम्बन्ध मे परामश के लिए बुलाया, जिससे वे कम्पनी सरकार के लिए स्थायी लाभ का कोई माग ढूढ निकाले । अवध का वजीर पहले से ही अग्रेजो का आश्रित था । अब हेस्टिग्ज ने दिल्ली मे बिना सशस्त्र सघष के वहाँ के सम्राट को अपने अधीन करने का प्रयत्न आरम्भ किया । अनेक साधनो द्वारा प्रयत्न करता हुआ हेस्टिग्ज लखनऊ मे पूरे ५ मास अर्थात् २७ अगस्त तक ठहरा रहा । इस बीच मे सम्राट् के उत्तराधिकारी युवराज मिर्जा जवाँबख्त को हेस्टिग्ज ने प्रलोभन देकर अपने पास बुला लिया । सम्राट् अग्रेजो से मैत्री करने के विरुद्ध नही था, परन्तु उसकी मुख्य शत यह थी कि उसकी रक्षाथ ब्रिटिश सेनाएँ स्थायी रूप से दिल्ली मे नियुक्त कर दी जायँ । भारी व्यय तथा शिन्दे के विरुद्ध अनावश्यक युद्ध की सम्भावना के कारण हेस्टिग्ज इस साहसपूण काय को अगीकार नही कर सका और न शहजादा की माँगो को ही सन्तुष्ट कर सका । वह उसको निर्वाह के लिए केवल चार लाख रुपये की वार्षिक वृत्ति ही दे सका । जब अगस्त, १७८४ को हेस्टिग्ज

कलकत्ता लोटा तो शहजादा भी उसके साथ बनारस तक गया और वही निवास करने लगा। यहाँ १ जून, १७८८ को उसका देहान्त हो गया।

अप्रैल, १७८४ की एक अन्धकारमय रात्रि मे शहजादा के दिल्ली से लखनऊ पलायन से महादजी असीम शकाओ से घिर गया। उसने अग्रेजो के प्रलोभन पर हुए इस पलायन को दिखावटी हार्दिक मित्रता के बीच अमैत्रीपूण काय समझा। महादजी चरित्र एव सोजन्य के कारण अग्रेजो का जो आदर करता था, उम पर इस समय नाना ने उपालम्भ देने मे विलम्ब नही किया। महादजी को नाना की बात का खण्डन करने मे दु ख प्रतीत हुआ। उसने स्पष्ट स्वीकार किया कि अग्रेज असत्यभाषी तथा विश्वासघातक हे, वे अपना स्वाथ आ जाने पर समस्त समझोनो तथा प्रतिज्ञाओ की कोई चिन्ता नही करते हे। इस विश्वास के कारण ही उसने दि बायने को अपनी सेवा मे नियुक्त किया तथा अपनी सेना को उन्नत किया, क्योकि राजनीति के समस्त विवादा का अन्तिम निर्णायक सैन्य बल ही होता हे। उसने तुरत अपने दूत सदाशिव मल्हार को हेस्टिग्ज से मिलकर यह पूछने के लिए लखनऊ भेजा कि उसने सम्राट के कार्यों मे हस्तक्षेप क्या किया आर मुझे (शि दे को) पूव सूचना दिये विना युवराज का क्यो बुलाया ? इस सम्बन्ध मे स्वय हेस्टिग्ज ३ मई, १७८४ को लिखता हे —"हमारी सरकार को दिल्ली के कार्यों मे हस्तक्षेप करने सम्बन्धी मेरे प्रयत्न पर शिन्दे का अवश्य ही ईर्ष्या हुई होगी, क्योकि वह दिल्ली को अपनी कानूनी सम्पत्ति समझता हे। मुझको मालूम होता है कि शहजादा के आगमन का अभिप्राय अफ्रासियाबखाँ के विरुद्ध अपने पिता के पक्ष का समथन करने के लिए मुझे प्रस्तुत करना हे। मरा निश्चय हे कि मै इस विषय से कोई सम्ब ध न रखू।"[३]

इस प्रकार सम्राट् की घोर आवश्यकता मे महादजी उसका अत्यन्त प्रबल समथक बन गया। अगस्त, १७८४ तक जबकि हेस्टिग्ज तथा शहजादा लखनऊ

---

[३] डाडवेल कृत, 'हेस्टिग्ज के पत्र', पृ० १९३। हेस्टिग्ज का यह विचार वास्तव मे निष्कपट प्रतीत होता है, क्योकि बाद मे महादजी शि दे की योजनाओ के प्रति आँख ब द कर लेने सम्बन्धी आरोप के उत्तर मे वह इस प्रकार लिखता है—"मै घोषणा करता हूँ कि मुगल सम्राट को मराठो को वशीभूत करने के लिए मैने महादजी से कोई समझौता नही किया। मुगल सम्राट ने अन्तिम साधन के रूप मे स्वय को शिन्दे के रक्षाधीन कर दिया था। केवल इसीलिए मैं यदि कम्पनी को मराठो के विरुद्ध युद्ध मे फँसा देता तो यह पागलपन का काम होता।"—कीन कृत 'भारत के शासक' पुस्तकमाला मे 'महादजी शिन्दे', पृ० १०३

मे अपनी योजनाएँ बना रहे थे, महादजी को सम्राट् के कार्यो की ओर ध्यान दे सकने का अवकाश मिल गया। उसने गोहद के राना को परास्त करके ग्वालियर मे दृढ आधार प्राप्त कर लिया था तथा दि बायने को अपने लिए पैदल सेना तैयार करने के लिए नियुक्त कर दिया था। शिन्दे को यह आश्वासन देकर हेस्टिग्ज कलकत्ता चला गया कि दिल्ली मे उसके काय मे अग्रेज किसी प्रकार की बाधा नही डालेगे।

यह स्वीकार करना पडेगा कि हेस्टिग्ज को मनुष्य स्वभाव का गम्भीर ज्ञान था। "महादजी का चरित्र उसमे सम्मान की भावना जाग्रत करता था और उसी समय उसका उदार हृदय मन्दभाग्य सम्राट की सहायता के लिए सक्रिय उपाय करने के लिए उसे प्रबल रूप से उत्साहित करता था।" विलियम पामर ने हेस्टिग्ज के इस काय का समथन किया कि उसने सम्राट की अपेक्षा जवाबख्त को अपनी सुरक्षा मे ले लिया। पिता और पुत्र मे से ब्रिटिश लोग वृद्ध तथा विश्वासघातक पिता की अपेक्षा पुत्र को अधिक योग्य समझते थे। यह भी ध्यान मे रखना चाहिए कि उस पद पर हेस्टिग्ज का उत्तराधिकारी भी शिन्दे द्वारा किये गये शाही कार्यो के प्रबन्ध मे हस्तक्षेप करने से उसी प्रकार दूर रहा। किन्तु मेजर ब्राउन ने सम्राट् को तुरन्त ब्रिटिश सुरक्षा देने का समथन किया। "ब्राउन यथाशक्ति वारेन हेस्टिग्ज की परित्यक्त योजना को पुनरुज्जीवित करने और इसके द्वारा सम्राट को अग्रेजो का वशवर्ती शासक बना दिये जाने का यथाशक्ति समथन करता रहा। वह चाहता था कि साम्राज्य पर किसी मुस्लिम राज-प्रतिनिधि द्वारा शासन किया जाय जो राजधानी मे ब्रिटिश रेजीडेन्ट के इच्छाधीन उसी प्रकार रहे, जिस प्रकार अवध का नवाब पहले से था।"[४] महादजी ने लिखा है—"सम्राट ने मुझे अपने पास उपस्थित होने तथा उसके पुत्र जवाँबख्त की योजनाओ को विफल बना देने के लिए बारबार निमन्त्रण भेजे है, जो लखनऊ मे ब्रिटिश सुरक्षा प्राप्त करने को भाग गया था। अफ्रासियाबखाँ ने भी उसी प्राथना को दोहराया है। अत मै आगरा जा रहा हूँ, जहाँ सम्राट भी आ रहे है।" ५ अक्तूबर, १७८४ के लगभग महादजी ग्वालियर से आगरा की ओर बढा, जहाँ इस समय सम्राट निवास कर रहे थे। अफ्रासियाबखाँ ने आगे बढकर २४ अक्तूबर को फतेहपुर सीकरी के पास महादजी का स्वागत किया। अफ्रासियाबखाँ के इस काय पर मुहम्मद बेग हमदानी बहुत रुष्ट हुआ तथा भावी प्रगति को रोकने के लिए

---

४ मुगल साम्राज्य का पतन, जिल्द ३, पृष्ठ २९२

हमदानी ने ३ नवम्बर को उसी के तम्बू मे अफ्रासियाबखा की हत्या करा दी। इस प्रकार हमदानी ने मराठो के प्रति घृणा के कारण दो प्रमुख मुगल मन्त्रियो की अकारण हत्या कर दी। परन्तु इन हत्याओ से उसे कोई लाभ नही हुआ। सम्राट तथा समस्त दरबार ने इस कार्य की निन्दा की और हत्यारे को पर्याप्त दण्ड देने के लिए महादजी को प्रेरित किया। हमदानी को पकडने के लिए पीछा करने वालो की शक्तिशाली टोलियाँ तुरन्त भेज दी गयी। उसने अम्बूजी इगले के समक्ष आत्म-समपण कर दिया तथा वह कडे पहरे मे रख दिया गया। बाद मे वह भाग निकला और उसने महादजी के लिए आगे भी कठिनाई उपस्थित की। अन्त मे वह २८ जुलाई, १७८७ को लालसोट के प्रसिद्ध युद्ध मे मारा गया। इससे महादजी को सम्राट का अत्यन्त उत्साही समथक बनने का अवसर मिल गया।

४ **वकील ए-मुतलक**—जब महादजी ग्वालियर से बढा, तभी सम्राट ने आगरा से प्रस्थान किया, जिसमे वह फतेहपुर सीकरी के समीप उसके शिविर मे उससे भेट करे। यह स्थान लगभग वही था जहाँ अफ्रासियाबखा की हत्या की गयी थी। महादजी ने आकर स्वागताथ एक शामियाना लगाया, जहा उसने १४ नवम्बर, १७८४ को सवप्रथम सम्राट को प्रणाम किया। उसने अपना सिर सम्राट के पैरो पर रख दिया और उसको १०१ मुहरो की भेट दी। सम्राट ने उसको अपने पास बैठा लिया तथा उसे समस्त प्रशासकीय काय सँभाल लेने की आज्ञा दी। हेस्टिग्ज अन्तिम रूप से फरवरी, १७८५ मे भारत से चल दिया और ब्राउन भी कुछ ही दिन बाद दिल्ली से वापस बुला लिया गया।

सम्राट ने अब मुगल राज्य के समस्त प्रशासन अधिकार महादजी को दे दिये। उसने महादजी को वकील-ए-मुतलक (सर्वाधिकार प्राप्त राज-प्रतिनिधि) की भव्य उपाधि दी। यह उच्चतम कार्याधिकारी का पद था। इसमे वजीर तथा मीरबख्शी दोनो के कर्तव्य सम्मिलित थे। भूतकाल मे यह उपाधि केवल एक बार सम्राट मुहम्मद शाह द्वारा निजामुल्मुल्क को प्रदान की गयी थी। उस पद के परम्परागत वस्त्र तथा पदसूचक अनेक चिह्न—अर्थात नालकी, माही मरातब, नगाडे, घोडे, हाथी आदि—महादजी को विधिपूवक भेट किये गये। महादजी ने कहा कि सत्ता के ये चिह्न उसको पेशवा के नाम पर दिये जायँ, जिसका वह प्रतिनिधि है। परन्तु महादजी के प्राथना पत्र के सम्बन्ध मे दिये गये अपने लिखित उत्तर मे सम्राट ने पेशवा का नाम न लिखकर महादजी का नाम ही लिखा। इसका कारण यह था कि पेशवा बहुत दूर था तथा सम्राट घटना स्थल पर उपस्थित केवल महादजी को ही उत्तरदायी अधिकारी के रूप

मे मान्यता देना चाहता था। सम्राट के इस स्पष्टीकरण तथा इसके प्रति महादजी की सहमति से नाना फडनिस बहुत रुष्ट हुआ। उसने महादजी पर पेशवा से स्वतन्त्र होकर अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए इच्छुक होने का आरोप लगाया। यह कलह बहुत दिनो तक कटुरूप से चलती रही तथा उत्तर भारत मे मराठा हितो पर कुछ अश तक इसका निस्सन्देह प्रभाव पडा।

महादजी का नवीन पद फूलो की सेज नही थी। उसका पहला काम बडी-बडी जागीरो का उपभोग करके भी बदले मे कोई सेवा न करने वाले समस्त मुगल सरदारो को आज्ञाकारी बनाना था। महादजी के लिए यह काय अत्यन्त दुष्कर सिद्व हुआ तथा इसी कारण नवीन प्रशासन मे उसके अनेक शत्रु पैदा हो गये। शाहआलम सकुचित हृदय, कायर, किन्तु चालाक व्यक्ति था। उसने अपने कथन और प्रदशन के अनुसार महादजी को किसी काय मे पूण हार्दिक समथन नही दिया। खालसा भूमियो पर नियन्त्रण प्राप्त करना और कर-सग्रह को नियमित तथा सुनिश्चित रूप देना मुख्य कतव्य था, जिसको महादजी ने अपने हाथो मे लिया। इसके अतिरिक्त, साम्राज्य के करद सरदारो को आज्ञावश करने की समस्या थी। राजपूत राजे तथा स्थानीय सरदार जो गढो तथा सुदृढ स्थानो के अधिकारी थे, इनकी न्यूनाधिक इच्छा महादजी के अधिकार का विरोध करने की थी। अफ्रासियाबखॉ का सम्बन्धी आगरा का रक्षक शुजाउद्दीन पठान, गढ को छोडना नही चाहता था। प्रबल प्रतिरोध के बाद वह रास्ते पर आ गया तथा २६ माच, १७५८ को गढ पर अधिकार हो गया। इस पर शिन्दे का झण्डा फहरा दिया गया जो लाड लेक द्वारा १८०३ मे इस पर अधिकार किये जाने तक आगामी १८ वर्षों तक फहराता रहा। रामगढ नामक एक अन्य दुग वेहेलो द्वारा अधिकृत मुख्य स्थान था तथा उस पर अफ्रासियाबखा के भाई जहॉगीरखॉ का अधिकार था। दीघ-कालीन अवरोध के बाद २० नवम्बर, १७८५ को रायजी पाटिल ने इस पर अधिकार कर लिया। आगरा तथा इस स्थान पर अधिकार प्राप्त कर लेने से महादजी की स्थिति मे जान आ गयी। उसी वर्ष इसके पहिले नजीबखॉ के पुत्र जाबिताखॉ का देहान्त हो गया (२१ जनवरी, १७८५) तथा उसका पुत्र गुलाम कादिर उत्तराधिकारी हुआ जो शीघ्र ही महादजी के लिए कठोर कण्टक सिद्ध हुआ।

१७८५ की वर्षा ऋतु मे पहली बार महादजी ने अपना शिविर मथुरा के समीप वृन्दावन मे स्थापित किया। इस केन्द्रीय स्थान से वह वृत्ताकार रेखा मे समस्त दिशाओ का सावधानी से निरीक्षण कर सकता था। तब सम्राट

दिल्ली चला गया, क्योकि उन दोनो ने सदव साथ साथ रहना न तो आवश्यक समझा ओर न रुचिकर ही। इसके बाद मे शिन्दे ने मथुरा स्थित अपने इस स्थान से समस्त कार्यो का निर्देश किया। सम्राट के व्यय के लिए महादजी ने एक लाख मासिक का धन निश्चित कर दिया तथा अपने जामाता लाडोजी देशमुख सितोले को अपनी ओर से सदैव सम्राट के पास रहने के लिए नियुक्त कर दिया। उसके साथ सम्राट का व्यक्तिगत कृपापात्र शाह निजामुद्दीन था। इस प्रकार पदग्रहण के प्रथम वष मे महादजी का प्रशासन सफलता की पर्याप्त आशा से प्रारम्भ हुआ।

परन्तु महादजी के पद के भारी उत्तरदायित्व—उसके अनेकानेक कष्टो तथा उसके धनाभाव—को न उसके अपने मित्र समझे, न सहकारी ओर न पूना मे पेशवा का शासन। लोगो ने केवल वकील-ए-मुतलक के उच्च पद के खाली बुलबुले को देखकर विश्वास कर लिया कि शिन्दे को खजाना भरने वाली सोने की खान मिल गयी हे। "अब वह साम्राज्य का राज-प्रतिनिधि तथा सेनाओ का सर्वोच्च सेनापति था, परन्तु वास्तव मे उसको कागज के दो पन्ने नियुक्तिपत्र के रूप मे मिले थे, जिन पर नाममात्र के सम्राट के हस्ताक्षर थे। अपने शिविर के नीचे की भूमि को छोडकर, शाही प्रदेश की एक अगुल भूमि भी उसके अधिकार मे नही थी। यदि वह केवल नाममात्र का नही, अपितु वास्तव मे सम्राट का प्रतिनिधि था, ता शाही दुर्गो, सरकारी कोषो तथा सम्राट के अधीन भूमियो पर उसका अधिकार अवश्य होना चाहिए था। १७८४ के अन्त तक उस पर ८० लाख का ऋण हो गया था। तोपखाने सहित उसकी अपनी ३० हजार सेना पर ७ लाख रुपये मासिक व्यय होते थे तथा अपने अधिकार मे ली गयी शाही सेनाओ के कारण यह व्यय लगभग ३ लाख रुपये मासिक बढ गया था।"[५] वास्तव मे दिवालिये सम्राट द्वारा दिये गये इस रिक्त वेभव की अपेक्षा, मध्य भारत मे उसके निजी ठोस प्रदेश अधिक लाभ-प्रद थे। अपनी सामयिक आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए उसने मथुरा मे अपनी टकसाल स्थापित करके नानाशाही रुपया ढाला।

महादजी ने भारी उत्तरदायित्व अगीकार तो किया था, परन्तु उसके पास धन नही था। उस पर पहले से ही बहुत ऋण लदा हुआ था। इस सकटमय उद्योग के प्रति उसकी अपनी कोई तीव्र इच्छा न थी। वह नाना की सतत प्रेरणा से विश्वासघाती मित्रो तथा अचल शत्रुओ के बीच सम्राट की जटिल

---

५ मुगल साम्राज्य का पतन, जिल्द ३, पृष्ठ २९६

परिस्थिति को सॅभालने के लिए तैयार हो गया। जब उसको कष्टो मे पेशवा की सरकार से सम्पूण समथन तथा सहयोग की आवश्यकता हुई तो नाना फडनिस ने उस पर आज्ञाभग का सन्देह किया, क्लेशकारक पत्र लिखे ओर स्पष्टीकरण मागे। इस कारण मराठा राज्य के दो प्रमुख व्यक्तियो के बीच सतत सघष आरम्भ हो गया, जिसका अ त महादजी की मृत्यु पर हुआ। सौभाग्य से उन्होने अपने क्रोध को उचित सीमाओ का उल्लघन न करने दिया, क्योकि वे दोनो पेशवा वश के निष्ठापूण सेवक थे। महादजी ने अपनी घोर आवश्यकता मे नाना, अहल्याबाई तथा अन्य व्यक्तियो से धन या ऋण देने की सविनय प्राथना की, परन्तु उसको कभी कुछ भी प्राप्त नही हुआ।[६]

महादजी ने सौभाग्यवश आरम्भ मे अपने पास अनुरक्त अनुचरो जैसे रानाखॉ भाई, अम्बूजी इगले, खाडेराव हरि, रायजी पाटिल, जीवबा दादा बख्शी, देवजी गाउली, लाडोजी देशमुख आदि की एक मण्डली सगठित कर ली थी। उसके नवीन सेवक दि बायने का भी उस पर पूण अनुराग था। इन निष्ठापूण सहायको के सहयोग से ही महादजी सवनाश से बच सका। वह सम्राट के साथ की गयी नियमपूवक प्रतिमास वृत्ति देने की अपनी प्रतिज्ञा का पालन नही कर सका। इस विषय मे उसकी असफलता से सम्राट और भी अप्रसन्न हो गया। उसे ऋण भी प्राप्त न हो सका। वह लिखता है—"कायक्षम व्यवस्था स्थापित करने मे सफल होते ही, मेरी इच्छा इस असह्य काय से सवथा अवकाश ग्रहण करने की है। समस्त हि दुस्तानी लोग—चाहे वे हिन्दू हो या मुसलमान, ब्राह्मण हो या निम्नजातीय—दुष्ट, विश्वासघातक तथा सवथा अविश्वसनीय है। वे मित्र भावनाऍ तो प्रकट करते रहेगे, परन्तु आपका गला काटने मे शका नही करेगे। मुगल, कश्मीरी, पठान सभी दुष्ट और प्रतिज्ञाभ्रष्ट है। मै नही जानता कि कैसे काय करूँगा।"

महादजी सदैव शान्त, सयत तथा विचारशील रहा और घोर सकट काल मे भी घबराया नही। अपने सर्वोपरि आत्म-विश्वास द्वारा वह निराशामय

---

६ एक अनुरूप उदाहरण से महादजी के साथ नाना फडनिस का व्यवहार स्पष्ट हो जाता हे। १७८४ के अन्त पर नाना ने महादजी को पत्र लिख कर नवीन उद्योग से होने वाले लाभ-हानि सहित उसकी आर्थिक स्थिति का विस्तृत विवरण मॉगा। महादजी की आज्ञा से सदाशिव दिनकर ने ५ जून, १७८५ को नाना के पास उत्तर के रूप मे विस्तृत विवरण भेजा। यह लेख पत्र अध्ययन योग्य है तथा इससे वे सकट प्रकट हो जाते है, जिनमे महादजी फॅस गया था।—ऐतिहासिक टिप्पणियाँ, जिल्द ५ पृष्ठ १०

परिस्थिति मे भी अन्त मे विजय प्राप्त करने मे सफल हो गया। वह अपने विरोधियो के प्रति भी न्यायशील तथा उदार था। हत्या के शिकार अफ्रासियाबखा के परिवार तथा नातेदारो की उसने सहायता की तथा हमदानी की वीरता तथा उत्साह का यथाशक्ति उपयोग करने का प्रयत्न किया।[७] उमरावगिरि तथा अनूपगिरि नामक गोसाइ बन्धुओ को उसने मित्र बना लिया। शुक्रताल मे दत्ताजी शिन्दे के युद्ध के समय से वह उनको अच्छी तरह जानता था। इस समय वे सम्राट की सेवा मे थे। उसने उन्हे उपयोगी काय दिया। जब उन्होने विद्राही बनकर उसका साथ छोड दिया तो महादजी उनके साथ कठोर व्यवहार करने पर विवश हो गया। उसको कई बार पता चल गया कि उसके कार्यो के विरुद्ध सम्राट को भडकाने मे अनूपगिरि गुप्त रूप से षडयन्त्र तथा विश्वासघात कर रहा है। महादजी ने अपने प्रतिनिधि केशव पन्त को भेजा कि वह बुन्देलखण्ड तथा दोआब मे गोसाइयो की जागीरो पर अधिकार कर ले। उमरावगिरि न केशव पन्त की हत्या करा दी। तब दोनो गोसाई बन्धुओ ने महादजी के विरुद्ध स्पष्ट रूप से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। महादजी ने अप्रेल, १७८६ मे देवजी गाउली को दण्ड देने के लिए भेजा। उन्हे परास्त करके, उनकी समस्त जागीरो पर अधिकार कर लिया गया और वे अवध के नवाब वजीर की शरण मे चले गये। उस समय कानवालिस गवर्नर जनरल था। उसने नवाब वजीर को महादजी से बैर करने की कडी चेतावनी दी। यह सम्राट के उन पूव सेवको का केवल एक उदाहरण है जो जागीरो का उपभोग करते हुए भी कोई सेवा-काय नही करते थे।

महादजी ने प्रबल प्रयत्न किया कि सम्राट को नियमित रूप से निश्चित आय हो जाये तथा उसके अविवादग्रस्त शासन के लिए विशिष्ट क्षेत्र मिल जाये। इस कारण अज्ञात रूप से उसे अनेक अभियानो तथा गतिविधियो मे व्यस्त होना पडा, जिनके लिए पहले से न योजना बनायी जा सकती थी और न पूवकल्पना की जा सकती थी। इनसे उसको निरन्तर कष्ट हुआ। उसने अनुपम धैय तथा क्षमता से सफलतापूवक अपना उद्देश्य प्राप्त कर लिया। शिविर के लिए मथुरा का चयन बुद्धिमगत काय सिद्ध हुआ। उसने अपनी सम्पूण शक्ति के उद्गम स्थान मालवा तथा बुन्देलखण्ड मे अपने केन्द्र स्थान दृढ रखे। आगरा शाही क्षेत्र मे था, जिस पर उसे दिल्ली के साथ-साथ पूण अधिकार रखना था। यहाँ से वह उत्तर-पश्चिम मे सिखो, दोआब मे पठानो, तथा

---

७ मुगल साम्राज्य का पतन, पृष्ठ २८६

दक्षिण-पश्चिम मे राजपूतो की प्रगतियो पर निगाह रख सकता था। आरम्भ से ही मचेरी का सरदार प्रतापसिह उसका पक्का मित्र था। यह स्थान इस समय अलवर का भाग है। महादजी ने अम्बूजी इगले तथा प्रतापसिह को उत्तरी क्षेत्रो पर सम्राट का अधिकार स्थिर करने को भेजा। वे प्रदेश सिक्खो की लूटमार के शिकार थे। इगले तथा प्रतापसिह ने अपना काय शीघ्रता तथा सफलतापूवक पूरा कर लिया। मई मास मे सिक्ख नेता महादजी से मिलने के लिए मथुरा लाये गये तथा उनके साथ समझोता हो गया जो भविष्य मे पर्याप्त सफलतापूवक कार्यान्वित रहा। १७८५ के इसी वष मे महादजी कुछ अन्य अभियानो—अलीगढ, जयपुर, राघोगढ अर्थात मालवा का खीची प्रदेश—मे व्यस्त रहा।

ऊपर अन्त मे गिनायें गये राघोगढ के प्रकरण को कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। वहाँ का खीची राना बहुत दिनो से मराठो का आश्रित था और होलकर को कर देता था। तत्कालीन शासक बलवन्तसिह ने अपनी स्वाधीनता की घोषणा की तथा कर देने से इनकार कर दिया। उत्तरी तथा मध्य भारत के बीच मे मराठा सचार-मार्गो के केन्द्र पर उसका शासन था तथा अपने शक्तिशाली आधार स्थान से वह मराठा सेनाओ के प्रयाण मे इच्छानुसार विघ्न उपस्थित कर सकता था। महादजी ने राघोगढ के विरुद्ध अम्बूजी इगले के अधीन भारी सेना भेजी। उसने १७८५ की शिशिर ऋतु मे गढ घेर लिया। यह प्रकरण एक वष तक चलता रहा। अन्त मे राना ने अधीनता स्वीकार कर ली और उसका राज्य जब्त कर लिया गया। बलवन्तसिह बेडिया डालकर ग्वालियर मे बन्दी रखा गया। कुछ समय बाद मित्र बनाकर उसके साथ दयालुता का व्यवहार किया गया। कुछ अन्य सरदारो—जैसे बुन्देलखण्ड मे बाँदा, कालिजर तथा चरखारी के सरदार जिन्होने कष्ट उत्पन्न कर रखा था—का शीघ्रतापूवक दमन किया गया। इन विद्रोहो के दमन मे इगले बन्धुओ, खाडेराव हरि तथा दि बायने ने विशेष सेवा की।

५ **महादजी का राजपूतो के विरुद्ध युद्ध—लालसोट**—१६ अप्रैल, १७७८ को जयपुर के राजा पृथ्वीसिह का देहान्त हो गया तथा उसका १३ वर्षीय भाई प्रतापसिह उत्तराधिकारी हुआ। वैसे मृतक राजा का ६ मास की अवस्था वाला मानसिह नामक पुत्र भी था। जयपुर के भाई-बेटो तथा आश्रित सरदारो मे से रावराजा प्रतापसिह नरुका नामक एक व्यक्ति को अपनी वीरता तथा क्षमता के कारण हाल ही मे प्रसिद्धि प्राप्त हो गयी थी। अलवर के समीप मचेरी के स्थान पर उसने अपने को जयपुर से स्वतन्त्र कर लिया था, इससे जयपुर राज्य

की हानि हुई थी। यह प्रतापसिंह सम्राट का कृपापात्र हो गया था तथा इस समय प्रबन्ध-काय मे महादजी का परम मित्र तथा साथी बन बैठा था। जयपुर को हानि पहुँचाकर प्रसिद्धि प्राप्त करने के कारण वह अपने ही नामराशी जयपुर के प्रतापसिह का कठोर शत्रु हो गया था। जयपुर का प्रतापसिह कुख्यात भ्रष्टाचारी शासक था। वह आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओ के बीच अपने राज्य का प्रबन्ध करने मे अयोग्य था। वह मदिरापान तथा नृत्य मे अपना समय व्यर्थ नष्ट करता था। अपने दुष्ट शराबी मित्रो के साथ वह कभी-कभी रात्रि मे निकल पडता तथा सेठो, साहूकारो के घरो मे घुस जाता। जो कुछ धन ओर वहुमूल्य वस्तुएँ हाथ लगती, ये लोग उठा ले जाते।

जयपुर का शासक सदव सम्राट का आश्रित रहा था। वह सम्राट को वार्षिक कर देता था। इसके अतिरिक्त सवाई जयसिह के समय से पेशवाओ ने राज्य पर चौथ लगा रखी थी। अत महादजी ने शाही साम्राज्य का वकील-ए-मुतलक होते ही मराठा चोथ तथा सम्राट वाला कर दोनो के कारण बहुत समय से बकाया धन की माग की। इससे जयपुर के राजा का क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। उसने लम्बे चलने वाले शान्ति प्रस्तावो की आड मे कपट तथा शत्रुता का खेल आरम्भ कर दिया। अपनी इस योजना मे उसने मारवाड के राजा विजयसिह तथा महादजी के घातक शत्रु हमदानी का समथन प्राप्त कर लिया।

जयपुर के राजा ने धन देने मे साफ इनकार कर दिया। उसने स्वय को धन देने तथा अपने दुराचारी प्रशासन मे कोई उन्नति करने मे असमर्थ बताया। तब महादजी कठोर कारवाई करने पर विवश हो गया। उसने पर्याप्त सेना के साथ रायजी पाटिल को राजधानी मे ठहरा दिया, जिससे वह बलपूवक धन प्राप्त करे तथा सम्राट से आधिपत्य को कार्यान्वित करे। उसने राजा को राजच्युत करके उसके भतीजे मानसिह को गद्दी पर बैठा देने की धमकी दी। इसी काय के लिए मानसिह कृष्णगढ से वृन्दावन लाया गया और उसके निर्वाह के लिए छोटी-सी जागीर दे दी गयी। इन कार्यो से अप्रसन्न होकर राजा ने जीवन-मृत्यु के सघष की तैयारी आरम्भ कर दी। महादजी चुनौती को स्वीकार करने पर विवश हो गया और १७८६ के आरम्भ मे उसने सम्राट के साथ जयपुर मे प्रवेश किया। जयपुर से सात मील दक्षिण मे सागानेर के स्थान पर उसने अपना शिविर लगाया और सवनाश का भय दिखाकर राजा से तीन करोड रुपये माँगे। इस राशि के निश्चय के विषय मे मध्यस्थो द्वारा सौदेबाजी आरम्भ हो गयी। अन्त मे ६३ लाख पर समझौता

हो गया, परन्तु यह धन भी प्राप्त नही हो सका। राजा के पास न तो नकद धन था, न हीरे जवाहरात। महादजी बलपूवक राजा के प्रदेश पर केवल अधिकार कर सकता था, परन्तु इससे स्थिति नही सँभल सकती थी, क्योकि महादजी तथा सम्राट दोनो को नकद धन की अत्यन्त आवश्यकता थी। साधारण जीवन की शान्तिमय स्थिति पुन स्थापित हो जाने से पहले मरुभूमि से कुछ भी तात्कालिक लाभ नही हो सकता था। इस प्रकार राजा तथा उसके मराठा आक्रान्ता दोनो की परिस्थिति गम्भीर हो गयी, जिससे कोई भी सम्मानपूवक बचकर नही निकल सकता था। शिन्दे ने बलपूवक धन सग्रह करने के लिए अनेक स्थानो को सशस्त्र टुकडिया भेजी। बहुत-से स्थान घेर लिये गये। जयपुर के साहूकार तथा व्यापारी पकड लिये गये। इस प्रकार सकट और भी बढ गया।

महादजी शिन्दे तथा सम्राट ने रायजी पाटिल को वहा राजा द्वारा स्वीकृत शर्तों को कार्यान्वित करने के लिए नियुक्त कर दिया। वे जून (१७८६) मे डीग वापस चले गये। यहाँ से वे पृथक हो गये। महादजी मथुरा गया और सम्राट दिल्ली। अत्यन्त वेदना तथा व्याकुलतायुक्त होकर जयपुर के राजा ने जोधपुर के विजयसिह के पास अपने व्यक्तिगत दूत भेजकर अपने उद्धार के निमित्त सशस्त्र सहायता की प्राथना की। उसने लखनऊ मे ब्रिटिश अधिकारियो के पास भी अपने दूत भेजे, जो महादजी की बढती हुई शक्ति का दमन करने को इच्छुक थे। परन्तु इस समय ब्रिटिश शासन का अध्यक्ष धीर धुरीण राजनीतिज्ञ कानवालिस था। उसने भारतीय शक्तियो की कलहो मे हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। किन्तु जोधपुर के राजा ने शिन्दे तथा सम्राट की मागो का शस्त्र द्वारा प्रतिरोध करने का निश्चय करके जयपुर के साथ रक्षात्मक मैत्री कर ली। इस प्रकार स्थिति बिगडने लगी और महादजी चुनौती को स्वीकार करने के लिए विवश हो गया। उसने बुन्देलखण्ड से खाडेराव हरि को अविलम्ब वापस बुला लिया। अम्बूजी इगले को भी, जो सतलज के समीप सिखो के विरुद्ध अभियान कर रहा था, वापस बुला लिया गया। उसने १० मार्च, १७८७ को डीग मे सम्राट के राज्यारोहण दिवस का उत्सव मनाने के बाद स्वय जयपुर के विरुद्ध पूण उत्साह से प्रस्थान किया।

जयपुर के प्रतापसिह के पास लगभग २० हजार सेना थी। इसके अतिरिक्त जोधपुर से भीमसिह के अधीन १० हजार सवार उसके पास पहुँच गये थे। इस प्रकार शिन्दे की माग स्वीकार न करके जयपुर तथा जोधपुर

शस्त्रो द्वारा अतिम निणय के लिए तैयार हो गये। जयपुर का राजा अन्तिम क्षण तक शान्तिपूवक शर्तें निश्चित करने का ढोग बनाये रहा। इस प्रकार उसको अप्रैल से जुलाई तक समस्त ग्रीष्म का समय षड्यन्त्र तथा तैयारी के लिए मिल गया। महादजी शान्त तथा चिन्तनशील था। वह धन-जन की विशेष हानि के बिना ही अपने विरोधियो को परास्त करने का अत्यन्त सावधानी से प्रयत्न करता रहा। इस काय के लिए उसने निपुण गुप्तचरो का जाल बिछा दिया। उसको निकट सघष की पर्याप्त चेतावनी तथा लक्षण प्राप्त हो गये। किसी भी सकट का सामना करने के लिए वह शान्त भाव से तैयार हो गया। उसका मुख्य उद्देश्य केवल शक्ति-प्रदशन द्वारा उदयपुर, जयपुर तथा जोधपुर के राजपूत राजाओ के साथ मुख्य विवादग्रस्त विषयो का निपटारा करके जून मे अपने वन्दावन के शिविर मे लोट जाना था। परन्तु समय व्यतीत होने पर राजपूतो का रुख कडा हो गया। महादजी को भयावह समाचार प्राप्त हुए। इधर सम्राट ने भी महादजी को युद्ध से दूर रहने तथा अपने आधार स्थान को तुरन्त वापस हो जाने की आज्ञा दी।

मई तथा जून मे राजपूतो ने अपना प्रलोभन का खेल पूण चतुराई से खेला। वे जानते थे कि महादजी के पास हिन्दुस्तानी तथा मुगलिया सैनिको के बडे-बडे दल हे जो पहले सम्राट की सेवा मे थे और जिनके कमाण्डर शिन्दे के प्रति व्यक्तिगत निष्ठा नही रखते हे। उल्टे वे मन ही मन उसके नाश की उत्कट इच्छा रखते हे। मुहम्मद बेग हमदानी अन्य मुगलिया सरदारो के साथ २७ मई को मराठा शिविर छोड गया और स्पष्ट रूप से राजपूतो के साथ हो गया। वह पहले महादजी का विरोधी था, परन्तु अब उसकी सेना म पुन प्रविष्ट हो गया था। हमदानी के विरोधी पक्ष मे चले जाने से महादजी की आखो ने उस सकट को स्पष्ट देख लिया, जिसमे वह फँसता जा रहा था। हमदानी के आगमन से राजपूतो का उत्साह बहुत अधिक बढ गया। "उन्होने ससार के समक्ष घोषित किया कि एक हिन्दू राज्य को जब्त करके मुस्लिम पक्ष को प्रबल बना देना शिन्दे जैसे हिन्दू भाई के लिए कलक की बात है।" महादजी ने वीरतापूवक परिस्थिति का सामना किया तथा पूर्वविधान के रूप मे बहुत-सी महिलाओ तथा असैनिको को सुरक्षा के लिए दूर भेज दिया। विजयसिह से उसको एक समाचार प्राप्त हुआ, जिसमे कहा गया था—"हम अपनी भूमि का बहुत दिनो से उपभोग कर रहे है। पहले मराठो ने हमारी रक्षा की है। जयपुर का प्रतापसिह निरा मूर्ख है, वह आपके क्रोध का पात्र नही है। उस पर आपको अवश्य दया करनी चाहिए,

आप उसके दोपो की ओर ध्यान न देकर उसकी रक्षा करे।" शिन्दे के कुछ निजी शुभचिन्तको ने उसे परामश दिया कि वह शीघ्रतापूवक जयपुर से किसी सुरक्षित स्थान को वापस चला जाये। परन्तु उसने यह परामश अस्वीकार कर दिया, क्योकि इस प्रकार उसकी शक्ति तथा गौरव का तुरन्त नाश हो जाना सम्भव था। प्रतापसिह ने शिन्दे की स्थिति की निबलता को ठीक-ठीक समझ लिया। वह जून मे वीरतापूवक अपनी राजधानी से बाहर आ गया, तथा उचित अवसर पाकर उसने सीधा आक्रमण कर दिया। उस समय शिन्दे के माग मे अनेक बाधाएँ उपस्थित थी— उसके पास सामग्री का अभाव था, उसके शिविर मे वस्तुओ के मूल्य बहुत बढे-चढे थे, बहुत दिनो से चलने वाला पक्षत्याग अधिक बढ गया था। जून के मध्य तक बुन्देलखण्ड से खाडेराव हरि तथा पटियाला से अम्बूजी इगले महादजी के पास पहुच गये। राजपूतो को दि बायने के नवीन पैदल सैनिको का बहुत भय था। दोनो दलो ने एक मास तक कोई लाभप्रद अवसर प्राप्त करने का प्रयत्न किया। अन्त मे २८ जुलाई को महादजी आगे बढा तथा तुगा के मैदान मे उसने भयानक युद्ध किया, परन्तु कोई निर्णायक परिणाम प्राप्त नही हुआ। यह स्थान लालसोट के उत्तर-पश्चिम मे लगभग १४ मील दूर है परन्तु इतिहास मे यह रण इसी नाम से विख्यात है।[८] हमदानी इस रण को पीछे से देख रहा था, वह एक गोला लगने से मर गया।

राजपूत गव करते है कि इस रण मे उनको विजय प्राप्त हुई, परन्तु वे महादजी की एक तोप पर भी अधिकार न कर सके और न उसकी सेना के एक भी व्यक्ति को बन्दी बन सके। उन्होने महादजी के पीछे लौटने मे विघ्न बाधा उपस्थित न की, यद्यपि उसने अकथनीय कष्टो के बीच पीछे लौटना आरम्भ किया था। वास्तव मे हमदानी की आकस्मिक मृत्यु पर राजपूत निश्चेष्ट हो गये थे। वही उनकी प्रेरक शक्ति था। जब महादजी वापस हो गया तो उन्होने इतनी सरलता से अपना पिड महादजी से छूट जाने के लिए ईश्वर को धन्यवाद दिया। महादजी जयपुर की सेना को भग करने निकला था। इस काय मे वह असफल रहा। यद्यपि उसने कुशलतापूवक लौटकर अपनी सेना की रक्षा कर ली, परन्तु इस रण को द्वितीय पानीपत कहने वाले उसके सरदारो ने जिस बात का अनुभव किया, उससे महादजी के रण चातुय की पराजय ही सिद्ध होती है। यदि केवल रण के वास्तविक

---

८ लालसोट जयपुर से ३० मील दक्षिण-पूव मे है।

परिणाम से निणय किया जाये, तो यह युद्ध अनिर्णायक रहा। महादजी ने नाना फडनिस को इस रण के सम्बन्ध मे निम्नलिखित विवरण भेजा

"जब हमदानी हमारा पक्ष त्यागकर राजपूतो से मिल गया तो उनकी सेना की सख्या लगभग ५० हजार हो गयी। उसके पास ६० तोपे थी। शनिवार २८ जुलाई को हमने आक्रमण किया। दोनो ओर से तोपो की मार हुई। रण के मध्य मे हमारे तोपखाने के एक गोले से हमदानी मर गया तथा उनका वाम पक्ष पूणत खदेड दिया गया। राजपूतो के पास तीन बडी तोपे थी, जिन्होने रानाखाँ को बहुत क्षति पहुँचायी, परन्तु वह अपने लगभग १०० सैनिको के हताहत होने पर भी स्थिर रहा। प्रभात के ६ बजे से सूर्यास्त के एक घण्टा बाद तक बिना रुके बराबर अग्नि वर्षा होती रही। राठौडो के २० उच्च अधिकारी तथा एक हजार सिपाही खेत रहे। इनके अतिरिक्त करीब २ हजार सिपाही घायल हो गये। हमारे घोडो तथा सैनिको को पीने के जल का कष्ट रहा, अन्यथा हम शत्रु को ऐसे पूण रूप से खदेड देने कि वे हमारे सामने फिर कभी आने का साहस नही करते। अगले दिन हमने उन पर पुन आक्रमण करने का यत्न किया, परन्तु वे खुले मदान मे नही आये ओर हमारी दृष्टि से छिपे रहे।"

यद्यपि इस प्रकार यह रण मराठो के लिए सफल सिद्ध हुआ, परन्तु भावी घटनाओ के कारण उनकी स्थिति अनिश्चित होने लगी। शत्रुओ ने विश्वासघातपूवक रानाखा तथा अन्य प्रमुख सरदारो सहित महादजी की हत्या करने की योजना बनायी। परन्तु यह प्रयत्न सफलतापूवक व्यथ कर दिया गया। इस रण मे दि बायने की पैदल सेना लगभग १३०० सैनिको से अधिक न थी और उनके पास केवल ४ या ५ हल्की तोपे थी। शिन्दे की शेप सेना मे पुराने ढग के सवार तथा भारी तोपे थी। दि बायने की सेना मे कोई भी पक्षत्यागी नही हुआ। परन्तु निराहार रहने तथा पिछला बकाया वेतन न मिलने के कारण शिन्दे के सवारो ने घृणापूवक उसको छोड दिया। वे शत्रु द्वारा दिये गये गुप्त प्रलोभनो के प्रभाव मे आ गये। अगले दिन (३० जुलाई) हिन्दुस्तानी सैनिको ने, जिनकी सख्या लगभग ८ हजार थी, 'बैठे रहो' हडताल आरम्भ कर दी। उन्होने अपना पिछला बाकी वेतन अविलम्ब चुकाने की माग की। महादजी ने उनको नौकरी से निकाल दिया और उनकी सेना भग कर दी। तब वे अपनी बन्दूको सहित चले गये और शत्रु के साथ हो गये। कुछ समय तक महादजी के सम्मुख यह सकटग्रस्त परिस्थिति रही। शत्रु द्वारा होने वाली किसी भी कुचेष्टा की आशका से रानाखाँ तथा उसके समस्त सरदार रात भर अपने

घोडो की पीठो पर जागते रहे। इस पक्षत्याग मे निम्सन्देह शत्रु का उत्साह बढ गया तथा १ अगस्त से ६ दिन तक महादजी को अपने ऊपर तात्कालिक आक्रमण तथा अपने सम्पूण विनाश का भय रहा। परन्तु अपनी आश्चयकारी अविचल बुद्धि तथा सहनशक्ति के द्वारा वह इस परिस्थिति से मुक्त हो गया और रानाखाँ के परामश से उसने सकुशल मछेरी लौटने का प्रबन्ध कर लिया। कुछ विरोधियो ने उसकी बारूद के एक ढेर मे आग लगादी। लालसोट से पीछे हटकर महादजी ने यथासम्भव सावधानी तथा पूर्वोपाय सहित डीग की ओर प्रयाण किया। परन्तु इसके पहले उसने अपने समस्त सामान तथा उस शिविर-सज्जा को, जिसे ले जाना सम्भव नही था, नष्ट कर दिया, जिससे कि वह शत्रु के हाथ न पड जाय। महिलाएँ तथा असैनिक कुशलतापूवक ग्वालियर पहुँचा दिये गये। दिल्ली मे भी उस समय इसी के समान कष्ट उपस्थित हो गया, परन्तु लाडोजी देशमुख तथा शाह निजामुद्दीन ने शीघ्र ही उसका दमन कर दिया। कुछ समय तक राजपूत गव करते रहे कि उन्होने अन्तिम रूप से शिन्दे को झुका दिया है, परन्तु जब वे उसका सकुशल प्रत्यागमन रोकने मे असफल रहे तो उनके दावे की निस्सारता स्पष्ट हो गयी।

लालसोट की विपत्ति से स्वभावत महादजी के समृद्ध जीवन मे विघ्न उपस्थित हो गया। उसने तथा सम्राट ने अब तक जिस शक्ति और गौरव का उपभोग किया था, वे कुछ समय के लिए समाप्त हो गये। परन्तु महादजी कभी हिम्मत नही हारा और न उसने अपने राजकीय भार को त्यागने के विषय मे स्वप्न मे भी सोचा। १७८८ तक लगभग एक वष यह शोचनीय दशा रही और इसका दिल्ली के राजवश पर बहुत प्रभाव पडा। महादजी के मित्र मछेरी के राव राजा ने अलवर मे उसे प्रसन्नतापूवक शरण दी तथा शिन्दे अगस्त से २ नवम्बर १७८७ तक तीन मास अपने शेष शिविर सहित यहा ठहरा रहा। इस बीच मे १६ सितम्बर को इस्माइल बेग ने आगरा नगर मराठो से छीन लिया, परन्तु उसके गढ पर अधिकार करने के प्रयास का लकबा दादा ने जोरदार प्रतिरोध किया। इसी प्रकार २७ अगस्त को जोधपुर के राजा ने अजमेर को महादजी के प्रतिनिधि से छीन लिया।

६ **महादजी द्वारा अपनी स्थिति मे सावधानीपूवक सुधार**—अपनी अद्भुत स्थिर बुद्धि तथा असाधारण क्षमता के कारण ही महादजी अन्त मे निर्णायक विजय प्राप्त करने मे सफल हो सका, जबकि कुछ समय तक ऐसा मालूम होता रहा कि उसका पराभव उसके लिए सवग्रासी असफलता तथा निराशामय विनाश सिद्ध होगा। मराठो के शत्रुओ ने यकायक समस्त दिशाओ

मे विद्रोह कर दिया । विशेषकर गुलाम कादिर ने मराठा दुर्गस्थ सेनाओ को दोआब से निकालकर उस समस्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया जो उनसे हाल मे छीन लिया गया था और वह महादजी के अधिकार को चुनौती देने के लिए सीधा दिल्ली आया । लाडोजी देशमुख तथा शाह निजामुद्दीन को अपनी स्थिति इतनी निर्बल मालूम हुई कि २४ अगस्त, १७८७ की रात्रि को उन दोनो ने अपने-अपने स्थान त्याग दिये और दिल्ली से भाग निकले । मार्ग मे उन्होने बहुत कष्ट उठाये और लुटेरो ने उन्हे लूट लिया । गुलाम कादिर असहाय सम्राट के सम्मुख उपस्थित हुआ तथा दण्ड देने की धमकी देकर उससे वे समस्त पद तथा शक्तिया ले ली जिन पर शिन्दे का अधिकार था (सितम्बर ५) । इस्माइल बेग तथा गुलाम कादिर ने परस्पर सहयोगपूर्वक दिल्ली तथा समीपवर्ती प्रदेश पर अपना शासन स्थापित कर लिया । सम्राट ने अत्यन्त व्याकुल होकर राजपूत राजाओ तथा अन्य सरदारो को सहायतार्थ प्रार्थनाएँ भेजी । इस प्रकार के परिणाम की पूर्व सम्भावना से महादजी ने अम्बूजी इगले को सम्राट से मिलकर उसको मराठा शिविर मे लाने के लिए भेजा । परन्तु गुलाम कादिर की धमकियो से वह इस प्रकार भयभीत हो गया था कि उसने महादजी के सहायतार्थ निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया और अम्बूजी १४ नवम्बर को दिल्ली से असफल लौटने पर विवश हो गया । इसके बाद स्वभावत महादजी सम्राट के कार्यो मे विरक्त हो गया तथा उसने अपना ध्यान मुख्य रूप से अपनी रक्षा की योजनाओ पर लगा दिया । ८ दिसम्बर को शाहजादा जवाँबख्त अपने पिता के आह्वान पर बनारस से दिल्ली आया । वहा पर वह ब्रिटिश वृत्ति से अपना निर्वाह कर रहा था । उसने अपने पिता का दमन करके राज्य पर अधिकार करने के लिए षड्यन्त्र अवश्य किया, पर वह परिस्थिति को सँभाल नही सका । सम्राट ने शहजादा को इस्माइल बेग से आगरा नगर छीनने का काम सौपकर दिल्ली से हटा दिया । शहजादे पर इस्माइल बेग और गुलाम कादिर मे से एक की भी कृपा नही रह सकी । वह लोगो की नितान्त घृणा के कारण ब्रिटिश सुरक्षा मे पुन वापस जाने को विवश हो गया (फरवरी, १७८८) ।

इस राजनीतिक सकट वेला मे अग्रेजो का क्या अभिनय रहा ? इसका स्पष्टीकरण एक मराठा विवरण मे इस प्रकार है—"लालसोट मे महादजी के पराभव के समाचार से कार्नवालिस इतना घबडा गया कि वह तुरन्त कलकत्ते से चल दिया । उसने बनारस मे जवाँबख्त से वार्तालाप किया तथा उसको अपने साथ लेकर लखनऊ गया । यहाँ पर जयपुर के राजा तथा महादजी दोनो

के दूत उससे मिले तथा उन्होने ब्रिटिश सैनिक सहायता की प्राथना की। कानवालिस का यह निश्चय अत्यन्त उचित ही था कि ब्रिटिश हितो की सिद्धि के लिए उसकी तटस्थता ही सर्वोत्तम माग हे। उसने समस्त भारतीय शक्तियो के प्रति स्पष्ट घोषणा की कि उसको इगलैण्ड स्थित उच्चतर अधिकारियो से कठोर आज्ञा प्राप्त हुई है कि वह भारतीय सरदारो के आन्तरिक कलहो मे किसी भी कारण हस्तक्षेप न करे। अत वह किसी पक्ष का भी साथ नही देगा, परन्तु सबका मित्र होकर रहेगा। इसके पश्चात कानवालिस अपने साथ तीन दल लेकर वजीर आसफउद्दोला और जवाबख्त के साथ फरुखाबाद गया। यहा से गवनर जनरल कानपुर वापस हो गया। उसके पहले उसने जवाबख्त को दिल्ली भेज दिया था। मेजर पामर शहजादा के परामशदाता के रूप मे साथ था।" अन्त मे उचित समय पर कानवालिस बनारस होता हुआ कलकत्ते को चला गया।

महादजी अपनी योजनाओ के लिए कभी ब्रिटिश सहायता पर निभर नही रहा। २७ मई, १७८७ को हमदानी द्वारा पक्षत्याग से उसका कष्ट आरम्भ हुआ तथा इसका अन्त १७ जून, १७८८ को उसने इस्माइल बेग से आगरा छीनकर किया। इसके परिणामस्वरूप सबको मालूम हो गया कि शिन्दे यथा-पूव सशक्त हे। यह १३ मास का ग्रहण उसके लिए कटु अनुभव का काल था। १७ अगस्त, १७८७ को उसने नाना फडनिस को पत्र लिखकर अपनी परिस्थिति का विवरण भेजा तथा उससे सहायता की करुण प्राथना की। "मै जयपुर से पीछे हट आया हूँ। मैने भारी सामान तथा असैनिक व्यक्तियो को ग्वालियर भेज दिया है। इस समय शत्रु को तग करने मे मै हल्के सवारो का उपयोग कर रहा हूँ। मेरी घोर आवश्यकता है—धन। इस समय ६ मास से सम्राट का भत्ता शेष है। उसको मेरा साथ देने की चिन्ता नही है तथा अपने शिविर मे उसकी उपस्थिति के बिना मेरे पास न कोई शक्ति है और न गौरव। यदि आप कुछ निपुण सैनिक तथा कुछ धन भेजने का प्रबन्ध कर सके तो मै शीघ्र ही खोयी हुई स्थिति को पुन प्राप्त करने मे समथ हो जाऊगा। विशेषकर पूना से इस प्रकार की सहायता मिलने के कारण यहा समस्त शत्रुओ की आखे खुल जायेगी। इस समय सारा वातावरण मराठा विरोधी हो उठा है। राजपूत ही नही, अपितु रुहेले, नवाब वजीर तथा अग्रेज भी हमारे विरुद्ध अपना-अपना प्रयत्न कर रहे हे। लगभग पानीपत के दिनो की आवृत्ति हो रही है। हम लोगो द्वारा आज भी मराठा स्थिति के दृढ तथा ठोस होने की छाप सब पर लगाना आवश्यक है।"

महादजी की ये प्राथनाएँ पूना मे अगस्त, १७८७ के अन्त मे प्राप्त हुई। उससे कुछ ही दिन पहले मराठा सेनाएँ टीपू सुल्तान के विरुद्ध सफल अभियान से वापस लोटी थी। नाना ने सहायता का प्रब-ध करने मे तथा महादजी के कष्ट को दूर करने मे एक क्षण का भी विलम्ब नही किया। उसने ५ लाख रुपये भेजे और एक विशाल सेना को तुरन्त उत्तर की ओर प्रयाण करने की आज्ञा दी। इसके नेता तुकोजी होलकर, अली बहादुर, मानाजी गायकवाड, शाहजी भोसले (अकलकोट का) तथा ओढेकर थे। ये लोग ८ सितम्बर को पूना से चले, परन्तु अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने मे इन्हे एक वप से अविक लग गया। अली बहादुर मथुरा मे ६ नवम्बर, १७८८ को महादजी से मिला ओर तुकोजी ६ मास बाद (अप्रल, १७८९ मे)। नाना फडनिस ने यह नही समझा था कि तुकोजी जो सदा महादजी का विराव करता रहा था, उसके लिए नवीन कष्ट उत्पन्न कर देगा। परन्तु दक्षिण मे कोई अ-य सरदार नही था जो उत्तर के कार्यो से सुपरिचित हो और इन दोनो सरदारो के सयुक्त उत्तरदायित्व मे रहा हो। पूना के मन्त्रियो को यह पक्का विश्वास था कि शिन्दे को दिल्ली मे अपने अविकार के कारण असीम धन प्राप्त हो गया है। उनको इसमे से कुछ भाग प्राप्त होने की आशा थी। परन्तु जब महादजी ने पूना से आर्थिक सहायता मागी तो उनके लाभ के स्वप्नो पर घातक प्रहार हुआ। महादजी की साग्रह तथा सकरुण प्राथनाओ की ओर ध्यान देने से नाना फडनिस इनकार नही कर सकता था, परन्तु उमने रणक्षेत्र के लिए सवथा अयोग्य व्यक्ति तुकोजी होलकर को भेजकर भूल की। उसे अपने काय के प्रति कोई उत्साह नही था ओर उसे महादजी से जन्मजात घृणा थी। कुछ मित्रो ने नाना से आग्रह किया कि वह तुकोजी के स्थान पर उत्तर मे हरिपन्त फडके को भेजे। परन्तु हरिपन्त ने महादजी के अवीन काम करने से इनकार कर दिया। परिणाम यह हुआ कि तुकोजी मगाठा हितो के लिए विशेप रूप से बाधक सिद्ध हुआ। इसके बाद उसने महादजी के विरुद्ध पड्यन्त्र किया। वह उत्तर की ओर अपने माग ही मे नही, अपितु उस क्षेत्र मे आगामी ७ वर्षो तक अपने पूरे निवास काल मे बराबर षड्यन्त्र करता ही रहा।

दूसरी ओर महादजी की सहायताथ अली बहादुर का निर्वाचन उस समय सर्वथा उपयुक्त था। स्वय महादजी शिन्दे ने इसका भारी स्वागत किया। अली बहादुर नवयुवक तथा उत्साही मुसलमान था। अत मुगल दरबार मे उसके कृपापात्र हो जाने की आशा थी। विश्वासघाती अनूपगिरि गोसाईं को शरण देने के कारण दुर्भाग्यवश उससे भी शीघ्र ही महादजी का झगडा हो

गया । उत्तर की ओर आते समय माग मे ही तुकोजी होलकर ने महादजी के साथ परामश के बिना राजपूत-मराठा कलह का निपटारा करने के लिए शाति प्रस्ताव प्रारम्भ कर दिये । उसमे शिन्दे के प्रति एक प्रकार का रोष था, क्योकि उसने उत्तर भारत मे इस समय प्रथम स्थान प्राप्त कर लिया था । शिन्दे के अत्याचार के विषय मे जो शिकायते राजपूतो ने की, तुकोजी ने उनको सरलता से स्वीकार कर लिया और उसके प्रबन्ध को उलटने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया । इस पर शिन्दे को बहुत रोष हुआ । नाना ने तत्काल उत्तर दिया था कि वह शिन्दे को सैनिक सहायता भेजेगा। इससे अपनी अत्यन्त निराश अवस्था मे महादजी का साहस बढ गया था । परतु होलकर के हानिकारक कार्यो के कारण नाना का यह उत्तर केवर निस्सार शब्द सिद्ध हुए । महादजी ने प्रेमभरे शब्दो मे उत्तर देते हुए नाना को धन्यवाद दिया था कि उसने डूबते हुए व्यक्ति की रक्षा कर ली है। राजपूत सरदारो ने अपने दूत पूना भेजे तथा हस्तक्षेप द्वारा अपने दु ख दूर करने के लिए पेशवा से प्राथना की । इसके उत्तर मे नाना ने अपने दूत लक्ष्मण सम्भाजी को सीधे जयपुर के प्रतापसिह से शान्ति वार्तालाप करने की आज्ञा दी । स्पष्ट है कि यह कदम गलत था । इसके कारण महादजी और अधिक रुष्ट हो गया तथा उसकी स्थिति निबल हो गयी । सुव्यवस्थित सरकारे प्राय घटना-स्थल पर उपस्थित व्यक्ति का समथन करती है । यदि नाना अल्पवयस्क पेशवा को अपने साथ लेकर स्वय उत्तर की ओर जाता तथा इस प्रदेश मे आन्दोलन उपस्थित करने वाली कुछ समस्याओ को हल कर देता तो वास्तव मे इस अवसर पर मराठा राज्य के हितो की रक्षा हो सकती थी ।

इस समय पठानो ने गुलाम कादिर के नेतृत्व मे राजपूतो के सहयोग से पानीपत से पहले का अपना पुराना खेल पुन आरम्भ कर दिया । उन्होने उत्तर भारत से मराठो को खदेडने के लिए काबुल के शाह को निमन्त्रित किया । इस प्रयास मे वृद्धा मलिका जमानी भी उनके साथ थी । अहमदशाह का पुत्र तैमूरशाह इस समय अफगानो का शासक था । वह १७८७ की ग्रीष्म ऋतु मे पेशावर मे ठहरा हुआ था । वह अटक पर सिन्धु को पार करके पजाब मे प्रवेश करने के लिए तैयार था । मारवाड के विजयसिह ने उसको मराठो से युद्ध के लिए तैयार करके अफगान के शाह के पास अपना दूत भेजा । तैमूरशाह ने उत्तर दिया कि उसके अपने ही अनेक कष्ट है, भारतीय अभियान को स्वीकार करके वह अपने कष्टो की वृद्धि नही करना चाहेगा । महादजी ने इसका उपाय पहले ही कर लिया था । उसने पजाब के सिक्खो की मैत्री प्राप्त कर ली । ये सिक्ख अफगान के शाह के विख्यात शत्रु थे और उसे सिन्धु पार

उतरने से रोके हुए थे। महादजी को अपने पानीपत के पुराने अनुभव से इस समय बहुत लाभ हुआ। उसने सम्राट की रक्षा का अपना कतव्य एक क्षण के लिए भी कभी नही छोडा। उसने सम्राट को रेवाडी मे अपने शिविर पर ले जाने के लिए अम्बूजी इगले को विशेष रूप से भेजा। अक्तूबर, १७८७ के अन्त मे वह स्वय अलवर से इस स्थान पर पहुँच गया। यदि शाहआलम ने हृदय से अपने को महादजी की रक्षा मे रखने की समझदारी दिखायी होती तो वह उन अपमानो स बच जाता जो उसको आगामी वप भोगने पडे। परन्तु जब उसको महादजी की शक्ति भग होने का विश्वास हो गया था, अत गुलाम कादिर द्वारा त्रासग्रस्त होकर उसने दिल्ली छोडने स इनकार कर दिया। अपनी स्थिति दृढ करने के लिए अभागे सम्राट को अपन साथ रहने के लिए राजी करने के प्रयत्न मे असफल होकर महादजी सम्राट का अपने भाग्याधीन छोड कर दिल्ली के समस्त प्रदेश का त्याग करने के लिए विवश हो गया। दिसम्बर, १७८७ के लगभग वह स्वय चम्बल के दक्षिण मे वापस चला गया, जिससे अपने को सुरक्षित कर सके। इस समय इस नदी के उत्तर मे आधार केवल आगरा तथा अलीगढ की रक्षा करने वाली दुगस्थ मराठा सेनाएँ रह गयी थी।

१७८८ के प्रथम तीन मासो मे शिन्दे का एक क्षण का भी विश्राम प्राप्त नही हुआ। अपनी सेनाओ को चम्बल तक वापस हटाकर उसने नवीन आक्रमण के लिए धुआधार तैयारियाँ आरम्भ कर दी जिससे कि वह अपनी खोई हुई स्थिति पुन प्राप्त कर ले। नाना फडनिस द्वारा भेजी गयी सेनाओ के अतिरिक्त उसन अपनी जन्मभूमि जामगाव से एक नवीन सेना पहुँचान की पहले ही आज्ञा दे दी थी। नाना की सेनाएँ करीब १६ माच, १७८८ को पहुँच गयी तथा अप्रैल के आरम्भ मे उसन तुरत अपना आक्रमण आरम्भ कर दिया। रानाखा न चम्बल को पार किया तथा रणजीतसिह जाट और मछेरी के राव राजा के सहयोग से खोयी हुई स्थिति को पुन प्राप्त करने के लिए प्रयत्न आरम्भ कर दिया। रानाखा ने भरतपुर के समीप इस्माइल बेग पर सहसा धावा किया। उसने यह प्रबन्ध भी किया कि किले मे घिरी हुई सेना को सामग्री भेज दे, जिसके द्वारा लकबा दादा आगरा के गढ की रक्षा कर रहा था। स्वय महादजी चम्बल पर ठहरा रहा। वह मोर्चे पर होने वाली गतिविधियो को सहायता भेजता और पीछे से सावधानी से रण प्रवृत्ति का निर्देश देता रहा। देवजी गउली, दि बायने तथा रायजी पाटिल एक-दूसरे के बाद आगे बढे। उन्होने मथुरा जिले पर पुन अधिकार कर लिया और यमुना को पार कर गुलाम कादिर का पीछा करते हुए दोआब मे प्रवेश किया। उन्होने उमराव

गिरि गोसाई को पकडकर बन्दी बना लिया और महादजी के पास भेज दिया। पठानो ने आगरा के समीप डटकर सामना किया, परन्तु जीवबा बख्शी और खाडेराव हरि ने अपनी सेनाओ को सयुक्त करके सफलतापूवक उनका दमन कर दिया ।

२२ अप्रैल को चकसन के समीप भयानक परन्तु अनिर्णायक युद्ध हुआ। गुलाम कादिर भाग गया, जिससे वह मराठो द्वारा भयभीत की जा रही अपनी रियासत की रक्षा कर सके। इस्माइल बेग अब अकेला रह गया और आगरा के उपनगर बाग देहरा मे यमुना के तट पर १८ जून को बुरी तरह हार गया। इस रण मे महादजी की ६ सेनाएँ जो उसका पक्ष त्यागकर शत्रु से मिल गयी थी, काट डाली गयी। उनके साथ इस्माइल बेग के लगभग २ हजार सैनिक भी नदी मे डूबकर मर गये। वे चढी हुई नदी तैरकर पार करने का प्रयास कर रहे थे। यह विजय दि बायने के रणचातुय से प्राप्त हुई थी। शिन्दे ने इसको पर्याप्त मान्यता दी। इस अदभुत सफलता का महादजी के भाग्य पर जादू जैसा प्रभाव पडा। सिक्ख लोग, जिनके अधिकार मे दिल्ली के उत्तर का प्रदेश था, पहले से ही महादजी के समथक थे। अब वह सतलज तथा चम्बल के बीच के प्रदेश का एकमात्र अधिकारी हो गया। गोसाइ बन्धु फिर से शिन्दे के साथ हो गये। यह आश्चय की बात थी कि महादजी ने अपनी खोयी हुई स्थिति पुन प्राप्त कर ली। इतनी शीघ्रता से लाभ होने का कारण उसके नवीन सैनिको की वीरता थी, जिन्हे उसने अपनी जन्मभूमि जामगॉव से विशेष रूप से बुलाया था। वे दक्षिणी टटटुओ पर सवार थे, और उनका नेता देवजी गउली था।

जून, १७८८ के अन्त तक महादजी पुन सशक्त हो गया। अब वह सरलता से सम्राट की रक्षा के लिए पहुँच सकता था। परन्तु शिन्दे को सम्राट के विश्वासघात तथा अनिश्चितता पर भारी क्रोध था। जब तक उसे दिल्ली आने और अपने पूव प्रबन्ध को स्वीकार करने का निमन्त्रण नही मिला, तब तक उसने अपनी ओर से कोई प्रयत्न नही किया। जुलाई से सितम्बर १७८८ तक तीन मास के समय मे सम्राट का कष्ट चरम सीमा पर पहुँच गया था, क्योकि वह अपने ही राजभवन मे कठोर कारागार मे था। इसका कारण समझने के लिए हमको वापस होना पडेगा तथा १७८७ मे सम्राट और उसके दरबार की प्रगतियो का पुनरावलोकन करना होगा जबकि लालसोट के अभि-यान की असफलता से शिन्दे सवथा बलहीन हो गया था। सम्राट के पास कोई स्थिर योजना नही थी। वह दृढसकल्प न होने के कारण अपने परम शत्रुओ के परामश पर प्रत्येक क्षणिक परिवतन स्वीकार कर लेता था। उत्साही

बेगम समरू ने अपनी अल्प परन्तु सुसचालित सेना तथा ८५ तोपो वाले निपुण तोपखाने सहित शिन्दे का साथ देने तथा उसके शत्रओ का वीरतापूवक विरोध करने का वचन दिया। किन्तु सम्राट ने उसकी योजना का अनुसरण नही किया। शाह निजामुद्दीन तथा लाडोजी देशमुख उसकी रक्षा के लिए अत्यन्त निबल थे। अन्त पुर का सवशक्तिशाली अध्यक्ष मसूर अलीखा नाजिर वास्तव मे विश्वासघातक था। उसने गुप्त रूप से मराठा सत्ता का अन्त करने के लिए गुलाम कादिर तथा अन्य व्यक्तियो का उपयोग किया।

७ **गुलाम कादिर मुगल प्रासाद मे**—१८ जून को बाग देहरा मे अपनी निर्णायक विजय के बाद महादजी तुरन्त मथुरा गया तथा ४ जुलाई को अपने पुराने शिविर पर अधिकार कर लिया। यहा पर रणजीतसिह जाट उससे आकर मिला। उसने अपनी पूव मैत्री को पुन पुष्ट किया तथा उसकी भावी योजनाओ को कार्यान्वित करने मे अपना सहयोग प्रस्तुत किया। मथुरा निवास के अपने प्रथम दो मासो मे महादजी सेना की मागो को सन्तुष्ट करने मे व्यस्त रहा। सेना के एक भाग न अपने शेष वेतन के तुरन्त भुगतान की माँग पर विद्रोह कर दिया था। अत वह सम्राट के कार्यो की ओर ध्यान देने के लिए स्वतन्त्र नही था।

जुलाई, १७८७ मे लालसोट के स्थान पर महादजी की पराजय के बाद से गुलाम कादिर मराठो के विनाश को पूण बनाने मे व्यस्त था। वह पहले अपने पूवजो के देश दोआब मे और उसके बाद दिल्ली के क्षेत्र मे अपनी स्थिति सशक्त बनाने मे जुट गया २१ अगस्त, १७८७ को गुलाम कादिर ससैन्य बागपत पहुँच गया तथा सम्राट से मिलने की सूचना भिजवा दी। २३ अगस्त को शाहदरा के स्थान पर शाह निजामुद्दीन ने गुलाम कादिर की सेना पर अकौशलपूण आक्रमण किया और पूणत परास्त हो गया। पराजय के पश्चात भयभीत सम्राट ने विद्रोही से मैत्री की बातचीत आरम्भ कर दी। २६ को वह महल मे आया और नाजिर ने उसको सम्राट से मिलाया। उसने सम्राट से मीर बख्शी का पद मागा तथा मराठो को दिल्ली से भगा देने की प्रतिज्ञा करके नदी के दूसरी पार अपने शिविर मे चला गया। ५ सितम्बर को दो हजार सैनिको को लेकर वह पुन उपस्थित हुआ और सम्राट को मीर बख्शी के पद के अतिरिक्त प्रथानुसार वस्त्र सहित अमीरुलउमरा तथा रुक्नुद्दौला बहादुर की उपाधिया भी देने पर विवश कर दिया। १७ फरवरी, १७८८ को उसने अलीगढ पर अधिकार कर लिया। इसके बाद वह मराठो द्वारा अधिकृत स्थानो को अधीन करने मे व्यस्त हो गया।

शिन्दे की १८ जून की विजय पर गुलाम कादिर अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। इस समय इस्माइल बेग उसके पास पहुच गया था जो उस समय सवथा दुखित तथा दुरवस्थाग्रस्त था। केवल पारस्परिक मैत्री और सहयोग से ही उनकी रक्षा हो सकती थी। वैसे उनके व्यक्तिगत उद्देश्य सवथा भिन्न थे। इस्माइल बग सम्राट के विरुद्ध गुलाम कादिर के कठोर कार्यो तथा विवश सम्राट और उसके परिवार के घोर अपमान का हृदय से समथन नही करता था। इस तथ्य को अस्वीकृत नही किया जा सकता कि यदि इस्माइल बेग गुलाम कादिर का साथ न देता तो उसे पठानो के नाम पर सदा सवदा के लिए कलक का टीका लगाने वाले अमानुषी अत्याचार करने का साहस नही हो सकता था। रुहेलो की काय-योजना का मुख्य समथक सम्राट का समीपवर्ती तथा विश्वस्त सेवक अन्त पुर का अध्यक्ष तथा शिन्दे का घोर शत्रु मसूर अली था। गुलाम कादिर द्वारा किये हुए अत्याचारो का समय २९ जुलाई से किले के बारूदखाने मे आग लगने वाले दिन अर्थात् १० अक्टूबर, १७८८ तक है। इसे अशुभ लक्षण समझ-कर रुहेला चिल्ला उठा—"अब स्वय गढ मुझको शरण नही देना चाहता।" उसने लाल किले को छोड दिया। तुरन्त उसका पीछा किया गया और वह १९ दिसम्बर को पकड लिया गया। अपराधियो का विचार हुआ और ४ माच, १७८९ को उन्हे प्राणदण्ड दे दिया गया। उसने अत्याचार किये, उसका पीछा किया गया तथा उसके अपराधो पर विचार हुआ—इन तीन मुख्य विभागो मे अब उसके समस्त कार्यो का विस्तृत अध्ययन किया जा सकता है।

गुलाम कादिर पठान वश का था तथा उसमे एक पठान के स्वाभाविक गुण थे। दया, लज्जा या सत्यप्रियता के गुणो का उसमे सवथा अभाव था। अपने पितामह की षड्यन्त्रकारिणी प्रतिभा तो उसे उत्तराधिकार मे मिली थी, परन्तु उसकी बुद्धि या पूवदृष्टि नही मिली थी। अपने पिता की रियासत पर अधिकार प्राप्त करते ही उसने अपने बडे परिवार के अनेक व्यक्तियो को प्राणदण्ड दे दिया। मदिरा का अभ्यासी होने के कारण वह अपने कार्यो मे असावधान हो गया। उसकी महत्त्वाकाक्षा राज-प्रतिनिधि होकर अपने पितामह का अनुकरण करने की थी। "उसको विश्वास था कि ईश्वर ने उसको अपने वीर अफगान-जाति भाइयो की सहायता द्वारा मुगल राजवश से समस्त हिन्दू प्रभाव निकालकर उसको शुद्ध करने के लिए ही उत्पन्न किया है। जब तक वह साम्राज्यवादियो द्वारा अपने घर तथा राजधानी से अपहृत प्रत्येक वस्तु बल-पूवक प्राप्त न कर ले, उसकी अफगानी प्रतिशोध भावना शान्त होने वाली नही थी। यही कारण है कि उसके द्वारा राजमहिलाओ के साथ की गयी बबरताओ,

अकथनीय यातनाओ ओर अपमानो की समता करने वाली घटना इस्लाम के रक्तरजित इतिहास मे भी नही हे।"

१ जुलाई, १७८८ को इस्माइल बेग अपनी समस्त मुगलिया सेना सहित दिल्ली के सम्मुख यमुना के दूसरे तट पर स्थित शाहदरा मे गुलाम कादिर के साथ हो गया। वहा राजकोष तथा सम्राट की भूमियो पर अधिकार करने ओर गुलाम कादिर के लिए दो भाग तथा इस्माइल बेग के लिए एक भाग के अनुपात से परस्पर विभाजन करने का निश्चय किया गया। तब वे अपना उद्देश्य सिद्ध करने के लिए उपाय सोचने लगे। यह जानकर कि कुछ दुष्टता होने को है, महादजी ने रावलोजी पाटिल तथा भगीरथराव शिन्दे को दो हजार सेना सहित सुव्यवस्था बनाने रखने के लिए भेजा। ८ जुलाई को उ होने सम्राट से सम्पक स्थापित किया, परन्तु अफगान सैनिको का सामना करने मे असमथ हाने तथा सम्राट का समथन प्राप्त करने मे असफल होने के कारण वे शीघ्रतापूर्वक दिल्ली से हटकर हिम्मत बहादुर के साथ फरीदाबाद चले गये और समस्त क्षेत्र धर्मान्ध रुहेलो के लिए स्वतन्त्र छोड दिया। गुलाम कादिर ने अपनी सेना सहित १४ जुलाइ को नदी पार करके १८ जुलाई को नगर पर अधिकार कर लिया। मुहम्मदशाह की दो वृद्धा बेगमो—मलिका जमानी तथा साहिबा महल—ने पठान को उसके दुष्ट कृत्यो मे सहायता दी। उनके महल गढ के बाहर थे। उन्हाने शाहआलम को राजच्युत करने ओर अपने पौत्र बेदार-बख्त को गद्दी पर बैठाने के लिए गुलाम कादिर को १२ लाख नकद रुपये दिये। इस प्रकार धन प्राप्त करके गुलाम कादिर ने अपनी सभी प्रकार की अनुचित मागे सामने रखते हुए सम्राट पर दबाव डालना आरम्भ कर दिया।

२४ जुलाई को शाहआलम रुहेले की समस्त मागो को स्वीकार करने के लिए विवश किया गया। सम्राट ने वचन का पालन करने के लिए अपने पुत्र सुलेमान शिकोह को शरीर-बन्धक रूप मे रख दिया। ३० जुलाई को गुलाम कादिर और इस्माइल बेग ने गढ तथा राजभवन पर अधिकार करके शाहआलम को एक छोटी-सी मसजिद मे बन्द कर दिया तथा राजकोष एव हाथ पडने वाली मूल्यवान वस्तुओ को लूटना आरम्भ कर दिया। उसके बाद ६८ दिन तक यह काण्ड होता रहा, जब तक कि उन्हे राजभवन से निकाल नही दिया गया। ३१ जुलाई को गुलाम कादिर ने शाहआलम को राजच्युत करके बेदारबख्त को गद्दी पर बैठा दिया। इस प्रकार उसने मलिका जमानी से की गयी प्रतिज्ञा का पालन कर दिया। इसके बाद गुलाम कादिर ने राजवश का सब प्रकार से अपमान किया तथा क्लेश दिया। अन्त मे १० अगस्त को उसने

शाहआलम की आखे फोड दी । नन्हे-नन्हे बच्चो तथा असहाय स्त्रियो को कई-कई दिनो तक अन्न जल तक नही दिया गया और इस प्रकार उनको भूखा मार दिया गया । राजकुमारो को बेत लगाये गये, राजकुमारियो के साथ बलात्कार किया गया और नौकरो को तब तक पीटा गया जब तक कि वे मर न गये । गुप्त धन का पता लगाने के लिए राजभवन का सारा क्षेत्र तथा नगर मे धनिको के सब भवन खोद डाले गये । ९ सप्ताह तक सुन्दर राजधानी मे नरक का दृश्य रहा । रुहेलो की कामपिपासा को तृप्त करने के लिए अल्पवयस्क सुदरियो का बलिदान कर दिया गया । दासियो को यातनाएँ दी गयी और हिजडो को मार डाला गया क्योकि उन्होने गुप्त धन नही बताया था । जो मर गये, उनको गाडा तक नही गया । इस प्रकार २१ व्यक्तियो की मृत्यु हुई बतायी जाती है । मलिका जमानी तथा साहिबा महल के भवन भी खोद डाले गये तथा सवसाधारण के समक्ष उनका नग्न प्रदशन किया गया ।

गुलाम कादिर का दुष्ट सलाहकार मसूर अली नाजिर भी उस दुगति से न बच सका । गुलाम कादिर ने उसको फटकार लगायी और उस पर ७ लाख रुपये का जुर्माना कर दिया । उसने देने से इनकार कर दिया तो २३ सितम्बर को उसकी तगडी पिटाई हुई । इस प्रकार रुहेलो ने लूट का बहुत-सा माल प्राप्त किया, जिसके मूल्य का विशेष अनुमान नही किया जा सका है । गुलाम कादिर के भारी दबाव पर समस्त गुप्त कोषागार खोल दिये गये, जिनमे सिक्के, जवाहरात, सोना, चाँदी, बहुमूल्य वस्त्र तथा अन्य मूल्यवान वस्तुएँ भरी थी । लूट के माल के विभाजन के पूव से ही इस्माइल तथा रुहेलो के बीच कटुता फैली हुई थी । इस्माइल ने सम्राट के साथ दुव्यवहार का तीव्र विरोध किया तथा इसी कारण अपने सहकारी गुलाम कादिर से अलग हो गया । उसने नगर के एक दूरस्थ भाग मे अपना शिविर लगाया, जहा उन दोनो मे स्पष्ट सघप हो गया । इस अवसर पर गुलाम कादिर ने एकत्र किया हुआ समस्त धन अकेले ही हथिया लिया । इस्माइल की जानकारी एव सहयोग के बिना उसने किले के अन्दर और भी बीभत्स काय किये । सितम्बर के अन्त के समीप जब महादजी अपनी सत्ता पुन प्राप्त करने लगा तो इस्माइल बेग परिस्थितिवश महादजी के साथ हो गया और दिल्ली से गुलाम कादिर के निकालने मे उसने जी-तोड प्रयत्न किया ।

लाल किले के अन्दर राजमहल मे जो बीभत्स दृश्य उपस्थित किये जा रहे थे, उनकी कुछ समय तक कोई सूचना बाहर के लोगो को नही मिली । सितम्बर मे महादजी को कुछ अस्पष्ट समाचार प्राप्त हुए । उसने सहायताथ तुरन्त एक

अभियान सगठित किया। उसने पूरी शक्ति से रानाखा को भेज दिया। शीघ्र ही जीवबा दादा ने उसका अनुसरण किया। मराठो ने २८ सितम्बर को पुरानी दिल्ली तथा २ अक्तूबर को मुख्य नगर पर अधिकार कर लिया। इस्माइल बेग तथा बेगम समरू ने रानाखा का साथ दिया और किले पर अग्निवर्षा आरम्भ कर दी। अपनी पराजय के भय से गुलाम कादिर लूट का माल नदी पार भेजने लगा, जिससे वह उसके गोसगढ स्थित घर मे सुरक्षित रख दिया जाये। १० अक्तूबर को रुहेले सिपाहियो की लापरवाही से किले के बारूद-खाने मे विस्फोट हो गया। इसके बाद अपने शेष सिपाहियो तथा लूट के माल को लेकर गुलाम कादिर ने गढ को खाली कर दिया। अगले दिन ११ अक्तूबर को रानाखा, हिम्मत बहादुर गोसाई तथा रानाजी शि दे ने गढ मे प्रवेश किया। उ होने भूखे निवासियो को भोजन दिया तथा महल मे रहने वालो के लिए यथाशक्ति शान्ति तथा सुविधा पहुँचाने का प्रबन्ध किया। १६ अक्तूबर को रानाखा अन्धे सम्राट के सम्मुख उपस्थित हुआ, उसको राजगद्दी पर बिठा दिया और उसके नाम से पुन खुतबा पढवाया।

उन दुष्टो को पकडने को तथा उस माल को छीनने के लिए जिसको लेकर वे भाग रहे थे, तुरन्त पीछा किया गया। ११ अक्तूबर को रायजी पाटिल तथा देवजी गउली ने दोआब मे प्रवेश किया। उनके पीछे १२ अक्तूबर को जीवबा दादा भी वहाँ पहुँचा। मराठो ने २० अक्तूबर को दुर्गस्थ सेना से छीनकर अलीगढ दुग पर अधिकार कर लिया। रानाखा पुन प्रथम व्यवस्था स्थापित करने तथा राजधानी के पीडित व्यक्तियो को सहायता पहुँचाने मे व्यस्त हो गया। इस काय मे उसको दो सप्ताह से अधिक लग गये। वह भगोडे रुहेलो का सफलतापूवक पीछा करने के लिए ३ नवम्बर को दिल्ली से चल दिया। इसी बीच मे अली बहादुर, जो पूना से महादजी के शिविर मे पहुँच गया था, १७ नवम्बर को रानाखा के साथ हो गया। वह महादजी से अपने साथ विशेष निर्देश लाया था कि दिल्ली के लुटेरे को पकडने का श्रेय यथा-सम्भव अली बहादुर को दिया जाये।[९]

दोआब से भागता हुआ गुलाम कादिर ४ नवम्बर को मेरठ पहुँचा तथा वहाँ के गढ मे शरण लेकर अत्यन्त साहस से अपनी रक्षा करने लगा। मेरठ

---

९ गुलाम कादिर के अत्याचारो के सम्पूण विस्तार हिगने के दिल्ली के पत्रो मे प्राप्य है। पारसनिस ने इतिहास सग्रह, जीवबा बख्शी की जीवनी आदि मे इनको प्रकाशित कर दिया है।

के समस्त मार्ग रोक दिये गये और लगभग ६ सप्ताह तक उसने मराठा आक्रमणो का प्रतिरोध किया । अन्त मे अपनी रक्षा करने मे असमथ होकर गुलाम कादिर १७ दिसम्बर को चुपचाप गढ से भाग निकला तथा शामली के तीन मील दक्षिण-पश्चिम बमनौली मे एक ब्राह्मण के घर अपने कुछ अनुचरो सहित छिप गया । गुलाम कादिर के दो साथी—मसूर अलीखॉ नाजिर तथा उसकी अगरक्षक सेना का कमाण्डर मनियारसिह—मेरठ मे पकड लिये गये । ब्राह्मण ने गुलाम कादिर के गुप्त निवास का समाचार अली बहादुर को पहुँचा दिया । उसने गुलाम कादिर को १९ दिसम्बर को पकड लिया और अन्य बन्दियो के साथ ३१ दिसम्बर को मथुरा स्थित महादजी के शिविर मे पहुँचा दिया । दो महीने तक महादजी ने प्रयत्न किया कि वह बन्दियो से बलपूवक यथासम्भव धन तथा जानकारी प्राप्त कर ले । वह इस पूरे समय मे उनके दण्ड के प्रश्न पर विचार करता रहा । महादजी की दयापूण इच्छाओ के विरुद्ध, सम्राट की आज्ञा से उनकी आखे निकाल ली गयी । ४ माच, १७८९ को उन्हे प्राणदण्ड दे दिया गया और उनके शव जनसाधारण के समक्ष प्रदर्शित किये गये । सम्राट ने बेदारबख्त का वध कर दिया, जिसको गुलाम कादिर ने गद्दी पर बिठा दिया था । शाहआलम ने महादजी को हार्दिक धन्यवाद दिये, समस्त तैमूरी साम्राज्य मे गोवध निषेध का फरमान निकालकर और मथुरा तथा वृन्दा-वन के दोनो तीथस्थानो का शासन देकर महादजी को पुरस्कृत किया । सम्राट को अपनी इस असमथता पर खेद रहा कि वह अपने नियन्त्रण मे न हो सकने के कारण इसी प्रकार प्रयाग, बनारस तथा गया के तीन अन्य स्थानो का अधिकार महादजी को न दे सका ।

उत्तर मे स्थित मराठा दूतो तथा विशेषकर स्थायी ब्रिटिश राजदूत हिगने और स्वय महादजी शिन्दे ने इन घटनाओ के पूण विवरण पूना को भेज दिये । इन घटनाओ को रोक न सकने पर उन्होने बहुत खेद प्रकट किया । "मुगल साम्राज्य का लोप हो गया है । ५०० वष के मुस्लिम शासन-काल मे इस प्रकार के अपमानो का पता नही मिलता ।" यही इन वृत्तान्तो का साराश है । इस दुखान्त कथा के मुख्य कारण सम्राट की निबलता तथा उसके कायकर्ता मसूर अलीखॉ का विश्वासघात थे । शिन्दे ने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया—"यदि दिल्ली प्रशासन पूना सरकार का समथन प्राप्त करने मे असफल रहेगा तो मैं उत्तर की राजनीति से अवकाश ग्रहण कर लूगा ।"[१०]

---

१० ग्वालियर के पत्र, स० ५३६ तथा ५३७

८ **अली बहादुर अग्रदल मे**—गुलाम कादिर की माता तथा उसके भाई लूट का माल लेकर सिक्खो की शरण प्राप्त करने की इच्छा से कुजपुरा की ओर भाग गये थे। रायजी पाटिल तथा अली बहादुर ने शीघ्र ही उनका पीछा किया तथा लूट का माल बलपूवक छीन लिया। इसी प्रकार गोसगढ, अलीगढ तथा सहारनपुर के रूहेला अविकृत प्रदेशो पर अविकार करके वहा मराठा सेनाए रख दी गयी। गुलाम कादिर के विभिन्न सरदारो का पता लगाकर उन्हे दण्ड दिया गया। महादजी ने बुद्धिमत्तापूवक इन कार्यों तथा नियमित प्रशासन की स्थापना के निरीक्षण हेतु अली बहादुर को नियुक्त किया। उसका विचार इस नवयुवक उत्साही पुरुष को आवश्यक प्रशिक्षण देकर उत्तर मे मराठा प्रगतियो के समस्त क्षेत्र का प्रबन्ध सोपने का था। किन्तु शिन्दे का शीघ्र पता लग गया कि अली बहादुर उसकी नीति के प्रति पूण निष्ठा नही रखता है। वह तुकोजी होलकर के दुष्ट प्रभाव मे आ गया हे। उसन षड्यन्त्रपूण आचरणो का वह माग अपना लिया था जो महादजी को शीघ्र ही असह्य प्रतीत हुआ। शिन्दे का सचिव अप्पाजी राम नाना को लिखता हे—"मालूम होता हे कि अली बहादुर मे दक्षिण से धन तथा जन की पर्याप्त सहायता प्राप्त किये बिना उत्तर के अशान्त क्षेत्र मे शान्ति स्थापित करने ओर व्यवस्था बनाये रखने की क्षमता नही है। वह इस काय के सचालन का व्यय भी नही निकाल सकता।" नाना फडनिस ने उत्तर दिया—"आप पाटिल बाबा को समझा दे कि वह उत्तरी कार्यों के भार से मुक्त होने तथा अपने स्थान पर अली बहादुर को नियुक्त करने का विचार कभी न करे। यदि महादजी उस ओर से अवकाश ग्रहण करता है, तो अब तक जो परिणाम निकले हे वे सब नष्ट हो जायेगे।" महादजी इस विचार से सहमत नही था। किसी प्रकार की शान्ति और लाभ न मिलने से उसको अपना काय व्यथ तथा कष्टप्रद प्रतीत होता था। इसका मुख्य कारण पूना से सप्रेम समथन के स्थान पर कडे विरोध की बौछारे थी। वह नाना से बारम्बार कहता था—"यह सवथा अशक्य तथा व्यथ है। अपने पत्र-व्यवहार मे आप जो धाराएँ तथा विवादग्रस्त विषय प्रस्तुत करते हे, उनका उत्तर देना अथवा खण्डन करना सवथा अशक्य और व्यथ है। यदि मुझे कभी स्वदेश वापस होने की आज्ञा प्राप्त हुई तो में केवल व्यक्तिगत वार्तालाप द्वारा सन्तोषजनक स्पष्टीकरण दे सकूगा। पत्र-व्यवहार की किसी भी मात्रा से यह उद्देश्य सिद्ध नही हो सकता।"

इसके शीघ्र पश्चात ही महादजी तथा अली बहादुर दोनो को मालूम हो गया कि वे परस्पर सघषरत है। अली बहादुर को व्यक्तिगत वार्तालाप के

लिए मथुरा बुलाया गया। इस वार्ता का साराश उसने नाना को इस प्रकार लिखा था—"१४ फरवरी, १७८६ को महादजी से मेरा वार्तालाप हुआ। उसकी इच्छा है कि मै उत्तरीय कार्यो का प्रबन्ध स्वीकार कर लू ओर वह स्वय दक्षिण वापस आ जाये। धनाभाव के कारण म इस उत्तरदायित्व को स्वीकार नही कर सकता। मेरे इनकार करने पर महादजी को असीम क्रोध आ गया। वह कहता हे—मै नही जानता कि मैने क्या अपराध किया हे जो मुझको स्वदेश जाने तथा अपने स्वामी की स्वय वन्दना करने की आज्ञा नही मिलती। मै निश्चयपूवक कहता हूँ कि मै आजीवन राज्य की सेवा के लिए तैयार हूँ। ऐसा मालूम होता है कि यहा अपने काय के प्रति उसे कोई उत्साह नही हे। आपने मुझको आज्ञा दी है कि पाटिल बाबा द्वारा प्रस्तावित उत्तरदायित्व को मै स्वीकार न करूँ। कृपया आदेश दे कि मै क्या करूँ।" केन्द्रीय शासन के प्रतिनिधि के रूप मे नाना को साहसपूवक अपना निणय देना चाहिए था। किन्तु उसने महादजी के विरुद्ध अली बहादुर को और भी अधिक उत्तेजित करने का यत्न किया। उत्तर मे उसने लिखा—"ध्यान रखिये कि आपको सदैव मेरा समथन प्राप्त है। महादजी के ढग विचित्र हे। जहाँ सन्देह न हो, वह वहा भी सन्देह उत्पन्न कर सकता है। वह दलबन्दी खडी करके सुचारु काय मे विघ्न उपस्थित कर सकता है। आपकी बहुत समय से यह मिथ्या धारणा है कि महादजी आपका महान सरक्षक होना चाहता था। मुझे विश्वास है कि उसकी कभी भी ऐसी इच्छा नही रही। वह आपके सम्मुख कोई विशेष योजना रखेगा और उसके अनुसार काय करने का आदेश देगा। तब आप बिना किसी सन्देह के उस माग पर चल पडेगे। पर अन्त मे वह सिद्ध कर देगा कि आप विश्वासघातक है। यदि वह कोई विषय आपके विवेक पर छोड देता है तो आप इसका विश्वासप्रद प्रमाण अवश्य सुरक्षित रखे जिससे वह बाद मे अपनी मूल आज्ञा न बदल दे।" इस प्रकार शिन्दे तथा केन्द्रीय मराठा शासन के समस्त सम्बन्ध दूषित हो जाने से राज्य की बहुत हानि हुई। नाना ने स्पष्ट रूप से अली बहादुर तथा उत्तर भारत मे काय करने वाले अन्य अधिकारियो को भी महादजी के विरुद्ध उत्तेजित कर दिया। यदि नाना शिन्दे की नीति गलत समझता था तो उसके लिए केवल एक माग था। वह उसके स्थान पर किसी अन्य अधिक विश्वस्त कमचारी को नियुक्त कर देता। परन्तु नाना जानता था कि उत्तरी कार्यो का भार ग्रहण करने के लिए कोई अन्य व्यक्ति नाना के समान योग्य नही है। साथ ही उसने कपटपूण उपायो के द्वारा महादजी को पराभूत करने का भी प्रयत्न किया।

महादजी की दृष्टि मे अली बहादुर के गिरने के अनेक गम्भीर कारण थे। अली बहादुर आर्थिक कष्ट पडने पर झूठी हुण्डिया लिखने लगा, जिसके कारण उसका समस्त गौरव नष्ट हो गया और किसी को उसका विश्वाम नही रह गया। उसने अपनी सेना का वेतन चुकाने के लिए महादजी से धन मागा, क्योकि पूना के मन्त्रिमण्डल की आज्ञानुसार महादजी को ही उसका व्यय उठाना था। परन्तु महादजी ने कहा कि उत्तर मे जिन भयानक कष्टो को सहन करने के कारण उसने मन्त्री नाना से धन और जन की सहायता के लिए प्रार्थना की थी, उसका अभिप्राय था कि जो सेना उसकी सहायता के लिए भेजी जाये, उसका व्यय पूना सरकार ही उठाये। यदि इस सेना का व्यय स्वय महादजी को वहन करना था तो वह उस धन से वही पर नवीन सेना क्यो न भरती कर लेता ? इस प्रकार शिन्दे तथा अली बहादुर के सम्बन्ध बिगडने लगे। स्वय शिन्दे को वही आर्थिक कष्ट था। उसकी सेना को समय पर वेतन न मिला तो उसने विद्रोह कर दिया। एक अवसर पर उसका चिटनिस कृष्णोबा विद्रोहियो से बातचीत करते समय बहुत घायल हो गया। सुयोगवश रानाखा वहा था, इसलिए उसने कृष्णोबा के प्राणो की रक्षा कर ली। ये घटनाएँ आकस्मिक न होकर नित्य की थी, जिनसे महादजी को निपटना पडता था।

सभी प्रकार के अपकारो तथा षड्यन्त्रो मे निपुण होने के कारण गोसाइ बन्धु भी महादजी के लिए सतत कष्ट का कारण बने रहे। एक ओर महादजी और दूसरी ओर होलकर तथा अली बहादुर के बीच चलने वाले वैमनस्य के लिए वे कुछ कम उत्तरदायी न थे। लालसोट के बाद महादजी के महान सकट मे सहायता देने के लिए नाना ने होलकर को भेजा था। वह सितम्बर, १७८७ को पूना से चलकर अप्रैल, १७८९ को मथुरा पहुँचा। इस प्रकार लगभग डेढ वर्ष का बहुमूल्य समय उसने मार्ग मे ही नष्ट कर दिया था। मथुरा पहुँचकर उसने महादजी से उन प्रदेशो का आधा भाग मागा, जिनको उसने हाल मे ही अधीन किया था। महादजी इस माग से सहमत हो गया, परन्तु यह शर्त रखी कि समान अनुपात मे व्यय भी बाट लिया जाये। तुकोजी को इस प्रत्युत्तर पर क्रोध आ गया। उसने कहा—"हम दोनो सयुक्त परिवार के समान सदस्य है। परिवार का एक व्यक्ति घर का प्रबन्ध करता है और दूसरा बाहर जाकर धन कमाता है, परन्तु सम्पत्ति मे उन दोनो का बराबर का हिस्सा रहता है।" इस प्रकार उनका सघर्ष पुराने फोडे की भाँति बढता ही गया और अन्त मे लखेरी के रणक्षेत्र मे फूट पडा। आगे के अध्याय मे हमे इसके विस्तृत उल्लेख का अवसर मिलेगा।

तिथिक्रम

अध्याय ६

१७५२	मैलेट का जन्म ।
१७५३	टीपू का जन्म ।
१७७०	बम्बई मे कम्पनी की सेवा मे मलेट का प्रवेश ।
१७७५	मैलेट खम्भात मे नियुक्त ।
१७ मई, १७८२	सालबई की सन्धि पर हस्ताक्षर ।
१७८३	भारत मे अग्रेजों को कष्ट ।
१७८३	बुसी तथा सफ्रे पूर्वी समुद्रतट पर ।
३० अप्रल, १७८३	टीपू का बेदनूर पर पुन अधिकार, उसके द्वारा ४ हजार अग्रेजो को बन्दी बनाया जाना ।
४ मई, १७८३	टीपू द्वारा बगलौर का घेरा ।
३० जनवरी १७८४	टीपू का मगलौर पर अधिकार ।
११ माच, १७८४	अग्रेजो द्वारा मगलौर की सन्धि निश्चित ।
६ मई, १७८४	यादगिरि मे नाना फडनिस तथा निजामअली की भेट ।
२७ जनवरी, १७८५	मैलेट का बम्बई से उत्तर भारत को प्रस्थान ।
२० मई, १७८५	मलेट का मथुरा मे महादजी से मिलना ।
जून, १७८५	मैलेट का कलकत्ते को प्रस्थान ।
२६ जुलाई, १७८५	टीपू का नरगुण्ड पर अधिकार ।
सितम्बर, १७८५	टीपू का किटट्टर पर अधिकार ।
७ नवम्बर, १७८५	मैलेट कलकत्ता मे रेजीडेंट नियुक्त ।
१५ फरवरी, १७८६	नाना फडनिस तथा निजामअली की भेंट । यादगिरि मे टीपू के विरुद्ध युद्धोपाय सगठित ।
३ मार्च, १७८६	मैलेट का पूना मे आगमन ।
१६ मई, १७८६	बादामी मे मलेट तथा नाना फडनिस की भेंट ।
२१ मई, १७८६	मराठो का बादामी पर अधिकार ।
८ जून, १७८६	मराठो का गजेन्द्रगढ पर अधिकार ।
३० जून, १७८६	टीपू का अडोनी को निजाम से छीन लेना ।
२२ सितम्बर १७८६	कार्नवालिस का शासन की बागडोर सँभालना ।

२ अक्तूबर, १७८६	टीपू का हरिपन्त पर अकस्मात आक्रमण ।
१० अक्तूबर, १७८६	टीपू का सावनूर पर अधिकार ।
मार्च, १७८७	मराठो तथा टीपू के बीच गजेन्द्रगढ की सन्धि निश्चित ।
१७८८	कानवालिस द्वारा भारत मे कम्पनी के काय सगठित।
१७८८	कनेवे हैदराबाद मे रेजीडट नियुक्त ।
१२ अक्तूबर, १७८८	मलेट का बम्बई जाना ।
२६ माच ११—अप्रैल, १७८६	गलेट पुन बम्बई मे ।
१ जून, १७६०	पूना मे त्रिदलीय सन्धि निश्चित ।
४ जुलाई, १७६०	निजामअली द्वारा इस सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर ।
१२ दिसम्बर, १७६०	कानवालिस का मद्रास मे आगमन तथा टीपू के विरुद्ध युद्ध सचालन का भार ग्रहण करना ।
जनवरी, १७६१	टीपू के विरुद्ध युद्ध के लिए पूना से हरिपन्त का प्रस्थान ।
फरवरी, १७६१	कानवालिस तथा मेडाज का टीपू के विरुद्ध मद्रास से प्रस्थान ।
२१, माच १७६१	कानवालिस का बगलौर पर अधिकार ।
६ अप्रल, १७६१	परशुराम भाऊ का धारवाड पर अधिकार ।
१३ अप्रल, १७६१	फौलादजग के अधीन निजाम की सेना बगलौर के समीप कानवालिस के साथ ।
१४ अप्रल, १७६१	अरिकेरे मे टीपू का पराभव ।
२४ अप्रल, १७६१	हरिपन्त तथा परशुराम भाऊ कानवालिस के साथ ।
२८ अप्रैल, १७६१	कानवालिस तथा मराठो का मोती तलाब के पास मिलन । वर्षा ऋतु मे युद्ध विराम ।
अक्तूबर, १७६१	परशुराम भाऊ का बेदनूर के विरुद्ध प्रयाण तथा शृ गेरी के हिन्दू मन्दिर की लूट ।
अक्तूबर, १७६१	चित्रकार वेल्स पूना मे ।
५ फरवरी, १७६२	मित्रो का श्रीरगपट्टन के विरुद्ध प्रयाण ।
११ फरवरी, १७६२	टीपू द्वारा अधीनता स्वीकार ।
२५ फरवरी, १७६२	टीपू के पुत्रो का शरीर बन्धको के रूप मे मित्र-शिविर मे आगमन । सन्धि निश्चित ।
२६ फरवरी, १७६२	मेडोज द्वारा आत्महत्या ।
माच, १७६२	हरिपन्त तथा कार्नवालिस मे भाईचारा स्थापित ।

१० अप्रैल, १७९२	मित्र दल विश्रृंखल ।
मई, १७९२	हरिपन्त का पूना पहुँचना ।
१७९३	चित्रकार डनियल पूना मे ।
२० अक्तूबर, १७९३	कार्नवालिस का अवकाश ग्रहण करना ।
२२ फरवरी, १७९७	मलेट का पूना मे अवकाश ग्रहण करना ।
२४ जनवरी १८१५	इगलैण्ड मे मैलेट की मृत्यु ।

अध्याय ६

आन्तरिक शान्ति तथा वृद्धि के वर्ष

(१७८४-१७९२ ई०)

१ युद्ध के पश्चात मराठा राज्य की समस्याएँ। २ मित्रता की त्रिदलीय सन्धि।
३ मैसूर युद्ध की झडपें। ४ टीपू की अधीनता।
५ सर चार्ल्स मैलेट पूना का रेजीडेंट।

१ युद्ध के पश्चात मराठा राज्य की समस्याएँ—अल्पवयस्क पेशवा ज्यो-ज्यो वयस्क हो रहा था, त्यो त्यो मराठा राज्य के जटिल कार्यो के प्रबन्धार्थ योग्य शासक होने की आशा बलवती हो रही थी। दुर्भाग्यवश उसे प्रशिक्षण के लिए नाना फडनिस जैसा आत्मकेन्द्रित, सशयशील, उदासीन, अधीर तथा कठोर अनुशासक शिक्षक मिला, जिसकी दृष्टि सकीर्ण थी और अनुभव सीमित। इस समय नेताओ, सैनिको ओर कूटनीतिज्ञो का पहले जैसा अभाव न था, परन्तु कार्य करने के लिए उनका मार्गदर्शन तथा नियन्त्रण करने मे समर्थ सुयोग्य कर्णधार के अभाव मे उन सबको ऐसा लगा कि वे सकटो की बाढ मे फँसने वाले है। सम्भवत इसका एकमात्र उपाय यह हो सकता था कि नाना तथा वयस्क पेशवा कुछ समय तक महादजी के साथ रहकर वर्तमान शासन मे विचारो की एकता स्थापित करते। परन्तु कठोर आत्मप्रदर्शन तथा अन्य व्यक्तियो के साथ सत्ताभोग की अनिच्छा के कारण नाना प्रतिस्पर्धी को सहन नही कर सकता था। प्रसन्नचित्त सैनिक होने के कारण मराठो के भावी शासक के लिए महादजी शिन्दे अधिक उत्तम शिक्षक सिद्ध होता। वह नाना प्रकार के अनुभवो से युक्त तथा अन्य पुरुषो के साथ व्यवहार मे असाधारण रूप से समन्वयशील था। परन्तु विधि की इच्छा यह न थी। इसका परिणाम यह हुआ कि उत्तर तथा दक्षिण के बीच एक प्रकार का दोहरा शासन स्थापित हो गया।

सालबई की सन्धि के कारण होने वाला टीपू सुल्तान के विरुद्ध युद्ध इसका

उनमे उदाहरण है जो कुछ समय तक भयानक रूप धारण किये रहा। नाना के महान राजनीतिक कार्य अर्थात शक्तिशाली ब्रिटिश-विरोधी संघ के संगठन का वर्णन पहले हो चुका है। इस सन्धि की यह स्पष्ट शर्त थी कि संघ का कोई भी सदस्य पृथक होकर शान्ति की सन्धि नहीं करेगा। इसी शर्त के कारण हैदरअली ब्रिटिश-विरोधी युद्ध में सम्मिलित हुआ था। यदि हैदरअली अंग्रेजो की शक्ति कर्नाटक में न खींच लेता तो मराठे उतनी सफलता तथा सालबई की अनुकूल शर्तें प्राप्त नहीं कर सकते थे। हैदरअली को बिना पूछे केवल सालबई की सन्धि ही निश्चित नहीं हुई, अपितु उसमे विशेष शर्त भी रखी गयी कि "पेशवा ६ महीने के अन्दर हैदरअली को कर्नाटक के उन समस्त प्रदेशों को छोड़ने के लिए विवश करने की प्रतिज्ञा करेगा, जिन पर उसने अधिकार कर लिया है।" मराठों के इस विश्वासघात पर हैदरअली का क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। जैसे ही सन्धि का निश्चय हुआ, अंग्रेज लोग कर्नाटक से हैदर-अली को निकालने में साथ देने के लिए मराठों पर दबाव डालने लगे। महादजी द्वारा सन्धि इस प्रकार शीघ्र निश्चित कर लेने पर नाना फडनिस को अत्यन्त क्रोध हुआ और जहा तक उससे बन सका प्रमाणीकरण को टालता रहा। सर्व-प्रथम कर्नाटक मे मुख्य ब्रिटिश सेनापति सर आयर कूट ने हैदरअली को इस सन्धि की शर्तों की सूचना दी तथा १२ जुलाई, १७८२ के एक पत्र मे उससे ब्रिटिश प्रदेश त्यागकर तुरन्त अपनी सेना सहित वापस हो जाने को कहा। हैदरअली ने शान्तिपूर्वक कूट को बताया कि उसकी माग निरर्थक है, क्योकि उसका आधार एकपक्षीय समझौता है। साथ ही उसने शर्तों की एक प्रतिलिपि मॉगी। इस पर कूट ने हैदरअली को पूर्ण प्रतिलिपि भेज दी। हैदरअली ने उसको निम्नांकित कटु उत्तर लिख भेजा—"मैने गत दो वर्षों मे इन प्रदेशो को इस अभिप्राय से अधिकृत नही किया है कि आप या अन्य किसी व्यक्ति को प्रसन्न करने के लिए त्याग दू। यदि आप मे साहस हो तो अपने मित्रो मराठों और निजाम को साथ लेकर आये और युद्ध करे। तब आपको मालूम हो जायेगा कि मै क्या कर सकता हूँ। मै क्या करूँ, इसके लिए मुझे आपकी आज्ञा की आवश्य-कता नही है। इस समय पर तो आपको इन प्रदेशो से एक कौडी भी नही मिल रही है। मै ध्यान रखूगा कि भविष्य मे भी आपको यहा से कुछ न मिले।"[1]

---

[1] विद्यार्थियो को परामर्श है कि इस सम्बन्ध मे वे ब्रिटिश दूत श्रीनिवास-राव के विस्तृत तथा रोचक वृत्तान्त का अध्ययन करे—फोरेस्ट कृत 'शाही संग्रह' (इम्पीरियल सिलेक्शन), जिल्द ३, पृ० ८८५-८९४

१७ मई, १७८२ को सालबई की शर्तों पर हस्ताक्षर होते ही अंग्रेजो ने महादजी पर दबाव डाला कि हैदरअली के निकालने मे उनको मराठा सहायता दी जाय। महादजी से नाना से पूना की सेनाए हैदरअली के विरुद्ध भेजने के लिए कहा तथा उसे (हैदर को) धमकी भेजी, जिससे नाना तथा पूना की सरकार विषम स्थिति मे फँस गये। इसी सकटमय स्थिति मे ७ दिसम्बर, १७८२ को हैदरअली का देहान्त हो गया तथा उसका कार्य उसके धर्मान्ध पुत्र टीपू सुल्तान के हाथ मे आ गया। आगे जो हुआ, उसका प्रतिबिम्ब ब्रिटिश लोगो की ओर से युद्ध, विवाद तथा कुप्रबन्धो के जाल मे और टीपू की ओर से १७८३ मे ब्रिटिश सेना तथा प्रदेशो पर किये गये सर्वनाश मे झलकता है। मद्रास तथा बगाल की सरकारो ने सहयोग का शोचनीय अभाव प्रदर्शित किया और बाद मे एक-दूसरे पर आरोप प्रत्यारोप लगाये, जिनसे इतिहास के पन्ने गन्दे हो रहे है।

जब वारेन हेस्टिंग्ज यथाशक्ति टीपू के विरुद्ध दृढता से युद्ध-सचालन का प्रयत्न कर रहा था तो मद्रास के लार्ड मैकार्टनी ने अपनी ओर से उसके साथ शान्ति के प्रस्ताव आरम्भ कर दिये। इसके कारण टीपू को अपने पिता की मृत्यु के बाद अधिक बल से युद्ध करने का साहस हो गया। १७८३ मे भारत मे ब्रिटिश गौरव निकृष्टतम स्थिति को प्राप्त हो गया था। इस वर्ष के आरम्भ मे वृद्ध फ्रेंच ऐडमिरल सफ्रे भारत मे पहुँच गये, वयोवृद्ध जनरल कूट की मृत्यु हो गयी और उसका उत्तराधिकारी स्टुअर्ट सर्वथा अयोग्य सिद्ध हुआ। टीपू से शर्तों की प्रार्थना करने की मद्रास कौंसिल की कलकित नीति का बम्बई तथा बगाल मे घोर विरोध किया गया। मद्रास सरकार का भार हल्का करने के लिए बम्बई के अधिकारियो ने जनरल मैथ्यूज के अधीन शक्तिशाली सेना समुद्री मार्ग से मलाबार समुद्रतट पर भेजी। यह सेना होनावर के बन्दरगाह पर उतरी और इस बन्दरगाह तथा मगलोर को शीघ्र ही टीपू से छीन लिया। बाद मे शीघ्र ही घाटो पर चढकर उन्होने टीपू के शक्तिशाली स्थान बेदनूर पर अधिकार कर लिया। यहा मैथ्यूज को धन तथा सामग्री के रूप मे लूट का बहुत सा माल प्राप्त हुआ। अपनी पीठ पर इस आकस्मिक प्रहार से टीपू इस प्रकार क्रुद्ध हुआ कि उसने पूर्वी युद्धक्षेत्र को छोड दिया, तथा पश्चिम मे मैथ्यूज पर इस शीघ्रता से टूट पडा कि उसे भागने का भी समय नही मिला। ३० अप्रैल को टीपू ने बेदनूर पर पुन अधिकार कर लिया। उसने मैथ्यूज तथा उसकी उच्च पदाधिकारियो सहित लगभग ४ हजार की सम्पूर्ण सेना को बन्दी बना लिया। ये सब हथकडी-बेडी डालकर श्रीरगपट्टन के कारागार मे भेज दिये

गय। अग्रेजो पर यह महान विजय प्राप्त करने के बाद टीपू तुरन्त पश्चिमी समुद्रतट पर उतर आया तथा मगलोर को घर लिया, जो युद्ध की निर्णायक घटना सिद्ध हुई। मगलोर का अवरोध ४ मई, १७८३ से ३० जनवरी, १७८४ तक चलता रहा। ब्रिटिश दुगम्य सेना ने अन्त मे क्षुधापीडित होकर आत्म-समपण कर दिया। गवनर मैकाटने इतना निस्सहाय तथा भयभीत हो गया कि गवनर जनरल के विरोध करने पर भी उसने टीपू से शान्ति की सविनय प्राथना करने के लिए एक प्रतिनिधि मण्डल भेज दिया। "जानबूझकर शान्ति प्रस्तावा को विलम्बित करते हुए टीपू ने प्रतिशोध की विचित्र भावना तथा अग्रेजो का अपमानित करने मे क्रूर रूप का परिचय दिया।" इस प्रकार टीपू प्रत्येक भारतीय दरबार से यह कह सकन मे समथ हो गया कि ब्रिटिश सरकार ने मद्रास से उसके पास मगलौर मे प्रतिनिधि मण्डल भेजा है जो शान्ति की शर्तो की प्राथना कर रहा है। १८ दिसम्बर को मद्रास कौसिल ने अपना अधि-वेशन किया तथा अपनी परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त किया कि उनकी आर्थिक स्थिति शोचनीय हो गयी है, साख नही रह गयी है तथा केन्द्रीय शासन का उन पर से विश्वास उठ गया है। इस समय हेस्टिग्ज शक्तिहीन था, उसकी अपनी कौसिल ने उसका साथ छोड दिया था। मैकाटने ने उसका अपमान किया तथा टीपू के स्वर मे स्वर मिलाया। इगलिश शान्ति मिशन को देश मे मन्द गति से घुमाया गया तथा प्रत्येक मजिल पर सभी प्रकार से उनका अपमान किया गया। आयुक्तो ने अन्त मे मगलोर मे अपने डेरो के सम्मुख तीन बलिवेदियो के निर्माण द्वारा पुन अपमानित होकर विजया के पारस्परिक प्रतिदान के आधार पर सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिय (११ माच, १७८४)। उन बन्दियो मे से जो हैदरअली और टीपू के हाथ पड गय थे, अधिकाश प्रसिद्ध व्यक्तियो की विष द्वारा हत्या कर दी गयी थी, या जगल मे काट-काटकर उनके टुकडे कर दिये गये थे। परन्तु १९० अधिकारी तथा ९०० अन्य यूरोप निवासी, जो युद्ध के कई वर्षो मे अपने प्रति बबर व्यवहार होते हुए भी अब तक जीवित थे, मुक्त कर दिये गये। स्वय सन्धिपत्र मे भावी युद्ध के कुछ लक्षण थे। सन्धि पर हस्ताक्षर होने के अवसर पर इगलिश प्रतिनिधियो को दो घण्टे तक नगे सिर खडा रहना पडा। "पूना तथा हैदराबाद के वकीलो ने एक स्वर होकर अत्यन्त नम्र याचनाएँ की, तभी दैवी प्रतिनिधि महामहिम (टीपू) ने दयाद्र होकर अन्त मे अपनी स्वीकृति दी।"[२] स्पष्ट है कि इस विराम सन्धि को दोनो शक्तियो

---

[२] माशमैन कृत, भारत का इतिहास, जिल्द १, पृ० ४१०

ने अनिच्छापूर्वक स्वीकार किया था। उनमे से कोई भी दूसरे का नाश नही कर सकता था, परन्तु दोनो को पूण विश्वास हो गया था कि एक के सवनाश के बिना दूसरे की कुशल नही है।

टीपू दप तथा व्यक्तिगत वीरता मे अपने पिता से बढा चढा था, परन्तु उसमे अपने पिता की विचारपूण अग्रदृष्टि का अभाव था, जिसके कारण पिता की उन्नति हुई तथा पुत्र का सवनाश हो गया। जब मगलौर मे अग्रेजो पर इस प्रकार भारी दबाव पड रहा था, तब महादजी तथा नाना के बीच सालबई की शर्तो के अनुसार अग्रेजो को सहायता देने के प्रश्न पर घोर विवाद चल रहा था। नाना इस बात पर अग्रेजो से बिगड गया था कि पूना से पूछे बिना उन्होने मगलौर की सन्धि निश्चित कर ली थी, जबकि हरिपन्त फडके के अधीन पूना की सेनाएँ टीपू से युद्ध करने के अभिप्राय से काफी दूर जा चुकी थी। १७८५ के आरम्भ मे हेस्टिग्ज ने अवकाश ले लिया। आगामी वष कानवालिस के आगमन के कारण कम्पनी के प्रदेशो मे शनै-शनै सुव्यवस्थित शासन की स्थापना हो सकी।

निजामअली खाँ ने भी मराठो तथा अग्रेजो के बीच होने वाले दीघकालीन युद्ध से लाभ उठाने मे विलम्ब नही किया। नाना ने अब अपना ध्यान उन उपायो पर दिया, जिनसे वह निजामअली द्वारा छीने हुए प्रदेशो पर पुन अधिकार कर सके। जब १७८४ के आरम्भ मे मराठा सेनाएँ टीपू के विरुद्ध भेजी गयी, नाना ने निजामअली से कहा कि इसके लिए वह भी निश्चित मात्रा मे अपनी सेना भेजे। ब्रिटिश दबाव से मुक्ति पाकर तथा अपनी सफलता पर प्रफुल्लित होकर टीपू मराठो को दण्ड देने के काय मे अग्रसर हुआ, क्योकि मराठो ने उसके हित का विरोध किया था। उसकी धार्मिक मदान्धता नवीन रूप से प्रस्फुटित हो उठी। नाना को समाचार प्राप्त हुए कि टीपू ने एक दिन मे ५० हजार हिन्दुओ को मुसलमान बना लिया हे तथा उसको गव है कि इस अद्भुत काय को कोई भी मुसलमान शासक कभी पहले नही कर सका। तब वह दाआब स्थित रायचूर मे मराठा अधिकृत स्थानो का विनाश करता हुआ सवेग आगे बढा। नाना ने पहले ही हरिपन्त को उससे युद्ध करने के लिए भेज दिया था और अब उसने तुकोजी होलकर को हरिपन्त की सहायता करने के लिए आज्ञा दी। इस प्रयास मे नाना ने निजामअली को अपनी ओर मिलाना आवश्यक समझा तथा रायचूर जिले मे यादगिरि के स्थान पर स्वय उसके साथ व्यक्तिगत वार्तालाप करने का निश्चय किया। इस काय के लिए नाना ने पूना से राजसी ठाठ से यात्रा की। सम्मिलन १६ मई को आरम्भ

होकर एक सप्ताह तक उचित रीतिया ओर स्वतन्त्र वार्तालाप सहित चलता रहा। २१ मई का निजामअली नाना के पास मिलन के लिए आया। उन्होने टीपू के विरुद्ध मिलकर युद्ध करना निश्चित किया। उस समय ऋतु अनुकुल नही रह गयी थी, अत वास्तविक युद्ध वर्षा ऋतु के बाद आने वाली ऋतु के लिए स्थगित कर दिया गया। निजामअली दो वर्षा की शेष चोथ का भुगतान करने के लिए सहमत हो गया। अनेक जटिल प्रश्न अनिश्चित ही छोड दिये गये। अत म इन भडकील सम्मेलनो के बहु विज्ञापित काय से मराठो को कोई ठोस लाभ नही हुआ तथा उत्तर मे महादजी की सफलताओ की तुलना मे यह काय भ्रमात्मक तथा निस्सार प्रतीत हुआ—विशेषकर जब इसका ध्यान रखा जाता है कि राजनीति तलवार का समथन पाकर ही सफल होती है। अपनी सैन्य शक्ति की उन्नति के लिए महादजी ने घोर परिश्रम किया था ओर नाना ने इस आवश्यक विषय की सदा उपेक्षा की थी।

इन मराठा-निजाम प्रदशनो के प्रति टीपू ने अविलम्ब तथा निश्चयात्मक उत्तर दिया। उसने सहधर्मी निजामअली के विरुद्ध प्रतिशोध की भावना से तप्त होकर टीपू ने उसको बीजापुर का समपण करने तथा वार्षिक कर देकर स्वय को आश्रयभोगी स्वीकार करने की आज्ञा दी। धमकी के साथ ही उसने कृष्णा नदी के दक्षिण म निजामअली के जिलो पर आक्रमण कर दिया। साथ ही मराठा अधिकृत धारवाड की ओर भी प्रयाण कर दिया। मालाप्रभा के दक्षिण मे स्थित किट्टूर तथा नरगुण्ड के दो हिन्दू राज्य मराठो के अधिकार मे थे। टीपू की महत्त्वाकाक्षा का इन पर विशेष दात था। पूना स प्राप्त होने वाली सहायता के भरोसे पर उन्होन टीपू का खुला विरोध किया। कुछ समय तक नरगुण्ड के दीवान कालोपन्त पेठे ने योग्यतापूवक राज्य की रक्षा की। दीनता के भ्रामक शब्दो से पूना सरकार का सन्देह शान्त करके टीपू ने इस छोटे-से राज्य की रक्षक सेना पर सहसा आक्रमण कर दिया और निदयता-पूवक नरगुण्ड का नाश कर दिया। वहा के ब्राह्मण शासक व्यकटराव भावे तथा उसके दीवान कालोपन्त को बहुत स सैनिको तथा सुन्दर युवतियो के साथ बन्दी बना लिया। युवतियो के साथ अत्यन्त बबरता से बलात्कार किया गया (२६ जुलाई, १७८५)। जब बेडियाँ डालकर बन्दी श्रीरगपट्टन ले जाये जा रहे थे, तब निराशा के कारण कालोपन्त की माता का देहान्त हो गया। ब्राह्मणो के साथ विशेष अपमानजनक व्यवहार किया गया। नरगुण्ड के सरदार की युवा महिलाओ मे से एक को बलपूवक मुस्लिम अन्त पुर मे डाल दिया गया। अब टीपू का दल उत्तर की ओर बढा और उसने किट्टूर पर अधिकार

कर लिया। वहा के सरदार और उसके परिवार के साथ भी उसी बबरता का व्यवहार किया गया (सितम्बर, १७८५)। नगर के समस्त व्यापारियो तथा गृहस्थो का मारा सामान छीन लिया गया। उस प्रान्त के लिगायतो के साथ उसी प्रकार का दुव्यवहार किया गया। टीपू ने मुस्लिम नवयुवको का एक बडा दल बनाया था, जिनको वह अपना पुत्र कहता था। अब उसने उनको हिन्दू परिवारो की सुन्दर महिलाएँ दे दी। ये अत्याचार १७८५ की वर्षा ऋतु मे किये गये। जब इन घटनाओ की सूचना नाना के पास पहुँची तो वह अत्यन्त व्याकुल हो उठा। उसने तुकोजी होलकर तथा नागपुर के भोसले को बुलाया तथा निजामअली को आग्रहपूर्ण याचनाएँ भेजी। १५ फरवरी, १७८६ को नाना और निजामअली यादगिरि मे फिर मिले। नाना शिविर मे ठहरकर युद्ध का सचालन करने के लिए विवश हो गया।

मार्च के मध्य के समीप यह सगठन यादगिरि मे चल पडा और पूर्वी माग मे बादामी की ओर बढा। इधर मराठा सरदार बहेरे किट्टूर तथा बेलगाम होकर तुकाजी होलकर के साथ पश्चिमी माग से बढा। तुकोजी अपने प्रयाण के समय किसी नियम तथा अनुशासन का पालन नही करता था। केवल धन प्राप्त करने के लिए उसने माग मे पडने वाले मराठा प्रदेशो को निश्चिन्त होकर लूट लिया और नष्ट कर दिया। आक्रान्ताओ ने १ मई को बादामी को घेर लिया। तीन सप्ताह के कठोर प्रतिरोध के बाद उस स्थान पर अधिकार कर लिया गया। इसमे मराठो को लगभग एक हजार सैनिको की बलि देनी पडी। स्वय नाना फडनिस दुर्ग मे तोपखाने के निर्देशार्थ उपस्थित था, क्योकि उसके नेतृत्व के बिना सेना पर्याप्त प्रयास न करती।[3]

नाना बादामी से पूना वापस आ गया। मराठा सेनाओ ने गजेन्द्रगढ की ओर प्रयाण किया और उस पर ८ जून को अधिकार कर लिया। इन क्षतियो को पूरा करने के लिए टीपू अविलम्ब अडोनी पर टूट पडा। यह निजामअली का शक्तिशाली गढ था। जून के अन्त मे घोर युद्ध के बाद उसने इस स्थान पर अधिकार कर लिया। इस युद्धक्षेत्र मे टीपू ने हरिपन्त तथा पटवर्धन परिवार को मुहतोड जवाब दिये। उन पर लगभग इतना भारी दबाव डाला गया कि अपनी रक्षा करने के लिए उन्हे तुगभद्रा नदी पुन पार करनी पडी।

---

[3] ब्रिटिश रेजीडेण्ड मैलेट, जिसका आगमन पूना मे ठीक इसी समय हुआ था और जो बादामी के शिविर मे आमन्त्रित किया गया था, इस स्थान पर २० मई, १७८६ को पहली बार नाना से मिला। उसने उस युद्ध के विशद विवरण लिखे है।

टीपू न अडानी पर अधिकार करके वहा प्राचीरो को नष्ट कर दिया। तब वह क्रूरतापूर्वक सावनूर की ओर बढा। यहा का शासक मराठो का मित्र था। उसकी रक्षा के लिए हरिपन्त को अनकानेक विघ्न बाधाए सहन करके अकस्मात दौडना पडा। होलकर तथा बहेरे भी सावनूर की रक्षाथ पहुँच गये। टीपू ने वीरतापूवक चुनोती स्वीकार कर ली तथा अगस्त मे भयानक युद्ध के लिए अपनी सेना की व्यूह-रचना कर ली। इस अवसर पर मराठा शिविर मे केवल महादजी शिन्दे को छोडकर प्राय समस्त मराठा सरदार तथा काण्डर उपस्थित थे। इनकी सख्या लगभग ७५ हजार तक पहुँच गयी थी। उनको मालूम हुआ कि अपनी अनुशासित पैदल सेना तथा निपुण तोपखाने के कारण टीपू कितना शक्तिशाली बन गया हे। मराठो का एकमात्र आलम्बन प्राचीन प्रथानुसार गुरिल्ला युद्ध था। वतमान अवसर पर दोनो प्रकार की युद्धकला के तुलनात्मक गुणो का वास्तविक प्रदशन हुआ। उसी पर राष्ट्रीय स्वाधीनता की रक्षा निभर थी। सावनूर के विस्तृत मैदान मे विशाल मात्रा मे इसका उपयोग किया गया। टीपू को पूण विजय प्राप्त हुई। उसने १० अक्तूबर को सावनूर पर अधिकार कर लिया। पटवर्धनो ने स्पष्ट स्वीकार किया—"शत्रु के भारी तोपखाने के सम्मुख हमारी युद्धशैली काम नही देती।" विशाल सख्या तथा विपुल साधन होते हुए भी उत्तम मराठा सरदार अपनी व्यक्तिगत रक्षा के निमित्त चिन्ताग्रस्त रहे। २ अक्तूबर को टीपू ने अकस्मात हरिपन्त पर आक्रमण कर दिया। सौभाग्यवश हरिपन्त ने भयानक द्रुत गति से अपनी रक्षा कर ली। परन्तु यह शिक्षा कभी हृदयगम नही की गयी कि टीपू अपने उत्तम रणकौशल, आकस्मिक चालो, शत्रु के निबल स्थानो की शीघ्र उपलब्धि तथा उनसे लाभ उठाने की अपनी तत्परता के कारण सफल हुआ था। शान्ति प्रस्तावो का आडम्बर सतत बनाये रखकर उसने मराठो को भ्रम मे डाल दिया।[४] होलकर तथा कुछ अन्य सरदारो को गुप्त रूप से प्रलोभन दिया गया, जिनके समाचारा पर शिविर मे स्वतन्त्रतापूवक वादविवाद हुआ। मराठो ने अनेक मास अनियत युद्ध मे व्यथ खो दिये। हरिपन्त को युद्ध का सचालन करना कठिन मालूम हुआ।

बादामी मे मैलेट की उपस्थिति तथा मराठो और अग्रेजो के बीच बढती हुई मैत्री ऐसे लक्षण थे, जिनकी उपेक्षा टीपू नही कर सकता था। वह अच्छी तरह जानता था कि मगलौर का अपमान प्रत्येक अग्रेज को पीडा दे रहा हे।

---

४ प्रमाण के लिए देखो, राजवाडे, जिल्द १०, पृ० २८६ तथा २८९

कम्पनी के शासन का अध्यक्ष इस समय वारेन हेस्टिग्ज सदृश अवसरवादी व्यक्ति नही अपितु उच्च आदशवादी गम्भीर राजनीतिज्ञ कानवालिस था, जो टीपू की शक्ति को क्षीण करने तथा समस्त प्राप्त साधनो का सगठन करके उनकी सहायता से टीपू का मानमदन करके खोई हुई स्थिति को पुन प्राप्त करने के लिए शनै-शनै तैयार हो रहा था। अत टीपू ने मराठो के साथ किसी प्रकार की सन्धि स्थापित करने के लिए अधिकाधिक चिन्ता व्यक्त की। नाना युद्ध से ऊब गया था। मराठा सरदारो के परस्पर विरोधी स्वत्वो तथा हितो से उसको घृणा हो गयी थी। इन्ही के कारण उनकी ओर से कोई भी सगठित काय असम्भव हो जाता था। हरिपन्त ने परिस्थिति का वृत्तान्त भयानक शब्दो मे नाना को भेजा तथा उसको स्वय रणभूमि मे आकर अवज्ञाकारी तथा घोर स्वार्थी सहयोगियो से बलपूवक काम लेने का निमन्त्रण दिया। परन्तु नाना को शिविर जीवन मे कोई रुचि नही थी, इसलिए उसने पूना छोडने से इनकार कर दिया। हरिपन्त अपनी परिस्थिति को समझ गया तथा उसने होलकर द्वारा भेजा गया टीपू का शान्ति-प्रस्ताव अविलम्ब स्वीकार कर लिया। वाद-विवाद तथा वार्तालाप के बाद सन्धि-पत्र पर माच, १७८७ के आरम्भ मे गजेन्द्रगढ मे हस्ताक्षर हो गये। इसकी मुख्य शर्तें निम्नलिखित थी

१ पाच वर्षो से नही चुकाये कर का शेष धन जो कुल मिलाकर ६५ लाख था और अब घटाकर ४८ लाख कर दिया गया था, टीपू मराठो को देगा—३२ लाख तुरन्त तथा शेष १६ लाख ६ महीने मे।

२ बादामी, नरगुण्ड तथा किट्टूर मराठो को दे दिये जाये और अडोनी निजामअली को।

३ सावनूर मराठा नियन्त्रण मे नवाब को पुन वापस कर दिया जाय।

४ युद्ध काल मे पकडे हुए समस्त बन्दी मुक्त कर दिये जायें।

श्रीरगपट्टन के कारावास मे कालोपन्त पेठे का देहान्त हो गया था। यह समाचार जोरो पर फैला हुआ था कि तुकोजी ने टीपू के लिए लाभदायक शर्तें निश्चित कराने मे भारी घूस खा ली है।

मराठो को इस युद्ध से कोई व्यावहारिक लाभ नही हुआ। अब उनकी सीमा का विस्तार तुगभद्रा नदी तक हो गया, जहाँ वे १७५६ ही मे पहुँच गये थे।

जब उत्तर मे महादजी दिल्ली मे मराठा गौरव बनाये रखने के लिए प्रयत्न कर रहा था, तब नाना को मालूम हुआ कि बाह्य सहायता के बिना वह दक्षिण मे खोयी हुई स्थिति पुन प्राप्त नही कर सकता। मैलेट शनै-शनै नाना के

हृदय म प्रवग कर गया कि मराठा राज्य की रक्षा के लिए वह ब्रिटिश मैत्री स्वीकार करन के सम्बन्ध मे प्रलोभन दे सके। वास्तव मे बादामी के स्थान पर निवास क समय नाना न टीपू के आक्रमण के दमन के लिए ब्रिटिश सेना का प्रबन्ध करन क लिए मलेट स प्रार्थना की। मैलेट न चतुरतापूवक उत्तर दिया कि मराठा क सदृश टीपू भी उनका मित्र हे अत अग्रेज किसी का पक्ष लेना पसन्द नही करग, व तटस्थ रहेगे। महादजी ने मराठा हितो के लिए हानिकारक समझकर ब्रिटिश मैत्री को प्रोत्साहन नही दिया।

यहा मराठा मैसूर सम्बन्धो का विषय समाप्त कर देना उपयुक्त होगा। तभी उत्तर भारतीय कार्यो की कथा कनी उचित रहेगी।

२ **त्रिदलीय सगठन की सन्धि**—सप्तवर्षीय युद्ध की समाप्ति (१७६३), जिसक द्वारा फ्रास पर ब्रिटिश समुद्री प्रभुता निश्चित हो गयी, बगाल की दीवानी का पट्टा (१७६५), तथा १७७३ का नियामक अधिनियम—एसी घटनाएँ है जिनके कारण भारतीय राजनीति म अग्रेजो के अनुकूल परिवतन उपस्थित हुए तथा भारत का भावी भाग्य निर्धारित हो गया। भारत मे ब्रिटिश सत्ता के प्रथम महान शासक वारेन हेस्टिग्ज न तेरह वष (१७७२-१७८५) तक घटनाओ को प्रभावित किया। १७८५ मे वारेन हेस्टिग्ज न अवकाश ग्रहण किया ओर तब उससे सवथा भिन्न प्रकार का अन्य शक्तिशाली व्यक्ति लाड कानवालिस घटनास्थल पर प्रकट हुआ जो भारत मे अपना काय १२ सितम्बर, १७८६ को आरम्भ करके ७ वष तक करता रहा और जिसने २० अक्तूबर, १७९३ को अवकाश ग्रहण किया। इस काल म कानवालिस ने ब्रिटिश-भारतीय राजनीति तथा प्रशासन मे आमूल परिवतन उपस्थित कर दिया। यूरोपीय इतिहास तथा राजनीति से सवथा अपरिचित होने के कारण भारतीय शासक इस समय भारतीय भाग्य को शान्तिपूवक सुनिश्चित करने वाली चालो का नही समझ सके। वारेन हेस्टिग्ज के कार्यो के कारण इगलैण्ड मे उठ खडे होने वाले आन्दोलन को कानवालिस अच्छी तरह समझता था। इसी आन्दोलन के कारण उस पर उसका प्रसिद्ध अभियोग चलाया गया था। वह सावधानी-पूवक आक्रमणात्मक कार्यो से दूर रहा। उसने आते ही कोई निर्णायक काय-पद्धति आरम्भ करने के पहले अपन प्रथम दो वष धीरतापूवक अध्ययन तथा अवलोकन मे व्यतीत किय। उसने हेस्टिग्ज की नीति मे एक महान अवगुण यह देखा कि उसने प्रत्येक दिशा मे अनेकानेक शत्रुओ को जन्म दे दिया था, जिनके कारण कम्पनी को घोर आर्थिक व्यय मे फँस जाना पडा। दक्षिणी प्रान्त की कौसिल सवथा नि सत्व थी। मगलौर की सन्धि से अग्रेजो के नाम

पर धब्बा लग गया था और उनका गौरव घट गया था। उत्तर मे शिन्दे मुगल दरबार मे शक्तिशाली हो गया था और दक्षिण मे टीपू ने ब्रिटिश सत्ता के लिए उद्धत वृत्ति धारण कर रखी थी। निजाम, अर्काट का नवाब, अवध का वजीर तथा स्वय सम्राट सब व्याकुलता तथा अविश्वास के शिकार हो गये थे। अत ब्रिटिश स्थिति सकटग्रस्त हो गयी थी—विशेषकर फ्रेंच जनो के पुन आक्रमणशील होने तथा टीपू सुल्तान की सहायता से भारत मे अपने माग को प्रशस्त बनाने के लिए प्रयत्नशील होने मे वास्तव मे यही उपयुक्त अवसर था कि भारतीय रगमच पर भारतीय स्वाधीनता को सुरक्षित रखने मे समथ शिवाजी या बाजीराव सदृश किसी विलक्षण पुरुष का उदय होता। मराठे, अग्रेज तथा मैसूर का शासक—स्पष्ट रूप से ये तीन मुख्य शक्तियाँ ही भारत मे प्रभुता के लिए स्पर्धा कर रही थी। व्यावहारिक रूप मे ये सब समान शक्तिशाली थे। अत इनमे से कोई दो मिलकर तीसरे की अपेक्षा आसानी से अधिक शक्तिशाली हो सकते थे। निजाम स्वय महत्त्वशाली नही था और उसका झुकाव सदैव विजयी पक्ष की ओर रहता था। टीपू को अपनी फ्रेंच मत्री से बहुत आशाए थी। उस समय फ्रास की महान क्रांति की कोई आशका नही थी तथा इगलैण्ड और फ्रास के बीच परम्परागत वैमनस्य टीपू की स्थिति को शक्तिशाली बनाने के लिए अनुकूल समझा जाता था। इस परिस्थिति मे टीपू ने मराठो से मैत्री सम्बन्ध बनाये रखने तथा अपने विरुद्ध उनको अग्रेजो मे न मिलने देने के लिए अथक प्रयत्न किया। कानवालिस भारत मे ब्रिटिश प्रभुता स्थापित करने के लिए वारेन हेस्टिग्ज की अपेक्षा कम उत्सुक न था, परन्तु वह ब्रिटन की तात्कालिक आवश्यकता के अनुसार उच्च-कोटि का राजनीतिज्ञ था। वह उन गड्ढो से दूर रहा, जिनमे वारेन हेस्टिग्ज फँस गया था। उस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी की आर्थिक स्थिति अत्यन्त सकटपूण थी। कानवालिस उस भयावह स्थिति से परिचित था जो शिन्दे ने उत्तर भारतीय राजनीति मे प्राप्त कर ली थी। इन सब तत्त्वो को ध्यान मे रखकर कानवालिस किसी भारतीय शक्ति के साथ हस्तक्षेप करने से विचारपूवक दूर रहा। अपने शासन-काल के प्रथम दो वर्षो मे उसने सावधानी से आर्थिक स्थिति को सँभाल लिया। इस काय के लिए उसने कम्पनी के प्रशासन की विभिन्न शाखाओ मे भारी मितव्ययता से काम लिया। भ्रष्टाचार का दमन किया तथा औपचारिक साक्षात्कारो एव अवसरो पर उपहार देने की प्रचलित प्रथा बन्द कर दी। १७८८ के अन्त मे जब उसको परिस्थिति अपने अनुकूल प्रतीत हुई, तब उसने बाह्य कार्यों की ओर ध्यान दिया। इनमे से सवप्रथम

टीपू सुल्तान की शक्ति का कुचल देना उसे आवश्यक जान पडा । इसी उद्देश्य से इस वर्ष तक घोर परिश्रम करके उसने निजाम और मराठों के साथ मित्रता स्थापित कर ली । वह सावधानीपूर्वक मन्द गति से गुप्त कूटनीति की टेढ़ी-मेढ़ी भूलभुलैया में होकर अपने मार्ग पर अग्रसर हुआ । इस कार्य में उसके विश्वस्त प्रतिनिधियों— पूना में मलेट तथा हैदराबाद में कैनवे—ने सहायता दी । मलेट ने नाना की भावनाओं पर अत्यन्त निपुणतापूर्वक प्रभाव डाला । उसकी प्रणाली मोस्टिन से सर्वथा विपरीत थी एवं उसके पत्र व्यवहार में सरलता से देखी जा सकती है । मलेट ने नाना की सद्भावना प्राप्त करके उसके तथा महादजी के बीच वैमनस्य उत्पन्न कर दिया ।

दो वर्ष के कठिन परिश्रम के बाद कार्नवालिस ने टीपू की शक्ति का दमन करने का निश्चय कर लिया । इस निमित्त उसने पूना तथा हैदराबाद से मित्रता कर ली । उसका अभिप्राय इन शक्तियों से कोई ठोस सैनिक सहायता प्राप्त करना नहीं, अपितु उसका साथ देने से रोकना था । १७८८ में उसने मैलेट को पेशवा से मैत्री प्रस्ताव करने का आदेश दिया । इसी प्रकार का कार्य उसने अपने विश्वस्त प्रतिनिधि कैनवे को सौंपकर प्रथम ब्रिटिश रेजीडेन्ट के रूप में निजामअली के दरबार में भेजा तथा त्रिदलीय मैत्री सगठित करने का आदेश दिया । मलेट ने पूना में अधिकांश मराठा भद्र पुरुषों से व्यक्तिगत मैत्री स्थापित की और इस प्रकार युद्ध में मैसूर के विरुद्ध पेशवा की शक्ति व्यस्त करने के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर लिया । नाना द्वारा प्रोत्साहित इस ब्रिटिश प्रगति में महादजी शिंदे को कोई रुचि नहीं थी ।

१२ अक्तूबर, १७८८ को बम्बई के मराठा दूत ने नाना को लिखा—"मैलेट यहा दस दिन से है । गवर्नर के साथ उसकी लम्बी बातचीत चल रही है । वे टीपू के विरुद्ध प्रस्तावित युद्ध तथा उसको फ्रेंच सहायता प्राप्त होने की सम्भावना पर बातचीत कर रहे हैं ।" वह आगामी वर्ष २९ मार्च से ११ अप्रैल तक उस योजना को परिपक्व करने के लिए फिर बम्बई में ठहरा । वापस होने पर वह पेशवा की सरकार के साथ मैत्री सन्धि करने में सफल हो गया । इसकी एक पाण्डुलिपि हैदराबाद को भेजी गयी । एक वर्ष से भी अधिक समय तक यह विषय विचाराधीन रहा ।

अंग्रेजों के साथ रहकर युद्ध सचालनार्थ नेता के निर्वाचन के लिए नाना ने परशुराम भाऊ तथा हरिपन्त के साथ परामर्श किया । उन दोनों ने उत्तर-दायित्व ग्रहण करने से इनकार कर दिया । पूना के एक सवाददाता ने लिखा है—"परशुराम भाऊ कहता है, 'अब मैं निर्बल हो गया हूँ, अत इस कठिन

काय को अगीकार करके असफलता को निमन्त्रण नही दे सकता।' हरिपन्त को पेट की बीमारी हो गयी हे, अत वह भी युद्ध मे मराठा सेनाओ का नेतृत्व करने से इनकार करता हे। शासन का अ यक्ष नाना आजीवन भय तथा कायरता के वशीभूत रहा है। वह नही जानता कि क्या करे। यहा पर सेना को वेतन नही मिला है। यहा के सैनिक दक्ष भी नही हे। पेशवा के सम्बन्ध मे यह हे कि अपने हरिण समूह के अतिरिक्त वह किसी बात की ओर ध्यान नही देता। परिणाम की कल्पना आप कर सकते ह।"[५]

यद्यपि मराठे ओर निजामअलीखा दोना टीपू सुल्तान के आक्रमणो का दमन करने के लिए उत्सुक थे, परन्तु इस समय भारतीय राजनीति का स्वरूप सवथा भिन्न दिशा मे घूम गया था। ब्रिटिश शक्ति शीघ्रतापूवक उन्नति कर रही थी तथा इस समय भारत की सुरक्षा तथा स्वतन्त्रता के लिए भय उपस्थित कर रही थी। अत अन्य भारतीय शक्तियो को टापू के विनाश के विषय मे स्वभावत कोई उत्साह नही था। भारत के हित मे उसका अस्तित्व आवश्यक समझा जाता था। उसे फ्रेंच शक्ति का समथन प्राप्त था ओर आशा थी कि यह समथन अग्रेजा के लिए प्रतिबन्ध सिद्ध हागा। कानवालिस के योग्य निर्देशन मे मैलेट तथा कैनवे ने लगभग दो वप के सतत् परिश्रम के बाद तीनो शक्तियो के बीच ठास सगठन स्थापित करने का सफल प्रब ध कर लिया। मराठा सन्देह को दूर करने के लिए कानवालिस युद्ध काल मे बम्बई की सेना को मराठा अधिकार मे दे देने की सीमा तक बढ गया।

मैलेट ने नाना को सूचना दी कि कानवालिस वास्तविक युद्ध के कमाण्डर का पद स्वय सँभालना चाहता हे तथा उसने सुझाव दिया कि अल्पवयस्क पेशवा भी स्वय रणक्षेत्र मे सेनाओ के साथ जाकर आवश्यक अनुभव तथा प्रशिक्षण प्राप्त करे। पेशवा की आयु उस समय १६ वप की थी तथा पेशवा वश की सैनिक परम्पराओ के अनुसार वह यह माग ग्रहण करने के लिए सवथा योग्य था। नाना फडनिस ने मैलेट का सुझाव स्वीकार नही किया। उसको युद्ध के विषय मे अधिक उत्साह नही था, पर वह मैलेट की प्रेरणा से अनिच्छा पूवक सहमत हो गया। १४ धाराओ वाली सन्धि १ जून, १७६० को निश्चित हो गयी। दस हजार सवारो के मराठा दल को पूना से पूरा व्यय मिलना निश्चित था और यह दल ब्रिटिश सेना के साथ जाने वाला था। युद्ध मे अधि कृत प्रदेशो तथा गढो का बटवारा मित्रो के बीच समान रूप से होना निश्चय

---

५ खरे, ३१८८

था ।[६] निजाम ने सन्धि मे विशेष शर्त का प्रस्ताव किया कि ब्रिटिश लोग किसी भी भावी मराठा आक्रमण मे उसकी रक्षा करने की प्रतिज्ञा करे । परन्तु बार बार उपस्थित की जाने पर भी यह शर्त स्वीकार नही की गयी । इसी प्रकार नाना फडनिस ने कार्नवालिस से कहा कि बनारस का तीर्थ स्थान मराठो को दे दिया जाय । उसकी इच्छा थी कि औरगजेब द्वारा भूमिसात किये गये विश्वेश्वर के प्राचीन हिन्दू मन्दिर की पुन स्थापना की जाये । यह प्रार्थना भी स्वीकार नहीं की गयी ।

दक्षिण की तीनो शक्तियो मे निजाम निर्बलतम था । वह अच्छी तरह जानता था कि टीपू की शक्ति भग होते ही मराठो से सन्धि का प्रतिबन्ध हट जायेगा । ऐसी दशा मे सर्वप्रथम उसी पर आक्रमण किया जायेगा, क्योकि उसने अनेक वर्षो से चौथ का भारी शेष धन नही दिया था । अत उसने सन्धि के प्रमाणीकरण मे विलम्ब किया । वह प्रयास कर रहा था कि कार्नवालिस वर्तमान युद्ध की समाप्ति के बाद मराठा स्वत्वो के विरुद्ध उसके लिए ब्रिटिश सुरक्षा देने की प्रतिज्ञा कर ले । अपने मराठा मित्रो को अप्रसन्न किये बिना कार्नवालिस इस प्रकार का प्रस्ताव स्वीकार नही कर सकता था । कार्नवालिस इस समय भारतीय शक्तियो की नवीन राजनीतिक व्यवस्था सम्बन्धी आज्ञा देने को तैयार नही था । उसने निजाम के साथ कैसी भी प्रतिज्ञा करने से इनकार कर दिया, किन्तु उसने यह आश्वासन दिया कि विवाद उत्पन्न होने पर वह उसके समाधान के लिए एक मित्र का सा व्यवहार करेगा, परन्तु उसका यह व्यवहार वर्तमान प्रतिज्ञाओ के अनुरूप ही होगा । बहुत तर्क-वितर्क के बाद ४ जुलाई, १७९० को निजामअली ने पूना की सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये, परन्तु वह पूरे युद्ध काल मे मराठो के विरुद्ध ब्रिटिश समर्थन का आश्वासन प्राप्त करने के लिए कार्नवालिस पर दबाव डालता रहा ।

३ **मैसूर युद्ध की झडपे**—युद्ध की कथा कहने से पहले टीपू के पिछले जीवन का कुछ वर्णन कर देना आवश्यक है । उसकी आयु इस समय (१७९० मे) ३७ वर्ष की थी । उसका जन्म १७५३ मे देवानहल्ली के स्थान पर फखरुन्निसा नामक उच्चकुलोत्पन्न महिला से हुआ था । उसके पिता ने उसको पढने, लिखने, हिसाब-किताब तथा सैनिक कला की अच्छी शिक्षा दी थी ।

---

६ देखो, पूना रेजीडेन्सी करस्पोन्डेन्स, जिल्द ३ । पूर्ण सन्धि के लिए देखो, पारसनिस कृत 'मैलेट की जीवनी', पृ० ४०, तथा इ० स० ऐतिहासिक टिप्पणी, जिल्द ५ पृष्ठ ३६

परन्तु अपने पिता का विवेक तथा सावधानी उसे उत्तराधिकार मे नही मिले। उसके विशेष गुण घोर साहस, आत्म महत्त्व और सवज्ञता की तीव्र चेतना थे। वह धर्मान्ध भी था। अपने धम की मख्या वृद्धि द्वारा इस्लाम के गोरव के लिए वह तलवार के उपयाग की प्रतिज्ञा वाला प्रजापीडक भी था। मलाबार मे उमने एक ही अभियान मे एक लाख हिन्दुओ को मुसलमान बना लिया था। १७८६ मे उसने अपने को सम्राट घोपित कर दिया तथा अपने राज्य की सभी मस्जिदा मे अपने नाम का खुतबा पढवाया। ब्रिटिश सत्ता से उसका घोर घृणा थी तथा उन्हे भारत से निकाल बाहर करना उसके जीवन की मुख्य प्रेरणा थी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने सब प्रकार की सैनिक तैयारी की तथा अपने ही प्रदेश का बगलौर नगर निजन कर दिया, जिससे आक्रमण-कारी अग्रेजो को अन्न-जल के अभाव के कारण वही रुक जाना पडे। ४ अगस्त, १७८८ का उसने दो व्यक्तिगत यूरोपीय कायकर्ताओ को फ्रास के राजा के पास पत्र लेकर भेजा ओर सेना सहित भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया। य तैयारिया तथा प्रगतिया गुप्त नही रह सकती थी, अत कानवालिस उनका सामना करने के लिए तैयार हो गया।

इस समय हमारा सम्बन्ध युद्ध के केवल मराठा सम्बन्धी भाग से है। अन्य विवरण दूसरी जगह मिल सकते है। कानवालिस पहले से ही मद्रास प्रान्त मे ब्रिटिश कार्यो के भयानक कुप्रबन्ध से परिचित था। गवनर कैम्पबेल ने बीमार होकर १७८८ मे अवकाश ग्रहण कर लिया था। उसका उत्तरा-धिकारी हालैण्ड हुआ जा टीपू से युद्ध करने के लिए किसी प्रकार इच्छुक नही था। उसन कानवालिस के पास इस प्रगति के विरुद्ध अपना कडा विरोध पत्र भेजा। अत कानवालिस ने उसको त्यागपत्र देने पर विवश करके उसके स्थान पर सर विलियम मेडोज को नियुक्त कर दिया। मेडोज बम्बई का वीर सैनिक था। १७८० मे मद्रास पर हैदरअली के प्रथम आक्रमण के समय उसने घोर अपमानो को सहन किया था। इस कारण वह प्रतिशाध की ज्वाला से व्याकुल हो रहा था। परन्तु मेडोज प्रशासन के अन्य कार्यों के प्रबन्ध के लिए सवथा अयोग्य था। बम्बई की सेना मई, १७९० मे जलमाग से मलाबार समुद्रतट पर पहुँच गयी। मेडोज ने उसी समय पूव से पश्चिम की ओर धावा किया। इन आरम्भिक प्रगतियो मे टीपू मेडोज को परास्त करके मद्रास की ओर पीछे ढकेलन मे सफल हो गया। इस पराभव का कानवालिस के मन पर यह प्रभाव पडा कि उसने युद्ध का भार स्वय सँभालने का निश्चय किया तथा टीपू के विरुद्ध सेनाओ का नेतृत्व स्वय सभाला। १२ दिसम्बर, १७९० को कानवालिस मद्रास

पहुंच गया तथा अभियान की सम्पूर्ण योजना बनाने के बाद उसने जनवरी, १७९१ में कमाण्डर का पद ग्रहण कर लिया। इस बीच मे मराठे क्या कर रहे थे ?

१ जून, १७९० को पूना में सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद परशुराम भाऊ ने धारवाड के विरुद्ध प्रयाण किया। उसके साथ जाने वाली ब्रिटिश सेना कैप्टिन लिटिल के अधीन थी। भाऊ २२ सितम्बर को वहा पहुच गया। टीपू के अधिकारी बदीउज्जमाखा ने अक्तूबर से अप्रैल तक ६ मास घोर अवरोध काल मे वीरतापूर्वक इस स्थान की रक्षा की। कैप्टिन मूर के विशद विवरण मे इस युद्ध के अनेक रोचक वृत्तान्तो का वर्णन है। ६ अप्रैल को धारवाड पर अधिकार हो गया और मराठा ध्वज फहराने लगा। यदि परशुराम भाऊ तुरन्त आगे बढकर कार्नवालिस से मिल जाता, जो उस समय बगलोर पर अधिकार करने के बाद श्रीरगपटटन के विरुद्ध प्रयाण कर रहा था, तो शायद एक ही अभियान मे युद्ध समाप्त हो जाता। परन्तु दोनो मित्रो के उद्देश्य पृथक थे, अत भाऊ हृदय से कार्नवालिस की योजना के साथ न था। टीपू मराठो को तटस्थ करने के लिए पूना सरकार से यथाशक्ति प्रयास करता रहा। प्रगतियो के विलम्ब मे इसका कम प्रभाव नही पडा।

मैडोज को सेना मे द्वितीय पद देकर कानवालिस ने फरवरी मे मद्रास से प्रस्थान किया तथा तीव्र वेग से बगलोर के विरुद्ध बढा। बगलौर पर २१ मार्च को अधिकार कर लिया गया। इस आश्चर्यकारी कौशल पर उसके मित्र भी अवाक रह गये। बगलौर पर अधिकार करने के बाद कानवालिस ने तुरन्त श्रीरगपट्टन के विरुद्ध प्रयाण कर दिया। श्रीरगपटटन के पतन से युद्ध एक धावे मे ही समाप्त हो जाता। कुछ समय बाद १३ अप्रैल को निजामअली की सेना कानवालिस के साथ हो गयी। इसका कमाण्डर निजाम का पुत्र फौलाद जग था। दो मन्त्री मुशीरुलमुल्क तथा मीर आलम उसके सहायक थे। उन सबने कानवालिस से प्रथानुसार औपचारिक भेट की। हरिपन्त फडके, जिसकी इच्छा सन्धि की शर्तों को अविलम्ब पालन करने की नही थी, १७९१ के आरम्भ मे पूना से चला। कुछ दूर तक नाना और मैलेट उसके साथ रहे, परन्तु वे वापस चले गये, क्योकि उनकी उपस्थिति आवश्यक नही समझी गयी। हरिपन्त निजामअली से मिलने तथा स्वतन्त्र योजना का निर्माण करने के विचार से पूर्व की ओर चला। वे रायचूर से लगभग ५० मील पूर्व मे पगल के स्थान पर मिले और हरिपन्त निजामअली के दल के साथ मन्द गति से बगलौर की ओर बढा। परशुराम भाऊ तथा हरिपन्त यदि शीघ्रता से प्रयाण करते तो सम्भवत अप्रैल मे कानवालिस के साथ हो सकते थे। परन्तु दोनो मराठा सरदारो ने

अपना मूल्यवान समय मैसूर के उत्तरी जिलो को अधीन करने मे नष्ट कर दिया। कानवालिस अधीर हो गया और अधिक प्रतीक्षा किये बिना वह बलपूर्वक श्रीरगपटटन के विरुद्ध बढा। अरिकेरा के स्थान पर १८ मई को टीपू से उसका भयानक युद्ध हुआ। लाड कानवालिस जब टीपू की राजधानी पर अन्तिम प्रहार के लिए प्रयाण करने की तैयारी कर रहा था, तभी उसके सामग्री विभाग ने सूचना दी कि भोजन सामग्री समाप्त हो जाने के कारण एक पग भी आगे बढना असम्भव हे, भारवाहक पशु सूखकर काँटा हो गये हे तथा समस्त शिविर क्षुधा तथा राग का शिकार हो रहा हे। गवनर जनरल समझ गया कि उसकी मुक्ति अविलम्ब प्रत्यागमन पर निभर हे। उसने २६ मई को लोटना आरम्भ कर दिया।

इस बीच मे २४ मई को परस्पर सयुक्त हाकर दोना मराठा सेनाओ ने श्रीरगपटटन की ओर शीघ्रता से प्रयाण किया। एक सेना धारवाड से परशुराम भाऊ के नेतृत्व मे आयी थी और दूसरी पूव से हरिपन्त ने नेतृत्व मे। ब्रिटिश सेना की शीघ्र प्रगति तथा कानवालिस द्वारा एक ही धावे मे युद्ध समाप्त कर लेने की सम्भावना से उन्हे बहुत क्लेश हो रहा था। इस प्रकार सम्भव था कि मित्रो को युद्ध का अवसर ही न मिले और वे लूट मे कुछ भी हिस्सा न ले पावे। टीपू की राजधानी से लगभग २० मील उत्तर मे मेलकोटा के समीप वापस होते हुए ब्रिटिश लोगो ने सहसा इन सेनाओ को देखा। टीपू के निपुण गुप्तचरो ने तीनो मित्रो की पृथक-पृथक् गतिविधियो का समाचार एक दूसरे तक न पहुँचने देने का सफल प्रबन्ध कर लिया था। इस विषय मे ब्रिटिश वणन से प्रकट हाता है कि यदि कानवालिस को मराठा सेनाओ के निकटागमन का समाचार एक सप्ताह पूव प्राप्त हो जाता तो वह कभी पीछे न हटता। धनाभाव के कठार कष्ट के कारण हरिपन्त की प्रगति मे विलम्ब हो गया। परन्तु जो कुछ भी हुआ वह सबके लिए स्वस्थ एव सहायक लग रहा था। मराठो के पास विशाल भोजन सामग्री थी, जिससे ब्रिटिश सेना का आहार सम्बन्धी कष्ट दूर हो गया। "नाना प्रकार की वस्तुएँ—इगलिश लकलाट, कलम बनाने वाले बर्मिघम के चाकू, कश्मीर के उत्तम शाल, दुष्प्राप्य तथा बहुमूल्य आभूषण और साथ-साथ बैल, भेड, पक्षी एव अत्यन्त समृद्ध नगर मे प्राप्य सामग्री उपस्थित थी।"[७]

हरिपन्त ने क्षुधापीडित अग्रेजो को भोजन सामग्री बेची। उसकी सेना का वेतन बहुत दिनो से शेष था इसलिए उसने कानवालिस से १२ लाख रुपये का ऋण मागा। कानवालिस ने अविलम्ब यह ऋण दे दिया। उसने इस काय मे

---

[७] माशमैन, जिल्द २, पृष्ठ २०

कम्पनी के व्यापार के लिए चीन जाने वाले सोने का उपयोग किया और यह धन युद्ध के व्यय मे डाल दिया। कानवालिस, परशुराम भाऊ तथा हरिपन्त २८ मई को मार्नी तालाब पर प्रेमपूर्वक मिले। इसके बाद टीपू सुल्तान के विरुद्ध उत्तम योजना बनाने के लिए वार्तालाप तथा विचार-विनिमय हुआ। सबको इसी योजना के अनुसार काम करना था। अभियान की ऋतु लगभग समाप्त हो गयी थी। वर्षा आरम्भ हो गयी थी और कावेरी मे बाढ आ गयी थी। अत यह निश्चय किया गया कि श्रीरगपट्टन पर आक्रमण वर्षा ऋतु के समाप्त होने तक स्थगित कर दिया जाये तथा इस अवकाश मे सफल आक्रमण के लिए तैयारी की जाय। कानवालिस और हरिपन्त को बगलौर के समीप तीन मास तक परस्पर भाईचारा स्थापित करने की सुविधाएँ मिलना इसी सहवास का महत्त्वपूर्ण परिणाम था। ७ जुलाई को कानवालिस ने अपनी अनुशासित सेना का शानदार प्रदर्शन किया, जिसकी अनुपम निपुणता का दोनो मराठा सरदारो तथा उनके अनुचरो पर बहुत प्रभाव पडा। तीन मास तक दो अपरिचित राष्ट्रो के उत्तम तथा परम बुद्धिमान व्यक्ति साथ-साथ रहे और निकट सम्पर्क से उन्होने बहुमूल्य शिक्षाएँ तथा लाभ प्राप्त किये। निजाम की सेना भी समस्त काल मे समीप ही उपस्थित रही तथा पारस्परिक तुलना द्वारा इसकी अकुशलता और दुर्व्यवस्था अधिक स्पष्ट हो गयी। "विलासी अश्वारोही उन लोगो की रक्षा करने मे भी समर्थ नही थे जो उनके लिए खाद्य सामग्री जुटाने का काम करते थे। इस प्रकार ये लोग रणक्षेत्र की दृष्टि से सर्वथा अनुपयुक्त थे। अत उन्होने अग्रेजी रक्षा टुकडियो से दूर जाना शीघ्र ही बन्द कर दिया।"[८]

टीपू ३० वर्षो से भी अधिक समय से परशुराम भाऊ के परिवार के साथ अन्याय कर रहा था। उसका प्रतिशोध स्वतन्त्र रूप से लेने का अवसर हाथ से निकल गया। इस कारण उसे अत्यन्त खेद हुआ। अक्तूबर मे भाऊ ने बेदनूर के जिले की ओर प्रयाण किया। इसकी विजय के लिए नाना साहब के समय से ही वीर प्रयास किये जा रहे थे। रघुनाथराव पटवर्धन ने टीपू के विरुद्ध प्रतिशोध की भावना से उत्तेजित होकर श्रृगेरी के शकराचार्य का पवित्र मठ इस समय अकारण ही नष्ट कर दिया। हिन्दू धर्म पर यह प्रहार सवर्ण हिन्दुओ की ओर से ही किया गया। मराठा इतिहास मे यह दु खद सस्मरण बहुत दिनो जीवित रहा।

टीपू को कानवालिस की ओर से ऐसे शीघ्र प्रहारो की आशका नही थी। सकट द्वारा सब दिशाओ से घिर जाने तथा अपनी ही राजधानी मे ढकेल दिये

---

८ मार्शमैन, जिल्द २, पृष्ठ १७

जाने पर उसने क्रूरतापूण धर्मान्धता को नियन्त्रित कर लिया ओर अपने मन्त्री पुनैया को कानवालिस से मिलकर शर्ते प्राप्त करने भेजा। उसने आग्रह किया—"सयम तथा सज्जनता के लिए प्रसिद्ध अग्रेज स्वय को कलकित न करे। मै प्राचीन तथा प्रतिष्ठा प्राप्त शासक नही हूँ, अत दुगति सहन करने को तैयार हूँ। मै बिना कष्ट के उस सम्पत्ति की हानि सह सकता हूँ जो मेरे पिता तथा मैने केवल बाहुबल से प्राप्त की है।" टीपू ने अपने बन्धन मे पडे अनेक अधिकारियो को आगामी युद्ध बन्द करने की शत पर मुक्त करने का वचन दिया। इस समय वह कची के हिन्दू मन्दिरो मे गया। यहा हैदरअली द्वारा प्रारम्भ किये गये मुख्य मन्दिर के प्रधान द्वार का निर्माण अधूरा पडा था। टीपू ने यह काय शीघ्र समाप्त करने तथा इसका धन स्वय देने को कहा। उसने विस्तृत हिन्दू रथयात्रा का स्वय नेतृत्व किया और अपने ही हाथो से विशाल आनिशबाजी छोडी। उसका अभिप्राय यह प्रकट करना था कि उसे हिन्दू धम के हितो की बहुत चिन्ता हे। उसने अनेक ब्राह्मणो को हिन्दू धम के अनुसार अनुष्ठान करने तथा उसकी सेना की सफलता के लिए प्राथना करने के काय पर नियुक्त किया। अनेक ब्राह्मण कुछ दिनो तक जलमग्न रहकर विशेष तपस्या करने के लिए नियत किये गये। उसने शृगेरी मठ के शकराचाय को पूजाविधि के निरीक्षण के लिए उपस्थित रहन का निमन्त्रण दिया, जिससे युद्ध मे उसकी सफलता निश्चित हो जाये। उसने हिन्दू मन्दिरो मे नवीन स्वण प्रतिमाओ की स्थापना पर वडी मात्रा मे धन व्यय किया। ४० हजार ब्राह्मणो को भिक्षा तथा भोजन दिया गया। इस प्रकार उसने ससार को यह बताया कि वह मुसलमान होते हुए भी हिन्दू हितो की रक्षा करता हे, जबकि इसके विपरीत हिन्दू पटवधन परिवार ने शकराचाय के मठ को नष्ट कर दिया। इस प्रकार, सक्षेपत विवशतापूण अकमण्यता के समय मे टीपू ने शान्ति स्थापित करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। उसने पूना को द्रुतगामी दूत भेजे तथा नाना फडनिस से मध्यस्थ बनने की प्राथना की। हरिपन्त तथा निजामअली के शिविरो मे भी टीपू के दूता ने यही काय अधिकाधिक मात्रा मे किया। उसने फ्रेंच सहायता के लिए भी साग्रह प्राथनाएँ भेजी।[९]

४ **टीपू की अधीनता**—कानवालिस टीपू की इन तूफानी गतिविधियो के

९ पारसनिस ने इ० स० मे १७ पत्र छापे हे जो हरिपन्त फडके ने नाना फडनिस को ६ फरवरी से ७ माच, १७९२ तक लिखे थे। इनका शीषक 'विभिन्न काय' है। ये टीपू की प्रवृत्तियो तथा मित्रो की राजनीति को अन्य पत्रो की अपेक्षा उत्तम रूप से प्रकट करते है।

साथ साथ अपने दोनों मित्रों के जटिल आन्तरिक षडयन्त्रों से भी सुपरिचित था। उसने शान्ति के निश्चय करने का प्रबन्ध इस प्रकार किया कि बाह्य हस्त-क्षेप के लिए किसी को कोई अवसर नहीं मिल पाया तथा नाना प्रकार की समस्याओं के निपटाने में उसने अपने को कूटनीति का पूर्ण अधिकारी सिद्ध कर दिया। इस समय उसमें तथा उसकी सेना में उच्चतम उत्साह का भाव था। उन्होंने फरवरी, १७९२ के आरम्भ में आगे बढ़ना आरम्भ कर दिया। जैसे ही सेनाओं ने श्रीरंगपट्टन पर आक्रमण आरम्भ किया, हरिपन्त ने कार्नवालिस पर अपने व्यक्तिगत प्रभाव का उपयोग किया तथा उसको टीपू का अधीनता प्रस्ताव स्वीकार करने और युद्ध बन्द करने के लिए सहमत कर लिया। हरिपन्त लिखता है—"५ फरवरी को अंग्रेजी सेनाएँ पट्टन से ५ मील की दूरी पर पहुंच गयीं। उनके पीछे मराठा सेनाएँ थीं और बाद में नवाब की सेनाएँ। उसी रात्रि को भारी तोपों ने टीपू की सेना की पंक्तियों पर अग्निवर्षा आरम्भ कर दी। टीपू शत्रु के प्रतिरोध के लिए सावधानीपूर्वक तैयार था, परन्तु अंग्रेजी वीरता ने समस्त विघ्न-बाधाओं को पार कर लिया। उनकी भारी क्षति हुई—लगभग ७०० गोरे तथा १ हजार भारतीय सिपाही मारे गये। दूसरे दिन भी रण होता रहा, जिससे थककर दोनों दल पूरे तीसरे दिन विश्राम करते रहे। चौथे दिन अंग्रेजों ने अपना आक्रमण इस उग्रता तथा निश्चय से आरम्भ किया कि हमने इस प्रकार का दृश्य पहले कभी नहीं देखा था। टीपू ने भी समान धैर्य से उत्तर दिया। टीपू ने उस समय तक जो महान क्षति सहन की उससे कार्नवालिस को विश्वास हो गया कि श्रीरंगपट्टन पर सरलता से अधिकार होना सम्भव नहीं है। ११ फरवरी को लार्ड कार्नवालिस तथा मुझको टीपू के पत्र मिले, जिनमें उसने अपने राजदूत भेजने की बात कह कर उत्तर की प्रार्थना की थी। कठिन परिस्थिति का सामना करते हुए भी सज्जन लार्ड ने राजदूत को शिविर में बुलाने की इच्छा व्यक्त की। साथ ही उसने कहा कि यदि हमें स्थिति असन्तोषजनक प्रतीत होगी तो युद्ध पुनः आरम्भ कर देंगे। तब टीपू का राजदूत आया और मेरी मध्यस्थता से समझौता हो गया। इसका तात्पर्य था, टीपू अपना आधा राज्य और तीन करोड़ का नकद दण्ड दे। जब तक भुगतान न हो जाये, वह अपने दो पुत्रों का शरीर-बन्धक रूप में समर्पण कर दे। टीपू ने शर्त स्वीकार कर ली और हस्ताक्षर कर दिये। उसके दोनों पुत्र जिनकी आयु १० तथा ८ वर्ष की थी, २५ फरवरी को अंग्रेजी शिविर में पहुँच गये। वे अपने साथ टीपू के इस आशय के व्यक्तिगत पत्र लाये कि सज्जन लार्ड उनको अपना पुत्र समझें। कैनेवे, दौला (मुशीरुलमुल्क)

और मैने परामश किया । हमने गोविन्दराव काले, बचाजी मेहेन्टाले और अप्पा बलवन्त को भी बुला लिया था । मिलकर शर्तो का प्रस्ताव किया गया, जिनको टीपू ने स्वीकार कर लिया और युद्ध समाप्त हो गया । टीपू के दोनो पुत्रा का तीनो शिविरो मे अलग-अलग सत्कार किया गया । मेरे डेरे मे आकर उन्होने बताया कि वे भूखे हे । मैने अलग डेरे मे उनको भोजन दिया । टीपू ने अपने दीवान पुनया को शर्तों के पालनाथ भेजा । मेडोज तथा कानवालिस ने २६ फरवरी को वार्तालाप किया । बाद मे मेडोज अपने डेरे को वापस चला गया । वहा उसने गोली मारकर आत्महत्या कर ली । मालूम होता हे कि वह शर्तो का अनुमोदन करने को तैयार नही था । कानवालिस ने कृपापूवक बगलोर का गढ टीपू को वापस कर दिया । सब बातो को ध्यान मे रखते हुए हमको भयानक रण का अनुभव हुआ और हमने अपने श्रीमन्त के अहोभाग्य से महान सफलता प्राप्त की । मेरी इच्छा तुरन्त वापस आने की हे, परन्तु लाड का आग्रह हे कि पृथक हाने के स्थान तक मै उसके साथ यात्रा करूँ ।"

टीपू के साथ युद्ध ब द करने के लिए सहमत होने मे कानवालिस का उद्देश्य बाद को कुछ भिन्न मालूम हुआ । वारेन हेस्टिंग्ज पर चलने वाले अभियोग के कारण इगलैण्ड का वातावरण इस समय विषम हो रहा था । कानवालिस ने पहले ही बहुत धन व्यय कर दिया था । अब उसने वह नकद धन भी युद्ध मे झोक दिया जो चीन मे व्यापार पर लगाया जाने वाला था । अत डाइरेक्टरो ने उसको तुरन्त युद्ध बन्द करने ओर अधिक व्यय रोक देने की आज्ञा भेजी । इस परिस्थिति मे कानवालिस हानिकारक काय से बच गया तथा शत्रु का अन्तिम रूप म नाश कर देने के स्थान पर उसने इस प्रकार की उदार शर्तो को पाकर युद्ध बन्द कर दिया ।

१७६१ की ग्रीष्म ऋतु मे टीपू के विरुद्ध कानवालिस के असफल अभियान के सम्बन्ध मे महादजी शिन्दे पर होने वाली प्रतिक्रिया का उल्लेख रोचक होगा । उस समय वह राजपूत सघ के विरुद्ध युद्ध का सचालन कर रहा था और उसन अग्रेजो से प्रस्ताव किया था कि यदि गवनर जनरल इलाहाबाद से आने वाले दो ब्रिटिश दला को राजस्थान के युद्ध मे उसकी सहायता करने की आज्ञा दे दे तो वह स्वय सेना सहित अग्रेजो का साथ देने को प्रस्तुत है । पर इस प्रस्ताव का घृणापूवक तिरस्कार कर दिया गया ।[१०]

श्रीरगपट्टन से हरिपन्त की वापसी से पहले ही टीपू सुल्तान स्वय कुछ

[१०] देखो कीन कृत, 'महादजी सिन्धिया', पृ० १६१

समय के लिए उससे गुप्त रूप से मिला। इस घटना का इतिहास मे शायद कोई उल्लेख नही है। इस अवसर पर टीपू ने हरिपन्त को अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण चेतावनी दी। उसने कहा—"यह आप अवश्य जान ले कि मै सर्वथा आपका शत्रु नही हूँ। आपके वास्तविक शत्रु अंग्रेज लोग है, जिनसे आप सावधान रहने का प्रयत्न करे।"[११] उसकी यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। टीपू केवल हार गया था उसका सर्वथा अन्त नही हुआ था। उसको कुछ पता नही था कि इस समय उसके मित्र फ्रेंच लोगो की यूरोप मे क्या दशा है। टीपू को उनसे भारत की भावी राजनीति मे बडी बडी आशाएँ थी। उसको विश्वास था कि उनकी सहायता से वह एक दिन अपनी स्थिति पुन प्राप्त कर लेगा। स्वयं कार्नवालिस भी समझता था कि वह दिन शीघ्र आ जायेगा जब उसको अन्तिम रूप से टीपू का नाश करना पडेगा। हरिपन्त इस परिस्थिति के गूढ अर्थो को कहा तक समझता था, हमारे पास इसे जानने का कोई साधन नही है। वह बगलोर के समीप फरवरी और मार्च के ६ सप्ताहो मे कार्नवालिस से मित्र की भाति बातचीत करता रहा था। हरिपन्त के वास्तविक तथा सरल व्यवहार का कार्नवालिस पर बहुत अनुकूल प्रभाव पडा, क्योकि यह व्यवहार वास्तविक योद्धा के सर्वथा उपयुक्त था। उनके बीच प्रत्येक प्रकार के शिष्टाचार का स्वतन्त्रतापूर्वक आदान-प्रदान हुआ। भोज दिये गये, आमोद-प्रमोद का प्रबन्ध हुआ और इनमे मुशीरुलमुल्क ने भी भाग लिया। निजाम की सेना तथा उसके प्रशासन के विषय मे कार्नवालिस की धारणा अत्यन्त निम्न कोटि की थी, जबकि मराठो की सेना तथा उनका प्रशासन उसको बहुत अच्छा मालूम हुआ। वह लिखता है—"ये सेनाएँ सुस्त तथा बेकार है। ये केवल बहुमूल्य भोजन-सामग्री को खा-पीकर समाप्त करने मे ही समर्थ है। ये निश्चय रूप से किसी भी उपयोगी कार्य मे विघ्न-बाधा है।"[१२]

यह मूल्याकन समस्त पर्यवेक्षको को असंदिग्ध रूप से स्पष्ट हो गया होगा। कैप्टिन लिटिल के अधीन बम्बई के दल को परशुराम भाऊ के साथ वापस होने की आज्ञा मिल गयी, क्योकि वह उसी के साथ आया था। नाना फडनिस ने उन्हे पूना पहुँचने की आज्ञा दी थी, जिससे वह (नाना) महादजी शिन्दे के आशकित आक्रमण के सम्भावित सकट का सामना कर सके। परन्तु कार्नवालिस ने इस आज्ञा के पालन से साफ इनकार कर दिया। हरिपन्त ने लार्ड

---

[११] इतिहास संग्रह ऐतिहासिक किर्कोल प्रकरणे, भाग २
[१२] देखो कीन कृत, 'महादजी सिन्धिया', पृ० ११०

कानवालिस के उच्च तथा वीरपुरुषोचित आचरण ओर स्पष्ट, मभ्य तथा आत्मीयतापूण स्वभाव का परिचय नाना को प्रशसापूण ढग से दिया । हरिपन्त लिखता है—"आकृति से सौम्य लाड ६० वप से ऊपर की आयु का प्रतीत होता है। उसके सब बाल सफेद हे। बगाल मे कुछ मास ठहरकर वह अवकाश ग्रहण करने वाला है।" १० अप्रैल को मित्र सामन्त एक-दूसरे मे विदा हो गये । हरिपन्त तथा लाड कानवालिम के बीच जो स्पष्ट एव घनिष्ठ मैत्री हा गयी, उसे मुशीरुलमुल्क महन नही कर सका । वह अपने स्वामी के राज्य के भविष्य के विपय मे बहुत चिंतित हो उठा । मुशीरुलमुल्क ने कानवालिस से यह आश्वासन प्राप्त करने का यथाशक्ति प्रयास किया कि भविष्य मे निजाम पर हाने वाली मराठा मागो के विरुद्ध उसे ब्रिटिश सुरक्षा मिलेगी। परन्तु कैनेवे और कानवालिम ने परस्पर ऐसी कोई भी प्रतिज्ञा न करने का निश्चय कर लिया था, जिसके कारण कम्पनी मरकार दोना पडोसियो के बीच होने वाल भावी युद्ध मे फस जाय। हरिपन्त तथा मुशीरुलमुल्क ने बगलौर से रायदुग तक साथ-साथ यात्रा की। यहा वे अलग-अलग हो गये। हरिपन्त पूना को चल दिया और मुशीरुलमुल्क हैदराबाद को। नाना के कई विश्वस्त मराठा कूटनीतिज्ञ जैसे गोविन्दराव काले चिन्तोपन्त देशमुख, त्रिम्बकराव परचुरे, बजाबा शिरोलकर तथा अन्य व्यक्ति इस समस्त अभियान मे मराठा सेनाओ के साथ उपस्थित रहे। इन सबने भावी इतिहास मे प्रसिद्धि प्राप्त की। इनको इस अभियान मे भावी भारतीय राजनीति का बहुमूल्य अनुभव प्राप्त हुआ। आगे चलकर इसी अनुभव का उपयोग राज्य की सेवा मे किया गया।

इस अल्पकालीन युद्ध का भारतीय राजनीतिक सतुलन पर क्या प्रभाव पडा ? यह प्रश्न जिज्ञासु विद्यार्थी के मन मे स्वभावत आ जाता है। जून १७९० मे जब मैत्री की सन्धि का निश्चय हुआ था, मराठे तथा अग्रेज दोनो की शक्तिया समान थी। दो वप बाद जब युद्ध समाप्त हुआ, तब निस्सन्देह अग्रेजो ने श्रेष्ठता प्राप्त कर ली थी, क्याकि कानवालिस ने अपने दोनो मित्रो के माथ इस प्रकार व्यवहार किया कि उनको आज्ञा शिरोधाय करनी पडी। मराठा राज्य मे नाना तथा महादजी के बीच की फूट स्पष्ट हो गयी। ब्रिटिश भय से अपनी रक्षा किस प्रकार की जाये ? इसके बाद मराठो की चिन्ता का मुख्य विषय यही हो गया।

इस प्रकार हम १७९२ की ग्रीष्म ऋतु मे पहुँच जाते हे। तभी हरिपन्त को शीघ्रतापूवक पूना बुलाया गया, क्योकि किसी क्षण महादजी के अपेक्षित आगमन की सम्भावना मे नाना फडनिस अत्यन्त भयभीत हो गया था। नाना

इस प्रकार असाधारण रूप से क्यों भयभीत हो गया ? इसकी व्याख्या केवल इस मान्यता के आधार पर की जा सकती है कि नाना शिन्दे को अपना प्रतिस्पर्धी समझता था। नाना की धारणा थी कि महादजी पूना दरबार मे उसका प्रभाव नष्ट करके अल्पवयस्क पेशवा को अपनी रक्षा मे लेने का निश्चय कर चुका है। इस प्रकार की योजना यदि वास्तव मे पूर्ण हो जाती, तब भी किसी प्रकार मराठा हितो का अनिष्ट नही होता। हरिपन्त २५ मई को पूना पहुँचा और महादजी १२ जून को।

५ **सर चार्ल्स मैलेट—पूना का रेजीडेंट**—पूना दरबार मे प्रथम ब्रिटिश रेजीडेंट के रूप मे सर चार्ल्स मैलेट की नियुक्ति स्वयमेव मराठा राजनीति मे कम्पनी सरकार की बढती हुई रुचि का प्रमाण है। सालबई की सन्धि पर हस्ताक्षर होते समय इस क्रम का आरम्भ हुआ था। पेशवा माधवराव प्रथम के समय मे ही ब्रिटिश दूत कभी-कभी पूना आता रहता था। इस प्रकार की नियुक्तियो मे मराठा सरकार को कोई विशेष रुचि नही थी। यह दूत मराठो की कोई सेवा नही करता था। उसका कार्य ब्रिटिश हितो पर प्रभाव डालने वाली मराठा योजनाओ तथा प्रगतियो सम्बन्धी आवश्यक गुप्त समाचार अपनी सरकार को भेजना था। नाना फडनिस उस महान अपकार को कभी न भूल सकता था जो ब्रिटिश रेजीडेंट मोस्टिन ने पेशवा नारायणराव की हत्या के बाद पूना मे किया। सालबई की सन्धि से महादजी की प्रतिष्ठा बढ गयी थी और वह मराठा राज्य का प्रमुख सामन्त हो गया था। डेविड ऐण्डसन उसी समय से महादजी शिन्दे के पास ब्रिटिश राजदूत के रूप मे निवास करता रहा। इसका प्रभाव यह हुआ कि पश्चिम भारत सम्बन्धी विषयो मे भी ब्रिटिश शासन के साथ सीधे व्यवहार करने का अधिकार पूना की केन्द्रीय सरकार के हाथ से निकल गया।

महादजी जब सम्राट का एकमात्र प्रतिनिधि नियुक्त हो गया तो भारत स्थित समस्त ब्रिटिश कूटनीतिज्ञ उसकी कुशल प्रतिभा से ईर्ष्या करने लगे। मैल्कम लिखता है— 'महादजी शिन्दे के समीप नियुक्त चतुर ब्रिटिश रेजीडेंट जेम्स ऐण्डसन ने स्थानापन्न गवर्नर जनरल मैक्फसन को उसकी बढती हुई शक्ति के विरुद्ध पत्र लिखकर कहा है कि यदि उस पर यथासमय प्रतिबन्ध नही लगाया गया तो वह निश्चय ही ब्रिटिश हितो के लिए सकटजनक सिद्ध होगा।"[१३]

---

[१३] मैल्कम कृत भारत का राजनीतिक इतिहास, जिल्द १०, पृ० ८७-९०। जिन ब्रिटिश रेजीडेंटो से महादजी को निपटना पडा, उनके नाम स्मरण

नाना फडनिस ने बम्बई सरकार को प्रस्ताव भेजा कि विना शिन्दे की मध्यस्थता के सीधे व्यवहार के लिए पूना मे पृथक रेजीडेण्ट नियुक्त किया जाय। इस प्रस्ताव को बम्बई सरकार तथा स्थानापन्न गवनर जनरल मैक्फसन न तुरन्त स्वीकार कर लिया, क्योंकि इसका परिणाम शिन्दे के बढते हुए गोरव को न्यूनतम करना हो सकता था। इसके परिणामस्वरूप पूना मे प्रथम ब्रिटिश रेजीडेण्ट के रूप मे चार्ल्स मलेट की नियुक्ति हुई। उसको पश्चिमी प्रात म मराठा-ब्रिटिश सम्बन्धो का दीघकालीन तथा विविध अनुभव था। उसका जन्म १७५२ मे हुआ था ओर वह १७७० मे बम्बई मे क्लक के रूप म कम्पनी की सेवा मे लिया गया था। १७७५ मे वह कैम्बे के कारखाने मे नियुक्त हुआ। वहा उसने हरिपन्त की सेनाओ के पहरे से भागने वाले रघुनाथराव की इस प्रकार सहायता की कि वह ब्रिटिश पोतो मे बठकर सूरत पहुँच गया ओर वहा जाकर प्रथम मराठा युद्ध का कारण बनने वाली प्रसिद्ध सन्धि को निश्चित कर सका। मैलेट ने फारसी तथा हिन्दुस्तानी का अध्ययन किया था। १० वष के लम्बे आवासकाल मे मराठा सरकार के साथ वह अपने सूक्ष्म तथा परिपूण सामाजिक ओर कटनीतिक ससग के द्वारा मराठा सगठन की शक्ति को निबल करने मे सफल हो गया। उसने इसी अनुपात मे ब्रिटिश गौरव और शक्ति को उन्नत कर दिया। मैलेट वह प्रथम ब्रिटिश राजनीतिज्ञ है, जिसने मराठो को सवतोमुखी ब्रिटिश प्रवेश के ज्ञान का रसास्वादन कराया।

पूना की रेजीडेसी का काम स्वय गवनर जनरल देखता था, इसलिए मैलेट को आज्ञा हुई कि वह बम्बई से कलकत्ता जाये और वहा अपने पूना

रखना साहाय्यप्रद होगा —

(१) अपने भाई जेम्स को सहायक के रूप मे अपने साथ लेकर डेविड ऐण्डसन—५ नवम्बर १७८१ से १७८३ के अन्त तक।

(२) सम्राट के पास ब्रिटिश दूत मेजर ब्राउन—माच १७८३—अप्रैल १७८५

(३) जेम्स ऐण्डसन—अप्रैल १७८४–मार्च १७८७।

(४) ककपैट्रिक—२० दिसम्बर १७८६–अक्तूबर १७८७। उसके साम्राज्यवादी विश्वासो के कारण कानवालिस ने उसे हटा दिया। देखो, परिचय पूना रेजीडेन्सी करसपोण्डेन्स, जिल्द १। वहा ककपैट्रिक के काय की अच्छी व्याख्या है।

(५) मेजर विलियम पामर—२० अक्तूबर १७८७ से १७९४, महादजी की मृत्युपयन्त।

सम्बन्धी मार्यो के विषय म व्यक्तिगत निदश प्राप्त करे। इस काय के लिए उसका गुजरात तथा म य भारत होकर स्थलमाग से यात्रा करनी पडी और राजनीति तथा व्यापार विषयक उपयागी जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिल गया। इस काय के लिए उसके साथ एक वैद्य, एक पयवेक्षक तथा उपयुक्त सवक समूह था। यह भय था कि पूना म पृथक ब्रिटिश रेजीडेन्सी खुलने से महादजी अप्रसन्न हो जायेगा, अत मलेट को आज्ञा दी गयी कि वह माग म शिन्दे स मिल ले तथा व्यक्तिगत स्पष्टीकरण द्वारा वह उसकी आपत्तियो का निराकरण कर दे। एक मराठा राज्य के लिए दो ब्रिटिश रेजीडेन्ट नियुक्त हो—इस अशुभ लक्षण पर प्रसन्न होने के लिए महादजी के पास कोई कारण नही था।

२७ जनवरी, १७८५ को मैलेट बम्बई से चला और उज्जैन, ग्वालियर तथा आगरा के माग मे यात्रा करता हुआ मई के मध्य म महादजी के मथुरा वाल शिविर मे पहुच गया।[१८] जेम्स ऐण्डसन ने उसे २० मई को महादजी से मिलाया। यह मिलन केवल औपचारिक तथा प्रभावहीन सिद्ध हुआ। महादजी मैलेट से उसकी नियुक्ति के विषय पर एक शब्द भी न बोला। मैलेट वहा पर लगभग एक महीने तक ठहरा रहा, पर महादजी ने उसे जाने की आज्ञा नही दी। उसने सम्राट के दशन किये और अन्त मे विधिपूवक होने वाली विदाई का नमस्कार किये बिना ही महादजी के शिविर मे चला आया। कीन लिखता है—"जब पूना दरबार के लिए दूत रूप म मैलेट को भेजने पर विचार हो रहा था, तभी महादजी ने इसका प्रबल विरोध किया था, क्योकि वह इस नियुक्ति को सकटजनक हस्तक्षप समझता था। उसने निवेदन किया कि यह आयोग अनावश्यक हे, क्योकि ब्रिटिश हितो से सम्पक रखने के लिए वह मराठा सघ का एकमात्र वास्तविक प्रतिनिधि हे।"[१५] मराठा ससद मे यह अकारण फूट डालने पर महादजी ने नाना को कभी क्षमा नही किया। २३ मई को मैलेट ने मथुरा से मैक्फसन के पास महादजी की बढती हुई शक्ति तथा महत्त्वाकाक्षाओ के विरुद्ध प्रभावशाली रिपोट भेजी। उसने कहा—"मुझे खेद है कि जब मै अपनी परिस्थिति मे आपको परिचित कराने मे विलम्ब नही कर सकता—साथ ही उस दुदशा को भी नही छिपा सकता जो मुझे पूना से अपनी नियुक्ति के विषय मे पटेल के विरोध के कारण

---

[१८] देखो मैलेट की डायरी, फोरेस्ट कृत, मराठा माला।
[१५] महादजी शि दे, पृ० ६६

भुगतनी पड रही है। पूना के साथ कम्पनी के सम्बन्धो को वह अपने ही व्यक्तित्व तक क्यो सीमित रखना चाहता है ? आपको पूना के दरबार मे व्यक्तिगत प्रतिनिधि रखने का असदिग्ध अधिकार प्राप्त है। क्या आपको हमारे हितो के प्रति सकट की आशका नही है, जबकि वह मराठा राज्य के एकमात्र अधिकारी का स्थान प्राप्त कर चुका है ? एक ही व्यक्ति के हाथो मे इस प्रकार शक्ति तथा अधिकार की एकाग्रता से कम्पनी के अधिकृत प्रदेशो पर चिन्ताजनक मागे उपस्थित होने के साथ साथ हमारे मित्रो—अवध के वजीर तथा अर्काट के नवाब—की सुरक्षा भी सकट मे पड जायेगी। उसकी स्वाथपूण महत्त्वाकाक्षा का प्रभाव निश्चय ही कम्पनी के सम्मान, गौरव तथा अधिकार पर पडेगा। जब उसने मुगल सरदारो को पूणत अधीन करके दिल्ली मे उत्तराधिकार की समस्या का समाधान कर लिया है तो उसकी शक्ति निश्चय ही भयानक हो गयी है। इस समय वह किसी भी क्षण सकट मे डालने वाली विचित्र स्थिति मे है। इसी कारण उसकी इच्छा कम्पनी के साथ सहमत होने की नही है। अब उसने वकील-ए-मुतलक का पद प्राप्त कर लिया है। अत वह अपने राज्य का विस्तार करने के लिए अवश्य राजा के अधिकार का उपयोग करके अपनी महत्त्वाकाक्षा को तृप्त करेगा। इस प्रकार का विस्तार हमारे अपने हितो तथा प्रदेशो की जड पर अविलम्ब कुठाराघात होने के साथ-साथ हमारे मित्रो और आश्रयभोगियो के प्रतिकूल हस्तक्षेप भी है।

मैलेट ने जो कुछ लिखा, वह उस समय उत्तर भारत मे उपस्थित ब्रिटिश कूटनीतिज्ञो के सामान्य विचार को प्रकट करता है। ये विचार हेस्टिंग्ज के जाने के तीन महीने के बाद ही प्रकट किये गये, अत इनसे प्रकट होता है कि हेस्टिंग्ज की शिन्दे के साथ मैत्री करने की नीति दूसरो को किस प्रकार अप्रिय थी। नाना के लोभग्रस्त होने तथा अपनी प्रगति को निबल बना देने पर महादजी को सदैव दु ख रहा। अन्त मे सैनिक बल ही स्वतन्त्र राज्य का परमालम्बन होता है और इस समय यह बल केवल शिन्दे को ही प्राप्त था। नाना की एकमात्र आशा केवल बालक पेशवा पर केन्द्रित थी, जिसका भावी चरित्र उस समय किसी को ज्ञात न था। दिसम्बर, १७८४ मे महादजी ने नाना को इन शब्दो मे चेतावनी दी—"सम्राट की शक्ति तथा साधनो को सगठित करने सम्बन्धी मेरे प्रयासो तथा उसके अधिकार मे उच्चतम पद पर मुझे स्थित कर दिये जाने से अग्रेज अत्यन्त अप्रसन्न हो गये है। दिल्ली मे ब्राउन शाही-सामन्तो को खुले आम घूस दे रहा है कि वे मुझको इस पद से

हटा दे। आप यह अवश्य ध्यान रखे कि ये अग्रेज लोग पक्के विश्वास-घातक है।'

शिन्दे के पास रहने वाले ब्रिटिश रेजीडेंट तथा पूना स्थित मैलेट की स्थिति मे जो अन्तर था, उसका वणन करना रोचक होगा। शिन्दे के पास ब्रिटिश रेजीडेंट दीन याचक भाव मे काय करता था, जबकि मैलेट का भाव शनै-शनै अत्यन्त प्रगल्भ हो गया, यह भाव धृष्ट चाहे न हो, पर उद्धत अवश्य था। महादजी ने साधारण सघष के कारण जेम्स ऐण्डसन को अपने यहा से हटवा दिया। इसी प्रकार अपनी स्थिति की सीमाओ का अतिक्रमण करने पर उसने ककपैट्रिक को अपने पास नही रहने दिया था। इसके विपरीत, मैलेट ने नाना की कायर प्रकृति पर इस प्रकार अधिकार प्राप्त कर लिया कि नाना को उसे अपने से दूर रखने का काय अशक्य प्रतीत हुआ। शिन्दे के आवासियो को उसकी योजनाओ तथा इरादो का कुछ भी ज्ञान प्राप्त नही हो सकता था, जबकि मैलेट नाना की सभा की एक-एक बात जानता था।[१६]

जून, १७८५ मे मैलेट महादजी के शिविर से चल दिया। वह आगरा, कानपुर तथा बनारस होता हुआ १८ अक्तूबर को कलकत्ता पहुँचा। ७ नवम्बर को मैक्फसन से उसे अपनी नियुक्ति का विधिसम्मत अधिकार-पत्र प्राप्त हुआ। कलकत्ता से १३ नवम्बर को अपनी यात्रा आरम्भ करके वह समुद्री माग द्वारा जनवरी मे बम्बई पहुँच गया। ३ माच, १७८६ को उसने पूना मे अपना पद ग्रहण कर लिया। २२ फरवरी, १८९७ तक पूरे ११ वष इस पद पर उसका अधिकार रहा। गत दिसम्बर मे पेशवा पद पर बाजीराव द्वितीय के आसीन हो जाने के बाद ही वह पूना से अन्तिम रूप मे विदा हुआ।

अपने नवीन पद पर अधिकार करने के लिए मैलेट पूना पहुँचा। वहा गत तीन वर्षों से मान्टिनी नामक फ्रेंच दूत रह रहा था। इस फ्रेंच व्यक्ति को मैलेट ने निकालने का प्रबन्ध किया।[१७] सैयद नूरुद्दीन हुसेन खॉं[१८] जो फारसी का विद्वान मुशी था और बहुत दिनो से मैलेट की सेवा कर रहा था, पूना की

---

[१६] 'महादजी सिन्धिया के ग्वालियर के पत्र' पृ०, ३४३। पूना रेजीडेन्सी करस-पौण्डेन्स परिचय, जिल्द १ और २

[१७] देखो, 'ऐतिहासिक पत्र व्यवहार'—न० २२३

[१८] यह सैयद परिवार उत्तर मराठा इतिहास मे प्रसिद्ध हो गया। नूरुद्दीन कृत नजीबुद्दौला की जीवनी बहुमूल्य ऐतिहासिक ग्रन्थ है, क्योकि नजी-बुद्दौला तथा उसके विरोधी गाजीउद्दीन कनिष्ठ दोनो से लेखक का व्यक्तिगत सम्पक था।

रेजीडेंसी मे उसका सहायक नियुक्त किया गया और कूटनीतिक व्यवहार के सचालन के लिए बहिरो रघुनाथ मेहेन्डले को पेशवा का दूत नियुक्त किया गया। जिस सत्ता का पूना मे वह प्रतिनिधित्व करता था उसके गौरव को सुरक्षित रखने के लिए समस्त परम्परागत व्यवहारो के प्रति मैलेट अतिनियम-निष्ठ था। फ्रेंच दूत मान्टिनी के साथ जो व्यवहार हो रहा था उसकी अपेक्षा उत्तम व्यवहार पर उसने अपना स्वत्व उपस्थित किया। मैलेट के पास करीब एक हजार कायकर्ताओ की मण्डली थी। इनमे से दो सौ सैनिक कार्य पर नियुक्त थे एक सौ व्यक्तिगत नौकर थे तथा ४२५ महार जाति के रक्षक थे। मैलेट तथा उसके दोनो सहायक पालकियो मे बैठकर निकलते थे। उसके पास एक मुस्लिम रखैल भी थी। पहले उसको नगर मे भारतीय वातावरण के अनुकूल निवास स्थान दिया गया जो उसको अनुपयुक्त मालूम हुआ। तब उसने अपने लिए एक नया मकान बनाने का प्रस्ताव किया। नाना फडनिस ने उसको मूला तथा मूठा नदियो के सगम पर एक स्थान दे दिया, जहाँ शीघ्र ही प्रेसीडेन्सी का निर्माण हो गया। अन्तिम पेशवा की सेना ने ५ नवम्बर, १८१७ को इन भवनो को भस्म कर डाला।

मैलेट चपल पुरुष था। स्वय को किशोर पेशवा का प्रिय बनाने मे उसने कोई उपाय उठा नही रखा। पेशवा की रुचियो तथा आमोद-प्रमोद के निर्माण मे उसने अपने लम्बे उपस्थिति काल मे बहुत भाग लिया। बालक के विचारो तथा मनोरजनो मे उसका स्वतन्त्र प्रवेश हो गया था। दोनो प्राय साथ-साथ शिकार खेलने जाते और एक-दूसरे को भोज तथा पार्टिया देते। परम्परागत अवसरो पर पुरस्कार भी वितरण किये जाते। जब रेजीडेन्सी मे पेशवा का प्रथम अभ्यागमन हुआ तो मैलेट ने उस पर एक हजार रुपये निछावर किये। उन्हे बटोरने के लिए पेशवा के नौकर झपट पडे। खरदा के अभियान मे मैलेट पेशवा के साथ गया। उसने उस युद्ध का मूल्यवान वणन लिखा है।

तिथिक्रम

अध्याय ७

१७८४	निजामअली के दूत बावाराव गोविन्द का महादजी की बहन आनन्दीबाई निम्बालकर को साथ लेकर उत्तर मे जाना।
१७८५	आनन्दीबाई निम्बालकर की ग्वालियर मे मृत्यु।
१७८५	महादजी द्वारा उठायी गयी बगाल पर चौथ की माग गवर्नर जनरल द्वारा अस्वीकृत।
१७८८	शिन्दे की बढती हुई शक्ति के प्रति होलकर परिवार की ईर्ष्या।
१७८९-१७९५	मराठा सहायता की प्रार्थनाथ शहजादा मिर्जा मुजफ्फरबख्त पूना मे। दक्षिण मे उसकी मृत्यु।
४ जुलाई, १७८९	महादजी के विरुद्ध गोसाईं बन्धुओ के जादू-टोने का पता।
१७९० १७९१	राजपूत सघ के विरुद्ध महादजी द्वारा सनिक कारवाई।
फरवरी, १७९०	जयपुर के प्रतापसिंह द्वारा महादजी के साथ पृथक सन्धि।
२० जून, १७९०	प्रतापसिंह तथा इस्माइल बेग पाटन मे परास्त। प्राण रक्षार्थ इस्माइल बेग का पलायन।
७ अगस्त, १७९०	महादजी को मथुरा तथा वृन्दावन पर अपने अधिकार के सम्बन्ध मे सम्राट का फरमान प्राप्त।
१९ अगस्त, १७९०	महादजी तथा तुकोजी होलकर के बीच मैत्रीपूण विवाद।
२१ अगस्त, १७९०	अजमेर पर महादजी का अधिकार।
१० सितम्बर, १७९०	मेडता का रण—विजयसिंह पद-दलित।
अक्तूबर, १७९०	महादजी तथा अलीबहादुर के बीच मनोमालिन्य।
१७९०-९१	तुकोजी के पुत्र मल्हारराव होलकर द्वारा उपद्रव खडा किया गया।

६ जनवरी, १७६१	विजयसिंह द्वारा महादजी की शर्तें स्वीकृत—युद्ध समाप्त।
१७६१	बाबाराव गोविन्द दक्षिण को वापस।
६ जनवरी, १७६१	तमूरशाह तथा सिक्खो के साथ पजाब के विषय मे महादजी द्वारा त्रिदलीय समझौते का प्रबन्ध तथा सतलज को मराठा प्रभाव की सीमा स्थिर करना।
मई, १७६१	महादजी से झगडने के बाद अलीबहादुर का बुन्देलखण्ड को जाना और बाँदा को बसाना।
जुलाई, १७६१	नाना के दूत तम्बे द्वारा महादजी की परिस्थिति का पूण वृत्तान्त देना।
३ सितम्बर, १७६१	महादजी चित्तौड के विपक्ष मे।
१७ नवम्बर, १७६१	चित्तौड राणा को वापस।
४ दिसम्बर, १७६१	इस्माइल बेग परास्त—महादजी द्वारा उसका उत्तरी काय पूण।
दिसम्बर, १७६१	अहल्याबाई के दामाद का देहान्त—उसकी पुत्री का सती होना।
१७६१-१७६२	मल्हारराव होलकर द्वारा दक्षिण तथा मालवा मे उपद्रव।
५ जनवरी, १७६२	उदयपुर के राणा का महादजी से मिलना, उसका दक्षिण को जाना।
जनवरी, १७६२	महादजी के सैनिको तथा अहल्याबाई के अधिकारियो मे सन्तवास मे झगडा।
अप्रैल १७६२	इस्माइल बेग का पकडा जाना तथा अन्तिम रूप से आगरा मे बन्दी होना।
८ अक्तूबर, १७६२	सुरावली मे होलकर के शिविर की समाप्ति।
१ जून, १७६३	शिन्दे की सेनाओ द्वारा लखेरी मे होलकर की शक्ति समाप्त।
८ जुलाई, १७६३	जोधपुर के विजयसिंह की मृत्यु।

अध्याय ७

उत्तर मे शिन्दे का कार्य समाप्त

(१७८९–१७९१ ई०)

१ महादजी को अग्रेजो की फटकार। २ अलीबहादुर तथा महादजी मे वैमनस्य। ३ होलकर परिवार की निराशापूर्ण अवनति। ४ बाबाराव गोविन्द—महादजी का परामर्शदाता। ५ राजपूतो का नाश।

१ **महादजी को अग्रेजो की फटकार**—मार्च, १७८९ मे गुलाम कादिर को पकडकर दण्ड दिये जाने और अन्धे सम्राट की अपने सिहासन पर पुन स्थापना के बाद अब हमे उत्तर की कथा पुन आरम्भ करनी है। महादजी की इस सफलता के कारण अग्रेज उसके कार्यों का अधिकाधिक विरोध करने लगे। कम्पनी के अधिकारियो ने सर्वसम्मति से महादजी के साथ मैत्री करने की वारेन हेस्टिग्ज की नीति म हृदय से भाग नही लिया था और न उसको अपना समर्थन दिया था। ब्राउन, मैलेट, कर्क पैट्रिक, जेम्स ऐण्डर्सन तथा अन्य कूटनीतिक प्रतिनिधि महादजी की बढती हुई शक्ति से न्यूनाधिक ईर्ष्यालु थे। वास्तव मे उनके भयभीत होने का कोई कारण नही था। महादजी ने गवर्नर जनरल मैक्फर्सन से माँग की कि दीवानी के लिए बगाल तथा सूरत और अन्य स्थानो से कर का शेष धन उसको दिया जाये जो सम्राट को दिया जाना था। उसी समय नागपुर के भोसले परिवार ने भी अग्रेजो पर यह दबाव डाला कि बगाल की चौथ, जिस पर उनका स्वत्व है, चुकायी जाये, क्योकि अग्रेज पहले नवाबो के उत्तराधिकारी है। मीरजाफर तथा मीरकासिम के समय से अब तक लगभग २५ वर्ष से जानोजी, मुधोजी तथा रघुजी बराबर अपने स्वत्व के भुगतान के लिए प्रार्थनाएँ कर रहे थे। भोसले परिवार की सद्-भावना प्राप्त करने की इच्छा से वारेन हेस्टिग्ज ने उस विषय पर कभी निर्णायक उत्तर नही दिया। अनिश्चय की स्थिति मे वह अनुकूल समय की प्रतीक्षा

करता रहा। जब १७८४-१७८५ मे शाही कार्यो के प्रधान प्रशासक के रूप मे महादजी ने दिल्ली मे सत्ता स्थापित कर ली तो सम्राट तथा भोसले परिवार ने उस पर दबाव डाला कि वह उनके पिछले बकाया भुगतान प्राप्त कर ले। हैदराबाद के निजाम ने भी उसके पास अपना विशेष राजदूत भेजकर प्रार्थना की कि वह ब्रिटिश कोष से शेष कर का एक करोड से भी अधिक रुपया वसूल कर ले। यह रुपया उत्तरी सरकार के उस प्रदेश के कारण निजाम को मिलना था, जिस पर अग्रेजो ने बलपूर्वक अधिकार कर लिया था। महादजी अच्छी तरह जानता था कि अग्रेज यह माग कभी स्वीकार नही करेगे। अत कलकत्ते के शासको को यह माँग भेजकर वह सन्तुष्ट हो गया। इस समय हेस्टिग्ज विदा हो गया था और मैक्फसन कार्यवाहक गवनर जनरल था।

"बगाल प्रान्त से सम्बन्धित कर की माँगे—जिनमे भोसले की चौथ तथा सम्राट की कर सम्बन्धी माग थी—सम्राट तथा महादजी दोनो की मुद्राओ सहित मेजर ब्राउन के द्वारा कार्यवाहक गवनर जनरल के पास भेज दी गयी। इसके उत्तर मे महादजी के पास स्थायी रेजीडेण्ट जेम्स ऐण्डसन को आदेश हुआ कि वह शिन्दे को सूचित कर दे कि इस प्रकार की माँगो मे उसका हस्त-क्षेप स्पष्ट युद्ध तथा मराठो के साथ हमारी सन्धि का भग समझा जायेगा। साथ ही वह शाहआलम को यह सूचित करे कि उसके महामहिम वश के प्रति अग्रेजो की न्याय भावना अन्य शक्तियो के हस्तक्षेप या अनुरोध को कभी सहन नही कर सकती, वह अपनी स्वेच्छापूर्ण उदारता से ही प्रवाहित हो सकती है। कुछ ब्रिटिश दूतो ने भी अन्याय तथा अपमानपूर्वक प्रस्तुत किये गये इन स्वत्वो के खण्डन का आग्रह किया। उनकी मन्त्रणा पर मई, १७८५ मे मैक्फसन ने यही घोषित कर दिया। इसके पहले ही जेम्स ऐण्डसन अपने उत्तर-दायित्व पर मागो के सम्बन्ध मे अपना विरोध महादजी तथा सम्राट को भेज चुका था।" १२ मई, १७८५ को इस विषय की विज्ञप्ति कलकत्ता गजट मे जानबूझकर निकाल दी गयी। उसी समय गवनर जनरल ने मुधोजी को उडीसा पर आक्रमण करने की धमकी दी।

महादजी परिस्थिति को समझ गया और उसने कुछ गोलमोल स्पष्टीकरण देकर यह काण्ड समाप्त कर दिया, क्योकि वह उस समय अपने अग्रेज मित्रो से विग्रह के लिए तैयार नही था। इसके बाद टीपू सुल्तान से त्रिदलीय युद्ध हुआ। इस युद्ध के परिणामस्वरूप कार्नवालिस के नेतृत्व मे ब्रिटिश सत्ता ने पूना सरकार के प्रति सर्वाधिकारी की स्थिति प्राप्त कर ली। परन्तु महादजी भी उस समय उत्तर मे समस्त राजपूत तथा मुस्लिम विरोध का अन्तिम दमन

करके अग्रेजो के समान ही शक्तिशाली बन गया था। जुलाई, १७९२ मे महादजी ने जानबूझकर यह समाचार फैलाया कि दिल्ली के सम्राट ने पेशवा तथा शिन्दे (उस समय पूना मे) को इस प्रकार लिखकर सूचित किया है—"मुझे आशा है कि आप लोग अपने प्रयासो द्वारा बगाल से कुछ कर प्राप्त कर लेगे।" लाड कानवालिस इस स्पष्ट समाचार की उपेक्षा कैसे कर सकता था ? अगस्त, १७९२ मे उसने शिन्दे के दरबार मे स्थित अपने रेजीडेट को निर्देश भेजे कि वह यह स्पष्ट कर दे कि "मुगल सम्राट की वतमान स्थिति (शिन्दे का बन्दी) मे उसके नाम से लिखे हुए समस्त पत्रो को वह केवल शिन्दे की शक्ति तथा अधिकार से लिखे हुए समझता है। इस प्रकार के नियमो को स्थापित करने के प्रयासो का यह सरकार तीव्र विरोध करेगी, चाहे वे किसी भी शक्ति द्वारा किये जाये।" आगे चलकर उसने अपने राजनीतिक रेजीडेट को यह निर्देश दिया—"आप ध्यानपूवक शिन्दे को अत्यन्त प्रभावकारी ढग से यह याद दिलाये कि यह सरकार उस समस्त लम्बे काल मे सयम तथा सहनशीलता की भावना प्रकट करती रही है, जिसमे शिन्दे उत्तर भारत मे अपनी विजयो का प्रसार करने मे व्यस्त रहा है।"[1]

इससे प्रकट हो जाता है कि ब्रिटिश सत्ता के साथ महादजी का क्या सम्बन्ध था। उसने बल-परीक्षा के निमित्त वास्तविक तैयारी आरम्भ की। इस काय के लिए उसने सिक्खो, अफगानो, टीपू सुल्तान तथा अन्य भारतीय शक्तियो का सघ बनाने का प्रयत्न किया। जब १७९९ मे टीपू मारा गया, तब श्रीरगपट्टन के राजभवन मे महादजी एव उसके गुप्त पत्र-व्यवहार का पता चला। दुर्भाग्यवश इसी समय महादजी का देहान्त हो गया तथा परिस्थितिवश बल-परीक्षा १८०३ तक स्थगित रही।

२ **अलीबहादुर तथा महादजी मे वमनस्य**—जब से अलीबहादुर तथा तुकोजी होलकर उत्तर मे आये, तभी से मन्त्रणा तथा आज्ञा की एकता मे बाधाएँ उपस्थित होने लगी, जिन पर अब तक महादजी का एकाधिकार था। १७८० मे तुकोजी तथा महादजी एक-दूसरे से पृथक हुए। उस समय से महादजी ने राजनीतिक क्षेत्र मे शीघ्र भारी उन्नति कर ली थी और तुकोजी का स्थान बहुत नीचा हो गया था। तुकोजी मे विवेक नही था। वह अपने अधीन व्यक्तियो तथा सचिवो के हाथो का खिलौना था। तुकोजी अहल्याबाई का

---

[1] विल्के कृत 'मैसूर का इतिहास', जिल्द २, पृ० ३१७। पूना रेजीडेसी पत्र-व्यवहार, जिल्द २, पृ० २४६-२४७

मुख्य कायवाहक था, परन्तु वह उसका अधिक विश्वास नही करती थी। जब लालसाट की विपत्ति के बाद महादजी ने पूना से सैनिक सहायता माँगी तो नाना न तुकोजी का उसकी सहायता के लिए भेजा। उस समय उत्तरी समस्याओ से सुपरिचित वही एकमात्र व्यक्ति था। सतुलन के विचार से अलीबहादुर का तुकोजी के साथ जाने की आज्ञा हुई। नाना ने महादजी को सूचना दे दी थी कि वह अलीबहादुर की सेनाओ का व्यय स्वय चुकाये परन्तु महादजी स्वय घोर कष्ट म था ओर अलीबहादुर का व्यय सहन करने मे असमथ था। इसका परिणाम यह हुआ कि दोनो मे भयानक सघष उत्पन्न हो गया। महादजी समझता था कि यदि उसी को अलीबहादुर के दल का वेतन दना था ता वह इस धन से क्या नये सैनिक नही रख सकता था ? यदि नाना न पूना से सहायता भेजी थी तो उसका कतव्य था कि सेना का व्यय स्वय सहन करता। नाना ने अलीबहादुर को निर्देश दिया कि महादजी का काय सम्पन्न करने के बाद वह बुन्देलखण्ड चला जाये और वहा उन मराठा प्रदेशो पर पुन अधिकार कर ले जिनको कुछ विद्रोहियो ने हस्तगत कर लिया है। तुकोजी तथा अलीबहादुर किसी को यह आज्ञा नही थी कि वे अपने को महादजी के अधीन समझे, क्योकि ऐसा करना उनके पद का अपमान होता। वे स्वय को स्वतन्त्र कहते थे। इससे मन्त्रणा मे भेद उपस्थित हुआ तथा मूल सघष बढ गया। महादजी ने पूना से आने वाले इन सरदारो के साथ कभी कृपापूवक व्यवहार नही किया। ये उसकी सहायता के लिए आये थे और नाना के मागदशन का अनुसरण करते थे। उसने विजय के परिणामस्वरूप हाल ही मे जो नये देश जीते थे, तुकोजी ने उनमे हिस्सा माँगा। महादजी ने कहा कि हिस्सा माँगने से पहले तुकोजी को वह धन चुकाना चाहिए जो इन विजयो पर व्यय हुआ है। लगभग डेढ वष तक इसी प्रकार के प्रश्नो पर घोर तक-वितक चलता रहा, जिसको वाग्युद्ध कह सकते है। जून तथा जुलाई, १७८९ के महीनो मे महादजी के सहसा बीमार हो जाने पर यह क्लेश अत्यन्त उग्ररूप धारण कर गया था। उस समय कुछ सप्ताहो तक उसके जीवन की कोई आशा नही रह गयी थी तथा समस्त राजनीतिक गतिविधियाँ एकदम बन्द हो गयी थी।

अन्धविश्वास के उस काल मे इस प्रकार के आकस्मिक रोग विरोधियो की ओर से प्रयुक्त जादू-टोने का प्रभाव समझे जाते थे। जैसे ही महादजी बीमार पडा, जाच-पडताल शुरू हो गयी और इससे प्रकट हुआ कि दोनो गोसाईं बन्धुओ ने महादजी का सवनाश करने के लिए जादू-टोने का प्रयोग

किया है।[२] यह प्रसिद्ध था कि ये गोसाइ अवसरवादी हं। उनकी निष्ठा स्थिर नही है। उन्हे अपने स्वामी के प्रति भक्तिहीन होने एव विश्वासघात करने की दुष्प्रकृति प्राप्त है। एक समय वे नवाब वजीर के सेवक थे। उसके बाद उन्होंने सम्राट की सेवा मे प्रवेश किया। बाद मे वे महादजी के अधीन हुए, क्योंकि वह सम्राट के कार्यो का एकमात्र नियन्त्रणकर्ता था। महादजी के ध्यान मे उनका दोगलापन तभी आ गया था, जब उन्होने कुछ घूस लेकर महादजी की योजनाएँ उसके विरोधी राजपूतो पर प्रकट कर दी थी। बाद को पता चला कि इस योजना मे अलीबहादुर के साथ उनका गुप्त समझोता था कि सम्राट के दरबार वाले पद से महादजी को हटा दिया जाये और उसके स्थान पर अलीबहादुर को बैठा दिया जाये। होलकर तथा महादजी के बीच स्पष्ट वैमनस्य से गोसाइयो को अवसर मिल गया और अपना स्वाथ सिद्ध करने के लिए उन्होने महादजी का सवनाश करने मे विलम्ब नही किया। १७८९ की वर्षा ऋतु मे अपनी बीमारी के समय महादजी को ध्यान हुआ कि उसके कष्ट का कारण किसी गुप्त शत्रु का प्रयास तो नही है। अन्वेषण की आज्ञा दी गयी। १४ जुलाई को गुप्तचर समाचार लाये कि वृन्दावन मे एक स्त्री महादजी के जीवन पर जादू-टोना कर रही है। अगले दिन वह स्त्री महादजी के सम्मुख लायी गयी। उसने स्वीकार किया कि गोसाइयो ने दो व्यक्तियो को इस जादू की सामग्री तथा मदिरा मेरे पास पहुँचाने के लिए नियुक्त किया था, जिससे महादजी का सवनाश किया जा सके। इस प्रमाण पर महादजी ने गोसाई बन्धुओ का शिविर घेरकर हिम्मत बहादुर को पकड लिया। जब हिम्मत बहादुर महादजी के शिविर मे पहुँचाया जा रहा था, वह सहसा भाग निकला तथा उसने अलीबहादुर के शिविर मे घुसकर पेशवा के ध्वज के नीचे शरण ली। इस पर महादजी ने अलीबहादुर से कहा कि हिम्मत बहादुर उसके पास भेज दिया जाये। अलीबहादुर ने ऐसा करने से इनकार करते हुए यह मामला पूना भेज दिया। महादजी के क्रोध की सीमा न रही तथा कुछ समय तक दोनो मे इस प्रकार का वैमनस्य रहा कि प्रत्येक क्षण गृह-युद्ध छिड जाने की आशका बनी रही। महादजी ने गोसाइ की पत्नी तथा बच्चो को पकड लिया। दोनो पक्षो के अधिकाश सरदारो ने मध्यस्थता द्वारा कामचलाऊ समझौता स्थापित कराने का प्रयत्न किया, परन्तु ये समस्त प्रयास असफल सिद्ध हुए।

---

२ पूण वर्णन के लिए देखो, सर यदुनाथ सरकार का लेख, माडन रिव्यू, माच, १९४४

पूना पहुँचकर इम कलह ने शिन्दे-विरोधी भावनाआ को प्रज्ज्वलित कर दिया। तुकाजी होलकर न इस काय मे अलीबहादुर को अपना शक्तिशाली समथन दिया ओर सलाह दी कि गोसाइ को महादजी के सुपुद न किया जाये। उसने कहा कि यह पेशवा के गोरव का प्रश्न है, क्योकि गोसाइ ने उसके ध्वज का आश्रय लिया हे। कुछ समय तक मथुरा तथा पूना के सम्बन्ध दुष्ट प्रवादो द्वारा विपाक्त हो गये, तथा महादजी के विरुद्ध पूना मे अतिशयोक्ति-पूण समाचार बडी मात्रा मे प्राप्त होने लगे। महादजी ने इस प्रकार की अफवाहा के विरुद्ध जोरदार विरोध-पत्र लिख भेजा तथा प्राथना की कि वह उत्तर भारत से अपने काय से सवथा मुक्त कर दिया जाये। स्वय अलीबहादुर ने महादजी के विरुद्ध नाना को इस प्रकार के कटूक्तिपूण पत्र लिखे कि अली-बहादुर की माता ने पूना से उसको कठोर चेतावनी भेजी कि वह अपने पत्रो मे महादजी सदृश शक्तिशाली सरदार के विरुद्ध इस प्रकार की कठोर भापा का प्रयोग न करे। सम्भव है कि पत्र माग मे पकडकर खोल लिये जाये और इस प्रकार गम्भीर परिणाम उपस्थित हो जाये।

नाना ने पूना से पहले तो अलीबहादुर का समथन किया, परन्तु वह शीघ्र ही महादजी के तक का बल समझ गया। उसने अलीबहादुर को लिखा—"आप गोसाई को महादजी के सुपुद करके इस प्रकरण को अवश्य समाप्त कर दे। आप अपने धन या सेना से उसका समथन न करे। जब तक केवल महादजी उत्तरी कार्यो के समस्त प्रबन्ध के लिए उत्तरदायी है, आप राजपूतो या अन्य सरदारो के साथ स्वतन्त्र रूप से कोई शान्ति-प्रस्ताव न करे। आप उसकी पीठ पीछे कुछ भी न करे।" नाना ने तुकोजी को भी महादजी का नेतृत्व स्वीकार करने की सलाह दी। परन्तु इस समय भी नाना ने महादजी के विरुद्ध अपना स्थायी सन्देह नही छोडा। इस समय दी गयी नाना की विभिन्न अस्पष्ट आज्ञाओ मे उत्तर भारत की परिस्थिति के सम्बन्ध मे उसके विचारो मे कोई सगति नही मिलती। एक पत्र मे उसने अलीबहादुर को स्पष्ट सूचना दी थी कि महादजी उसको स्वतन्त्र कायक्षेत्र कभी नही देगा तथा उसे सकट मे फॅसाने को सदैव प्रयत्नशील रहेगा। एक अन्य अवसर पर उसने लिखा कि अलीबहादुर पूणरूपेण महादजी की आज्ञाओ का पालन करे। बहुत-से पत्र-व्यवहार के बाद गोसाई को बुन्देलखण्ड मे काय करने की आज्ञा देना निश्चित किया गया। मित्रो तथा मध्यस्थो के भारी दबाव के कारण महादजी ने अलीबहादुर की गम्भीर शपथो का विश्वास कर लिया। सदाचार के विषय मे अलीबहादुर द्वारा उत्तरदायित्व लेने पर महादजी ने गोसाईं परिवार को

वापस कर दिया । इस प्रकार यह झगडा कुछ समय के लिए शात हो गया ।

कुछ समय बाद महादजी को यह पता चला कि अलीबहादुर इस्माइल बेग तथा जयपुर और जोधपुर के राजाओ के साथ षडयन्त्र कर रहा है। इस कारण दोनो के बीच मे नवीन वैमनस्य उत्पन्न हो गया । जब महादजी ने १७९० मे राजपूतो के विरुद्ध पुन अभियान आरम्भ किया तो अलीबहादुर उसका साथ देने मे हिचकिचाया तथा केवल एक छोटा-सा दल अपनी ओर से काय करने के लिए भेजा । वह सवथा गोसाइ के प्रभाव तथा परामश के वशीभूत था । उसने तुकोजी होलकर को भी प्रलोभन दिया कि वह महादजी के नेतृत्व का विरोध करे तथा महादजी का समथक होने के कारण मुख्य सचिव नारो गणेश को अपने कैद मे डाल दे । अपने इन दो मुख्य सहायको की विश्वास घातक प्रगतियो से भयभीत होकर महादजी ने राजपूत राजाओ के विरुद्ध अपने अभियान का स्वय सचालन किया तथा यह काण्ड सफलतापूवक शीघ्र समाप्त कर दिया । महादजी ने इस समस्त अपकार का मूल कारण नाना फडनिस को बताया । जनसाधारण के समक्ष यह घोषणा की कि अपने भरोसे अलीबहादुर इतनी दूर नही बढ सकता था, उसने नाना से प्राप्त समथन के आधार पर जान बूझकर यह काय किया है । दो वर्ष तक अलीबहादुर ने गोसाई की रक्षा की, जबकि नाना ने उसको इस काय के विरुद्ध स्पष्ट आज्ञा दी थी और तुकोजी होलकर इस विषय मे उसे प्राय स्वस्थ परामश देता रहता था । तग होकर महादजी ने अन्त मे नाना से माँग की कि वह दोनो—तुकोजी तथा अलीबहादुर—को पूना वापस बुला ले । नाना ने इस प्रस्ताव को भी स्वीकार नही किया । इस प्रकार शिन्दे तथा होलकर के बीच मे बढते हुए घाव को खुला छोड दिया ।

इस चिन्ताजनक दीघकालीन काण्ड से उत्तर भारत मे मराठा शक्ति के सामान्य हितो को बहुत हानि पहुँची । स्वय नाना फडनिस ने इस प्रकार के परिणामो से आकुल होकर अपने विशेष विश्वासपात्र प्रतिनिधि विट्ठल गोपाल ताम्बे को महादजी के कायक्षेत्र मे भेजा और अलीबहादुर तथा गोसाई बन्धुओ के प्रसग सहित महादजी की परिस्थिति पर पूण तथा गुप्त रिपोट भेजने का आदेश दिया । २५ जुलाई, १७९१ को जयपुर से भेजी हुई ताम्बे की यह रिपोट तथा उसी सम्बन्ध मे हिंगने की चेतावनी, वे मूल्यवान पत्र है जो उस क्षेत्र मे मराठा प्रशासन के कुप्रबन्ध तथा गडबडी पर पूर्ण प्रकाश डालते है ।[3]

[3] इतिहास सग्रह, ऐतिहासिक टिप्पणी, जिल्द ६, पृ० ३३ । दिल्ली—वाई, परिपूरक न० ४७-५२

इस शोचनीय प्रकरण से, मराठा प्रशासन की प्रतिष्ठा तथा कार्यकुशलता की नींव किस प्रकार खोखली हो गयी, इसकी कल्पना सरलता से की जा सकती है। गुलाम कादिर के पतन के समय शाही कार्यों मे शिन्दे ने पूर्ण प्रभुता प्राप्त कर ली थी। यदि उस समय होलकर और अलीबहादुर उसका इच्छापूर्वक समर्थन करते तो राजपूत राजा, इस्माइल बेग तथा गोसाइयो सदृश मराठा विरोधी तत्काल समाप्त हो जाते और महादजी १७६० मे दक्षिण को चला जाता। वहा पर वह टीपू सुल्तान के विरुद्ध त्रिदलीय सन्धि के प्रसग मे नाना के साथ शक्तिशाली नीति सगठित कर सकता था। इस सकट काल मे दृढ सयुक्त मोर्चे की आवश्यकता थी। उत्तरदायी स्थानो पर नियुक्त पुरुषो ने यह बात उसी समय स्पष्ट कर दी थी। उस समय उत्तर मे उपस्थित विट्ठल शिवदेव के पुत्र शिवाजीपन्त बापू ने सदैव यथाशक्ति प्रयत्न किया कि महादजी तथा अलीबहादुर के बीच पुन मैत्री स्थापित हो जाये, परन्तु उसके प्रयासो से कुछ लाभ नही हुआ।[४]

मराठा सरदारो के बीच का तनाव निरन्तर बढता ही गया। अन्त मे अलीबहादुर ने बुन्देलखण्ड जाने का निश्चय किया। उसके मित्रो ने सलाह दी कि वह महादजी से मिलकर विधिपूर्वक आज्ञा प्राप्त कर ले। मिलने का प्रबन्ध हो गया। अलीबहादुर ने हठ किया कि वह मिलन स्थान पर अपने साथ बहुत-से सशस्त्र सैनिक ले जायेगा, इसलिए महादजी ने भी पूर्व सावधानी के लिए एक शक्तिशाली रक्षक दल एकत्र कर लिया। जब अलीबहादुर को इस बात का पता चला तो उसने मिलन का विचार त्याग दिया और अत्यन्त क्रुद्ध होकर चल दिया। इस प्रकार १७६० के दशहरे का दिन शोकयुक्त परिणामजनक सिद्ध हुआ।[५]

अलीबहादुर बुन्देलखण्ड को तुरन्त न जा सका। वह अक्तूबर, १७६० से मई, १७६१ तक जयपुर मे घूमता रहा तथा अपने भावी उद्देश्यो को कार्यान्वित करने के लिए धन सग्रह का प्रयत्न करता रहा। इस समय वह अकिंचन भिखारी था। उस पर किसी को विश्वास नही था। इस समय वह अपने छद्मवेशी नवीन मित्र गोसाईं बन्धुओ द्वारा की गयी अपार प्रतिज्ञाओ के सहारे जीवन व्यतीत कर रहा था। निरुद्देश्य प्रयाणो मे लगभग १ वर्ष व्यर्थ व्यतीत करके उसने तुकोजी होलकर से ऋण देने के लिए दीन प्रार्थना की। होलकर

---

४ महादजी शिन्दे के पत्र, ग्वालियर न० ५८२-५६०

५ भावे कृत, रूमल, जिल्द ३, पृष्ठ १५६

की स्थिति भी कुछ अच्छी नही थी, परन्तु उसने अपनी साख पर अलीबहादुर को साढे तीन लाख रुपये दिला दिये। इस प्रकार अलीबहादुर गोसाइयो के साथ बुन्देलखण्ड जाने मे समथ हो गया और वहा पर १७९१ के अन्त के समीप पहुँच गया। यहा उसने गोसाई दल की सहायता से पुराने अधीन बुन्देला सरदारो से कर प्राप्त करने का प्रयत्न किया। परन्तु प्राचीन मराठा सरदारो जैसे पानीपत काल के गोविन्दपन्त के दो पुत्रो ने अलीबहादुर की इन नवीन महत्त्वाकाक्षाओ का विरोध किया। बुन्देलखण्ड मे स्वय महादजी द्वारा रक्षित अनेक स्थान थे। ग्वालियर तथा गोहद यही थे, जिनको उसने भारी बलिदान देकर अपनी आज्ञावश किया था। अपने हितो की सुरक्षा करने के लिए महादजी उस क्षेत्र मे अपनी सेनाएँ भेजने के लिए विवश हो गया। इस प्रकार बुन्देलखण्ड मे निकट भविष्य मे टक्कर होने की सम्भावना उपस्थित हो गयी। अत अलीबहादुर को यहा अत्यन्त व्याकुलता का अनुभव हुआ। यह महादजी के कार्यों के प्रति उसके अकारण विरोध का परिणाम था। इस प्रकार होने वाली अराजकता के कारण बुन्देलखण्ड मे मराठा शासन का व्यावहारिक रूप से अन्त हो गया और पूना मे निरुपाय अकमण्य नाना फडनिस को यह क्षति सहन करनी पडी।

अलीबहादुर ने महादजी के साथ सहयोग से इनकार करके इस समस्त सकट को स्वय निमन्त्रण दिया था। बुन्देलखण्ड मे उसके बाद के कार्यो का वणन सक्षेप मे किया जा सकता है। वर्षो के व्यथ सघष के बाद उसने बॉदा मे अपने लिए एक छोटे राज्य का निर्माण कर लिया। उसने कालिजर को घेर लिया तथा वहा युद्ध मे २८ अगस्त, १८०२ को मारा गया। उसके मित्र गोसाई बन्धुओ ने १८०४ मे अग्रेजो की अधीनता स्वीकार कर अपने लिए अलग जागीर प्राप्त कर ली। अलीबहादुर के उत्तराधिकारी बादा मे १८५७ के महान विद्रोह के समय तक राज्य करते रहे। विद्रोह के पश्चात बादा की जागीर जब्त कर ली गयी।

३ **होलकर परिवार की निराशापूर्ण अवनति**—नाना फडनिस द्वारा तुकोजी होलकर को १७८७ मे महादजी की सहायताथ भेजा जाना सर्वथा व्यथ सिद्ध हुआ। बाजीराव प्रथम के समय से शिन्दे तथा होलकर मराठा राज्य के दो प्रमुख आधार स्तम्भ थे, परन्तु प्रकृति के नियमानुसार इन दोनो आधार स्तम्भो की आगे वाली पीढियो मे भी समान योग्यता तथा क्षमता से काय करना किसी के वश की बात नही थी। रानोजी के पुत्र शिन्दे बन्धु सबके सब योग्य पुरुष थे। मल्हारराव प्रथम के उत्तराधिकारी ऐसे नही थे।

उस सरदार की मृत्यु के बाद उसके परिवार मे दोहरा शासन हो गया। राजधानी म नाममात्र की सरदार अहल्याबाई कोष पर अपना कठोर नियन्त्रण रखती थी। तुकोजी होलकर कायवाहक अधिकारी के रूप मे उनकी इच्छाओ तथा आदेशो के पालनार्थ बाह्य जगत मे अभियानो तथा अन्य कार्यों का सचालन करता था। इस प्रकार इस समय मराठो के भाग्य विधाताओ के रूप मे महादजी तथा तुकोजी रगमच पर आये।

मल्हारराव के देहान्त के बाद होलकर परिवार का इतिहास षड्यन्त्र, कलह, कुप्रबन्ध तथा कुचेष्टा की दु खपूण गाथा है। साध्वी अहल्याबाई अपने परिवार की दुव्यवस्था तथा बाह्य राजनीति का नियन्त्रण करने मे अशक्त थी। इस काय मे इस समय शिन्दे ने प्रमुखता प्राप्त कर ली थी। मराठा राज्य पर ब्रिटिश दबाव की शक्ति का ज्ञान अहल्याबाई को नही था। वह महेश्वर के एकान्तवास मे अपने धार्मिक अनुष्ठानो मे व्यस्त रहती थी। वह दान करने मे तो अति उदार थी, पर परिस्थिति के अनुकूल शैली के आधार पर अपनी सेनाओ को उन्नत करने की आवश्यकता एव महादजी के साथ उसके युद्धो और उपायो मे सहयोग देने का महत्त्व वह नही समझ सकी। परिणाम यह हुआ कि मराठा राज्य के इस द्वितीय आधार स्तम्भ का शनै-शनै ह्रास होता गया। तुकोजी महादजी के साथ समान अधिकार चाहता था, परन्तु उसी सीमा तक उत्तरदायित्व मे हाथ बटाने मे उसने सदा उपेक्षा की। राजपूत सघ द्वारा उत्पन्न महादजी के कष्टो को दूर करने के स्थान पर तुकोजी ने उसके शत्रुओ का पक्ष लिया तथा उसके प्रयासो को बहुत निबल बना दिया। तुकोजी मदिरा-व्यसनी सैनिक मात्र था। अत प्रशासन के विषयो मे वह अपने स्वार्थी तथा षडयन्त्रकारी सचिव नारो गणेश के हाथो का खिलौना बन गया था। अहल्याबाई तथा तुकोजी, जिनकी आयु लगभग समान थी, अपने विचारो तथा काय-पद्धतियो मे कभी सहमत नही हो सके। उस महिला ने तुकोजी को उसके पद से हटाने का प्रयत्न भी किया, परन्तु परिवार मे कोई अन्य व्यक्ति ऐसा नही था जो सेनाओ के नेता के रूप मे उसका स्थान ले सकता। नाना फडनिस ने भी यत्न किया कि होलकर परिवार के इस दोहरे शासन का अन्त कर दे, पर सफल नही हो सका। उसने प्रस्ताव किया कि सम्पूण प्रबन्ध तुकोजी को दे दिया जाये और अहल्याबाई के हाथ मे कोई सत्ता न रहे। उसके व्यक्तिगत व्यय तथा धार्मिक कृत्यो के लिए धन का प्रबन्ध कर दिया जाये। परन्तु न तो उस वीर महिला ने इस प्रबन्ध को स्वीकार किया और न नाना ही उस महिला की प्रबल इच्छा के विरुद्ध इसे कार्यान्वित कर सका क्योकि उसे समाज मे

व्यापक सम्मान प्राप्त था। महादजी ने भी होलकर परिवार की समस्याओ का समाधान करने का यत्न किया, परन्तु कुछ अधिक सफलता नही प्राप्त हुई। परिणाम यह हुआ कि महिला का कोष पर कठोर नियन्त्रण बना रहा और तुकोजी को बाहर अभियानो पर जाते समय अपनी सेनाओ को प्राय निराहार रखना पडा।

यह केवल एक अनुरूप उदाहरण है जो समस्त मराठा राज्य की सामान्य दुदशा को प्रकट करता है। इसकी रक्षा केवल सवथा परिवतन से ही हो सकती थी। इस परिस्थिति मे महादजी को निस्सहाय होकर सावधानी तथा विवेक सहित अपने माग पर अग्रसर होना पडा। उसने अपन योग्य सहायको की एक मण्डली सगठित करके उन्हे प्रशिक्षण दिया और होलकर परिवार तथा पूना के केन्द्रीय शासन से सहयोग की प्राथना की। परन्तु उसकी उदीयमान शक्ति को देखकर दोनो मे ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी। तुकोजी का परिवार कुचेष्टाओ मे व्यस्त था। उसके चारो पुत्र या तो निबल थे या अभिमानी और आत्मश्लाघी। वे मदिरापन करके उन्मत्त लोगो की भाति चिल्लाते और एक-दूसरे का गला पकड लेते थे। उन उत्पातियो को केवल धन की भूख थी, जिससे राज्य की कोई उपयोगी सेवा किये बिना वे अपनी कुचेष्टाओ को तृप्त कर सके। तुकोजी की पत्नी रुक्माबाई तथा योग्य परन्तु भ्रष्ट मुख्य प्रबन्धक नारो गणेश ने वर्षों तक इन पुत्रो को अपकार से दूर रखने की स्थायी समस्या का सामना किया। इस समस्या ने मा वी अहल्याबाई को भी समान रूप से चिन्तित कर दिया। इन सबने महादजी की उदीयमान शक्ति को ईर्ष्यालु नेत्रो से देखा, परन्तु उसके परिश्रम तथा व्यय मे भाग लेने से इनकार कर दिया। महादजी राजपूतो के सम्बन्ध मे एक नियत प्रोग्राम का अनुसरण कर रहा था। तुकोजी कहता था कि उसके पास अपनी स्वतन्त्र योजना है। अहल्याबाई ने तुकोजी को शिन्दे के समानाधिकार के लिए बढावा देकर सदैव सभ्रम को बढाया। महादजी होल-कर की मागो को सन्तुष्ट करने मे असमथ था। लालसोट मे महादजी के पराभव के बाद तुकोजी का विशेष रूप से उसके साथ सहयोग करने भेजा गया था। परन्तु सहयोग मिलने के स्थान पर शिन्दे को प्रत्येक पग पर उसकी ओर से इस प्रकार का विरोध प्राप्त हुआ कि उसने निराश होकर पूना के मन्त्रियो से स्वय को उत्तरी कार्यों से मुक्त कर देने की प्राथना की।

अन्त मे महादजी ने अपना उत्तरी काय १७९१ मे सफलतापूवक समाप्त कर लिया। सफलता और वैभव के शिखर पर आसीन होकर वह दक्षिण को वापस लौटा। होलकर के उपभोग के लिए वह कोई वास्तविक सत्ता या काय-

क्षत्र नही उठाया गया था । तुकोजी, अहल्याबाई तथा उसके पुत्रो को स्पष्ट रूप मे असह्य वेदना हुई, क्योकि इसके बाद उन्हे शिन्दे की अपेक्षा नीचा स्थान स्वीकार करना होगा, जबकि एक समय दानो सरदार सर्वथा समान आधार पर थे । व यह ही समझ सके कि इस तथ्य प्रधान जगत मे पूर्वजो के यश तथा परिवार की परम्परा से बहुत कम लाभ प्राप्त होता है । राज्य काय अपनी सफलता के लिए चरित्र तथा क्षमता पर निर्भर रहते है । जब १७८८ मे तुकोजी उत्तर भारत म पहुचा तो अहल्याबाइ ने उसको विशेष रूप से उपदेश दिया कि वह शिन्दे के समान आधार पर अपना व्यक्तित्व बनाये रखे जैसा कि बाजीराव प्रथम के समय मे मल्हारराव ने किया था । होलकर के क्षत्र मे सम्बन्धित उदयपुर के राणा का झगडा महादजी ने नवम्बर, १७९१ मे समाप्त कर दिया, क्योकि उसन चित्तौड के प्रसिद्ध गढ पर अधिकार कर लिया और उसको राणा को वापस दे दिया । अहल्याबाई ने इस काय को अपने परिवार के प्रादेशिक अधिकारो का उल्लघन तथा अपने शासन के प्रति अपमान समझा । उधर महादजी को होलकर परिवार के किसी भी सदस्य के प्रति कोई श्रद्धा नही रह गयी थी, क्योकि यह परिवार इस समय कुचेष्टा तथा मिथ्या अभिमान मे व्यस्त था और उन सकटो को सवथा विस्मृत कर चुका था, जिन्होने बाहर की ओर से मराठा राज्य को भयभीत करना आरम्भ कर दिया था । जब इस उग्र वातावरण मे जनवरी, १७९२ को महादजी ने उज्जैन से पूना के लिए प्रस्थान किया तो शिष्टाचार के नाते भी अहल्याबाई से मिलन की चिन्ता नही की । गत दिसम्बर मे अहल्याबाई के दामाद का देहान्त हो गया था, अत कम से कम शोक प्रदर्शित करने के निमित्त उससे मिलना आवश्यक था । दक्षिण की यात्रा मे नमदा घाट पर महादजी के लिए अनपेक्षित कष्ट उपस्थित हुआ तो यह वैमनस्य अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया । इससे दोनो परिवारो के सम्बन्ध और भी कटु हो गये । अहल्याबाई ने मतवास के गॉव मे नदी पार करने वाले मनुष्यो तथा पशुओ से चुगी लेने के लिए चौकी-दारो की एक टोली नियुक्त कर दी थी । महादजी के साथ विशाल अनुचर दल था । होलकर के अधिकारी चुगी मागते थे, उसे देना महादजी ने अस्वीकार कर दिया । यह घटना स्वय तुच्छ थी, परन्तु वृद्ध महिला इस पर बहुत कुपित हो गयी । कहते है उसने शाप दिया कि वापस आने के लिए पटेल जीवित ही न रहेगा । यह शाप सत्य सिद्ध हुआ ।

दोनो शक्तिशाली सरदारो के बीच बढती हुई ईर्ष्या तथा शत्रुता के कारण अग्नि प्रज्ज्वलित हो गयी, जिसकी लपटो से केवल शिन्दे तथा होलकर के दोनो

परिवार ही नष्ट नही हुए, मराठा सघ का समस्त भवन ही भस्म हो गया। इस अन्त का आरम्भ लखेरी म हो गया था। पूना पर यशवन्तराव होलकर का आक्रमण तथा १८०२ म पेशवा का बसई को पलायन, इसके परिशिष्ट थे। जो बुद्धिमान मनुष्य उस समय मराठा राज्य मे निवास करते थे, उनको शिन्दे-होलकर प्रतिस्पर्धा के विनाशक लक्षण पूणत स्पष्ट थे। होलकर रूपी आधार-स्तम्भ प्रत्यक्ष ही चटक रहा था। अहल्याबाई की सयत बुद्धि भी इसकी रक्षा नही कर सकी। तुकोजी का पुत्र मल्हारराव द्वितीय (जन्म लगभग १७७०) न केवल होलकर परिवार का, अपितु समस्त मराठा राज्य का महान कटक हो गया। उसे गव था कि वह दि बायने द्वारा सगठित निपुण तोपखाने तथा सेनाओ को नष्ट कर देगा। कोई भी उसका नियन्त्रण नही कर सकता था। उसने आवारा लोगो के दल एकत्र कर लिये जो पिण्डारियो के पूव रूप सिद्ध हुए। उनके द्वारा मल्हारराव ने समस्त मराठा भूमि मे बिना किसी विवेक के लूटमार आरम्भ कर दी। मल्हारराव को पकडने और उस पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए पूना को प्राथना भेजी गयी। परन्तु होलकर का कौन हाथ लगा सकता था ? नाना फडनिस ने उसको पूना बुलाया, परन्तु उसके नियन्त्रण का कोई ठीक उपाय नही कर सका। पूना मे मल्हारराव ने सदाचरण की भूठी प्रतिज्ञाएँ की। उसको सम्मानपूवक इन्दौर वापस होने की आज्ञा दे दी गयी। वहा पहुँचकर उसने तुरन्त अपने दुष्ट काय पुन आरम्भ कर दिये। वह धावे बोलने, किसानो को लूटने और मालवा की सुन्दर भूमि को नष्ट करने लगा। तुकोजी उसके विरुद्ध कोई काय नही करना चाहता था ओर अहल्याबाई उसे रोकने का साहस नही कर सकती थी। वष बीतते गये और कुकृत्य बढते गये। अहल्याबाई के वृद्ध राजनिष्ठ सेवक पाराशर दादाजी न उससे स्पष्ट रूप से कहा—"इस शनितुल्य राक्षस को तुरन्त पकडकर कारागार मे डाल दिया जाये।" अन्त मे उसने फ्रेच सज्जन डुड्रेनेक को अपनी सहायता के लिए बुलाया और मल्हारराव को बन्दी बना कर लाने की आज्ञा दी। डुड्रेनेक ने इस काय को वीरतापूवक पूरा किया। उपद्रवी नवयुवक बेडियाँ डालकर अहल्याबाई के सम्मुख लाया गया तथा कुशलगढ मे दृढतापूवक बन्द कर दिया गया। निबल पिता इस परिणाम पर इतना कुपित हुआ कि उसने इस सपूत को अपने से न मिलने देने पर आत्महत्या करने की धमकी दी। अत शान्तिभगकर्ता को मुक्त करना ही पडा। लखेरी के मैदान मे होने वाले इस गृहयुद्ध (४ जून, १७९३) से पूना का सन्तोषी नाना फडनिस भी इस प्रकार उग्र हो उठा कि होलकर परिवार के कार्या की

अधिक उपेक्षा करना उसके लिए अशक्य हो गया। उसने वही उपाय किया, जिसे करने का वह इस प्रकार की परिस्थिति मे अभ्यस्त था—अर्थात उसने इन्दोर का कूटनीतिक दूतमण्डल भेजा। हिगने बन्धुओ मे कनिष्ठ देवराव हिगने को बलवन्तराम काशी कात्रै के साथ आज्ञा दी गयी कि वे इन्दोर जाकर अनुनय विनयपूर्ण उपायो से कष्ट निवारण करे। पर यह व्यर्थ की आशा थी। अगस्त, १७९३ मे दूतमण्डल इन्दोर पहुँचा और वहाँ १८ मास का लम्बा समय व्यतीत करने के बाद दिसम्बर, १७९४ मे तुकोजी होलकर के साथ पूना वापस आ गया। वे कागज पर एक लम्बी रिपोर्ट उपस्थित करने के अतिरिक्त कोई कार्य नही कर सके थे। यह रिपोर्ट हिगने ने लिखी थी। अब पारसनिस ने इसे अपने 'इतिहास संग्रह' मे मुद्रित कर दिया है।[२]

अपकर्ष के अनेक उदाहरणो मे से होलकर परिवार केवल एक है। इन उदाहरणो मे केवल व्यक्तियो और विवरणो का भेद है, वैसे वे सब उसी सर्व-व्यापक नैतिक ह्रास के उदाहरण है। पशवा बाजीराव द्वितीय, दौलतराव शिन्दे, सरजाराव घाटगे, जिनका मराठा इतिहास के रंगमच पर शीघ्र ही प्रवेश होने वाला था, उसी दु खान्त कथा के परिचायक है।

४ **बाबाराव गोविन्द—महादजी का परामर्शदाता**—मुगल-साम्राज्य के राज प्रतिनिधि पद पर महादजी शिन्दे के आरोहण से भारतीय शक्तियो को प्रेरणा हुई कि अपने उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए उससे प्रार्थना करे। उदाहरणार्थ, हैदराबाद के निजामअली ने अपने विश्वस्त दूत बाबाराव गोविन्द करमालेकर को १७८४ के अन्त मे उसके पास भेजा। यह कई वर्ष तक शिन्दे के शिविर मे रहकर उसका महत्त्वशाली कार्यो मे परामर्श देता रहा और अनेक दिशाओ मे उसकी विशेष सेवा करता रहा। उसमे चिन्ताजनक कलहो का मधुर युक्तियुक्तता तथा चतुर तर्क-वितर्क द्वारा समाधान करने की अदभुत क्षमता थी। बाबाराव गोविन्द के साथ दूतमण्डल मे महादजी की बहन आनन्दीबाई

---

२ महेश्वर दरबार लैटर्स, हिगने एम्बैसी दि होलकर कैफियत तथा नव प्रकाशित, दी सोर्सेज ऑव होलकर हिस्ट्री, जिल्द १ व २ मे समाविष्ट विस्तृत वाङ्मय का अध्ययन कर सकते है।

हिगने का सुझाव था कि इस रोग की एकमात्र चिकित्सा सर्वथा परिवर्तन अर्थात अयोग्यता तथा कुप्रबन्ध के कारण होलकर राज्य का सर्व दमन है। परन्तु इस प्रकार का अमोघ उपाय नाना फडनिस की शक्ति के बाहर था। प्रशासन मे अपने वर्ग के छोटे और बडे व्यक्तियो सहित उसको इस कहावत पर सन्तोष करना पडा— आप मरे जग प्रलय।

भी आइ थी, जिमका विवाह राव रम्भा निम्बालकर क परिवार म हुआ था। यह निजामअली का अधीन जागीरदार था। उमका आर्थिक कष्ट था और वह महादजी स कुछ आर्थिक महायता प्राप्त करना चाहती थी। निजामअली ने उसम महादजी के पास अपनी प्राथना का समथन करन का कहा। इस प्राथना मे निम्नलिखित धाराएँ थी

१ साम्राज्य क वजीर की परम्परागत उपाधि का दान—जिस पर आमफजाह प्रथम, उसक पुत्र तथा पोत्र का क्रमश अधिकार रहा था।

२ हेदराबाद राज्य के शासक पद पर निजामअली का असदिग्ध पुष्टीकरण, इम पद के लिए गृहहीन घुमक्कड गाजीउद्दीन कनिष्ठ भी अपने हित मे प्राथना कर रहा था।

३ दिल्ली तथा उसके समीप की भूमि और जागीरो के रूप म बहुत-सी सम्पत्ति थी, जिस पर एक समय आमफजाह का अधिकार था। इस समय उन पर निजामअली ने अपना स्वत्व उपस्थित कर रखा था।

४ दिल्ली की प्राचीन यमुना नहर की दशा बिगड रही थी और इसकी मरम्मत की आवश्यकता थी। वह नहर जनता के उपयोग के लिए खोल दिये जाने पर निजामअली ने इमकी मरम्मत तथा रक्षा के लिए इस समय दो लाख रुपये देने का प्रस्ताव किया।

५ उत्तरी सरकार का जो प्रदश अग्रेजो का दे दिया गया था इस सम्बन्ध मे निजामअली ने अग्रेजो से शेष कर के रूप मे एक करोड से अधिक धन स्वत्व प्रस्तुत किया। महादजी से प्राथना की गयी थी कि वह अग्रेजो से यह धन भी उस धन के साथ वसूल कर ले जो वह सम्राट तथा नागपुर के भोसले के लिए माग रहा था।

यह दूतमण्डल सवथा व्यथ सिद्ध हुआ। १७८५ मे ग्वालियर के स्थान पर महादजी की बहन का देहान्त हो गया। वह वृद्धा थी। निजामअली ने उसका विचारपूवक पारिवारिक शृखला के रूप मे चुना था। परन्तु बाबाराव ५ वष से अधिक समय तक महादजी के पास ठहरा रहा, क्योकि वह अपनी आत्मीयता तथा निस्वाथ सेवा के लिए प्रसिद्ध था। उसके द्वारा महादजी को निजामअली से दस या बीस लाख का ऋण मिल गया। निजामअली उत्सुकतापूण रुचि से नाना तथा महादजी के बीच पूना मे बढती हुई खाई का अवलोकन कर रहा था। वह महादजी की मैत्री को नाना के लोभ से श्रेयस्कर समझता था। जब १७९१ मे महादजी ने दक्षिण को प्रयाण करने का निश्चय किया, बाजीराव भी उसके साथ अपने स्वामी के पास वापस आ गया। १७९३ मे

वह अपन स्वामी क काय म पूना म पुन महादजी से मिला। इन दिनो गाजीउद्दीन दिल्ली के सिहासन पर एक नय शहजादा को बैठाकर अपने भाग्य की परीक्षा कर रहा था। परन्तु गाजीउद्दीन के प्रयास कभी सफल सिद्ध नही हुए, क्योकि महादजी ने उसको अपनी सहायता नही दी। नाना के हृदय मे पानीपत के समय से ही गाजीउद्दीन के प्रति दयाभाव था। अत इस समय उसको काल्पी के समीप एक छोटी सी जागीर दे दी गयी।[७]

इसी बीच जवाबख्त के पुत्र मिर्जा मुजफ्फरबख्त नामक व्यक्ति ने दावा किया कि वह सम्राट का युवराज (अलीअहद) हे। वह १७८९ मे पूना आया और उसन स्वय को दिल्ली मे प्रतिष्ठित करने के लिए पेशवा से सहायता की प्राथना की। वह कई वर्षो तक पूना तथा अन्य स्थाना मे रहा। वह महादजी का समथन प्राप्त करने मे असफल हो गया, अत एकाकी नाना फडनिस उसके प्रयासा मे सहायता न दे सका और १७९५ मे किसी समय दरिद्रावस्था मे ही उसका देहान्त हो गया। इस प्रकार की घटनाओ से महादजी राजपूता के विरुद्ध चल रहे युद्ध के समय कितना व्याकुल हुआ होगा, यह आसानी से समझा जा सकता ह।

५ **राजपूतो का नाश**—१७९० तथा १७९१ म महादजी के सामन्त देश के प्रबन्ध तथा उपद्रवा के दमन मे अनेक स्थानो पर व्यस्त रह। खाडेराव हरि ने कानोड का घेर लिया। यहा नजफ कुली की पत्नी ने इस्माइलखा तथा जयपुर और जोधपुर के राजाओ की सहायता से महादजी की शक्ति का अनादर किया था। उसे उस समय शिन्दे तथा होलकर के बीच चलने वाली आन्तरिक कलह का पता था। विजयसिह ने महादजी के अन्यायपूण प्रवेश के विरुद्ध न्याय की प्राथना करने के लिए अपने दूत पूना भेजे। कुछ व्यक्तियो को महादजी की हत्या करने के लिए भी नियुक्त किया गया। जोधपुर के मराठा दूत ने लिखा "विजयसिह को कठोर तथा चिरस्मरणीय शिक्षा की आवश्यकता हे।" फरवरी, १७९१ मे महादजी ने जयपुर के प्रतापसिह के साथ पृथक सन्धि करने का प्रबन्ध कर लिया जो १५ लाख रुपये का वार्षिक कर नियमपूवक देने पर सहमत हो गया। उसने १८०३ मे अपनी मृत्यु तक अपनी प्रतिज्ञा का निष्ठापूवक पालन किया।

इस प्रकार महादजी उत्तर भारत मे सतलज तक पूण मराठा शक्ति को शनै-शनै पुन स्थापित करने मे सफल हो गया। अफगानिस्तान के दुर्रानी शाह

---

७ हिगने दफ्तर, जिल्द १, पृष्ठ ८४

तमूर के साथ भी उसका समझाता हा गया। उस समय सिख उस पर भारी दबाव डाल रहे थे। उसका भी अपने पिता अहमदशाह की भाति पजाब का लाभ था। मराठा, सिखा तथा अफगानो के बीच पजाब के प्रश्न पर त्रिदलीय समझौता हा गया। लाहौर तथा अटक के बीच का प्रदेश शाह को दिया गया, लाहौर तथा सतलज के बीच मे सिखा का शासन रहा और उस नदी के दक्षिण मे मराठो का राज्य रहा। इस प्रकार कलह का मुख्य विषय अतिम रूप मे हट गया, जा बहुत दिना स मराठा-अफगान सम्बन्धो पर प्रभाव डाल रहा था। महादजी के निपटन के लिए अब केवल दो विरोधी रह गये—जोधपुर का राजा विजयसिंह तथा इस्माइलखा। गोपालराव रघुनाथ अपने अविक्रृत स्थान अजमेर से विजयसिह पर भारी प्रहार कर रहा था। इस समय विजयसिंह तथा इस्माइलखा मे मेल हो गया। उन्हाने १७९० की ग्रीष्म ऋतु मे जयपुर के तावरवाटी जिले म महादजी के विरुद्ध अपना युद्ध पुन आरम्भ कर दिया। जयपुर से ८० मील उत्तर मे पाटन के स्थान पर उन्होने स्थिति दढ कर ली। महादजी ने चुनौती स्वीकार कर ली तथा सगठित आक्रमण मे उसने अपने उत्तम सरदारा को नियुक्त किया। गोपालराव रघुनाथ, जीवबा बख्शी, अम्बूजी इगले, मछेरी का प्रतापसिह तथा दि बायन के शक्तिशाली दल पाटन की ओर बढे और वे शत्रु पर आक्रमण करने के लिए उपयुक्त स्थान ढूढने मे व्यस्त हो गये। इस समय सौभाग्यवश महादजी ने तुकोजी होलकर का पूण सहयाग प्राप्त कर लिया था। उसने उदारतापूवक अपनी नवीन विजयो मे उसका आधा हिस्सा दे दिया था। २८ मई से २० जून, १७९० तक पाटन के सम्मुख लगभग एक मास तक लडाई चलती रही। अन्तिम दिन रक्तमय तथा निर्णायक युद्ध हुआ। दोनो ओर से तोपो की मार हुई जो सवेरे से काफी रात तक हाती रही। दि बायने के दलो ने भयानक नाश किया। बहुत से हाथी तथा सो तोपे लूट मे मिली। महादजी ने इस विजय के सम्बन्ध मे चमत्कार-पूण वत्तान्त पूना भेजा। इस्माइल बेग ने अकस्मात जयपुर भागकर अपनी प्राणरक्षा कर ली।[८]

परन्तु पाटन की इस विजय से राजपूत युद्ध समाप्त नही हुआ। शिन्दे के शत्रुओ ने अपना आक्रमणात्मक युद्ध पुन आरम्भ कर दिया तथा अधीनता स्वीकार करने के कोई लक्षण प्रकट नही किये। महादजी ने अपने सामन्तो को राठोर प्रदेश का नाश करने की आज्ञा दी। विजयसिह ने तुकोजी होलकर के

---

[८] मई, १९४३ के माडन रिव्यू मे सर यदुनाथ सरकार का लेख देखो।

साथ पृथक् शान्ति-प्रस्ताव पुन आरम्भ कर दिये। उसन पुन दानो मराठा सरदारो के बीच फूट डालने का यत्न किया। इन चिन्ताओ के बीच जब महादजी को सम्राट का यह विधिसम्मत फर्मान प्राप्त हुआ कि वह नायब वकील मुतलक नियुक्त कर दिया गया हे और मथुरा तथा वृन्दावन के दोनो हिन्दू तीथ-स्थान मराठा अधिकार मे दे दिये गये हे तो उसका उत्साह बढ गया। महादजी ने ७ अगस्त, १७९० को विशेष दरबार करके उपयुक्त विधि से फर्मान स्वीकार किया। इस घटना से बाह्य जगत को यह मालूम हो गया कि मुगल शासन मे महादजी का स्थान शक्तिशाली हे और उसकी क्षमता तथा प्रबन्ध मे सम्राट को बहुत विश्वास ह। अब शिन्दे की प्रतिष्ठा उत्तर भारत मे पुन पूणत स्थापित हो गयी।

दि बायन के अनुशासित दला की शक्ति के कारण ही पाटन मे विजय प्राप्त हुई थी। इससे उस प्रयाग की वुद्धिमत्ता पुष्ट हो गयी जो महादजी न ५ वष पहले डरते-डरते आरम्भ किया था। अपनी सेना के नियमित वेतन वितरण के प्रति दि बायने का विशेप ध्यान था। महादजी को अपनी आर्थिक व्याकुलताओ के कारण प्राय कष्ट होता था। अत दि बायने न अपनी सेना के नियमित वेतन वितरण का सन्तापजनक प्रबन्ध करने के लिए स्पष्ट आग्रह किया, जिसस सेना निष्ठापूवक सदैव सेवा करती रहे। जव उसकी नियुक्ति प्रथम बार हुई तो उसको ४ हजार रुपय मासिक मिलते थे। बाद को यह वेतन बढाकर ६ हजार कर दिया गया। वेतन मे विलम्ब से बचने के लिए महादजी ने सेनापति को अलीगढ के समीप अपने समृद्ध जिले दे दिये। उनकी अनुमानित आय १२ लाख वार्षिक थी जो उसके तथा उसकी सेना के वेतन के भुगतान के लिए पर्याप्त थी। दि बायने न बहुत योग्यता से जागीर का प्रबन्ध किया तथा अपनी वार्षिक आय इस प्रकार बढा ली कि वह अपनी नवीन सेना के लिए उच्चतम कौशल का प्रबन्ध कर सके। यह प्रयाग भविष्य मे ब्रिटिश प्रशासको के लिए भी एक अनुकरणीय उदाहरण हो गया।

पाटन के युद्ध के बाद विजयसिंह ने फ्रेंच जनरल को महादजी के प्रति निष्ठा से विचलित करने के लिए अनेक उपाय किये। दि बायने ने उसको उत्तर दिया—"आप मुझको क्या कुछ अधिक दे सकते है ? जयपुर तथा जोधपुर के दोनो राज्यो पर पहले से ही मेरा पूण अधिकार है।" जनरल को राजपूत सघ पर अपनी विजय का इतना विश्वास था कि उसने तुरन्त ही अजमेर नगर तथा तारागढ के शक्तिशाली गढ पर अधिकार कर लिया (२१ अगस्त, १७९०)। पाटन पर विजय प्राप्त करने मे महादजी तथा तुकोजी के सयुक्त प्रयास से

दानो सरदारो के बीच पुन अस्थायी मेल हो गया। १६ अगस्त को वे सप्रेम मिले और उन्होने भूतकालीन घटनाओ तथा भावी योजनाओ के विपय मे निष्कपट वातालाप किया। वे समस्त विजय तथा लूट के आधे आधे बटवारे पर सहमत हो गये। ऐसा प्रतीत हाता ह कि महादजी ने प्रदेशो तथा उनके प्रशासन पर अपने विशेप अधिकार का त्याग नही किया। इसी कारण सघष पुन आरम्भ हो गया।

राजपूत-विरोध का समाप्त करने क निमित्त नवीन अभियान के लिए महादजी २७ अगस्त को पुन शिविर मे चला गया, और श्रीकृष्ण का जन्म दिवसोत्सव (२ सितम्बर) यथापूव मनाया। उसने लाडोजी देशमुख को विजयसिह के विरुद्ध पहले ही भेज दिया था। गोपालराव चिटनिस, जीवबा दादा तथा काशीराव हालकर (तुकोजी का पुत्र) ने जोधपुर प्रदेश मे प्रवेश किया। उनका निश्चय समस्त विरोध को चण करके साभर, रूपनगर आर अन्य स्थाना पर अधिकार कर लेने का था। विजयसिह ने मेडता के मैदान मे अपना पडाव डाला तथा १८ ओर ६० वष के बीच आयु वाली अपनी समस्त पुरप जनता का बलपूवक सना मे भरती कर लिया, जिससे वह मराठा घेरे के विरुद्ध अपना अन्तिम विनाशकारी प्रयास कर सके। राजपूत प्रतीक्षा कर रहे थे कि इस्माइल वेग का दल आकर उनके साथ सम्मिलित हो जायेगा, तभी दि बायने न १० सितम्बर को प्रात राजपूत सवारो पर अग्निवर्षा आरम्भ कर दी। चार हजार राठौरो ने उन्मत्त होकर दि बायने के आक्रमण का उत्तर दिया ओर सबके सब काट डाले गये। अपने समस्त सामान सहित शत्रु का शिविर मराठो के हाथ लग गया। विजयसिह का मुख्य सेनापति भीमराव सिन्धवी नागौर भाग गया और जहर खाकर मर गया। मेडता का रणक्षेत्र मृत तथा घायल राठौर वीरो से पट गया। जो जीवित पाये गय, उनको मराठो ने साव-धानी से उठा लिया और चिकित्सा की। सर यदुनाथ लिखते ह—"दि बायने के जीवन मे यह सबसे भयकर युद्ध था। इसने उसकी विलक्षण सैनिक बुद्धि को उत्तम रूप से प्रकट कर दिया। अनुशासन के विरुद्ध केवल साहस तथा गोलियो के विरुद्ध तलवारो की नितान्त निरथकता के श्रेष्ठ उदाहरण के रूप मे यह युद्ध अनन्त काल तक स्मरण रहेगा। मेडता की लडाई से प्राचीन भारतीय रण-प्रणाली पर यूरोपीय रण-प्रणाली की श्रेष्ठता असन्दिग्ध रूप से सिद्ध हो गयी।"[६]

---

६ माडन रिव्यू, जनवरी, १६४४

महादजी न तुरन्त राठोरा की राजधानी जोधपुर पर अधिकार करने के लिए अनक टुकडियाँ भेज दी । विजयसिंह ने अपनी स्थिति निराशापूण देखकर अधीनता की शर्तें प्राप्त करने के लिए दूत भेजे । य दूत अजमेर मे महादजी से मिले । यह सधि वार्ता विलम्ब तथा छल के कारण असाधारण रूप से दीघकालीन हो गयी । अन्त मे ६ जनवरी, १७९१ को निम्नलिखित शर्तो पर समझोता हो गया । ८५ वप पहले दत्ताजी शिन्दे के साथ अभिनीत दृश्य की यह पुनरावृत्ति थी ।

१ विजयसिह एक वप क अन्दर किश्तो द्वारा ४० लाख रुपये दे और इसके बाद ५ लाख रुपये का वार्षिक कर देता रहे ।

२ अजमेर का नगर तथा गढ उनके अधीन गावो सहित सदा के लिए शिन्दे को दे दिये जायें ।

३ साभर तथा कुछ अन्य जिले स्थायी रूप से मराठो का दे दिय जाय ।

जयप्पा के समय से अजमेर पर शिन्दे परिवार का अधिकार था । लाल-सोट के बाद वह उनके हाथ से निकल गया था । अब वह पुन उनके अधिकार मे आ गया । पुष्कर के तीथ स्थान पर भी अब मराठो का अधिकार हो गया । यहाँ पर महादजी ने एक भव्य नवीन मन्दिर वनवाया । लखबा दादा विजित प्रदेश की व्यवस्था करने के लिए नियुक्त किया गया । युद्ध के शीघ्र पश्चात ही जुलाई, १७९३ को विजयसिह का देहान्त हो गया । जिस प्रकार पाटन का रणक्षेत्र जयपुर के वीरो का श्मशान बन गया था उसी प्रकार मेडता के रण से जोधपुर के राठौरो की शक्ति भग हो गयी । अप्पाजी राम ने एक स्थान पर सयोगवश लिखा है—"पाटिल बाबा बहुत सौभाग्यशाली है । मनुष्यो तथा कार्यो के प्रबन्ध के लिए उसमे आश्चयजनक क्षमता है । जिन दूसरे व्यक्तियो ने उसके उपायो के अनुकरण का प्रयत्न किया, वे असफल हुए ।"

उत्तर भारत ने महादजी को अपने समस्त प्रतिद्वद्विया मे से अब केवल इस्माइल बेग से निपटना रह गया था । उसकी कथा पढने मे पाठको का देर नही लगेगी । उसका अब कोई समथक नही था और उसने महादजी के समस्त शान्ति-प्रस्तावा को अस्वीकार कर दिया था । अब वह घुमक्कड का जीवन व्यतीत करने लगा । एक अन्य शाही सरदार नजफकुलीखा उसी जैसी परि-स्थिति मे था । वह कभी महादजी का मित्र हो जाता और कभी शत्रु । कानौड पर अधिकार करने की व्यस्तता मे ४ सितम्बर, १७९० को नजफकुलीखाँ का देहान्त हो गया । उसके बाद इस्माइल बेग ने कानौड पर अधिकार कर लिया और विजयसिह के साथ हो गया । जब विजयसिह ने सघष त्याग दिया तो

इस्माइल बेग अकेला रह गया और महादजी के लोगा न एक स्थान से दूसर स्थान पर उसका पीछा शुरू कर दिया। १७९१ के आरम्भ मे वह दक्षिणी राजस्थान की ओर गया और सहायता की खाज मे उसने सिरोही तथा पालनपुर पर धावा किया। जुलाई मे वह अहमदाबाद के पास पहुच गया और उसने समीपवर्ती प्रदेश का लूट लिया। गुजरात से भगाये जान पर वह जयपुर वापस आ गया, परन्तु उसको कही पर शरण न मिल सकी। खाडेराव हरि उसको ढूढता हुआ पहुँच गया आर ८ दिसम्बर, १७९१ को उसे परास्त कर दिया। तब कानौड के गढ ने नजफकुली की पत्नी ने उसको शरण दी। उस समय इस गढ पर उसी का अधिकार था। खाडेराव ने कानोड को घेर लिया। उसने मथुरा मे भारी तोपे मगा ली ओर अग्निवर्षा द्वारा उस स्थान पर अधिकार कर लिया। इस्माइल वेग अप्रैल, १७९२ मे पकड लिया गया। महादजी इसके पहले ही पूना के लिए प्रस्थान कर गया था। मोती बेगम की याचना पर जो नजफकुली की सम्बन्धिनी थी और जिसने दि वायने के साथ विवाह कर लिया था, दि बायने न इस्माइल वेग का अपने पास शरण दी। मासिक व्यय के लिए ५०० रुपये भत्ते सहित इस्माइल बेग आगरा मे बन्दी कर दिया गया। उसने ८ वष निरोव मे व्यतीत किय और १७९९ मे उसका दहान्त हो गया। वह मुगल सेना का अन्तिम जीवित सदस्य था।

इस प्रकार १७९१ के अन्त तक नमदा से सतलज तक समस्त उत्तर भारत पर कहने मात्र को शिन्दे का अधिकार हो गया तथा वहा एक प्रकार की सुनिश्चित राजनीतिक व्यवस्था स्थापित हो गयी। दक्षिणी राजस्थान मे उदयपुर के शासक राणा भीमसिह के सम्मुख आन्तरिक क्रान्ति थी। यह क्रान्ति उसके नामराशि सलूम्बर के भीमसिह ने खडी कर दी थी। उसने बलपूवक चित्तौडगढ पर अधिकार कर लिया था जहा से उसे निकालना सम्भव नही था। चित्तौड उदयपुर का बहुमूल्य अधिकृत स्थान था। वहा का शासक उसकी हानि सहन नही कर सकता था। माच, १७९१ मे जब महादजी वसन्तोत्सव के लिए पुष्कर गया, तब राणा ने चित्तौड को पुन प्राप्त करने के लिए उससे सहायता की प्राथना की। उस समय महादजी को पूना जाने की जल्दी थी। अत वह राणा के आह्वान को तुरन्त स्वीकार न कर सका। परन्तु अपने अनुमान से अधिक ममय तक उसको राजपूतो के कार्यो मे व्यस्त रहना पडा। वह चित्तौड के समीप पहुँचा। वहाँ राणा उससे मिलने के लिए आया। ५ सितम्बर को उनकी भेट हुई। चित्तौड तुरन्त घेर लिया गया और १७ नवम्बर को महादजी की सेना के सामने दुगस्थ लोगो ने आत्मसमपण कर दिया। चित्तौड राणा

के अधिकार मे वापस दे दिया गया । उदयपुर का कर अन्तिम रूप से निश्चित हो गया ओर महादजी दक्षिण को चल दिया । ४ दिसम्बर, १७९१ को पेशवा को इस प्रकार लिखा

"इतने लम्बे समय के बाद पूना मे आपके दर्शनो की उत्कट इच्छा से मैने मारवाड क्षेत्र के मार्ग मे मथुरा से प्रस्थान किया। मार्ग मे मुझको उदयपुर के राणा की प्रार्थना प्राप्त हुई कि मै उसके प्राचीन स्थान चित्तौडगढ पर उसके हितार्थ अधिकार कर लू । इस पर उसके विद्रोही सरदार भीमसिंह का अधिकार था । मै गढ के सम्मुख पहुँच गया और थोडे-से समय मे उस पर अधिकार कर लिया । आपके आशीर्वाद से इस प्रसिद्ध गढ पर मैने कुछ ही दिनो मे अधिकार कर लिया, जबकि अकबर महान को इस पर अधिकार करने मे १२ वर्ष लग गये थे । मैने उदयपुर का प्रबन्ध कर दिया है और राजपूत प्रदेश की रक्षा मे लिए अम्बूजी इगले नियुक्त हो गया है । अब मै शीघ्र ही पूना पहुँचकर श्रीमान के दर्शन करने वाला हू ।" जब महादजी चित्तौड से प्रस्थान कर रहा था तो राणा तथा विद्रोही भीमसिंह दोना ५ जनवरी, १७९२ को उससे मिलने आये । जोधपुर तथा अन्य राज्यो के वकील भी उसी भाति मिलने आये । उन्होने अपनी सप्रेम आज्ञाकारिता को प्रमाणित करके पारस्परिक विचार विनिमय द्वारा मुख्य विवादो का निपटारा कर लिया । महादजी ६ जनवरी को मेवाड से विदा हुआ । अम्बूजी इगले तथा समरू के दल कुछ दूर तक उसको विदा करने गये । जब निकट भविष्य मे महादजी दक्षिण मे था तब अम्बूजी इगले ने अपने कर्तव्यो का इतनी उत्तम योग्यता से पालन किया कि इतिहासकार टाड ने उसकी भूरि-भूरि प्रशसा की है ।

तिथिक्रम

अध्याय ८

८ फरवरी, १७७७	घासीराम पूना का कोतवाल नियुक्त।
अगस्त, १७८९	नाना फडनिस द्वारा बनारस मे भवन निर्माण आरम्भ।
२९ अगस्त, १७९१	घासीराम ब्राह्मण का अपराधियो को निरोध मे रखना।
३१ अगस्त, १७९१	घासीराम की पत्थर मारकर हत्या।
फरवरी, १७९२	महादजी का गोदावरी तट पर पहुँचना।
माच-मई, १७९२	महादजी तुलजापुर मे।
११ मई, १७९२	पेशवा द्वारा हिसाब की देखभाल।
१२ जून, १७९२	महादजी का पूना मे आगमन।
२२ जून, १७९२	महादजी द्वारा वनावडी मे दरबार।
९ अगस्त, १७९२	महादजी का पेशवा को भोज देना।
९ अगस्त, १७९२	पूना मे शिन्दे के दावो की परीक्षा।
८ अक्तूबर, १७९२	सुरावली मे होलकर का शिविर भग।
१३ माच, १७९३	पूना मे होली।
२३ माच, १७९३	सचिव के प्रति दुर्व्यवहार।
अप्रैल, १७९३	शिन्दे तथा नाना के बीच वैर-शान्ति का प्रयास।
अप्रेल मई, १७९३	सचिव के काय की जाँच।
१ जून, १७९३	लाखेरी मे होलकर का पराभव।
२३ जुलाई, १७९३	शिन्दे तथा नाना के बीच वैर-शान्ति की सूचना।
१२ फरवरी, १७९३	महादजी शिन्दे का पूना मे देहान्त।

अध्याय ८

शिन्दे पूना मे

(१७९२–१७९४)

१ शिन्दे का दक्षिण आने का उद्देश्य। २ २२ जून, १७९२ का दरबार।
३ पूना मन्त्रिमण्डल से शिन्दे का विरोध। ४ लाखेरी मे होलकर का पराभव।
५ पूना मे शिन्दे की विजय। ६ सचिव के प्रति दुर्व्यवहार।
७ घासीराम कोतवाल का दुःखपूर्ण अन्त।

१ शिन्दे का दक्षिण आने का उद्देश्य—जिस समय महादजी शिन्दे का दक्षिण मे आगमन हुआ, उसी समय टीपू सुल्तान के विरुद्ध मित्रो का युद्ध समाप्त हुआ था। क्रान्तदर्शी पर्यवेक्षको की सम्मति मे इस युद्ध का अप्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि भारत की राजनीति मे ब्रिटिश सत्ता ने प्रमुखता प्राप्त कर ली तथा उसी अनुपात मे मराठा प्रतिष्ठा कम हो गयी। इस समय शिन्दे के सम्मुख प्रमुख उद्देश्य उचित अवसर पर इसका प्रतिकार करना था। इस समय वह भारतीय शासको मे सर्वाधिक शक्तिशाली था। भारतीय स्वराज्य के हित मे वही सर्वाधिक प्रयत्नशील योद्धा था। वह पेशवाओ की शक्ति था—अर्थात वह उन सरदारो मे से था जिन्होने महान शिवाजी द्वारा स्थापित अल्प सफलताओ से मराठा सत्ता को उस स्थिति पर पहुँचा दिया था, जहाँ संस्थापक का हिन्दूपद-पादशाही का स्वप्न लगभग पूर्ण हो गया था क्योकि १७७२ के आरम्भ मे इसी शिन्दे ने योग्य पेशवा माधवराव प्रथम के निर्देश मे सम्राट को ब्रिटिश नियन्त्रण से हटाकर दिल्ली पहुँचाया और उसको पूर्वजो की गद्दी पर बिठा दिया। इस उद्धार-काल को २० वर्ष हो गये थे और इस समय भारतीय राजनीति मे महत्त्वशाली परिवर्तन हो चुके थे—विशेषकर यह कि मराठा सत्ता के लिए एक नवीन प्रतिद्वन्द्वी का आगमन हो चुका था जो सिन्धुपार अफगान प्रदेशो मे नही, अपितु समुद्रपार यूरोप के प्रदेशो से आया

था। क्या इस नवीन सत्ता को सर्वोच्च स्थान तक पहुँचने के लिए निष्कण्टक माग दे देना और वैभवशाली सस्मरणो के इस विशाल प्राचीन महाद्वीप के लिए स्वराज्य की समस्त आशा को नष्ट कर देना उचित था ? क्या इस देश के पुत्रो को भावी दासता से बचने के लिए यथाशक्ति प्रयास नही करना चाहिए था ? जयपाल, जयचन्द, पृथ्वीराज, देवगिरि के रामदेव, विजयनगर के रामराय तथा अन्य व्यक्तियो ने मुस्लिम अधीनता से भारत की रक्षा के प्रयास मे अपने प्राणो का बलिदान कर दिया था। हम नही कह सकते कि वे सवथा असफल रहे, क्योकि समयान्तर मे विजेता इस देश मे बस गये, जिन्होने इसके जीवन तथा सस्कृति को स्वीकार कर लिया और वे जनता के साथ हिलमिल गये। यही प्रक्रिया इस समय अधिक उग्ररूप मे पुनरावृत्ति का भय दिखा रही थी। शिन्दे ने इसकी छाया शनै -शनै अग्रसर होती हुई देख ली तथा वह ब्रिटिश प्रभुत्व के प्रतिरोध के लिए कटिबद्ध हो गया। उस समय थोडे से ही व्यक्ति इस सकट की गम्भीरता समझ सके थे। पूना मे नाना फडनिस तथा दिल्ली मे शिन्दे को इसका पूण ज्ञान था, क्योकि ब्रिटिश कूट-नीतिज्ञो से उनका नित्य का सम्पक था। अध्ययन के लिए उपलब्ध इस समय के पत्रो मे उनके व्यवहार का पर्याप्त प्रतिबिम्ब है। यही मुख्य उद्देश्य शिन्दे को पूना लाया था तथा इसी उद्देश्य ने उस समय के अनेक राजनीतिज्ञो को चक्कर मे डाल दिया था। विदेशी शासन की एक शताब्दी का हमको अनुभव है। इस शताब्दी ने मराठो के पश्चात होने वाली भारतीय इतिहास की प्रगति को अत्यन्त विकृत कर दिया है। आरम्भिक स्थितियो को उनकी उचित स्थिति के साथ देखने का यही उचित समय है।

अपनी जन्म-भूमि मे शिन्दे के आगमन से केवल महाराष्ट्र मे ही नही, समस्त भारत मे कोलाहल-सा मच गया। थोडे-से मित्रो ने उसका स्वागत किया, परन्तु अधिकाश व्यक्तियो को इस घटना मे व्यक्तिगत अथवा राष्ट्रीय सकट के दशन हुए। सबमे अभूतपूव जिज्ञासा जाग्रत हो उठी। पूना मे उसके आगमन से बहुत पहले ही लोग इस विषय मे विचार बनाने लगे थे कि शिन्दे के आगमन का क्या कारण हो सकता है तथा उसके सम्भावित परिणाम क्या होगे ? उसकी शक्ति के प्रकाश मे लोगो को यह स्मरण ही न रहा कि वह १२ वष की लम्बी अनुपस्थिति के बाद अपने घर वापस आ रहा है। एक समय तो समस्त मराठा सरदारो को वष मे एक बार राजधानी मे अपने स्वामी के दशन करना आवश्यक था। परन्तु उसकी १२ वष की अनुपस्थिति तथा बीच मे घटित होने वाली महत्त्वपूण घटनाओ के कारण समस्त भूतकालीन

मस्मरण नष्ट हा गये थे और स्वय शिन्दे पूना तथा पशवा के दरबार मे अपरिचित व्यक्ति हो गया था। पूना, जहा उसके नवयुवक स्वामी का पालन हो रहा था और उसके देशवासियो की नयी पीढी की उत्पत्ति हा रही थी। अधिकाश मनुष्यो का विश्वास था कि शिन्दे ने अपने लिए उत्तर मे स्वतन्त्र राज्य का निर्माण कर लिया हे तथा दक्षिण के साथ सम्बन्ध रखने का उसके पास कोई कारण नही है। मान्यता यह थी कि उसने विशाल धनराशि का सग्रह कर लिया है तथा फ्रेंच-प्रशिक्षण प्राप्त अपने दलो के कारण वह अजेय हो गया है। इन दलो द्वारा सम्राट पर नियन्त्रण प्राप्त करने मे समर्थ महादजी क्या उसी प्रकार पेशवा को परास्त नही कर सकता था ? जब १२ जून के तप्त वातावरण मे शिन्दे राजधानी के समीप पहुँचा ता पूना के लोगो मे इसी प्रकार की अनियन्त्रित तथा भ्रान्त धारणाएँ व्याप्त थी। वहा उसकी स्थिति लकडबग्घो के बीच मे सिह के समान थी और सभी को उसका सामना करना था।

स्वय महादजी का यह देखकर बहुत आश्चय हुआ कि उस घटना के सम्बन्ध मे असाधारण हलचल हो रही है, जिसे वह साधारण परम्परागत बात समझता था। सामान्य भय को शान्त करने का अधिक से अधिक प्रयत्न करते हुए उसने धीरे-धीरे और सावधानी से पदार्पण किया। इन अनिष्ट सन्देहो के निराकरण के लिए उसने अपने साथ आने वाले कुछ दल बुरहानपुर से वापस भेज दिये। विश्वस्त सचिव बालाराव गोविन्द बहुत दिनो मे दक्षिण के सम्पूण समाचार उसके पास भेजने के लिए नियुक्त था। वह आगे बढकर फरवरी के आरम्भ मे गोदावरी पर टोका मे महादजी से मिला तथा राजधानी के राज-नीतिक क्षेत्रो को आन्दोलित करने वाले त्रास तथा अभिन्न भावनाओ से उसे सूचित किया। इस पर महादजी ने बुद्धिमत्तापूवक अपना माग बदल दिया। वह अपने मुस्लिम गुरु के दशन करने तथा आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए टोका से बीड चला गया। बीड से अपने इष्टदेव की पूजा के लिए वह तुलजा-पुर पहुँचा। यहाँ पर उसने अपने पुत्र तथा उत्तराधिकारी के जन्म लेने की आशा से दूसरा विवाह किया। इसके बाद वह अपने पूवजो के निवास-स्थान जामगाव मे रहने लगा। इस प्रकार पूना के वातावरण से दूर रहकर उसने चार लम्बे मास व्यतीत कर दिये। इस बीच वह सब प्रकार की सम्मति तथा भावनाओ के लोगो से मिलकर बातचीत करता रहा और उनके निराधार सन्देहो को शान्त करता रहा। इस प्रकार आरम्भिक झझावात शान्त कर दिया गया।

रामचन्द्र नामक समकालीन चारण ने खरदा के रण पर एक गीतिकाव्य लिखा, जिसके प्रत्यक पद मे निम्नलिखित टेक है[1]

"शिन्दे ने हिन्दुस्तान तथा गुजरात को छोड दिया है। अब वह सम्राट की प्रेरणा से दक्षिण का भ्रमण कर रहा है।"

एक दृष्टिकोण से यह शायद शिन्दे के आगमन का वास्तविक उद्देश्य था। उसने निश्चय ही अपने भावी काय की योजना बना ली थी और वह भारत के एकमात्र स्वामी सम्राट की आज्ञा पर अपनी योजना कार्यान्वित करने अर्थात अधिक विस्तार से अंग्रेजो की रोकथाम करने दक्षिण आया था। कानवालिस द्वारा किया गया तिरस्कार काटे की भाँति उसके हृदय मे कसक रहा था। क्लाइव के समय से ही अग्रेज प्रत्येक प्रकार से सम्राट का अपमान तथा उपेक्षा कर रहे थे। उसके प्रदेश छीन लिये गये, उसके लिए देय कर बन्द कर दिया गया तथा दीवानी के बदले मे उसके निर्वाह के लिए स्वीकृत भत्ता रोक दिया गया। शाहआलम ने ब्रिटिश आक्रमण के विरुद्ध सिराजुद्दौला, मीरकासिम तथा मीरजाफर, शुजाउद्दौला, नजीबखाँ, चेतसिह तथा रुहेलो और अवध की दीन बेगमो का सघष देखा था। क्लाइव, ऐण्डसन, ब्राउन, मैलेट, कक पैट्रिक —इन सबने एक दूसरे के बाद अधिकाधिक मात्रा मे सम्राट को धोखा दिया था। उसको यह दुःखदायक अनुभव हो गया कि उसकी शक्ति उसके हाथो से शीघ्रतापूवक निकली जा रही है। केवल महादजी ने उसकी रक्षा करके असह्य अपमानो से बचा लिया था। केवल वही समझता था कि ब्रिटिश लोगो की ओर से भारतीय शासको—उदाहरणाथ अवध के नवाब वजीर, नागपुर के भोसले परिवार, हैदराबाद के निजामअली तथा अर्काट के नवाब मुहम्मद अली—को कितना कष्ट था। इनमे मुहम्मद अली अग्रेजो द्वारा ही शासक बना था और इस समय कुशासन तथा भारी ऋण का कष्ट भोग रहा था।

इस समय भारतीय राजनीति का यह भयावह रूप समस्त भारत को स्पष्ट हो गया था। शिन्दे ने सम्राट के सरक्षक का कतव्य सँभाल लिया था और राजपूत तथा मुस्लिम विरोध को सफलतापूवक दमन करके अपनी

---

[1] हिन्दुस्तान गुजरात सोडुन सिदा दक्खनेत आला ॥
हुकूम केला बादशहा ने त्याला।

शाहआलम अवसरवादी था। एक ओर तो उसने शिन्दे को अपना समथन दिया, और दूसरी ओर दिल्ली मे ब्रिटिश दूतो के साथ षडयन्त्र किया। देखो—पूना रेजीडेन्सी करस्पौण्डेन्स, जिल्द १, पृ० २७६, तथा जिल्द २, पृ० १२८-१३२

क्षमता सिद्ध कर दी थी। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति उसे उद्धारकर्ता के रूप मे देखने लगा। उसने सिखो तथा सिन्धु पार के अफगानो की मैत्री प्राप्त कर ली थी। निजामअली तथा टीपू सुल्तान उसकी सद्भावना के इच्छुक थे। उच्च कोटि का कूटनीतिज्ञ बाबाराव गोविन्द भारतीय स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए भारतीय शक्तियो का सर्वसम्मत संघ संगठित करने के लिए प्रयत्नशील था। इस प्रयोग की सफलता के लिए यूरोपीय प्रथानुसार प्रशिक्षित सेना की नितान्त आवश्यकता थी। शिन्दे ने एक फ्रेंच विशेषज्ञ की सहायता से यह आवश्यकता पूर्ण कर ली थी। अब दक्षिण के मराठा जागीरदारो को यह निश्चय कराना था कि उन्हे भी अपने अस्त्र शस्त्रो को उन्नत करने की इसी प्रकार महती आवश्यकता है। इस प्रकार महादजी सबकी दृष्टि मे विदेशी आक्रमण के विरुद्ध भारतीय स्वातन्त्र्य का समर्थन करने के लिए अत्यन्त उपयुक्त स्थिति मे पहुँच गया था। इस प्रकार के प्रयास के लिए केन्द्रीय मराठा शासन का समर्थन आवश्यक था। इसी उद्देश्य के लिए अल्पवयस्क पेशवा का पालन-पोषण किया जा रहा था। अत अन्य घोषित उद्देश्यो के अतिरिक्त मराठा शक्ति को नवीन रूप देने और उसके संगठन मे नवीन प्राण फूकने के लिए शिन्दे पूना आया। ऐसा करने से दिल्ली तथा पूना की संयुक्त शक्ति प्रभावशाली सिद्ध होने की आशा थी। गीतिकार ने इसी आन्तरिक उद्देश्य को उचित रूप से प्रकट किया है।

इसके साथ साथ महादजी अपनी इस योजना की त्रुटियो को भी भली भाति समझता था। उसने ब्रिटिश शस्त्रो के बल को तथा उनकी कूटनीति की शाखाओ को अच्छी तरह समझा था। लार्ड कार्नवालिस के इशारे से पूना मे मैलेट तथा हैदराबाद मे केनवे इसी नीति का संचालन कर रहे थे। अत उसने बहुत सावधानी से प्रगति की। उसने नाना फडनिस के समक्ष अपनी परेशानियाँ रखी और उनका समाधान प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। अनेक ब्रिटिश रेजीडेटो ने शिन्दे के आन्तरिक उद्देश्यो को जानने का यत्न किया। शिन्दे की योजनाओ के विषय मे वे जो कुछ जान सके अथवा संग्रह कर सके, उसका समाचार प्रत्येक ने अपने ढंग से भेज दिया। साथ ही उन्होने शिन्दे की बढती हुई शक्ति को रोकने के लिए गतिविधियो के सुझाव भी दिये। शिन्दे ने अपने निम्न प्रत्यक्ष उद्देश्य घोषित किये—(१) उसने पेशवा की आज्ञा से १७७७ से उत्तर भारत मे अनेक युद्धो पर बहुत-सा व्यय किया है। इस व्यय से सम्बन्धित कई करोड रुपये की माग का निपटारा करना है। (२) वह यह सिद्ध करने के लिए तैयार था कि उसने दिल्ली पर अपने

अधिकार के कारण न तो विशाल धनराशि का सग्रह कर लिया है और न वह इस धन को अपने स्वामी को देने के स्थान पर स्वय खा गया है।(३) वह अलीबहादुर तथा तुकोजी होलकर के साथ अपने चिन्ताजनक विवादो का प्रामाणिक रूप मे निणय भी चाहता था। ये तथा अन्य बाते उसके आगमन के स्पष्ट उद्देश्यो के रूप मे प्रकट की गयी, परन्तु उसका वास्तविक उद्देश्य, जो उस समय के विशाल साहित्य से प्रकट होता है, यह था कि मराठा शक्ति को चारो ओर विद्यमान भयावह सकटो के प्रतिरोध के विचार से पुनरुज्जीवित किया जाये।

कुछ भी हो, महादजी इतना चतुर था कि उसने अपने सहकारी सामन्तो और बाह्य शक्तियो के प्रतिनिधियो मे विरोधी भावना जाग्रत नही होने दी। वह सावधानीपूवक युद्ध से दूर रहा। उसने नमदा तट पर पहुँचते ही रघुजी तथा निजामअली के विचारो का पता लगाने के लिए उनके पास विशेष दूत भेजे। महादजी ने स्वय सीधे नागपुर जाने का प्रस्ताव किया, परन्तु अनेक कारणो से यह विचार छोड दिया। पूना तथा हैदराबाद के ब्रिटिश रेजीडेण्टो को ऐसा जान पडा कि कोई महत्त्वशाली राजनीतिक प्रयत्न हो रहा है, अत प्रत्येक ने अपने ढग से इसका प्रतिकार करने का प्रयास किया। शिन्दे की ओर से होने वाले किसी भी अपकार के विरुद्ध नाना को मैलेट से हार्दिक समथन प्राप्त हुआ।[२]

---

२ निम्नाकित पत्र-व्यवहार से अच्छी तरह प्रकट होता है कि नाना किस प्रकार गुप्त रूप से अग्रेजो के हृदय मे प्रवेश प्राप्त कर रहा था।

२९ जून, १७८९ को लाड कानवालिस मैलेट को लिखता है "आप मन्त्री (नाना) को यह सूचना दे सकते है कि मैने अत्यन्त तत्परता तथा हष से बनारस मे अपने रेजीडेट को नाना फडनिस के दीवान का अत्यन्त शिष्टता से स्वागत करने के निर्देश दे दिये है। रेजीडेट उसकी इच्छानुसार ऐसी प्रत्येक सहायता देगा, जिससे वह उस नगर मे अपना भवन निर्माण करने मे समथ हो सके। यदि नाना अपनी काशी दशन की इच्छा को कार्यान्वित करना चाहता है तो आप उसे आश्वासन दे सकते है। मराठा राज्य मे अपने पद तथा प्रतिष्ठा के कारण वह जिस सावधानी तथा मान का अधिकारी है, मै उसे प्रकट करने का अपनी ओर से पूण उद्योग करूँगा। मै उसके व्यक्तिगत चरित्र के सम्बन्ध मे जो विचार तथा उच्च सम्मान भावना रखता हूँ, वह भी मुझे प्रेरित करेगी।" (पी० आर० सी०, जिल्द २, पृ० १४८)

२ अगस्त, १७८९ को कानवालिस अपनी निर्देशक सभा को लिखता है "पडोसी शक्तियो के मन पर श्री डकन के उचित प्रभाव रूपी

मैलेट अत्यन्त सावधान और चतुर व्यक्ति था। उसने अपने उच्च अधिकारिया को परामश दिया कि वे मगठो के साथ प्रतीक्षात्मक वृत्ति का कठोरता से पालन करे तथा उन दोनो शक्तिशाली सरदारो के जीवनकाल मे मराठा को अप्रसन्न होने का कोई अवसर न दे। इस परामश की कानवालिस तथा उसके उत्तराधिकारी शोर दोनो न सवथा पुष्टि की और हैदराबाद मे नियुक्त केन्नवे के सुझाव के विरुद्ध, इसी के अनुसार काय किया।

महादजी की मृत्यु के एक मास पूव मलेट लिखता है—"मे आपका ध्यान इस ओर आकृष्ट करने की कृपापूण अनुज्ञा चाहता हूँ कि पूना सरकार की सम्भावित स्थिति किसी शक्तिशाली व्यक्ति के प्रशासनाधीश हो जाने की है। वह व्यक्ति चाहे पेशवा हो, चाहे महादजी शिन्दे के रूप मे महत्त्वाकाक्षी मन्त्री।"[3]

इस प्रकार शान्तिपूवक अपना माग टटोलता हुआ महादजी पूना मे

अनुकूल परिणामा का विश्वस्त प्रमाण अभी-अभी प्राप्त हुआ है। इससे मे अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूँ। मराठा राज्य के प्रथम मन्त्री नाना फडनिस का प्राथना-पत्र मेरे सामने है। वह बनारस नगर मे अपने लिए एक भवन का निर्माण कराना चाहता है। साथ ही वह काशी मे अपने धार्मिक कृत्यो के सम्पादनाथ कभी-कभी निवास करने की अनुमति भी चाहता है। यह प्राथना पत्र देने का निश्चय उसके गाहस्थ दीवान महादजी बल्लाल पण्डित की रिपोट पर गम्भीरतापूवक विचार करने के पश्चात किया गया, इसलिए मुझे और भी प्रसन्नता है। इस दीवान को उसने गत वष व्यक्तिगत रूप से सहस्रो यात्रियो सहित देखभाल करने भेजा था। मालूम होता हे कि उसने ब्रिटिश सरकार की सौम्यता तथा नियमितता की अत्यन्त अनुकूल रिपोट दी है।"

२३ अक्तूबर, १७८९ को मैलेट ने कानवालिस को इस प्रकार लिखा "बाहिरो पन्त कहता है कि मन्त्री की इच्छा भविष्य मे पेशवा के वयस्क हो जाने और उसको अभिभावक की रक्षा की कोई आवश्यकता न रह जाने पर बनारस जाने की है। बहिरो पन्त ने मुझसे यह भी पूछा कि क्या आपको पूना दरबार के लिए यह वचन देने पर राजी किया जा सकता है कि कभी-कभी सहायताथ अपनी सेना के एक दल को यहाँ (पूना) भेज सके। इस राज्य का वतमान गृह-प्रबन्ध अस्थिर है। मेरा विचार है कि जो लाभ आप अपनी सरकार के हितो और गौरव के लिए सुसगत समझे वह पूना सरकार से उठा सकते है। हिन्दुस्तान के इन सरदारो के बीच स्थायी कलह की सम्भावना से मुझे कोई दुख नही है।"

3 पूना रेजीडेन्सी करस्पौण्डेन्स, जिल्द २, न० २०४, पृ० ३११

जाया । वह उत्सुकतापूवक यह पता लगाने का प्रयत्न करता रहा कि अल्प-वयस्क पेशवा का विकास किस प्रकार के शासक के रूप मे हो रहा है । वह उसमे वीरभाव तथा बाह्य जगत का ज्ञान जाग्रत कर सकता है या नही, क्योकि वह पूना के सीमित तथा सकीण राजभवन मे आजीवन बन्द रहा था । वह रणप्रिय उद्योगो की अपेक्षा बच्चो के खेलो तथा पालतू जानवरो से अपना मन बहलाता रहा था, कायर राजनीतिज्ञ उसको सदैव घेरे रहते थे और खुली वायु मे भ्रमण करने की आज्ञा नही देते थे । वर्षो से महादजी अपने घर से दूर उत्तरी भारत मे अभियान कर रहा था । उसने पूना के मन्त्री से बारम्बार प्राथना की थी कि उसको वहाँ के निष्फल काय से मुक्त कर दिया जाये । नाना ने महादजी की प्रार्थना को कभी स्वीकार नही किया तथा कहता रहा कि उसका स्थान लेने के लिए कोई योग्य व्यक्ति प्राप्य नही है । इस प्रकार महादजी अपनी मातृभूमि के दशनो से वचित रखा गया । उसने कई बार स्पष्ट रूप से पूछा भी कि किस अपराध के कारण उसको इतने वर्षा से अपने स्वामी के दशन करने का अवसर नही दिया गया । जब वह दक्षिण से दूर रहता था तो उस पर यह लाछन लगाया गया कि उसकी इच्छा अपने लिए स्वतन्त्र राज्य के निर्माण की है और जब वह पूना आया तो उस पर यह दोष लगाया गया कि वह मराठा सरकार के अपहरण का प्रयास कर रहा है । वह इस दोनो ओर के फन्दे से किस प्रकार मुक्त हो ? होलकर तथा अलीबहादुर के साथ होने वाले विवाद म उसका धैय टूट गया था । क्या वह स्वय वार्तालाप करके इन विषयो को स्पष्ट नही कर सकता ? क्या वह केन्द्रीय शासन का सगठन इस प्रकार नही कर सकता कि समस्त व्यक्तियो से विश्वस्त समथन प्राप्त कर सके ? क्या वह सैनिक अवस्था को नवीन रूप नही दे सकता और विशेष रूप से क्या वह ऐसे उपाय नही कर सकता कि राज्य के प्रति शीघ्र बढते हुए सकटो का निराकरण हो जाये ? इस न्यायोचित काय को केवल महादजी ही पूरा कर सकता था । १२ जून, १७९२ से अपने मृत्यु दिवस १२ फरवरी, १७९४ तक महादजी ने २० मास पूना मे व्यतीत किये किन्तु वह कोई ठोस सफलता प्राप्त नही कर सका और उसकी उच्च आकाक्षाएँ मुरझा गयी ।

पूना मे अपने आगमन के समय उसको वास्तव मे धक्का लगा । उसको मालूम हुआ कि उसका अपना सहकारी तथा प्रतिज्ञाबद्ध बन्धु नाना फडनिस उसके आगमन पर अत्यन्त भयभीत हो गया है और उसने कार्नवालिस से बम्बई की सेनाएँ पट्टे पर देने की प्राथना की है । ये सेनाएँ उस समय मैसूर से अपने शिविर को वापस हो रही थी । इससे प्रकट था कि नाना फडनिस की

इच्छा उस व्यक्ति (शिन्द) के दमन के लिए गृहयुद्ध आरम्भ कराने की थी जो महान सकट काल मे राज्य की रक्षा कर सकता था। पूना सरकार द्वारा अपनी सत्ता बनाय रखने के लिए विदेशी सेनाएँ बुलाने की दु खद प्रवृत्ति पर महादजी को अत्यन्त क्षोभ हुआ। उसके प्रतिकार का उसने यथाशक्ति प्रयास भी किया। पी० ई० राबट्स कहता है—"शिन्दे न पेशवा स अनुनय की कि गत युद्ध मे टीपू के विरुद्ध ब्रिटिश सत्ता का समथन करने के रूप म महान भूल हो गयी है। उसने टीपू के साथ भविष्य मे घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने की प्रायना की।"[४]

डफ लिखता है—"जब शिन्द पूना की ओर बढा तो उसके विषय मे अनेक प्रकार की कल्पनाएँ की जाने लगी। कुछ लोगो का अनुमान अग्रेजो की बढती हुई शक्ति तथा पूना और हैदराबाद मे उनके प्रभाव के प्रति ईर्ष्याग्रस्त होकर महादजी का विचार ब्रिटिश प्रभुत्व को रोकने के लिए पूना पर अधिकार स्थापित करने का हुआ। दूसरो की मान्यता थी कि उसकी निगाह निजामअली के प्रदेश पर है और कुछ लोगो का विश्वास था कि उसका एकमात्र उद्देश्य उत्तर भारत मे अपने नवविजित प्रदेशो मे होलकर का हस्तक्षेप रोक देना है।"

कीन जब निम्नलिखित बात कहता है तो विचित्र रूप से पूर्वोद्धृत गीतिकार की कल्पनाओ को प्रमाणित करता है कि शिन्दे सम्राट की आज्ञा से पूना आया—"जुलाई, १७९२ मे शिन्दे ने कहा कि बगाल के ब्रिटिश शासको से कर एकत्र करने के लिए उसको दिल्ली दरबार से आज्ञा मिली है। यह समझना कठिन है कि कानवालिस की धैर्य परीक्षा के लिए नवीन प्रयोग क्यो किया गया। २ अगस्त के राजपत्र मे कानवालिस ने इस विषय का अत्यन्त गम्भीरता से निरूपण किया है।"[५]

मैलेसन कहता है—"दि बायने द्वारा सगठित तथा अनुशासित सेनाओ ने शिन्दे के समस्त मुसलमान तथा हिन्दू विरोधियो का अन्त कर दिया था। उन सेनाओ से शिन्दे को इस समय भी बडी आशाएँ थी। अग्रेजो के विरुद्ध भारत की समस्त देशी शक्तियो को सयुक्त करना महादजी के जीवन का महान स्वप्न था। इस विषय मे वह सर्वाधिक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। ऐसा व्यक्ति भारत मे कभी नही जन्मा। इस महान सकल्प को एकमात्र महादजी

---

४ राबट्स कृत 'ब्रिटिश भारत का इतिहास', पृष्ठ २४०

५ पूव-उद्धृत, देखो, पी० आर० सी०, जिल्द २, न० १४१—कानवालिस का पत्र।

कार्यान्वित कर सकता था। यदि महादजी की मृत्यु न हो जाती तो यह सकल्प पूर्ण होकर रहता। महादजी के उत्तराधिकारी दौलतराव का भी कुछ समय तक यही स्वप्न रहा।" मराठा के स्वप्न कभी साकार नही हुए, पर इतिहास उस महान प्रयोग को कभी विस्मरण नही कर सकता, जो महादजी शिन्दे ने मराठा राज्य को स्वाधीन बनाये रखने के निमित्त किया।

पूना के राजनीतिज्ञ दुराग्रहवश परिस्थिति से अपरिचित रहे। ब्रिटिश उद्देश्यो के विषय मे उनकी कोई वैसी स्पष्ट धारणा नही थी, जैसी कि उनके साथ व्यवहार के कारण महादजी की बन गयी थी। शिन्दे की योजना थी कि अल्पवयस्क पेशवा को उसके अधिकार दे दिये जाये जिससे वह मराठा सरकार का भार सँभालने योग्य हो सके। पेशवा द्वारा शक्तिशाली केन्द्रीय शासन का निर्माण किया जाये जो समस्त जनता से बलपूवक निश्चित आज्ञापालन प्राप्त कर सके। परन्तु नाना फडनिस अपने व्यक्तिगत अनियन्त्रित शासन से चिपटा रहा। ईर्ष्यालु नाना शिन्दे से घृणा करता था तथा महादजी की छाया से बचने के लिए सर्वाधिक चिन्तित था। परिणाम यह हुआ कि शिन्दे मराठा राज्य के सगठन मे इच्छा तथा सहानुभूतिपूवक समथन प्राप्त करने मे असफल रहा। इस प्रकार की मूर्खता के कारण मराठा राज्य के पुनरुज्जीवन का अन्तिम अवसर हाथ से जाता रहा। इस समय नागपुर तथा हैदराबाद के दरबार पूना मे महादजी की प्रवृत्तियो से समान रूप मे आन्दोलित हो उठे। परिस्थिति को सँभालने तथा ब्रिटिश सत्ता का वीरतापूवक प्रतिकार करने मे महादजी अपने को समथ मानता था। उसे केवल उपयुक्त अवसर की अभिलाषा थी। ब्रिटिश लोगो को मराठा शक्ति से भयभीत रखने के लिए महादजी की उपस्थिति मात्र ही पर्याप्त थी। मैलेट ने अपने उच्च अधिकारियो को बारबार अपनी निष्कपट सम्मति तथा चेतावनी भेजी कि मराठो के विरुद्ध युद्ध का सकट मोल न लिया जाये।[६]

महादजी शिन्दे को बीड के जिले पर अधिकार प्राप्त करने की चिन्ता थी। वहा उसका आध्यात्मिक पथप्रदशक मुसलमान सन्त मसूरशाह निवास करता था। यह जिला निजामअली के अधिकार मे था। महादजी को इस सन्त से प्राप्त होने वाले आशीर्वाद मे पूण आस्था थी। महादजी ने उसे ग्वालियर मे निवास करने का निमन्त्रण दिया, परन्तु सन्त ने यह प्रस्ताव स्वीकार करने से इनकार कर दिया और बीड को छोडने पर तैयार नही हुआ।

---

[६] पूना रेजीडेन्सी करस्पौण्डेन्स, भूमिका, जिल्द २, पृष्ठ २२-२४

अत महादजी ने प्रयास किया कि सत को स्थायी रूप से बीड का जिला दान कर दिया जाय। परन्तु निजामअली की इच्छा इस प्रदेश को छोडने की नही थी, क्याकि पूना तथा अहमदनगर के मराठा स्थान उसकी मार के अन्दर थ। यह समस्या हल करन के लिए शिन्द न सम्राट से निजाम के नाम स्पष्ट आज्ञा प्राप्त कर ली कि वह अपक्षित स्थान दे दे या बदला कर ले। यह काय करने के लिए शिन्दे गादावरी से बीड गया, परन्तु उस स्थान पर एकाधिकार प्राप्त करने के उद्देश्य मे सफल न हो सका।

२ २२ जून, १७६२ का दरबार—पूव अन्वेषण मे चार मास व्यतीत करने के वाद जून के आरम्भ मे शिन्दे पूना के समीप पहुँच गया। उसने पहले ही आज्ञा दे दी थी कि वनवाडी म, जिसके समीप ही ब्रिटिश रेजीडेण्ट की सैनिक छावनी थी, उसके लिए निवास-स्थान तैयार कर लिया जाये। १३ जून सायकाल को स्वय पेशवा शिन्दे के स्वागताथ गया और वे गणेश खिण्ड के समीप परस्पर स्नेह व्यक्त करते हुए मिले। अल्पवयस्क पशवा इसके पहले व्यावहारिक रूप म महादजी से कभी नही मिला था। यह सत्य है कि तले-गॉव मे ब्रिटिश आत्मसमपण के अवसर पर उसने इस सेनापति को सवप्रथम देखा था, परन्तु उस समय वह ५ वप का शिशु था और शायद ही कोई चीज समझ सकता हा। उसने तुकोजी होलकर, अलीबहादुर तथा अन्य सरदारो को देखा था, परन्तु वह महादजी के विषय मे उन मौखिक विवरणो के ही आधार पर जानता था जो उसे प्राप्त हुए थे। इस सम्मेलन के अवसर पर पेशवा पूरे १८ वष का हो चुका था और उसने अपनी शक्ति तथा व्यक्तित्व का प्रदशन आरम्भ कर दिया था। यह बात सितम्बर, १७६१ मे घासीराम के दुराचारी पुलिस प्रशासन के विरुद्ध दी गयी जाच-पडताल की आज्ञा से स्पष्ट हे। महादजी उत्तर से पेशवा को उपहार तथा अदभुत वस्तुएँ भेजता रहता था—जैसे शक्ति-शाली गैडो की जोडी, वन्य पशु तथा दुष्प्राप्य पक्षी। महादजी को ज्ञात था कि अल्पवयस्क शिशु को इनसे प्रेम है। किशोर पेशवा स्फूर्तिमान तथा ग्रहण-शील था, अत महादजी ने राजधानी मे आकर शीघ्र ही उसकी घनिष्ठता तथा विश्वास प्राप्त कर लिया। एक लेख से प्रकट होता है कि पेशवा ने राजभवन के अन्दर एक पृथक कार्यालय स्थापित कर लिया था और ११ मई से व्यवहार निरीक्षण, आज्ञाएँ लिखने तथा बहियो पर हस्ताक्षर करने का काय नियमित रूप मे आरम्भ कर दिया था—अर्थात शिन्दे के आगमन के एक मास पूव वह ये कार्य करने लगा था। महादजी पन्त गुरुजी ने पेशवा को कार्यालय के काम मे दीक्षा दी थी। निश्चयपूवक नही कहा जा सकता कि

यह प्रद्धति महादजी के आगमन के कारण लागू की गयी थी या स्वय पेशवा की इन्छा मे ।

१३ जून को पूना के राजभवन मे शिन्दे प्रथम बार विधिपूवक पेशवा से मिला । शिन्दे ने अत्यन्त नम्रता तथा सम्मान से अपना मस्तक पेशवा के चरणो पर रख दिया । सेवक की ओर से स्वामी के प्रति ऐसा ही व्यवहार उचित था । पशवा न इस अवसर पर अपनी मुक्तामाला उतारकर शिन्दे के गले मे पहना दी । १४ को शिन्दे पुन पेशवा के राजभवन मे आया और उससे सम्राट द्वारा प्रेपित उपाधियो तथा वस्त्रा को विधिपूवक स्वीकार करने की प्राथना की । ये वस्त्र शिन्दे अपने साथ लाया था । इस बीच मे महादजी ने नाना फडनिस से भेट की । उसने भी उचित समय पर इस अभिनन्दन का उत्तर दिया । उन्होने शाही चिह्नो के स्वीकाराथ होन वाले भव्य दरबार के कायक्रम पर स्वतन्त्रतापूवक वार्तालाप नथा विचार-विनिमय किया । इस विषय पर आरम्भ से ही नाना के अपने विचार थे तथा इस काय के प्रति अपनी आपत्ति उसने कभी गुप्त नही रखी । एक तो सम्राट द्वारा प्रेषित उपहार सात वर्षो से उज्जैन मे पडे हुए थे । दूसरे लिखित फर्मान मे पशवा के लिए 'महाराजाधि-राज' तथा शि दे के लिए महाराज की उपाधिया थी । इस विषय मे नाना ने आपत्ति की कि उनका प्रयाग केवल छत्रपति के लिए हो सकता था । परन्तु इस विपय मे महादजी का दृष्टिकोण स्वीकार किया गया । महादजी ने यह प्रश्न सतारा के छत्रपति को भेज दिया जो शायद इस प्रश्न की जटिलताओ का निश्चय करने मे असमथ था । ये जटिलताएँ वास्तव मे वाक्छल थी और सम्राट, छत्रपति तथा पेशवा किसी के पास भी इस समय वह शक्ति नही रह गयी थी जो किसी समय उनके पूवजो के पास थी । शिन्दे की शक्ति इस समय असदिग्ध थी । जब महादजी ने विषय को सतारा के छत्रपति के पास भेज कर उसकी आवश्यक अनुमति प्राप्त कर ली तो नाना की आपत्ति का खण्डन हो गया । गारपीर मे (पूना के जिलाधीश के वतमान कार्यालय के पास) विविध रूप से सुसज्जित एक भव्य शामियाना लगाया गया, इसी के नीचे दरबार हुआ । इसका वणन निम्न प्रकार किया गया है

२१ जून, १७९२ को शिन्दे पेशवा को दरबार मे मुजरा करने गया । वह अपने साथ उपहार मे उत्तर भारत के नाना प्रकार के बहुमूल्य अद्भुत पदाथ तथा उत्पादित वस्तुएँ लाया था । इस देश का सवशक्ति सम्पन्न वास्तविक शासक, कूटनीति तथा युद्ध मे अपने समस्त विरोधियो का विजेता, विशाल प्रान्तो तथा अजेय सेनाओ का स्वामी, महादजी राजद्वार पर पैदल पहुँचा ।

उसने अपना हाथी तथा अपने सामन्ता का अगरक्षक दल यूरोपीय अधिकारियो के अधीन अपने शिविर की सीमा पर छोड दिया था। शामियाना म प्रवेश करने पर वह समस्त उपस्थित अधिकारियो से नीचे बैठ गया। जब पेशवा प्रकट हुआ तो शिन्दे ने समस्त जनता के साथ उसको प्रणाम किया। बैठ जाने की आज्ञा स्वीकार न करके उसने एक पोटली निकाली, जिसमे उसने नयी जूतियो का एक जोडा लपेट रखा था। उसने मन्द स्वर मे कहा—"यह मेरे पिता का काय था, और मेरा काय भी अवश्य होना चाहिए।" फिर कपड मे लपेटकर लायी गयी नयी जूतिया पेशवा के सम्मुख रख दी और उसकी पहनी हुई जूतियाँ उतारकर उस कपडे मे लपेट ली। महादजी ने इसके बाद ही बार-बार दी गयी बैठ जाने की आज्ञा स्वीकार की। पेशवा की पुरानी जूतिया को वह अभी तक अपनी बगल मे दबाये हुए था।

'आगामी दिवस २२ जून को उसी स्थान पर दूसरा तथा अधिक शालीन दरबार हुआ। इसका कायक्रम तथा प्रबन्ध महादजी ने स्वय पहले ही बना रखा था। चोबदारो के बारम्बार आह्वान तथा निमन्त्रण पर पूना के अधिकाश सज्जन उपस्थित थे।"

ब्रिटिश रेजीडेण्ट मैलेट ने इस काय का विवरण इस प्रकार भेजा

'करीब बारह बजे दोपहर को शिन्दे फरमान-बाडी पहुँचा। उसने अपनी पैदल सेना को पडोस मे उत्तम स्थान पर नियुक्त करने और पेशवा के लिए अभीष्ट फरमानो, वस्त्रो तथा पदार्थों को खाली मसनद पर रखने के बाद, जो राजा की गद्दी मानी जाती थी, घोषणा की कि एक हाथी पर पेशवा का आगमन हो रहा है। शिन्दे उसके स्वागताथ आगे बढा तथा शामियाने की दरियो के छोर पर उसने पेशवा का स्वागत किया। जब पेशवा सलामगाह मे पहुँच गया तो उसने झुककर तीन बार मसनद को प्रणाम किया और आगे बढकर १०१ मोहरे उस पर नजर के रूप मे रख दी। उसने पुन प्रणाम किया और मसनद की बायी ओर बैठ गया।

"दरबार आरम्भ होने पर शिन्दे के मुशी ने सम्राट का पत्र पेशवा के हाथो मे रख दिया। यह पत्र सादर अपने मस्तक तक उठाने के बाद पेशवा ने अपने मुशी को दे दिया। मुशी ने पत्र मे लिखी बाते स्पष्ट की। उसने एक या दो और पत्र भी पढकर सुनाये। उनमे से एक मे समस्त तैमूर साम्राज्य मे गोबध निषेध की आज्ञा थी।[७] तत्पश्चात निम्नलिखित वस्तुएँ भेंट की गयी—अनेक

---

७ लेखक कृत 'मुसलमान रियासत', जिल्द २ के पृष्ठ ४३१ पर प्रकाशित।

वस्त्र तथा आभूषण, तलवार, घोडा, नालकी,[८] पालकी, दो मुरछल, तथा फरमानो के तीन डिब्ब। तब शाही वस्त्र धारण करने के लिए पेशवा समीपस्थ डेरे मे गया और वापस होने पर खाली मसनद को पुन प्रणाम करने के बाद वह इसकी दाहिनी ओर बैठ गया। बाद मे महादजी तथा उसके सरदारो ने अपनी नजरे पेश की।

"इसके शीघ्र पश्चात पेशवा उठ खडा हुआ, महादजी तथा हरिपन्त हाथो मे नव उपहृत मुरछल लेकर उसके पीछे हो लिये। वह नालकी के पास गया और उसमे बैठकर सूर्यास्त के एक घण्टे बाद जिस दिशा से आया था उसी ओर अपने राजभवन को वापस चला गया। शिन्दे उसके साथ था।

"पेशवा के राजभवन मे प्रवेश करने के बाद नाना फडनिस तथा राज्य के अन्य सैनिक एव असैनिक अधिकारियो ने अपनी नजरे भेट की। कुछ असन्तुष्ट मराठाओ ने अपनी पूर्व घोषणा के अनुसार ऐसा नही किया।

"अब महादजी को वकील-ए-मुतलक की नौबत का अधिकार दिया गया और पेशवा ने भेट मे उसको स्वय धारण करने की एक सम्पूर्ण वेशभूषा दी। साथ ही एक तलवार, एक छोटी ढाल, घोडा, हाथी, मुद्रा तथा कमलदल दिया और नौबत, नालकी एव एक जोडा मुरछल भी प्रदान किये।" इस घटना की घोषणा तोपे चलाकर की गयी। दरबार के बाद शिन्दे अपने डेरे मे वापस आ गया। ऐसा मालूम होता है कि नाना फडनिस तथा उसके पक्षपातियो ने इन दरबारो मे स्वतन्त्रतापूर्वक भाग लिया।[९]

ये दरबार पेशवा के साथ शिन्दे के ससर्ग का आरम्भमात्र सिद्ध हुए। यह ससर्ग निरन्तर बढता ही गया। नालकी विचित्र सवारी थी जो इस समय पूना मे सर्वप्रथम लायी गयी थी। जब पेशवा शिन्दे के साथ पार्वती मन्दिर के दर्शन करने गया तो उसने महादजी की प्रार्थना पर नालकी का एक बार पुन उपयोग किया। इसके बाद पेशवा ने उस सवारी का कभी उपयोग नही किया। वर्ष मे एक बार दशहरा के दिन उसका प्रदर्शन किया जाता था। पेशवा और शिन्दे मिलते रहे और स्वतन्त्रतापूर्वक प्राय वार्तालाप करते रहे।

---

८ पर्दे सहित हौदा, जिसको दो दण्डो पर कहार उठाते है। यह उस समय की एक सम्माननीय सवारी थी।

९ पूना रेजीडेन्सी करस्पौण्डेन्स, जिल्द २, पृ० १४०। पारसनिस के मराठी इतिहास सग्रह मे, ऐति० टिप्प०, जिल्द १, पृ० ९ मे,,उसके द्वारा प्रकाशित 'बैजाबाई की जीवनी', पृ० ११ मे तथा खारे न० ३४८२ आदि मे अधिक विवरण प्राप्त हो सकते है।

एक दूसरे के यहाँ उनके आगमन तथा भाज होते थे। वे साथ-साथ शिकार खेलने ओर चिडिया मारने जाते थे। ६ अगस्त, १७६२ को महादजी ने पेशवा को अपने डेरे मे भोज दिया तथा दो वष कृष्णजन्माष्टमी के उत्सवो मे (१२ अगस्त, १७६२ तथा ३० अगस्त, १७६३) निमन्त्रण पर पेशवा ने शिन्दे के शिविर मे दशन दिये। पेशवा ने उस अवसर के गायन तथा प्राथनाओ मे भी भाग लिया।

३ **पूना मत्रिमण्डल से शिन्दे का विरोध**—इस प्रकार हम अनुमान कर सकते है कि महादजी को पूना आने पर अनेक अवसर प्राप्त हुए, जब वह पेशवा के सामने मराठा राज्य के कार्यों तथा आवश्यकताओ की व्याख्या कर सकता था। शिन्दे यह भी स्पष्ट कर सकता था कि मराठा राज्य के उत्तरदायी स्वामी के रूप मे उसका क्या कतव्य है। पेशवा के सरल तथा कोमल हृदय पर पडने वाले महादजी के इस प्रभाव को शीघ्र ही नाना और उसके दल ने देख लिया। यह बात उनके लिए इतनी चिन्ता तथा ईर्ष्या का विषय हो गयी कि भावी राजनीति मे स्पष्ट सघष से बचने के लिए नाना ने सावजनिक जीवन से अवकाश ग्रहण करके काशीवास करने का प्रस्ताव किया। काशी मे वह अपना जीवन पूजा तथा प्राथना मे व्यतीत करना चाहता था।[10] इस घटना का कुछ अधिक स्पष्टीकरण आवश्यक है। पूना मे महादजी के निवास-काल के प्रथम दो मास प्राय व्यावहारिक कार्यो तथा प्रदशनो मे व्यतीत हुए। इन्ही सबका अप्रत्यक्ष परिणाम हुआ कि पेशवा तथा पूना की जनता को महादजी के व्यक्तित्व के उद्देश्य तथा कतव्य के विषय मे स्पष्ट अनुमान हो गया था। लोगो ने समझ लिया कि महादजी भविष्य मे क्या करना चाहता है। इस आरम्भिक अवस्था मे स्वभावत शिन्दे तथा पूना के सभ्य वग के छोटे-बडे लोगो के बीच अनेकानेक साक्षात्कार, भोज तथा गोष्ठियाँ हुई। किन्तु शीघ्र ही बाद मे गम्भीर काय भी हुआ। इस प्रकार आरम्भ होने वाले विचार-विनिमय मे नाना और शिन्दे के बीच मे विचारो तथा नीति का विस्तृत भेद प्रकट हो गया और प्राय कटु वादविवाद होने लगे। क्या प्रश्न पूछे गये तथा क्या उत्तर दिये गये—इन दैनिक विवरणो की कोई लिखित रिपोट उपलब्ध नही है। पटवधनो तथा अन्य क्लर्कों की रिपोर्टों मे मिलने वाले विवरण इन विवादो की यथाथ प्रकृति के निणय करने मे हमारे मागदशक हो सकते है।

---

१० देखो पूव पृष्ठ २३०—बनारस मे निवास स्थान के लिए गवनर-जनरल से उसकी प्राथना।

उदाहरणार्थ अक्तूबर, १७९२ की एक रिपोर्ट प्रस्तुत है—"शिन्दे द्वारा प्रस्तुत बहीखातो की परीक्षा के लिए परशुराम भाऊ, हरिपन्त तथा नाना की नित्य बैठक हुई। वह पेशवा मे व्यय के निमित्त सात करोड रुपये मागता है और अपनी माग पर दृढ है। वह पूना से जाने की बात ही नही करता। उसकी माँग है कि नाना का चचेरा भाई मोरोबा मुक्त कर दिया जाये जो १७७८ मे कारागार मे सड रहा है। शिन्दे के विरोध तथा स्पष्टीकरण विषयक मागो से नाना बहुत क्रुद्ध हो गया है और उसने बनारस जाने का प्रस्ताव किया है। इस कार्य के लिए उसने पेशवा की आज्ञा भी प्राप्त कर ली है। परशुराम भाऊ का कहना है कि यदि नाना पूना छोड देगा तो वह उसके पहले ही चल देगा। शिन्दे तथा हरिपन्त से मित्रता हो गयी है तथा हरिपन्त नाना के अवकाश ग्रहण के बाद प्रशासन का सचालन करने के लिए सहमत हो गया है। शिन्दे प्राय इस प्रकार की उद्धत वृत्ति धारण कर लेता हैं कि पूना दल के लोग अपनी सुरक्षा के विषय मे भयभीत हो उठते है। वे लोग सकटकालीन स्थिति का सामना करने के लिए अपने सैनिक एकत्र कर रहे है।"

शिन्दे के शिविर मे लिखा गया १० फरवरी, १७९३ का एक पत्र पूना के तनावपूर्ण वातावरण तथा अन्धकारमय स्थिति का इन मार्मिक शब्दो मे वर्णन करता है "एक समय था, जब अनुकरणीय आदर्श के रूप मे मराठा शासन का उदाहरण दिया जाता था। अब समस्त दिशाओ मे घोर अन्धकार फैला हुआ है। न्याय तथा पूछताछ का अभाव है। प्रत्येक व्यक्ति हृदय से दुखित है। न्याय प्राप्त करने के स्थान पर दुष्ट मन्त्रिमण्डल से सहमत न होने के लिए प्रत्येक व्यक्ति पर अत्याचार किया जाता है। शिकायत सुनने के लिए कोई तैयार नही है। हमारे महाराजा (शिन्दे) को अन्याय दूर करने के लिए अनेक प्रार्थनाएँ प्राप्त होती है, परन्तु वह उनकी ओर ध्यान नही दे पाता है। उसके ध्यान देने के लिए अन्य महत्त्वशाली विषय है। हम उसके प्रयासो का परिणाम देखने के लिए प्रतीक्षा कर रहे है। उसके तथा पूना के मन्त्रिमण्डल के बीच स्पष्ट दुर्भावना विद्यमान है। न्याय तथा अन्याय के बीच विवेक करने की किसी को चिन्ता नही है। दक्षिण के लोग दृढतापूर्वक महाराजा के साथ है तथा इस सघर्ष मे उसके शुभेच्छु है। उनको आशा है कि उसके इस प्रदेश मे आने से कुछ सुधार तथा उन्नति अवश्य होगी। कह नही सकते है कि ईश्वर की इच्छा क्या है। आने वाला समय दुर्भाग्यपूर्ण तथा कष्टजनक मालूम होता है। यहा का अधिकारी वर्ग पटेल (शिन्दे) की प्रभुता से प्रसन्न नही है। उसके प्रति स्वय पेशवा की कृपापूर्ण भावनाएँ, जनसाधारण का आशीर्वाद

तथा पटेल का अपना चरित्र उसको जीवित रखे हुए है। वह शासन के पुन सगठन मे सफल होगा, इसकी सब भाति आशा है। यदि वह अपनी योजनाओ को कार्यान्वित करने मे सफल हो गया, तभी केवल राज्य की रक्षा हो सकेगी, अन्यथा भविष्य अधकारमय हे। ईश्वर की इच्छा पूण होगी। वतमान घटनाओ पर स्वतन्त्रतापूवक लिखना विपत्तिजनक है। अन्ततोगत्वा हम सब ईश्वर के हाथो के कठपुतले भर है।"

जब राजस्थान मे शिन्दे तथा होलकर के बीच भयानक सघष चल रहा था, ठीक उसी समय मराठा शासन मे फूट की सम्भावनाएँ प्रकट हुइ। बुद्धिमान पेशवा यथाशक्ति प्रयत्न करता रहा कि विरोधी दलो मे समझौता होकर शान्ति बनी रहे। इसी उद्देश्य से वह एक ओर शिन्दे तथा दूसरी ओर नाना, तात्या और परशुराम भाऊ के बीच सतत विचार विनिमय का प्रबन्ध करता था। एक सवाददाता कहता है—"जनवरी (१७९३) के आरम्भ मे शिन्दे ने एक दुष्ट योजना प्रकट की है। निजामअली से उसको ३२ लाख रुपये प्राप्त हुए हे। निजामअली सहमत हो गया है कि बीदर की चौथ के बदले मे वह बीड का नगर महादजी को दे देगा।" शिन्दे तथा निजामअली के बीच गम्भीर योजना बन रही थी। स्पष्ट रूप से पूना को भत्सना देता हुआ निजामअली शक्तिशाली सेनाएँ लेकर बीदर पहुँच गया। पूना मे अपने आगमन का बहाना निकाल लेना कठिन न था। ३१ जनवरी को पेशवा की पत्नी का देहान्त हो गया तथा ३ माच को उसका दूसरा विवाह होने को था। इस विवाहोत्सव मे सम्मिलित होने के लिए समस्त राजाओ को पहले से ही निमन्त्रण भेजे जा चुके थे। निजामअली भी इन निमत्रितो मे था। उत्तर मे निजामअली ने यह लिखा कि वह १७८३ मे पेशवा के प्रथम विवाह मे सम्मिलित न हो सका था, अत इस अवसर पर अवश्य ही उपस्थित होगा। परन्तु यह सूचना अत्यन्त विलम्ब से प्राप्त हुई और निजामअली के आगमन के लिए प्रबन्ध समाप्त होने के पूव ही सस्कार सम्पन्न हो गया। निजामअली ने इस पर आग्रह किया कि पेशवा एक और विवाह करे, जिसमे उसका आगमन हो सके। परन्तु किसी ने इस सुझाव पर गम्भीरतापूवक ध्यान नही दिया और निजामअली पूना दरबार मे अपने आगमन के लिए निरन्तर आग्रह करता रहा। इसमे उसका क्या गुप्त उद्देश्य है, इसका अनुमान कोई नही कर सका।"[११] शिन्दे ने पेशवा तथा अन्य लोगो का भय तो इस घोषणा द्वारा

---

[११] पूना रेजीडेन्सी करस्पौण्डेन्स, जिल्द २, पृ० १७७

शा त कर दिया कि यदि निजामअली का अभिप्राय मराठा से युद्ध करने का हे तो वह अकेला ही उमका मामना कर सकता हे । इस वीरतापूण दढता से भयावह परिस्थिति शीघ्र शा त हो गयी । जनता ने पेशवा के प्रति शिन्दे की निष्ठा तथा भक्ति की प्रशसा की । इस प्रकार उसकी निष्ठाहीन वृत्ति से सम्बधित पूव सन्देहा का शनै-शनै निराकरण हो गया ।

१३ माच को रग पचमी अथवा वार्षिक वसन्तोत्सव का दिवस था। शिन्दे ने यह उत्सव इस प्रकार क्रीडा तथा आमोद प्रमोद से मनाया कि उसकी अस्फुट प्रतिध्वनि इस समय तक शेष हे । उसका अभिप्राय था कि यह उत्सव पेशवा के नूतन विवाह काय की सुखद समाप्ति बन सके । इस अवसर पर शिन्दे ने आतिशबाजी का विशेष प्रबन्ध किया जो उस समय उत्तर भारत मे प्रचलित थी तथा दक्षिण मे अज्ञात थी । मथुरा तथा अन्य स्थानो मे राम और कृष्ण के उत्सव अत्यन्त शोभा तथा हष से मनाये जाते थे । महादजी को इनसे प्रेम हो गया था, उसने उत्तर भारत मे प्रचलित आतिशबाजी तथा रग की पिचकारियो से इस समय अल्पवयस्क पेशवा का ध्यान आमोद के इन विचित्र रूपो की ओर आकृष्ट करने का प्रयास किया । पेशवा के राजभवन तथा वनवाडी मे शिन्दे के शिविर के बीच का माग सुसज्जित किया गया तथा अनेक सरदारो और नगर निवासियो के निवास-स्थानो पर रग खेलने का व्यापक प्रबन्ध किया गया । १३ माच को शिन्दे जुलूस के साथ शनिवार को राजभवन आया और पेशवा को हाथी पर बैठाकर जुलूस मे ले गया, जिसमे गायन और नृत्य हो रहा था । अनेक रगो की पिचकारियाँ चल रही थी और लाल चूण (गुलाल) की वर्षा हो रही थी । दोपहर से लेकर देर रात गये तक समस्त नगर इस उत्सव को देखता रहा तथा इसमे भाग लेता रहा । इसका लिखित वणन तक इस समय हमको विचित्र तथा रोचक प्रतीत होता है । कहा जाता है कि वनवाडी से नगर तक का माग घुटने-घुटने गुलाल से पट गया था ।

लगभग एक वष चलने वाले नाना शिन्दे विवाद के अनेक स्थलो का वणन करना रोचक होगा । पहले नाना ने अनेक छल कपटो का आश्रय लिया । इस पर शिन्दे ने भत्सना की तथा उसके प्रयत्नो का प्रतिरोध किया । जब विवाद सम्बन्ध-विच्छेद की अवस्था को प्राप्त हो गया तो हरिपन्त फडके तथा पेशवा ने हस्तक्षेप किया और अन्त मे वे मैत्री सम्बन्ध स्थापित कराने मे सफल हो गये । उल्लिखित प्रमाण इस प्रकार बताते है

२९ सितम्बर, १७९२ को डब्ल्यू० पामर ने कानवालिस को इस प्रकार

सूचना दी "पूना से प्राप्त समस्त वृत्तान्त इम विषय मे एकमत है कि दशहरा (२५ सितम्बर) के बाद पेशवा स विदा लेने का शिन्दे ने पूरा निश्चय कर लिया है। मुझे विश्वस्त अधिकारियो से व्यक्तिगत सूचना प्राप्त हुई है कि मन्त्री (नाना) ने उसको हताश कर दिया है और धोखा दिया है। उसने मन्त्री पर दोगलेपन का लाच्छन लगाया हे और कहा है कि उसने उत्तर भारत मे मेरे प्रतिद्वन्द्वियो को मेरा विरोध करने के लिए प्रोत्साहन दिया है, जबकि वह इसके विपरीत भाव का मुझे समथन दे चुका है। शिन्दे ने अली-बहादुर को लिखा हुआ नाना का एक पत्र पकड लिया है, जिसमे वचन दिया गया है कि महादजी का प्रतिकार करने मे उसको पेशवा का अधिकार तथा समर्थन प्राप्त हो जायेगा। महादजी ने मन्त्री से स्पष्ट कह दिया हे कि मै उसका अधिक विश्वास नही कर सकता और तुरन्त उत्तर भारत को वापस चला जाऊँगा तथा अपनी ही शक्ति मे अपने अधिकार की रक्षा करूँगा।"

९ फरवरी, १७९२ को केन्नवे ने यह वृत्तान्त भेजा "मुझको पूना से सूचना प्राप्त हुई है कि हरिपन्त के साथ वैर-शान्ति के परिणामस्वरूप नाना फडनिस ने बनारस जाने का अपना इरादा सवथा त्याग दिया है। (हरिपन्त के साथ उसकी अनबन उसके अवकाश ग्रहण करने के विचार का मुख्य कारण था।) शिन्दे ने उसको सूचना दी है कि जिस योजना के कारण वह दक्षिण आया था, उसकी सफलता की कोई आशा नही है तथापि उसका निश्चय है कि वह कुछ समय तक और ठहरकर देखेगा कि क्या कर सकता है, क्योकि उसने समय तथा धन के विपुल व्यय पर यात्रा का कष्ट सहन किया है।"

इससे प्रकट होता है कि फरवरी, १७९३ तक विवाद के समझौते मे कोई प्रगति नही हुई थी। इस सम्बन्ध मे प्रकटित आश्चयकारी तथ्य नाना तथा हरिपन्त फडके के बीच उत्पन्न होने वाली अनबन है। ऐसा मालूम होता है कि हरिपन्त ने शिन्दे के पक्ष का समथन तथा नाना के प्रयत्नो का विरोध किया होगा।

२४ अप्रैल, १७९३ की एक अन्य सूचना इस प्रकार है "कल तथा उसके पहले दिनो मे हरिपन्त महादजी से मिलने गया और वार्तालाप किया जिसके परिणाम से महादजी सन्तुष्ट है। अब यह समाचार निजामअली के पास पहुँचेगा तथा निश्चय ही उसको पूना पर अपने प्रयाण की योजना का त्याग करने के लिए विवश करेगा।" १ मई को एक अन्य लेखक कहता है—"अगले दिन पॉच सैनिको सहित हरिपन्त महादजी से मिलने गया और दो घण्टे तक वार्तालाप किया। इस प्रकार कई दिनो तक वह निरन्तर उसके पास

आता रहा और उसके साथ लम्बे समय तक वार्तालाप करता रहा। महादजी को मालूम हो गया कि यह वार्तालाप केवल मन बहलाने की बात है, अत उसने अन्त मे उत्तर दिया—"जो कुछ भी आप इस समय कहते हे, वह भविष्य मे आपको अपने काय द्वारा सिद्ध करना हे। मै एक वष से यहाँ ठहरा हुआ हूँ ओर कुछ भी उन्नति नही हुई है। हम वही है जहा आरम्भ मे थे। मै असाधारण अथ सकट सहन कर रहा हूँ। मुझ पर पहले ही करोडो रुपयो का ऋण हो गया है। अब मैं आपका मतलब समझ गया हूँ। आप पेशवा के सेवक है और मै भी उसी मात्रा मे उसका सेवक हूँ। होलकर भी इसी प्रकार उसका मेवक है। वह एक समय मेरा साथी था और यह साथी मेरी सहायताथ उत्तर को भेजा गया था। उसने उस काय मे किस प्रकार व्यवहार किया है, यह आप स्वय निणय करे और तब मुझे बताये कि मेरा दोष है या नही। हमारा स्वामी इस समय तक अल्पवयस्क है। वह आज्ञा देने तथा बलपूवक उसका पालन कराने मे असमथ है। कोई भी होलकर को दण्ड नही दे सकता। इस समय वह उत्तर मे मेरे प्रान्तो का नाश कर रहा है। आप यह जानते है, पर उसको नही रोकते है। इसको आप कोई महत्त्व नही देते हे। हानि तो केवल मेरी ही हो रही है।" हरिपन्त ने उत्तर दिया—"आप भली भाँति जानते है कि कितनी बार पूना से होलकर को स्पष्ट आज्ञाएँ भेजी गयी है। उसे रोकने के लिए विशेष दूत भी भेजे गये, परन्तु उसने उनकी एक न सुनी।" इस पर शिन्दे ने जानना चाहा कि यदि होलकर सरकार की आज्ञाओ का तिरस्कार करता है तो वह अधिक समय तक पेशवा का सेवक कैसे बना रह सकता है? निश्चय ही उसकी रियासत का अपहरण होना चाहिए। शिन्दे ने यह भी कहा कि वह होलकर को ऐसी शिक्षा देने के लिए तैयार है, जिसे वह कभी न भुला सके। शिन्दे ने कहा—

"एक अन्य विषय—अलीबहादुर के विषय—को लीजिए। मेरे घोषित शत्रु गोसाई को वह अभी तक अपनी रक्षा मे रखे हुए है। क्या आप इस आचरण का अनुमोदन करते है? यदि पेशवा के सेवक के रूप मे आप उसको रोक नही सकते तो मुझको आज्ञा दे। मै भी उसी के समान पेशवा का सेवक हूँ तथा उसकी आज्ञा को मैं कार्यान्वित कर दूगा। यदि अलीबहादुर सेवक है तो उसको अवश्य आज्ञा का पालन करना चाहिए। यदि मैं स्वामी का निष्ठावान सेवक हूँ तो निश्चय ही उसके आशीर्वाद से मुझमे उचित काय करने की शक्ति है।"

इस प्रकार हरिपन्त तथा शिन्दे के बीच प्राय लम्बे वार्तालाप होते रहे।

उस समय शिन्दे तथा होलकर की सेनाए लाखेरी के मैदान पर एक-दूसरे के सम्मुख पक्तिबद्ध खडी थी। इस वार्तालाप के बाद महादजी ने तुरन्त अपने सरदारो को यह आज्ञा लिखकर भेज दी—"होलकर पर टूट पडो, अधिक तर्क-वितर्क मत करो। मैने बहुत प्रतीक्षा कर ली है, अब मुझमे धैर्य नही रह गया है। उसको सदा सर्वदा के लिए समाप्त कर दो।" इस प्रकार उस घातक प्रथम जून, १७६३ को होलकर के पराभव की दुखद घटना हुई।

पूना से १५ मई की सूचना है "पाटिल बाबा तथा पूना प्रशासन के बीच विकट कलह उत्पन्न हो गयी थी तथा यह अग्नि भभक उठने को ही थी। अत हरिपन्त कई बार पाटिल के पास आया और उसने स्वय निजी रूप से मतभेद दूर कर दिये। तब नाना तथा हरिपन्त साथ-साथ पुन शिन्दे के पास आये और उनके स्पष्टीकरणो से क्षुब्ध परिस्थिति बहुत हद तक शान्त हो गयी है। इतने पर भी पारस्परिक सन्देहो के कारण दोनो दल अपनी रक्षा के लिए सतर्क है। इस वैमनस्य का मुख्य कारण शिन्दे-होलकर कलह है। यदि यह न रोकी जा सकी तो वही विपत्ति यहा पर भी उपस्थित हो जायगी। यदि उत्तर मे होलकर की विजय हुई तो शिन्दे स्वय वहा जायेगा। यदि शिन्दे की विजय हुई तो वह तुरन्त अपनी समस्त सेना उत्तरी भारत से यहा पर बुला लेगा तथा पूना के दल से बलपूर्वक अपनी शर्ते मनवा लेगा। यदि होलकर की विजय हुई तो पूना के दल का विचार शिन्दे के विरुद्ध महान सकट उपस्थित कर देने का है, इसके लिए वह अलीबहादुर, राजपूतो, उत्तर के अन्य शासको, भोसले, निजामअली तथा दक्षिण के अग्रेजो को शिन्दे की शक्ति के विरुद्ध प्रेरणा देगा। इस प्रकार शिन्दे की शक्ति का विभाजन हो सकता है तथा दोनो युद्धक्षेत्रो मे उसको छिन्न-भिन्न किया जा सकता है। इस प्रकार वर्तमान विकट गतिरोध का निर्णय राजस्थान मे चल रहे शिन्दे-होलकर सघर्ष के परिणाम पर निर्भर है। यदि महादजी की विजय हुई तो वह निश्चय ही पूना के सरदारो से पूर्ण बलपूर्वक पूरा बदला चुका लेगा।" कितनी मिथ्या धारणा फैलायी गयी थी, इसे वास्तविक परिणाम से ही जाना जा सकता है। शिन्दे ने लाखेरी मे पूर्ण विजय प्राप्त की तथा उसने असाधारण मॉगे प्रस्तुत न की और न कोई बलपूर्वक बदला ही लिया।

४ **लाखेरी मे होलकर का पराभव (१ जून, १७६३)**—होलकर-शिन्दे प्रतिद्वन्द्विता का आरम्भ १८वी शताब्दी के मध्य मे हुआ, जबकि उन दोनो सरकारो ने जयपुर के उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध मे परस्पर विरोधी पक्षो का

साथ दिया। रानोजी शिन्दे तथा मल्हारराव होलकर दोनो ने बाजीराव प्रथम के अधीन अपने जीवन साथ-साथ आरम्भ किये थे। मल्हारराव ने १७६६ मे अपनी मृत्यु के बाद कोई योग्य पुत्र नही छोडा। रानोजी शिन्दे के १७४५ मे मृत्यु के समय पाच तेजस्वी पुत्र थे, जिन सबने मराठा राज्य की सेवा मे अपने प्राण न्यौछावर कर दिये। इन पुत्रो मे से चार पुत्रो तथा एक पौत्र का देहान्त रणक्षेत्रो मे हुआ था और पचम पुत्र महादजी पानीपत के विनाशकारी दिवस पर घायल होकर शेष जीवन के लिए लँगडा हो गया था। युद्ध मे मल्हारराव की-सी नेतृत्व शक्ति तथा कूटनीति मे उसका-सा विवेक महादजी के व्यक्तित्व का अग था, पर महादजी की-सी व्यापक दृष्टि शायद किसी मराठा सरदार के पास नही थी। अपने जीवन के आरम्भ मे महादजी के पास होलकर की अपेक्षा न पर्याप्त धन था, न सेना। मल्हारराव की गद्दी पर उसकी उत्तराधिकारिणी धार्मिक तथा साधु स्वभाव वाली उसकी पुत्रवधू अहल्याबाई हुई, जिसने स्त्री होने के कारण अपने पुरुष सम्बन्धी तुकोजी को युद्धो मे अपनी सेनाओ के प्रतिनिधि के रूप मे नेतृत्व करने की आज्ञा दी। यह दोहरा शासन होलकर के वश का अभिशाप सिद्ध हुआ। सालबई की सन्धि के बाद मराठा सघ मे इस वश का स्थान निरन्तर गिरता ही गया और दूसरी ओर मुगल साम्राज्य के राजप्रतिनिधि के रूप मे महादजी का उदय होता गया। महादजी की उन्नति से नाना फडनिस की ईर्ष्या जाग्रत हो उठी। शिन्दे की महत्त्वाकाक्षी योजनाओ का विरोध करने के लिए असन्तुष्ट होलकर नाना फडनिस के हाथ की कठपुतली बन गया। शिन्दे के सतुलन के रूप मे नाना ने होलकर का समर्थन किया।

होलकर के वश का भविष्य मदिरापान के अभिशाप ने नष्ट कर दिया। तुकोजी तथा उसके पुत्र इसके प्रति असाधारण रूप से आसक्त थे। अहल्याबाई के पति खाण्डेराव को भी यह कुटेव थी। तुकोजी के पुत्र मल्हारराव तथा यशवन्तराव भी इस दुर्व्यसन के शिकार थे। अहल्याबाई ने उनका जीवन सुधारने का बहुत प्रयास किया—पर सब व्यर्थ रहा। जब होलकर वश का पाला महादजी शिन्दे जैसे जन्मजात नेता से पडा, तब यह असमानता सर्वथा प्रत्यक्ष हो गयी। होलकर के मन्त्री अपने पक्ष की इस मूलभूत निबलता को जानते थे, अत वे सावधानीपूर्वक स्पष्ट कलह से दूर रहे। लालसोट की विपत्ति के कारण शिन्दे सकटग्रस्त हो गया था, परन्तु इस आघात के प्रभाव से वह शीघ्र मुक्त होकर पहले की अपेक्षा अत्यधिक शक्तिसम्पन्न हो गया। जब बाह्य रूप से शिन्दे की सहायता के लिए घटना स्थल पर तुकोजी का

आगमन हुआ, तब परिस्थिति शाघ्र ही तनावपूण हो गयी। इसका वणन पहले ही किया जा चुका है। नाना फडनिम ने बहुत दिनो स तुकोजी का दक्षिण मे व्यस्त कर रखा था। इसके दो अभिप्राय थे—उत्तर मे दोनो प्रति-द्वन्द्वी सरदारो के बीच सघप को टालना तथा शिन्द की बढती हुई शक्ति के साथ सतुलन बनाये रखना। इस समय होलकर ने शिदे के उत्तरी प्रशासन मे हस्तक्षेप करके उसका क्रोध जाग्रत कर दिया तथा प्रतिद्वन्द्विता की पुरानी चिनगारियो ने प्रदीप्त ज्वाला का रूप धारण कर लिया। शिन्दे न यथाशक्ति पूण उग्रता से नाना के काय की निन्दा की। उसने कहा "नाना न होलकर को मेरी छाती पर बैठा दिया है।"

जब तुकोजी तथा अलीबहादुर उत्तर मे शिन्दे की विजयो मे हिस्सा बँटाने आये, कष्टो मे नही, तो दूरदर्शियो को निकट भविष्य मे स्पष्ट सघष होता प्रतीत हुआ। विश्वासघाती गोसाई ने अपने स्वाथपूण उद्देश्य सिद्ध करने के लिए परिस्थिति से दुष्टतापूवक लाभ उठाया। इससे महादजी का क्रोध और भी बढ गया। अगस्त, १७९० मे महादजी ने मथुरा मे विधिपूवक उस शाही फरमान को ग्रहण करने के लिए उत्सव किया, जिसके द्वारा वह साम्राज्य का सव-सत्ता-प्राप्त एकमात्र राजप्रतिनिधि नियुक्त किया गया था। भव्य दरबार का प्रबन्ध किया गया। तुकोजी को छोडकर इस दरबार मे समस्त सामन्त उपस्थित हुए। तुकोजी ने इस दरबार मे भाग लेना अस्वीकार करके एक प्रकार से महादजी का सावजनिक अपमान किया। समय की गति के साथ साथ दोनो सरदारो के बीच की खाई चौडी होती गयी। तुकोजी ने शिन्दे के प्रत्येक विरोधी का समथन तथा उसके द्वारा प्रस्तावित प्रत्येक उपाय का विरोध आरम्भ कर दिया। जब अलीबहादुर बुन्देलखण्ड गया तो उसने उस क्षेत्र मे शिन्दे के प्रति उसी प्रकार का विरोध आरम्भ कर दिया। जब महादजी राजपूतो के विरुद्ध जीवन-मरण के सघष मे व्यस्त था और उसका शत्रु इस्माइल बेग भी उनके साथ मिला हुआ था, तब १७९० मे तुकोजी ने अपने शिविर मे शिन्दे के विरोधियो के दूतो का स्वागत किया। उसका बहाना था कि वह शान्ति का प्रयत्न कर रहा है, परन्तु वास्तव मे वह शिन्दे को पीडा देना चाहता था। इस प्रकार दोनो सामन्तो के बीच असह्य परि-स्थिति विकसित हो गयी। विवश होकर उन दोनो ने अपनी कलह पूना मे नाना फडनिस के समक्ष उपस्थित की। परन्तु नाना होलकर के समथन के लिए प्रतिज्ञाबद्ध था। उसने वास्तव मे गुप्तरूप से होलकर को शिन्दे की योजनाओ का विरोध करने के लिए प्रेरित किया था, अत वह सच्चे निर्णायक

का काय नही कर मका । महादजी ने पूना मे अपना माग शीघ्रता से प्रशस्त करके समस्त विरोध दबा दिय । इस बीच मे भी शिन्दे की भावना होलकर द्वारा किये अन्यायपूण विरोध के लिए न्याय प्राप्त करने की बनी रही । उसन पूना मे आकर होलकर का अन्याय रोकने के लिए प्राथना की । किन्तु होलकर इस समय भी उत्तर म था, जहा वह दिखाने के लिए कर-सग्रह मे व्यस्त था, परन्तु वास्तव मे वह शिन्दे की शक्ति भग करने मे समथ योजनाओ का गठन कर रहा था । शिन्दे की इच्छा होलकर से खुला युद्ध करने की कभी नही थी । तुकोजी के उत्तरदायी मन्त्री नारो गणेश तथा चचेरे भाई बापू होलकर ने उसे दृढतापूर्वक परामश दिया कि वह शान्तिमय समझौते का यत्न करे और युद्ध से दूर रहे ।

महादजी ने दक्षिण को वापस होते समय अपनी सेना का अधिकाश भाग विरोधी तत्त्वो पर नियन्त्रण रखने के लिए उत्तर भारत के विभिन्न स्थानो मे नियुक्त कर दिया था । इस उत्तरी सेना का सर्वोच्च नेता जीवबा बख्शी जैसा शान्त व्यक्ति था । दि बायने के अधिकार मे वह भाग था, जिसे कम्पू कहते थे । सामान्य प्रशासन अबाजी रघुनाथ चिटनिस तथा उसके भाई गोपालराव के हाथो मे था । अम्बूजी इगले बुन्देलखण्ड मे नियुक्त था । खाण्डेराव हरि दिल्ली मे सम्राट और दिल्ली के आगे सिखो के कार्यो की देखभाल करता था । लकवा बहुत समय से आगरा के गढ का अधिकारी था । बन्दी इस्माइल बेग इसी स्थान पर कारागार मे था । तुकोजी होलकर ने महादजी के इस समस्त प्रबन्ध को अत्यन्त ईर्ष्या से देखा और घटना स्थल से अपने प्रतिद्वन्द्वी के अनु-पस्थिति काल मे बदला लेने का प्रयास किया । महादजी की सेनाएँ विस्तृत क्षेत्र मे बिखरी हुई थी, इसलिए तुकोजी ने उनको अलग अलग नष्ट करने की योजना बनायी । उसने शिन्दे के अनुकरण पर कुछ समय पहले अपनी सेना को पश्चिमी शैली पर प्रशिक्षित करने का प्रयोग किया था और इस काय के लिए फ्रेंच सेनापति डुड्रेनेक नियुक्त किया गया था । तुकोजी के पुत्र मल्हारराव ने मदिरा के नशे मे सगव कहा—"मै शिन्दे का कम्पू धूल मे मिला दूगा । मैं खुले युद्ध मे शिन्दे का सामना करने का साहस रखता हूँ तथा अपने वश के हित मे पुन नेतृत्व प्राप्त कर लूगा ।" होलकर के दरबार मे कुछ वर्षो से इस प्रकार की गर्वोक्तिया हो रही थी । उन्मत्त मल्हारराव ने नारो गणेश तथा पाराशर दादाजी सदृश वरिष्ठ परामशको के शान्त उपदेश की स्पष्ट निन्दा करते हुए उन्हे कायर कहा । अपनी निबल अवस्था मे तुकोजी तथा अहल्या-बाई इन दोनो अत्युत्साही नवयुवको—मल्हारराव तथा यशवन्तराव (जो अब

लगभग १४ वष का था)—का नही रोक सके तथा इन्हे अपनी स्वतन्त्र योजना बनाने का अधिकार दे दिया ।[१२]

दूसरी ओर महादजी के उत्तरी कार्यो का अधिकारी गापालराव भाऊ होलकर परिवार की इन विरोधी प्रगतियो का सावधानी से निरीक्षण करता रहा तथा किसी भी सकटकालीन स्थिति का सामना करने के लिए तैयार था। तुकोजी ने अलवर के समीप शिन्दे के प्रदेश पर अधिकार करना आरम्भ करके गोपालराव भाऊ को सितम्बर, १७९२ मे रण निमित्त प्रयाण करने के लिए उत्तेजित किया । इस समय स्वाभाविक शिष्टाचार के पहले दौर के बाद शिन्दे पूना मे मन्त्रियो के साथ अपनी शिकायतो पर वार्तालाप आरम्भ ही कर पाया था । गोपालराव भाऊ इस प्रकार का मनुष्य न था जो चुपचाप घटनाओ को सहन कर जाता । बनास नदी के दक्षिण मे सवाई माधोपुर प्रदेश मे, जहा सुरावली, लाखेरी, भगव तगढ तथा इन्द्रगढ ने वतमान सघष के कारण ऐति हासिक प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है, गोपालराव होलकर के विरुद्ध सघष मे जुट गया । तुकोजी ने भगवन्तगढ मे आसन जमा लिया था । जयपुर के दीवान दौलतराम हलदिया के साथ उसका गुप्त समझौता हो गया था कि यह जयपुर की एक सेना की सहायता से गोपालराव भाऊ पर अकस्मात आक्रमण करेगा। शिन्दे के सरदारो को इस षडयन्त्र की यथासमय सूचना मिल गयी । उन्होने निश्चय किया कि जयपुर का दल होलकर से मिल जाये, इससे पहले ही वे होलकर के शिविर पर अचानक टूट पडेगे और इस प्रकार पहल करके शत्रु को असफल कर देगे । ८ अक्तूबर, १७९२ की प्रभातवेला मे जब तुकोजी अपना शिविर अन्य स्थान पर डटा रहा था, तभी गोपालराव भाऊ ने सुरावली पर सहसा आकस्मिक आक्रमण कर दिया । इसमे होलकर के कुछ सिपाही मारे गये । स्वय तुकोजी को उसके अगरक्षको ने सुरक्षित दूरी पर पहुँचा दिया था। इस प्रकार वह बन्दी होने से बच गया । तब बापू होलकर तथा पाराशर दादाजी ने गोपालराव भाऊ से प्राथना की और सघष के कारणो पर परस्पर समझौते द्वारा यह प्रकरण बुद्धिमत्तापूवक समाप्त कर दिया । इस हल्की भिडन्त के साथ युद्ध प्रकरण अस्थायी रूप से समाप्त हो गया ।

जब सुरावली के इस काण्ड तथा बापू होलकर और पाराशर पन्त द्वारा कराये हुए समझौते का समाचार इन्दौर मे अहल्याबाई तथा मल्हारराव को

---

[१२] होलकर राजपत्रो की जिल्द १ की स० ३८४ तथा ३८७ को विशेष रूप से देखो ।

प्राप्त हुआ ता उन्होने सोचा कि रण से विमुख हाकर होलकर सरदारो ने अपने ऊपर कायरता के कलक का टीका लगा लिया है। इसके साथ ही उन्होने समझौत की शर्तें तोडने की माग प्रस्तुत की। सुरावली की झडप के पूरे ८ मास बाद तक इन्दौर तथा तुकोजी के शिविर मे यह प्रकरण आन्दोलन का विपय बना रहा। दोनो सेनाएँ निरन्तर एक दूसरे पर निगाह रखे रही तथा उन्होने गुप्त रूप से अनुकूल स्थिति प्राप्त करने का प्रयत्न किया। शिन्दे के सरदारो ने पूना मे महादजी के पास इस स्थिति की सूचना भेज दी। वह उस समय मन्त्रिया के साथ वादविवाद मे व्यस्त था। इस काण्ड के बाद उसको इस तक के लिए अधिक बल प्राप्त हो गया कि उत्तर मे होलकर की चाले उसके लिए विघ्नकारक है। महादजी ने पूना मे समस्त शक्तिसम्पन्न व्यक्तियो से प्राथना की कि वे गृहकलह का यह भद्दा दृश्य समाप्त करा दे। पूना का मन्त्रिमण्डल या तो परिस्थिति की गम्भीरता को नही समझा या उसने जान-बूझकर होलकर को नही रोका। शायद शिन्दे के अपमान का उन्होने मन ही मन स्वागत भी किया। इस तनाव का अधिक दिन तक दूर न किया जाना दूरदर्शियो को मराठा राज्य के निकटवर्ती पतन का असदिग्ध लक्षण प्रतीत हुआ।

इस परिस्थिति मे मल्हारराव को अपनी उच्छृङ्खल योजना मे अग्रसर होने का सुलभ अवसर प्राप्त हो गया। उसने हठ किया कि उसको रणस्थल मे भेज दिया जाये और अपने पिता के सावधान परामशदाताओ का उल्लघन करने का अधिकार दिया जाये। उसने सगव कहा कि वह अपने हल्के अश्वा-रोही दल के केवल एक जोरदार आक्रमण से शिन्दे की सेना के नवीन सगठन को चकित करके चूण-च्ण कर देगा। मल्हारराव मे आधुनिक रणकौशल को सीखने का धैय नही था। अहल्याबाई अपने भवन की चहारदीवारी के भीतर धार्मिक चिन्तन मे तल्लीन थी, परन्तु सभी व्यक्तियो के समान उसको भी यह पारिवारिक कलक सदा सवदा के लिए मेट देने की चिन्ता थी। वह बाह्य जगत मे होने वाली घटनाओ की प्रगति से सवथा अपरिचित थी, इसलिए वह मल्हारराव की गर्वीली उक्तियो से पथभ्रष्ट हो गयी और उसने मल्हारराव को राजस्थान मे सिन्धिया के विरुद्ध प्रयाण करने का अधिकार दे दिया। उसने जितनी सेनाए और धन मागा, उतना उसे मिल गया। उसने अपने पिता के शिविर मे पहुँचकर शीघ्र ही बापू होलकर और पाराशर पन्त के बुद्धिसगत परामश को ठुकरा दिया तथा शिन्दे की बिखरी हुई अश्वारोही टोलियो पर आक्रमण आरम्भ कर दिया। पाराशर पन्त केवल शिन्दे की सेना के चारो ओर झडपें करके अशुभ दिन को आगे बढाने के अतिरिक्त कुछ नही कर सका।

गोपालराव ने पूना स्थित महादजी को निर्देशाथ परिस्थिति का समाचार भेज दिया । महादजी ने अप्रैल मे उत्तर दिया—"इस समय होलकर मैत्रीपूण परामश की अवहेलना कर रहा है और उसकी उत्कट इच्छा युद्ध करने की है, अत युद्ध होने दो । उसको भविष्य की चिन्ता नही है । उसने समझौते के लिए कोई जगह नही छोडी है । तुरन्त आक्रमण आरम्भ करके इस प्रकरण को समाप्त कर दो ।" इस उत्तर के प्राप्त होते ही गोपालराव ने होलकर पर टूट पडने और शक्ति द्वारा निणय करने का निश्चय कर लिया ।

मल्हारराव को रोका नही जा सकता था, अत युद्ध प्रवृत्ति नवीन रूप से आरम्भ हो गयी । तुकोजी ने अपने उच्छृङ्खल पुत्र को स्वतन्त्र अधिकार दे दिया । इस प्रकार उसे अपने परिवार की सम्पूण सेनाओ का अधिकार प्राप्त हो गया । गोपालराव भाऊ तथा दि बायने ने निकटवर्ती सघष के लिए सावधानी से तैयारी की । वे घूमने-फिरने योग्य एक हल्के दल की रचना करके लाखेरी के समीप होलकर के शिविर की ओर बढे ।[13]

इतना जोरदार युद्ध उत्तर भारत मे पहले कभी नही हुआ था । होलकर के अश्वारोही दल की सख्या लगभग २५ हजार थी । उनके साथ लगभग २ हजार डुड्रेनेक की प्रशिक्षित पैदल सेना थी, जिसके पास ३८ तोपे थी । गोपालराव २० हजार अश्वारोही दल, ६ हजार प्रशिक्षित पैदल दल तथा फ्रेंच शैली की उन्नत ८० हल्की तोपे लेकर होलकर के सामने डट गया । जीवबा बख्शी के अनुभव सिद्ध प्रबन्ध एव दि बायने की चतुर रणशैली के कारण विजय प्राप्त हुई । होलकर की समस्त सेना का लगभग सवनाश कर दिया गया । डुड्रेनेक अन्त तक लडता रहा । उसे आत्मसमपण का आह्वान किया गया, पर उसने ऐसा करना स्वीकार नही किया । वह घायल अवस्था मे पकडा गया । मल्हारराव को अपने उत्साह से कुछ भी लाभ नही हुआ । वह सडक के पास एक तालाब के किनारे मदिरा के नशे मे अचेत पडा हुआ पकड लिया गया । होलकर का यह पराभव अन्तिम था । इस रण से उत्तर भारत की शिन्दे-होलकर प्रतिद्वद्विता का निणय हो गया ।

होलकर की सेनाएँ अत्यन्त तीव्र वेग से भाग निकली । रणक्षेत्र मे प्राण

---

[13] प्रथम टक्कर २७ मई को पचिलास के स्थान पर हुई, परन्तु निर्णायक रण प्रथम जून, १७९३ को हुआ । देखो फरवरी, १९४४ के माडन रिव्यू मे सर यदुनाथ सरकार द्वारा इस रण का वणन । इन्द्रगढ तथा लाखेरी इस समय सवाई माधोपुर के दक्षिण मे पश्चिम रेलवे की मुख्य लाइन पर रेलवे स्टेशन है ।

दने वालो की अपक्षा प्यास तथा थकावट के कारण माग मे मरने वालो की सख्या अधिक थी। गापालराव को होलकर द्वारा छोडे हुए शिविर मे लूट का बहुमूल्य माल प्राप्त हुआ। होलकर की पराजय का कारण उसकी सेना के विभिन्न अगो का उद्धत आचरण था। उनकी योजना सगठित नही थी और न उनकी आक्रमण शैली ही सयुक्त थी। दि बायने ने उनको सकुशल नही भागने दिया, क्योकि उन्होने अकारण आक्रमण किया था। उसने इस अवसर से पूण लाभ उठाया तथा अपने विरोधियो को कठोर दण्ड दिया। बाद को उसने स्वय लिखा, "जितने रण मैने लडे थे, उन सबमे लाखेरी के स्थान पर डुड्रेनेक के विरुद्ध यह सघष अत्यन्त प्रबल था। जब तक परिणाम ज्ञात नही हुआ, तब तक इसके कारण मुझको अति तीव्र चिन्ता रही।" लाखेरी से उसने जयपुर को प्रयाण किया तथा वहा के शासक प्रतापसिह से बलपूवक ७० लाख का कर ग्रहण किया। यह कर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उसने अब तक नही दिया था। भग्नदप तुकोजी होलकर इस घातक युद्ध से इन्दौर वापस आया। माग मे उसने शिन्दे की राजधानी उज्जैन को निदयतापूवक लूटकर अपनी प्रतिशोध भावना को तृप्त किया। इस प्रकार शिन्दे-होलकर वैमनस्य जो पानीपत के पूवकाल मे आरम्भ हुआ था, लाखेरी मे अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया। इसने बढकर मराठा राज्य का सवनाश ही कर दिया।[१४]

५ **पूना मे शिन्दे की विजय**—लाखेरी का समाचार विद्युत गति से मराठा जगत मे फैल गया तथा इससे अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न हुई। महादजी को व्यक्तिगत रूप मे यह प्रसन्नता हुई कि उसकी अनुपस्थिति मे भी उसकी सेना ने गौरवपूण रूप से व्यवहार किया। साथ ही उसको यह दुख भी हुआ कि राज्य के दो प्रमुख सरदारो के बीच स्थिति इस सीमा को पहुँच गयी। कहा जाता है कि जब उसके अधीन सरदारो ने इस विजय के सम्मान मे तोपे छोडे जाने का सुझाव दिया तो उसने इस काय का सवथा निषेध कर दिया। शिन्दे ने इस अवसर को शोकदिवस कहना अधिक उपयुक्त समझा।[१५]

---

[१४] दोनो परिवारो का वैमनस्य आगामी पीढियो मे भी अधिक कटुतापूवक चलता रहा। सैनिक विद्रोह मे प्रसिद्धि प्राप्त दो विश्रुत शासक तुकोजी होलकर तथा जयाजी शिन्दे अपने जीवन-काल मे मृत्यु के समीप एक बार के अतिरिक्त कभी परस्पर नही मिले।

[१५] यह समाचार फैल गया कि उसने अपने राजप्रतिनिधि गोपालराव भाऊ को पदच्युति तथा कारागार का दण्ड दिया है। यह हो सकता है कि

पूना के मन्त्रियो को भय हुआ कि आग चलकर शिन्दे उनसे अपना बदला लेगा, क्योकि उसकी शक्ति पर एकमात्र होलकर का अकुश अब समाप्त हो गया है। अब वह उनको उनके भूतकालीन अपराधो के लिए कठोर दण्ड देगा—चाहे ये अपराध उपेक्षा मे किये गये हो या इच्छापूवक। उन्होन तुरन्त उन बातो को स्वीकार कर लिया, जिनकी माग शिन्दे बहुत दिनो से कर रहा था। उन्होने अपनी पहले वाली अवज्ञा की वृत्ति छोडकर शिन्दे से तुरन्त सामजस्य स्थापित कर लिया। हरिपन्त ने, जिसका वणन पहले हो चुका है, मध्यस्थ का महत्त्वपूण काय किया। केन्द्रीय शासन के विचारो की एकता स्थापित करने के लिए महादजी न मन्त्रियो द्वारा प्रस्तावित मैत्री बुद्धिमत्ता-पूवक स्वीकार कर ली। इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि पूना शासन-सत्ता पर अधिकार करने का विचार उसमे कभी उत्पन्न नही हुआ था। अल्पवयस्क पेशवा शीघ्र प्रौढता को प्राप्त हो रहा था तथा आशा थी कि वह समथ अधिकारी की भाति काय करेगा। अत इस समय सभी लोगो का कतव्य हो गया कि उसको अपना पूण समथन दे। महादजी का मराठा बन्धुओ के विरुद्ध सैनिक शक्ति के उपयोग से घृणा थी। अपने जीवन मे पहले केवल एक बार कोल्हापुर के राजा के विरुद्ध युद्ध मे (१७७८) उसने इस उपाय का आश्रय लिया था। परन्तु एक तो यह काय उसने अनिच्छापूवक स्वीकार किया था, दूसरे इस काय मे उसने यथाशक्ति नम्रता बरती थी। उसने अन्य समस्त युद्ध तथा सघष मराठा राज्य के शत्रुओ के विरुद्ध किये थे। अपने हिन्दू भाई राजपूतो के विरुद्ध घेराबन्दी का उसे सदैव दु ख रहा। गोहद का राना तथा राघोगढ का सरदार विद्रोही होने के कारण दण्ड के पात्र थे। अब उसने सोच-विचार कर पेशवा की गौरव-रक्षा के लिए पूना के मन्त्रिमण्डल से मैत्री कर ली।

अपने निष्कपट तथा स्पष्ट व्यवहार, घर बाहर की क्रीडाओ के प्रति अपने प्रेम तथा मराठा राज्य के कल्याण के प्रति अपनी सतत चिन्ता से महादजी ने पहले ही अपने स्वामी का हृदय जीत लिया था। पूना प्रशासन मे विद्यमान अन्याय प्रकट करने तथा न्याय योग्य कई अभियोगो की ओर पेशवा का ध्यान आकृष्ट करने मे उसने नेतृत्व ग्रहण कर रखा था। घासीराम के भ्रष्ट पुलिस

शिन्दे ने इस प्रकार का सकेत दिया हो परन्तु उसने कभी इस आज्ञा का पालन नही किया, क्योकि वह जानता था कि गोपालराव ने केवल महादजी की आज्ञा से ही यह काय किया है। महादजी की मृत्यु के बाद भी गोपालराव बहुत दिनो तक अपने पद पर बना रहा।

प्रशासन, भार के सचिव के दुर्व्यवहार, सतारा के राजा की शोचनीय अवस्था तथा अ-य कार्या को महादजी ने प्रमुख रूप से पेशवा के सम्मुख उपस्थित कर दिया था। अपराधो की उचित रूप से जाच करके अपराधियो को पर्याप्त दण्ड दिया गया। महादजी द्वारा एक वष के शिक्षण तथा मागदशन के बाद पेशवा के दृष्टिकोण मे आमूल परिवतन हो गया। पशवा को अनुभव हुआ कि उसका पालन-पोषण सकीण तथा दुरावपूण वातावरण मे हो रहा था, जिससे अब वह मुक्त हो गया है। वह अपने अधिकारो तथा उत्तरदायित्व को समझने लगा। जैसे ही लाखेरी के शोचनीय काण्ड का समाचार प्राप्त हुआ, वैसे ही पेशवा ने नेतृत्व ग्रहण कर लिया तथा वह शिन्दे और नाना के बीच वैर-शान्ति कराने के व्यक्तिगत प्रयास मे सफल हो गया।

अनेक मास तक महादजी ने मन्त्रियो को परिस्थिति की गम्भीरता का बोध कराने के लिए व्यथ परिश्रम किया, परन्तु वादविवाद तथा स्पष्टीकरण के अतिरिक्त कुछ उन्नति न हो सकी। पेशवा का विवाह अभी हाल मे हुआ था। वह उन क्रीडाओ और आमोद-प्रमोदो से बहुत प्रसन्न होता था, जिनका प्रबन्ध शिन्दे करता था। हरिपन्त फडके ने शिन्दे का विश्वास प्राप्त कर लिया तथा शिन्दे और नाना मे स्थायी मैत्री कराने के लिए सचाई से प्रयत्न किया। हरिपन्त स्वभाव से विनयपूण व्यक्ति था। उसमे कतव्य के प्रति गम्भीर चेतना थी। उसका कोई व्यक्तिगत स्वाथपूर्ण उद्देश्य नही था। अत वह उत्तम तथा अत्यन्त उपयुक्त शान्ति स्थापक सिद्ध हुआ। उसने शिन्दे से उसके शिविर मे निभयतापूवक मिलना तथा उससे अनेक प्रश्नो की मौलिक व्याख्या प्राप्त करना स्वीकार कर लिया। इसके विपरीत शिन्दे से मिलने के लिए अकेले जाने मे नाना को सदैव भय रहता था। शिन्दे फडके की योजनाओ को समझता था। उसने अपनी सहानुभूति तथा सहयोग उदारतापूवक प्रस्तुत किया। उसके द्वारा शिन्दे को यह ज्ञान हुआ कि अपनी समस्त निबलताओ के होते हुए भी नाना प्रशासन चलाने के लिए एकमात्र समथ व्यक्ति है। कोई अन्य व्यक्ति उसका स्थान ग्रहण नही कर सकता।[1] इसी प्रकार नाना से सविनय निवेदन किया गया कि वह शिन्दे की योग्यता को समझे तथा उसके कष्टो का अनुमान करे। नाना ने पूना प्रशासन की कमजोरियो को स्वीकार कर लिया तथा उनके सुधार के प्रति अपनी तत्परता प्रकट की।

लाखेरी के समाचार से कार्यों को द्रुतगति प्राप्त हो गयी। पेशवा ने नाना, शिन्दे तथा अ-य व्यक्तियो को तुरन्त अपने सामने बुलाकर उन दोनो (नाना तथा शिन्दे) से राज्य की निस्स्वाथ सेवा करने को कहा। उसने स्पष्ट शब्दो

मे कहा कि नाना तथा महादजी उसके दाये बाये हाथ ह तथा दोनो हाथो का परस्पर मिलकर काय न करना अपराध होगा। इस भाषण का चमत्कार-पूण प्रभाव हुआ। २१ जुलाई, १७९३ को फतेहगढ मे पामर ने कानवालिस को इस प्रकार लिखा "पूना से आये विशेष समाचार द्वारा मुझको मालूम हुआ है कि पेशवा की विशेष आज्ञा से उसकी उपस्थिति मे अभी अभी होने वाले एक सम्मेलन मे महादजी, नाना, हरिपन्त, तीनो सरदारो ने परस्पर प्रतिज्ञा कर ली है कि वे अपने भेदभाव दूर कर देगे, पेशवा के प्रशासन का समथन करेगे, उत्तर भारत मे शिन्दे की प्रामाणिकता पुष्ट कर देगे, उसके तथा तुकोजी के बीच मे कलह का समाधान कर देगे तथा निजामअलीखा पर मराठा राज्य के दावो को बलपूवक लागू करेगे। ये प्रतिज्ञाएँ एक मन्दिर मे उनके धर्म की अत्यत गम्भीर विधि के अनुसार शपथपूवक धारणा की गयी है, जिससे वे पवित्र तथा अपरिवतनीय समझी जाये।"

निजामअली के दूत कल्याणराव तथा रघूत्तमराव ने जो पूना मे निवास करते थे, २७ सितम्बर, १७९३ को निम्नलिखित समाचार भेजा "शिन्दे ने पूना मे अपने समस्त काय का इच्छानुकूल प्रबन्ध कर लिया है, उसकी बहियो पर पेशवा ने हस्ताक्षर कर दिये है। पेशवा ने स्वीकार कर लिया है कि शिन्दे को ५ करोड बाकी दिया जायेगा। उसे उत्तर भारत मे काय प्रबन्ध का एकमात्र अधिकार मिलेगा, युद्धो मे आवश्यकता पडने पर उसे पूना से सब प्रकार की सैनिक सहायता दी जायेगी तथा वह अपनी इच्छानुसार हिम्मत बहादुर गोसाई के साथ व्यवहार कर सकता है।"[१६]

१ अक्तूबर, १७९३ को निजामअली ने केनेवे को सूचना दी "मुझ को पूना से इस आशय का समाचार प्राप्त हुआ है कि महादजी की समस्त मागो के प्रति मन्त्रिगण सहमत हो गये है। इनमे ५ करोड के व्यय का भुगतान भी शामिल है। यह विशाल धनराशि तत्क्षण प्राप्त न हो सकी। अत शिन्दे को यह अनुमति दे दी गयी कि वह उत्तर मे नवप्राप्त प्रदेश का प्रशासन उस समय तक करता रहे, जब तक समस्त धन प्राप्त न हो जाये। उसके बाद वह धन पेशवा को देता रहे। मन्त्रिमण्डल ने यह भी अगीकार कर लिया है कि इस नवीन प्रदेश की रक्षा के लिए महादजी के निरीक्षणाधीन पेशवा की सेना का व्यय वे स्वय सहन करेगे।" शिन्दे के विवाद का मुख्य विषय आर्थिक

---

[१६] पूना रेजीडेन्सी करस्पौण्डेस, जिल्द १, पृ० २८३, तथा जिल्द २, पृ० १९४

सकट था, जिसका निणय अन्त मे उसके पक्ष मे ही हुआ। यह दूसरी बात है कि इससे वह अपने जीवन मे लाभ नही उठा सका।

६ **सचिव के साथ दुव्यवहार**—यहा विवादग्रस्त कुछ अन्य विषयो का उल्लेख होना परमावश्यक हे, जिनका सम्बन्ध महादजी के पक्ष समथन से है। सचिव के साथ दुव्यवहार इसी प्रकार का एक दु खद विषय था, जिसके विषय मे जाच होनी थी। लोगो को मालूम था कि महादजी कमठ पुरुष है और निर्भीक तथा निष्पक्ष भाव से मराठा प्रशासन मे न्याय, औचित्य तथा निर्दोषिता लाने के लिए प्रयत्नशील हे। जब महादजी ने पूना आकर प्रशासन पर अपना स्वस्थ नियन्त्रण आरम्भ कर दिया तो जनसाधारण ने अत्यन्त शान्ति का अनुभव किया। इस प्रशासन मे बहुत-से दोष प्रवेश कर गये थे। जब महादजी ने अपनी शक्ति का प्रदशन आरम्भ किया तो अनेक दिशाओ से पीडा तथा यातना की सहस्रो शिकायते पहुँचने लगी। दरिद्र तथा पीडित जनता मे साहस हो गया कि वह आगे बढकर पूना के भ्रष्ट तथा अत्याचारी प्रशासन की निन्दा करे। राज्य के उत्तरदायी सदस्य के रूप मे महादजी ने उनका अन्वेषण करके उनके प्रति न्याय करना तथा इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से पेशवा को प्रशिक्षण देना अपना कतव्य समझा। सचिव का प्रश्न इसी प्रकार का एक अनुपम अभियोग था। सचिव शिवाजी के सविधान के अष्ट प्रधानो मे से एक जीवित सदस्य था। समय के परिवतन के साथ उन प्रधानो ने अपनी शक्ति तथा प्रभाव नष्ट कर दिया था। वे उस पैतृक सम्पत्ति पर अनिश्चित जीवन व्यतीत कर रहे थे, जिसको उत्तराधिकार मे प्राप्त करने की अनुमति पेशवा देता आया था।

रघुनाथ शकरजी सचिव का देहान्त ११ जुलाई, १७९१ को हो गया और उसका वयस्क पुत्र शकरजी उत्तराधिकारी हुआ। इस शकरजी के तीन पत्नियाँ थी। बडी पत्नी सखाराम बापू की पुत्री थी और दूसरी रामशास्त्री की। अपनी रियासत के प्रबन्ध के लिए शकरजी मे आवश्यक चरित्र तथा योग्यता नही थी। उनके सम्बन्धी पूना मे उच्च स्थानो पर आसीन थे, इसलिए दोनो पत्नियो की बहुत चलती थी। शकरजी की विमाता परिवार मे विरोध उत्पन्न करने वाली तीसरी नारी थी। इस उत्साहशील युवती विधवा ने परिवार के कार्यों को सँभालने के लिए निपुण प्रबन्धक की नियुक्ति के लिए नाना फडनिस से प्रार्थना की। इसके लिए बाजी मोरेश्वर की सेवाएँ प्राप्त हो गयी। इससे सचिव के परिवार मे दो दल हो गये—एक ओर स्वय शकरजी और उसकी पत्नी, दूसरी ओर उसकी विमाता, जिसका मार्गदशक

नाना फडनिस द्वारा नियुक्त व्यक्ति था। प्रत्येक दल प्रबन्ध का अधिकार प्राप्त करन के लिए प्रयत्नशील था। इसमे गतिरोध उपस्थित हो गया तथा स्थिति ने गम्भीर रूप धारण कर लिया। सचिव और उसकी पत्नियो को अन्न तक का कष्ट आ पडा और उनको घर मे अपनी दैनिक पूजा से रोक दिया गया। शिकायते पूना पहुँची और हरिपन्त फडक न जाच करके नाना को परामश दिया कि बाजी मोरेश्वर को वापस बुला लिया जाये। नाना ने इस परामश को स्वीकार नही किया तथा अपने कमचारी को प्रबन्ध से हटाना अस्वीकार कर दिया।

कारभारी (प्रबन्धक) तथा अपनी विमाता के शासन से सचिव बहुत अप्रसन्न था। नाना द्वारा नियुक्त प्रबन्धक तथा विमाता दोनो ने मिलकर गढो पर अधिकार कर लिया तथा न्यायपूण अधिकारी शकर को कुछ नही समझा। उन्होने सूचना भेज दी कि शकर का दिमाग बिगड गया है। अपने इष्टदेव के रामनवमी उत्सव के लिए (२५ माच, १७९३) सचिव जेजूरी यथापूव गया। रामनवमी का यह उत्सव रगपचमी उत्सव के १२ दिन के बाद पडा था, जिसको शिन्दे ने पेशवा के लिए भव्य रूप से मनाया था। यहा पर स्वण-प्रतिमा की पूजा के अधिकार पर उपद्रव हो गया। कारभारी बाजी ने यह अधिकार देने से इनकार कर दिया था। उसने कुछ सैनिक नियुक्त कर दिये कि सचिव इस स्वण-प्रतिमा की पूजा न करने पाये। जब वह प्राथना मे व्यस्त था, तभी इन लोगो ने उसके ऊपर आक्रमण कर दिया। परिणामस्वरूप वह तथा उसकी पत्नी (सखाराम बापू की पुत्री) घायल हो गये और लगभग सात सेवक मारे गये। जेजूरी की इन घटनाओ का समाचार पूना मे महादजी के पास पहुँचा। उसने तुरन्त पेशवा के भवन मे जाकर उससे प्राथना की कि वह किसी शक्तिशाली सेवक द्वारा सचिव के विरुद्ध इस अत्याचारपूण कारवाई को रोके। महादजी ने अपने कुछ सैनिक जेजूरी भेजकर सचिव को अपने वनवाडी के शिविर मे बुला लिया तथा बाजी मोरेश्वर और उसके अनुचरो को पकडवा लिया। इस कारवाई के कारण समस्त नगर मे हलचल-सी मच गयी तथा मन्त्रियो का दल परिणामो के विषय मे भयभीत हो गया। पेशवा ने जाच की आज्ञा दी। जाच से पता चला कि सचिव को विष देने के लिए षड्यन्त्र रचा जा रहा था। इस काण्ड मे नाना का व्यवहार गम्भीर रूप से सदिग्ध प्रतीत हुआ। एक बयान इस आशय का भी हुआ कि वतमान सचिव के विरुद्ध यह अत्याचार उसने इच्छापूवक आरम्भ किया था, क्योकि वह सचिव के दिवगत पिता से प्रतिशोध लेना चाहता था। यह भी कहा गया कि

नाना का विचार शिवाजी के मन्त्रियो की समस्त जागीरे जब्त कर लेने का था। बाजी मोरेश्वर नाना की आज्ञा से काय करता था तथा वास्तविक तथ्यो को नाना के कानो तक नही पहुँचने देता था। नाना के प्रशासन का पक्षपात तथा भ्रष्टाचार प्रकट करने के लिए केवल यही उदाहरण पर्याप्त था। सचिव की महिलाओ ने महादजी से शिकायत करके हस्तक्षेप की प्राथना की। महादजी ने उनका पक्ष लेकर नाना फडनिस से स्पष्टीकरण की माग की। नाना ने इसको अपने पद के प्रति हस्तक्षेप तथा अपमान समझा। इस पर महादजी ने अपना सचिव नाना के पास भेजकर कहलवाया कि वह अन्यायो को दूर करे और खुले रूप मे न्यायपूण जाच के बाद सचिव के प्रति अत्याचार ब द कर दे।

कुछ समय तक महादजी तथा नाना के पारस्परिक सम्बन्ध बहुत बिगडे रहे। पेशवा को इस अभियोग मे बहुत रुचि थी। महादजी के दृढ समथन से उसे पता चला कि वह अपने राजप्रतिनिधि से स्वतन्त्र होकर काय करने मे समथ नही है। महादजी ने उसे साहस दिलाया तथा म त्री का उल्लघन करके अपनी सत्ता स्थापित करने मे समथ बनाया। इस निमित्त विशेष व्यक्तियो का ध्यान रखे बिना उसे प्रशासन की न्यूनताओ का निराकरण करने की सलाह दी। कुशासन के अन्य अनेक प्रत्यक्ष उदाहरण भी प्रकाश मे आ गये और महादजी ने उनकी जाच की माँग की। जब नाना ने उत्तर दिया कि वह शीघ्र ही सचिव के अभियोग मे जाँच आरम्भ करेगा तो महादजी ने कहा, "इस प्रकार की बहानेबाजी मे मुझे कोई विश्वास नही रह गया है।" उसने यह भी कहा—"हा, मैं जानता हूँ आप किस प्रकार जाच करेगे। मैने भी इस काण्ड की जाच की है। मैं बिना जाँच के कुछ भी नही कह रहा हूँ। इस विषय मे अपने स्वामी पेशवा से शिकायत करना व्यथ है, क्योकि वह आपके हाथो की कठपुतली है। उसे कोई स्वत त्र अधिकार नही है। मै पूना मे एक वष नष्ट कर चुका हूँ, पर कोई भी उन्नति नही हुई है। मैने गत वष आपसे कहा था कि सावन्तवाडी तथा बडौदा के गायकवाडो के प्रति न्याय करे। परन्तु आपने इस विषय मे कोई कार्य नही किया। उत्तर भारत मे जब मैंने अपना शासन स्थापित करने का प्रयत्न किया तो आपने मेरे प्रयासो को असफल करने और प्रत्येक दिशा मे मेरी प्रगति रोकने के लिए होलकर तथा अलीबहादुर को नियुक्त कर दिया। इस परिस्थिति मे हमारी समस्त आशाएँ इस नन्हे-से पौधे अल्पवयस्क पेशवा पर केन्द्रित है, जिसकी शक्ति पर मराठा राज्य का भाग्य पूर्णत निभर है। परन्तु इसका पालन आप इस प्रकार नही कर रहे है कि वह पूर्ण शक्ति को प्राप्त हो सके। आप उसे अपनी इच्छाशक्ति तथा स्वाधीनता

का उपयोग करने का अवसर ही नही देते । मुझको तो इस समस्त व्यवहार मे निश्चय तथा द्रुत विनाश दीख रहा हे । क्या मै पशवा का आप ही के समान सुसेवक नही हूँ कि जाच की आज्ञा दे सक तथा जहा पर न्याय न होता हो, वहा न्याय कर सकू ? इस विषय मे मै आपके समान स्वाधीनता से क्यो न काय करूँ ? मैं स्वय जाँच क्यो नही कर सकता ?"

अनेक उल्लिखित अभियोगो मे से यह केवल एक उदाहरण है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि पूना का प्रशासन केवल एक व्यक्ति के प्रभाव एव अधिकार से चलता था तथा न्याय और निष्पक्ष व्यवहार का खुलेआम गला घोट दिया गया था । महादजी इस विषय मे नाना को प्राय समझाता रहता था । सचिव के विषय मे जब उसकी प्राथना पर कोई ध्यान नही दिया गया तो महादजी पेशवा के पास गया तथा खुली सभा मे उसने वे ही आरोप अत्यन्त उग्रता से लगाये । अन्त मे पेशवा मान गया कि सचिव के प्रकरण ने इस प्रकार का गम्भीर रूप धारण कर लिया है । यह मुझे नही मालूम था । हरिपन्त ने उत्तर दिया कि अन्वेषण किया ही जाने वाला था । महादजी ने साग्रह कहा—"हा, आप ऐसा करने जा रहे है ? अब तो स्वामी स्वय यह काय करेंगे तथा आप और हम परिणाम देखेंगे । इस प्रकार के अन्याय तथा अत्याचारपूण व्यवहार से मुझको अपने पूवजो द्वारा प्राणो की बलि देकर स्थापित किये गये राज्य की भावी दशा के विषय मे अत्यन्त भय तथा चिन्ता हे । मेरा धैय समाप्त हो गया है । आपकी तथाकथित जाच के लिए मै अब एक क्षण भी प्रतीक्षा नही कर सकता । मै भली-भाति जानता हूँ कि इस प्रकार की जाच किस तरह की जाती है तथा इसका फल क्या होता हे । हे स्वामिन् ! मै आपसे इसी क्षण स्पष्ट न्याय चाहता हूँ ।"

भरी सभा मे इस निष्कपट तथा स्पष्ट भाषण से व्याकुल होकर हरिपन्त ने सुझाव रखा कि इस प्रकार के वादविवाद खुले दरबार मे न होकर व्यक्तिगत वार्तालाप मे होने चाहिए । बात मान ली गयी और पेशवा नाना, हरिपन्त, महादजी तथा महादजी के चिटनिस कृष्णो बा को साथ लेकर तुरन्त एक निकटवर्ती कमरे मे चला गया । वहा वे ही गरम शब्द दोहराये गये । नाना उत्तर मे एक शब्द भी नही बोला । सभा विसर्जित हो गयी । महादजी ने अपने शिविर मे वापस आकर पेशवा को तुरन्त निम्नाकित व्यक्तिगत पत्र भेजा

"आप अपने योग्य सेवको से भयभीत है । मैं इस अपमान को अधिक सहन नही कर सकता । ऐसा मालूम होता है कि इस विवाद मे मेरे वास्तविक

उद्देश्य को लाग नही समझ रहे हे। अत मै उचित समझता हूँ कि आपकी सेवा से अलग हाकर इस विशाल जगत् मे अन्यत्र अपनी आजीविका खोजू।" महादजी के व्यक्तिगत सचिव रामजी पाटिल ने यह पत्र नाना तथा हरिपन्त की उपस्थिति मे पेशवा को दिया। पेशवा ने निम्नलिखित उत्तर दिया "हम आपकी सचाई तथा तत्परता का मान करते है। हमारी हार्दिक इच्छा है कि आपके विचारो का समर्थन किया जाये तथा प्रशासन मे अविलम्ब आवश्यक सुधार किये जाये। हम सचिव को पूरा हरजाना देगे।" इस पर महादजी कुछ दिनो तक दरबार से सर्वथा दूर रहा और पेशवा से नही मिला। पेशवा ने सन्देश भेजकर महादजी से मिलने आने की प्रार्थना की। महादजी ने इसका उचित उत्तर दिया और शनै-शनै प्रशासन को नवीन स्फूर्ति दे डाली। साथ ही पेशवा को अपने अधिकारो के प्रयोग मे समर्थ बना दिया। सचिव के दुखो को शीघ्र दूर किया गया। बाजी मोरेश्वर तथा उसके पुत्र को बेडियाँ डालकर कारावास का दण्ड दिया गया और उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। नाना के विश्वासपात्र एव बाजी मोरेश्वर को प्रोत्साहन देने वाले अनेक लोगो को भी दण्ड दिया गया। सचिव को अपनी शक्ति तथा पद पुन प्राप्त हो गया और उसे अपनी रियासत का यथापूर्व प्रबन्ध करने की अनुमति दे दी गयी।

इसी प्रकार के अन्याय तथा अत्याचार से सम्बन्धित अन्य मामले भी प्रकाश मे आ गये। कुछ समय तक महादजी ने अपनी इच्छानुसार कार्य किया और अपने समक्ष आने वाले अनेक अन्याय सम्बन्धी मामलो मे न्याय किया। यह घटना १७९३ के अप्रैल तथा मई मास मे घटित हुई थी। इसके बाद महादजी का स्वास्थ्य धीरे-धीरे बिगडने लगा तथा आगामी वर्ष के आरम्भ मे उसका देहावसान हो गया। कुछ ही दिनो बाद हरिपन्त फडके की भी मृत्यु हो गयी। प्रशासन पुन अपने पुराने ढर्रे पर चलने लगा। इसका जो परिणाम हुआ वह इतिहास मे सदा सर्वदा के लिए अकित है। "यह महत्त्वशाली कथा अत्यन्त दुखान्त है कि नाना जैसे गौरव प्राप्त कूटनीतिज्ञ ने, जिसने एक समय समस्त मराठा राज्य को विदेशी आक्रान्ता के विरुद्ध दृढ प्रतिरोध के लिए कटिबद्ध कर दिया था, अपनी वृद्धावस्था मे इस प्रकार के सकीर्ण स्वार्थी उपायो का आश्रय लिया जिनके कारण मराठा राज्य का अन्त शीघ्र आ गया।"[१७]

---

[१७] देखो बी० आर० नाटू कृत 'महादजी सिन्धिया की जीवनी', पृ० २५३-५६

७ **घासीराम कोतवाल का दु खद अन्त**—पूना मन्त्रिमण्डल के तत्कालीन कुशासन का यह एक अन्य ज्वलन्त उदाहरण है। यह घटना राजधानी मे शिन्दे के आगमन के कुछ ही दिनो पूव घटित हुई। मराठो का पुलिस प्रशासन आजकल की परिपाटी से सवथा भिन्न था। नियमानुसार समस्त ग्राम्य प्रशासन ग्राम सभाओ के हाथो मे था। पूना सदृश थोडे से ही नगरो को विशेष पुलिस प्रबन्ध की आवश्यकता थी, जिससे व्यापार का नियमन, जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा, और चोरी, व्यभिचार, मदिरापान, जुआ, हत्या आदि अपराधो की जॉच हो सके। थोडे-से हाटो को छोडकर, जहाँ जनसमुदाय क्रय-विक्रय के लिए सप्ताह मे एक बार एकत्र होता था, कोई अन्य बडे नगर नही थे। राजधानी पूना मे नारो अप्पाजी दीघकाल से शासक रूप मे नियुक्त था। नारो अप्पाजी ने अध शताब्दी से निपुणता, न्याय तथा शान्ति के लिए अपूव ख्याति प्राप्त कर ली थी। उसकी सहायता के लिए पुलिस का कोतवाल भी हुआ करता था। पेशवा माधवराव के शासनकाल मे पूना को बहुत महत्त्व प्राप्त हो गया था। उस समय प्रशासन सम्बन्धी पूणता के आदश के लिए सारा भारत इसी नगर की ओर देखता था। बाद मे औरगाबाद का निवासी घासीराम नामक उत्तर भारतीय ब्राह्मण ८ फरवरी, १७७७ को पूना का पुलिस कोतवाल नियुक्त किया गया। वह इस पद पर अपनी मृत्यु पर्यन्त बना रहा। उसकी मृत्यु ३१ अगस्त, १७६१ को विपम परिस्थिति मे हुई। पेशवा नारायणराव की हत्या के बाद सकटापन्न समय मे अपनी श्रद्धापूण सेवा के द्वारा उसने नाना का विश्वास प्राप्त कर लिया था।

सावजनिक निन्दा से रहित निपुण पुलिस प्रशासन सवदा प्रत्येक शासन का दुष्प्राप्य गुण रहा है। आनन्दराव काशी तथा उसके उत्तराधिकारी घासीराम को नाना फडनिस का पूण विश्वास प्राप्त था, क्योकि इस मन्त्री (नाना) को मराठा शासन के सचालन के लिए गुप्तचरो की आदश व्यवस्था पर भरोसा था तथा इस प्रकार से प्राप्त समाचारो का उपयोग वह अपनी सैनिक निबलता की पूर्ति के लिए करता था। आनन्दराव तथा घासीराम दोनो ने नगर के प्रशासन मे अनेक स्वस्थ सुधार किये। आनन्दराव काशी के विरुद्ध नाना के कानो तक पहुँचने वाली अनेक शिकायते लेखबद्ध है। घासीराम का प्रशासन उसके पूर्वाधिकारी की अपेक्षा कुख्यात एव निकृष्ट था। उसकी नियुक्ति रघुनाथराव तथा उसके परिवार की गतिविधि एव योजनाओ पर ध्यान रखने और नाना को ऐसे समाचार भेजने के अभिप्राय से हुई थी जो उसके काय मे उपयोगी हो। उसके अधीन नि शक गुप्तचरो की विशाल सख्या

थी । इनमे से प्रत्येक व्यक्ति के पास निर्दोप जनता को पीडित करने के लिए पर्याप्त साधन थे । इनके फलस्वरूप 'घासीराम' शब्द स्थायी रूप से अत्याचार तथा दुराचार का समानार्थक हो गया ।

एक वास्तविक घटना की रिपोट जिससे इस अधिकारी का आकस्मिक तथा दुखद अन्त हो गया, मैलेट इस प्रकार देता है—"कोतवाल के अधिकारियो द्वारा २१ ब्राह्मणो को एक तग जगह मे दम घोटकर मार देने से पूना मे अपूव हलचल उपस्थित हो गयी । इस हलचल का अन्त उस समय हुआ, जब सरकार ने स्वय कोतवाल को उस जाति के ब्राह्मणो को दे दिया, जिनको दम घोटकर मार दिया गया था । इन ब्राह्मणो ने ३१ अगस्त, १७९१ को अत्यन्त निष्ठुरता तथा निदयता से उसको पत्थरो द्वारा मार डाला ।" इस विचित्र घटना की समकालीन रिपोर्टे भी पर्याप्त रूप से प्राप्य है । वे इस शोचनीय काण्ड के विशद विवरण का काम देती है । श्रावण मास मे भारत के समस्त भागो के ब्राह्मण वार्षिक दान मे भाग लेने के लिए पूना मे एकत्र होते थे । एक बार पूर्वी समुद्रतट के तेलगू प्रदेश के ३५ ब्राह्मण पूना मे अपना काय समाप्त करके २९ अगस्त को तीसरे पहर अपनी वापसी यात्रा पर चल पडे । वे अपनी यात्रा आरम्भ करने वाले ही थे कि उनको पुलिस अधिकारियो ने पूना छावनी मे स्थित सेन्ट मेरी के गिरजाघर के पास पकड लिया तथा भवानी पेठ की चौकी के एक छोटे कमरे मे रात भर बन्द रखा । कमरे मे कोई खिडकी या रोशनदान न होने के कारण उनमे से अधिकाश दम घुटकर मर गये । दूसरे दिन प्रात मानाजी फडके नामक मराठा सरदार उधर से जा रहा था । जो लोग अब तक जीवित थे, उनके चीत्कारो से उसका ध्यान आकृष्ट हुआ । वह ताला तोडकर अन्दर गया । वहा २४ लाशे मिली । ११ व्यक्ति जो अब तक जीवित थे, मुक्त कर दिये गये । फडके ने तुरत राजभवन मे जाकर स्वय पेशवा को यह समाचार दिया । पेशवा ने जॉच के लिए अपने कुछ व्यक्ति भेजे । इस बीच घासीराम ने नाना फडनिस से मिलकर बताया कि ब्राह्मण अपनी कुटेववश अफीम खाकर मर गये है । साथ ही उसने उनके दाह सस्कार की आज्ञा के लिए प्राथना की । जब घासीराम तथा नाना इस विषय पर वार्तालाप कर रहे थे, तभी नाना को पेशवा से साग्रह आह्वान प्राप्त हुआ । पेशवा से मिलने पर नाना से पूछा गया कि उस विषय मे वह क्या कर रहा है ? नाना ने उत्तर दिया कि वह उस विषय मे जाच करने जा रहा है और यदि घासीराम अपराधी पाया गया तो उसको दण्ड दिया जायेगा । नाना ने जाच करने के लिए तुरत एक विश्वसनीय अधिकारी

को भेजा। घासीराम ने प्रश्ना के उत्तर मे कहा कि उन ब्राह्मणा को चारी करने के कारण पकडा गया था और उन्होने अफीम खाकर आत्महत्या कर ली है। इस प्रकार जाँच चल ही रही थी कि ३० अगस्त को ब्राह्मणो की मृत्यु का समाचार सारे शहर मे फैल गया तथा पूना की ब्राह्मण जाति अपूव क्रोध के आवेश मे भर गयी। हजारो व्यक्ति नाना के घर के सामन एकत्र हो गये और घासीराम को दण्ड देने के लिए चिल्लपुकार करने लगे। तीसरे पहर कोतवाल को पकडकर बेडिया डाल दी गयी। इससे जनसमूह को सन्तोप न हुआ। उन्होने यह माग रखी कि ब्रह्महत्या का पाप करने वाले कातवाल को शास्त्रीय विधान के अनुसार हाथी के पैरो से कुचलवा दिया जाय। अय्या शास्त्री उस समय न्यायाधीश था। नाना ने उससे कहा कि वह जनसमूह को सम्बोधित करके परिस्थिति स्पष्ट करने तथा बिखरने की आज्ञा दे। परन्तु जैसे ही न्यायाधीश ने अपना व्याख्यान आरम्भ किया वैस ही जनसमूह ने उस पर आक्रमण करके उसके साथ दुव्यवहार किया। इस पर स्वय पेशवा ने कोतवाल को उचित दण्ड देने की आज्ञा दी। ३० अगस्त को रात्रि के प्रथम पहर मे घासीराम हाथी पर बैठाकर सडको पर निकाला गया तथा पावती पहाडी के नीचे वाले हाते मे बन्द कर दिया गया। आगामी ३१ अगस्त को प्रात नगर के ब्राह्मण पुन नाना के घर के सामने इकट्ठे हो गये और उन्होने माग की कि कोतवाल हमारे सुपुद कर दिया जाये। इस बीच म नाना तथा पेशवा दोनो इस निश्चय पर पहुँच चुके थे कि घासीराम ही इतने निर्दोष ब्राह्मणो की अकारण मृत्यु के लिए उत्तरदायी है। उन्होने उसको उसकी कोठरी से निकाल कर ऊँट पर बैठाया और जनसमूह के सुपुद कर दिया। उन्होने उसी तीसरे पहर को गारपीर के समीप उसको पत्थरा से मार डाला। घासीराम के घर और सम्पत्ति को सरकार ने जब्त कर लिया। नाना फडनिस ने इस काण्ड की सूचना छत्रपति को इन शब्दो मे दी कि कोतवाल के अपराध बहुत बढ गये थे तथा जो दण्ड उसको दिया गया वह सवथा उसका पात्र था। इस प्रकार यह नही मालूम होता कि अपराध की पूण रिपोट मालूम होने पर भी नाना ने कोतवाल की रक्षा का प्रयत्न किया। उसने उस आज्ञा का तुरन्त पालन किया जो पेशवा ने सक्षिप्त अन्वेषण के बाद दी।

इस काण्ड का सम्बन्ध उस प्रथम सावजनिक काय से है, जिसकी ओर पेशवा ने अपना व्यक्तिगत ध्यान दिया और जहाँ उसने अपनी ही इच्छा से अपनी सत्ता प्रकट की। यह सवप्रथम अवसर था, जब से सवशक्ति-सम्पन्न

नाना फडनिस का प्रभाव नष्ट हाने लगा । कुछ महीनो मे ही महादजी घटना स्थल पर आ गया ओर अन्याय तथा भ्रष्टाचार के ऐसे ही अनेक अभियोगो का उत्तर देने मे नाना हतबुद्धि हो गया । यह शिन्दे के शक्तिशाली प्रभाव का प्रत्यक्ष फल हे, जिसका उपयोग उसने अन्तिम समय मराठा राज्य की दशा को उन्नत करने मे किया । दुर्भाग्यवश महादजी शिन्दे की आकस्मिक मृत्यु से यह समस्त शुभ काय बीच ही मे रुक गया ।

अध्याय ६

तिथिक्रम

५ अक्तूबर, १७६३	रेन्हाट द्वारा पटना मे अग्रेजो का कत्लेआम ।
४ मई, १७७८	रेन्हाट की मृत्यु—बेगम समरू द्वारा कायभार ग्रहण।
१७८०	दौलतराव शिन्दे का जन्म ।
१७८५	रेमण्ड का टीपू सुल्तान के अधीन सेवा स्वीकार करना ।
१७६१	डुड्रेनेक होलकर की सेवा मे नियुक्त ।
२२ दिसम्बर, १७६१	रानाखा की मृत्यु ।
५ जून, १७६३	महादजी की बीमारी का प्रथम समाचार ।
जुलाई, १७६३	पूना सरकार के विरुद्ध महादजी की पूण विजय ।
१२ फरवरी, १७६४	महादजी शिन्दे की मृत्यु ।
१० मई, १७६४	दौलतराव शिन्दे गद्दी पर ।
११ माच, १७६५	खरदा का रण ।
सितम्बर, १७६५	निजामअली के पुत्र आलीजाह द्वारा विष खाकर आत्महत्या ।
२५ माच, १७६८	रेमण्ड की मृत्यु ।
२७ जनवरी, १८३६	बेगम समरू की मृत्यु ।

अध्याय ९

अन्तिम महान मराठा सरदार

(१७९४)

१ महादजी शिन्दे की मृत्यु । २ चरित्र तथा काय ।
३ भारत मे यूरोपीय साहसिक । ४ महादजी के मुख्य अनुयायी ।

१ **महादजी शिन्दे की मृत्यु**—१ जून, १७९३ को लाखेरी के स्थान पर महादजी ने होलकर के विरुद्ध निर्णायक विजय प्राप्त की। इसके कारण महादजी के पूना स्थित प्रतिद्वन्द्वी उन सभी बातो को स्वीकार करने के लिए विवश हो गये, जिनके लिए वह एक वष से आग्रह कर रहा था। यह परिश्रम उसके जीवन का तीव्र गति से शोषण कर लेगा, इसमे उसे कोई सन्देह नही था। उसकी बीमारी का प्रथम समाचार ५ जून, १७९३ को पूना के एक समाचार पत्र मे इस प्रकार प्रकाशित हुआ—"महादजी को ८ दिन से ज्वर आ रहा है। पेशवा तथा नाना फडनिस उसका स्वास्थ्य जानने के लिए मिलने आये। हरिपन्त भी प्रत्येक तीसरे दिन आता है।"[१] यह रोग की केवल आरम्भिक अवस्था थी, जिसकी ओर कोई ध्यान नही दिया गया। किसी को यह सन्देह नही था कि यह किसी प्रकार से गम्भीर रोग है। यह महत्त्व की बात है कि रोग के इस प्रथम लक्षण के बाद महादजी की व्यक्तिगत रुचि के अनुकूल कोई महत्त्वपूण काय नही हुआ। यद्यपि जुलाई, १७९३ मे उसने व्यावहारिक रूप से पूना के मन्त्रिमण्डल से समस्त विवादग्रस्त विषय स्वीकृत करा लिये थे, फिर भी उसकी मृत्यु के पूव कुछ मासो मे किसी काय का उल्लेख नही मिलता। उसके अतिम दिनो के सवथा विश्वसनीय वृत्तातो को ध्यान मे रखते हुए उसको विष दिये जाने के सम्बन्ध मे प्रचलित कल्पनापूण दन्तकथाओ का सवथा तिरस्कार करना पडता है। पूना मे स्वय महादजी के व्यक्तिगत क्लर्क ने उत्तर भारत मे नियुक्त उसके अधिकारियो के पास इस आशय के समाचार भेजे—"महादजी को जुकाम तथा ज्वर था। ५-७ दिनो तक ऐसा मालूम हुआ कि

---

[१] खरे, ३५१४

बीमारी भयकर नही हे ओर जल्दी ही दूर हो जायेगी क्योकि गत दो मासो से वह कभी कभी इसी प्रकार से शीत तथा ज्वरग्रस्त हो जाते थे। यह बीमारी ४-५ दिन तक रहती थी। उसके बाद उनकी दशा यथापूव ठीक हो जाती थी। १७९३-९४ मे विकट शीत पडा, परन्तु महाराज नित्य अपने शिकार पर जाते रहे। उनको रहने वाला मन्द ज्वर कुछ समय तक गम्भीर नही समझा गया तथा चिकित्सक उनको साधारण औषधियाँ देते रहे। मगलवार ११ फरवरी की प्रात उनकी दशा सहसा बहुत बिगड गयी। ५-७ विशेपज्ञ परामश के लिए बुलाये गये। उन्होने कुछ औषधियाँ दी, परन्तु उनसे कुछ लाभ नही हुआ। व्याधि सहसा अपनी चरम सीमा को पहुँच गयी और रोगी का बोल बन्द हो गया। आगामी बुधवार १२ फरवरी की प्रात नाना फडनिस उनसे मिलने आये, परन्तु कुछ वार्तालाप न हो सका। नाना ने तुरन्त वापस जाकर पेशवा को महादजी की दशा बतायी। दोनो शीघ्र ही पुन आये, परन्तु उन्होने महाराजा को मरणोन्मुख पाया। पेशवा ने अबा चिटनिस से कहा—"मै सोना भेज रहा हूँ। आप तुरन्त तुलादान करा दे।" अबा ने उत्तर दिया—"सोना यहा भी है।' सायकाल के समीप पेशवा अपने भवन को वापस गया। उसको शीघ्र ही महादजी की मृत्यु का समाचार मिला। पेशवा तथा उसके अधिकारी शीघ्र ही शिविर मे पहुँच गये। बहुत बडा जुलूस बनाकर उसका शव निकाला गया तथा उसी रात्रि के प्रथम प्रहर मे दाह-सस्कार हो गया। समस्त शिविर, नगर तथा देश मे अत्यन्त दुखदायी अन्धकार छा गया है। भगीरथी बाई तथा दौलतराव बाबा तुलजापुर गये हुए है। शेष क्रियाएँ उनके आगमन पर ही होगी।"

इस प्रकार १२ फरवरी, १७९४ को पूना के समीप वनवाडी के शिविर मे ६७ वष की आयु मे महादजी का देहान्त हो गया। उसको अपनी मृत्यु निकट होने की कोई आशका नही थी, अत उसने अपनी मृत्यु के बाद की कोई व्यवस्था नही बनायी थी। उसकी इच्छा पुत्र-रत्न प्राप्त करने की थी, परन्तु यह आशा पूरी न हुई। उसने अपनी मृत्यु के कुछ मास पूव अपने चचेरे भाई आनन्दराव के १४ वर्षीय पुत्र दौलतराव को गोद लेने का निश्चय किया। उसका जन्म १७८० मे हुआ था। इसी वष उसके समकालीन रणजीतसिह का जन्म हुआ।[२]

---

२ महादजी के भाई तुकोजी के (उन दोनो की माता रानाजी की द्वितीय पत्नी चिमाबाई थी) तीन पुत्र थे—कादरजी, रावलोजी तथा आनन्दराव। आनन्दराव का विवाह कोलाबा के येसाजी आग्रे की पुत्री तथा बाबूराव (जिसको ब्राउटन प्राय मामा साहब कहता था) की बहन मैना बाई से

दौलतराव को नियमानुसार गाद लेने की विधि अप्रैल म मम्पन्न हुई और १० मई, १७९४ को यह बालक अविकृत रूप से महादजी का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया गया। महादजी के ९ पत्निया थी जिनम से ५ का देहान्त उससे पहले ही हो गया था और तीन—अर्थात भागीरथीबाई, यमुनाबाई तथा लक्ष्मीबाई—बाद मे भी जीवित रही। इनमे से लक्ष्मीबाई ने बाद म दौलतराव के विरुद्ध युद्ध मे ख्याति प्राप्त की। इसमे सन्देह हे कि उसकी एक पत्नी सती हुई या नही। महादजी की पुत्री बालाबाई का विवाह लाडोजी शितोले देशमुख से हुआ, जिसने बहुत दिनो तक अभिभावक के रूप मे दिल्ली के शाहआलम की सेवा की।

२ **चरित्र तथा काय**—महादजी का जीवनकाल उत्साहपूण कायशीलता का लम्बा समय है। आधुनिक इतिहासकारो और उसके ममकालीन मराठा, फारसी तथा अग्रेज लेखको ने इसकी सूक्ष्म विवेचना की हे। इनके विशाल लेख इस समय हमे अध्ययन के लिए प्राप्य हे। इस विचित्र पुरुष की अनेक जीवनियाँ भी प्रकाशित हो चुकी है, परन्तु उनमे विस्तृत तथा प्रमाणिक कुछ ही हे।[3]

महादजी शिन्दे तथा नाना फडनिस दो प्रमुख व्यक्ति हे, जिन्होने मराठा इतिहास के पानीपत पश्चात काल मे प्राय परस्पर सहयोग भावना और कभी-

---

हुआ। दौलतराव आनन्दराव तथा मैनाबाई का पुत्र था। कहा जाता है कि महादजी की माता चिमाबाई राजपूत महिला थी। उनका विवाह स्वाभाविक विधि के अनुसार न होकर उस समय के क्षत्रियो के व्यवहारानुसार तलवार की सहायता से हुआ था। इस कारण उस समय की सामाजिक व्यवस्था के अनुसार महादजी का कुल नीच समझा जाता था। इस लाच्छन पर महादजी को सदैव बहुत दु ख रहा तथा उसने उच्चकुलीन परिवारो जैसे फालटन के निम्बालकर, तथा वाडी के सावन्त लोगो से सम्बन्ध स्थापित करने का यथाशक्ति प्रयास किया। कुछ सीमा तक यह लाच्छन दौलतराव पर भी लगाया गया होगा। हमारे पास ऐसे पत्र है, जिनमे उल्लेख है कि महादजी तथा दौलतराव ने अपने कुल को उन्नत करने के प्रयत्न किये। कहा जाता है कि इस प्रकार का लाच्छन परिवार की तीसरी पीढी मे सवथा समाप्त हो जाता है।

3 महादजी के जीवन का सम्पूण तथा विवेचनात्मक निरीक्षण प्रकाण्ड विद्वान् वी० आर० नाटू द्वारा मराठी मे प्रकाशित किया गया है। अध शताब्दी पूव इसकी रचना हुई थी (१८९४) परन्तु विशुद्ध अनुमान के रूप मे यह ग्रन्थ अब भी प्रमाणिक है। "भारतीय शासक माला" (रूलस ऑव इण्डिया सीरीज) मे उस विषय पर कीन का ग्रन्थ केवल वणनात्मक प्रयास है। इसकी रचना ४० वष पूव हुई थी। यह मूल ग्रन्थो के अनुसन्धान से सवथा अपरिचित है।

कभी विरोध भावना मे भी शासन किया है। उनके चरित्र तथा काय के यथार्थ अनुमान के विषय मे कटुतापूण विवाद होता रहा हे। पूव प्रस्तुत वणन के सहारे पाठक इस विपय पर अपना निणय करने मे समथ हो सकेगे।

महादजी का व्यक्तिगत जीवन शुद्ध तथा दोषरहित था। उसकी पत्नियो की लम्बी सूची इसका प्रमाण मानी जा सकती हे कि उसने अपना प्रेम शास्त्र-विहित सीमाओ के भीतर ही रखा। तुलजापुर मे पुरोहित की सुन्दरी कन्या पर उसकी दृष्टि पडी तथा अविलम्ब विवाह करके उसको अपनी पत्नी बना लिया। धन, सत्ता तथा कीर्ति के विषय मे सासारिक समृद्धि की पराकोटि को प्राप्त हाकर भी उसने सवथा निर्दोष तथा विवेकपूवक विशुद्ध जीवन व्यतीत किया। वह भक्तस्वभाव का पुरुष था। वह प्राथना के लिए नित्य कुछ न कुछ समय अवश्य निकाल लेता था। इस प्राथना मे वह बाह्य जगत को भूल जाता था। उसने अनेक भक्तिपूण गीत लिखे है, जिनमे से कुछ प्राप्त हुए है और हाल मे प्रकाशित हो गये है। वह अपने धम का सच्चा अनुयायी था, परन्तु मुसलमानो तथा ईसाइयो से उसे कोई द्वेष नही था। बीड का बाबा मन्सूरशाह मुसलमान होते हुए भी उसका गुरु था। महादजी उसका बहुत सम्मान करता था तथा दु ख-सुख मे उससे परामश लेता था। उस स्थान पर बाबा मन्सूर की समाधि को इस समय तक ग्वालियर राज्य से वृत्ति मिलती रही है। दत्तनाथ नामक हिन्दू सन्त महादजी द्वारा अपने शिविर मे निवास के लिए प्राय निमन्त्रित किया जाता था। वह कवियो, गायको, ज्योतिषियो तथा प्रकाण्ड विद्वानो का आदर-सत्कार करता था, इससे सम्बन्धित उल्लेख प्राप्त है। एक स्थान पर वणन मिलता हे कि वह मथुरा के समीप विचित्र शक्ति प्राप्त एक साधु से मिलने गया और उसके साथ बहुत समय तक एक कमरे मे अकेला रहा। श्रावण मास मे वह नित्य पवित्र भागवत पुराण की कथा सुनता था। ऐसा मालूम होता है कि वह सस्कृत भी अच्छी तरह जानता था।

रानोजी शिन्दे के समस्त पुत्र दृढ इच्छाशक्ति-सम्पन्न, क्रियाशील तथा उत्साही थे। केवल महादजी को छोडकर शेष सबका देहान्त राष्ट्र की सेवा करते हुए युवावस्था मे ही हो गया। महादजी के व्यक्तित्व का विकास विचित्र रूप से हुआ।

शिवाजी तथा बाजीराव के नामो की चमक महादजी द्वारा की गयी मराठा साम्राज्य की सेवाओ को धूमिल नही बना सकती। महादजी के सम-कालीन मुख्य व्यक्तियो का ध्यान करते ही आप स्वीकार कर लेगे कि वह उनसे प्रत्येक क्षेत्र मे आगे था। नाना फडनिस अपने व्यक्तिगत जीवन मे

पवित्रता के लिए प्रसिद्ध नही था । हरिपन्त फडके सज्जन प्रकृति का आज्ञाकारी सहनशील पुरुष था, परन्तु उसके विशेष व्यक्तित्व का विकास ठीक से नही हुआ था । होलकर परिवार के नैतिक पतन को केवल अहिल्याबाई का साधु चरित्र कुछ अश तक साध लेता है । शिन्दे की कूटनीतिक सेवा सदैव पुरस्कृत हुई । यह सेवा दरिद्रता और अभाव की उन करुण कथाओ से सवथा भिन्न है जो विदेशी दरबारो मे स्थित नाना फडनिस के दूत अपने पत्रो मे प्रकट करते रहे । बनारस के चेतसिह, राघोगढ के खीची सरदार, मछेरी तथा अलवर के प्रतापसिह, वजीर गाजीउद्दीन और शहजादा इस्माईल बेग तथा उसके अनुरूप अन्य प्रतिद्वन्द्वी, गोसाई बन्धु तथा स्वय सम्राट ने महादजी से उदार तथा कोमल व्यवहार प्राप्त किया । निश्चय ही महादजी ने बहुत-सा धन कमाया, परन्तु तुकोजी होलकर से सवथा विपरीत राजा की भाति उसका व्यय भी किया । तुकोजी होलकर ने अपने ही स्वामिभक्त सचिव नारो गणेश पर इस विचार से भयानक अत्याचार किया कि वह विवश होकर अपना गुप्त धन बता दे । घासीराम, बाजी मोरेश्वर या बलवन्तराव नागनाथ के काण्डो मे प्रकट हुए अत्याचार तथा भ्रष्टाचार और इसी प्रकार प्रभु जाति को दिये अकारण कष्ट महादजी के प्रशासन मे कभी भी नही सुनायी पडे । वह बुद्धिमत्तापूवक मुसलमानो तथा अग्रेजो से टक्कर लेने से बचता रहा । उसने मथुरा तथा वृन्दावन को मुस्लिम नियन्त्रण से मुक्त करा लिया तथा समस्त भारत मे गोवध निषेध के लिए आज्ञा प्राप्त कर ली । १७८९ मे बालाजी विश्वनाथ तथा शाहू ने सिद्धान्त रूप से जो योजना बनायी थी, उसे महादजी ने लगभग अद्ध शताब्दी के सतत परिश्रम द्वारा व्यावहारिक रूप से पूण किया । मुस्लिम शासको मे शिवाजी तथा उसके काय के सम्बन्ध मे जो विरोध भावना थी, वह औरगजेब की मृत्यु के बाद की शताब्दी मे पूणत नष्ट हो गयी और उसका स्थान पारस्परिक विश्वास तथा प्रेम ने ले लिया था । महादजी द्वारा सम्राट के कार्यो का प्रबन्ध यही प्रकट करता है ।[४]

---

४ नीचे, लगभग अज्ञात परन्तु सुस्पष्ट उदाहरण दिया जाता है । लखनऊ मे आसफउद्दौला के शासन-काल मे चमडे से बनी वस्तुओ के मुसलमान दूकान-दारो ने एक ब्राह्मण साहूकार को मार डाला । इस पर नगर के ब्राह्मणो को बहुत क्रोध आया तथा दोनो जातियो के बीच दगे और खून होने लगे । क्रोधोन्मत्त मुसलमानो ने मन्त्री हैदरबेगखा तथा उसके हिन्दू मुनीम टिकेतसिह के घरो पर आक्रमण कर दिया । आसफउद्दौला ने तुरत आक्रमणकारी मुसलमानो को दण्ड दिया तथा जुर्माने के रूप मे उन पर भारी कर लगा दिया । आई० एस० दिल्ली ये० दो० ६३

महादजी के चरित्र का एक उल्लेखनीय रूप उसका जाति तथा धम के पक्षपात से मुक्त होना था। मुसलमान और हिन्दू समान रूप से उसका आदर करते थे। उसकी सेवा मे ब्राह्मण, प्रभु, मराठे, महारे, साहूकार, व्यापारी सभी प्रकार के लोग थे। इन पर उसको पूरा विश्वास था और इन्हे योग्यतानुसार उन्नति करने के समान अवसर प्राप्त थे। सैनिको तथा कूटनीतिज्ञो के रूप मे महादजी की सेवा मे सारस्वत ब्राह्मणो ने विशेष गौरव प्राप्त किया। जीवबा दादा बख्शी, लकबा लाड, बालाजी अनन्त पिगे, जगन्नाथ राम उफ जगोबा बापू, कोटा का लालाजी बल्लाल—कुछ ऐसे सारस्वत ब्राह्मणो के नाम है जो उस समय के इतिहास मे स्थान प्राप्त कर चुके है।

महादजी शिन्दे तथा नाना फडनिस के जीवनकाल मे उत्तर तथा दक्षिण की लम्बी दूरी के बीच मराठा राज्य के कार्यों का सचालन पत्र-व्यवहार द्वारा होता था, इसलिए पत्रलेखन कला तथा राजकीय पत्रो के आकार निर्धारण मे विशेष पूणता प्राप्त की गयी। इस सम्बन्ध मे नारोशकर, सदाशिव दिनकर, बालाजी जनादन तथा इसी प्रकार के अन्य व्यक्तियो के नामो का उल्लेख उस समय के इतिहास मे विशेष रूप से है। नाना तथा महादजी दोनो सख्त काम लेने वाले स्वामी थे। सदाशिव दिनकर मे दोनो सरदारो के बीच होने वाले लम्बे तथा कटु विवाद को अत्यन्त सक्षिप्त रूप मे लिखने तथा उसी आधार पर रिपोट भेजने की अद्भुत क्षमता थी। वास्तव मे सदाशिव के पत्र १८वी शताब्दी के मराठी गद्य के आदश उदाहरण मालूम होते है। उनसे प्रकट होता है कि सचिवो तथा अधीनस्थ अधिकारियो के लिए महादजी सदृश स्वभाव के व्यक्ति के साथ व्यवहार करना कितना कठिन काय था। वह बहुत अश तक भावुक तथा प्राय प्रतिशोध लेने वाले स्वभाव का था और अपने विरोधियो को अनेक प्रकार से हतबुद्धि कर सकता था। मनुष्यो तथा समस्याओ से निपटने का उसका अपना ढग था। शिन्दे से किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, यह वारेन हेस्टिग्ज भी नही जानता था। उसका यह नियम-सा था कि वह अपने सेवको को कभी नही निकालता था। जब तक उसके ज्ञान मे वे ईमानदार रहते थे, तब तक वह उन पर पूरा विश्वास करता था।

पेशवा परिवार के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने मे महादजी कभी नही चूकता था। वह प्राय कहा करता था कि उसने जीवन का प्रत्येक सुख प्राप्त कर लिया है और उसके पास किसी सासारिक वैभव का अभाव नही है। नाना फडनिस के साथ कठोर मतभेद होते हुए भी उसने कोई ऐसा कार्य नही किया, जिससे मराठा राज्य के हितो को किसी प्रकार की हानि पहुँचे। उसने

अनेक गम्भीर समस्याओ तथा परिस्थितियो का सामना किया और बाह्य जगत के असाधारण पुरुषो—उदाहरणार्थ हैदरअली, टीपू सुल्तान, शाहआलम, वारेन हेस्टिंग्ज, रघुनाथराव, मोरोबा तथा नाना फडनिस—से सफलतापूर्वक व्यवहार किया। नाना महादजी से १५ वर्ष छोटा था, परन्तु वह विशेष आदर सहित नाना का सम्मान करता था। पूना मे महादजी के अन्तिम आगमन के अवसर पर नाना प्राय उसके शिविर मे मिलने आता था। महादजी सदैव उसके बराबर बैठने से इनकार कर देता और आदरपूर्वक उससे दूर बैठता था, मानो अपने से बडे व्यक्ति के सामने बैठा हो। नागपुर के भोसले परिवार के समान उसने केन्द्रीय शासन से पृथकत्व की भावना को कभी प्रोत्साहन नही दिया, क्योकि बढती हुई ब्रिटिश सत्ता की ओर से होने वाले सकट के सम्मुख इस प्रकार की वृत्ति सबके लिए समान रूप से घातक थी। महादजी को उन्नतिशील अल्पवयस्क पेशवा से बहुत आशाएँ थी। महादजी ने उसे मराठा राज्य का योग्य अधिपति बनाने के लिए यथाशक्ति बहुत प्रयास किया।

महादजी शिन्दे तथा उसके चरित्र पर सर यदुनाथ सरकार की टिप्पणी इस प्रकार है[५] "अपने समय के उत्तर भारतीय इतिहास पर महादजी शिन्दे का वीरतापूर्ण व्यक्तित्व एक विशालकाय दानव की भाँति छाया हुआ है। उसके पास साधनो की कमी थी और उसके सहायक तथा मित्र उसे प्राय धोखा देते रहे। उसे अनेक चिन्ताजनक सकटो का सामना करना पडा। जेम्स ऐण्डसन तथा विलियम पामर सदृश सहानुभूतिपूर्ण रेजीडेण्टो ने भी उसके निश्चित पतन की भविष्यवाणी की थी। तथापि अन्त मे उसने सब पर विजय प्राप्त कर ली। हम जानते है कि बलवती धार्मिक भावना उसके जीवन का सम्बल थी। आधुनिक राष्ट्रवादी इसे अन्धविश्वास कहे, यह बात अलग रही। हम देखते है कि इस कार्यव्यस्त शक्तिशाली पुरुष ने अपने सासारिक वैभव की पराकाष्ठा प्राप्त करने पर भी प्रगाढ पारिवारिक प्रेम, स्वाभाविक आध्यात्मिक सौम्यता तथा पूजनीय व्यक्तियो के प्रति सम्मान मे कमी नही आने दी।

"दिल्ली के शाही शासन पर मराठा नियन्त्रण स्थापित करने तथा पानीपत के कलक को मिटाने के लिए निस्सहाय महादजी ने पूना दरबार के गुप्त विरोध तथा छेडछाड के होते हुए भी परिश्रम किया। महादजी ने वकीले-मुतलक, बख्शी उलमुमालिक, अमीरुलउमरा, आलीजाह, राजपुत्र उपाधियो सहित दिल्ली के साम्राज्य के एकमात्र राजप्रतिनिधि का जो प्रधान वैभव प्राप्त किया, वह

---

५ ग्वालियर के ऐतिहासिक पत्रो की भूमिका देखो।

उसके लिए केवल काटो का ताज था। पतनशील दिल्ली राज्य के मुस्लिम सामन्त तथा भूतपूव सरदार और उनके उत्तर भारतीय हिन्दू सहायक, अधीन राजपूत राजा महाराजा और कुछ ब्रिटिश रेजीडेण्ट भी उसकी प्रत्येक विपत्ति तथा पराजय पर हष मनाते हुए उसके अवश्यम्भावी सवनाश की प्रतीक्षा करते थे। पूना की सरकार ने उसकी विषम आवश्यकता के समय धन तथा सेना की सहायता देने से इनकार करके उसका सावजनिक अपमान किया। उसने पेशवा के लिए सम्राट से (दिसम्बर, १७८४ मे) जो खिलअते और बहुमूल्य उपहार प्राप्त किये थे, वे अस्वीकृत कर दिये गये तथा वर्षों तक उज्जैन मे पडे सडते रहे। वे उपहार उस समय स्वामी द्वारा जीवित मराठा सरदारो मे सबसे महान तथा सफल व्यक्ति (महादजी) के प्रति प्रदर्शित सावजनिक अपमान के सूचक बन गये। पूना मन्त्रिमण्डल के पत्रो मे कहा गया कि वह धूत तथा निष्ठाहीन सेवक है। वह दिल्ली की अतुल सम्पदा से अपने पूजनीय ब्राह्मण श्रीमन्त को वंचित रखकर अपने उत्कष पर तुला हुआ स्वार्थी है।

"महादजी ने इन सबको असीम धैय से सहन किया तथा अपने विदेशी शत्रुओ और नाममात्र के सहायको द्वारा अपने चारो ओर शनै -शनै ताने हुए षड्यन्त्रो के जाल को काटने के काय मे व्यस्त रहा। अन्त मे उसकी विजय हुई। यह विजय वर्षों की असफलता, भाग्य चक्र के परिवतन तथा घोर व्यक्तिगत क्लेश सहन के भारी मूल्य पर प्राप्त की गयी थी। वह मित्रहीन तथा दलहीन भारतीय शासक के रूप मे मराठा इतिहास का अद्वितीय शोभाशाली उत्तुग शिखर है। उसने अपने प्रति निष्ठावान सरदारो का दल बनाया और अन्त मे उसने निस्सन्देह विजयी होकर अपने शत्रुओ तथा निष्कपट मित्रो को आश्चयान्वित कर दिया। परन्तु यह विजय मूल्यवान समय की भयानक क्षति तथा साधनो की अनिवाय हानि के बाद प्राप्त हुई थी। यदि नाना फडनिस आरम्भ मे महादजी की सहायता करता तो शिन्दे जनवरी, १७८९ मे प्राप्त हुई मराठा जाति की अजेय स्थिति चार वष पूव ही प्राप्त कर लेता। यदि यह आरम्भिक लाभ अपने स्वाभाविक परिणाम के रूप मे महादजी का जीवन-काल बढा देता तो मराठा इतिहास का समस्त माग भिन्न ही होता, क्योकि इस प्रकार वह सघष तथा पराभव से भरे चार वर्षों के अनावश्यक कष्टो से बच जाता।"[६]

पूना रेजाडेन्सी पत्र व्यवहार के प्रथम खण्ड मे प्रकाशित इगलिश पत्रो से

६ पूना रेजीडेन्सी करस्पौण्डेन्स, भाग ६ का परिचय।

"इम ऐतिहासिक काल के गूढ अथ प्रकट हाने ह । इनम हम महादजी के मास प्रतिमास के कष्टो को देखते ह, जिनमे उमको मघष करना पडा । उमके विभिन्न उपायो तथा दृढ निश्चय देखते है, जिनको घटनास्थल पर उपस्थित अग्रेज पयवेक्षको ने गलती से मूखतापूण दुराग्रह समझा । अन्त मे इन्ही पत्रो मे हमे उसकी सफलता भी प्रतिध्वनित होती है । इन्ही पत्रो मे उमकी नम्रता, सयम, इग्लिश मैत्री के प्रनि दृढता, दूसरो के चरित्र को परखने और अपने लिए उत्तम सहायक प्राप्त करने की तथा निराशा एव विह्वलता के समय स्पष्ट नीति पथानुसरण की क्षमता का भी ज्ञान हो जाता है । इस दशक मे महादजी के पास क्रमश आने वाले ब्रिटिश रेजीडेण्टो के कायकलाप से ब्रिटिश नीति पूणत झलकने लगती है ।"[६]

लालसोट के समय बहुत दिनो तक महादजी के शिविर मे रहने वाला आदरणीय हिन्दू साहूकार अबाजी नायक वनवले बाद को १७६० मे अहल्या-बाई से मिला । उस महिला द्वारा किये गये प्रश्नो के उत्तर मे अबाजी ने उत्तर भारत मे शान्ति तथा व्यवस्था स्थापित करने एव विरोधी राजपूत सघ को भग करने के लिए महादजी द्वारा कृत शुभ काय की उत्तम शब्दो मे प्रशसा की । साथ ही साहूकार ने तुकोजी होलकर तथा अलीबहादुर की अत्यन्त निन्दा भी की ।[७]

कीन लिखता है—"महादजी सहज ही क्रुद्ध हो जाता था, पर सरलता से शान्त नही होता था । वह दूसरो का अपकार यदा कदा ही क्षमा करता था, परन्तु उपकार को कभी नही भूलता था । वह आवश्यक होने पर कठोर दण्ड देता था । उसका दण्ड किसी को असन्तोषजनक नही होता था । उसे किसी को अनावश्यक कष्ट देने का अभ्यास नही था । प्रस्तुत सेवा के लिए पुरस्कार देते समय उसकी असीमित कृतज्ञता कुछ भी नही भूलती थी । इसी कारण लोगो ने श्रद्धा तथा प्रेम मे उसकी सेवा की । यह देखे बिना दि बायने के सस्मरणो को पढना असम्भव है कि शिन्दे की सफलता बहुत अश तक उसके नैतिक चरित्र द्वारा प्राप्त प्रशसा के कारण थी, महादजी की सफलता मे उसके आचरण की स्थिरता, सत्य प्रतिज्ञता तथा उद्देश्य की निश्चलता के प्रति उसके अधीन कमचारियो की निष्ठा भी कारण थी । वह वास्तव मे मनमौजी न होते हुए भी प्रसन्नचित्त रहता था । असाधारण काले रग का होते हुए भी उसकी मुखाकृति से प्रेम तथा बुद्धिमानी झलकती थी । एक नववयस्क इटैलियन

---

७ महेश्वर दरबार के पत्र, जिल्द २, पृ० २०५ । कीन कृत 'महादजी शिन्दे', पृष्ठ १६२

चित्रकार (वेल्स) ने सौभाग्यवश उसकी यथाथ मुखाकृति ग्रहण कर ली थी। उसने पूना मे मृत्यु के कुछ ही पूव उसका चित्र बनाया था। वह सरल स्वभाव तथा मिताहारी था। अपनी श्रेणी के साधारण व्यक्तियो की अपेक्षा वह अधिक शिक्षित था। वह पढना-लिखना जानने के अतिरिक्त अच्छा मुनीम भी था। उसको फारसी तथा उर्दू का कामचलाऊ ज्ञान था। वह व्यापार मे कुशल था तथा युद्ध या नागरिक प्रशासन के सूक्ष्म विवरणो की चिन्ता किये बिना अच्छे कायकर्ता चुन सकता था। उन पर वह पूण विश्वास करता था और वे उस विश्वास के लिए योग्य सेवा करते थे। जिन अधिकारियो को उसने उज्जैन तथा ग्वालियर मे नियुक्त किया, वे उसकी लडाइयो तथा कार्यों के प्रबन्ध मे कम सफल नही हुए। वह अपूर्व कष्ट के समय सफल होने वाला क्षमताशाली भारतीय शासक था। प्राचीन मराठा युद्ध-शैली के परित्याग, अपने मुख्य परामशदाता रानाखा तथा अपने धमपथ-प्रदशक मसूरशाह सदृश मुसलमानो का पक्ष लेने के कारण उसकी ओर उत्साहपूवक ध्यान नही दिया गया। यह बात दूसरी है कि उसके साथ स्पष्ट घृणा न की गयी हो।"

महादजी के जीवन के चार स्पष्ट विभाग है। प्रथम का विस्तार पानीपत पूव समय तक है। इस समय वह सवथा अज्ञात व्यक्ति था और अपने तेजस्वी बन्धुओ की छाया द्वारा आवृत्त था। दूसरे विभाग का विस्तार पानीपत के आरम्भ से दिल्ली मे सम्राट की पुन स्थापना तक है। यह उसका प्रयास काल है। इसी मे उसने वह प्रधान योग्यता प्राप्त की, जिसके द्वारा वह ब्रिटिश सत्ता से युद्ध करने और नाना फडनिस तथा पूना के मन्त्रियो से सहयोग पाने मे समथ हो सका। तृतीय काल मे उसने अपने आप युद्ध तथा कूटनीति का अमूल्य अनुभव प्राप्त किया। इस अनुभव की वास्तविक परीक्षा सालबई की सन्धि से आरम्भ होने वाले उसके जीवन के चतुथ काल मे हुई। इसका अन्त उत्तर भारत मे प्राप्त महान सफलताओ मे होता है। यदि किसी व्यक्ति को हिन्दू-पद-पादशाही के मराठा स्वप्न को पूण रूप से कार्यान्वित करने का श्रेय दिया जा सकता है तो वह अवश्य ही महादजी शिन्दे है। महादजी की मृत्यु पर मेलेसन की निम्न टिप्पणी है—"महादजी शिन्दे की मृत्यु से मराठो का योग्यतम योद्धा तथा सर्वोपरि भविष्यदृष्टा राजनीतिज्ञ जाता रहा। अपने जीवन मे उसके दो मुख्य उद्देश्य थे—पहला भारत मे एक राज्य की स्थापना और दूसरा अग्रेजो के विरुद्ध सघर्ष की तैयारी। कहा जा सकता है कि वह दोनो मे सफल हुआ। महादजी द्वारा स्थापित राज्य बहुत दिन बाद तक जीवित रहा। महादजी के कुशल मार्गदशन के अभाव मे उसकी मृत्यु के

८ वष पीछे लेक तथा वेलेजली ने उसकी सेना का सवनाश कर दिया। यदि वह जीवित रहता तो टीपू के अश्वारोही तथा फ्रेंच दल को, निजाम के शक्ति-सम्पन्न तोपखाने को, राजपूतो के समस्त बल को तथा इन्दौर, बडौदा और नागपुर से सगठित होने वाले प्रत्येक मराठा सैनिक प्रभाव को एक ध्वज के नीचे एकत्र कर सकता था। अन्तिम सफलता चाहे प्राप्त न होती, पर सयुक्त भारत तथा अग्रेजो के बीच सघर्ष की महान समस्या के निमित्त भयानक युद्ध हो सकता था। उसकी मृत्यु से इसका निपटारा हो गया। महादजी की मृत्यु के बाद इस अशुभ परिणाम के लिए केवल समय का प्रश्न रह गया।[८]

दक्षिण मे महादजी की पैतृक सम्पत्ति अहमदनगर जिले के जामगाव मे थी। यहाँ उसने भवन तथा गढ बनवाये। यहा पर निवास करने को वह प्राय इच्छुक रहता था। उसने अपने राजभवन का नाम अपने मुसलमान गुरु के नाम पर साहेब गढ रखा। स्वय उसके द्वारा प्रशिक्षित कुछ विशेष भारतीय अधिकारियो के अतिरिक्त उसकी नवीन आदश सेना मे लगभग दो सौ यूरोप निवासी सेवा करते थे। कानपुर मे ब्रिटिश शिविर से पाश्चात्य विज्ञान तथा सैनिक सज्जा के उपयोगी विवरण उसने सावधानीपूवक प्राप्त किये और अपनी सेना को उन्नत करने के लिए इनका उपयोग किया।

एक मराठी पत्र मे महादजी की सम्पत्ति के वास्तविक मूल्य की तालिका इस प्रकार है

	नकद रुपये, आभूषण आदि
गोहद के राना से	३२ लाख
मिर्जा शफीखाँ से	३३ लाख
अफ्रासियाबखाँ से	४० लाख
जहाँगीरखाँ आदि से	४ लाख
नारायणदास से	३ लाख
मुहम्मद बेग हमदानी से	६ लाख
रणजीतसिह जाट द्वारा सिख प्रशासन से	१२ लाख
जयनगर के राजा से—दो बार	८५ लाख
पटियाला प्रशासन से	६ लाख
दतिया तथा भदावर से	८ लाख
शाही भूमि से	३ लाख
मछेरी के प्रतापसिह से	४ लाख
गुलाम कादिर से	६० लाख
	कुल जोड २९६ लाख रुपये

दो करोड तथा छियानवे लाख रुपये।

८ मैलेसन कृत 'भारत के देशी राज्य', पृ० १४५

इनके अतिरिक्त ८१५ तोपे छीने जाने का उल्लेख है। ऊपर लिखी नकद सम्पत्ति के अतिरिक्त महादजी द्वारा २ करोड ८५ लाख वार्षिक आय का प्रदेश जीते जाने का वणन है।

सम्राट की रियासते, जिनमे नजफखाँ तथा गुलाम कादिर की रियामते भी सम्मिलित हे — २ करोड २५ लाख

गोहद के गना का प्रदेश — ४२ लाख

भदावर, कछवाघर-भडेर — १८ लाख

कुल २ करोड ८५ लाख[६]

कुछ लेखको—विशेषकर अग्रेज लेखको—ने कहा है कि महादजी की इच्छा पेशवा के शासन से स्वतन्त्र हो जाने की थी। यह सवथा गलत धारणा है और इसके खण्डन की आवश्यकता नही हे। मराठा राज्य के टुकडे करने के लिए ब्रिटिश नीति ने अथक प्रयास किया। महादजी सयुक्त मोर्चे का मूल्य अच्छी तरह समझता था। उसका उद्देश्य मराठा राज्य का सगठन इस प्रकार करने का था कि भारत मे ब्रिटिश सत्ता की वद्धि रोकी जा सके। अत पूना के मन्त्रिमण्डल की ओर मैत्रीपूण आश्रयदाता की वृत्ति प्रकट करना उसके लिए स्वाभाविक था। इस प्रकार वे शिन्दे का नियन्त्रण करना चाहते थे, क्योकि उन्हे उससे ईर्ष्या थी।

३ **भारत मे यूरोपीय साहसिक**—महादजी का पानीपत के बाद का जीवन भारतीय इतिहास मे कई क्रान्तिकारी परिवतनो के कारण महत्त्वशाली है। इन परिवतनो मे अनेक प्रसिद्ध भारतीयो तथा यूरोपीय का हाथ है। किसी राष्ट्र के भाग्य का अन्तिम निर्णायक तत्त्व उसकी सैनिक शक्ति होती है। बाबर द्वारा दिल्ली मे प्रभुता स्थापित करने के समय भारतीय जगत तोपखाने के आगमन से चकित हो उठा था। बाद मे मलिक अम्बर तथा उसके सहायक शाहजी की विलक्षण बुद्धि के कारण यह शक्ति भी प्रभावहीन हो गयी, क्योकि उन्होने महाराष्ट्र सदृश दुगम पवतीय प्रदेश के लिए उपयुक्त एक अन्य युद्ध शैली का आविष्कार कर लिया था। इस शैली को गुरिल्ला युद्ध कहते है। अपनी दुर्गपक्तियो के साथ-साथ शिवाजी ने इसका विकास किया। लगभग एक शताब्दी तक (१६५०-१७५०) भारत मे इसका प्राधान्य रहा। १८वी शताब्दी के मध्य मे डुप्ले तथा बुसी ने तोपखाने की सहायता के लिए यूरोपीय

---

६ पारसनिस की 'बैजाबाई की जीवनी', पृ० १३

शैली द्वारा प्रशिक्षित पैदल सेना का समावेश किया ।[10] इस परिवतन का पूरी तरह अपनाने मे कुछ समय लग गया। यद्यपि सदाशिवराव भाऊ अपनी तोपो की सहायता से पानीपत मे विजय प्राप्त करने म असफल रहा, नथापि यह स्पष्ट हो गया कि भारत की भावी राजनीति पर शासन करन वाले एक नवीन युग का आरम्भ हो गया हे। इस प्रकार पानीपत के पश्चात लगभग समस्त भारतीय शक्तियो मे अस्त्र-शस्त्रो के लिए तीव्र स्पधा आरम्भ हो गयी। प्रत्येक ने अपने सामथ्य तथा अवसर के अनुसार एक या अधिक यूरोपीय कप्तानो को नियुक्त किया। इस समय इस स्वण-भूमि भारत मे शीघ्र अभ्युदय प्राप्त होने के लिए ये लोग पर्याप्त सख्या मे आते थे। पुतगाली, फ्रच, इटैलियन, ब्रिटिश, जमन तथा यूरोप के अन्य राष्ट्रो के लोग १८वी शताब्दी के उत्तराद्ध मे भारत की ओर दौड पड़े। उन्होने भारत की भावी राजनीति क निर्माण मे सहायता की। विद्यार्थियो को प्राय कुछ प्रसिद्ध नामो म परिचय है—जैसे दि बायने, पेर्गो, रेमाण्ड तथा डुड्रेनेक—परन्तु रेने मैडक, वाल्टर रेनहाट तथा उसकी पत्नी बेगम समरू, जाज टामस, स्किन्नर, विकम्प, बूरक्वी, हेस्टिग्ज सदृश अनेक अन्य व्यक्ति तथा बाद मे रणजीनसिह द्वारा अपनी सेवा मे नियुक्त फ्रेच जन भी इसी श्रेणी मे आते है। महादजी शिन्दे तथा दि बायने के बीच लगभग ८ वर्षो तक सौभाग्यपूण शक्ति सहयोग रहा। दि बायने बीमार हो गया तथा दिसम्बर, १५९५ मे उसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। सितम्बर १७९६ मे वह भारत से चल दिया।

इन विदेशी कप्तानो की क्षमता को समझकर उनमे परस्पर भेद करना भारतीय शासको के लिए कठिन काय था। भारत आने वाला प्रत्येक यूरापीय अपने को प्रशिक्षित सेनापति बताता था। वह साधारण समाज के निम्न वग से निर्वाह के साधनो से रहित सौ से हजार तक भारतीय एकत्र कर लेता था। इनको सैनिक वस्त्र पहनाकर कुछ ही मासो मे सैनिक सेवा के लिए प्रशिक्षित कर लिया जाता था। इन यूरोपीय साहसिको की निष्ठा अविचल नही थी, वे लोग केवल धन के दास होते थे। अपने हितानुसार वे स्वामी का भी परिवतन कर लेते थे। कभी वे हैदरअली की सेवा करते, कभी निजामअली की। कभी वे अर्काट के नवाब के सेवक बन जाते और कभी जाट राजा अथवा सम्राट के। इस प्रकार वे विदेशी प्रभुत्व के अग्रगामी प्रतीत होते है,

[10] विद्यार्थियो को परामश है कि वे भूतपूव प्रो एच जी लिमये कृत 'गनिमी काका आणि कवाइती कपू' नामक पुस्तक मे गुरिल्ला युद्ध की सफलता तथा असफलता का उत्तम विश्लेषण देखे।

क्योकि भारतीय शासक अपनी कुशल तथा रक्षा के लिए अधिकाधिक उन पर निभर होते गये। जिन सेनाओ को उन्होने प्रशिक्षित किया, वे केवल लाभ-परायण थी। उनको राष्ट्रीय नही कहा जा सकता। उत्साहशील, वीर निर्भय, प्रकृति तथा सतक अग्र दृष्टि—ये इन साहसिको की सम्पत्ति तथा उनके विशेष गुण थे। इन नवीन प्रतिस्पर्धियो के सामने भारतीय शासको की स्वदेशी सेनाएँ शीघ्र ही नि शक्त तथा असन्तुष्ट हो गयी, क्योकि उनको कम वेतन मिलता था और यह कम वेतन वर्षो तक शेष रहता था।

इन विदेशी कप्तानो मे से कुछ के साथ मराठा इतिहास का घनिष्ठ सम्बन्ध है। उदाहरणाथ, वाल्टर रीनहाट जमन सैनिक फ्रेंच उपनिवेश चन्द्रनगर की सेवा मे था। १७५७ मे क्लाइव द्वारा उस स्थान पर अधिकार होते ही रीनहाट निकाल दिया गया और उसने मीरकासिम के अधीन नौकरी कर ली। अपनी अत्यधिक गम्भीर मुखाकृति के कारण उसे 'सोम्ब्रे' (गम्भीर) की उपाधि मिल गयी। यही शब्द बिगडकर हिन्दी मे समरू हो गया है। उसकी वेषभूषा मुसलमानो जैसी थी तथा वह धाराप्रवाह उदू बोलता था। मीरकासिम की सेवा मे रहते समय उसके साथ ब्रिटिश सत्ता की कठोर शत्रुता हो गयी, क्योकि ५ अक्तूबर, १७६३ को पटना मे ५१ अग्रेजो के सहार मे उसका हाथ था। मीरकासिम के पतन के बाद समरू ने जवाहरसिह जाट की सेवा मे प्रवेश किया। उसकी मृत्यु के बाद समरू ने शाहआलम के मन्त्री मिर्जा नजफखाँ के अधीन नौकरी कर ली। समरू के पास ५ तोपो सहित २ हजार प्रशिक्षित पैदल सैनिक थे। इनके व्यय के लिए सम्राट ने मेरठ के समीप सरधना का जिला दे रखा था, जिसकी वार्षिक आय ८ लाख रुपये थी। समरू का देहान्त ४ मई, १७७८ को हो गया। बाद मे उसकी बेगम ने सेवा मे नियुक्त यूरोपीय अधिकारियो सहित उसके दल का भार सँभाल लिया। उसने ३० वर्षों तक पूर्ण चातुय से इस दल का प्रबन्ध किया और पूर्ण निष्ठा तथा निपुणता से सम्राट की सेवा की। सम्राट उसकी भक्ति, वीरता तथा सचाई पर इस प्रकार प्रसन्न था कि उसको जेबुन्निसा बेगम की उपाधि दे दी। शाही कार्यों के प्रबन्ध मे उसने महादजी शिन्दे को सहायता दी। अपने पति की मृत्यु के तीन वष बाद उसने ईसाई धम स्वीकार कर लिया और लेवस्सोल्त नामक एक फ्रेंच व्यक्ति से विवाह कर लिया। यह विवाह सफल सिद्ध नही हुआ तथा लेवस्सोल्त ने आत्महत्या कर ली। बेगम ने सरधना नगर का विस्तार करके नवीन भवनो तथा उद्यानो से विभूषित किया। १८०३ मे अग्रेजो द्वारा दिल्ली पर अधिकार होने के पश्चात बेगम ने उनकी अधीनता स्वीकृत कर

ली तथा सरधना की जागीर उसके लिए आजीवन प्रमाणित कर दी गयी। इसके बाद वह शान्ति, भक्ति तथा उदारतापूण जीवन व्यतीत करने लगी। २७ जनवरी, १८३६ को उसका देहान्त हो गया। उसने बहुत-सा धन एकत्र कर लिया था। इसका कुछ भाग उसने अपने सौतेले पुत्र को दिया और १६ लाख रुपये रोम के पोप के पास उदार कार्यो के लिए भेज दिये।

४ **महादजी के मुख्य अनुचर**—पानीपत के घातक रणक्षेत्र मे महादजी की प्राणरक्षा करने वाला रानाखाँ उसका अचल सहचर तथा परामशदाता था। सच्चरित्र होने के कारण खान बहुत दिनो तक समस्त मराठा राज्य मे शक्तिसम्पन्न तथा सावजनिक निणयकर्ता बना रहा था। वह योग्य सेनापति भी था। उसने महादजी के अनेक कठिन अभियानो मे भाग लिया। उसका शान्त प्रभाव महादजी के दुराग्रह तथा प्रतिशोध भावना मे सुधार करता रहा था। नाना फडनिस सहित अनेक छोटे बडे आदमी महादजी के साथ व्यवहार मे उससे मध्यस्थता की प्राथना करते थे। रानाखा को पालकी का सम्मान दिया गया था। २२ दिसम्बर, १७९२ को उसकी मृत्यु हो गयी। उसका पुत्र हुसतखाँ उच्च सैनिक अधिकारी के रूप मे फूला फला तथा उसके परिवार के पास इस समय तक शिन्दे राज्य मे जागीरे रही। रानाखा का जमाई साहेबखाँ टोका भी उच्च सैनिक अधिकारी था।

महादजी का विश्वस्त सचिव अबाजी रघुनाथ कुलकर्णी सतारा के समीप निगडी देशवासी ब्राह्मण था। उसके बन्धुओ, कृष्णोबा तथा गोपालराव का भी महादजी के अधिकारियो मे विशेष स्थान था। गोपालराव वीर सैनिक था। वह सवाय-निवासी दि बायने के दल का निरीक्षण करता तथा उसके सहयोगी अधिकारियो से योग्य सेवा लेता था। महादजी का वैदेशिक सचिव सदाशिव मल्हार अग्रेजो के साथ उसके सम्बन्धो का प्रबन्ध करता था। उसको भाऊ बख्शी भी कहते है और वह बावले उपनाम का देशस्थ ब्राह्मण था। उसके दो भाई बापूजी मल्हार तथा राघव मल्हार सेना के अधिकारियो मे थे। खाडेराव हरि उफ अप्पा खाडेराव, अम्बूजी इगले, रायजी पाटिल, रामजी पाटिल जाधव तथा देवजी जाउली महादजी के अधीन काय करने वाले अन्य प्रसिद्ध पुरुष है। बालाराव गोविन्द तथा लालाजी बल्लाल पण्डित गुलगुले दोनो सारस्वत ब्राह्मण थे। वे बहुत दिनो तक महादजी के विश्वासपात्र रहे और उन्होने प्रशसनीय सेवा की। बालाराव गोविन्द पूना के दरबार मे शिन्दे का दूत था तथा गुलगुले उसका कर-सग्राहक था। कोटा मे प्राप्त उसके पत्रो का ऐतिहासिक मूल्य बहुत अधिक है।

अध्याय १०

तिथिक्रम

१८ अप्रैल, १७७४	सवाई माधवराव का जन्म ।
१७७५	रुक्नुद्दौला की हत्या। मुशीरुलमुल्क निजामअली का मन्त्री नियुक्त ।
माच, १७८६-फरवरी १७९७	मैलेट पूना मे ।
१३ सितम्बर, १७८६	कृष्णराव काले की मृत्यु । उसका पुत्र गोविन्दराव उसका स्थानापन्न ।
१९ मई, १७८८	मुधोजी भोसले की मृत्यु ।
२० अक्तूबर, १७८९	रामशास्त्री की मृत्यु ।
१२ फरवरी, १७९०	प्रभुलोगो पर प्रतिबन्ध लागू ।
१७९१	चित्रकार वेलन पूना मे ।
२७ माच, १७९३	रघुजी आग्रे की मृत्यु ।
२३ अप्रल, १७९३	बीदर मे निजामअली का शिविर ।
२३ अक्तूबर, १७९३	कानवालिस द्वारा अवकाश ग्रहण—शोर गवर्नर जनरल नियुक्त ।
१२ फरवरी, १७९४	महादजी शिन्दे की मृत्यु ।
अप्रैल, १७९४	हैदराबाद मे सिकन्दरशाह का विवाह ।
जुलाई, १७९४	मीरआलम का पूना पहुँचना ।
२० नवम्बर, १७९४	मीरआलम का पूना से वापस होना ।
जनवरी, १७९५	मराठा सेनाओ का पूना से प्रस्थान।
२ माच, १७९५	मराठा-निजाम विवाद पर शोर की सूक्ष्म टिप्पणी ।
६ माच, १७९५	परशुराम भाऊ निजाम के विरुद्ध सेना का मुख्य सेनापति नियुक्त ।
११ माच, १७९५	खरडा का रण ।
१३ माच, १७९५	निजामअली द्वारा शान्ति की याचना ।
१ मई, १७९५	मुशीरुलमुल्क का पूना पहुँचना ।
१७ सितम्बर, १७९५	पेशवा के ज्वर का प्रथम लक्षण ।

२२ अक्तूबर, १७९५	पेशवा का दशहरा सम्बन्धी जलूस।
२५ अक्तूबर, १७९५	पेशवा का गौख से गिरना।
२७ अक्तूबर, १७९५	पेशवा की मृत्यु।
१३ नवम्बर, १७९५	चित्रकार वेल्स की मृत्यु।
५ जून, १७९६	मुशीरुल्मुल्क कारागार से मुक्त।

अध्याय १०

टिमटिमाती ज्योति

(१७९५)

१ अल्पवयस्क पेशवा का पालन-पोषण। २ पूना समाज पर ब्रिटिश प्रभाव।
३ मराठा-निजाम वैमनस्य का आरम्भ। ४ मुशीरुल्मुल्क नही झुका।
५ खरडा का रण। ६ निजामअली द्वारा नाना तथा काले ठगे गये।
७ स्वर्णिम आशा समाप्त।

१ **अल्पवयस्क पेशवा का पालन-पोषण**—अब हम पूना के कार्यों की ओर ध्यान देते है, जहाँ महान पेशवा माधवराव प्रथम तथा उसके बन्धु नारायणराव के देहान्त के बाद मराठा राज्य के अल्पवयस्क स्वामी का पालन-पोषण हो रहा था। इन दु खद घटनाओ को २० वष व्यतीत हो गये थे। इन दिनो मे राष्ट्र अनेक उत्थान-पतन देख चुका था। इस समय देश का भाग्य माधवराव नारायण के व्यक्तित्व पर निभर था। इसको जनसाधारण सवाई माधवराव कहते थे। उसका जन्म १८ अप्रैल, १७७४ को हुआ था। इस ससार मे किसी अन्य शिशु का जन्म नारायणराव की मृत्यु के पश्चात उत्पन्न इस पुत्र की अपेक्षा अधिक शुभ लग्न मे नही हुआ होगा, क्योकि मराठा राष्ट्र की आशाएँ उसी पर केन्द्रित थी। यथाथरूप मे प्रसिद्ध अपने चाचा के अवतार रूप मे जनता ने उसका स्वागत किया। उसी के नाम पर उसका नाम रखा गया। अपने आरम्भिक वर्षों मे वह लाडला शिशु था। कोई ऐसा सुख नही था जो उसके लिए प्रस्तुत न किया गया हो। यह बात दूसरी है कि वह स्वल्प मात्रा मे ही रहा हो। शिशु को पुष्ट करने के उद्देश्य से आवश्यक दूध के लिए बहुत-से अन्वेषण के बाद बकरियो की एक विशेष जाति एकत्र की गयी। उस समय प्रशिक्षण के आधुनिक वैज्ञानिक उपाय ज्ञात नही थे। हमारे वतमान विचारो के अनुसार उसकी शिक्षा मे अन्धविश्वास तथा अज्ञान के कारण भयकर भूले की गयी। जब शिशु की आयु तीन वष की थी, तभी उसकी माता का देहान्त हो गया। इसके पश्चात वह ऐसे सेवको तथा अधिकारियो की देखरेख मे जा पडा, जिनका वश उसके सगे-सम्बन्धियो से किसी भी प्रकार निम्न न था। पेशवा को एकमात्र प्रधान शासक नाना फडनिस के अधिकार मे रखा गया।

उसकी जानकारी या अनुमति के बिना कुछ भी नही हो सकता था। अभि-भावक नाना के चरित्र के दो प्रमुख लक्षणा—सन्देह तथा कायरता—ने उसके कार्यो पर प्रभाव डाला। ८ माच, १७८६ को ठीक अपने आगमन के समय मैलेट लिखता है—'पेशवा माधवराव सवाई लगभग ११ वष का बालक है। वह दुबला पलता है तथा उसकी आयु को देखत हुए उसका डील छोटा है। उसकी मुखाकृति न ता सुन्दर है, न उसमे कोई विशेषता लक्षित होती है, परन्तु उसमे अपने चरित्र के अनुरूप बुद्धिमत्ता तथा क्रियाशीलता है।[1]

अल्पवयस्क बालक साधारण खेलो तथा क्रीडाओ मे स्वतन्त्रतापूवक भाग लेता था। उसकी देखरेख के लिए अध्यापक तथा परिपालक नियुक्त किये गये थे। पढने, लिखने, बोलने तथा हिसाब के अतिरिक्त वह मुडिया लिपि अच्छी तरह लिख सकता था। उसने एक निश्चित सीमा तक सवारी तथा कसरत का भी अभ्यास किया था। चाटुकारो तथा सेवको से हर समय घिरे रहने के कारण उसे अपने अन्य पूवजा के समान विस्तृत बाह्य जगत से परिचित तथा निजी प्रयासो से जीवन का अनुभव प्राप्त करने का अधिक अवसर नही मिल सका। उसने पूना से लगभग १०० मील के बाहर कभी यात्रा नही की थी। इसकी दूरतम सीमाएँ नासिक, बाई तथा सतारा थी। वह अपनी मृत्यु के कुछ ही मास पूव खरडा के रणस्थल पर उपस्थित हुआ था। दक्षिण या उत्तर के तत्कालीन बहुसख्यक सैनिक अभियानो मे से एक मे भी वह नही ले जाया गया। ब्रिटिश रेजीडेण्ट ने नाना से अनेक बार आग्रह किया कि वह अल्प वयस्क पेशवा को १७९१ मे टीपू के विरुद्ध प्रयाण करने वाली सेनाओ के साथ जाने दे। परन्तु इस प्रस्ताव से वह सहमत नही हुआ। पेशवा बम्बई जैसे स्थान को कभी नही भेजा गया, जहा पाश्चात्य जीवन तथा शैली का प्रभाव देख सकता। स्वाधीनता तथा साहस के स्पष्ट लाभो की अपेक्षा नाना फडनीस को सदैव उसके जीवन के सकट का निराधार सन्देह बना रहता था। नाना सदा इसी भावना से प्रेरित होकर काम करता था। महादजी शिन्दे, हरिपन्त फडके तथा परशुराम भाऊ—सबका अग्रेजो तथा उनके जीवन से सीधा सम्पक था। परन्तु पूना रेजीडेन्सी मे मिलने वाले अफसरो के अतिरिक्त बढते हुए बुद्धिमान पेशवा को कोई अवसर प्राप्त नही था।

इलाहाबाद मे इगलिश शिविर के सम्पक मे रहने के कारण झासी के रघुनाथ हरि नवलकर मे आधुनिक यूरोपीय विद्या के प्रति बालसुलभ कौतूहल

---

[1] पूना रेजीडेन्सी कॉरेसपौण्डेन्स, जिल्द २, पृष्ठ ३

जाग्रत हो उठा। उसने अपनी राजधानी मे इगलिश पुस्तको के एक पुस्तकालय तथा वैज्ञानिक प्रयोगो के लिए एक प्रयोगशाला का निर्माण किया। हमारे पेशवा से केवल तीन वर्ष छोटे तजौर के राजा शरफोजी ने स्वार्ट ज नामक जर्मन धर्मप्रचारक की देखरेख मे अध्ययन किया। वह इगलिश मे उत्तम पत्र लिख सकता था। जब नाना फडनिस के लिए पूना का जीवन अपेक्षाकृत स्वतन्त्र तथा सरल हो गया तब, और विशेषकर लालसोट प्रकरण के बाद, पेशवा उत्तर भारत मे महादजी शिन्दे के कार्यक्षेत्रो को सुविधापूर्वक देख सकता था। उस समय यह सहज कल्पना की बात थी कि ब्रिटिशजन शीघ्र ही भारत का प्रभुत्व प्राप्त कर लेगे। इस प्रकार के दैवयोग को ध्यान मे रखकर नाना पाश्चात्य शैलियो तथा उनकी शक्ति के रहस्य का अध्ययन करने की ओर विशेष ध्यान दे सकता था। जब १७९२ मे ताजा हवा के झोके की भाति पूना मे महादजी का आगमन हुआ, उस समय पेशवा की आयु १८ वर्ष की थी। उसने महादजी की सगति मे एक नवीन दृष्टि तथा मनोवृत्ति प्राप्त की। वे परस्पर मिलते तथा अनेक विषयो पर वार्तालाप करते रहते थे। उनका भोजन और शिकार भी प्राय साथ-साथ ही होता था। इससे ओजस्वी नव-युवक मे शिन्दे के प्रति उच्च सम्मान उत्पन्न हो गया और वह नाना के गम्भीर तथा गोपनशील व्यवहार के विपरीत शिन्दे के स्पष्ट एव निष्कपट व्यवहार की प्रशसा करने लगा। २५ वर्षो मे पूना का दरबार नाना के साँचे मे ढल गया था। महादजी के आगमन से यह प्रवाहहीन वातावरण शीघ्र ही परि-वर्तित हो गया। मालूम होता है, जब महादजी ने राजधानी मे भोग-विलास तथा आमोद-प्रमोद के सकीर्ण मण्डल मे पजरस्थ पक्षी की भाति पडे बालक को नवीन शासक बनाने का प्रयास किया तो पेशवा को अपनी स्थिति तथा उत्तरदायित्व का ज्ञान हो गया।

पेशवा को अपने समकालीन पुरुषो—निजामअली जो उससे मिलने को अत्यन्त इच्छुक था, टीपू सुलतान अथवा कोई अन्य राजपूत राजा या सम्राट—से मिलने की आज्ञा नही दी गयी। पूर्व पेशवाओ ने भारत के प्रसिद्ध योग्य व्यक्तियो से मिलने का विशेष ध्यान रखा था, क्योकि उनको इन्ही से निपटना था। वास्तव मे इस पेशवा को अपना हृदय तथा दृष्टिकोण विशाल बनाने का अवसर ही नही मिला। पेशवा से मिलने तथा बातचीत करने वाले व्यक्तियो की सूची की स्वीकृति तथा निश्चय नाना द्वारा किया जाता था। इनके अति-रिक्त वह किसी से नही मिल सकता था। वह कभी कभी नासिक जाता तथा अपनी दादी से भेट करता था। १७८८ मे जब वह उससे मिलने गया था

तो उसने पेशवा मे यह त्रुटि तुरन्त भॉप ली तथा नाना फडनिस और हरिपन्त फडके दोनो का ध्यान विशेष रूप से इस ओर आकृष्ट किया। उसने कहा—"नीच पुरुष, कर्णिक तथा नौकर चाकर उसको सदैव घेरे रहते है। वह बाहर के लोगो से स्वतन्त्रतापूर्वक नही मिल सकता और न अपने आप कोई अनुभव ही प्राप्त कर सकता है। तब आप उसके विवेकशील होने की किस प्रकार आशा करते है।"

पेशवा को अधिकाश समय तक जो एकमात्र विषय व्यस्त रखता था, उसे हम धम या अन्धविश्वास कुछ भी कह सकते है। गणपति उत्सव तथा अन्य त्योहारो, श्रावण के दानो, दैनिक प्राथनाओ तथा कमकाण्ड मे भाग लेना उसका आवश्यक कतव्य था। इस प्रकार वह भिक्षोपजीवी पुरोहित वग के सम्पक मे जीवन व्यतीत करता था, जिनकी एकमात्र चिन्ता अत्युत्तम भोजन प्राप्त करना थी। शरद ऋतु मे पूना नगर ब्राह्मणो की भ्रमणशील मण्डलियो से भर जाता था। ये लोग दूर दूर स्थानो से आते थे और भिक्षा मॉगते एव दान लेते हुए घूमा करते थे। विभिन्न यूरोपीय दशको द्वारा किये गये वणनो से मुख्य दान-शाला (रमना) मे भीड की कल्पना की जा सकती है।

अपने समकक्ष पुरुषो के साथ विस्तृत तथा उपयुक्त ससग के अभाव मे पेशवा ने पालतू जानवरो के प्रति विकसित गाढ प्रेम ही अपने मन का आधार बनाया। उसके पास एक स्थायी पशुशाला थी। पावती पहाडी के नीचे उसकी हरिणशाला भी थी। यहॉ एक खुले मैदान मे बहुसख्यक हिरन सुरक्षित रखे जाते थे। पेशवा को यहॉ शिकार खेलना पसन्द था।[२]

१७९० मे पूना के ब्राह्मणो ने प्रभु जाति के विरुद्ध अपना प्राचीन आन्दोलन पुन आरम्भ कर दिया तथा लिखित शिकायत उपस्थित की कि वे गत पेशवा द्वारा लगाये हुए प्रतिबन्धो का उल्लघन करते है। १२ फरवरी, १७९० को प्राचीन आज्ञा पुन प्रकाशित की गयी। प्रभु लोगो का इसके विरुद्ध आचरण निषिद्ध ठहराया गया। रामशास्त्री का देहान्त हो चुका था। उसके उत्तरा-धिकारी अय्या शास्त्री ने सम्भवत नाना फडनिस के शासन के अधीन यह नवीन आज्ञा दी थी। इससे पूना मे एक बार पुन व्यापक क्षोभ फैल गया। अल्पवयस्क पेशवा से प्राथना की गयी। अपने मृत पिता की आज्ञा का समथन करने के अतिरिक्त वह अज्ञानी बालक कर ही क्या सकता था ? उसके बाद घासीराम द्वारा पुलिस अत्याचारो का काण्ड घटित हुआ। इस समय महादजी

---

२ पारसनीस कृत 'पूना बीते दिनो मे', पृष्ठ १२८-३१

घटना स्थल पर आ गया था और पेशवा के निणयो पर अपना प्रभाव डालने लगा था। महादजी शिन्दे की मृत्यु के बाद शीघ्र ही घटनाचक्र विपरीत दिशा की ओर घूम गया। एकान्त तथा अन्धविश्वास के वातावरण से दूषित पेशवा उच्छृखल बालक की भाँति व्यवहार करने लगा। उसकी प्रिय चेष्टाओ तथा दुष्कृत्यो के जो वर्णन पाये जाते है, उनसे स्पष्ट है कि अब उस पर अनुशासन या नियन्त्रण का कोई प्रभाव नही था।

२ **पूना समाज पर ब्रिटिश प्रभाव**—ब्रिटिश सत्ता के दो महान शासको—क्लाइव तथा वारेन हेस्टिग्ज—ने भारत के भाग्य पर व्यापक प्रभाव डाला। निपुण राजनीतिज्ञ कानवालिस ने उनकी परिवतनशील तथा असगत नीति का शनै शनै परन्तु निश्चित ढग से समन्वय किया। उसके समय मे अनेक भारतीय दरबारो मे नियमित रेजीडेन्ट सेवा की स्थापना हुई। इसके द्वारा सुनिश्चित अधिकार का माग खुल गया, जिसको वेलेजली बन्धुओ ने नियोजित तथा निष्पन्न किया। जहाँ तक पूना तथा पश्चिमी भारत का सम्बन्ध है, मैलेट के १२ वर्षो के रेजीडेन्ट काल मे केवल मराठा राजनीति की दिशा पर ही नही, राष्ट्र के सामाजिक जीवन पर भी अनेक रूपो मे महत्त्वशाली प्रभाव पडा। क्रीडाओ, मनोरजनो, व्यायामो, अश्वारोहणो, सम्मेलनो, भोजो तथा आतिश-बाजियो के जो मनोहर वणन मैलेट ने अपने पत्र-व्यवहार मे दिये है, उनसे पेशवा दरबार मे केन्द्रित मराठा जीवन पर महत्त्वपूण ब्रिटिश प्रभाव प्रकट होता है।[3]

शल्य चिकित्सक क्रूसो तथा फिडले, भूमापक रेनाल्ड्स, चित्रकार वेल्स तथा डैनियल, सहायक रेजीडेन्ट यूथाफ, हेन तथा वाड उस समय पूना मे रहने तथा वहा के जीवन पर प्रभाव डालने वाले अनेक यूरोपीयो मे से कुछ है। मैलेट स्वय मानव चरित्र का महान ज्ञाता था। उसके पास मेधावी तथा कार्य कुशल पुरुषो की चुनी हुई मण्डली थी। उसका अपना सचिव तथा फारसी का दुभाषिया नूरुद्दीन हुसैनखॉ, प्रकाण्ड विद्वान तथा सच्चरित्र व्यक्ति था। यह एक समय कनिष्ठ गाजीउद्दीन का मित्र तथा परामशदाता भी रह चुका था।

---

[3] भोजो, दरबारो, शिविर जीवन, सामाजिक रीतियो तथा तत्सदृश विषयो के मैलेट कृत वर्णन बहुत रोचक हैं। उनका अध्ययन पूना रेजीडेन्सी कॉरस्पौण्डेन्स जिल्द २ मे किया जा सकता है। शिष्टाचार, मिथ्या विश्वास, षड्यन्त्रो तथा प्रतिद्वन्द्विताओ सहित वे तत्कालीन मराठा जीवन तथा समाज के पूण आदश है। उनमे मराठो की निबलताओ के विशद वणन है, जिनके कारण राज्य का पतन हो गया। पारसनीस कृत 'पूना इन बाईगौन डेज' (पूना बीते दिनो मे) पृ० ५३ भी देखो।

उसके ऐतिहासिक ग्रन्थो का भारतीय साहित्य मे उच्च स्थान है। उसके चार योग्य पुत्र थे—कमालुद्दीन, फखरुद्दीन, नसीरुद्दीन तथा कमरुद्दीन। उन सबने विभिन्न दरबारो मे सेवा द्वारा तत्कालीन इतिहास मे नाम पैदा किया। मैलेट ने कैम्बे मे फारसी के हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह किया था। बाद मे उसने यह सग्रह लन्दन की रायल एशियाटिक सोसाइटी को भेट कर दिया।

पूना मे चेचक के टीके का प्रथम प्रवेश मैलेट के समय ही हुआ था। रेजीडेन्सी के डाक्टरो द्वारा प्रस्तुत शल्य तथा औषधि सहायता का भारतीयो ने स्वतन्त्रतापूवक स्वागत किया, क्योकि उस समय प्रचलित अपरिष्कृत भारतीय चिकित्सा से वे उत्तम पायी गयी। चित्रकार वेल्स १७६१ मे भारत आया। उसने पूना के अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियो के रेखाचित्र बनाये थे। डैनियल ने उनमे रग भरे। इस समय वे अपनी प्रतिलिपियो द्वारा बहुत प्रचलित हो गये है—उदाहरणाथ, सवाई माधवराव के दरबार का दृश्य, तथा नाना और महादजी सदृश कई प्रसिद्ध व्यक्तियो के पूरे आकार के चित्र ले सकते है। ये चित्र फोटोग्राफी के अभाव मे इस समय प्राप्य एकमात्र प्रामाणिक चित्र है। मैलेट की प्रेरणा से दो इगलिश चित्रकारो के निरीक्षण मे पेशवा ने राजभवन मे आलेखन तथा चित्रकारी का एक विद्यालय स्थापित किया। यहाँ अनेक भारतीयो ने उस विषय मे प्रशिक्षण प्राप्त किया, इनमे से गगाराम टम्बट का नाम अब तक चला आ रहा है। कान्हेरी की गुफाओ मे रेखाचित्र बनाते समय वेल्स को ज्वर आ गया और १३ नवम्बर, १७९५ को ४८ वष की आयु मे उसका देहान्त हो गया। उसकी कन्या सुजा जो उसी के साथ आयी थी, मैलेट के साथ इगलैण्ड वापस गयी और वहा उसी के साथ विवाह कर लिया। उनके ८ पुत्र हुए। वे सब आग्ल-भारतीय सेवा मे प्रसिद्ध हुए। सर चार्ल्स मैलेट का देहान्त २४ जनवरी, १८१५ को हुआ। मैलेट तथा उसके साथियो ने पेशवा को यूरोप मे निर्मित नाना प्रकार के पदाथ जैसे भूगोल (ग्लोब), दीवार की घडियाँ, जेबी घडिया, दूरदशक यन्त्र, शीशे, चाकू, कैंची आदि उपहार मे दिये। फिण्डले पेशवा को ज्योतिष तथा भूगोल की शिक्षा देता था। बदले मे उसे सुन्दर पुरस्कार प्राप्त होते थे। मैलेट स्वतन्त्रतापूर्वक पेशवा के भवन मे अनेक उत्सवो जैसे दशहरा तथा गणपति की शोभा यात्रा, होली के उत्सव तथा अन्य त्यौहारो पर उपस्थित होता था। उसने इन त्यौहारो के विशद वर्णन किये है। ऐसे अवसरो पर निमन्त्रण पाकर वह पूना के अन्य सरदारो के घर भी उपस्थित होता था। मैलेट के १२ लम्बे वर्षों के राग तथा सम्पक ने पूना के समाज मे मौन क्रान्ति कर दी। उसके कारण उपस्थित राजनीनिक परिवतन उसके पत्र-

व्यवहार के प्रत्येक पृष्ठ मे देखा जा सकता ह । इसम मराठा कूटनीतिज्ञ, सेनानी तथा सामन्तगण अपेक्षाकृत बोने-से प्रतीत होते ह । मैलट के पत्र-व्यवहार म दशकों को पर्याप्त रूप से स्पष्ट पतनोन्मुख पूना शासन की गतिविधि प्रत्यक्ष हो जाती हे । पूना के मन्त्रियो की ओर से उन्नति तथा उत्कष का विरोध किये जाने पर महादजी शिन्दे ने जिस अनुताप का अनुभव किया, उसका मूल कारण यही था । मराठा पतन शन -शन व्यक्त हो रहा था ।

३ **मराठा-निजाम वमनस्य का आरम्भ**—खरडा की विजय मराठा सेनाओ को प्राप्त होने वाली अन्तिम विजय थी तथा वह पानीपत की विपत्ति के समान इस समय तक मराठो की स्मृति मे नवीन थी । खरडा की कीर्ति पानीपत की समता करने के लिए होनहार पेशवा की मृत्यु के रूप मे आकस्मिक विपत्ति द्वारा नष्ट हो गयी । उस विजय के सात मास के भीतर ही यह विपत्ति टूट पडी और इसने अपेक्षित समस्त भव्य परिणामो को समाप्त कर दिया ।[४] उन घटनाओ की लम्बी शृखला का सूक्ष्म अनुसरण तथा यथाथ अध्ययन किया जा सकता है, जिनका अन्तिम परिणाम वह प्रसिद्ध रण हुआ । विरोधी सेनाओ के प्रयाण के कारण आरम्भ होने वाले अभियान मे दो मास से अधिक समय नही लगा । वास्तव मे कोई रण हुआ ही नही, कोई सैनिक कौशलपूण चाल नही चली गयी, जिसमे सैनिक निपुणता या व्यक्तिगत वीरता प्रकट की गयी हो । खरडा पूना के ठेठ पूव मे केवल १२५ मील पर स्थित है । इस विषय के महत्त्व की खोज भिन्न दिशा मे होनी चाहिए । दक्षिण मे मराठा प्रभुत्व की परीक्षा करने वाली यह प्रामाणिक घटना थी । इस प्रभुत्व के सम्बन्ध मे अंग्रेजो से सघष होने की आशा थी । अत भारतीय शक्तियाँ उत्सुकतापूवक परिणाम की प्रतीक्षा कर रही थी । उन्हे यह जानने की उत्कट इच्छा थी कि निजाम के समथन मे अंग्रेज हथियार उठायेंगे या नही, वे अन्तिम रूप से मराठो की महत्त्वाकाक्षाओ का अन्त कर सकेंगे या नही । मैलेट, कानवालिस तथा शोर ने मराठा-निजाम सघर्ष मे भाग लेने की अपेक्षा प्रतीक्षात्मक खेल खेलने का निश्चय किया । जो कुछ १८०३ मे हुआ, उसकी सम्भावना आठ वर्ष पूव ही की जा रही थी । इस अल्पकालीन सघर्ष मे समस्त भारत की रुचि का यही कारण है । तात्कालिक परिणाम से निजाम तथा वे लोग अत्यन्त हताश हो गये जिनको मराठो के पतन से लाभ उठाने

---

४ विजय तथा मृत्यु का यह सयोग ग्रामीण गीतो का प्रिय विषय बन गया था । खरडा के विषय का वणन करते हुए कम से कम इस प्रकार के दस गीत छप चुके है ।

की इच्छा थी। ब्रिटिश लोगो की सचाई तथा भारतीय कलहो मे हस्तक्षेप न करने की नीति के प्रति नाना फडनिस की विशेष रूप से श्रद्धा हो गयी।

जब दो शक्तिया एक ही भू-भाग पर अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न करती है तो उनके बीच सतत शत्रुता आवश्यक हो जाती है। मराठो ने अपने देश महाराष्ट्र के स्वामी होने तथा उसको शताब्दियो से चले आ रहे मुस्लिम प्रभुत्व से मुक्त करने के विचार से प्रयास आरम्भ किया था। अनेक लोग मूर्खतापूवक प्रश्न करते है कि अपने इस निकट पडोसी को पूणत समाप्त कर देने से पहले मराठे अटक, बदवान तथा तिरुचिरापल्लि सदृश्य दूरस्थ स्थानो को क्यो गये ? इसका उत्तर मुख्य निर्माताओ के साथ बदलने वाली मराठा राजनीति की विचित्र प्रगति मे मिलेगा। प्रथम अग्रेज-मराठा युद्ध समाप्त होने पर पूना तथा हैदराबाद के बीच तनाव उपस्थित हो गया। इस तनाव का मुख्य कारण चौथ का भुगतान था जो बाजीराव प्रथम ने निजाम के राज्य पर लगायी थी। यह चौथ सालबई की सन्धि तक एकत्र होकर विपुल राशि मे परिवर्तित हो गयी थी। मराठा शासन ने अन्य कष्टो से मुक्त होते ही निजाम से आग्रहपूवक इस धन की माँग की।

निजामअली दृढ साहसी अथवा न्यायप्रेमी शासक कभी नही रहा। स्वाथ के प्रति तीव्र चिन्ता तथा परिस्थिति की आवश्यकताएँ ही उसकी एकमात्र पथप्रदशक थी। नाना फडनिस बराबर अपनी माँगे रखता रहा और निजामअली उनको टालता रहा। १७९२ की ग्रीष्म ऋतु मे पूना मे महादजी शिन्दे के आगमन तक दोनो दरबारो मे इस प्रकार का विवाद रहा। इस आगमन से मराठा शक्ति तथा प्रतिष्ठा की वृद्धि हो गयी, जिससे अधिकाश भारतीय शासक भयभीत हो गये। शिन्दे का समथन पाकर अब नाना फडनिस ने निजामअली से समस्त शेष चौथ का अविलम्ब भुगतान करने की माँग की। उस समय निजामअली के कार्यों का प्रबन्ध उसका निपुण मत्री गुलाम सैयदखाँ करता था। यह पुरुष इतिहास मे मिलने वाली समय-समय पर अनेक उपाधियो से विख्यात है। उदाहरणार्थ मुईनुद्दौला, अजीमुलुमरा, अरस्तूजाह तथा मुशीरुल्मुल्क। मराठा सरकार समस्त उत्पन्न कष्टो के लिए इसी व्यक्ति को उत्तरदायी समझती थी। मुशीरुल्मुल्क ईरान से आया था तथा लगभग ४० वष पूव उसने सलाबतजग के आधीन नौकरी कर ली थी। सलाबतजग के दमन मे उसने निजामअली की सहायता की। इस कारण वह निजाम का कृपापात्र बन गया। उसको अनेक उपाधिया प्राप्त हुई, जिनका वणन हो चुका है। १७७५ मे निजामअली के प्रधान मन्त्री मीर मुगल रुक्नुद्दौला की हत्या

कर दी गयी। यह मुशीरुल्मुल्क का छोटा भाई था। अब निजामअली ने मुशीरुल्मुल्क को अपना मत्री बना लिया। इस पद पर वह अपनी मृत्युपर्यन्त लगभग ४० वष तक रहा। पूना तथा हैदराबाद मे चलने वाले वैमनस्य का सम्बन्ध दोनो राज्यो के प्रधान मत्रियो—नाना फडनिस तथा मुशीरुल्मुल्क—से था। खरडा के रण के पहले बहुत समय तक य दोनो व्यक्ति दक्षिण की राजनीति के प्रतिनिधि बने रहे। मुशीरुल्मुल्क की नीति का मुख्य आधार ब्रिटिश मैत्री के द्वारा मराठा प्रभुत्व को कुचल दना था।

निजामअली की सेवा मे मीरआलम नामक एक अन्य व्यक्ति भी था। उसने भी तत्कालीन राजनीति मे महत्त्वपूण भाग लिया। वह निजामअली के दूत के रूप मे कई वष तक वारेन हेस्टिंग्ज के पास कलकत्ता रह चुका था। इन्ही दिनो उसने मराठा हितो के विरुद्ध ब्रिटिश हितो की साधना का यत्न किया था। मन्त्री मुशीरुल्मुल्क की अपेक्षा मीरआलम की प्रकृति नम्र थी। उसकी क्षमता भी उससे कम थी, परन्तु उसकी साहित्यिक योग्यताएँ मुशीरुल्मुल्क से अधिक थी। चौथ के भुगतान पर दोनो दरबारो के बीच बढते हुए विवाद का शान्तिपूवक उपायो से समाधान करने के लिए मीरआलम को १७९५ मे पूना भेजा गया। मीरआलम अपने काय मे असफल रहा तथा विवाद का निपटारा तलवार के बल से हुआ।

यह घटना पेशवा माधवराव द्वितीय की बाल्यावस्था मे घटित हुई थी। पूना मे नाना फडनिस उसकी ओर से पूण अधिकार से काय करता था। पूना सरकार की ओर से योग्य मराठा कूटनीतिज्ञ कृष्णाराव काले महान पेशवा माधवराव प्रथम के समय से हैदराबाद मे निवास कर रहा था। उसने बीस वष से अधिक समय तक दोनो शक्तियो के बीच मैत्री सम्बन्ध बनाये रखने का यत्न किया था। १३ सितम्बर, १७८६ को कृष्णाराव का देहान्त हो गया। उसका पुत्र गोविन्दराव बापू उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसका विशाल पत्र-समूह अब प्रकाशित हो गया है और अध्ययन के लिए प्राप्य है।

निजामअली हृदय से शान्तिप्रिय था। उसकी इच्छा युद्ध का सकट मोल लेने की नही थी। उसने अन्तिम क्षण तक मराठा सरकार से मैत्री बनाये रखने का प्रयास किया। महादजी ने कुछ समय तक अग्रेजो के विरुद्ध भारतीय शक्तियो का विरोधी सघ बनाने के लिए निजामअली की मैत्री प्राप्त करने का यत्न किया था। परन्तु चौथ का शेष धन प्राप्त करने के विषय मे उसने नाना फडनिस को दृढ पाया। उस समय यह धन तीन करोड की महान राशि तक पहुँच चुका था। शिन्दे तथा नाना के वैमनस्य को शान्त होने मे एक वर्ष लग

गया । इसके बाद नाना तथा महादजी के नाम से हैदराबाद दरबार मे धन का भुगतान करने की सयुक्त माग की गयी । साथ ही यह सकेत भी कर दिया गया कि इसका विकल्प युद्ध ही होगा । इसके अतिरिक्त महादजी ने बीड पर अधिकार की माग भी रखी जहा उसके गुरु का स्थान था । अपनी स्थिति शक्तिशाली बनाने के विचार से महादजी ने आगरा से अपने प्रशिक्षित दलो को दक्षिण बुला लिया । निजामअली ने चुनौती स्वीकार करने का निश्चय किया तथा युद्ध करने के विचार से वह २३ अप्रैल, १७९३ को बीदर पहुँच गया । इस समय उसने प्रस्ताव किया कि वह पूना मे अल्पवयस्क पेशवा के विवाहोत्सव मे सम्मिलित होकर उससे मिलना चाहता हे । सम्भवत उसकी उत्कट इच्छा व्यक्तिगत भेट द्वारा इस विवाद को शान्त करने की थी । किन्तु पूना के मत्रियो ने इस प्रयास का अथ लगाया कि वह पूना पर आक्रमण करना चाहता है । एक समाचार इस प्रकार है—"बीदर मे युद्ध की अविलम्ब तैयारियाँ होती रही । निजामअली के गुप्तचरो का पता लग गया तथा वे पूना मे मराठा सरदारो को प्रलोभन देते हुए पकड लिये गये । घूस मे दिये गये धन की मात्रा का भी पता लग गया ।" निजामअली बरार से सग्रह करने वाले कर का कुछ अश नागपुर के भोसले परिवार को देता था । अब उसने वह भुगतान करने से भी इनकार कर दिया और घोषणा की कि वह नागपुर के समस्त मराठा अधिकारो का पूण निषेध करता है ।

इस समय ब्रिटिश गवनर जनरल लाड कानवालिस अवकाश ग्रहण करने वाला था । उसने ब्रिटिश सत्ता को मराठो के विरुद्ध युद्ध मे फँसाना उचित नही समझा । तथापि निजामअली तथा उसके मत्री ने भावी सघर्ष मे अपने समथन के लिए ब्रिटिश सहायता प्राप्त करने के लिए आग्रहपूण प्राथनाएँ की । हैदराबाद मे ब्रिटिश रेजीडेण्ट कैनैवे ने गवनर जनरल से निजामअली को सक्रिय ब्रिटिश सहायता देने अथवा कम से कम मध्यस्थ का काय करने के लिए अत्यन्त प्रलोभनात्मक रूप से प्राथना की । पूना स्थित रेजीडेण्ट मैलेट निश्चित रूप से इस प्रकार के प्रयास के विरुद्व था । उसका दृढ आग्रह था कि मराठो के विरुद्ध युद्ध मे कूद पडना मूखता होगी, जबकि वे अभूतपूव रूप से सयुक्त तथा शक्तिशाली है । कार्नवालिस ने मैलेट के परामर्शानुसार काय किया तथा कैनैवे के सशस्त्र हस्तक्षेप विषयक प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया ।

४ **मुशीरुलमुल्क नही झुका**—१७९३ की शरद ऋतु मे सौभाग्य से नाना तथा महादजी के बीच का वैमनस्य पूणत शान्त हो जाने पर चौथ के भुगतान के लिए निजाम से दृढतापूवक माग की गयी । हैदराबाद ने विवाद

का निपटारा युद्ध द्वारा करन का निश्चय किया। फलस्वरूप बीदर म अविलम्ब युद्ध की तैयारिया होन लगी। इसक अधिकाधिक समाचार पूना मे नित्य पहुँचत रह। लाड कानवालिस न २८ अक्तूबर १७९३ का अवकाश ग्रहण कर लिया तथा अपन वरिष्ठ परामशदाता सर जान शोर को कायभार सौप दिया। अगले दिसम्बर मे ब्रिटिश रजीडेण्ट कैनैव न भी अवकाश ग्रहण कर लिया। उसने अपना भार कक पैट्रिक को सौपा। दाना क बीच कुछ समय तक कप्टिन स्टुअट स्थानापन्न रहा। १२ फरवरी, १७९४ का महादजी शिन्द की मृत्यु से पूना दरबार की प्रगति कुछ समय के लिए रुक गया। अवकाश ग्रहण करन के पहले कानवालिस ने अपने दाना प्रतिनिधियो से आग्रह किया कि वे दाना प्रतिद्वन्द्विया के बीच शान्तिपूण बातचीत से विवाद का निपटारा करन का यथाशक्ति प्रयत्न करे तथा अन्तिम परामश दे कि ब्रिटिश सरकार का किस माग का अनुसरण करना चाहिए। इस सुझाव क अनुसार काय करत हुए पूना से मैलेट तथा हैदराबाद स स्टुअट मई, १७९४ म इलोरा की गुफाओ क समीप एक दूसरे से मिले। उन्हाने दोनो प्रतिद्वन्द्वियो की परिस्थिति पर वातालाप करके अन्तिम रूप से निश्चय किया कि निकटवर्ती युद्ध मे ब्रिटिश सत्ता का किसी कारण भी नही फसना चाहिए तथा उन्हे अपना परामश केवल मैत्रीपूण मध्यस्थता तक ही सीमित रखना चाहिए। ब्रिटिश सरकार इस माग पर दृढतापूवक डटी रही। यदि नाना फडनिस तथा अजीमुलुमरा के बीच व्यक्तिगत दृढ शत्रुता बाधक न होती तो अग्रेजा की मध्यस्थता प्रभावकारी हो सकती थी। कक पैट्रिक ने गवनर जनरल को सूचना दी[५]—"नाना फडनिस दृढता पूवक कहता है कि जब तक निजामअली अपने मन्त्री को उसके पद से नही हटा देता, तब तक विवाद का निपटारा नही हो सकता। परन्तु इस प्रकार के परिवतन से हमारी सरकार को कोई लाभ नही हो सकता। मन्त्री के अनक अवगुणो की जानकारी मुझको है, परन्तु उसकी जगह लेने के लिए उससे अच्छा कोई अन्य व्यक्ति नही मिल सकता। यदि यह मान भी लिया जाये कि योग्य उत्तराधिकारी मिल सकता है, तो यह तथ्य कि पूना सरकार निजामअली को अपने मन्त्री के निराकरण की आज्ञा दे सकती है, निजामअली की स्थिति को अपमानपूण बना देता है। कोई नवीन आगन्तुक पुरुष क्या अच्छी सफलता प्राप्त कर सकता है ? और यदि नवीन मन्त्री पूना के आदेश पर काय करने लगा तो हैदराबाद की स्वतन्त्रता कहाँ रह सकेगी तथा उस सतुलन का क्या

---

५ फरवरी, १७९४ मे उसने अपने पद का भार सँभाल लिया था।

होगा जो इस समय दक्षिण की राजनीति मे विद्यमान हे ? इस प्रकार की अवनति को निजामअली कभी स्वीकार नही करेगा। यह बात नही हे कि वतमान कलह अपने आप समाधान से परे है, वास्तविक कठिनाई अजीमुलुमरा को निकालने के सम्बन्ध मे नाना का हठ है। पशवा इस समय सम्राट का वकीले-मुतलक है तथा वह अपने मन्त्री को पदच्युत करने के लिए निजामअली को विवश करने मे अपनी इस शक्ति का प्रयोग कर सकता है। अपनी पूण सैनिक शक्ति को एकत्र करने मे पूना के मन्त्री का यही वास्तविक उद्देश्य प्रतीत होता है।" मुशीरुलमुल्क के हटाने की स्पष्ट माग नाना ने कभी नही रखी थी, क्योकि इस प्रकार की धृष्ट माग कूटनीतिक प्रथा के विरुद्ध होती, परन्तु सारे विवाद की जड यही प्रकरण था।

मराठा-निजाम तनाव को बढाने मे टीपू सुल्तान का भी हाथ था। जब भारत मे सामान्य राजनीतिक परिस्थिति पर नाना का महादजी शिन्दे से वार्तालाप हुआ, तब नाना समझ गया कि टीपू सुल्तान के विरुद्ध अग्रेजो के साथ मैत्री से उसको कुछ लाभ नही हुआ तथा मैसूर के शासक की शक्ति नष्ट करना मराठा हितो के लिए हानिकारक है। स्वय टीपू ने स्पष्ट शब्दो मे यह स्थिति नाना के सम्मुख उपस्थित कर दी। उसको निजामअली से बहुत घृणा थी। उसने नाना को चेतावनी दी कि वह अग्रेजो के हाथो का यन्त्र न बने। पूना की स्पष्ट ८ मागे थी जो १७९४ मे निजामअली के पास भेज दी गयी। इनकी सूचना कक पैट्रिक ने सर जॉन शोर को दे दी थी। शोर ने निजामअली को परामश दिया कि वह शान्तिपूण उपायो से झगडे का निपटारा कर ले। उसने स्पष्ट कर दिया कि यदि दोनो मे निजी कारणो से युद्ध हो गया तो उसे सशस्त्र ब्रिटिश सहायता की आशा नही करनी चाहिए।

हेस्टिग्ज फ्रेजर कहता है कि मराठा सरकार का सचालन निजामअली के प्रशासन से सवथा भिन्न रूप मे न्याय तथा नीति के दृढ आधार पर होता था और नाना की समस्त मागे युक्तियुक्त थी। इन दोनो बातो को स्वय शोर ने स्वीकार कर लिया तथा निजामअली को सहायता का कोई वचन नही दिया। उसने उसी समय मैलेट द्वारा पेशवा सरकार को सूचना दी कि वह बिना पूव सूचना के आकस्मिक आक्रमण द्वारा जल्दबाजी से सघर्ष आरम्भ न कर दे। शोर ने रेजीडेण्टो को यह भी आदेश दिया कि वास्तविक युद्ध आरम्भ होने की दशा मे वे ब्रिटिश हितो की सुरक्षा के निमित्त जो आवश्यक समझे, वे उपाय करें। शोर इन शब्दो मे मुशीरुलमुल्क को कठोर चेतावनी देना न भूला—"आप मराठा पत्रो की ओर उचित ध्यान न दे तथा अपने उत्तरो मे अशिष्ट भाषा

का उपयोग करे, यह ठीक नही है। भाषा नम्र तथा आदरपूण हानी चाहिए। अनादरपूण तथा उत्तेजनाभरी भाषा से कठिनाई बढ जायगी। मुझ मालूम हुआ हे कि विवादास्पद विषयो मे दोनो पक्ष मैत्रीपूण निश्चय चाहत ह। यह सबके लिए शोभनीय हे कि हम तीन शक्तियो मे बहुत दिना स चली आ रही मैत्री को सुरक्षित रखने के लिए प्रत्यक उपाय किया जावे।"[६]

गवनर जनरल के परामश की साथकता को स्वीकार करत हुए मुशीरुलमुल्क ने उत्तर दिया—"विवादास्पद विषयो का समाधान शान्तिपूवक उपाया से हो सकता हे, परन्तु पूना के पत्रो का स्वर हाल मे असह्य हो उठा है तथा उनकी मागे नितान्त गवपूण हो गयी है। इस पद पर मुझसे पूर्वाधिष्ठित अधिकारियो ने पूना सरकार की ओर अपन व्यवहार मे नम्र भाषा का प्रयोग किया था। मैने जानबूझकर इस माग को बदल दिया है तथा सावधानी से अपने स्वामी के हित तथा गौरव की रक्षा करने का प्रयत्न किया हे। इस परिवतन से नाना स्वभावत क्षुब्ध हो गया हे। परन्तु मुझे उसकी भावना की चिन्ता नही है। उसके प्रति अधीनता की वृत्ति धारणा नही करूँगा। अब वह मुझसे व्यक्तिगत द्वेष करने लगा है, क्याकि मैने साम्राज्य के नायब वकीले-मुतलक महादजी शिन्दे की ओर मैत्रीपूण हाथ बढाया है। जब तक नाना अपना अनुचित आचरण नही त्याग देता, तब तक कोई समाधान शक्य प्रतीत नही होता। वास्तव म आप सदृश मित्रो का ही यह काय हे कि प्रयास करक इस कलह को शान्त कर दे। आपके साथ मेरी गाढ मैत्री के कारण नाना का बहुत ईर्ष्या हे। इसी कारण मै आपसे मध्यस्थता की प्राथना करता हू। आप इसका निणय पेशवा के पक्ष मे करेगे, तब भी मुझे कोई चिन्ता नही होगी। क्या आपने पहले झगडो मे—जैसे कि नवाब वजीर, अर्काट के नवाब तथा अन्य शक्तियो के बीच—मध्यस्थता नही की है? इस प्रकरण मे भी आप वही काय क्यो नही कर सकते?"

इस युक्ति का कक पैट्रिक पर काई प्रभाव नही पडा। निजाम तथा ऊपर वर्णित दोनो नवाबो की स्थिति मे आकाश-पाताल का अन्तर था। निजामअली स्वतन्त्र शासक था, जबकि अवध तथा अर्काट के नवाब पहले से ही अधीनस्थ सहायक थे। पेशवा कभी ब्रिटिश मध्यस्थता स्वीकार नही कर सकता था।

---

६ १४ मई, १७९४ का पत्र फ्रेजर ने अपनी पुस्तक—'अवर फैथफुल ऐलाइ द निजाम' (हमारा निष्ठापूण सहायक निजाम) के पूरक मे उद्धृत किया है। लेखक का पिता उस समय हैदराबाद की सेवा मे था। अत पुत्र द्वारा लिखित वृत्तान्त को विश्वसनीय स्वीकार कर सकते है।

कक पैट्रिक न आग्रहपूवक निजामअली तथा उसके मन्त्री का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। निजामअली न अपने मन्त्री का पदच्युत करन से इनकार कर दिया। उसन कहा—"मुझको अपन मन्त्री पर पूण विश्वास है। उसको मरे हिता का इतना ध्यान हे, जितना किसी अन्य व्यक्ति को नही हो सकता। अत मेरी इच्छा उसे पदच्युत करने की नही ह।"

नाना कुछ बाता मे हठी अवश्य था, परन्तु कूटनीतिक शिष्टाचार का पूण गौरव सदैव सुरक्षित रखता था। परन्तु मुशीरुल्मुल्क की दशा इससे सवथा विपरीत थी। जब पूना से हिसाब सम्बन्धी पत्र प्राप्त हुए और मराठा दूत गोविन्दराव काले ने उन्ह मन्त्री के समक्ष उपस्थित किया तो मन्त्री ने कहा—"मै इस हिसाब को नही समझ सकता। नाना को स्वय यहा आना पडेगा और इसको स्पष्ट करना होगा।" गोविन्दराव ने नम्रतापूवक उत्तर दिया—"नाना को यहा स्वय आने का अवकाश नही है।" तब मुशीरुल्मुल्क ने कठोरतापूवक उत्तर दिया—"तुम देख लेना, मै स्वय नाना को यहा लाऊँगा।" काले ने यह समाचार पूना भेज दिया और कहा कि हैदराबाद का समस्त दरबार ऐसी ही भाषा का प्रयोग करता है। वे प्रकट रूप मे गव करते थे कि पूना पर आक्रमण करके उसको जला डालेगे तथा पेशवा को हाथ मे मिट्टी का प्याला लिय हुए यहाँ भिक्षा मागने आने के लिए विवश कर देगे। इस प्रकार की भाषा किसी भी सम्मानित शासन के लिए अशोभनीय ह। जब यह वृत्तान्त काले ने पूना को भेजा तो इससे भारी क्षोभ उत्पन हो गया। इसका अथ ठीक-ठीक समझ लिया गया।

जब इस प्रकार की कटुता प्रतिदिन तीव्र होती जा रही थी तो निजाम अली केवल इस अशुभ दिन को यथासम्भव टालते रहने वाले माग का अनुसरण कर सकता था। कक पैट्रिक शान्तिपूण हल पर तुला हुआ था और निजाम-अली अपने मन्त्री के परामशानुसार जोरा से युद्ध की तैयारिया कर रहा था। कक पैट्रिक को सन्तुष्ट करने के विचार से उसने पूना के साथ शान्तिपूण वार्तालाप का ढोग किया तथा इस काय के लिए जुलाई, १७६४ के आरम्भ मे मीरआलम और गोविन्दराव काले को वहा भेजा। मीरआलम के साथ रघूत्तम हैबतराव तथा राय राया रेवतीराव ढोढाजी नामक एक अन्य सरदार भी था। मीरआलम निस्सार वादविवाद करता रहा। वह प्रत्येक साधारण विषय को भी निर्देशार्थ हैदराबाद भेज देता था, क्योकि उसने स्वीकार कर लिया था कि उसको अन्तिम निश्चय करने के लिए पूण अधिकार प्राप्त नही हैं। मीरआलम को मन्त्री का स्पष्ट निर्देश था—"आपका कार्य यह नही है

कि जब तक स्वय नाना इस प्रकार का प्रस्ताव न करे, तब तक मेरे और नाना के बीच मत्रीपूण वृत्ति स्थापित करन का प्रयत्न कर ।" इसका उत्तर मीर आलम न पूना से इस प्रकार लिखा—"आपस मैत्री की चिन्ता यहा किसी को नही हे । वे आपका नाम भी नही लेत है । व आपका दोप नही देत और न आपक विरुद्ध कोई आरोप लगाते ह । हमारे वार्तालापा मे उन्हान एक बार भी आपके लिए व्यक्तिगत रूप से स्पष्ट कुछ नही कहा ह ।'[७]

इस बीच मराठा के साथ युद्ध के भयानक परिणामा के विरुद्ध शोर न निजाम सरकार का पूर्ण चेतावनी दे दी । उसन लिखा—"मराठा सरकार नैतिकता मे बढी हुई हे । उनकी सेना भी अधिक शक्तिशाली ह ।" इस प्रकार ब्रिटिश तथा निजाम सरकार भिन्न दशाओ मे प्रयास कर रही थी । पूना मे नाना फडनिस ने इन चालो को ठीक-ठीक समझ लिया तथा किसी भी प्रकार की घटना के लिए तत्परतापूवक तैयारी कर ली । मीरआलम का कोई अधिकार नही थ, इसलिए नाना ने वार्तालाप भग कर दिया । मीर आलम का दूतमण्डल पूना म बहुत दिनो तक व्यर्थ प्रतीक्षा करता रहा तथा २० नवम्बर, १७९४ को हेदराबाद वापस आ गया । इसके बाद निजामअली के पुत्र आलीजाह न कलह शान्त करन मे व्यक्तिगत यत्न किया । उसका भी कोई सफलता प्राप्त नही हुई । वास्तव मे स्वय लडाई के दिन तक सब लोगा की ओर से बिना युद्ध क कलह निपटाने के लिए इसी प्रकार के प्रयत्न हाते रहे ।

मीरआलम क दूतमण्डल की वापसी के बाद नाना फडनिस को सशस्त्र सघष की अनिवार्यता का बोध हो गया । उसन मराठा सेनाओ को बीदर की दिशा मे प्रयाण करने की विशिष्ट आज्ञा दे दी । शिन्दे तथा होलकर के दल पहिले ही अपने स्थित पडावो से दक्षिण की ओर चल चुके थे । दि बायन की इच्छा थी कि वह स्वय अपन दल के साथ आये, परन्तु बीमारी के कारण वह न आ सका और अपने सहायक पैरो को इस काय के लिए भेज दिया । नाना न पूना मे सी० ए० बायड (एक अमरीकी) को नौकर रखकर एक दल प्रशिक्षित कर लिया था जो स्वय पेशवा की आज्ञा के अधीन था । डुड्रेनक के दल सहित तुकोजी होलकर, रघुजी भोसले तथा परशुराम भाऊ शीघ्र एकत्र हो गये । जनवरी, १७९५ के आरम्भ मे निजाम की सेनाओ की ओर इन

---

[७] स्वय शोर के २ माच, १७९५ के लेख मे इस प्रकरण का सक्षिप्त वणन हे । यह लेख सम्बधित तथा सुस्पष्ट है । इसमे तीनो पक्षो की राजनीतिक परिस्थिति की विशद व्याख्या है । देखो, हेस्टिग्ज फ्रेजर कृत 'अवर फेथफुल ऐलाइ द निजाम' (हमारा निष्ठापूण मित्र निजाम) परिशिष्ट, क्यू ।

सनाओ ने प्रयाण कर दिया। शोर न पूना तथा हैदराबाद के रेजीडेण्टो को आज्ञा दी कि यदि युद्ध आरम्भ हो जाये तो वे उसमे कोई भाग न ले। उनसे स्पष्ट रूप मे कहा गया कि जैसे ही सम्बन्धित सेनाए शत्रु देश मे प्रवेश करे, वे उसी क्षण उनसे पृथक हो जाये। हैदराबाद मे पहले से ही एक ब्रिटिश सहायक सेना थी। इसका अभिप्राय केवल आन्तरिक व्यवस्था बनाये रखना था। शोर ने इसके कमाण्डर को आज्ञा दी कि वह आरम्भ होने वाले युद्ध मे कोई भाग न ले। उसने कहा—"दोनो हमारे सहायक हे तथा हमारी इच्छा किसी के प्रति अनुचित कृपा प्रकट करने की नही है। हमको दृढतापूवक तटस्थ रहना हे।" अन्तिम उपाय के रूप मे शोर ने सुझाव दिया कि दोनो मुख्य व्यक्ति स्वय एक दूसरे से भेट करे तथा अपने मतभेदो को दूर करे। परन्तु यह प्रस्ताव अव्यावहारिक सिद्ध हुआ। चौथ के भारी शेष धन के भुगतान का प्रश्न स्पष्ट था। निजामअली ने कभी इसको अस्वीकार नही किया था। धन की वास्तविक मात्रा के विषय मे मतभेद था। निजामअली ने समस्त धन की मात्रा का कभी खण्डन नही किया था।

गोविन्दराव काले ने यथाशक्ति प्रयत्न किया कि वह स्वय निजामअली से वार्तालाप करके पुन मैत्री स्थापित करे। निजामअली के हृदय मे काले के प्रति उच्च वैयक्तिक सम्मान था। उसके व्यक्तिगत कमरो मे भी काले को स्वतन्त्र प्रवेश प्राप्त था।[८] काले की आकृति भव्य तथा भाषा चातुयपूण थी। वह हिन्दुस्तानी बोली और मुस्लिम शिष्टाचार मे निपुण था।

५ **खरडा का रण**—जब पूना मे समाचार प्राप्त हुआ कि निजामअली की सेना बीदर से आगे बढ आयी हे तो पेशवा ने दिसम्बर मे अपने सैनिक डेरे मे प्रवेश किया तथा जनवरी के आरम्भ मे मराठा सेनाओ ने पूर्व की ओर यात्रा प्रारम्भ की। माधवराव रामचन्द्र कनाडे को राजधानी पूना की

---

८ १७९० मे गोविन्दराव ने लिखा कि वह निजामअली से उसके व्यक्तिगत कमरे मे मिला और उसके शरीर पर फोडा देखा। यह वही विख्यात मराठा कूटनीतिज्ञ था, जिसने खरडा मे निजामअली के पराभव के बाद भी उसे यथाशक्य आसान शर्ते प्राप्त कराने तथा दोनो दरबारो के बीच स्नेह सम्बन्ध पुन जोडने का भरसक प्रयत्न किया। इस प्रकार गोविन्दराव ने यथाशक्ति प्रयास किया कि खुला युद्ध टल जाये। अप्रैल १७९४ मे निजामअली के पुत्र सिकन्दरजाह का विवाह हुआ, जिसमे सम्मिलित होने के लिए उसने पेशवा को स्नेह तथा आग्रह सहित निमन्त्रण भेजा। परन्तु नाना फडनिस ने दोनो की व्यक्तिगत भेट की आज्ञा नही दी।

रक्षा के लिए नियुक्त किया गया। रघुनाथराव क पुत्र बाजीराव तथा चिमनाजी असुविधा उत्पन्न कर सकते थे, अत उन्हे कठोर नियन्त्रण के लिए कापरगाव से जुन्नार हटा दिया गया और उनकी देखभाल करने वाला दल भी बढा दिया गया। घोड नदी तथा माण्डवगाव से आगे बढकर सीना नदी पर स्थित मिरजगाव के माग से मराठा सेनाए पूव की ओर वढी। पूना से १५० मील पूव मे स्थित खरडा नामक स्थान बीदर तथा पूना क बीच म हे। इसके समीप दोनो विरोधी दलो ने डेरे लगा लिय। ५ अप्रैल को धनोड गाव मे मराठो न होली का त्यौहार मनाया। नवाब खरडा के पश्चिम मे लगभग ४ मील पर बहने वाली खर नदी पर ठहर गया था। उसी दिन दोनो दला की अग्रगामी टोलिया के बीच हल्की झडपे आरम्भ हो गयी। विरोधी दला मे दाना के गुप्तचर थे जो प्रत्येक की योजनाओ तथा प्रगतिया के पूण समाचार भेजते थे। मराठा शिविर मे इस प्रकार के समाचार प्राप्त हुए कि नवाब के पास १५० महिलाओ तथा ८० सविकाओ का अन्त पुर हे। य सब हाथी पर सवार थी, प्रत्येक हाथी पर बन्द हौदे मे दो स्त्रिया थी। एक सप्ताह तक दोनो दल एक दूसरे के सम्मुख खड रण की प्रतीक्षा करते रहे। एक दिन शत्रु के स्थानो की खोज करते समय हरिपन्त फडके के पुत्र बाबा पर सहसा आक्रमण किया गया। वह अपनी प्राणरक्षा के लिए भाग निकला। जब यह समाचार मुशीरुलमुल्क को प्राप्त हुआ तो उसने अपने स्वामी की उपस्थिति मे उसी रात्रि को एक नृत्य का प्रबन्ध किया। इसमे नाना फडनिस, दौलतराव शिन्दे, परशुराम भाऊ तथा अन्य व्यक्तियो को भद्दे वस्त्र धारण किये हुए व्यक्तियो द्वारा प्रदर्शित किया गया। मराठा दूत काले जो इस उत्सव के समय उपस्थित था, इस अपमान पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करने के विचार से अकस्मात सभा से चल दिया। इससे प्रकट होता हे कि भावनाएँ किस प्रकार उत्तेजित हो गयी थी।

मराठा सेना के मुख्य सेनापति पद पर किसी व्यक्ति की अधिकृत रूप से नियुक्ति बहुत समय से नही हुई थी, क्योकि इस जटिल प्रश्न का निणय करने मे नाना असमथ था। परशुराम भाऊ वरिष्ठ अनुभवी नेता था, परन्तु शिन्दे तथा होलकर की अपेक्षा उसका स्थान नीचा था। दौलतराव १५ वष का अनुभवहीन बालक था तथा तुकोजी होलकर इतना वृद्ध था कि सर्वोपरि सेनानायक पद को सँभालने के लिए सवथा अयोग्य था। जीवबा बख्शी निस्सन्देह अनुभवी था, परन्तु वह मराठा सरकार के विभिन्न तत्त्वो की जटिलताओ तथा क्षमताओ से अपरिचित था। नाना अपने विश्वास प्राप्त ऐसे

व्यक्ति का नियुक्त करना चाहता था जो सकटकालीन स्थिति मे वश मे रहे तथा उसके विचारा मे महमत हो। अत उसन होली उत्सव के धुलेडी वाले दिन ६ माच का सायकाल रत्नपुर मे दल बादल नामक विशेष शामियाने मे दरबार किया। यहा नाना ने निजाम सरकार के साथ होने वाले समस्त आदान-प्रदान की कथा सुनायी। सबमे हार्दिक सहयोग की प्राथना करने के बाद उमने परशुराम भाऊ को बुलाकर प्रस्ताव किया कि वह मुख्य सेनानायक का पद स्वीकार करे। उसने कहा—"आप इस सभा मे ज्येष्ठ तथा सर्वाधिक अनुभवी सेनानी ह। आप ही इस अभियान का भार ग्रहण करे ओर अपने विचारानुसार जा उचित समझे वह करे।" उत्तर मे भाऊ ने आग्रह किया—"शिन्द तथा होलकर सदृश शक्तिशाली तथा गौरव सम्पन्न पुरुष उपस्थित ह। उन्ही मे से किसी को यह काय दिया जा सकता है।" इस पर नाना ने परिस्थिति का स्पष्टीकरण किया तथा परशुराम भाऊ को ही यह उत्तरदायित्व सँभालने के लिए विवश कर दिया। भाऊ ने बाबा फडके को द्वितीय स्थान पर नियुक्त कर लिया। इस प्रबन्ध के प्रति सम्पूण सभा ने हार्दिक स्वीकृति दे दी।

मराठा सेना का शिविर मुख्यतया सीना नदी के तट पर था। उस समय मराठी पत्रा मे निजाम के पक्षपातियो को मुगल कहा जाता था। वे खरडा स लगभग ४ मील खर नदी पर शिविर डाले पडे थे। उनका अग्रदल तलसगी गाव तक फैला हुआ था। दो तीन दिनो तक कुछ अनियत झडपो के बाद निजाम की सेना के नायक ने रगपचमी के दिन (११ माच) विशेष मोर्चाबन्दी की। वह अपनी सेना का अग्रभाग पृष्ठभाग से परिवर्तित करना चाहता था। इस हलचल पर कुछ मराठा सरदारो का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हो गया। मराठे उन पर तुरन्त आक्रमण करने के लिए आगे बढे। परशुराम भाऊ अग्रभाग मे अपनी तोपे लगाने के लिए कोई स्थान खोज रहा था, तभी शत्रु ने तुरन्त उस पर आक्रमण कर दिया, उसके मस्तक मे चोट आयी। उसका चचेरा भाई विट्ठल बाबा जो उसके समीप खडा था, इस युद्ध मे मारा गया। यह घटना पूण आक्रमण का सकेत सिद्ध हुई। शिन्दे की सेना शक्तिपूवक आगे बढी। होलकर ने उसका अनुकरण किया। दोनो पक्षो के बीच अग्निवर्षा आरम्भ हो गयी।[६] जमकर युद्ध नही हो सका, क्योकि निजामअली भय के कारण खरडा के दुग मे जा छिपा। मराठो ने तुरन्त इस दुग को घेर लिया और अन्नजल पहुँचना सवथा बन्द कर दिया। मराठे रात भर गढ की दीवारो

६ पूना रेजीडेन्सी कॉरस्पौण्डेन्स, जिल्द ४, न० १७८ तथा १७८ अ०

पर अग्निवर्षा करते रहे। उन्होंने शत्रु की कुछ तोपो तथा अन्य वस्तुओ पर भी अधिकार कर लिया। बृहस्पतिवार १३ मार्च की प्रभात को निजामअली का एक सन्देशवाहक आया और उसने अग्निवर्षा बन्द करके शान्ति की वार्ता की प्रार्थना की।

नाना फडनिस छत्रपति को इस काण्ड का समाचार भेजते हुए युद्ध का वर्णन इस प्रकार करता है

"हमने निजाम से इस कलह का शान्तिपूर्ण समझौता करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। परन्तु उसके मन्त्री मुईनुद्दौला ने मराठा राज्य का सर्वनाश करने के उद्देश्य से निन्दनीय विधियो तथा उपायो का प्रयोग किया। उसकी योजना पूना पर अधिकार करके वहा निजाम का झण्डा गाढ देने की थी। उसने पूना मे हत्याएँ करने के लिए भी कुछ लोगो को नियुक्त किया। ये पकड लिये गये तथा उनके दुष्ट उद्देश्यो का लिखित प्रमाण प्राप्त हो गया। मुगल लोग स्पष्ट कहते थे कि मराठा को उनके देश से बाहर निकाल देगे। मुईनुद्दौला ने नवाब के मन मे इस प्रकार विष भर दिया कि कोई शान्तिपूर्ण समझौता नही हो सका। हमने अत्यन्त धैर्य से कार्य किया तथा कठोर कारवाई से दूर रहे। परन्तु जब यह समाचार प्राप्त हुआ कि नवाब सुसज्जित सेना सहित पूना की ओर प्रयाण कर रहा है तो हम चुनौती स्वीकार करने के लिए विवश हो गये। हमने अपनी सेनाओ को एकत्र किया तथा उत्तर से शिन्दे के दलो को भी बुला लिया। हम बीदर की दिशा मे बढे तथा श्रीमन्त को करीब २० मील पीछे रखकर आक्रमण की तैयारी की। ११ मार्च को तीसरे पहर दोनो सेनाओ मे टक्कर हो गयी। तोपो, भालो, तलवारो तथा कटारो का इस छोटे मे परन्तु विनाशक रण मे खुलकर प्रयोग हुआ। नवाब की हार हुई और वह भाग गया। हमने सन्ध्या के बाद भी अपनी अग्निवर्षा जारी रखी। रात्रि को हमारे पिण्डारी शत्रु के शिविर मे घुस गये। उनके हाथ लूट का बहुत-सा माल लगा। नवाब ने खरडा के गढ मे शरण ली। १२ मार्च को भी सारे दिन अग्निवर्षा होती रही। उस दिन सन्ध्या के समीप नवाब ने अपने कुछ आदमी हमारे पास भेजे। उन्होने प्रार्थना की कि अग्निवर्षा बन्द करके सन्धि की शर्तें बतायी जाये। हमने मुईनुद्दौला के समर्पण की माग की जो इस झगडे की एकमात्र जड है। नवाब तो सोच-विचार मे ही रहा, परन्तु मुईनुद्दौला ने स्वय वीरतापूर्वक आगे आकर इस विकट परिस्थिति से अपने स्वामी की रक्षा कर ली। उसने कहा—"मै समर्पण के लिए तैयार हू। आप मेरा जो चाहे करे।" हमने निश्चय किया कि यदि वह हमारे राज्य को कोई हानि न पहुँचाने का वचन दे तो हम

उसे अपने यहाँ नजरबन्द रख ले। बाद मे उसका आदरपूवक स्वागत किया गया और उचित सुरक्षा मे रख लिया गया। इस प्रकार शिन्दे, होलकर तथा अन्य सरदारा के परामश के विरुद्ध भी हमने अपना हाथ रोक लिया। सरदारो ने एक स्वर से आग्रह किया था कि सम्पूण निजामी राज्य को अधीन कर लिया जाये। इसके बाद पुराने देयधन के भुगतान के विषय मे वार्तालाप आरम्भ हुआ। हम सहमत हो गये कि तीन करोड चौथ के हिसाब मे तथा दो करोड युद्ध-व्यय के लिए चुकाये जाये। यह धन थोडा-थोडा करके तीन वर्षो मे चुकाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त दौलताबाद का गढ भी हमको मिलना निश्चय हुआ है। नागपुर के भोसले परिवार का प्रदेश, जिस पर नवाब ने हाल मे अधिकार कर लिया है, उसको पुन प्राप्त होने वाला है। साथ मे उसका सचित भूमिकर भी मिलेगा। एक सप्ताह के भीतर दस्तावेजो का प्रमाणीकरण हो जायेगा। जीवाजी बल्लाल, भोसले परिवार, होलकर परिवार तथा हमारी सेना सबने इस भारी सफलता के प्राप्त करने मे उत्साहपूवक सहायता दी। आपके आशीर्वाद द्वारा तथा ईश्वर की कृपा से यह सफलता प्राप्त हुई है।"[९]

इस अल्पकाल मे प्राप्त होने वाली सफलता का कारण निस्सन्देह शिन्दे का निपुण तोपखाना था, जिसके सचालन के लिए फ्रेच लोग नियुक्त थे। इस तोपखाने ने इस प्रकार का सहार किया कि उसके सामने कोई ठहर नही सकता था। इस प्रकार खरडा का काण्ड एक दो दिन की घटना सिद्ध हुआ। उस विपुल समय से इस काल मे अत्यन्त विषमता है, जिसकी आवश्यकता प्राचीन गुरिल्ला युद्ध पद्धति द्वारा शत्रु को पराजित करने मे होती थी। निजाम का फ्रेच सेनापति रेमाण्ड चाहता था कि अगले दिन युद्ध पुन आरम्भ किया जाये, परन्तु निजामअली ने दृढतापूवक ऐसा नही होने दिया। दोनो प्रतिद्वन्द्वियो की सेना के निम्नलिखित आँकडे ध्यान मे रखे जा सकते है[१०]

मराठे ८४ हजार घुडसवार + ३८ हजार पैदल + १८२ तोपे।
निजाम ४५ हजार ,, + ४४ हजार ,, + १०८ ,,।

यद्यपि रण खरडा के समीप हुआ, पर निजामअली का विचार था कि गोदावरी क्षेत्र मे नदी तथा औरगाबाद के बीच मे युद्ध हो।

११ माच के रण के बाद जो शान्ति प्रस्ताव किये गये, उनके कुछ रोचक विवरण गोविन्दराव काले ने दिये है। साररूप से उनका उद्धरण देना अनु-

---

९ १० ऐतिहासिक पत्र, ३१३

१० मैलेट का पूण वृत्तान्त पी० आर० सी०, जिल्द ४, न० २०२ मे देखो।

चित न होगा।[११] जैसे ही निजामअली ने खरडा के गढ म प्रवेश किया, उसने काले को अपने पास बुलाकर कहा—"मुझे दो मास का अवकाश दो। मैं अजीमुलुमरा को उसके स्थान मे हटा दूगा।" काले ने इस प्रस्ताव पर विचार करने से इनकार कर दिया और कहा—"आप स्वामी है, जो आपकी इच्छा हो, करे।" गोविन्दराव अपने डेरे को वापस आ गया और मुगल शिविर को छोडने के लिए तैयार हो गया। निजामअली ने यह सुनकर तुरन्त घासी मिया को भेजकर काले को अपने पास बुलाया। उसकी यह चाल अवकाश प्राप्त करने के लिए थी। वह इस प्रकार स्वय पेशवा से बातचीत करके नाना तथा मुशीरुलमुल्क के बीच वैर शान्ति का प्रबन्ध करना चाहता था। गोविन्दराव ने उत्तर दिया—"मै केवल नौकर हूँ तथा दोनो राज्यो का हितैषी हूँ। मै सचाई से आपका सन्देश अपने स्वामी तक पहुँचा दूगा और उसका उत्तर आपके पास वापस लाऊँगा। परन्तु मै नम्रतापूर्वक आपको स्मरण दिलाता हूँ कि जब तक आप अपने मन्त्री को उसके पद से हटा नही देगे, तब तक किसी प्रस्ताव पर विचार नही किया जायेगा।" जैसे ही गोविन्दराव बाहर द्वार तक पहुँचा, निजाम के तीन अधिकारियो ने उससे बातचीत की। गोविन्दराव ने उनसे कहा—"मै नवाब का सन्देश नाना को देने जा रहा हूँ। यदि वह सहमत नही होता तो मै इस शिविर को वापस नही आऊँगा। एक प्रकार से अब मै सदा के लिए विदा हो रहा हूँ।" यह समाचार अरिस्तूजाह को दिया गया। उसने तुरन्त अपने स्वामी को लिखा—"बिना किसी सोच-विचार के आप पेशवा की माँग स्वीकार कर ले और मुझको उसके पास भेजकर इस झगडे को समाप्त करे। अन्यथा आपके राज्य की हानि होगी।" इस पर निजामअली मन्त्री को अन्त पुर स्थित अपने व्यक्तिगत कमरे मे ले गया। मन्त्री मुईनुद्दौला ने वहा उससे कहा—"आप मुझे मराठो का नजरबन्द बनाकर अपना मार्ग निकाल ले।"

निजाम बोला—"आप पूरी तरह शान्त रहे। मेरे पास आपके लिए अपनी योजनाएँ है। देखना यह है कि मै उनका प्रबन्ध किस प्रकार कर सकता हूँ।"

इस बीच गोविन्दराव नाना का उत्तर लेकर वापस आ गया। उत्तर इस प्रकार था—"जब तक आप मन्त्री को नही निकालते, पेशवा आपसे नही मिलेगा। हमारी इच्छा युद्ध जारी रखने की नही है, परन्तु यदि आप ऐसा ही

[११] इस काले के लेख दीर्घकाय है। कुछ का मुद्रण राजवाडे कृत इतिहास सग्रह, जिल्द ५, ७ तथा २२ मे हो चुका है। जिल्द ५ का सम्बन्ध जून, १७९५ से अक्तूबर तक के समय से है।

चाहते है तो हमारा उत्तर तैयार है।" तब निजामअली ने शर्फुद्दौला को बुला कर उसका परामर्श मागा। शर्फद्दोला ने परशुराम भाऊ तथा अन्य व्यक्तियो को लिया, जिनको वह अच्छी तरह जानता था। उन सबने एक ही उत्तर दिया—"जब तक मन्त्री मराठा शिविर मे नही पहुँच जाता, तब तक किसी प्रकार का वार्तालाप न हो सकेगा।" इस प्रकार निजामअली तथा उसके परामर्शको की समझ मे आ गया कि कोई अन्य मार्ग नही रह गया है। विवश होकर उन्हाने माग को मान लिया। रण के पूरे १५ दिन बाद २७ मार्च को काले तथा रगोपन्त गोडबोले द्वारा सुरक्षित मुशीरुल्मुल्क मराठा शिविर मे पहुँच गया। नाना फडनिस उसके स्वागत के लिए लगभग ८ मील आगे आया। वे मिले और स्वतन्त्रतापूर्वक उन्होने वार्तालाप किया। अन्त मे वह पेशवा के सम्मुख वार्तालाप करने के लिए लाया गया। पेशवा ने बाहर आकर द्वार पर उसका स्वागत किया। रुक्नुद्दौला अपने हाथी से उतर पडा ओर गोविन्दराव उसको पेशवा के सम्मुख ले आया। उसके दोनो हाथ रूमाल से बँधे हुए थे। पेशवा ने अपने हाथी से उतरकर अभिनन्दनार्थ मन्त्री का हाथ पकड लिया। इसके बाद वे तीनो—पेशवा, दौला तथा नाना—एक हाथी पर सवार होकर विशालकाय दरबारी शामियाने मे पहुँच गये। यहा पर पूर्ण सम्मान से अतिथि का स्वागत किया गया। इस समय उसका सिर नीचे झुका हुआ था। स्वागत विधि के समाप्त होने पर दौला को उस स्थान पर पहुँचा दिया गया जो उसके लिए विशेष रूप से तैयार किया गया था। दौला वहा बजाबा शिरोलकर की देखरेख मे ठहरा दिया गया। इतिहास लेखक की टिप्पणी इस प्रकार है—"पेशवा की ग्रहदशा उत्तम है। इसी प्रकार की कल्पनातीत भव्य घटनाएँ घटित होती है।" "पेशवा तुरन्त पूना को चल पडा, जहा वह प्रथम मई, १७९५ शुक्रवार को पहुँचा। वहा मराठा राजधानी की ओर से उसका सार्वजनिक भव्य सत्कार किया गया। उसका जुलूस प्रकाश से जगमगाते नगर से होकर निकला। उस पर स्वर्णपुष्पो की वर्षा की गयी। मुशीरुल्मुल्क कोषागार मे सुविधापूर्वक ठहरा दिया गया। इस प्रकार नाना फडनिस की उत्कट अभिलाषा पूर्ण हो गयी।" हैदराबाद का मन्त्री ठीक एक वर्ष तक नजरबन्द रहा। पेशवा की मृत्यु उसी वर्ष अक्तूबर मे हो गयी। इस कारण अनेक परिवर्तन हो गये तथा ५ जून, १७९६ को मुशीरुल्मुल्क मुक्त कर दिया गया।

इस वर्णन से स्पष्ट हो जायेगा कि मराठो को इस महान विजय से व्यावहारिक रूप मे कोई लाभ नही हुआ, यद्यपि उस समय इस विजय की प्रतिध्वनि समस्त दिशाओ मे फैल गयी थी। कागज पर ५ करोड की प्रतिज्ञा

वाले धन मे से उनको लगभग ३० लाख रुपये तथा ३० लाख की आय का प्रदेश मिला। शेष धन कभी प्राप्त नहीं हुआ। अन्त मे स्थिति का रूप ऐसा हो गया कि मराठा राज्य समाप्त हो गया और हैदराबाद का राज्य भारत स्वतन्त्र होने के समय तक समृद्ध दशा म विद्यमान रहा। इतिहास इससे भली-भाति परिचित है। खरडा के सन्धिपत्र की केवल दो धाराए देखने योग्य है, क्योकि उनका निजाम तथा मराठो के राज्य म शायद अब तक प्रचलित होना चाहिए था।

१ "दक्षिण मे गौहत्या नही हानी चाहिए। इसी प्रकार महाराष्ट्र मे मुस्लिम धम, ताजियो, खुदा परस्ती (ईश्वर पूजा) आदि का आचरण निर्विघ्न होना चाहिए।

२ "हिन्दू तथा मुसलमान दोनो ईश्वर के एकसे बालक है। मुसलमान हिन्दू मन्दिरो को किसी प्रकार नष्ट न करे। हिन्दुओ ने मुसलमानो के पवित्र स्थानो, उनके पीरो (सन्तो) तथा उनके पैगम्बरो (धर्मोद्धारको) के प्रति कोई अनादर नही किया है और न उनको कोई हानि पहुँचाई है। इसी प्रकार मुसलमान लोग हिन्दू धम को कोई कष्ट या पीडा न दे। बिना एक दूसरे को बाधा पहुँचाये दोनो अपने धर्मो का स्वतन्त्रतापूवक पालन करे।"[१२]

दरबार-खच अथवा मत्री का विशेष पुरस्कार उन दिनो समस्त राज्य व्यवहारो मे सदैव लगता था। इस कारण खरडा के सन्धिपत्र के निर्माताओ को निजाम के कोष से १५ लाख रुपये मिले। इसमे से शिन्दे को ४ लाख एव परशुराम भाऊ तथा बाबा फडके मे से प्रत्येक को एक लाख रुपये मिले। शेष धन अन्य व्यक्तियो को यथापूव अनुपात मे बाट दिया गया।

मराठा शिविर से प्राप्त २० अप्रैल, १७९५ का एक समाचार इस प्रकार है

"सन्धि निश्चित हो गयी। नवाब मजीरा नदी पर है। समझौतो का प्रमाणीकरण हो गया है। शिन्दे को एक करोड रुपये तथा बीड का जिला मिलेगा। (इन धाराओ का कभी पालन नही किया गया।) भोसले ने निजाम से अलग सन्धि कर ली है। नवाब को अत्यन्त अपमान का अनुभव हो रहा है। महादजी पन्त गुरुजी शिविर मे उपस्थित था तथा समस्त कठिन विषयो पर परामश दे रहा था। बाबा फडके ने अपने पिता हरिपन्त की ख्याति भली प्रकार स्थिर रखी है।"

---

[१२] ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार, न० ३१४, पृ० २९०

६ **निजामअली द्वारा नाना तथा काले ठगे गये**—खरडा मे निश्चित सन्धि की शर्तो को कार्यान्वित करने का काय काले को सौपा गया। वह निजामअली के साथ हैदराबाद गया। मीरआलम निजामअली का मत्री था, जिससे काले को बलपूर्वक शर्तो की पूर्ति करानी थी। निजामअली के सामने अपने पुत्र आलीजाह का विद्रोह था। उसने जून, १७९५ मे बीदर के स्थान पर अपनी स्वाधीनता घोषित कर दी। गोविन्दराव मे अपने काय के लिए अपेक्षित कठोरता न थी। वह निजामअली की मधुर प्रतिज्ञाओ तथा निस्सार प्राथनाओ के प्रभाव मे आ गया। यही अवसर था जब मराठो का देश मुस्लिम नियन्त्रण से मुक्त किया जा सकता था। परन्तु गोविन्दराव ने अपने को हैदराबाद राज्य की यथापूव रक्षा करने मे व्यस्त रखा। उसने नाना को लिखा—"मेरा प्रधान तथा सतत काय इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न करना रहा है, जिससे हैदराबाद तथा पूना के राज्य एक दूसरे से पृथक न समझे जा सके। उन दोनो मे इस प्रकार सयोग हो जाये कि परस्पर कोई भी भय न रहे।" इस प्रकार का निरथक स्वप्न व्यावहारिक राजनीति की सीमाओ से बाहर था। दो परम्परागत शत्रु प्रेमपूवक निकट सम्पक मे नही रखे जा सकते। अपने पुत्र के विद्रोह के कारण निजामअली की दशा अच्छी नही थी। काले ने इस स्थिति का मराठा हित मे उपयोग करने के स्थान पर यथाशक्ति निजामअली की रक्षा का प्रयास किया। जुलाई मे उससे नाना को लिखा—"इस अवसर पर आप उदासीन न रहे, अपितु विद्रोह का दमन करके इस राज्य की रक्षा करे। दोनो राज्यो को एक सयुक्त इकाई बन जाना चाहिए। आप निजामअली का कल्याण अवश्य करे। मै जानता हूँ कि यदि इस शासक के विरुद्ध आपकी कोई कुटिल योजना होती, तो खरडा मे उसको समाप्त कर देना आपके लिए साधारण बात थी। परन्तु आपने अपना हाथ रोक लिया और इस राज्य की रक्षा कर ली। पूना का श्रीमन्त तथा हैदराबाद का हजरत दो भिन्न व्यक्ति नही है। पुत्र स्पष्ट विद्रोही है, परन्तु पिता अपने पुत्र के दमन के लिए अपने कोष से आवश्यक धन व्यय करना नही चाहता।" इस प्रकार निश्चित हुए विशाल धन के प्रतिज्ञात अशो को बलपूर्वक प्राप्त करने मे काले असमथ रहा। उसने स्वय लिखा—"इस प्रकार के परिणाम के लिए मै स्वय कुछ अशो मे उत्तरदायी हूँ। मैंने आपके समक्ष निजामअली के पक्ष का समथन किया तथा भुगतान के लिए उसका उत्तरदायी बना। अब वह अपने वचन का पालन करना भूल गया है तथा वह मुझ पर आरोप लगाता है कि मैं उसके राज्य का मुख्य विनाशक हूँ।"

सितम्बर, १७९५ मे ब्रिटिश रेजीडेण्ट कक पैट्रिक से निजामअली ने यह कहकर अपना मन हल्का किया—"पूना का पत्त प्रधान मेरे लिए महान दुख का कारण है। मुझको सदैव यह चिन्ता रहती है कि अपने ऊपर किये हुए अन्यायो का उससे प्रतिशोध लू। आप हमारे मित्र तथा सहायक है। क्या इस दुख मे आप मेरी सहायता नही करेंगे ?" कक पैट्रिक ने उत्तर दिया—"बिना अपने स्वामियो की आज्ञा के मै इस प्रस्ताव का उत्तर नही दे सकता।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि खरडा मे सहन की गयी पराजय तथा भारी दण्ड चुकाने से और प्रदेश त्याग करने से अतिपीडित होकर निजामअली ने नाना प्रकार की युक्तिया ढूढना आरम्भ कर दिया, जिनके द्वारा मराठा माँगो से बचा जा सके। काले लिखता है—"निजामअली की हार्दिक इच्छा है कि वह इन कडी शर्तों से बच जाये। उसकी इच्छा इन शर्तों को पूरा करने की नही है। सचाई, प्रतिज्ञा, प्रण आदि का उसकी दृष्टि मे कोई मान नही है, क्योकि वह पैशाचिक धूर्तता मे डूबा हुआ है। खरडा मे वापस होने पर उसकी मुद्रा बदल गयी है। वह कहता है कि स्वय पेशवा से मिलने के पहले वह सन्धि का पालन नही कर सकता। इस विषय मे वह विलम्ब करता जा रहा है। उसके पुत्र के विद्रोह से उसके कष्ट और भी बढ गये है। उसके मन मे दुष्टता है और वह केवल प्रतीक्षात्मक खेल खेल रहा है।" इस प्रकार खरडा का समस्त प्रकरण एक प्रहसन बन गया। इससे मराठा राज्य को कोई लाभ नही हुआ। अक्तूबर मे पेशवा की मृत्यु हो गयी तथा मराठा राजनीति की दिशा बदल गयी। प्रभावशाली विजय होते हुए भी नाना तथा काले अपनी चाल मे परास्त हो गये।

७ **स्वर्णिम आशा समाप्त**—जब हम खरडा की शानदार विजय के ६ मास के भीतर घटित होने वाली इस घोर विपत्ति को ध्यान मे रखकर सोचते है तो पेशवा के पालन-पोषण मे होने वाली त्रुटिया और नाना तथा महादजी के बीच लगातार चलने वाला वैमनस्य अत्यन्त महत्त्वहीन हो जाता है। नाना ने उस अभियान का प्रबन्ध महान योग्यता तथा दूरदृष्टि से किया था। इस बात की सर्वथा सम्भावना थी कि मराठा राज्य यथापूर्व समृद्ध रहेगा। तभी जुलाई, १७९५ के लगभग नाना को एक भयानक षड्यन्त्र का पता लगा। उसकी नीति के लिए वस्तुस्थिति अन्धकारमय होने लगी। ऐसा मालूम हुआ कि पेशवा जुन्नार मे नजरबन्द अपने नवयुवक दुष्ट चाचा बाजीराव से मिलकर गुप्त षड्यन्त्र कर रहा है।

सहसा अपने राजभवन की गौख से गिर जाने के कारण पेशवा की मृत्यु

हो गयी अथवा वह जानबूझकर नीचे की मजिल पर कूद पडा—यह ऐसा प्रश्न है, जिसका कोई अन्तिम निश्चय नही हो सकता। आत्महत्याएँ असन्दिग्ध प्रमाणा द्वारा सिद्ध नही की जा सकती। केवल समकालीन पत्रो मे लिखित विवरण के आधार पर हम इस कथा का वणन कर सकते है।[13] एक वृत्तान्त इस प्रकार है—"नाना फडनिस ने रघुनाथराव के तीनो पुत्रो को जुन्नार के स्थान पर नजरबन्द कर रखा था। उनका सरक्षक बलवन्तराव नागनाथ था। बलवन्तराव ने बाजीराव से मित्रता कर ली। बाजीराव ने उससे कहा कि वह उसे पेशवा से मिलाने का प्रयत्न करे। बलवन्तराव ने उत्तर मे कहा—"यदि आप मुझे उसके लिए पत्र दे तो मै यह प्रबन्ध कर सकता हूँ कि वह पत्र गुप्त रूप से उसके पास पहुँच जाये तथा आपको उत्तर मिल जाये।" तदनुसार बाजीराव ने पेशवा को पत्र लिखकर व्यक्तिगत रूप से मिलने की प्राथना की। बलवन्तराव यह पत्र पूना ले गया तथा उसने स्वय यह पत्र पेशवा को दिया। पेशवा बाजीराव की प्राथना मान गया और उसने बलवन्तराव से कहा कि वह बाजीराव से मिलने पर प्रसन्न होगा तथा शीघ्र ही इस मिलन का प्रबन्ध करेगा। इस आशय का उत्तर उसने अपने हाथ से लिखकर बलवन्तराव को दिया। इसके बाद बलवन्तराव अपने घर पूना चला गया। इस बीच वहा नियुक्त पेशवा के एक सेवक ने नाना फडनिस को इस पत्र का समाचार दिया। नाना ने बलवन्तराव के क्लक से वह पत्र तुरन्त प्राप्त कर लिया और उसको लेकर राजभवन गया। नाना ने पेशवा से पूछा कि उसने बाजीराव को कौनसा पत्र लिखा है। पेशवा ने शपथपूवक इस तथ्य से इनकार किया। तब नाना ने पत्र प्रकट कर दिया और पूछा कि क्या वह पत्र उसका लिखा हुआ नही है ? इस पर पेशवा का मस्तक लज्जा से झुक गया। नाना ने उससे कुछ कठोर शब्द भी कहे और स्पष्ट किया कि बाजीराव से सम्पक स्थापित करना किस प्रकार आपत्तिजनक है। नाना ने तुरन्त बलवन्तराव को पकडकर एक गढ के कारागार मे डाल दिया। इस पर पेशवा ने अत्यन्त दुखी होकर नाना को बुलाया तथा स्पष्ट किया कि वह समस्त कृत्य उसी का है। इस कारण बलवन्तराव को दण्ड नही मिलना चाहिए। इसकी ओर नाना ने ध्यान नही दिया, उल्टे उसकी प्राथनाओ के कारण उसकी निन्दा की। कुछ दिन पश्चात दशहरा का उत्सव आ गया। इस समय पेशवा बहुत रुष्ट तथा व्याकुल जान पडता था। आश्विन की तेरस को पेशवा सहसा ऊपर की मजिल

---

[13] राजवाडे, जिल्द १०, पृ० ४१५

से कूद पड़ा और उसके हाथ और पैर टूट गये। चिकित्साकाल में उसका देहान्त हो गया।" पेशवा की मृत्यु का यह उपलब्ध वर्णन उसी समय लिखा गया है। इससे प्रकट है कि नाना ने जो फटकार लगायी, उससे वह बहुत रुष्ट था। यही पेशवा की मृत्यु का मूल कारण है।[१४]

पूना में महादजी के आगमन के बाद पेशवा के विचार शीघ्र ही बदल कर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की ओर झुक गये। राज्य के स्वामी के रूप में उसको अपनी स्थिति का भान होने लगा तथा उसकी इच्छा हुई कि वह अपने निर्देशक नाना से स्वतन्त्र होकर अपनी सत्ता का उपभोग करे। इसी उद्देश्य से महादजी पूना आया था। एक बार जब वह बग्घी में बाहर जा रहा था तो पेशवा ने देखा कि उसका अपना रक्षा-दल तथा नाना का रक्षा-दल साथ-साथ घोड़ों पर चल रहे हैं। यह शिष्टाचार का उल्लंघन था, जिस पर वह क्रुद्ध हो गया तथा उसने इसे तुरन्त ठीक कर दिया (जून, १७९१)। घासीराम कोतवाल (अगस्त, १७९१) तथा भोर के सचिव (१७९३) के प्रकरण इस बात के स्पष्ट उदाहरण हैं कि नाना के निश्चयों के विरुद्ध पेशवा अपनी सत्ता का प्रदर्शन कर रहा था। परन्तु पेशवा ने कभी नाना का अपमान नहीं किया तथा नाना से विनय की कि वह बनारस जाने का अपना निश्चय त्याग दे। मालूम होता है माधवराव में इस प्रकार का स्वभाव विकसित हो गया था कि उसको अपने गौरव या आत्मसम्मान की अवहेलना पर तुरन्त दुख होता था। उसने वे पुराने उदाहरण तथा उपाय खोज निकाले थे जिनका अनुसरण उसके पद पर स्थित प्रसिद्ध पूर्वाधिकारी करते थे। यह सम्भव है कि पेशवा के बढ़ते हुए पुरुषत्व में होने वाले इस परिवर्तन की ओर नाना का ध्यान नहीं गया हो तथा उसने पहले से चले आ रहे कठोर नियन्त्रण को शिथिल न किया हो। २५ वर्षों से नाना स्वेच्छाचारी शासक था। सखाराम बापू तथा मोरोबा फडनिस सदृश अपने प्रतिद्वन्द्वियों को उसने सफलतापूर्वक परास्त कर दिया था। राज्य में प्रत्येक व्यक्ति उसकी इच्छा के सामने नतमस्तक था। सभी उसकी कृपा प्राप्त करने का यत्न करते थे। जब जुलाई, १७९५ में बलवन्तराव नागनाथ को उस अपराध के निमित्त दण्ड दिया गया जो उसका किया हुआ नहीं था तो पेशवा की स्थिति अपने राजभवन में ही तनावपूर्ण तथा निकम्मी हो गयी। पेशवा अपने संरक्षक द्वारा किये गये अपमान पर अत्यन्त रुष्ट हो

---

[१४] 'पेशवाईची आखेर' नामक वर्णन बलवन्तराव नागनाथ की कहानी को पुष्ट करता है।

गया, क्योकि सरक्षक की वैधानिक स्थिति केवल एक सेवक की थी । इसका सवथा समान उदाहरण अल्पवयस्क अकवर की कथा मे मिल सकता ह जो अपने सरक्षक बैरामखा के नियन्त्रण से व्याकुल था । रघुनाथराव के अपराध चाह जा कुछ रहे हो, परन्तु अब पेशवा का मालूम हा गया कि बाजीराव तथा उसके बन्धु उसके अपने हाड-मास है । वह स्वतन्त्रतापूवक उनसे मिलना चाहता था, विशेषकर इस कारण कि सामाजिक मसग के लिए उसके अपने परिवार का एक भी व्यक्ति उसके समीप नही था । सम्भवत स्वय बाजीराव ने पेशवा के मन पर यह प्रभाव डाल दिया कि श्रीमन्त को पूना के अपने राजभवन म उससे अधिक स्वतन्त्रता नही है जो उसको जुन्नार के कारावास मे प्राप्त है । उस समय यह विपय जनसाधारण के वार्तालाप का आधार था । इसके बाद घटनाएँ शीघ्रता से घटित होने लगी ।

कभी कभी अल्पवयस्क व्यक्ति वास्तविक अथवा कल्पित अन्यायो से शीघ्र क्षुब्ध हा जाते ह तथा अपना सतुलन खो देते हे । ऐसे अवसरो पर उनको किसी शान्तिदायक उपाय की अपेक्षा होती है । माधवराव का जन्म अल्पवयस्क तथा लगभग अपरिपक्व माता-पिता से हुआ था । उसको अपने माता-पिता से न तो पुष्ट शरीर प्राप्त हुआ और न शक्तिशाली स्फूर्तिमान हृदय । उसका पालन पोषण ऐसी कोमलता से किया गया कि वह न तो शारीरिक कष्टा को सहन कर सकता था और न आत्मनियन्त्रण करने मे समथ था । वह स्वेच्छाचारी, दुललित तथा कोमल नवयुवक था । उसकी मुख्य धारणा यह थी कि वह समस्त दृष्टिगत विषयो का स्वामी है । वणन मिलता है कि गणपति त्यौहार के दिन (१७ सितम्बर) से उसको ज्वर आने लगा था । २७ सितम्बर के एक लेख मे इस प्रकार विवरण है—"इन बारह दिनो से श्रीमन्त न तो स्नान कर सके है और न प्राथना, क्योकि उनको ज्वर रहता है । कुप्रभावो को दूर करने के लिए दान दक्षिणा दिये गये ।" दशहरे के दिन (२२ अक्तूबर) आवश्यक विधियो के कारण उसको असाधारण कष्ट सहन करना पडा । तीसरे पहर हाथी पर सवार होकर उसको यथापूव जुलूस का नेतृत्व करना पडा । सवारी मे उसको मूर्च्छा आ गयी । यदि महावत अपने अगोछे से उसको हौद के डण्डो से न बाँध देता तो वह अपना सतुलन खोकर गिर पडता । वह तुरन्त राजभवन को वापस लाया गया । तीन दिन बाद २५ अक्तूबर की प्रात पेशवा निबलता तथा ज्वर के कारण लेटा हुआ था । उस समय वह कुछ-कुछ बेहोशी की हालत मे था । वह अकस्मात् अपने बिस्तर से उठकर गौख मे चला गया । एक सेवक ने उसको वापस जाने का सकेत

किया। इस पर वह गौग्व की रोक स (जा उन दिना बहुत ऊँची नही हानी थी) नीचे के फश पर बने जलाशय मे गिर गया। इसम उसकी दाहिनी जाघ टूट गयी और आगे के दा दात गिर गय। सवक उसको तुरन्त शीश भवन म उठा ले गय। नाना भी घटनास्थल पर पहुँच गया। एक हड्डी ठीक करन वाला लाया गया, घाव सी दिया गया तथा सेक आरम्भ हो गया। कुछ घण्टा मे रागी ने आखे खाल दी तथा कुछ हद तक उसन पुन चेतना प्राप्त कर ली। मगलवार, १७ अक्तूबर को सूर्यास्त के कुछ बाद उसका दहान्त हो गया।

तुकोजी होलकर एकमात्र प्रमुख सरदार था जो घटनास्थल पर उपस्थित था। उसने इन्दौर म अपने पुत्र को निम्नलिखित समाचार भेजा—"इस रविवार का प्रात आश्विन शुक्ल द्वादशी (२५ अक्तूबर) को श्रीमन्त प्रभात-कालीन स्नान के बाद दुमजिल पर गौख मे बैठ गये। वे गौख की रोक का सहारा लिये हुए थे और उनकी दादी, ताई, साठे तथा सवकगण उपस्थित थ। वे सहसा उठ पडे तथा अपने को सभाल न सकन के कारण और मूर्च्छा की अवस्था मे नीच के जलाशय मे गिर गय। लगभग एक घण्ट तक वे अचेत रहे। बाद मे होश आन पर वे बालने लगे। सौभाग्यवश ईश्वर के अनुग्रह से उनके प्राण बच गये है।" नाना के लगभग इसी आशय का समाचार छत्रपति को भेजा।

अन्तिम क्षण के कुछ अधिक विवरण एक अन्य पत्र म इस प्रकार है—"२७ अक्तूबर को शान्त तथा सचेत पशवा ने नाना तथा कुछ अन्य व्यक्तियो को अपने बिस्तर के पास बुलाकर कहा कि उसकी मृत्यु समीप है। वे बाजी-राव को ले आये और राज्य का प्रबन्ध करे।" सब विवरण इस दृष्टि से समान हे कि सितम्बर म पेशवा बीमार हो गया और धीरे-धीरे निबल होता गया। वह जानबूझकर ऊपर की मजिल से कूद पडा, यह निश्चित रूप से सिद्ध नही हो सका है। नियमानुसार इस प्रकार की इच्छा कोई भी व्यक्ति नही लिखना चाहगा। इस घटना के २५ वर्ष बाद समकालीन व्यक्तियो द्वारा प्रस्तुत सामग्री के आधार पर ग्राण्ट डफ कहता है कि वह जानबूझकर कूद पडा। ग्राट के शब्द ये है—"परन्तु पेशवा की आत्मा निराशा की सीमा तक आहत हो गयी थी, उसके मन मे स्थायी चिन्ता व्याप्त थी। २५ अक्तूबर का प्रात काल अपने भवन के छज्जे से वह जानबूझकर कूद पडा। उसके दो अग टूट गये तथा उस फव्वारे के नल से उसको बहुत चोट आयी, जिस पर वह गिर गया था।"

२ नवम्बर, १७९५ को पूना के ब्रिटिश रेजीडेण्ट ने गवनर जनरल को

इस प्रकार लिखा—"इस दुखद काण्ड के कारण के सम्बन्ध मे नाना प्रकार के समाचार हे। अत्यन्त सयत मनुष्या तक मे शायद एक भी ऐसा व्यक्ति नही मिलेगा जो इसको केवल आकस्मिक घटना मानता हो। परन्तु कम से कम इसका कारण असावधानी अवश्य हे। अधिकाश प्रचलित वृत्तान्त यह हे कि पेशवा मूच्छा या उन्माद के अस्थायी आवेश मे ऊपर के बरामदे या छज्जे से नीचे के फव्वारे मे कूद पडा या गिर गया। घटना चाहे जितनी विचित्र क्यो न प्रतीत हो, मे आपको आश्वासन देता हूँ कि केवल अस्पष्ट प्रवाद के आधार पर ही नही, परन्तु विभिन्न स्रातो से प्राप्त वणनो के आधार पर मै आपको कष्ट दे रहा हूँ। कुछ लोग यह भी कहते हे कि पेशवा दो तीन दिन से अस्तव्यस्त था, परन्तु मै स्वीकार करता हूँ कि इस दुघटना के पहिले मैने यह बात नही सुनी थी। वास्तव मे २२ को हिन्दुओ का एक मुख्य त्यौहार था। वह दिन सावजनिक जुलूस का था। उस समय इस प्रकार का कोई समाचार प्रकट नही हुआ था। मैं इन सात सप्ताहो मे दो बार पेशवा से मिला हूँ। गत मास (सितम्बर) की २२ तारीख को मै अन्तिम बार उससे मिला। मैने उससे साधारण अवसरो से अधिक वार्तालाप किया, परन्तु मै उसमे उन्माद का न्यूनतम लक्षण भी नही पा सका।"[१५]

ऊपर उद्धृत किये गये विवरणो से कुछ विश्वसनीय तथ्य प्रकट हो जाते है, जैसे—बलवन्तराव नागनाथ का षड्यन्त्र तथा नाना के उद्धत काय पर पेशवा का रोष। पेशवा का स्वास्थ्य कुछ समय से ज्वर तथा निबलता के कारण बिगड रहा था। उस समय जनसाधारण का विश्वास था कि पेशवा ने जानबूझकर आत्महत्या की है। मराठा इतिहास की इस घटना पर एक समालोचक विद्वान की टिप्पणी इस प्रकार है

"महादजी की मृत्यु के बाद नाना न पेशवा के पास समस्त स्वतन्त्र तथा अनियन्त्रित प्रवेश बन्द कर दिये। उसने पेशवा पर लगातार निगाह रखने के लिए अपने कृपापात्र नियुक्त कर दिये। नाना ने उसकी बाहरी प्रवत्तियो पर प्रतिबन्ध लगा दिया। नाना की स्पष्ट आज्ञा के बिना कोई व्यक्ति—शासक तथा सरदार—भी पेशवा से नही मिल सकता था। इस प्रकार महादजी की मृत्यु के बाद नाना की नीति विपरीत सीमा को पहुँच गयी थी। नीच गुप्तचरो तथा स्वार्थी नौकरो के हाथो मे पेशवा दुखी बन्दी बन गया था। इस प्रकार अल्पवयस्क प्रसन्नचित्त बालक के स्वभाव तथा मानसिक शक्ति की समस्त स्फूर्ति

---

[१५] पूना रेजीडेन्सी कॉरस्पौण्डेन्स, जिल्द २, पृ० ३९२-३९३

नष्ट हो गयी । वह निराशा और विषाद की चेतना से पराभूत हो गया । इस प्रकार इस चतुर, कुटिल, हठी, अति कायर तथा ईर्ष्यालु मन्त्री के सरक्षण से यह अल्पवयस्क स्वतन्त्रताप्रिय पेशवा इतना रुष्ट हो गया कि उसने आत्म-हत्या द्वारा अपने जीवन का अन्त कर दिया । कतव्य के उचित माग की ओर नाना की आँखे इस घटना से भी नही खुली ।"[१६]

इस मन्दभाग्य नवयुवक की दुखद मृत्यु की कथा समाप्त करने के पहले यह आवश्यक है कि उन अनेक मुख्य व्यक्तियो का कुछ वणन किया जाये, जिन्होने प्रेम तथा श्रद्धा सहित उसकी सेवा की थी । पेशवा के अत्यन्त निकट रहने वाले नाना फडनिस, महादजी शिन्दे, हरिपन्त फडके तथा परशुराम भाऊ पटवधन के अतिरिक्त बहुत से अन्य पुरुषो ने भी अल्पवयस्क पेशवा के भाग्य-निर्माण मे महत्त्वपूण भाग लिया था । २० अक्तूबर, १७८९ मे अपनी मृत्यु के समय तक रामशास्त्री प्रभु राज्य का मुख्य न्यायाधीश रहा । उसका उत्तरा-धिकारी अय्याशास्त्री हुआ, जिसके विषय म हमको अधिक ज्ञान नही है । कोलाबा का रघुजी आग्रे एक पुराने मराठा परिवार का सम्माननीय व्यक्ति था । वह प्राय पूना आता नाना की योजनाओ का समथन करता तथा अल्प-वयस्क पेशवा की उन्नति मे गहरी रुचि रखता था । रघुजी की मृत्यु २७ माच, १७९३ को हो गयी । इसके बाद उसका परिवार शीघ्र ही महत्त्वहीन हो गया । नागपुर के भोसले परिवार का पूना के कार्यो से निकट सम्पक था तथा वे साधारणतया नाना फडनिस का समथन करते थे । १९ मई, १७८८ को नागपुर मे मुधोजी भोसले की मृत्यु हो गयी । उसके तीन पुत्र थे । ज्येष्ठ रघुजी नागपुर का शासक हुआ । उसने बाद मे अग्रेजो के विरुद्ध १८०३ के मराठा युद्ध मे विशेष भाग लिया । उसके बन्धुओ—खण्डोजी चिमना बापू तथा वेकोजी मन्या बापू—का बाद के मराठा इतिहास से बहुत सम्बन्ध है । उन्होने ब्रिटिश सत्ता के साथ विशेष सम्बन्ध पैदा कर लिये तथा अन्य मराठा सरदारो के सहयोग से यथाशक्ति अग्रेजो का प्रतिरोध करने का प्रयास किया ।

---

[१६] नाटू कृत 'महादजी शिन्दे की जीवनी,' पृ० २५३-५८

अध्याय ११

तिथिक्रम

१७५०	शर्जाराव घाटगे का जन्म ।
७ जनवरी, १७७५	बाजीराव द्वितीय का जन्म ।
१७७८	शर्जाराव नाना फडनिस की सेवा मे ।
२७ माच, १७९३	रघुजी आग्रे की मृत्यु ।
१३ अगस्त, १७९५	अहल्याबाई की मृत्यु ।
२७ अक्तूबर, १७९५	माधवराव द्वितीय की मृत्यु ।
६ जनवरी, १७९६	जीवबा दादा की मृत्यु ।
१२ फरवरी, १७९६	परशुराम भाऊ का जुन्नार जाना ।
२५ फरवरी, १७९६	बाजीराव तथा उसके भाई का पूना लाया जाना ।
२१ माच, १७९६	नाना फडनिस का सतारा गमन ।
१२ मई, १७९६	चिमनाजी राजभवन मे बाजीराव शिन्दे का नजरबन्द ।
२५ मई, १७९६	चिमनाजी को यशोदा बाई ने गोद लिया ।
२ जून, १७९६	चिमनाजी को पेशवा के वस्त्र प्राप्त ।
५ जून, १७९६	मुशीरुल्मुल्क पूना मे कारावास से मुक्त, उसका वहाँ एक वष और ठहरना ।
५ जून, १७९६	नाना फडनिस महाद मे ।
७ अक्तूबर, १७९६	नाना फडनिस का निजामअली से गुप्त समझौता ।
२६ अक्तूबर, १७९६	परशुराम भाऊ तथा बालोबा तात्या नजरबन्द ।
२५ नवम्बर, १७९६	नाना फडनिस का पूना को वापस आना ।
६ दिसम्बर, १७९६	बाजीराव को पेशवा के वस्त्र मिलना ।
३१ दिसम्बर, १७९६	बाजीराव का नाना फडनिस के साथ समझौता ।
२१ फरवरी, १७९७	मैलेट का पूना से अवकाश ग्रहण—यूथोफ उसका स्थानापन्न ।
१३ अप्रैल, १७९७	पूना के मुरलीधर मन्दिर मे दगा ।
मई १७९७	विलियम टोन बाजीराव की सेवा मे ।
१० मई, १७९७	निजामअली खरडा की शर्तों से पूर्णत मुक्त ।

शरदऋतु, १७९७	अमृतराव द्वारा बाजीराव तथा नाना मे वैरशान्ति का प्रयास ।
१५ अगस्त, १७९७	तुकोजी होलकर की मृत्यु । काशीराव उसका उत्तराधिकारी ।
१४ सितम्बर, १७९७	मल्हारराव होलकर का वध—बिठोजी तथा यशवन्तराव का पलायन ।
३० सितम्बर, १७९७	दशहरा के जुलूस मे जाने से नाना फडनिस का इनकार करना ।
३१ दिसम्बर, १७९७	शिन्दे द्वारा नाना का पकडा जाना तथा नजरबन्द होना ।
आरम्भिक मास, १७९८	बाजीराव शिन्दे तथा शर्जाराव द्वारा पूना मे आतकपूण शासन ।
२६ फरवरी, १७९८	बैजाबाई का दौलतराव शिन्दे से विवाह ।
२४ मार्च, १७९८	पामर द्वारा यूथोफ से ब्रिटिश रेजीडेन्सी का भार सँभाला जाना ।
२५ माच, १७९८	रेमाण्ड की मृत्यु ।
६ अप्रैल, १७९८	शोर का गवनर जनरल के पद से अवकाश ग्रहण करना ।
६ अप्रैल, १७९८	नाना फडनिस अहमदनगर मे नजरबन्द ।
१५ अप्रैल, १७९८	अप्पा बलवन्त का विषपान करना ।
१५ मई, १७९८	घाटगे का शिन्दे महिलाओ से दुर्व्यवहार ।
१७ मई, १७९८	रिचड वेलेजली कलकत्ते मे गवनर जनरल नियुक्त ।
२५ जून, १७९८	अमृतराव तथा शिन्दे महिलाएँ पूना के समीप पराजित ।
१५ जुलाई, १७९८	नाना फडनिस नजरबन्दी से मुक्त ।
१६ जुलाई, १७९७	शाहू द्वितीय द्वारा सतारा के समीप रस्ते परास्त ।
१६ जुलाई, १७९८	परशुराम भाऊ मुक्त, उसका शाहू के विरुद्ध प्रयाण ।
१४ अगस्त, १७९८	परशुराम भाऊ द्वारा छत्रपति परास्त तथा नजरबन्द ।
१७९९	शिन्दे महिलाओ का कोल्हापुर जाना ।
अगस्त, १७९९	शिन्दे द्वारा महिलाओ से विराम सन्धि ।
१७ सितम्बर, १७९९	परशुराम भाऊ का पट्टन कुडी मे वध ।
१४ जनवरी, १८००	महादजी की विधवा यमुनाबाई पर छुरी से आक्रमण ।
२६ जुलाई, १८०९	शर्जाराव की हत्या ।
१६ सितम्बर, १८६३	बैजाबाई की मृत्यु ।

अध्याय ११

दुर्बुद्धि कार्यक्षेत्र मे

(१७९६-१७९८)

१ उत्तराधिकारी की खोज मे षडयन्त्र । २ महाद स्थित नाना की आश्चयमयी चालें ।
३ बाजीराव पेशवा बना । ४ धूत त्रिमूर्ति ।
५ नाना फडनिस कारावासी । ६ शिन्दे महिलाओ द्वारा युद्ध ।
७ छत्रपति द्वारा स्वतन्त्र होने का प्रयास ।

१ **उत्तराधिकारी की खोज मे षडयन्त्र**— माधवराव द्वितीय की मृत्यु के पश्चात तुरन्त ही मराठा जगत की अन्तभूत समस्त शक्तियाँ स्वतन्त्र हो गयी । उन्होने एकता तथा सगठन को नष्ट करके राज्य का अन्तिम विनाश २५ वर्षो से भी कम समय मे शीघ्र बुला लिया । इस विपत्ति के कारण नाना फडनिस ही राज्य की नौका का एकमात्र कणधार रह गया । परन्तु ऐसा लगना है कि उसके प्रयत्नो के लिए असफलता निश्चित हो चुकी थी । सत्ता के निमित्त भयावह सघष आरम्भ हो गया । परन्तु पूना मे पेशवा की गद्दी पर उत्तराधिकारी की स्थापना के पूव इस सघप मे बहुमूल्य समय नष्ट हो गया ।

महादजी शिन्दे ने अपनी मृत्यु के समय उच्च प्रशिक्षण प्राप्त शक्तिशाली सेना छोडी थी जो किसी भी भारतीय शासक की सेना से श्रेष्ठ थी । परन्तु इसका नियन्त्रण उसके दत्तक पुत्र दौलतराव शिन्दे के अधिकार मे आ गया जो सासारिक अनुभवहीन १४ वष का बालक था । महादजी की तीन विधवाएँ भी थी—लक्ष्मीबाई, यमुनाबाई तथा भगीरथीबाई । ये स्वयमेव एक शक्ति थी, क्योकि महादजी के वृद्ध तथा अनुभवी सहायक उनके समथक थे । इस प्रकार शिन्दे के वश मे दो दल हो गये । मराठा राज्य का विकास शक्तिशाली सरदारो के शिथिल सघ के रूप मे हुआ था । इसका प्रशासन बिना किसी निश्चित सविधान के सदैव व्यक्तियो द्वारा होता रहा था । ये विभिन्न प्रकार के तत्त्व किसी सविधान से बँधे नही थे । अनियन्त्रित शासन का सदैव यही

दुर्भाग्य रहा हे। सबकी सम्मत्ति मे नाना फडनिस जीवित मन्त्रियो मे योग्यनम था। परन्तु उसको अपने स्वामी से शक्ति प्राप्त हुई थी, वह स्वामी के निर्देशानुसार ही काय करता था। उस समथन से रहित होकर उसकी शक्ति का कोई मूल्य नही रहा।

रघुनाथराव के पुत्र बाजीराव तथा चिमनाजी अप्पा एव उसका दत्तक पुत्र अमृतराव—य ही पेशवा के परिवार से सीधा सम्बन्ध रखने वाले जीवित व्यक्ति थे। ये सब जुन्नार मे नजरबन्द थे। इन पर कठोर पहरा लगा हुआ था। इनको नाना फडनिस से बहुत घृणा थी। चिमनाजी की आयु उस समय केवल ११ वर्ष की थी। वह इतना छोटा था कि स्वय कोई विचार अथवा काय करने मे असमथ था। बाजीराव सावधानतापूवक इस विचार से परिस्थिति का अवलोकन कर रहा था कि इस पद के लिए उसके पिता की बहुत समय तक लालसा रही थी तथा उसने असफल युद्ध भी किया था। नाना ने आश्वासन दिया था कि निजाम के विरुद्ध युद्ध की समाप्ति के बाद वह उनके विषय मे अन्तिम निणय करेगा। जब नाना ने उनके कष्टो की ओर ध्यान नही दिया तो उन्होने बलवन्तराव नागनाथ के द्वारा सीधे पेशवा से प्राथना की। इसका परिणाम पहले ही बताया जा चुका है। नाना ने अपने मन मे बाजीराव तथा उसके बन्धुओ को पेशवा के शासन मे कोई स्थान न देने का निश्चय कर लिया था। परन्तु उसके पास उपायो की सफलता को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक सशस्त्र सेना नही थी। हरिपन्त की मृत्यु के पश्चात पूना मे परशुराम भाऊ पटवधन ही उसका एकमात्र समथक रह गया था। यद्यपि उस समय शिन्दे तथा होलकर दोनो राजधानी मे उपस्थित थे, पर नाना उनका विश्वास नही कर सकता था। रघुजी भोसले भी १७९५ की वर्षा ऋतु मे वही था, परन्तु अपनी मृत्यु के कुछ दिन पूव पेशवा ने उसको नागपुर जाने की अनुमति दे दी थी। वह भीमा नदी तक भी नही पहुँच पाया था कि पेशवा के देहान्त का समाचार उसने सुना। कुछ विपत्तिपूण घटना के तुरन्त बाद नाना ने उत्तराधिकार के विषय मे अपनी योजनाओ को सगठित करने के लिए तास गाव से परशुराम भाऊ को बुला लिया। भाऊ ४ नवम्बर को पूना पहुँच गया। इस सम्बन्ध मे रघुजी भोसले के वकील भी वहाँ पहुँच चुके थे। रघुनाथराव के पुत्रो को वचित रखने सम्बन्धी निश्चय के कारण नाना ने प्रयत्न किया कि सपिण्ड सम्बन्धियो मे से कोई अल्पायु बालक गोद ले लिया जाये। अधिकाश प्रमुख सरदारो ने इस पर आपत्ति की, क्योकि बाजीराव निकटतम उत्तराधिकारी था तथा अज्ञान अपरिचित व्यक्ति की अपेक्षा उसको प्राथमिकता

मिलनी चाहिए थी । परन्तु बाजीराव तथा उसके परिवार के विरुद्ध किये गये अपने पूर्व निश्चय को नाना नही छोड सका तथा मुख्य राजनीतिज्ञो और अधीन सरदारो के निरर्थक सम्मेलनो मे बहुमूल्य समय नष्ट हो गया ।

नाना उस समय शासन का सचालन कर रहा था । वह गोद लेने के उद्देश्य से कई बालक पूना ले आया । वैसे महादजी पन्त गुरुजी सदृश नाना के दल के अधिकाश अनुभवी व्यक्तियो का दूरदर्शितापूर्ण सयत परामर्श इस विधि के विपरीत था । नाना ने इस विषय पर प्रत्येक व्यक्ति से पृथक-पृथक तर्क किया तथा अपने व्यक्तिगत प्रभाव के उपयोग से गोद लेने के प्रस्ताव के विषय मे उनकी सम्मति प्राप्त कर ली, यद्यपि उनकी इच्छा ऐसा करने की बिलकुल नही थी । जैसे-जैसे समय बीतता गया, इस नीति का घोर विरोध किया गया । शिन्दे तथा होलकर ने सुझाव रखा कि यदि किसी बालक को गोद ही लेना है तो यशोदाबाई चिमनाजी अप्पा को गोद ले ले । दोनो विचारो मे सामजस्य स्थापित करने के लिए यह मध्यम मार्ग था । परन्तु इस मार्ग के अपने दोष भी थे । इसका अर्थ बडे भाई बाजीराव का दमन करना होता । उसके स्वत्व की उपेक्षा सरलतापूर्वक नही की जा सकती थी । इस बीच ६ जनवरी, १७९६ को शिन्दे के प्रभावशाली मन्त्री जीवबा दादा बख्शी की मृत्यु हो गयी । वह नाना का मित्र था । उसके स्थान पर बालोबा पगनिस दौलतराव का मुख्य मन्त्री हुआ । उसने चिमनाजी अप्पा के गोद लिये जाने का खुला विरोध किया तथा बाजीराव के पेशवा होने के अधिकार का समर्थन किया । स्वय बाजीराव भी इस समय निरुद्योग नही था । वह छल, कपट तथा धूर्तता की कलाओ द्वारा परिस्थिति को अपने लिए लाभदायक बनाना चाहता था । इन कलाओ पर उसका पूर्ण अधिकार था । उसने दौलतराव तथा उसके मन्त्री बालोबा को अपने पक्ष मे कर लिया और शपथपूर्वक वचन दिया कि उनको सवा करोड रुपये नकद तथा २५ लाख वार्षिक आय का प्रदेश दिया जायेगा । नाना को इस गुप्त चाल का तब तक कुछ भी पता नही चला, जब तक निजामअलीखॉ द्वारा वह इस विपत्ति के प्रति सचेत नही किया गया । इस विपत्ति को टालने के यत्न के रूप मे यह निश्चय किया गया कि यशोदाबाई चिमनाजी को गोद ले ले । इससे कठिनाई और बढ गयी । १२ फरवरी को उसने परशुराम भाऊ को जुन्नार भेजा और आज्ञा दी कि वह चिमनाजी अप्पा को पूना ले आये । उसे आवश्यकता पडने पर बल प्रयोग करने का भी अधिकार दिया गया । इस प्रकार का जटिल तथा टेढा मार्ग अपनाने के लिए नाना के पास विशेष कारण था । भूतपूर्व पेशवा के नाम से उसने अनेक साहूकारो से ऋण ले रखा था ।

यदि विधिपूवक किसी पुत्र को गोद न लिया जाता और उत्तराधिकार बाजीराव सदृश किसी नवीन व्यक्ति को प्राप्त हो जाता तो वह इन ऋणो को चुकाने से सरलतापूवक इनकार कर सकता था, क्योकि पिता के ऋणो का भुगतान करना पुत्र का ही परम्परागत कतव्य माना जाता रहा है।

परन्तु इस योजना के कारण नाना अधिक कष्ट मे फँस गया। जुन्नार पहुँचने पर परशुराम भाऊ ने बाजीराव को अत्यन्त दृढ पाया। उसने चिमनाजी को भाऊ के सुपुद करने से इनकार कर दिया और कहा—"अब पेशवा पद पर मेरा अधिकार है।" अनेक दिनो के तक-वितक तथा अनुनय-विनय के बाद निश्चय किया गया कि सब लोग पूना जाये ओर वहाँ उत्तरदायी अधिकारियो के साथ परामश के बाद कोई हल निकाले। बाजीराव की पत्नी तथा अमृतराव जुन्नार मे ठहर गये और शेष व्यक्ति २५ फरवरी, १७९६ को चल दिये। वे ३ माच को पूना के समीप खराडी स्थान पर पहुँच गये। यहा नाना, ब्रिटिश रेजीडेण्ट मैलेट तथा अन्य प्रमुख व्यक्ति आये और बाजीराव से मिले। बाजीराव तथा नाना के बीच व्यक्तिगत वार्तालाप हुए तथा समझौता हो गया। इसके अनुसार बाजीराव का पेशवा होना और नाना का प्रधान मन्त्री बनना निश्चित हुआ। ११ माच को उन दोनो ने एक दूसरे को गम्भीरतापूवक पत्र लिखकर यह समझौता पक्का कर दिया। परन्तु यह केवल ऊपरी दिखावट थी, क्योकि किसी को दूसरे की सचाई पर विश्वास नही था। इसके अतिरिक्त नाना तथा बाजीराव के बीच इस प्रकार स्वतन्त्रतापूवक हुए समझौते से शिन्दे को बहुत क्रोध आया, क्योकि उस दशा मे शिन्दे को वह विशाल धनराशि प्राप्त होने की सम्भावना नही थी जिसको देने के लिए बाजीराव सहमत हो गया था। जुन्नार मे उपेक्षित एक अन्य व्यक्ति अमृतराय भी इसी परिस्थिति मे था। शिन्दे अपनी शक्तिशाली सेनाएँ पूना भेजने को तैयार हो गया। बाजीराव ने शुभ दिन न मिलने का बहाना लेकर अपना नगर प्रवेश स्थगित कर दिया। शिन्दे ने नाना के प्रत्येक प्रस्ताव का विरोध किया। इसके उत्तर मे नाना ने शिन्दे की सेना के सरदारो को प्रलोभन देने का प्रयत्न किया। बालोबा को समाचार प्राप्त हुए कि नाना के कायकर्ताओ द्वारा उसके जीवन के लिए सकट है। पूना का वातावरण एक दूसरे के उद्देश्यो के प्रति सन्देह, द्वेष तथा भय से व्याप्त हो गया और दोनो पक्ष धीरे-धीरे विरोधी दलो के रूप मे अलग हो गये। इस प्रकार की परिस्थिति मे नाना को मालूम हुआ कि स्वय उसका जीवन सकट मे है। वह सहसा २१ माच को पूना से सतारा की ओर चल दिया। बाजीराव ने छत्रपति के पास समाचार भेजा कि वह

नाना को अपने पास न फटकने दे । इस मन्त्री के पास जो शक्ति थी वह सब नष्ट हो गयी ।

इस समय बाजीराव ने शिन्दे को एक करोड़ स अधिक धन देने की अपनी प्रतिज्ञा का खण्डन कर दिया, क्योंकि वह शिन्दे की सहायता के बिना ही पूना पहुँच गया था । परन्तु उसने शिन्दे के प्रति मधुर भाषा उपयोग करने का पूरा ध्यान रखा और उसे अपना श्रेष्ठ तथा निष्ठापूर्ण मित्र बनाया । बाजीराव को छत्रपति से पेशवा के वस्त्र प्राप्त करने की चिन्ता थी । इस कार्य के लिए उसे शिन्दे तथा नाना दोनो की सहायता की आवश्यकता थी । छत्रपति को भी एक क्षण के लिए शक्ति प्राप्त हो गयी थी । पूना के कष्टों को समाप्त करने की इच्छा से नाना ने छत्रपति को पूर्ण शक्ति से कार्य करके शिन्दे और बाजीराव दोनो की योजनाओ को विफल करने की सलाह दी । परन्तु छत्रपति ने तब तक नाना के परामर्श पर कार्य करने से इनकार कर दिया जब तक वह बाजीराव तथा शिन्दे दोनो का समर्थन प्राप्त न कर ले । नाना सतारा के गढ मे छत्रपति से मिला तथा चिमनाजी अप्पा को पेशवा के वस्त्र दिलाने का निश्चय करने नगर को वापस आया । इस बीच पूना मे शिन्दे तथा बाजीराव ने प्रशासन से नाना को बिलकुल निकाल देने की योजना बना ली थी । उन्होने नाना के सम्मान तथा सुरक्षा का आश्वासन देकर परशुराम भाऊ की सहमति भी प्राप्त कर ली । बाजीराव तथा उसका भाई इस समय शिन्दे के शिविर मे थे और परशुराम भाऊ ने उन पर कठोर पहरा लगा रखा था ।

जब प्रत्येक दल दूसरे को धोखा देने का यत्न कर रहा था तो नाना की प्रेरणा से १२ मई को परशुराम भाऊ ने चिमनाजी अप्पा को उसकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक पालकी मे बैठाकर शनिवार भवन मे पहुँचा दिया । नाना ने उसके भाई बाजीराव को शिन्दे की देखरेख मे बन्दी रखा और उस पर पहरा लगा दिया । शिन्दे और बालोबा ने सतारा से पेशवा के वस्त्र प्राप्त होने की आज्ञा तुरन्त भेज दी । वे राजभवन मे यशोदाबाई से मिले तथा उसे चिमनाजी अप्पा को पुत्र के रूप गोद लेने का परामर्श दिया । भोली लडकी की आयु उस समय १५ वर्ष की भी न थी । वह इस प्रस्ताव को ठुकरा न सकी । कुछ उपस्थित पण्डितो ने गोद लेने के इस कार्य को अनियमित घोषित कर दिया, परन्तु कुछ पण्डित इस कार्य का समर्थन करने वाले भी मिल गये । सम्भवत उनको कुछ प्रलोभन दिया गया था । गोद लेने की विधि २५ मई को पूर्ण हुई और एक सप्ताह बाद २ जून को चिमनाजी को पेशवा के वस्त्र पहना दिये गये । इस कार्य के लिए भव्य दरबार किया गया, जिसमे शिन्दे,

होलकर तथा अन्य प्रमुख सरदार उपस्थित थे । इस प्रकार असाधारण षड्यन्त्र तथा चिन्ता से पूण सात मास व्यतीत होने पर पूना मे पेशवा का रिक्त आसन भग गया ।

२ **महाद स्थित नाना की आश्चयभरी चाले**—मराठा राज्य का वैध शासक चुनने मे होने वाला विलम्ब सवथा घातक सिद्ध हुआ । इससे केवल मतभेद रखने वाले व्यक्तियो को ही नही, बल्कि निजाम तथा अग्रेज सदृश ईर्ष्यालु वाह्य शत्रुओ को भी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ । शिन्दे के लगातार पूना मे रहने के कारण उत्तर मे उसकी शक्ति पूणत असगठित हो गयी । अशक्त चिमनाजी केवल रिक्त स्थान की पूर्ति करने वाला नाममात्र का पेशवा था । वास्तविक शक्ति शिन्दे के हाथो मे थी । उसके अधिक शक्तिशाली होने के कारण परशुराम भाऊ को उसके सामने झुकना पडा । यदि इस समय नाना राजनीति से पूण विदाई ले लेता, तो केन्द्रीय शासन मे एकता स्थापित होने की कुछ सम्भावना थी । परन्तु दुर्भाग्यवश नाना ने स्वतन्त्र खेल आरम्भ कर दिया और अपनी उद्देश्य पूर्ति के लिए उन समस्त कलाओ का उपयोग किया, जिनको धन तथा कूटनीति द्वारा एकत्र किया जा सकता था । वह पूना मे स्थापित व्यवस्था समाप्त चाहता था । चिमनाजी का उत्तराधिकार समाप्त करने का काय उसने क्यो अगीकार किया—सत्ता के मोह के अतिरिक्त इसका कोई अन्य कारण दिखायी नही देता । उसने एक समय इसका स्वय प्रस्ताव किया था । इसी उपाय द्वारा दुष्ट प्रतिभाशील बाजीराव दूर रखा जा सकता था, जिसे रुष्ट करने के लिए नाना आजीवन यथाशक्ति प्रयत्न करता रहा था । नाना को शिन्दे की सैन्यशक्ति का तथा अपने धन पर पडी उसकी लोभ-दृष्टि का भय था । दूसरी ओर शिन्दे को नाना की प्रतिष्ठा तथा राज्य मे उसके प्रभाव से ईर्ष्या थी । शिन्दे का भय नाना के लिए भूत बन गया । अब नाना ने अपनी सारी सम्पत्ति तथा कूटनीति शिन्दे से बचने के लिए दाँव पर लगा दी । उसे पता था कि पूना मे बन्दी मुशीरुल्मुल्क इस समय कारावास से मुक्त होना चाहता है तथा समस्त उपलब्ध साधनो से खरडा की सन्धि द्वारा निजामअली पर लगाये गये दण्डो को प्रभावहीन करने का इच्छुक है । अब अपनी आवश्यकता के समय नाना ने मुशीरुल्मुल्क के साथ गुप्त रूप से सम्पक स्थापित किया तथा इस बात का प्रबन्ध कर लिया कि यदि शिन्दे उसे किसी प्रकार हानि पहुँचाने की चेष्टा करे तो निजामअली से सैनिक सहायता प्राप्त हो सके । इस गुप्त प्रयास का समाचार शीघ्र ही शिन्दे तथा परशुराम भाऊ के कानों तक पहुँच गया । वे इस समय साथ-साथ कार्य कर रहे थे । उनको

इस बात पर अत्यन्त क्रोध आया कि नाना न अपने आजीवन शत्रु का आश्रय ग्रहण किया। उन्होने नाना की दुष्ट प्रगतिया की रोकथाम करने के लिए अविलम्ब उपाय किया। परशुराम भाऊ आजीवन नाना का मित्र रहा था। उसने इस समय बाई स्थित नाना के पास अपन व्यक्तिगत दूत भेजे। भाऊ ने दूत से कहा कि वह नाना का उस कुमाग मे दूर रखे, जिसका वह इस समय अनुसरण कर रहा है तथा विनय करे कि वह राजनीति मे पूण अवकाश ग्रहण करके वनारम मे निवास करे। नाना ने इस मैत्रीपूण आह्वान को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। फलस्वरूप शिन्दे की सेनाएँ नाना को पकडने के उद्देश्य से बाई पर चढ गयी। जब इस प्रगति का समाचार नाना के पास पहुँचा तो वह अकस्मात बाई से चलकर रायगढ पहुँच गया और महाबलेश्वर से महाद तक समस्त पवतीय माग बन्द कर दिये।

पूरे चार मास तक (१० जन से १० नवम्बर तक) नाना ने अपने समस्त कूटनीतिक चातुय का उपयोग किया तथा शिन्दे की सेनाएँ अपने पास न पहुँचने देने एव कई वाह्य शक्तियो का समथन प्राप्त करने के लिए महाद मे रहकर अपना अधिकाश धन व्यय कर दिया। यह प्रयास अत्यन्त गुप्त रूप और चतुरता से किया गया। महाद मे घटित कूटनीति के इस प्रकरण की नाना के जीवन के अद्वितीय अध्याय के रूप मे प्रशसा की गयी है। यह बात अलग है कि इससे राज्य को किसी प्रकार का कल्याण नही हुआ तथा वतमान कष्ट और भी अधिक बढ गये। यदि बीच मे सेनाओ के प्रयाण के लिए सचार मार्गो को व्यवहारत बन्द करने वाली वर्षा ऋतु न आ जाती तो नाना इतनी देर तक शिन्दे के आक्रमण के सामने टिक नही सकता था। महाद मे रहकर उसने जिस माग का अनुसरण किया, उसके कारण परशुराम भाऊ के साथ उसकी आजीवन मैत्री तथा शिन्दे के साथ उसके सम्बन्ध नष्ट होना आवश्यक हो गया।

इस समय शिन्दे को धन की अत्यन्त आवश्यकता थी, क्योकि पूना मे उसको भारी सेना रखनी पड रही थी और उसकी आय कुछ भी नही थी। अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए एकमात्र उपाय निजामअली पर आक्रमण करके बलपूवक उस दण्ड का भुगतान प्राप्त करना था जो खरडा की सन्धि मे निश्चित किया गया था। यह माग सकटपूण था, क्योकि इसके कारण वह नवीन युद्ध मे फँस सकता था। एकमात्र दूसरा विकल्प नाना से बलपूर्वक यथासम्भव धन छीन लेना था। नाना के पास कई करोड का धन होने की प्रसिद्धि फैल रही थी। अत नाना का एकमात्र आवश्यक काय शिन्दे के हाथो

से अपनी रक्षा करना हो गया। खरडा मे अत्यन्त कष्टपूवक प्राप्त लाभो को गँवाकर नाना ने मुशीरुल्मुल्क तथा उसके स्वामी निजामअली को अपनी ओर मिला लिया। साथ ही अपने मित्र मैलेट द्वारा ब्रिटिश समथन प्राप्त करने का प्रबन्ध कर लिया। वास्तव मे इस समय मैलेट को शिन्दे की फ्रेंच प्रशिक्षण प्राप्त सेना से अत्यन्त भय था। अतएव शिन्दे को झुकाने के साधन के रूप मे उसने नाना की प्राथना का तुरन्त अनुकूल उत्तर दिया। यूरोप मे उस समय परिस्थिति शीघ्रतापूवक परिवर्तित हो रही थी। नैपोलियन के नेतृत्व मे फ्रेंच सत्ता का उदय हो रहा था और इगलैण्ड लम्बे युद्ध मे फँसा हुआ था। ब्रिटिश लोग भारत मे शिन्दे को फ्रास का सहायक तथा अपना शत्रु मानते थे। दौलतराव तथा उसके अधीन अधिकारियो को इन यूरोपीय जटिलताओ का कोई ज्ञान नही था। बालोबा पगनिस ने नाना को पकडने तथा कडी नजरबन्दी की धमकी देकर उससे उसका धन छीन लेने का भरसक प्रयत्न किया।

वृद्ध मन्त्री के प्रति सम्मान के कारण परशुराम भाऊ ने नाना के विरुद्ध कठोर उपायो का घोर विरोध किया। शरण स्थान की खोज मे नाना ने ब्रिटिश सुरक्षा के अधीन थाना मे निवास का प्रबन्ध कर लिया। इन समस्त पूर्वोपायो का प्रबन्ध मौखिक सन्देशो द्वारा किया गया, जिससे उसके द्वारा लिखित पत्र पकड न लिये जाये और अपराध के प्रमाण रूप मे प्रस्तुत न कर दिये जाये। इस प्रकार भूतपूव मन्त्री नाना ने अपनी शक्ति पुन प्राप्त करने तथा पूना शासन मे शिन्दे का बढा हुआ प्रभाव नष्ट करने के उद्देश्य से महाद स्थित अपने सुरक्षित स्थान से षड्यन्त्रो का जाल बिछा दिया। पूना मे भी नाना ने अपने समथको का एक दल बना लिया, जिसमे बाबा फडके, तुकोजी होलकर, रघुजी भोसले, मानाजी फडके तथा कुछ अन्य व्यक्ति सम्मिलित थे। उसने अपने पक्ष मे अनेक समीपवर्ती शक्तियो का भी समथन प्राप्त कर लिया। कोल्हापुर के राजा, जजीरा के सिद्दी तथा टीपू सुल्तान की सहानुभूति भी उसे प्राप्त हो गयी। शिन्दे तथा परशुराम भाऊ के विरुद्ध अन्ध आवेश मे नाना इस समय उक्त सरदारो के प्रति परम्परागत द्वेपभाव भूल गया। इसका एकमात्र कारण यह था कि शिन्दे और भाऊ ने नाना को उसकी सत्ता से हटा दिया था। नाना ने मूखतावश कोल्हापुर के राजा से पटवधनो के विरुद्ध उसका समथन करने की प्रतिज्ञा कर ली। इस प्रयास के कारण बाद मे मन्त्री घोर विपत्तियो मे फँस गया।

नाना के काय अधिक समय तक गुप्त नही रह सकते थे, क्योकि शिन्दे उनको सावधानी से देख रहा था तथा बालोबा और परशुराम भाऊ इनके कारण और

भी अधिक रुष्ट हो रहे थे। शिन्दे के शिविर मे भी नाना के मित्र थे—जैसे अबाजी चिटनिस, रामजी पाटिल, रायाजी पाटिल—जिन्होने चातुर्यपूर्ण सुझावो द्वारा अल्पवयस्क दौलतराव पर बालोबा के परामर्श को अपने हित के लिए हानिकारक समझने का प्रभाव डाल दिया। महादजी शिन्दे की कृपापात्र दासी केसरजी पूना के मन्त्री का बहुत आदर करती थी। उसने दौलतराव पर अपना प्रभाव डाला और उसे नाना के साथ शान्ति करने के लिए सहमत कर लिया। नाना ने अपनी पूर्वशक्ति पुन प्राप्त करने के लिए सभी उपाय तथा प्रयास किये। नाना को आशा थी कि वह अपना विपुल धन व्यय करके तथा परम्परागत शत्रुओ को सभी सुविधाएँ देकर अपनी पूर्वसत्ता पुन प्राप्त कर लेगा।

परन्तु नाना ने सबसे बढकर कार्य स्वय बाजीराव को अपनी योजना से सहमत करने का किया। बाजीराव इस समय बन्दी था तथा शिन्दे ने उस पर कठोर पहरा लगा रखा था। अब वह उसको आजीवन बन्दी के रूप मे असीरगढ मे डाल देने वाला था, जिससे चिमनाजी अप्पा की अल्पवयस्कता मे उसको सर्वथा स्वतन्त्र अधिकार प्राप्त हो जाय। इस दशा से बचने के लिए बाजीराव ने नाना के प्रस्तावो की ओर अविलम्ब ध्यान दिया और उस समय दोनो मे अस्थायी रूप से मेल हो गया। शिन्दे के मन्त्री बालोबा तात्या ने नाना की योजना की रोकथाम करने के लिए अविलम्ब उपाय किया। उसने मुशीरुल्मुल्क के पास जाकर उसे ५ जून, १७९६ को निरोध से मुक्त कर दिया। इस प्रकार प्रचलित षडयन्त्रो मे एक और प्रसिद्ध तत्त्व बढ गया। अपने स्वामी के लाभ के लिए परिस्थिति का उपयोग करने के लिए मुशीर पूना मे ठहरा रहा। इस समय निजामअली तथा मुशीरुल्मुल्क दोनो ही अल्प-वयस्क शिन्दे की अपेक्षा नाना के अधिक मित्र थे, क्योकि शिन्दे यह स्पष्ट कह रहा था कि खरडा पर प्रतिज्ञात कर प्राप्त करने के लिए वह हैदराबाद राज्य से युद्ध करेगा। मुशीरुल्मुल्क ने स्वतन्त्र होने पर इस गडबड परिस्थिति से लाभ उठाकर मराठा राज्य के नाश का कार्य किया। उसने मई, १७९७ मे पूना से प्रस्थान किया और जुलाई मे हैदराबाद पहुँच गया।

महाद मे रहकर नाना के षड्यन्त्रो का सचालन करने वाला उसका मुख्य कार्यकर्ता गोविन्दराव काले था। यह मुशीरुल्मुल्क से मिलकर कार्य करता था। गोविन्दराव ने नाना तथा निजामअली के बीच गुप्त सन्धि का प्रबन्ध किया, जिस पर ७ अक्तूबर, १७९६ को हस्ताक्षर हो गये। इस समझौते के द्वारा हैदराबाद के शासक पर लगाया गया युद्ध की क्षतिपूर्ति करने वाला समस्त

विशाल धन तथा प्रदेश समाप्त कर दिये गये। शर्त यह रखी गयी कि बाजीराव के पेशवा पद पर आसीन होने तथा नाना का उसका एकमात्र प्रशासक बनने में निजामअली सम्पूर्ण हृदय से सहायता करेगा। नाना ने प्रतिज्ञा की कि जब बाजीराव पेशवा हो जायगा तो उससे इस सन्धि का प्रमाणीकरण करा लिया जायगा।[1]

इसी प्रकार का गुप्त समझौता नागपुर के भोसले के साथ भी किया गया। स्वयं बाजीराव इस शृंखला की अत्यन्त निर्बल कड़ी था, जिसने इन गुप्त समझौतों के पालन के लिए न कोई प्रतिज्ञा की और न कोई उत्तरदायित्व स्वीकार किया। बाद में उसने वास्तव में इन समझौतों का खण्डन कर दिया तथा नाना का सर्वनाश करने में कोई प्रयत्न या चाल उठा नहीं रखी। उस समय उसने एक निपुण कूटनीतिज्ञ का कार्य किया।

यद्यपि पूना की सरकार ने ६ अगस्त, १७९६ को मुशीरुल्मुल्क को विधिपूर्वक हैदराबाद वापस चले जाने की आज्ञा दे दी, परन्तु वह किसी न किसी बहाने से वहां ठहरा रहा तथा घटनाओं का अवलोकन और शिन्दे के पक्ष का विरोध करता रहा। अपने उद्देश्यों की सिद्धि के लिए नाना ने एक अन्य दुर्बुद्धि पुरुष—अर्थात् शर्जाराव घाटगे—को शिन्दे की सभा में प्रविष्ट कर दिया। इसके सदृश मराठा राज्य के नाश में भाग लेने वाला पात्र इतिहास में दूसरा शायद ही मिल सकेगा। तुलोजी उर्फ सखाराम कागल (कोल्हापुर से करीब १० मील दक्षिण में) के घाटगे परिवार का व्यक्ति था। उसको शर्जाराव की उपाधि वंश परम्परा से प्राप्त हुई और वह इतिहास में इसी नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसका जन्म १७५० के लगभग हुआ था। विचित्र स्वभाव का उत्साही व्यक्ति होने के कारण सम्बन्धियों से झगड़े के बाद उसने अपना घर त्याग दिया तथा परशुराम भाऊ पटवर्धन के अधीन सवारों में भरती हो गया। १७७८ में पूना में मोरोबा फड़निस के विद्रोह के समय जब नाना को अपने जीवन के प्रति संकट मालूम हुआ, तब उसने परशुराम भाऊ से ५०० निष्ठापूर्ण व्यक्तियों का विशेष अंगरक्षक दल माँगा। इन व्यक्तियों सहित सखाराम घाटगे नाना की सेवा में आ गया तथा बहुत समय तक साहस, निष्ठा और सूझबूझ के साथ उसने नाना की सेवा की। मार्च, १७९६ में नाना फड़निस अकस्मात् पूना से सतारा चल दिया तो उसने शर्जाराव को, शायद अपने गुप्त चर के रूप में, दौलतराव की सेवा में प्रवेश करने की अनुमति दे दी। उसने

---

[1] मावजी तथा पारसनिस कृत 'सन्धियाँ तथा प्रतिज्ञाएँ', नं० १०, पृ० २२

शिन्दे के मन मे शीघ्र ही उच्च स्थान प्राप्त कर लिया तथा उसका विश्वस्त अधिकारी हो गया। बाजीराव सदृश प्रसिद्ध बन्दियो की देखरेख का कठिन काय उसे दिया गया जो उस समय शिन्दे की रक्षा मे थे। इस प्रकार शर्जाराव ने विश्वास तथा उत्तरदायित्व का उच्च स्थान प्राप्त कर लिया। इनसे उसे बहुत-सा धन प्राप्त करने का अवसर भी मिल गया। अपनी घूसखोरी को गुप्त रखने तथा अल्पवयस्क शिन्दे के मन पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए उसने अपनी प्रसिद्ध सुन्दरी पुत्री बैजाबाई का विवाह दौलतराव से करने की चाल चली।[२] नवयुवक दौलतराव को मोहित करने वाले बैजाबाई के व्यक्तिगत मनोहर गुणो के अतिरिक्त एक अन्य कारण भी था, जिससे वह इस कन्या से विवाह करने के लिए उत्सुक हुआ। उसके पिता महादजी के समान ही दौलतराव को भी कुलीन मराठा नही माना जाता था। समाज मे घाटगे परिवार को उच्च समझा जाता था। अत दौलतराव ने प्रयत्न किया कि इस परिवार से उसका वैवाहिक सम्बन्ध हो जाय। मराठा समाज के कट्टरपन्थियो ने इस सम्बन्ध का विरोध किया और शर्जाराव भी कुछ समय तक इस पर विचार करने से इनकार करता रहा। बैजाबाई की आयु उस समय १४ वर्ष की थी। विवाह २६ फरवरी, १७९८ को पूना मे हुआ। अब शर्जाराव को शिन्दे के दरबार मे अधिक शक्ति प्राप्त हो गयी, क्योकि उसको नाना तथा अपने जमाई दोनो का समर्थन प्राप्त था। इस समय से उसने व्यवहार रूप मे केवल शिन्दे के राज्य का ही प्रबन्ध नही किया, अपितु पूना के शासन मे भी बहुत शक्ति प्राप्त कर ली। समयान्तर मे वह दौलतराव के लिए भी अति धृष्ट तथा असह्य हो गया। उसने निर्दयतापूर्वक पूना को लूट लिया तथा वहा के निरपराध निवासियो पर कठोर अत्याचार किये। बैजाबाई वृद्धावस्था तक जीवित रही तथा भाग्य के विचित्र उत्थान-पतन का अनुभव करने के बाद १८६३ मे उसका देहान्त हुआ।

३ **बाजीराव पेशवा बना**—मराठा शासन मे शर्जाराव का प्रवेश नाना फडनिस के द्वारा हुआ था। उसने विवेकहीन स्वार्थ तथा अकारण निर्दयता के कारण उस नैतिक उच्चता को समाप्त कर दिया, जिससे अनेक पेशवाओ तथा उनके सहायको ने मराठा राज्य को सुशोभित किया था। जब महाद मे नाना

---

२ ब्राउटन ने अपने मनोहर रेखा-चित्रो मे बैजाबाई तथा उसके पिता दोनो को अमर बना दिया है। पिता की हत्या उसके जामाता की इच्छा पर २६ जुलाई, १८०९ को मानाजी फकडे के पुत्र द्वारा कर दी गयी। बैजाबाई के अनेक बच्चे हुए, परन्तु वे शैशव काल मे ही मर गये।

अपनी याजनाए पूण कर रहा था, तब बाजीराव शिन्दे के शिविर के निरोध मे अपना जीवन नप्ट कर रहा था। वह प्राय अनशन द्वारा आत्महत्या करने के लिए बडबडाता, कसमे खाता और धमकिया देता था। उस समय वह शर्जाराव घाटगे की दखरेख मे था। उसके द्वारा बाजीराव ने महाद स्थित नाना के पास सन्देश भेजना आरम्भ किया कि उसको पशवा का स्थान दिला दिया जाय। नाना न तुर त इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तथा बालोबा तात्या और परशुराम भाऊ दोनो को राजी कर लिया कि वे शि दे को पकडकर बन्दी बना ले (२६ अक्तूबर, १७९६)। ये दोनो इस समय शासन का सचालन कर रहे थे। शर्जाराव ने दौलतराव के द्वारा इस काय का प्रबन्ध इस चतुरता से किया कि दोनो मन्त्रियो को आने वाली विपत्ति की शका तक नही हुई। शिन्दे न अपनी सेना की एक टुकडी कैप्टिन बायड (अमरीकी वेतनभोगी सैनिक) के अधीन महाद को प्रत्यक्ष रूप से नाना को पकडने और ब दी बनाकर पूना को ले आने के विचार से भेजी। बायड के पास नाना के लिए गुप्त पत्र था कि वह बायड के साथ चला आये और अपनी पूव सत्ता ग्रहण कर ले। कार्यान्वित किये जाने वाले कायक्रम का एक अश और भी था, जिसकी कल्पना शिन्दे ने विचित्र रूप से की थी। उसने प्रबन्ध किया कि जैसे ही नाना पूना मे पहुँचे, मुशीरुल्मुल्क तथा यशवन्तराव होलकर एक साथ पेशवा के महल पर धावा बोलकर चिमनाजी को पकड ले, जिससे बाजीराव का रास्ता साफ हो जाये। २७ अक्तूबर को यह समाचार परशुराम भाऊ के पास पहुँचा। वह तुर त अपने सैनिको की एक टोली लेकर राजभवन को दौडा गया और चिमनाजी को अपने ही घोडे पर बैठाकर शीघ्रतापूवक जुन्नार की ओर भाग आया। शिन्दे के सिपाही उसको पकड न सके। होलकर ने शीघ्रता से उनका पीछा किया। शिवनेर के समीप उसका परशुराम भाऊ से सामना हुआ। इस झडप मे वह (परशुराम भाऊ) घायल हो गया तथा बन्दी बनाकर माण्डवगन भेज दिया गया। वहाँ उस पर कठोर पहरा लगा दिया गया। चिमनाजी पकडकर शि दे के शिविर मे पहुँचा दिया गया तथा अपने भाई के साथ कुशलतापूवक ठहरा दिया गया। परशुराम भाऊ तथा उसके पक्षपातियो के घर लूट लिये गये और सम्पत्ति छीन ली गयी।

इस आश्चयजनक चाल का प्रबन्ध नाना की योजनानुसार शिन्दे ने चतुरता-पूवक किया। बालोबा तथा परशुराम भाऊ सदृश अनुभवी व्यक्तियो के विरुद्ध यह विश्वासघातक प्रहार था जो केवल चार मास पूव उसी शिन्दे की इच्छाओ को कार्यान्वित करने के लिए चिमनाजी अप्पा को जुन्नार से पूना ले आये थे।

यह आकस्मिक परिवतन नाना द्वारा दिय गय लाभ का परिणाम था। पूना से चिमनाजी के निष्कासन का समाचार तुरन्त महाद स्थित नाना के पास भेज दिया गया। नाना वहा स चल दिया और २५ नवम्बर को पूना पहुँच गया। नाना के निमन्त्रण पर रघुजी भासल भी उसी समय पूना आ गया। अगले दिन हडपस के स्थान पर शिन्द के शिविर मे नाना विधिपूवक बाजीराव से मिला। इस समय समस्त मुख्य व्यक्ति—शिन्दे, हालकर, भोसले तथा निजाम-अली के प्रतिनिधि रूप मे मुशीरुल्मुल्क—वहाँ उपस्थित थ। इस औपचारिक सम्मिलन के अवसर पर समस्त व्यक्तियो ने बाजीराव का अपन स्वामी के रूप मे स्वागत किया। इन पडयन्त्रो तथा विश्वासघाता क परिणामस्वरूप तभी से मराठो का वचन तथा प्रतिज्ञा समस्त भारत म असत्य तथा विश्वास-घात के पयायवाचक शब्द हो गये। एक शताब्दी मे भी इस कलक को मिटाने मे मराठा जाति समथ नही हो सकी। इस समस्त मराठा पतन का उत्तरा-धिकारी स्वय बाजीराव हुआ तथा उसके वचन का कभी भी विश्वास नही किया गया। उसने लिखित रूप मे नाना से प्रतिज्ञा की थी कि उसके प्रति कोई अन्याय नही करेगा तथा उसको आजीवन पूण कायपालिका शक्ति का उपभोग करने देगा। इसी प्रकार नाना न भी निष्ठापूवक बाजीराव की सवा करने का वचन दिया था। बाजीराव की ओर से दौलतराव तथा नाना की ओर से निजामअली और मुशीरुलमुल्क इन प्रतिज्ञाओ के निष्ठापूवक पालन के लिए उत्तरदायी हुए। स्मरण रखना चाहिए कि नाना तथा मुशीर एक वष पहले तक भयानक शत्रु थे। यह समस्त व्यापार निस्सार तथा अल्पकालीन विराम सन्धि थी। यह शीघ्र ही सिद्ध हो गया कि यह एक छल था जो खूब सोच-विचार कर किया गया था।

अब सतारा के निबल राजा को आज्ञा दी गयी कि वह पशवा पद के नवीन वस्त्र भेजे। ५ दिसम्बर को ये वस्त्र बाजीराव को पहना दिये गये। इस अवसर पर किसी प्रमुख सरदार—सिन्धिया तथा होलकर—ने भी उपस्थित होने की चिन्ता नही की। ६ दिसम्बर को जुलूस सहित बाजीराव नगर मे होकर निकला तथा उसने अपने पैतृक भवन मे प्रवेश किया। यह भवन भूतपूव पेशवा ने गत वष के अक्तूबर मास मे रिक्त किया था।

इस प्रकार १७९६ का वष बाजीराव के लिए अत्यधिक घटनापूण रहा। उसको न कोई शिक्षा मिली थी और न किसी प्रकार का अनुभव था। उसने अपना जीवन निर्माण करने वाले अधिकतम वष निरोध मे व्यतीत किये थे।

अब तक बाह्य जगत से उसका कोई सम्पक नही था। वह केवल भाग्य की लीला के कारण मराठा राज्य के उच्च आसन पर आसीन हो गया था। उसको आरम्भ से ही प्रतिकूल परिस्थिति से सघप करना पडा था, यद्यपि उसका विश्वासघातक तथा दुष्ट हृदय ही उसके अधिकाश कष्टो का कारण था। उसके घनिष्ठ मित्र भी सन्देह तथा क्रोध से न बच सके। शीघ्र ही नाना से उसका झगडा हो गया। उसने नाना से स्पष्ट कह दिया कि वह भूतपूव पेशवा माधवराव की भाँति उसके हाथ की कठपुतली बनकर नही रहेगा। नाना तथा बाजीराव के बीच जो वार्तालाप, समझौते तथा प्रतिज्ञाएँ हुई थी, उनका अथ केवल दोनो पक्षो के वास्तविक अभिप्रायो को गुप्त रखना था। बाजीराव का गद्दी पर बैठे एक सप्ताह भी नही हुआ था कि दोनो का पारस्परिक द्वेष प्रकट हो गया। पेशवा होने पर बाजीराव ने सवप्रथम काय अपने पिता के समस्त परामशदाताओ और साथियो को मुक्त करने तथा उनको अपने व्यक्तिगत सम्पक मे ले आने का किया। इन सबको भूतपूव शासन मे कठोर दण्ड दिया गया था। अब इन लोगो ने नाना से उन अन्यायो का बदला लेना चाहा जो नाना ने उनके साथ किये थे। इन्हे पास रखने के प्रति नाना ने बाजीराव का विरोध किया। परन्तु बाजीराव ने हठ किया कि उसके पास वे ही व्यक्ति रहेगे जिनको वह चाहता है। नाना ने पेशवा से कहा कि वह अपनी रक्षा के लिए राजभवन मे नियुक्त शिन्दे के सैनिको को निकाल दे तथा उस सेवा के लिए अपने हुजरत दल के सैनिको को नियुक्त कर दे। बाजीराव ने इस उचित परामश को घृणापूर्वक अस्वीकृत करते हुए कहा—"ये हुजरत के सैनिक आपके आदमी है। मै इन पर विश्वास नही कर सकता।" इसी प्रकार की दृढता से बाजीराव ने उस सधि को प्रमाणित करने से इनकार कर दिया जो निजामअली के साथ हुई थी और जिसके द्वारा खरडा का युद्ध-व्यय सम्बन्धी धन छोड दिया गया था तथा निजाम के प्रदेश उसको वापस कर दिये गये थे। मुशीरुल्मुल्क उस समय पूना मे ही था। उसने खरडा की सन्धि का सवथा खण्डन किये जाने की माँग रखी। पर बाजीराव इससे सहमत न हुआ। वह अपने अयोग्य कृपापात्रो पर अधिकाधिक धन व्यय करने लगा। उनको भेट तथा पुरस्कार दिये जाते, जिसमे राज्य का कोई हित निहित नही था। इस प्रकार नाना को मालूम हो गया कि प्रशासन का सचालन सम्भव नही है। कुछ ही दिनो मे उनके बीच का तनाव इतना कटु तथा असह्य हो गया कि दोनो ने एक दूसरे के प्रति सन्देह के कारण खुले दरबार मे परस्पर मिलना बन्द कर दिया। आकस्मिक आक्रमण के भय से वे चौबीसो घण्टे

सशस्त्र रक्षको के बीच मे रहने लगे। ऐसी दशा म साधारण प्रशासन की उपेक्षा होना स्वाभाविक था।

बाजीराव तथा नाना के सम्बन्धो के उदाहरण रूप म कुछ पत्र उद्धरण देने योग्य है। ३१ दिसम्बर, १७९६ को अर्थात् पेशवा के गद्दी पर बैठन क केवल तीन सप्ताह बाद उनके बीच गुप्त समझौता हुआ।[3] इन ६ धाराओ मे प्रशासन के सचालन के लिए आधार बनने वाले सिद्धान्तो का उल्लेख था। ये धाराएँ पूव पेशवाओ द्वारा स्वीकृत उदाहरणो की आवृत्ति मात्र थी। १२ धाराओ वाले एक अन्य पत्र मे एक विनम्र प्रार्थना थी, जो नाना न बाजीराव की अनुकम्पामय स्वीकृति के लिए उपस्थित की थी। इसका सार इस प्रकार है—"श्रीमन्त के कल्याणाथ मेरी योजनाएँ अब सौभाग्यवश पूण हो गयी है। मै आपका प्रेमपात्र हो गया हूँ, यह जानकर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ है। अब मेरा शरीर अधिक सेवा के लिए असमथ हो गया है, अतएव मै विनयपूवक किसी शान्त स्थान पर वास करके अपना शेष जीवन शान्तिमय ध्यान मे व्यतीत करने और आपके कल्याण के लिए सदा प्राथना करते रहन की आज्ञा चाहता हूँ। इस उद्देश्य से निम्निलिखित प्राथनाएँ मै श्रीमन्त की स्वीकृति के लिए उपस्थित करता हूँ

१ आपने मुझे पुत्र गोद लेने की आज्ञा पहिले ही दे दी है। यह काम मैं शीघ्र कर लूगा। श्रीमन्त से प्राथना है कि मेरा फडनिस का पद मेरे दत्तक पुत्र को दिया जाये तथा जो लाभ मै इस समय भोग रहा हूँ, वे सब उसको मिलते रहे। आप अपने मन से मेरे विपय मे प्रत्येक सन्देह निकाल दे।

२ इस समय मेरी सेवा मे नियुक्त रक्षादल के अतिरिक्त एक हजार सैनिको को आज्ञा होनी चाहिए कि जहा मै वास करूँ वही वे मेरी सेवा मे रहे।

३ मुझको २५ हजार वार्षिक की जागीर दी जाये।

४ मेरी इच्छा बनारस जाकर शेप जीवन व्यतीत करने की है। मैं विधिपूवक लिखित आज्ञा चाहता हूँ कि आपने इच्छापूवक मुझको अवकाश ग्रहण करने की अनुमति दे दी है (ताकि मुझको विद्रोही न समझा जाय)।

५ शिन्दे, निजामअली, भोसले, कोल्हापुर के छत्रपति तथा अन्य व्यक्तियो से मैने जो राजनीतिक समझौते तथा प्रतिज्ञाएँ की है, उनका उचित पालन किया जाये एव समय की आवश्यकतानुसार उन्हे कार्यान्वित किया जाय।

---

[3] ऐतिहासिक टिप्पणी, जिल्द ४, इतिहास सग्रह, पे० द० न० २१, पृ० १७२

६ आवश्यकतावश सरकारी काय के लिए अपना जो व्यक्तिगत धन मैने व्यय किया हे, उसका भुगतान मिलना चाहिए।

७ हरिपन्त फडके के पुत्रो अबा शेलुकर, दादा गडरे, बजाबा शिरोलकर, घाडो पन्त निजसुरे, रघोपन्त गोडबोले, नरोपन्त चक्रदेव, गोविन्दराव पिगले तथा दीघ समय से राज्य की निष्ठापूवक सेवा करन वाले अन्य लोगो के साथ यथापूव कृपामय व्यवहार हाना चाहिए।

८ मराठा सरदारो अथवा विदेशी शक्तियो के साथ विधिपूवक निश्चित किये गये समझोतो का श्रद्धापूवक पालन होना चाहिए। शिन्दे, होलकर तथा अन्य सरदार राज्यकाय मे परामश देते रहेगे। उनके परामश का उचित मान हाना चाहिए।

इस स्पष्ट पत्र से नाना की राजनीतिक बुद्धि को कोई श्रेय प्राप्त नही हाता—विशेपकर इस बात का स्मरण करके कि २० वर्षो तक बाजीराव के साथ उसके सम्बन्ध इतने अधिक कटु रहे थे कि सरलता से ठीक नही हो सकते थे। बाजीराव से कृपा की आशा रखना नाना के लिए आत्मवचना थी। अपने दत्तक पुत्र को अपना पद तथा लाभ दिये जाने की प्राथना एकदम हास्यास्पद हे, क्योकि गोद लिये जाने वाले व्यक्ति की योग्यता अज्ञात थी।

नाना के कष्ट का मुख्य कारण उसका सचित कई करोड धन था। विद्वान जीवनी लेखक खरे ने पता लगाया है कि उसकी सख्या कम से कम ९ करोड थी। बाजीराव तथा शिन्दे के विश्वास के अनुसार यह धन राज्य को हानि पहुँचाकर अन्यायपूवक एकत्र किया गया था। बाजीराव निधन था तथा उसमे अपना नित्य का भोजन मोल ले सकने की भी सामथ्य नही थी। अत वह हतबुद्धि हो गया कि बिना धन के किस प्रकार अपना निर्वाह करे। उसने अपने भाई अमृतराव को सब मामलो का निपटारा करने के लिए नाना के पास भेजकर समस्त बन्धुओ के साथ पितृतुल्य व्यवहार करने की प्राथना की। अमृतराव से कुछ भी न हो सका, तब बाजीराव ने सुझाव दिया कि मोरोबा फडनिस को कारागार से मुक्त करके उसे प्रशासन सौप दिया जाये। एक समाचार मे इस प्रकार उल्लेख है—"जो कुछ भी अब तक हुआ है, वह भविष्य मे होने वाले की तुलना मे सम्भवत कुछ भी नही है।" इसका अथ था "राज्य का अन्त सन्निकट है।" पूना का वातावरण आशका तथा व्याकुलता से आच्छादित हो गया। वहाँ के साहूकार अपना धन अन्य सुरक्षित स्थानो को ले जाने लगे। हत्या के भय से बाजीराव अपने महल से बाहर निकलने

का माहस नही कर मकना था। बाजीराव ने प्रायश्चित्त की विरोधी विधि द्वारा अपने भाई जिमनाजी के गोद लिये जाने को समाप्त कर दिया।

पटवधना मे बाजीराव को अत्यन्त घणा थी, क्योकि वे उमके पिता के घोरतम शत्रु थे। इनमे परशुराम भाऊ पर उसकी वक्रदृष्टि विशेष रूप से थी, क्योकि वह चिमनाजी अप्पा को बलपूवक जुन्नार से लाया था तथा पशवा पद पर बाजीराव के उत्तराधिकार का विरोध किया था। माण्डवगन के कारागार मे उसके साथ क्रूर व्यवहार किया जा रहा था तथा बाजीराव उमके परिवार के अन्य मदस्यो को भी न्यूनाधिक कष्ट दे रहा था। मराठा राज्य के सौभाग्य से उस समय ब्रिटिश नीति आक्रमणात्मक नही थी। हस्तक्षेप न करने वाला शोर उस समय ब्रिटिश शासन का मुख्य पुरुष था तथा उसी के ममान शान्त यूथोफ मैलेट की अनुपस्थिति मे पूना रेजीडेन्सी का मचालन कर रहा था। भारतीय घटनास्थल पर आगामी महान शामक वेलेजली के आने मे एक वर्ष का ममय था। बाजीराव का राज्य की चिन्ताओ से लेशमात्र भी सम्बन्ध नही था। वह अपने को जनता के सामने प्राथना, पूजा तथा धार्मिक कृत्या मे व्यस्त रखता तथा एकान्त मे निन्दनीय विषयभोग मे तल्लीन रहता। नाना उद्विग्न तथा दयनीय द्रष्टा बना रहा। वह प्रशासन पर प्रभावकारी नियन्त्रण रखने मे असमथ था। इस समय प्रशासन गतिहीन था।[४]

इस प्रकार की परिस्थिति मे पूना मे सहसा एक छोटा-सा दगा हो गया। इसकी स्मृति वहाँ अब तक बनी हुई है। नाना का ससुर विष्णुपन्त गदरे एक साहूकार था। उसने पूना मे मुरलीधर मन्दिर का निर्माण किया था। १३ अप्रैल, १७९७ को मन्दिर की प्रतिष्ठा के ममय सैनिक बैण्ड को बाजे बजाने की आज्ञा हुई। उस समय मराठा सरकार की सेवा मे दो बैण्ड थे—एक अरबो का और दूसरा कैप्टिन बायड के दल का। दोनो नियत समय पर वहा पहुँच

---

४ बाजीराव के राज्यारोहण से मराठा कार्यो पर ब्रिटिश अधिकारियो का प्रभाव बढता रहा। अत हमे पूना के रेजीडेण्टो के नाम ध्यान मे रखने चाहिए—

(१) चार्ल्स मैलेट—३ माच, १७८६—२१ फरवरी, १७९७
(२) यूथोफ—२१ फरवरी, १७९७—२४ माच, १७९८
(३) विलियम पामर—२४ माच, १७९८—७ दिसम्बर, १८०१
(४) बारी क्लोज—७ दिसम्बर, १८०१—२९ जुलाई, १८०९
(५) हेनरी रसल—२९ जुलाई, १८०९—२८ फरवरी, १८११
(६) एल्फिन्सटन—२८ फरवरी, १८११—३ जून, १८१८ तक जब वह बम्बई का प्रथम गवनर नियुक्त हो गया।

गये। प्राथमिकता के प्रश्न पर दोनो मे दगा हो गया। प्रत्येक दल ने हठ किया कि वह पहले बाजे बजावेगा। दगे ने सहसा भयानक उपद्रव का रूप धारण कर लिया। दोनो दलो के कई आदमी मारे गये। इस प्रकार के अशुभ रक्तपात के कारण सस्कार स्थगित करना पडा। वह मन्दिर इस समय भी "हत्याओ का मुरलीधर" कहलाता है। इस घटना का अपना कोई महत्त्व नही है, परन्तु यह इस बात का उदाहरण है कि उस समय पूना के लोगो मे भावनाएँ उत्तेजित हो रही थी।

धन की अधिक आवश्यकता के कारण बाजीराव ने जनता पर कई नये कर लगा दिये। उनमे से एक कर था 'सन्तोष पट्टी'—अर्थात बाजीराव के राज्यारोहण पर हर्ष के कारण जनता का दान। जनता का धन बलपूवक प्राप्त करने का यह विचित्र उपाय नये पेशवा के उवर मस्तिष्क का आविष्कार था। मुशीरुल्मुल्क इस समय भी पूना मे था और अपने स्वत्वो के लिए पूण सन्तोष की माग कर रहा था। इसका निपटारा बडी कठिनाई मे १० मई, १७९७ को हो पाया। खरडा की समस्त शर्तो का निराकरण पेशवा ने प्रमाणित कर दिया। बन्दी तथा युद्ध-शरीर-बन्धक के रूप मे आया हुआ निजाम का मन्त्री विजय के पूण उल्लास सहित वापस गया।[५] पूना स्थित रघुजी भोसले भी अपने स्वत्वो के विषय मे सन्तुष्ट कर दिया गया और जून मे उसको अपनी राजधानी वापस जाने की आज्ञा दे दी गयी। भविष्य मे सद्भावना प्राप्त करने के लिए दौलतराव शिन्दे को अहमदनगर का गढ दे दिया गया।

४ **दुष्ट त्रिमूर्ति**—बाजीराव तथा नाना मे इतना स्पष्ट विरोध हो गया कि नाना ने पेशवा से उसके भवन मे मिलने ने इनकार कर दिया। जो कुछ राज्य काय उससे बन सकता था, उसको अपने घर पर ही करने लगा। एक अन्य व्यक्ति शिन्दे भी उनके कष्टो के लिए उत्तरदायी था। उसने इन दोनो को हानि पहुँचाकर यथासम्भव लाभ उठाने का प्रयत्न किया था। इस प्रकार मराठा राज्य के इन दोनो मुख्य सरदारो ने अपना समय पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता मे नष्ट कर दिया। इन्होने अपने बाह्य कार्यो पर लेशमात्र ध्यान नही दिया। इन्होने उन शत्रुओ का प्रतिकार करने के लिए सैनिक आवश्यकता पर

५ निजामअली के राजदूत रघुत्तम हैबतराव ने कुशलतापूवक यह सब प्रबन्ध किया। मराठा-निजाम तनाव के समय से वह पूना मे रहकर परदे के पीछे से अपना काय कर रहा था। इसका परिणाम मराठा राज्य की हानि के रूप मे निकला।

भी विचार नही किया जो प्रत्येक दिशा मे शांतिपूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। अमृतराव ही एकमात्र व्यक्ति था, जिसको इस प्रकार की स्थिति पर अत्यन्त क्रोध तथा दुख होता था। उसने स्थिति सँभालने के लिए एक ओर अपने भाई बाजीराव तथा दूसरी ओर नाना और शिन्दे पर अपना शान्तिकारक प्रभाव डालने का यथाशक्ति प्रयास किया। परन्तु अन्य दलो ने इन प्रयासो का अर्थ विश्वासघात लगाया। स्वय उसकी कोई शक्ति नही थी, इसलिए वह स्थिति नही सँभाल सका। फिर उसने बाजीराव को तैयार कर लिया कि वह अपनी स्थिति शक्तिशाली बनाने के लिए अपना प्रशिक्षण दल तैयार करे। तब बाजीराव ने खरडा के समय से नाना की सेवा मे नियुक्त अमरीकी कैप्टिन बायड को अपनी सेवा मे रख लिया।

इसी समय आयरलैड निवासी विलियम टोन को भी बायड के अधीन काय करने के लिए नियुक्त किया गया। परन्तु इसके बाद बायड एक वर्ष से अधिक पूना मे ठहर नही सका। टोन लगभग ५ वर्ष (१७९६-१८०१) तक मराठा सेवा मे बना रहा। महेश्वर के समीप नर्मदा नदी पर होलकर तथा शिन्दे के बीच हुए रण मे वह मारा गया। उस समय टोन होलकर की सेवा मे था।[६]

बाजीराव ने अपने नवयुवक मित्र दौलतराम के साथ १७९७ की ग्रीष्म ऋतु विवाहोत्सवो मे प्रसन्नतापूर्वक व्यतीत की। दौलतराव उससे केवल छह वर्ष छोटा था। तुकोजी होलकर इस समय पूना मे था। अब वह वृद्ध तथा अस्वस्थ था और अपने अविनीत पुत्रो तथा विभक्त परिवार का नियन्त्रण करने मे असमर्थ था। १३ अगस्त, १७९५ को अहल्याबाई की मृत्यु हो जाने के कारण इस परिवार पर रहने वाला उसका शान्तिकारक प्रभाव भी नष्ट हो गया। १५ अगस्त, १७९७ को पूना मे उसके शिविर मे स्वय तुकोजी का भी देहान्त हो गया। उसके चार पुत्र थे—काशीराव जो प्रौढ तथा मूर्ख था, मल्हारराव,

---

६ टोन का नाम मराठा इतिहास मे अब तक जीवित है, क्योकि उसने अपने ५ वर्षो के सेवाकाल मे कर्नल मैल्कम को महत्त्वपूर्ण पत्र लिखे थे। ये पत्र बाद मे प्रकाशित हुए है। उनमे मराठा राज्य की स्थिति का स्पष्ट एव विशद वर्णन है तथा वे निष्पक्ष भाव से महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करते है। इन पत्रो का प्रथम प्रकाशन १८०३ के एशियाटिक ऐनुअल रजिस्टर मे हुआ। बाद को वे 'बाम्बे कोरियर' मे प्रकाशित हुए। उनमे बाजीराव, यशवन्तराव होलकर, मानाजी फडके तथा अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियो के उत्तम शब्द चित्र है। उनमे समाज तथा धर्म पर लेखक की आँखो देखी उपयोगी टिप्पणियाँ भी है।

विठोजी तथा यशवन्तराव जो कनिष्ठ था । अन्तिम तीनो पुत्र योग्य तथा वीर थे । ऐसा कोई व्यक्ति न था जो उनकी शक्तियो का नियन्त्रण करके उन्हे किसी उत्तम लक्ष्य की ओर प्रेरित करता । अतएव ये शक्तियाँ परिवार के प्रति लाभप्रद होने के स्थान पर घातक सिद्ध हुई । काशीराव न्यायसगत उत्तराधिकारी था, परन्तु उसमे अपने कार्यो के प्रबन्ध की क्षमता नही थी । शिन्दे के विरुद्ध होलकर परिवार का प्राचीन विद्वेष तथा लाखेरी की स्मृति उनके हृदयो को विकल कर रही थी । बाजीराव का पूर्ण समर्थन प्राप्त होने पर दौलतराव ने प्राचीन अन्यायो का बदला लेने का निश्चय कर लिया । बाजीराव ने तुकोजी के उत्तराधिकारी का स्थान काशीराव को दिया था । दौलतराव ने उस पर नियन्त्रण प्राप्त कर लिया । अन्य तीनो भाई काशीराव के विरुद्ध सयुक्त हो गये तथा नाना फडनिस का समर्थन प्राप्त करने के बाद वे काशीराव का स्थान छीनने के लिए स्पष्ट रूप से कटिबद्ध हो गये । खुले युद्ध को रोकने मे बाजीराव अपने निष्पक्ष प्रभाव का उपयोग न कर सका, क्योकि उसने शिन्दे द्वारा नियुक्त व्यक्ति का समर्थन करने की प्रतिज्ञा कर ली थी । अपने पिता की मृत्यु के बाद तीनो छोटे भाइयो ने अपना पृथक् दल बना लिया । उन्होने अपने व्यक्तिगत स्वतन्त्र अनुचर एकत्र कर लिये तथा ममबुर्दा के निकट ठहर गये ।

उनकी योजना थी कि काशीराव को पकड ले तथा वीर मल्हारराव के हित मे सेना के मुख्य स्थान पर अधिकार प्राप्त कर ले । यदि सम्भव हो सके तो शिन्दे के प्रदेशो पर धावा मारे । होलकर बन्धुओ के अल्प साधनो की तुलना मे अपनी विशाल सेना सहित दौलतराव प्रबल था । उसने अविलम्ब उपाय किया कि या तो होलकर दल के नेता मल्हारराव को पकड ले, या सम्भव प्रतीत हो तो किसी झगडे मे उसको मार डाले । जब मल्हारराव तथा दौलतराव सदृश दो दुस्साहसी नवयुवक निश्चय कर ले कि उनसे जो कुछ बन पडेगा करेगे, जब उन दोनो का अधिपति पेशवा निश्चिन्त उदासीनता की वृत्ति धारण करले तथा यह न समझ सके कि यह तुच्छ गृहोपद्रव आरम्भ होकर अन्त मे विशाल रूप धारण करके उसे तथा उसके समस्त राज्य को निगल जायेगा, तो परिणाम पूर्व निश्चित ही समझना चाहिए । वृद्ध तुकोजी की मृत्यु के ठीक एक मास बाद १४ सितम्बर को शर्जाराव के परामर्शानुसार दौलतराव ने रात्रि के घोर अन्धकार मे अपनी एक सैनिक मण्डली मल्हारराव को पकड लाने के लिए भेजी । मल्हारराव को शिन्दे के प्रयास की सूचना मिल गयी थी, इसलिए वह अपने शत्रुओ से वीरतापूर्वक युद्ध करने के लिए तैयार था । वह शिन्दे की सैन्यमण्डली द्वारा आकस्मिक आक्रमण का प्रतिकार करने के विचार

से अपने थोडे-से साथियो सहित सारी रात जागता रहा। बिना किसी घटना के रात्रि व्यतीत हो गयी। प्रभात होने पर मल्हारराव ने समझा कि आशकित सकट समाप्त हो गया है। वह सैनिक वर्दी उतारकर स्नान चला गया। इस अरक्षित दशा मे उस पर सहसा आक्रमण किया गया तथा वह अपने कुछ साथियो सहित मार डाला गया। उसकी पत्नी जीजाबाई को उस समय कुछ महीनो का गर्भ था। वह सुरक्षा की दृष्टि से पूना मे होलकर के प्रतिनिधि केशवपन्त कुले के घर हटा दी गयी थी। उचित समय पर उसने पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम खाडेराव रखा गया। दौलतराव ने उन मा-बेटो पर अधिकार कर लिया तथा उन्हे अपने शिविर मे नजरबन्द कर दिया।

परन्तु दौलतराव मल्हारराव के दो अन्य बन्धुओ—विठाजी तथा यशवन्तराव—से न निपट सका। वे मल्हारराव की मृत्यु के बाद तुरन्त भाग निकले तथा लूटमार का जीवन व्यतीत करने लगे। उन्होने बदले मे शिन्दे के प्रदेश को लूटना आरम्भ कर दिया। त्रिमूर्ति अर्थात बाजीराव, दौलतराव तथा शर्जाराव ने इस समस्त कष्ट का उत्तरदायित्व नाना के सिर मढ दिया तथा उससे पिण्ड छुडाने के साधन सगठित कर लिये। विदेशी शक्तियो मे अधिक लोकप्रिय होने के कारण उन्हे नाना की ओर से बहुत भय था। पटवर्धन परिवार, अमृतराव, महादजी की पत्नियाँ, शिन्दे के भारतीय अश्वारोही दल के अधिकारी तथा उसके सचिव न्यूनाधिक रूप मे बाजीराव तथा दौलतराव से असतुष्ट थे। उनको प्रेरणा हुई कि वे किसी सगठित होने वाले विरोधी दल मे सम्मिलित हो जाये।

होलकर परिवार की कलह इस बात की सूचक है कि अन्य स्थानो पर भी इसी प्रकार की कलह हो रही थी। जब राज्य शारीरिक दृष्टि से सर्वथा स्वस्थ मनुष्यो की जन्मजात प्रवृत्तियो के लिए वैध साधन जुटाने मे असमर्थ हो जाता है तो वे नियम विरुद्ध तथा लूटमार का जीवन अपना लेते है। राज्य का कर्तव्य है कि इस प्रकार के व्यक्तियो का उपयोगी धन्धो की ओर पूर्व राजाओ की भाँति मार्ग-दर्शन करे। २७ मार्च, १७९३ को रघुजी की मृत्यु पर कोलाबा के आग्रे परिवार मे इसी प्रकार की कलह उठ खडी हुई। दौलतराव शिन्दे की माता इसी परिवार की पुत्री थी। बाद मे दौलतराव से प्रार्थना की गयी कि वह अपने मामा बाबूराव आग्रे की ओर से कोलाबा की उत्तराधिकार कलह मे हस्तक्षेप करे। बाबूराव अपने कोलाबा पर अधिकार प्राप्त करने के उद्देश्य मे कुछ समय के लिए सफल हो गया। परन्तु वह

बुद्धिमत्तापूवक इस सघष से हट गया और दौलतराव के अवीन सेवा करना स्वीकार करके दुखद परिणामो से बच गया।

शर्जाराव की दुष्ट मन्त्रणा द्वारा सचालित तथा बाजीराव की दुष्ट प्रवृत्तिया से सयुक्त दौलतराव का सैनिक बल इस समय मराठा राज्य के समस्त सरदारो, साहूकारो तथा नेताओ के लिए भय का कारण हो गया। समस्त राजधानी मे प्रत्येक समृद्ध पुरुप के विषय मे समाचार भेजने के लिए गुप्तचर नियुक्त कर दिये गये। अब उनका प्रहार नाना पर होने वाला था। उसको राज्यकाय मे अब कोई रुचि नही रह गयी थी तथा वह अपने पास भेजे गये विपयो मे ही अपना परामश देता था। बाजीराव शिन्दे को जाने या उसके निजी महल से अपनी सैनिक रक्षामण्डली को हटा लेने की अनुमति नही देना चाहता था। नाना ने दौलतराव से कहा कि यदि वह पूना छोडकर चला जाये तो उसे बहुत-सा वन दिया जायेगा। बाजीराव नाना से भी आगे बढ गया। उसने शिन्दे से प्रतिज्ञा की कि नाना के प्रतिशोव से अपनी रक्षा करने के लिए वह दो करोड रुपये देगा। दौलतराव के सम्मुख कठिन समस्या उपस्थित हो गयी कि इन दो परस्पर विरोवी योजनाओ मे से वह किसको स्वीकार करे। दोनो दशाओ मे नाना की थैलियो से नियत धन बलपूवक निकालना ही था। दीघकालीन तथा गम्भीर विचार के वाद त्रिमूर्ति ने द्वितीय माग का अनुसरण करने का निश्चय किया—अर्थात नाना के शरीर पर अधिकार कर लिया जाये तथा उसको किसी दुगम गढ मे डालकर उस पर कठोर पहरा लगा दिया जाये। उस दिशा मे वे सुविधापूवक उसके समस्त धन का अपहरण कर सकेगे तथा प्रशासन मे स्वत त्र अविकार प्राप्त कर लेगे। इन दुष्ट योजनाओ का प्रतिकार करने के लिए कुछ सयत राजनीतिज्ञो ने एक आन्दोलन आरम्भ किया कि अमृतराव को प्रशासन का अधिकार दे दिया जाये। १७९७ की वर्पा ऋतु मे अमृतराव उद्योग करता रहा कि नाना से स्वेच्छापूवक अवकाश ग्रहण करने की प्राथना करे तथा समझौता करा दे, क्योकि इस कष्ट का एकमात्र कारण नाना ही माना जाता था। काले, पिगले, चक्रदेव तथा शेलुकर सदृश नाना के पक्षपातियो तथा राज्य के वयोवृद्ध हितैषियो ने अमृतराव की इस योजना का समथन किया। योजना परिपक्व हो गयी। यह योजना कार्यान्वित होने ही वाली थी कि बाजीराव की दुष्ट बुद्धि ने इसे नष्ट कर दिया। उसको अपने भाई अमृतराव का प्राणघातक भय था। अत वह उसका नियन्त्रण पसन्द नही करता था। उस पर विश्वास करने के स्थान पर बाजीराव ने उसे पूना से हटा देने का प्रबन्ध किया। उसने अमृतराव से

कहा कि अपने व्यय के लिए निश्चित वार्षिक वृत्ति स्वीकार करके वह अवकाश ग्रहण कर ले। इस प्रकार त्रिमूर्ति की दुष्ट प्रवृत्तिया के नियन्त्रणार्थ अन्तिम प्रयास भी असफल हो गया।

इस समय टीपू सुल्तान के साथ ब्रिटिश सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गये थे। प्रतीत होने लगा था कि युद्ध सन्निकट है। रेजीडण्ट ने पेशवा से प्रार्थना की कि वह १७९० वाली पहली त्रिदलीय सन्धि का नवीनीकरण कर दे। नाना ने बाजीराव को परामर्श दिया कि वह इस सन्धि मे सम्मिलित हो जाये। नाना की सम्मति मे दोनो मित्रो—पेशवा तथा निजामअली—के एक पक्ष मे हो जाने से शिन्दे का प्रतिकार हो सकता था। परन्तु बाजीराव और शिन्दे अत्यन्त घनिष्ठ मित्र तथा एक दूसरे के लिए अत्यन्त आवश्यक थे। नाना के इस प्रस्ताव मे उनको अपने नाश की गन्ध आ गयी। इसलिए उन्होने इसे अस्वीकृत कर दिया। इसके साथ साथ उन लोगो ने ब्रिटिश सहानुभूति भी खो दी।

५ **नाना फडनिस कारावास मे**—इस समय महादजी शिन्दे की विधवाएँ बाजीराव तथा दौलतराव को बहुत कष्ट दे रही थी। उन दोनो ने सोचा कि इस कष्ट का कारण नाना है। उसी ने इन महिलाओ को युद्ध के उग्र मार्ग पर चलने के लिए उत्तेजित किया है। अत शिन्दे तथा बाजीराव ने नाना को रगमच से सर्वथा हटा देने का निश्चय किया। उन्होने कुछ ही दिन पहले की गयी गम्भीर शपथो तथा लिखित प्रतिज्ञाओ की उपेक्षा कर दी जो उससे की थी। १७९७ के दशहरे के दिन (३० सितम्बर) स्थिति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी। उस दिन नाना ने सदा की भाति जुलूस मे भाग लेने तथा पेशवा को मुजरा करने से इनकार कर दिया। इस कारण भारी उत्तेजना फैल गयी तथा शिन्दे ने नाना पर निगाह रखने एव उसकी स्वतन्त्र गतिविधि बन्द करने के लिए अपनी सेना उसके मकान के चारो ओर लगा दी। १५ दिन बाद बहुत सी सेना लेकर शिन्दे पेशवा से उसके महल मे मिला तथा नाना को वार्तालाप के लिए निमन्त्रित किया। नाना इस सम्मेलन मे उपस्थित हुआ और उसने शिन्दे को तुरन्त उत्तर चले जाने के लिए परामर्श दिया। दौलतराव ने आग्रहपूर्वक कहा कि जब तक उसकी सेनाओ को उनका वेतन नही मिल जायेगा, वह वहा से हट नही सकता। उसने नाना से धन मागा। बाजीराव ने कहा कि वह शिन्दे को धन नही दे सकता, क्योकि उसके पास इतना भी धन नही है कि अपने महल मे दिये जला सके, पान खा सके और नित्य भोजन के लिए चावल मोल ले सके। उसने अपने कष्टो के लिए

नाना फडनिम को उत्तरदायी ठहराया तथा किसी न किसी प्रकार उनका अन्त कर देने का निश्चय किया। इस पर बाजीराव ने शिन्दे को लिखित अनुमति दे दी कि वह नाना को पकड ले, बलपूवक उसके धन का हरण कर ले तथा नाना के अनुचरो और पक्षपातियो से उसको जो कुछ मिल सके, वह छीन ले। कहा जाता था कि नाना ने अपना नकद रुपया सुरक्षा की दृष्टि से इन लोगो को दे दिया है।

नाना पकडा जाने वाला है, यह सनसनीपूण समाचार शीघ्र ही फैल गया। शिन्दे तथा बाजीराव ने बराबर दबाव डाला कि नाना अपने धन का पता बता दे। नाना ने उत्तर दिया कि जब शिन्दे पूना से चल देगा तथा उत्तर भारत की ओर अपने माग पर बुरहानपुर तक पहुँच जायेगा, तब वह अपनी प्रतिज्ञानुसार उसे धन देगा। दौलतराव ने कहा कि जब तक उसकी सेनाओ का वेतन न चुका दिया जायेगा, वे यहा से हटेगी ही नही। उसने मन्त्री से शरीरबन्धक तलब किये, जिससे उसकी अनुपस्थिति मे बाजीराव का कोई अपकार न किया जा सके। साथ ही शिन्दे ने कहा कि दादा गदरे, बजाबा शिरोलकर, गोविन्दराव पिगले तथा अबा शेलुकर तुरन्त उसकी सुरक्षा मे रख दिये जाये। इसका अथ स्पष्ट वैमनस्य था, जिसके सम्बन्ध मे नाना ने अमृतराव से परामर्श किया। जनसाधारण मे मुकेल नाम से विख्यात नेपोलियन के समय का कैप्टिन माइकेल फिलोज उस समय शिन्दे की सेवा मे था। उसको भेजा गया कि वह मन्त्री से मिले तथा शिन्दे का अपने राज्य (उत्तर भारत) के लिए प्रस्थान एव उसकी सेनाओ के लिए शेष वेतन की समस्या का निपटारा करे। स्वय नाना को इस सम्पूण परिस्थिति से अत्यन्त घृणा हो गयी। जो जीवन वह लगभग एक वष से व्यतीत कर रहा था, उसमे उसने स्वय को इस प्रकार अरक्षित पाया कि वह पूना छोडकर किसी अज्ञात स्थान के लिए चले जाने की तैयारियाँ करने लगा। इस समाचार से शिन्दे बहुत भयभीत हो गया, क्योकि यदि नाना भाग निकलता तो वह निश्चय ही उसको तथा बाजीराव दोनो को घोर कष्ट मे फँसा देने का यथाशक्ति प्रयत्न करता। शिन्दे ने इस सकटकाल मे शर्जाराव से परामश किया तथा फिलोज की मध्यस्थता द्वारा, मधुर शब्दो तथा आश्वासनात्मक सन्देशो द्वारा, नाना को असावधान बना दिया। नाना को फिलोज की सत्यनिष्ठा के प्रति विशेष आस्था थी, पर इस समय वह शर्जाराव के हाथो का यन्त्र बन गया तथा दोनो ने मिलकर नाना को बन्दी बनाने की योजना का विवरण निश्चित कर लिया। इसके अनुसार स्पष्ट सघष तथा रक्तपात से बचने के लिए नाना को असावधानी के समय

पकडना निश्चित हुआ । दोलनराव न नाना को निमन्त्रण भेजा—"आप मरी पूना स विदाई सम्बन्धी भोज म मेरे साथ शिविर मे भोजन करे ।' जब इटली निवासी कैप्टिन ने उसको आश्वासन दिया कि इस सहभाज से काई हानि न होगी तो उसने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया । फिलोज न अपना हाथ बाइबिल पर रखकर नाना के सम्मुख शपथ ग्रहण की कि वह शिन्द के प्रस्थान तथा आतिथ्य के सदुद्देश्य का जिम्मेवार है । इस सहभाज के लिए १७९७ का ३१ दिसम्बर निश्चित किया गया । प्रसिद्ध मुरारराव क चचेर भाई तथा नाना के विख्यात मित्र यशवन्तराव घोरपडे ने शर्जाराव के प्रलोभन मे आकर विश्वासघात किया तथा नाना का शिन्दे क शिविर वाले भोज मे निभयता-पूवक जान के लिए तैयार कर लिया । पूना के ब्रिटिश रेजीडेण्ट ने १ जनवरी, १७९८ को गवनर जनरल के पास इस आगमन का ममाचार इस प्रकार भेजा

"नाना ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया तथा लगभग दो हजार अनुचरो का अपन साथ लेकर वह तीसरे पहर शिन्दे के शिविर की ओर चल दिया । शिन्दे ने स्वाभाविक सम्मान सहित प्रवेश द्वार पर उसका स्वागत किया तथा कुछ समय तक साथ-साथ बैठे रहने के बाद वे अन्य कमर मे व्यक्तिगत वार्तालाप के लिए चले गये । यहा पर दौलतराव के चार व्यक्ति उपस्थित थे और नाना के साथ दादा गदरे, अबा शेलुकर, बजावा शिरोलकर, रघोपन्त गाडबोले तथा घोडोपन्त निजमूरे का एक भाई था । कुछ ही देर बाद जब कनल फिलाज के पैदल सैनिका न सम्मेलन स्थान को घेर लिया ता दौलतराव वहा से हट गया । दौलतराव के लगभग २० आदमियो ने सहसा कमरे मे प्रवेश किया और नाना तथा उसके अनुचरो को पकड लिया । उनके समस्त आभूपण तथा अधिकाश वस्त्र उतार लिये गय। तब शिन्दे के सैनिको ने नाना के अनुचरो पर आक्रमण आरम्भ किया । उनको लूट लिया, मार डाला, घायल कर दिया और भगा दिया। शिन्दे की सेना की बडी-बडी टुकडियाँ तुरन्त पूना मे भेज दी गयी तथा उन्होने अपना प्रतिरोध करने वाले लगभग प्रत्येक व्यक्ति को लूट लिया ।" समस्त विवरण इस बात पर एकमत है कि इस घटना मे कनल फिलोज का मुख्य हाथ था ।[७]

---

७ "नाना के प्रति विश्वासघात के कारण फिलोज को शीघ्र ही पूना से भगा दिया गया । इस समय वह बम्बई मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी की रक्षा मे रह रहा है ।" पूना रेजीडेन्सी कॉरस्पौण्डेन्स, जिल्द ६, पृ० १६६—दिनाक ११ दिसम्बर १७९८ का गवनर जरनल के नाम कनल पामर का पत्र ।

बाजीराव ने शिन्दे तथा शर्जाराव को अपना साधन बनाकर यह लज्जा-जनक काय किया। इसका कारण निस्सन्देह नाना के धन के प्रति उसका लोभ तथा उसके हृदय को व्याकुल करने वाली चिरकालीन प्रतिशोध भावना थी।

मराठा शासन के सक्रिय रगमच से नाना के हटाये जाते ही पूना की जनता पर नये कष्ट टूट पडे। आततायियो का मुख्य उद्देश्य मन्त्री, उसके मित्रो तथा सहकारियो से बलपूवक यथासम्भव अधिकाधिक धन एकत्र करना था। पूना के ब्रिटिश रेजीडेण्ट ने अपने उच्च अधिकारी को उन अन्यायो के पूण समाचार भेजे जो पेशवा तथा शिन्दे ने मराठा शासन के नाम से किये थे। कुछ समय तक वे अपने कुकर्मों को किसी न किसी बहाने छिपाने मे समथ हो गये। परन्तु समस्त जनता को सदा के लिए धोखे मे रखना असम्भव था। शीघ्र ही उनके कुकम स्पष्ट प्रकट हो गये। नाना की सेवा मे करीब चार हजार अरब रक्षक थे जो वीर तथा निष्ठापूण सैनिक माने जाते थे। उन्होने इस समय यह धमकी दी कि यदि उनका समस्त शेष वेतन अविलम्ब न दिया गया तो वे पेशवा की सत्ता के विरुद्ध विद्रोह कर देगे। उन्होने विद्रोहात्मक वृत्ति धारण कर ली थी, इसलिए उनको भगाने के लिए शिन्दे की सेना बुलायी गयी। परन्तु वे आसानी से भगाये नही जा सके। उन्होने नगर को घेर लिया और भयकर युद्ध के लिए तैयार हो गये। अपने राजभवन के निकट भयानक रक्तपात के भय से पेशवा बहुत व्याकुल हो गया। उसन अरबो का वेतन शान्तिपूवक देकर उनसे अपना पिण्ड छुडा लिया। अरबो ने तुरन्त पूना के साहूकारो तथा नागरिको के यहा नौकरी कर ली। ये लोग पेशवा को सम्पूण शासनकाल मे निरन्तर पीडा देते रहे। जब १८१८ की ग्रीष्म ऋतु मे मालेगॉव मे अग्रेजो और मराठो के बीच अन्तिम युद्ध हो रहा था, तब उन्होने अग्रेजो के विरुद्ध डटकर लडाई की।

जब नाना फडनिस के बन्दी बनाये जाने के बाद बाजीराव ने अपने राजभवन पर नियुक्त शिन्दे के रक्षक दलो को हटा दिया। उनके स्थान पर उसने अपना दल भरती किया। इस दल को हजरत कहा जाता था। इसके कमाण्डर पर उसने अपना कृपापात्र अबा काले नियुक्त किया, जिसको सैनिक कौशल का कुछ भी ज्ञान नही था। नाना १७९७ के अन्तिम दिन बन्दी बनाया गया था। वह लगभग तीन मास तक पूना मे शिन्दे के शिविर मे बन्द रहा। इस समय शर्जाराव तथा उसके नीच अनुचरो ने पूना एव समीपवर्ती स्थानो की जनता पर वणनातीत अत्याचर किये। उन्होने प्रथम नाना तथा उसके

बन्दी साथियो को अपना धन बताने के लिए विवश किया, परन्तु उनसे कुछ भी जानकारी नही मिल सकी। नगर म नाना के पक्षपातियो—नारायण बाबूराव वैद्य, त्रिम्बकराव परचुरे, गगाधरपन्त भानु, चिन्तोपन्त देशमुख तथा अन्य लोगो—को बहुत पीटा गया ओर उनका समस्त धन छीन लिया गया। जब नारायण वैद्य के कोडे लगाये गये ओर बलपूवक धन प्राप्त करने के लिए उसके साथ शारीरिक दुव्यवहार किया गया तो उसने पेशवा को १ मार्च, १७९८ को वीरतापूवक उत्तर दिया—"आपने मुझको राजभवन मे बुलाया है और कई दिनो से रोके हुए है। मै आपसे स्पष्ट पूछना चाहता हूँ—'आप मुझसे धन क्यो मागते हे ?' यदि मैने कोई अन्याय किया हे तो आप मुझे अवश्य दण्ड दे। आपको धन की आवश्यकता हे, यह बात ठीक है। परन्तु यह कोई कारण नही हे कि आप अपने सेवको से उनका धन छीन ले। इस स्थिति मे मै आपको कुछ भी नही दूगा। आपको मेरी सम्पत्ति के विषय मे भ्रम है। मेरे पास देने के लिए कोई बचत नही हे। यदि आप चाहते हे कि मै ऋण लेकर आपको रुपये दे दू तो मै ऐसा करने से सवथा इनकार करता हूँ। मुझको ऋण मिल भी नही सकता। यदि इतने पर भी आप मुझको घर न जाने देगे तो मै अपने भाग्य के भरोसे रहूँगा। मेरे साथ आप जैसा चाहे वैसा व्यवहार करे। श्रीमन्त का धम सदाचारी, दयालु तथा न्याय-प्रेमी होने का है। मै सभी परिणाम भोगने को तैयार हूँ।"

पेशवा परिवार के एक माननीय वृद्ध सेवक अप्पा बलवन्त मेहेण्डले को जब इसी प्रकार तग किया गया तो उसने विष खा लिया। १५ अप्रैल, १७९८ को उसका देहान्त हो गया। इस प्रकार वह उन अपमानो से बच गया, जिनकी धमकी उसको दी गयी थी। जैसा ऊपर वणन हो चुका है, नाना फडनिस को बन्द करने के साथ ही उसके कुछ सहकारी भी पकडकर बन्धन मे डाल दिये गये थे। दुव्यवहारो की धमकियो के कारण वे मुक्त होने के लिए प्रति व्यक्ति कई लाख रुपये देने के लिए विवश हो गये। बाजीराव तथा शर्जाराव ने नाना के बहुसख्यक मित्रो तथा पक्षपातियो के साथ इसी प्रकार के माग का अनुसरण किया। शर्जाराव ने धन तथा लूट के लिए योजना बनाकर खोज की। वह इस काय के लिए नाना के पूना वाले घर मे रहने लगा। एक लेखक कहता हे—"अपनी पुत्री के विवाह के दसवे दिन से सखाराम घाटगे नाना के मकान मे रहने लगा है। वहाँ नाना की दैनिक पूजा के पवित्र कमरे मे नित्य बकरे काटे जाते है। घाटगे अब नाना के कार्यालय मे उसके आसन पर बैठता है। पूना की जनता इस व्यक्ति को यमराज का

अवतार मानती हे। पेशवा तथा उसके भाई अमृतराव मे नही बनती। अब सत्ता निकम्मे आदमियो के हाथ मे है। शिन्दे ब्राह्मणो को नीचतम व्यक्ति मानता है। ईश्वर जो चाहेगा वह होगा।" इस नीच कृत्य मे घाटगे का साथी एक अन्य दुष्ट-बुद्धि पुरुष बालोजी कुजर भी था। वह इस अकारण लूट तथा पीडन मे घाटगे का पेशवा द्वारा नियुक्त साथी था।

इस विशाल लूट के बीच १६ फरवरी, १७९८ को दौलतराव तथा बैजाबाई का विवाह अत्यन्त शोभा तथा प्रदशन के साथ हुआ। यह प्रदशन पूना के इतिहास मे अभूतपूव था। बधू का पिता साधारण नागरिक से अकस्मात शिन्दे के मन्त्री के स्थान पर पहुँच गया। अप्रत्यक्ष रूप से मराठा राज्य का एक-मात्र नियन्ता होने के लिए शर्जाराव ने दौलतराव का पूण विश्वास प्राप्त कर लिया। कहा जाता है कि उसने दौलतराव को मदिरा पीने तथा अफीम खाने का अभ्यासी बना दिया। इनके प्रभाव मे वह घाटगे की समस्त योजनाओ के प्रति अनुमति दे देता था। उसने यह नीच उद्देश्य अत्यन्त सुविधापूवक सिद्ध कर लिया, क्योकि अपनी पुत्री मे उसको अपनी सत्ता का एक और समथक प्राप्त हो गया था।

६ **शिन्दे महिलाओ द्वारा युद्ध**—आनन्द तथा सत्ता का यह एकछत्र उपभोग सहसा शिन्दे महिलाओ की ओर से आरम्भ किये गये युद्ध के प्रभाव से नष्ट हो गया। यह युद्ध १७९७ के अन्त के समीप छिड गया। महादजी शिन्दे की तीन विधवाएँ थी—लक्ष्मीबाई, यमुनाबाई तथा भागीरथीबाई। उन्होने अपने निर्वाह के लिए पर्याप्त स्वतन्त्र वृत्ति की स्वीकृति मागी। गोद लिये जाने के पहले दौलतराव ने उनसे इस विषय मे लम्बी चौडी प्रतिज्ञा की थी, परन्तु अपने आर्थिक कष्टो के कारण वह इसका पालन न कर सका तथा दक्षिण मे उसके दीघकालीन निवास के कारण ये कष्ट बढते ही गये। इन तीनो महिलाओ को सैनिक तथा प्रशासन सम्बन्धी कार्यों का अनुभव था। उनमे से भागीरथीबाई दौलतराव की हितैषिणी कही जाती थी। अन्य दो जो उज्जैन मे रहती थी, अपने कष्टो के कारण उससे युद्ध करने पर विवश हो गयी। दौलतराव की सेवा मे शक्तिशाली सारस्वत समुदाय ने उनका समथन किया। उत्साहशील लक्ष्मीबाई तथा यमुनाबाई ने चार वष तक लगातार गृहयुद्ध का सचालन किया। इस गृहयुद्ध का क्षेत्र दक्षिण मे पूना और कोल्हापुर से उत्तर मे उज्जैन तथा बुन्देलखण्ड तक फैला हुआ था।

अब हम १७९८ की ग्रीष्म ऋतु मे पहुँचते है जो भारतीय इतिहास मे अनेक अशुभ लक्षणो से परिपूण है। सर जान शोर ने ६ अप्रैल को अवकाश ग्रहण

कर लिया तथा भारत के भावी भाग्य निर्माता लाड वेलेजली ने मुख्य पुरुष के रूप मे कलकत्ता मे १७ मई को कम्पनी के शासन का भार सम्भाल लिया। २६ अप्रैल को वह मद्रास मे उतरा था। २५ माच को निजामअली के फ्रेंच सेनानायक रेमाण्ड की मृत्यु हो गयी। इसी कारण हैदराबाद के दरबार मे ब्रिटिश सत्ता का सुविधापूवक प्रवेश हो गया। इन विदेशी परिवतनो की ओर से बाजीराव तथा शिन्दे की आँखे पूणत बन्द थी। इसी प्रकार उन्होने शिन्दे महिलाओ की शिकायतो पर कोई ध्यान नही दिया। विधवाओ का पक्ष न्याय-सगत था, इसलिए उन्हे निष्पक्ष पयवेक्षको का सावजनिक समथन प्राप्त था। उन महिलाओ के पक्ष मे अबा चिटनिस, नारायणराव बख्शी (जीवबा का पुत्र) तथा शिन्दे के अधिकाश सेनानियो ने सक्रिय रुचि ली, क्योकि महादजी के समय से उन्होने उनकी सेवा और सम्मान किया था।

इन महिलाओ ने भारी अनुचर दल सहित उत्तर से पूना की ओर प्रयाण किया। उनका निश्चय दौलतराव से अपने दुखो के प्रति न्याय प्राप्त करना था। इस आकस्मिक विस्फोट का अनेक असन्तुष्ट उत्साहशील व्यक्तियो ने स्वागत किया। माच के अन्तिम सप्ताह मे नारायणराव बख्शी, देवजी जाउली, रायाजी और रामजी पाटिल तथा अनेक अन्य व्यक्तियो पर महिलाओ के पक्षपाती होने का सन्देह किया गया। अत शर्जाराव के सुझाव पर वे या तो पकडकर अहमदनगर मे बन्द कर दिये गये, या अपमान सहित शिविर से निकाल दिये गये। यह कल्पना की गयी थी कि शिन्दे के शिविर मे नाना फडनिस की उपस्थिति से महिलाओ के विद्रोह को प्रोत्साहन मिलता है। अत वह अकस्मात ६ अप्रैल, १७९८ को अहमदनगर के गढ मे पहुँचा दिया गया। इसी प्रकार बालोबा तात्या को भी वही पहुँचा दिया गया। जब महिलाएँ पूना की ओर बढी तो शर्जाराव घाटगे ने उनसे मिलने और जम्बगाव ले जाने का प्रस्ताव किया। परन्तु उन्होने उसका मुँह देखने से ही इनकार कर दिया। वे उसको अपने दशनो के सवथा अयोग्य अत्यन्त पापी तथा दुष्ट जीवित पुरुष मानती थी। तब दौलतराव स्वय उनसे मिला तथा बुरहानपुर मे उनके निवास का प्रबन्ध करके उनकी अशान्त भावनाओ को शान्त करने का प्रयत्न किया। परन्तु उन्होने बलपूवक छीने गये अपने समस्त आभूषण तथा सम्पत्ति को पुन वापस किये बिना हटने से इनकार कर दिया। इस पर शर्जाराव ने उन पर बल प्रयोग का उपाय किया। बुरहानपुर को उनकी यात्रा का प्रबन्ध किया गया और १५ मई को इसके लिए पालकिया लायी गयी। परन्तु महिलाएँ बाहर आना ही नही चाहती थी, क्योकि उनको विश्वास था

कि बुरहानपुर भेजने के बहाने से वे अहमदनगर पहुँचाकर बन्धन मे डाल दी जायेगी । इस पर शर्जाराव ने उनके कमरो मे घुसकर उनको बहुत-से कोडे लगाये और बाहर घसीट लाया ।

शिन्दे की सेना का मुजफ्फरखाँ नामक एक अन्य सैनिक सरदार महिलाओ के दल मे सम्मिलित हो गया तथा पूना के समीप विशाल गृहयुद्ध आरम्भ हो गया । महिलाएँ तथा उनका दल कोडेगाव से प्रयाण करता हुआ पूना के निकट पहुँच गया । उनकी माँग थी कि शर्जाराव का समपण कर दिया जाये, क्योकि वही समस्त दु खो का कारण है । इस समय अमृतराव ने अपने भाई से अति दुखित होकर घृणापूवक उसका परित्याग कर दिया तथा महिलाओ का समथन किया । नाना फडनिस के नजरबन्द होने के बाद उसे पेशवा का दीवान बनाने की प्रतिज्ञा की गयी थी, पर उसे अभी तक यह पद नही दिया गया था । अपने पक्ष की इस प्रकार की जोरदार वृद्धि प्राप्त करके महिलाओ की सेना लक्ष्मीबाई के निर्देश मे उग्रता से आगे बढी । लक्ष्मीबाई विशालकाय हाथी पर सवार होकर सेना का नेतृत्व कर रही थी । ८ जून को अर्द्धरात्रि के समय उन्होने शिन्दे के शिविर पर आक्रमण किया तथा अग्निवर्षा द्वारा उसकी बहुत हानि कर डाली । दौलतराव इस प्रकार भयभीत हो गया कि उसने महिलाओ के साथ समझौते के लिए मध्यस्थो के रूप मे रायाजी तथा रामजी पाटिल के साथ अबा चिटनिस को भेजा और कहा कि वह उनकी सब मागे स्वीकार करने के लिए तैयार है । वास्तव मे यह उसकी केवल चाल थी, जिसका परामश शर्जाराव ने दिया था । वह चाहता था कि समय मिल जाये और उनको पकडने के उपाय सगठित किये जा सके । व्यथ के शान्ति प्रस्तावो मे कुछ दिन बीत गये । महिलाएँ शर्जाराव के समपण की माग करती रही और दौलतराव इससे इनकार करता रहा । तब महिलाए अपना शिविर खडकी मे ले आयी । यह करके वे असावधान हो गयी थी तभी दौलतराव ने अपने पूरे बल से सहसा उन पर आक्रमण कर दिया । यह आक्रमण २५ जून को किया गया—विशेषकर अमृतराव के शिविर पर, जब उसके सैनिक मुहरम के ताजियो को जलमग्न करने के बाद वापस हो रहे थे । अमृतराव पूणत परास्त हो गया । उसका समस्त शिविर, सज्जा तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति नष्ट हो गयी । उसकी पत्नी तथा पुत्र समीप के गाव मे शरण लेने के लिए भाग गये । वह स्वय दूर तक पीछे हट गया । २७ जून को उसका अपने परिवार से मेल हुआ । इसके बाद शिन्दे महिलाओ ने भाग-दौड के युद्ध का आश्रय लिया । दौलतराव के प्रशिक्षित पैदल इस युद्ध मे उनका सामना नही कर पाये । इस

प्रकार खडकी की विजय से शिन्दे को किसी प्रकार का लाभ नही हुआ। इस दुदशा मे वह बाजीराव के पास गया तथा अत्यन्त दीनभाव से प्राथना की कि वह दोनो के स्वामी की हैसियत से इस कलह मे मध्यस्थ का काय करके युद्ध बन्द करा दे। बाजीराव ने विट्ठलवाडी मे महिलाओ से मिलने का प्रबन्ध किया, परन्तु वे अपनी इस माग से टस से मस न हुइ कि शर्जाराव तथा उसके पॉच परामशदाता उन्हे समर्पित कर दिये जाये। इसका पालन नही हो सका, इसलिए वार्ता असफल हो गयी। अब दौलतराव तथा बाजीराव सब प्रकार असहाय हो गये। उनके पास केवल यही उपाय रह गया कि वे नाना फड़निस से पूना वापस आकर, प्रशासन का भार ग्रहण करने और महिलाओ से सन्धि करके पुन शान्ति स्थापित करने की प्राथना करे। १५ जुलाई को नाना अहमदनगर से मुक्त करके पूना लाया गया। बाजीराव ने इस समय मोरोबा फडनिस को भी मुक्त कर दिया जो १७७८ से नजरबन्द था और इस समय रतनगढ (जिम्बकेश्वर के समीप) मे था। उसे इस विचार से जुन्नार लाया गया कि यदि नाना फडनिस युद्ध बन्द करने मे सफल नही होगा तो उसे दीवान बनाया जायगा। इस बीच मे महिलाओ ने दोलतराव के यूरोपीय अधिकारियो को भी निष्ठाहीन करके अपनी ओर मिला लिया।

यह अच्छी तरह मालूम था कि महिलाओ के कष्ट का मुख्य कारण घाटगे है। यह बात दौलतराव की समझ मे भी पूरी तरह आ गयी थी। अब उसको अपने यूरोपीय अधिकारियो की निष्ठा पर सन्देह हुआ, क्याकि नाना फडनिस स्वतन्त्र हाने से किसी भी समय उससे अपना बदला ले सकता था। इस विचित्र स्थिति मे दौलतराव ने घाटगे को अपने पास से हटा देने का निश्चय किया। इस काम के लिए उपयुक्त बहाना भी तुरन्त मिल गया। माइकेल फिलोज के पुत्र के अधीन सेना के कुछ व्यक्तियो को घाटगे के काय-कताओ ने घायल कर दिया था। नवयुवक फिलोज बिगड गया और उसने घाटगे को उसके दल के चार अन्य व्यक्तियो सहित पकडकर मजबूत रस्सो से बॉध दिया। उन्हे बन्दूको के कुन्दो से पीटते हुए सेना ने बाजार मे होकर निकाला और रात भर एक गन्दे कमरे मे बन्द रखा। अगले दिन वे बाहर लाये गये। उनका शिविर लूट लिया गया और घाटगे घायल कर दिया गया। वह तुरन्त अहमदनगर के गढ मे बन्द कर दिया गया।

उत्तर भारत मे भी बहुत-से शक्तिशाली व्यक्ति महिलाओ से सहानुभूति रखते थे। यहा लकबा लाड ने उनका पक्ष अपना लिया और दौलतराव के कुप्रबन्ध के विरुद्ध खुला विद्रोह आरम्भ कर दिया। लकबा ने महिलाओ

को आर्थिक सहायता भेजी तथा समाचार प्राप्त हुए कि वह महिलाओ की सेना का नेतृत्व करने के लिए दक्षिण आ रहा है। महिलाओ के आह्वान पर निजामअली और नागपुर के भोसले परिवारो के दल भी अपने निवास-स्थानो से चल पडे। इस निकटवर्ती सकट से बाजीराव अत्यन्त भयभीत हो गया। उसने पूना के नागरिको को आज्ञा दी कि वे अपने-अपने गावो को भागकर अपनी रक्षा करे। इस समय वह नाना से नित्य प्रशासन का उत्तरदायित्व ग्रहण करने की प्राथना करता रहा, परन्तु नाना ने तब तक शासनसूत्र सँभालने से दृढतापूर्वक इनकार कर दिया, जब तक निजामअली और ब्रिटिश सरकार सहमत होकर उसको यह आश्वासन न दें दे कि उसके व्यक्तित्व तथा गौरव का किसी प्रकार भी अपमान नही किया जायेगा। स्पष्ट ही इस प्रकार आश्वासन मिलना अशक्य था। एक विरोधी को कम करने के लिए नाना के सुझाव पर बाजीराव ने अपने भाई को ७ लाख वार्षिक आय की जागीर देकर पूना से विदा कर दिया। १ अक्तूबर, १७९८ को यह प्रस्ताव कार्यान्वित हो गया। इस समय से अमृतराव जुन्नार मे रहने लगा तथा व्यावहारिक रूप से बाजीराव के कार्यो से अलग हो गया।

इस समय बाजीराव के राज्यारोहण काल को दो वष व्यतीत हो चुके थे। अब तक प्रशासन के उचित तथा निर्विघ्न रूप से चलने की कोई आशा नही बँध पायी थी। इसके विपरीत, प्रशासन प्रत्येक दिशा मे विकृत हो गया था। देश का नाश करने वाले दोनो प्रमत्त सरदारो की लूटमार, पीडन, युद्धो और अशान्ति से जनता ऊब गयी थी। परिणामस्वरूप यह विश्वास फैल गया कि बाजीराव तथा शिन्दे शासन के लिए सवथा अयोग्य है। मराठा राज्य की रक्षा के लिए उस समय सबसे बडी आवश्यकता शासन मे परिवतन किये जाने की थी। योग्य व्यक्तियो की कमी न थी, परन्तु बाजीराव तथा शिन्दे ने किसी सयुक्त प्रयास की अनुमति नही दी। उन्होने स्वय भी योग्य व्यक्तियो को कोई अधिकार नही दिया। इस खेदजनक ह्रास को नाना फडनिस असहाय होकर देखता रहा, क्योकि उसमे वीरता तथा साहस का स्वाभाविक अभाव था। उसका शरीर और मन भी उसके वतमान कष्टो के कारण प्रत्यक्ष रूप से क्षीण हो गया था। सुयोग्य नेता न होने से दोनो नवयुवको ने अपनी दुष्ट प्रवृत्तियो को पूणत तृप्त किया तथा राज्य को सर्वनाश के निकट पहुँचा दिया। प्रत्येक दिन स्थिति बिगडती ही गयी। विश्वास तथा सचाई का सवथा लोप हो गया था। अग्रेजो ने पेशवा पर दबाव डाला कि वह उस युद्ध मे भाग ले जो वे टीपू सुल्तान से लडना चाहते थे। बढते हुए कष्टो के बीच

सवथा विमूढ होकर शिन्दे ने बाजीराव से आग्रह किया कि वह नाना को वापस बुला ले तथा उसकी इच्छानुसार शर्तो पर प्रशासन उसके सुपुद कर दे। इस परामश के अनुसार १४ नवम्बर, १७९८ को लगभग अद्धरात्रि मे केवल एक नौकर अपने साथ लेकर बाजीराव सहसा नाना के सम्मुख प्रकट हुआ। उसको साष्टाग प्रणाम करके और अपनी आखो मे आँसू भरकर याचना की कि वह राज्य का भार सभाल ले। उसके शब्द इस प्रकार थे—"मै निर्दोष तथा असहाय हूँ। आप मेरे पिता के समान है। मुझको बचाये तथा इस ब्राह्मण राज्य की रक्षा करे।" चतुर पेशवा के इस नाटकीय कर्म पर नाना पिघल गया तथा उसने प्रशासन का काय पुन सँभाल लिया।

नाना ने सवप्रथम इस बात पर बल दिया कि शिन्दे को उत्तर भारत जाने पर विवश किया जाये। १७ जनवरी, १७९९ को बाजीराव ने उसे विधिपूवक आज्ञा दे दी। परन्तु उसके पूना छोडने के पहले ही नाना से भय के कारण बाजीराव अपनी जीवन-रक्षा के लिए कॉपने लगा। उसने शिन्दे से प्राथना की कि उसको मन्त्री, बलोबा और परशुराम भाऊ सदृश व्यक्तियो की दया पर छोडकर वह पूना से न जाये। बाजीराव ने आग्रह-पूवक कहा कि ये व्यक्ति किसी क्षण अमृतराव को बुलाकर मुझको राज्यच्युत कर देगे। इस पर शिन्दे ने अपना प्रयाण पुन स्थगित कर दिया तो कोई आश्चय नही था।

दबाव डालने वाली बाह्य परिस्थितियाँ पेशवा के विरुद्ध यथाशीघ्र शक्ति-सचय कर रही थी। परन्तु विकासो का वणन करने के पहले हमे शिन्दे महिलाओ द्वारा उपस्थित इस युद्धकाण्ड को समाप्त कर देना चाहिए। वैसे यह भावी घटनाओ के साथ भी सम्बन्ध रखता है।

इस समय तक महिलाओ को अपने निर्वाह के लिए कुछ भी प्राप्त नही हुआ था। वे दौलतराव के किसी मौखिक या लिखित आश्वासन पर तब तक विश्वास नही करना चाहती थी, जब तक बालोबा तात्या तथा अबाजी रघुनाथ सदृश शिन्दे के प्राचीन सेवक उनको प्रत्यक्ष आश्वासन नही दे देते। शान्ति प्रस्ताव असफल हो जाने पर दोनो महिलाओ ने सतारा तथा कोल्हापुर के राजाओ के साथ सहयोग करके १७९९ के आरम्भ मे दक्षिण की ओर प्रयाण कर दिया। इस समय नारायणराव बख्शी तथा देवजी गउली महिलाओ के साथ थे। उनके दो अनुचर यशवन्तराव शिवाजी तथा बालाजी कृष्ण ने पेशवा के नासिक तथा खानदेश के जिलो मे स्वतन्त्र रूप से लूटमार आरम्भ कर दी। दक्षिण को जाते हुए महिलाओ ने सागोला, कासे गॉव तथा अन्य स्थानो को

लूट लिया। वहाँ के निर्दोष निवासियो से जो कुछ मिल सका, वह छीन लिया। उन्होने अपने कायकर्ता पहले ही कोल्हापुर भेजकर छत्रपति से मिलने का प्रबन्ध कर लिया था। छत्रपति उनसे कृष्णा नदी के समीप मिला तथा उनके व्यय के लिए कुछ धन भी दिया। दो महीने तक वे तथा छत्रपति परस्पर वार्तालाप करते रहे। उन्होने पेशवा तथा शिन्दे को उनकी सत्ता से हटाने की योजनाएँ बना ली। इस अवसर पर महाराजा के एक अवैध पुत्र का विवाह महादजी की एक पुत्री के साथ कोल्हापुर के समीप अकीवट के स्थान पर १४ मई को हुआ। इस प्रकार उनकी मैत्री पुष्ट हो गयी। अब महिलाओ ने शिन्दे को इस प्रकार धमकियाँ दी कि उसने विमूढ होकर बालोबा तात्या को अहमदनगर मे अपने निरोध से शीघ्र मुक्त कर दिया तथा उसको महिलाओ के साथ सन्धि करने के लिए भेजा। जब वे पूना की ओर वापस आ रही थी, तब बालोबा तथा अबा चिटनिस उनसे मिलने के लिए आगे बढे। सन्धि स्थापित हो गयी और उसके पालन के लिए बालोबा तथा अबा उत्तरदायी बने। अगस्त, १७९९ के अन्त के समीप महिलाओ के विरुद्ध दौलतराव का युद्ध अस्थायी रूप से बन्द हो गया। किन्तु कुछ दिनो बाद ही १४ जनवरी, १८०० को शर्जाराव की सेवा मे रहने वाले एक हत्यारे ने शिन्दे महिला यमुनाबाई के सोते समय अकस्मात छुरा भोक दिया। इससे महिलाएँ अति रुष्ट होकर उत्तर भारत को चल पडी और सौभाग्यवश दक्षिण मे समाप्त अपना युद्ध पुन आरम्भ कर दिया।

७ **छत्रपति द्वारा स्वतन्त्र होने का प्रयास**—अशान्ति तथा उपद्रवो के जघन्य विवरणो को पार करने मे बहुत समय नष्ट हो जायेगा। वे स्वय तुच्छ होते हुए, इस बात के दुखद उदाहरण है कि मराठा राज्य का भवन किस प्रकार विचलित होने लगा था। शिन्दे महिलाओ के विरुद्ध युद्ध के समान सतारा तथा कोल्हापुर के छत्रपतियो से भी बाजीराव को युद्ध करने पडे। इन दोनो युद्धो के परिणाम न्यूनाधिक दु खदायी हुए। इनसे शासन के सम्बन्ध मे बाजीराव की अयोग्यता और भी अधिक स्पष्ट हो गयी। दोनो छत्रपतियो की इच्छा बाजीराव की दासता से मुक्त होने की थी। वास्तव मे वे ही मराठा राज्य के अधिपति थे और पेशवा उनका सेवक था। फिर लेखको द्वारा उन्हे विद्रोही कहना विचित्र बात है। पेशवा माधवराव प्रथम उदारतापूर्वक शिवाजी के वशज राजपरिवार के गौरव की रक्षा करता था। नाना फडनिस के शासन-काल मे सतारा का छत्रपति अत्यन्त दीनावस्था को प्राप्त हो गया था तथा पिछले तीन वर्षो मे उसके क्लेशो की सीमा नही रही थी, क्योकि पूना प्रशासन

मे कोई स्थिरता शेष नही रह गयी थी। कुछ समय तक नाना अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए आशा दिलाता रहा कि वह छत्रपति को उसी प्राचीन आसन पर पुन स्थापित कर देगा जो शाहू के समय मे था। परन्तु यह आशा सफल न हुई। महाराजा शाहू द्वितीय का छत्रसिह या चतरसिह नाम का छोटा भाई उत्साहशील, महत्त्वाकाक्षी और योग्य व्यक्ति था। इस नवयुवक का उत्थान-पतनपूर्ण जीवन प्राचीनकाल के क्षत्रिय परिवारो की अधोगति का ज्वलन्त उदाहरण था। इस समय छत्रपति का केवल यह काय रह गया था कि पूना से विशेप आज्ञा पर किसी व्यक्ति को पेशवा पद के वस्त्र दे दे। उसको यह काय कभी नाना, कभी बाजीराव, कभी शिन्दे अथवा परशुराम भाऊ की इच्छानुसार करना पडता था—वस्त्र प्राप्त करने वाला व्यक्ति राज्य का शासन करने के योग्य हो या न हो।

पूना मे शीघ्रता से होने वाले नवीन परिवर्तनो से चतरसिह तथा सतारा दरबार की सवेदनशीलता इस प्रकार उग्र हो गयी कि उन्होने इन उच्छृङ्खलताओ का दमन करने का निश्चय कर लिया। शिन्दे महिलाओ ने उन्हे उत्तेजित किया। दौलतराव तथा पेशवा के विरुद्ध उनका युद्ध दुष्ट शासन मे स्वस्थ क्रान्ति उत्पन्न करने के लिए समस्त विचारशील मनुष्यो के लिए स्पष्ट आह्वान था। सतारा का चतरसिह कोल्हापुर गया और उसने राजनीतिक परिवर्तन लाने के लिए सम्मिलित प्रयास के विषय मे वहाँ के महाराजा का सहयोग प्राप्त कर लिया। शिन्दे द्वारा नाना फडनिस को बन्धन मे डालने के बाद बाजीराव ने सतारा के छत्रपति को नाना के कायकर्ताओ का दमन करने की उत्तेजना दी थी। छत्रपति को तत्काल काय करने के लिए यह कारण पर्याप्त था। इस आह्वान का राजा शाहू तथा उसके भाई ने तत्परता से स्वागत किया। उन्होने तुरन्त कुछ सैनिक एकत्र करके नगर मे पेशवा के प्रबन्धक आप्टे तथा अभयकर के मकानो पर आक्रमण कर दिया। वे शीघ्र परास्त करके बन्धन मे डाल दिये गये (माच, १७९८)। इस प्रकार छत्रपति अपने गढ तथा नीचे सतारा के नगर मे स्वतन्त्र हो गया। छत्रपति की इस सफलता से भयभीत होकर बाजीराव ने माधवराव रस्ते को छत्रपति का दमन करके नगर और गढ पर अधिकार करने के लिए भेजा। रस्ते अप्रैल मे सतारा पहुँचा, परन्तु चतरसिह के अनुचर विद्रोहियो पर वह कोई प्रभाव न डाल सका। वे बहुत-सी सेना लेकर १६ जून, १७९८ को गढ से नगर मे उतर आये और रस्ते को कई मील पीछे ढकेल दिया। इस पराजय से बाजीराव अत्यन्त भयभीत हो गया। अपनी कोई सेना न होने से उसके सम्मुख इस समय केवल माण्डवगन मे बन्दी

परशुराम भाऊ का आश्रय ग्रहण करने के अतिरिक्त दूसरा कोई चारा नही रह गया। बाजीराव को उससे प्राथना करनी पडी कि वह सतारा जाकर शासन को पुन स्थापित करे। बहुत अनिच्छा होने पर भी बाजीराव ने भाऊ को मुक्त कर दिया। भाऊ तुरन्त आगे बढकर रस्ते के साथ हो गया। ४ अगस्त को चतरसिह परास्त कर दिया तथा नगर और गढ पर अधिकार कर लिया गया। चतरसिंह अपनी प्राणरक्षा के लिए कोल्हापुर भाग गया। इस सकटपूर्ण समय मे कोल्हापुर का दल सतारा को यथासम्भव सहायता देने मे असफल रहा, अन्यथा चतरसिह के लिए पेशवा की सेनाओ के विरुद्ध आक्रमणात्मक युद्ध करने का प्रत्येक अवसर था। इस प्रकार सतारा के छत्रपति का पुन स्वाधीनता प्राप्त करने का प्रयत्न असफल हो गया।

परन्तु कोल्हापुर के छत्रपति शिवाजी की समस्या ने भिन्न रूप धारण कर लिया, क्योकि इसमे उसके आजीवन विरोधी वयोवृद्ध परशुराम भाऊ का दुखद अन्त हो गया। इस समय कोल्हापुर मे रत्नाकर पन्त राजदान नाम का एक चतुर साहसी ब्राह्मण अधिकारी था। उसने राज्य की शक्ति सगठित करके, थोडे-से समय मे दक्षिणी क्षेत्र मे तुगभद्रा नदी तक पेशवा और पटवधनो के प्रदेशो पर अधिकार कर लिया। इस परिणाम के लिए स्वय नाना फडनिस कुछ अश तक उत्तरदायी था। १७९६ की शरद् ऋतु मे जब नाना महाद के स्थान पर क्लेशपूण स्थिति मे था तथा अपने आजीवन मित्र परशुराम भाऊ से बदला लेने को व्याकुल था, तब इसने कोल्हापुर के छत्रपति को पूना की परिषद् की शक्ति का दमन करने के लिए प्रोत्साहित किया। इस काय के लिए उसने अपने पास से धन भी दिया। इसके अतिरिक्त नाना ने कोल्हापुर के राजा से गम्भीर प्रतिज्ञा की कि यदि पटवधन लोग उस पर आक्रमण करेंगे, तो वह उसकी रक्षा के लिए अपनी समस्त शक्ति का उपयोग करेगा। नाना की इस अवसरवादिता से छत्रपति तथा उसके चतुर मन्त्री रत्नाकर ने पूर्ण लाभ उठाया और पूना को हानि पहुँचाकर अपनी शक्ति बढा ली। इस प्रकार परिस्थिति भयानक हो गयी। नाना ने परशुराम भाऊ को कोल्हापुर के विरुद्ध युद्ध न करने के लिए तैयार करने का प्रयत्न किया। पटवर्धन सरदार इस शक्तिहीन स्थिति को कैसे स्वीकार कर सकते थे, क्योकि वशपरम्परागत प्रयास तथा रक्त और धन के बलिदान द्वारा निर्मित उनके अस्तित्व को ही भय था। परशुराम भाऊ तथा उसके विशाल परिवार के व्यक्ति आत्मरक्षा मे कोल्हापुर के विरुद्ध अस्त्र ग्रहण करने के लिए विवश हो गये। परशुराम ने तासगॉव मे अपना महल बनाया था तथा अपने परिवार के स्थायी निवास

स्थान के रूप मे इसको वर्षो तक सावधानी तथा परिश्रम मे सजाया था। छत्रपति ने उसके समस्त भवनो तथा नगर को भस्म कर दिया। इससे भाऊ का धैय समाप्त हो गया। इस अन्याय का बदला लेने का निश्चय करके उसने उत्सुकतापूवक प्रस्थान किया। इस समय शिन्दे महिलाओ ने कोल्हापुर के राजा के साथ सहयोग कर लिया था, इसलिए वीर चतरसिह ने उनके आक्रमण मे अपनी सहायता दी। १७९९ मे कई महीनो तक रक्त रजित युद्ध होता रहा।

परशुराम भाऊ के चार वीर पुत्र थे, जिनके सहयोग से उसने विशाल अभियान का सगठन किया तथा १७९८ के अन्त के समीप कोल्हापुर के प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। आगामी वप भर घोर सघप होता रहा। इसके विवरणो के पूण वणन की आवश्यकता नही है। परशुराम भाऊ ने कोल्हापुर के दक्षिण मे करीब ३० मील पर निपानी के समीप पट्टन कुडी नामक स्थान पर अपना शिविर लगाया। इस पर १६ सितम्बर, १७९९ को छत्रपति ने सहसा आक्रमण कर दिया और परशुराम भाऊ असावधान होने के कारण अपनी प्राणरक्षा के लिए लडता हुआ मारा गया। उसका शव छत्रपति के सम्मुख लाया गया। इस सफलता पर छत्रपति इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि बदले के आवेश मे शव का अपमान कर बैठा तथा उसका अन्त्येष्टि सस्कार नही होने दिया। परन्तु भाऊ के पुत्र—विशेषकर उसका ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र पन्त—सवथा समथ थे। उन्होने निभयतापूवक वीर युद्ध किया और कोल्हापुर को घेरकर छत्रपति को कठोर यातनाएँ दी। शिन्दे तथा बाजीराव दोनो को आत्मरक्षा के निमित्त छत्रपति का दमन करना आवश्यक प्रतीत हुआ, क्योकि वह शिन्दे महिलाओ से मिला हुआ था। अत शिन्दे ने पटवधनो की सहायताथ कैप्टिन ब्राउनरिग के अधीन अपना शक्तिशाली तोपखाना पूना से भेजा। इस प्रकार १८०० की ग्रीष्म ऋतु मे भी यह युद्ध चलता रहा। इस समय शर्जाराव घाटगे को सत्ता पुन प्राप्त हो गयी थी। उसने पटवधनो को मिलने वाली शिन्दे की सहायता बन्द कर दी तथा ब्राउनरिग को पूना वापस बुला लिया। ३० अप्रैल को रामचन्द्र पन्त ने कोल्हापुर का घेरा त्याग दिया और जामखिण्डी को चला गया। वहाँ पर उसके वशज बहुत दिनो तक शासन करते रहे। यह द्वितीय युद्ध मराठा राज्य को व्यस्त करने वाले गृहयुद्ध का सबल प्रतीक है।

अध्याय १२

तिथिक्रम

१२ फरवरी, १७४२	नाना फडनिस का जन्म ।
२६ फरवरी, १७९६	निजामअली को पक्षाघात ।
अन्त १७९६	दि बायने का शिन्दे की सेवा से अवकाश ग्रहण—पेरो उसके स्थान पर ।
फरवरी, १७९७	आर्थर वेलेजली का भारत मे आगमन ।
४ अक्तूबर, १७९७	रिचर्ड वेलेजली गवनर जनरल नियुक्त ।
७ नवम्बर, १७९७	रिचड वेलेजली का भारत को प्रस्थान ।
२५ माच, १७९८	रेमाण्ड की मृत्यु ।
२६ अप्रैल, १७९८	रिचर्ड वेलेजली का मद्रास पहुँचना ।
२६ अप्रैल, १७९८	टीपू के लिए फ्रेच सहायता का आना ।
१ सितम्बर, १७९८	निजामअली के फ्रेंच अधिकारियो का निष्कासन ।
२६ अप्रैल, १७९९	बालोबा तात्या का मुक्त होना ।
४ मई, १७९९	टीपू का वध, आथर वेलेजली का मैसूर पर अधिकार, यशवन्तराव होलकर का नागपुर को पलायन ।
१३ माच, १८००	नाना फडनिस की मृत्यु ।
३१ मई, १८००	शिन्दे द्वारा अपने अधिकारियो का वध ।
८ जुलाई, १८००	नारायण बख्शी का वध ।
८ जुलाई, १८००	यशवन्तराव होलकर द्वारा अहल्याबाई के धन पर अधिकार तथा उज्जैन की लूट ।
१ नवम्बर, १८००	यशवन्तराव द्वारा उज्जैन के समीप शिन्दे महिलाओ पर धावा ।
दिसम्बर, १८००	दौलतराव का पूना से उत्तर को प्रयाण ।
जून-सितम्बर, १८००	आथर वेलेजली द्वारा ढोंडिया बाघ का पीछा ।
३० जून, १८००	ढोंडिया का गोखले पर सहसा आक्रमण ।
१० सितम्बर, १८००	बेलारी के समीप ढोंडिया का वध ।

आरम्भ, १८०१	बिठोजी होलकर द्वारा पेशवा के प्रदेश पर धावा।
अप्रैल, १८०१	बापू गोखले का बिठोजी को पकड लेना।
१६ अप्रैल, १८०१	बिठोजी होलकर का वध।
मई अक्तूबर, १८०१	यशवन्तराव तथा दौलतराव के बीच नर्मदा के समीप रण।
मई-अक्तूबर, १८०१	पेरो द्वारा झाँसी के समीप महादजी की विधवाएँ परास्त।
७ दिसम्बर, १८०१	पामर द्वारा पूना मे पलोज को कार्यभार दिया जाना।
फरवरी, १८०२	होलकर थलनेर मे, पाराशर दादाजी पूना मे।
७ फरवरी, १८०२	घावो के कारण लकबा लाड की मृत्यु।
अप्रैल, १८०२	यशवन्तराव का पूना की ओर आगमन।
२५ अक्तूबर, १८०२	यशवन्तराव द्वारा पूना मे पेशवा परास्त, उसका सुरक्षार्थ बसई को पलायन।
६ अगस्त, १८०३	मुशीरुलमुल्क की मृत्यु।
१८२० २५	नकली यशोदाबाई पेशवा का उत्तर मे प्रकट होना।

अध्याय १२

सकट की ओर

(१७६८-१८०१)

१	भारत मे महान शासक का आगमन ।	२	वेलेजली की प्रथम सफलता ।
३	नाना फडनिस की मृत्यु तथा उसका चरित्र ।	४	ढोडिया बाघ का विद्रोह ।
५	यशवन्तराव होलकर का उदय ।	६	बिठोजी होलकर का वध ।
७	यशवन्तराव होलकर रक्षक की स्थिति मे ।	८	यशवन्तराव का दक्षिण को प्रस्थान ।
		९	बाजीराव पूना मे परास्त ।

१ भारत मे महान शासक का आगमन—१८वी शताब्दी के अन्तिम दशक मे भारत मे अराजकता तथा अव्यवस्था का दृढतापूवक दमन करने वाली कोई केन्द्रीय शक्ति नही थी । इसलिए समस्त देश मे गृहयुद्ध तथा अव्यवस्था न्यूनाधिक उग्रता सहित व्याप्त रहे । इस सकटकाल मे भारतीय रगमच पर रिचड वेलेजली का आगमन हुआ । वह अपनी व्यापक दृष्टि तथा प्रेरक शक्ति मे समकालीन व्यक्तियो से बहुत आगे बढा हुआ था । उसने ब्रिटिश भारतीय कूटनीति एव युद्ध मे तुरन्त नवीन जीवन-शक्ति फूक दी तथा अपने सात वष के शासनकाल मे भारतीय इतिहास की गतिविधि सवथा बदल दी । ४ अक्तूबर, १७९७ को इगलैण्ड मे वेलेजली की नियुक्ति गवनर जनरल के पद पर हुई । ७ नवम्बर को वह अपनी समुद्रयात्रा पर चल दिया । गुड होप अन्तरीप पर मेजर डब्ल्यू० कक पैट्रिक से उसकी भेट हुई । यह भारतीय कूट-नीतिक उस समय अपने देश को वापस जा रहा था । उसके साथ वेलेजली का भारतीय परिस्थिति पर लम्बा वार्तालाप हुआ । वेलेजली ने उससे अपनी प्रश्नमाला के लिखित विस्तृत उत्तर प्राप्त किये । इनसे उसको भारतीय परि-स्थिति का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त हो गया, जिसमे निर्णायक भाग लेना उसी के

भाग्य मे लिखा था। २६ अप्रैल, १७९८ को वेलेजली मद्रास पहुँच गया। दक्षिणी प्रान्त मे कुछ दिनो तक ठहरकर वह १७ मई को कलकत्ता पहुँचा तथा उसी दिन अपना पद ग्रहण कर लिया। इस पद पर वह सात वष से भी अधिक समय तक काय करता रहा। वहाँ से उसने ३० जुलाई, १८०५ को त्यागपत्र दिया। उसकी असाधारण महत्त्वाकाक्षा अपने देश की महत्ता मे वृद्धि करने की थी। दृढ साहस, सत्ता के प्रति प्रगाढ प्रेम तथा योग्य साधनो के निर्वाचन की अद्भुत क्षमता उसके विशेष गुण थे। उसने अपने अधीन अधि-कारियो को अपनी इच्छानुसार आचरण करने पर विवश करके राजसी सत्ता का उपभोग किया। भारत के ब्रिटिश शासको मे इस दृष्टि से सम्भवत वह महत्तम सिद्ध हुआ। १७८९ की फ्रेच क्रान्ति से फ्रेच राष्ट्र की जन्मजात शक्तिया जाग्रत हो उठी थी और उसकी विजयी सेनाएँ उल्लासपूवक यूरोपीय महाद्वीप की समस्त दिशाओ मे प्रयाण कर रही थी तथा दास जातियो को स्वाधीनता, समानता और भ्रातृत्व का सन्देश पहुँचा रही थी। इस प्रकार की विश्व क्रान्ति मे केवल इगलैण्ड बाधक था। १७९७ मे जनरल बोनापाट ने आस्ट्रिया तथा इटली पर प्रभुत्व स्थापित करके पूव की ओर ध्यान दिया। उसका लक्ष्य भारत विजय था। वह यहाँ ईजिप्ट (मिस्र) तथा सीरिया के माग से पहुँचना चाहता था। उसने टीपू सुल्तान को पत्र लिखकर फ्रेच सहायता का प्रस्ताव किया तथा उससे अपने प्रतिनिधि मोचा और मसकत भेजने की प्राथना की जो उसको अभिप्रेत साहसिक काय के लिए आवश्यक जानकारी दे सके। इन फ्रेच योजनाओ की ओर वेलेजली ने विशष ध्यान दिया तथा अपने आगमन पर भारत से फ्रेच सत्ता के सर्वथा निराकरण का तुरन्त निश्चय कर लिया।

इस समय से पूव इसी शताब्दी मे पेशवा माधवराव प्रथम तथा महादजी शिन्दे सदृश कुछ महापुरुष भारत ने उत्पन्न किये थे, परन्तु इस समय राष्ट्रीय स्रोत शुष्क हो गया प्रतीत होता था। इस समय भारत मे आये हुए साम्राज्य-वाद के इस महान समथक (वेलेजली) से टक्कर लेने वाला कोई व्यक्ति जीवित नही था। जब वेलेजली भारत की ओर समुद्रयात्रा कर रहा था, तब बोनापाट ने अपने प्रयाण के लिए स्थलीय माग का अनुसरण किया। उसका उद्देश्य ब्रिटिश महत्त्वाकाक्षाओ का दमन करना था। अपनी यात्रा मे वेलेजली फ्रेच जनरल की योजनाओ के प्रतिकार के सम्बन्ध मे उत्तम उपाय सोच रहा था कि सयोगवश फ्रेच भाषा मे लिखा हुआ एक पत्र उसके हाथ मे पड गया। इस पत्र मे मारिशस के गवनर जनरल द्वारा निकाली हुई एक घोषणा थी।

इसमे उस टापू के फ्रेच लोगो को मैसूर के टीपू सुल्तान की सहायताथ निर्मित होने वाले दल मे भरती होने का आह्वान किया गया था। सुल्तान ने उनका व्यय सहन करने का प्रस्ताव किया था और इस काय के लिए अपने कायकर्ता मारिशस भेजे थे। इन कायकर्ताओ न लगभग दो सौ रगरूट एकत्र कर लिये थे और उनको लेकर मगलौर चल पडे थे। वे २६ अप्रैल को अपने जहाजो से वहा उतर पडे। ठीक उसी दिन वेलेजली मद्रास मे उतरा।

उस समय टीपू सुल्तान, निजामअली तथा दौलतराव शिन्दे केवल इन्ही तीन भारतीय शासको की सेवा मे कुछ सख्या मे फ्रेच लोग थे। बुसी के समय से भारतीय शासको को अपनी सेनाए पश्चिमी शैली पर पुन सगठित करने, विशेषकर अपने तोपखाने को उन्नत करने तथा पर्याप्त प्रशिक्षित पैदल सेना द्वारा इसको पुष्ट करने की धुन-सी सवार थी। भारतीय लाग इस काम मे अत्यन्त अकुशल थे। निजामअली ने इसी उद्देश्य से जनरल रेमाण्ड को रखा था। दौलतराव की सेवा मे पेरो था जिसने १७९६ मे दि बायने के अवकाश ग्रहण करने पर उसका स्थान लिया। इन भारतीय सेनाओ को इगलिश न कहकर फ्रेच क्यो कहा जाता था, यह निष्पक्ष विद्यार्थी कभी नही समझ सकता। यद्यपि इन दोनो स्थितियो मे कमाण्डर जनरल दैवयोग से फ्रेच लोग थे, परन्तु सवसाधारण सैनिक शुद्ध भारतीय थे। यदि कुछ मुख्य स्थानो पर थोडे से फ्रेच अधिकारी थे तो अन्य स्थानो पर कुछ अग्रेज भी थे। परन्तु वेलेजली ने अपने सिद्धान्तानुसार (अर्थात मनुष्य को राक्षस कहकर उसकी हत्या कर दी) उन सबको फ्रेच सेनाएँ कहना उचित समझा, क्योकि इस प्रकार वे सब इगलैण्ड की शत्रु हो गयी। आश्चय तो यह है कि दौलतराव तथा निजामअली फ्रेच तथा इगलिश का भेद तक नही जानते थे। भारतीयो के अनुसार समस्त यूरोपीय एक जाति (टोप वालो की जाति) के थे, जैसा कि उन्हे समस्त भारतीय भाषाओ मे कहा जाता था। भारतीयो की कल्पना मे यदि उनको कोई विशेष प्रशिक्षण प्राप्त न भी हुआ हो तब भी वे सैनिक विपयो मे समान रूप से निपुण थे। टीपू सुल्तान के पास ईस्ट इण्डिया कम्पनी को अपना शत्रु समझने का पर्याप्त कारण अवश्य था, क्योकि उन्होने टीपू के अस्तित्व के लिए ही सकट उपस्थित कर रखा था।

दौलतराव अपने सैनिक अधिकारियो का किस प्रकार नियन्त्रण करता था अथवा वह भारत की राजनीतिक परिस्थिति कहाँ तक समझता था, यह भावी घटनाक्रम द्वारा प्रत्यक्ष हो गया। फ्रेच जनरल पेरो दौलतराव का ही सेनानी था। उसने सकटपूण समय मे अपने स्वामी का पक्ष त्याग दिया तथा लार्ड

लेक को सुविधापूवक विजय प्राप्त कर लेने दी। अपने आगमन पर वेलेजली ने निश्चय कर लिया था कि वह तीन भारतीय शासको—निजाम, टीपू तथा दौलतराव—का प्रभाव नष्ट कर देगा। इनमे से पहला इस समय सवथा रुग्ण था। खरडा की अपमानजनक चोट का उसको इस समय तक दु ख था। खरडा के शीघ्र पश्चात ही उसके पुत्र ने विद्रोह कर दिया था। यह विद्रोह रेमाण्ड ने दबाया। २५ फरवरी, १७९६ को निजामअली को लकवा मार गया तथा पेशवा माधवराव द्वितीय की मृत्यु के बाद पूना की राजनीति मे विचित्र परिवतन के कारण ही हैदराबाद के शासक की रक्षा हो पायी। उसका मन्त्री मुशीरुल्मुल्क मराठा बन्धन से मुक्त कर दिया गया तथा निजामअली खरडा मे लगायी गयी कडी शर्तो के पालन से भी बच गया। इस समय नाना फडनिस सदृश व्यक्ति भी उसके सक्रिय समथन की याचना करते थे। उसकी रुग्णता के सात वर्षो मे (उसका देहान्त ६ अगस्त, १८०३ को हुआ) उसके कार्यो का प्रबन्ध मन्त्री मुशीरुल्मुल्क ने सफलतापूवक किया। यह मन्त्री ब्रिटिश गठबन्धन का उत्साही समथक था। अधिकाश महान भारतीय राज्य इस समय निबल होगये थे।

अपने पद का भार सॅभालते ही वेलेजली ने तत्काल पूण करने के लिए अपने सम्मुख तीन प्रमुख काय रखे (१) टीपू सुल्तान का सवनाश, (२) निजामअली के फ्रेंच दल को भग करके उसके स्थान पर इगलिश दल की नियुक्ति, (३) पूना की मराठा सरकार पर नियन्त्रण प्राप्त करना। इस काय के लिए दौलतराव को उसके उत्तरी क्षेत्र मे भगा देना आवश्यक था। वहॉ अफगानो का राजा जमानशाह उसको निर्बल करने के लिए पर्याप्त था, क्योकि उस समय वह भारत पर आक्रमण करने का यत्न कर रहा था। इन उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए वेलेजली ने शोर की नीति त्याग दी और उसके स्थान पर उसने अपनी प्रसिद्ध 'सहायक प्रथा' (सबसीडियरी सिस्टम) का निर्माण किया। इसके द्वारा भारतीय शासको के कार्यो मे हस्तक्षेप करने का उसको पूण अवसर प्राप्त हो सकता था तथा वे ब्रिटिश सत्ता की मैत्री के अधीन हो सकते थे।[1] यह पहिले ही स्पष्ट हो गया था कि भारत मे कलहग्रस्त विभिन्न शासको के बीच सतुलन बनाये रखने वाली कोई प्रधान सत्ता नही है। यह भी स्पष्ट था कि कोई शासक विदेशी सहायता के बिना अपने अस्तित्व की

[1] यह वाक्याश विचित्र तथा निरथक है, क्योकि दोनो शब्द अथ मे एक-दूसरे के विरुद्ध है।

रक्षा नही कर सकता । पूना के रेजीडेण्ट कनल पामर को वेलेजली से इस नयी नीति तथा उसके पालन के लिए विस्तृत निदश प्राप्त हुए । हेदराबाद के रेजीडेण्ट जे० ए० कक पैट्रिक को भी यही योजना कार्यान्वित करने के लिए मिली । मैसूर मे लागू करने के लिए यह कायविधि मद्रास सरकार को भेज दी गयी क्योकि निकट भविष्य मे उस राज्य से युद्ध होने की सम्भावना थी ।

अपना पद ग्रहण करने के बाद पाँचवे दिन वेलेजली ने पेशवा को सूचना भेजी कि उसने शासन का भार ग्रहण कर लिया हे । उसने पेशवा पर यह प्रभाव डाला कि ब्रिटिश सत्ता के प्रति अपने मैत्री सम्बन्ध बनाये रखना आवश्यक है । इस नीति का पालन न होने की दशा मे एक धमकी भी थी । इस समय उसने पामर को लिखा कि वह पेशवा को अपने शत्रुओ के विरुद्ध ब्रिटिश सहायता स्वीकार करने के लिए प्रलोभन दे । रघुनाथराव ने ऋण के बदले ब्रिटिश सरकार के पास अपने कुछ आभूषण गिरवी रख दिये थे । लगभग ६ लाख रुपयो के मूल्य के ये आभूषण इस समय भी ब्रिटिश सरकार के पास कलकत्ता मे थे । पेशवा का विश्वास करने के लिए वेलेजली ने इन आभूषणो को अविलम्ब बिना ऋण का भुगतान लिये वापस कर दिया ।[2]

२ **वेलेजली की प्रथम सफलता**—सौभाग्य से वेलेजली के आगमन से एक मास पूव २५ माच, १७९८ को जनरल रेमाण्ड का देहान्त हो गया था । इस कारण हैदराबाद राज्य मे उसकी प्रिय 'सहायक प्रथा' के प्रवेश का माग सुगम हो गया था ।[3] उसने निजामअली से तुरन्त 'सहायक मैत्री' का प्रस्ताव

---

२ पूना रेजीडेन्सी कॉरस्पौण्डेन्स, जिल्द २, पृ० ५३३ ।

3 रेमाण्ड का जन्म २० सितम्बर, १७७५ को हुआ था । वह व्यापार के लिए १७७५ मे पाण्डिचेरी आया । वह पहले हैदरअली की सेना मे भरती हुआ तथा १७८५ मे वह निजामअली की सेवा मे आ गया । रेमाण्ड ने उसी माग का अनुसरण किया, जिसके द्वारा दि बायने शिन्दे की सेवा मे पहुँच गया था । उसने निजामअली के लिए २० पैदल दल अर्थात लगभग १५ हजार सैनिक तैयार किये, जिनके पास अपना निपुण तोपखाना भी था । उसके अधीन लगभग ११४ यूरोपीय अधिकारी थे । उसको अपने व्यय के लिए ५२ लाख रुपये वार्षिक आय के पृथक जिले मिले हुए थे । उसने श्रद्धापूवक अपने स्वामी की सेवा की । खरडा के रणक्षेत्र मे उसका व्यवहार गौरवपूर्ण रहा । उस दिन निजाम की पराजय उसके कारण किसी भी प्रकार नही हुई थी । यह रण ११ माच, १७९५ को हुआ था तथा आगामी जून मे निजामअली के पुत्र आलीजाह ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह करके बीदर मे स्वय को स्वतन्त्र घोषित कर दिया । निजामअली ने अपने पुत्र को पराजित करने तथा उसको जीवित बन्दी

किया। १ सितम्बर, १७९८ को निजामअली ने इसको स्वीकार करके इस पर हस्ताक्षर कर दिये। फ्रेंच अधिकारियो के स्थान पर ब्रिटिश अधिकारी नियुक्त हो गये। वैसे इस परिवतन मे काफी कठिनाई हुई। सुगमतापूवक प्राप्त इस विजय से वेलेजली को टीपू सुल्तान के विरुद्ध अपनी बलपरीक्षा मे अधिक आत्मविश्वास हो गया।

१७९८ के जुलाई से सितम्बर तक के महीनो मे पामर ने बाजीराव तथा नाना पर दवाव डाला कि वे टीपू सुल्तान के विरुद्ध युद्ध के लिए प्रस्तावित सन्धि मे सम्मिलित होने अथवा उससे दूर रहने के विषय पर अपना निश्चय प्रकट करे। वे यह भी स्पष्ट करे कि शिन्दे उत्तर की ओर प्रयाण कर रहा है या नही। यदि कर रहा है तो कब। १ नवम्बर को पेशवा के पास वेलेजली का एक विशेष पत्र आया, जिसमे प्राथना की गयी थी कि मराठा सेनाएँ मैसूर के विरुद्ध युद्ध के लिए प्रस्थान करे। निजामअली के साथ की गयी सहायक सन्धि की एक प्रति विचाराथ पेशवा के पास भी भेजी गयी। आशा थी कि पेशवा अपनी ही इच्छा से उसका अनुकरण करेगा। बाजीराव ने उत्तर दिया कि मैसूर युद्ध के लिए अपनी निश्चित सैन्य सख्या भेजने मे उसको दो मास लग जायेंगे। इसी समय टीपू सुल्तान के दूत भी पूना आ गये। उन्होने अग्रेजो के विरुद्ध मराठा सहायता की प्राथना की। दूतो का बहुत स्नेह तथा विधिपूवक स्वागत किया गया। कहा जाता है कि उन्होने पेशवा की सहायता प्राप्त करने के लिए उसे १३ लाख रुपये नकद दिये। पामर ने पेशवा के इस आचरण का प्रबल विरोध किया। इस समय नाना अपनी ही सुरक्षा के निमित्त बहुत चिन्तित था, इसलिए इस विषय मे कोई निणय नही करना चाहता था कि इस युद्ध मे पेशवा कोई भाग ले या न ले और यदि ले तो किसकी ओर से टीपू के अनुकूल या प्रतिकूल। उसने यह विषय सवथा बाजीराव की इच्छा पर छोड दिया। मराठा सेनाओ के नेतृत्व के लिए केवल एक व्यक्ति योग्य था—परशु-

---

करने का काय रेमाण्ड को सौपा था। रेमाण्ड ने स्थान-स्थान पर उसका पीछा किया और अन्त मे उसको पकड लिया। जब वह आलीजाह को हाथी पर बैठाकर हैदराबाद ला रहा था, तब उसने विष खाकर अपने जीवन का अन्त कर दिया (सितम्बर, १७९५)। फ्रास के क्रान्तिकारी शासन के साथ रेमाण्ड का घनिष्ठ सम्पक था। भारत मे फ्रेंच प्रभाव को पुन स्थापित करने के लिए उसकी प्रबल आकाक्षा थी। गवनर जनरल के रूप मे आने पर वेलेजली को हैदराबाद दरबार मे स्थित सुयोग्य फ्रेंच योद्धा की ओर से ब्रिटिश सत्ता के प्रति घोर सकट की आशका हो गयी थी।

राम भाऊ। वह इस समय कोल्हापुर के विरुद्ध जीवन-मरण के सघष म व्यस्त था । बाजीराव मे निणय करने की क्षमता कभी नही रही । वह अपने स्वभाव के अनुसार पामर को यह आश्वासन देने मे समय नष्ट करता रहा कि वह अभियान की तैयारी कर रहा है । उसको पूण विश्वास था कि युद्ध बहुत दिनो तक चलता रहेगा । वह अन्त मे विजयी पक्ष का साथ देगा । पर नाना ने पेशवा को विलम्ब के विरुद्ध लिखित चेतावनी दी । शीघ्र ही समाचार प्राप्त हुआ कि ४ मई को एक घमासान युद्ध मे टीपू का वध हो गया हे। इससे बाजीराव अवाक रह गया । टीपू के राज्य पर अधिकार कर लिया गया । उसके राज्य का अधिकाश भाग मैसूर के प्राचीन हिन्दू राजा को वापस दे दिया गया । कुछ प्रदेशो को निजाम तथा अग्रेजो ने अपनी वतमान सीमाओ की आवश्यकतानुसार अपने राज्यो मे मिला लिया। थोडा-सा भाग बाजीराव के लिए अलग रख लिया गया । उसके लिए निम्नलिखित शर्तो का पालन करना था

(१) कि पेशवा अग्रेजो के साथ सहायक सन्धि कर ले ।

(२) कि वह फ्रासीसियो से युद्ध होने पर अग्रेजो को सहायता दे ।

(३) कि अपने तथा निजाम के बीच कलह उत्पन्न होने की दशा म पेशवा अग्रेजो का निणय स्वीकार करे ।

(४) कि पेशवा मैसूर के नवीन राजा के प्रति चौथ का अपना अधिकार छोड दे ।

इन शर्ता के पालन का स्पष्ट अथ मराठा राज्य के स्वातन्त्र्य का अन्त था, इसलिए बाजीराव ने इन्हे स्वीकार करने से इनकार कर दिया । वेलेजली समझ गया कि पेशवा क्यो विलम्ब कर रहा था। अब उसके साथ अपने सम्बन्धो को उसने उसी प्रकार नियमित किया—अर्थात उसको परास्त करने के लिए प्रतीक्षात्मक चाल चली । टीपू सुल्तान की दुगति से बाजीराव को चेतावनी देने मे नाना ने अपने कतव्य का पालन किया । उसने कहा—"टीपू का अन्त हो गया है और अग्रेजो की शक्ति बढ गयी है । समस्त पूर्वी भारत पहिले से ही उनका है । अब पूना उनका दूसरा शिकार होगा । दुर्दिन आने वाले है । भागकर हम नियति से बच नही सकते ।"

परन्तु दोनो नवयुवको—बाजीराव तथा दौलतराव—ने कोई शिक्षा ग्रहण नही की । वे निश्चिन्त भाव से अपने माग पर चलते रहे । टीपू की गति से बचने के लिए उन्होने घोषणा की कि उनका इरादा निजाम से लडने का है । पामर ने यह समाचार गवनर जनरल को भेज दिया । गवनर जनरल ने अपने

पत्र मे निजाम को यह बात बलपूवक लिखी—"जब तक ब्रिटिश सत्ता के साथ आपकी मैत्री बनी रहेगी, हम आप पर आक्रमण करने वाले किसी भी शत्रु के विरुद्ध अपनी समस्त सैनिक शक्ति सहित आपकी सहायताथ अविलम्ब उपस्थित होने को तैयार है। शिन्दे की ओर से आक्रमण का आप लेशमात्र भी भय न करे।" इस पत्र की एक प्रतिलिपि पामर ने बाजीराव तथा दौलतराव को दी ओर उसका अभीष्ट परिणाम हुआ। निजाम से युद्ध करने का स्वप्न वायु मे विलीन हो गया। विशालकाय गवनर जनरल के समक्ष बाजीराव केवल एक बौने के सदृश था, जिसने मूखतापूवक अग्रेजो के विरुद्ध भारतीय शासको का सघ बनाने का प्रयत्न किया। उसको आशा थी कि टीपू कुछ समय तक डटा रहेगा और वह उपयुक्त अवसर पर उसका साथ देगा। उसने नागपुर के रघोजी भोसले को इस नीति मे सम्मिलित करने का प्रयत्न किया। दौलत-राव तथा बाजीराव ने मैसूर के नवीन हिन्दू राजा तथा टीपू के पुत्रो के पास अग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह करने की प्रेरणा देने के लिए गुप्त दूत भेजे। उनकी समझ मे यह नही आया कि एक दूसरा विशालकाय पुरुष अर्थात गवनर जनरल का छोटा भाई आथर वेलेजली इस समय मैसूर मे नियुक्त है। आथर ने बाजीराव के षड्यन्त्रो का पता लगाकर उनके प्रतिकार का तुरन्त उपाय कर दिया।

१७९९ मे दिखावटी रूप से नाना मन्त्री बना रहा, पर उसमे प्रशासन मे कोई उत्तरदायी भाग लेने की न इच्छा थी, न शक्ति। न इन दोनो नव-युवको की इच्छा उसके परामश को कोई महत्त्व देने की थी। वह जानता था कि केवल उसका सचित धन प्राप्त करना ही इनका उद्देश्य हे। अत मन्त्री ने उस वष साधारण विषयो के प्रबन्ध अर्थात अमृतराव, शिन्दे महिलाओ तथा दोनो छत्रपतियो की समस्याओ का निपटारा आदि मे अपने को व्यस्त रखा।

शिन्दे की योजनाएँ शीघ्रतापूवक असफल होती गयी। वह २२ अप्रैल, १७९९ को अहमदनगर से बालोबा तात्या को पूना ले आया तथा अपना मन्त्री पद स्वीकार करने को कहा। बालोबा ने यह प्रस्ताव तुरन्त ठुकरा दिया तथा उसने वही निरीह तथा उदासीन वत्ति धारण कर ली जो नाना ने बाजीराव के प्रति अपना रखी थी। आगामी वष नाना फडनिस की मृत्यु हो जाने से बाजीराव पर कोई नियन्त्रण नही रह गया। बालोबा तथा अबा चिटनिस, जिन्होने शिन्दे महिलाओ की कलह का निपटारा किया था, शीघ्र ही शिन्दे तथा बाजीराव के लिए सरदद हो गये। इस समय इन दोनो—बाजीराव तथा शिन्दे—पर शर्जाराव का पूण नियन्त्रण हो गया था। शर्जाराव के परामश से

शिन्दे ने निश्चय किया कि वह अपने समस्त प्राचीन सेवको को एक एक करके निकाल देगा। उनके विरुद्ध शिन्दे ने जो ढग अपनाया, वह अत्य त क्रूर तथा निन्दनीय था। बालोबा, उसका भतीजा ढोडीबा, सदाशिव मल्हार, कृष्णोबा मोदी, देवजी गाउली सबके सब पकड लिये गये, उनके साथ दुव्यवहार किया गया और वे नजरबन्दी के लिए अहमदनगर भेज दिये गये। जब बालोबा को बलपूवक छीना जा रहा था तो उसकी पत्नी ने वास्तव मे अपना सर फोड लिया। ३१ मई, १८०० को तुलाजी शिन्दे और मानाजी बाबले को शिन्दे महिलाओ का समथन करने के कारण तोप से उडा दिया गया। ८ जुलाई को यशवन्तराव शिवाजी तथा कुछ अन्य व्यक्तियो के नाक-कान काट लिये गये। सेना मे उनका प्रदशन करने के बाद उन्हे मार डाला गया। ढोडीबा पगनिस की भी यही दुदशा की गयी। नारायणराव बख्शी के शरीर मे गोले बाँधकर आग लगा दी गयी। इस प्रकार वह उडती हुई चील की भाति आकाश मे फेक दिया गया। दौलतराव तथा बाजीराव ने अपने प्रशासन से प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को हटा दिया। उन्हे सन्देह था कि ये कायकर्ता उन्हे (बाजीराव तथा दौलतराव को) पदच्युत करके तथा अमृतराव को राज्य का मुख्य पुरुष बनाकर क्रान्ति करने की योजना बना रहे है। स्वय बालोबा बहुत दिनो से रोगी था। १ नवम्बर, १८०० को अहमदनगर मे उसका देहान्त हो गया। इसी प्रकार महादजी का विश्वस्त तथा योग्य विदेश मन्त्री सदाशिव मल्हार उफ भाऊ बख्शी बालोबा से दो सप्ताह पूव मर गया। इस प्रकार नाना की मृत्यु के कुछ महीनो के भीतर ही भूतकाल से सम्बद्ध सभी कडिया टूट गयी।

इन अत्याचारपूण कृत्यो के कारण जनसाधारण को घृणा हो गयी, जिससे यशवन्तराव होलकर तथा महादजी शिन्दे की दोनो विधवाओ जैसे व्यक्तियो को नवीन साहस मिल गया। इन्होने अपने प्राचीन युद्ध को अब नयी उमग से आरम्भ कर दिया। वेलेजली इन घटनाओ को सावधानीपूवक देखता रहा तथा अन्तिम प्रहार के लिए धैयपूवक तैयारी करता रहा।

बाजीराव तथा दौलतराव की इन विचारहीन अन्ध प्रगतियो के प्रतिकूल कुछ विचारशील, अनुभवी तथा जागरूक व्यक्ति मराठा राज्य की रक्षा के निमित्त एकमात्र विकल्प के रूप मे अमृतराव का समथन कर रहे थे। बालोबा तात्या, नाना फडनिस, नारायण बख्शी तथा कुछ अन्य व्यक्तियो की इच्छा इस प्रकार का परिवतन उपस्थित करने की थी, परन्तु उनके प्रयास दुष्टतापूवक कुचल दिये गये। यदि ब्रिटिश रेजीडेण्ट ने गवनर जनरल की सवग्राही योजनाओ का पूरा साथ दिया होता तो बाजीराव अपनी उस दुदशा को बहुत

पहले ही प्राप्त कर लेता, जिसे वह अन्त मे प्राप्त हुआ। पामर शान्त तथा तटस्थ व्यक्ति था, उसने शिन्दे के यूरोपीय अधिकारियो के साथ पूना मे दो वष के काल मे (१७९८-१८००) मैत्री कर ली। उसने वतमान राजनीति की ओर ध्यान नही दिया तथा वह बाजीराव के ब्रिटिश आधिपत्य स्वीकार करने का प्रबन्ध नही कर सका, इसलिए लाड वेलेजली को उसे अन्यत्र बदलना पडा। उसके स्थान पर कनल क्लोज को नियुक्त किया गया। उसने ७ दिसम्बर, १८०१ को पूना मे अपना पद ग्रहण कर लिया। क्लोज ने आथर वेलेजली के अधीन अपने दो वर्षो के मैसूर प्रबन्ध मे अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली थी। पूना मे अपनी चार वर्षों की दुष्टतापूण प्रवृत्ति के अन्त मे दौलतराव ने १८०० के अन्त मे उस स्थान को छोड दिया। वह अगली फरवरी मे बुरहानपुर पहुँच गया। इसके बाद बाजीराव राजधानी मे अपनी स्थिति बनाये रखने मे समथ नही हो सका।

३ **नाना फडनिस की मृत्यु तथा उसका चरित्र**—प्रशासन मे अपने पुन प्रवेश के बाद नाना फडनिस बहुत दिनो तक जीवित नही रहा। दौलतराव द्वारा विश्वासघातपूवक पकड लिये जाने तथा नीति या बुद्धि के समस्त सिद्धान्तो के विरुद्ध बन्धन मे डाल दिये जाने के कारण उसके अत्यन्त सवेदनशील मन तथा कोमल शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव पडा और उसका स्वास्थ्य शीघ्र ही बिगड गया। १७९८ के अन्त के समीप उसने मन्त्री पद स्वीकार कर लिया, पर वह अपना पूव स्वास्थ्य कभी प्राप्त न कर सका। वह अपनी मृत्यु के पूव उस अल्पकाल मे वह कोई महत्त्वशाली कार्य न कर सका। उसका स्वभाव कुछ इस प्रकार का था, जिसने क्रमश भीतर ही भीतर क्षीण करके उसकी समस्त शक्ति को नष्ट कर दिया। इस समय वह परित्यक्त तथा असहाय था। उसका कोई मित्र या साथी नही रह गया था, जिस पर वह भरोसा कर सकता। शत्रुओ द्वारा निरन्तर किये गये तिरस्कार और अपमान नाना के लिए असह्य हो गये। १ माच, १७९९ का एक समाचार इस प्रकार है—"नाना बहुत क्लेश मे है। उसको कभी-कभी ज्वर हो जाता हे।" ७ अप्रैल का एक अन्य समाचार देखिये—"नाना अपने रोग से अभी तक सँभल नही सका है। उसे कानो सम्बन्धी कष्ट हो गया है। वह केवल बेल बाग के मन्दिर तक पैदल जाता है।" दिसम्बर, १७९९ का एक समाचार प्रस्तुत है—"नाना मे अब कोई शक्ति नही रह गयी है। वह पेशवा के महल तक भी पैदल नही चल सकता। यह महल उसके मकान के पास ही है।" फरवरी, १८०० से उसको प्रत्येक दिन ज्वर रहने लगा। ४ माच को स्वय बाजीराव व्यक्तिगत रूप से उससे मिलने गया तथा उसके स्वास्थ्य का हाल पूछा। बृहस्पतिवार १३ मार्च

की अद्धरात्रि के समय उसका देहान्त हो गया । नाना के शव को दाह सस्कार के लिए ले जाने के समय वहा सेवा काय पर नियुक्त अरब रक्षको ने दगा कर दिया और अपना शेष वेतन माँगा । जब बाजीराव ने यह वेतन चुका दिया तभी उन्होने शव को उठाने दिया । कैप्टिन ब्राउनरिग वहाँ आया और कहा—"नाना के साथ ब्राह्मण राज्य अस्त हो गया हे । पूना का पतन हो गया हे ।" ब्रिटिश रेजीडेण्ट पामर ने गवनर जनरल को निम्न समाचार भेजा—"नाना के साथ मराठा शासन का समस्त विवेक तथा सयम चला गया है ।" सर रिचड टेम्पुल लिखता हे—"महामन्त्री की मृत्यु से मराठा प्रशासन मे सचाई तथा कुशलता के समस्त चिह्न नष्ट हो गये ।" ग्राट डफ ने लिखा है—"निस्सन्देह नाना फडनिस महान राजनीतिज्ञ था । उसके मुख्य अवगुणो का कारण व्यक्तिगत साहस का अभाव तथा उसकी महत्त्वाकाक्षा थी । इनका नियन्त्रण सिद्धान्तो द्वारा नही होता था । उसका जीवन सदैव जनसाधारण के समक्ष रहता था । व्यक्तिगत जीवन मे वह परम सत्यप्रेमी, दयालु, मितव्ययी तथा उदार था । उसका सारा समय कठोर व्यवस्था द्वारा नियमित रहता था । जो काय उसने स्वय किया वह विश्वास की सीमा से भी आगे बढ जाता है । मराठा जाति द्वारा उत्पन्न किये गये विलक्षण बुद्धियुक्त अन्तिम पुरुष के रूप मे नाना निस्सन्देह देदीप्यमान है ।"

नाना किसी प्रकार वृद्ध नही था । उसका जन्म १२ फरवरी, १७४२ को हुआ था । मृत्यु के समय उनकी आयु केवल ५८ वष १ मास की थी । वह पेशवा के पुत्र विश्वासराव से ५ मास छोटा था । उसी के साथ उसका पालन-पोषण हुआ । उसकी लम्बाई साधारण, शरीर पतला तथा रग गेहुँआ था । उसकी मुखाकृति गम्भीर थी, वह शायद ही कभी हँसता हुआ देखा गया होगा । उसका स्वभाव नियमित तथा स्वाध्यायशील था, भाषा नपीतुली होती थी तथा वह स्पष्ट वार्तालाप की अपेक्षा लेखनी से अधिक काय करता था । मराठा इतिहास के समस्त नायको के आजकल प्राप्त पत्रो मे सर्वाधिक पत्र उसी के लिखे हुए है । उसने कई विवाह किये । इनमे से ९ पत्नियो के नाम उपलब्ध है । जिउबाई नामक उसकी अन्तिम पत्नी जब उसकी मृत्यु पर विधवा हुई तो उसकी आयु ९ वष की थी । बाजीराव की दुष्टता के सम्मुख अपना सतीत्व सुरक्षित रखने मे उसको अपने जीवन मे विचित्र उलटफेर देखने पडे ।[४]

---

४ उसने १८३५ मे एक पुत्र गोद लिया, जिसका देहान्त १८७७ मे हो गया । उसके पुत्र का दत्तक पुत्र १९४८ मे भी जीवित था ।

फडनिस पद का अथ है—समस्त बहीखातो अथवा सावजनिक धनागार पर नियन्त्रण। इसका सम्बन्ध राज्य के आय-व्यय से था। इस कार्य मे नाना पूणत निपुण था। लिखित इतिहास मे कोई भी अन्य भारतीय उसकी समता को नही पहुँचता। यह निपुणता उसने कठोर कायव्यवस्थापक माधवराव प्रथम के आधीन दस वष सेवा करके प्राप्त की थी। उस पेशवा की मृत्यु के बाद नाना ने व्यावहारिक रूप मे अपने ही उत्तरदायित्व पर समस्त प्रशासन का सचालन किया। उसने लेखापद्धति को उन्नत करके राज्य को कभी धन का कष्ट नही होने दिया। वैसे अनेकानेक युद्ध होते रहे और नाना को अन्य काय भी देखने पडे। उसके विरुद्ध साधारणत यह आरोप लगाया जाता है कि उसने राज्य को हानि पहुँचाकर अपनी कई करोड की सम्पत्ति का सचय किया। उसके समय के मनुष्य के लिए नाना की महत्तम न्यूनता युद्ध विद्या से अपरिचित होना थी। इस कारण उसको अन्य व्यक्तियो पर निभर रहना पडता था और वह समस्त प्रकार के कष्टो मे फँस जाता था।

जो महत्तम श्रेय नाना की राजनीति को प्राप्त है, उसका सम्बन्ध महादजी के सहयोग मे प्रथम मराठा युद्ध के समय ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध प्राप्त की गयी सफलता से है। इसी प्रकार उसकी अत्यन्त स्पष्ट असफलता यह थी कि पेशवा माधवराव द्वितीय की मृत्यु के बाद उसने मराठा राज्य की परिस्थिति का प्रबन्ध शोचनीय ढग से किया। जब तक नाना का निष्ठापूण सहयोगी हरिपन्त फडके जीवित रहा, तब तक उसका प्रशासन सफल रहा। हरिपन्त की मृत्यु के बाद नाना की कोई स्थिर नीति नही रह गयी। उसने अस्थिरता तथा क्षणिक उपायो को खुली छूट दे दी। उसके जीवन के अन्तिम ५ वर्षो मे उसके मन का सभ्रम प्रतिक्षण स्पष्ट हो जाता है। शाहु की मृत्यु पर मराठा राज्य मे इसी प्रकार की सकटपूण स्थिति आ गयी थी, परन्तु नाना ने विवेकपूण ढग से परिस्थिति को सँभाल लिया। उसने उत्तरदायी व्यक्तियो का सम्मेलन करके समस्त मुख्य व्यक्तियो का सहयोग प्राप्त कर लिया।

यदि पेशवा की मृत्यु के तुरन्त पश्चात नाना फडनिस ने शिन्दे, होलकर, भोसले, आग्रे, पटवर्धनो आदि उत्तरदायी सरदारो का तथा जीवबा बख्शी और बालोबा सदृढ अनुभवी परामशदाताओ का प्रत्यक्ष सम्मेलन किया होता तो पेशवा पद पर अमृतराव का निर्वाचन हो जाने की अधिक सभावना थी, क्योकि अग्रेज भी विद्यमान उत्तराधिकारी व्यक्तियो मे उसको सर्वाधिक योग्य व्यक्ति मानते थे। इस प्रकार बाजीराव दूर रखा जा सकता था। परन्तु नाना के उपायो से नीच षड्यन्त्र तथा रिश्वतखोरी का जन्म हो गया और

निर्विघ्न प्रशासन की आशाएँ समाप्त हो गयी। इस कठिन परिस्थिति मे नाना की अनुदारता तथा अपने व्यक्तित्व को जनहित मे लीन न करने की केवल निन्दा ही की जा सकती है। वह अपने समीप विद्यमान सत्ताधारी व्यक्तियो के चरित्र को अच्छी तरह जानता था। उसको अपनी नीति इस प्रकार निर्धारित करनी चाहिए थी, जिससे अवनति रुक सके।[५]

नाना फडनिस की मृत्यु से मराठा इतिहास मे एक विशेष परिवर्तन उपस्थित हो जाता है तथा मराठा और ब्रिटिश कर्मचारियो मे एक विचित्र विषमता एव दैवी विडम्बना प्रकट हो जाती है। महादजी शिन्दे, हरिपन्त फडके, अहल्याबाई, माधवराव द्वितीय, तुकोजी होलकर, जीवबा बख्शी, बालोबा तात्या परशुराम भाऊ और अन्त मे नाना फडनिस तथा अन्य व्यक्तियो का देहान्त थोडे-से समय मे हो गया। राजनीतिक क्षेत्र दो अयोग्य नवयुवको—बाजीराव और दौलतराव—के अधिकार मे रह गया। इसके साथ ही इतिहास के रगमच पर कुछ तेजस्वी ब्रिटिश पुरुषो—उदाहरणाथ, तीनो वेलेजली बन्धु, मेटकाफ, कक पैट्रिक, फ्लोज, एलिफन्स्टन, मैल्कम, जेन्किन्स तथा मनरो—का प्रादुर्भाव होता है। यह एक तेजस्वी मण्डल था, जिसके सदृश ब्रिटिश भारतीय इतिहास मे कोई अन्य दल शायद ही पाया जाता हो। १५ वर्षो के शान्तिपूण सुधारो से वारेन हेस्टिग्ज के शासनकालीन दोषो का निराकरण हो गया था। इसी कारण उच्च क्षमता सम्पन्न व्यक्ति डण्डास की स्काटिश-प्रियता के कारण कम्पनी की सेवा के प्रति आकृष्ट हुए थे। इस प्रकार १८वी शताब्दी के अन्त मे इन ब्रिटिश राजनीतिज्ञो की विलक्षण बुद्धि द्वारा भारत के भाग्य का निणय हुआ।

---

५ इस सम्बन्ध मे एक अन्य समकालीन प्रसिद्ध व्यक्ति—अर्थात मैसूर का मत्री पुर्नैया—ध्यान मे आ जाता है जो अपनी आयु तथा चरित्र मे लगभग नाना के समान है। परन्तु उसका सम्बन्ध भिन्न परिस्थिति से था। उसने हैदरअली तथा टीपू सुल्तान दोनो की सेवा निष्ठापूण भाव से की। वह नाना फडनिस की भाति अपनी राजस्व क्षमता के लिए प्रसिद्ध था। टीपू के पतन के समय पुनैया का चरित्र इतना उत्कृष्ट और उसकी ख्याति इतनी उच्च थी कि वेलेजली ने हिन्दू राजा के मन्त्री पद के लिए उसी को निर्वाचित किया। इस राजा को विजयी अग्रेजो ने मैसूर के राज्य पर पुन स्थापित कर दिया था। पुर्नैया ने उस समय समृद्ध शासन की आधारशिला रखी, जिसका उपभोग भारत के क्रान्तिकारी काल मे मैसूर ने किया। पुर्नैया आयु मे नाना से ५ वष बडा था। उसका देहान्त भी उसके १५ वष बाद हुआ। हैदरअली, टीपू, कृष्णाराव वाडियर, वेलेजली तथा फ्लोज सदृश जिन विभिन्न स्वामियो की उसने क्रमश सेवा की, उनसे उसे सम्मान प्राप्त हुआ।

४ **ढोंडिया बाघ का विद्रोह**—लाड वेलेजली का आगमन तथा नाना फडनिस और शिन्दे सरदारो का देहान्त अत्यन्त महत्त्व की घटनाएँ थी। १८०० का वष मराठो के भाग्य मे विशेप ह्रास के साथ आरम्भ हुआ। वेलेजली टीपू सुल्तान के विरुद्ध युद्ध मे पेशवा का सहयोग न पाकर रुष्ट था, परन्तु बाजीराव इस घटना के महत्व को न समझ सका। मैसूर युद्ध के लिए गवनर जनरल ने जो विशाल सैनिक दल एकत्र किया था, वह अब तक भग नही हुआ था जबकि उसका काय पूरा हो गया था। टीपू सुल्तान से जीते हुए प्रदेशो के प्रबन्ध तथा उनमे व्यवस्थापूवक शासन की स्थापना के लिए वहा योग्य कमाण्डर के अधीन शक्तिशाली सेना रखना आवश्यक था। वेलेजली ने इस स्थान पर अपने भाई आथर को नियुक्त कर दिया जो बाद को ड्यूक ऑव वेलिंग्टन के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[६]

आथर वेलेजली की आयु उस समय ३२ वष की थी। उसका पद कनल का था। श्रीरगपट्टन के युद्ध से पहले उसको वास्तविक युद्ध का अनुभव नही था। गवनर जनरल ने चण्ड आक्रान्ताओ के नेता के नाम से प्रसिद्ध जनरल बेअड का अतिक्रमण करके मैसूर राज्य के मुख्य सेनाध्यक्ष के स्थान पर अपने भाई आथर को नियुक्त कर दिया। आथर विशेष रूप से प्रशासकीय तथा सैनिक क्षमता सम्पन्न था। बैरी क्लोज तथा जान मैल्कम दो चतुर अल्प-वयस्क अधिकारी आथर के सहायक नियुक्त किये गये। मनरो, वेब, टाड, एलफिस्टन, मेटकाफ जेन्किन्स तथा मराठा इतिहास मे प्रसिद्ध अन्य व्यक्तियो ने वेलेजली बन्धुओ के कठोर अनुशासन मे प्रारम्भिक प्रशिक्षण प्राप्त किया।

मैसूर प्रशासन मे नियुक्ति के समय आथर वेलेजली को एक विचित्र सेवा-काय दिया गया। इसके परोक्ष परिणामो का सम्बन्ध मराठा राज्य के भाग्य से था। इससे ब्रिटिश अधिकारियो तथा उनकी सेनाओ को महाराष्ट्र मे सैन्य-सचालन का प्रथम अनुभव प्राप्त हुआ। यह अनुभव बाद मे मराठा राज्य को पराजित करने मे अति मूल्यवान सिद्ध हुआ। यह काय ढोडिया बाघ नामक एक मराठा लुटेरे के विचित्र विद्रोह का दमन था। बाघ कुछ समय से कर्णाटक क्षेत्र को नष्ट कर रहा था, अत आर्थर वेलेजली का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हुआ।

---

६ भारतीय सेना के अधिकारी के रूप मे फरवरी, १७९७ मे आथर वेलेजली भारत आया था। वह लाड कानवालिस से सर जान शोर के नाम शक्ति-शाली अनुरोध पत्र लाया था। रिचड वेलेजली का आगमन बाद मे हुआ। वह अपने साथ सचिव के रूप मे अपने तृतीय बन्धु हेनरी वेलेजली को लाया।

ढोडजी आदिलशाही शासको के प्रति निष्ठा रखने वाले एक प्राचीन पवार परिवार का वशज था। १८वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे ढोडिया ने क्रमश कई स्वामियो—पटवधन परिवार, कोल्हापुर का राजा तथा तुगभद्रा के उत्तर मे छोटे से राज्य लक्ष्मीश्वर के देसाई—की सेवा की थी। जिस किसी की उसने सेवा की, उसने ढोडजी की अदभुत सूझबूझ, वीरता तथा व्यवहार को बहुत उपयोगी पाया। परन्तु उसको इस समय मैसूर तथा मराठा राज्यो की सीमा रेखा बनाने वाली नदी के दोनो ओर की निर्दोष जनता पर अकारण लूटमार का अभ्यास था। हैदरअली तथा टीपू सुलतान ने उस पर कडा नियन्त्रण कर रखा था। टीपू ने उसको पकडकर मुसलमान बना लिया। मैसूर की ब्रिटिश विजय के बाद उसने लूटमार की अपनी प्राचीन गतिविधियाँ पुन आरम्भ कर दी। जून, १८०० मे आर्थर वेलेजली ने आक्रमण करके उसे तुग-भद्रा के उत्तर मराठा प्रदेश मे खदेड दिया। तब वह पटवधनो तथा कोल्हापुर के राजा के लिए अभिशाप हो गया। उस समय ढोडिया ने पेशवा के धारवाड गढ के रक्षक गोखले को परेशान कर डाला। अत पूना मे पेशवा तथा मैसूर मे वेलेजली का आवश्यक काय इस कष्टदायक लुटेरे को नष्ट करना हो गया। उसके दमन के लिए सम्मिलित प्रयासो के निमित्त वेलेजली ने पटवधनो से समझौता कर लिया। इसके अन्तगत पेशवा के प्रदेश मे ब्रिटिश सेना का प्रवेश था। गवनर जनरल को राजनीतिक शिष्टाचार की कोई अधिक चिन्ता नही थी। उसने अपने भाई को आज्ञा दे दी कि पटवधनो की सेना के साथ बाघ का पीछा करते हुए वह अपनी सेनाओ को मराठा प्रदेश मे ले जाये।

तदनुसार जनरल वेलेजली ने अपनी योजनाओ का निर्माण किया। १८०० की ग्रीष्म ऋतु मे उसने तुगभद्रा को पार किया तथा रामचन्द्र अप्पा और अन्य पटवधन उसके साथ हो गये। उन्होने मलप्रभा नदी की वर्षाकालीन बाढो के कारण कठोर यातनाओ का सहन करते हुए भी सम्मिलित होकर धारवाड के जिले मे चार मास तक विद्रोही का पीछा किया। इस नदी के तटो पर ढोडिया अपने धावे करता था। स्थानीय जनता उसकी भली प्रकार सेवा करती थी। इस प्रकार उसको पीछा करने वालो की योजनाओ तथा उनकी प्रगतियो की सामयिक सूचना मिल जाती थी। ३० जून को ढोडिया ने किट्टूर के समीप सहसा पेशवा की सेनाओ पर आक्रमण किया। इस अवसर पर ढोडोपन्त गोखले मारा गया तथा उसका भतीजा बापू गोखले घायल हो गया (जो बाद को बाजीराव का सेनापति हुआ)। मालूम होता है कि इस सफलता से ढोडिया का सिर फिर गया तथा उसको भविष्य मे असीम अन्याय करने का लालच

लग गया। इस पर आथर वेलेजली ने दृढ निश्चय से उसका पीछा किया। सम्मिलित सेनाओ को तीन भागो मे विभाजित कर दिया गया और सारे प्रदेश मे सफाई आरम्भ कर दी गयी। दो दल नदी के दोनो तटो के साथ पश्चिम के पूव को बढे और तीसरे दल ने समीप से उस साहसिक का पीछा किया। योजना निस्सन्देह कष्टसाध्य थी, क्योकि वर्षा ने सम्पूण देश को लगभग अगम्य बना दिया था। वेलेजली के चातुय की कठोर परीक्षा हो गयी और दीन असहाय विद्रोही के विरुद्ध उसके उपाय तथा विपुल साधन प्रभावशाली सिद्ध हुए। दो महीनो मे ही वह अतिम श्वासे लेने लगा, क्योकि उसके अधिकाश अनुचरो ने उसका पक्ष त्याग दिया। जहाँ कही वह जाता, वही उसका पीछा करने वाले पहुँच जाते। विषम सकटावस्था मे वह तेजी से भागा और तुगभद्रा के समीप बेलारी की ओर दक्षिण-पूव मे चल दिया। अन्त मे वह १० सितम्बर, १८०० को बेलारी के समीप भानु नामक स्थान पर डटकर लडने के लिए विवश हो गया। वह अपने ६०० अनुचरो के साथ लडता हुआ मारा गया। उस समय उसकी आयु ६० वष की थी।

वेलेजली को भारतीय मित्रो के सहयोग से अपने प्रथम स्वतन्त्र अभियान का सचालन सफलतापूवक करने का गौरव प्राप्त हुआ। वह पटवधनो के साथ विशेष सम्पक मे आया। उसने सामान्य रूप से मराठा प्रशासन तथा पूना के शासको के कष्टो और स्वभावो का मूल्यवान ज्ञान प्राप्त कर लिया। इस प्रकार कनल वेलेजली को मराठा चरित्र, उनके शासन, उनके नेताओ, उनकी क्षमता तथा उनकी सेनाओ की विधियो का निकट से परिचय प्राप्त हो गया। इस समय निकट सम्पक के कारण कनल आथर वेलेजली के साथ पटवधनो की स्थापित मित्रता बढती गयी, क्योकि वह युद्ध के भ्रातृत्व द्वारा जोडी गयी थी। इस मैत्री के कारण ही अन्त मे बाजीराव की शत्रुता से पटवधन सरदारो की रक्षा हो सकी तथा वे वतमान समय तक अपनी प्राचीन स्थिति बनाये रखने मे समर्थ हो सके। इसके अतिरिक्त इस अभियान द्वारा आर्थर वेलेजली महाराष्ट्र मे युद्ध का अत्यन्त लाभदायक ढग से अभिनय करने मे समथ हो गया। यह अनुभव तीन वष बाद होने वाले युद्ध मे उसके लिए अत्यन्त कल्याणकारक सिद्ध हुआ।

ढोडिया बाघ के नाश के बाद कनल आथर वेलेजली प्रत्यक्ष रूप से बिना किसी प्रयोजन या आवश्यकता के महाराष्ट्र प्रदेश मे ठहरा रहा। भारतीय जनता को इस पर बहुत आश्चर्य हुआ। उसको मैसूर वापस न जाने के लिए गुप्त आदेश प्राप्त हुए थे। इस समय हम उसका वास्तविक उद्देश्य जानते है।

बाजीराव पर उसी के महल मे शिन्दे के रक्षको की कठोर निगरानी थी। अत उसने रेजीडेण्ट पामर से कहा कि वह शिन्दे का नियन्त्रण अधिक सहन नही कर सकता। उसको भय था कि शिन्दे उसको पदच्युत कर देगा। पामर न परिस्थिति का समाचार गवनर जनरल को भेजा। उसने इस अवसर का प्रसन्नतापूवक स्वागत किया। वह बाजीराव को प्रलोभन दे सकता था कि वह अपनी रक्षा के लिए ब्रिटिश सहायक मित्र सेना रखना स्वीकार कर ले। यही कारण है कि गवनर जनरल ने अपने भाई को धारवाड के समीप ठहरे रहने का आदेश दिया। उनका यह निर्देश था कि यदि शिन्दे बाजीराव को कैद मे डाल दे, या पेशवा पूना से भाग निकले, तो वह पूना की ओर प्रयाण करे। इन घटनाओ मे से कोई भी घटित नही हुई, इसलिए कनल वेलेजली विवश होकर मैसूर वापस आ गया। ६ सितम्बर, १८०० को कनल पामर ने लिखा—"बाजीराव को अपने विवेक तथा षड्यन्त्र मे अपनी दक्षता पर बहुत भरोसा है। इस भरोसे के कारण वह अपनी परिस्थिति से तब तक खेल करता रहेगा, जब तक उसका सवनाश न हो जाये।" वास्तव मे यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। बाजीराव ने कुछ समय तक वेलेजली बन्धुओ को धोखा देने का आनन्द अवश्य अनुभव कर लिया।

५ **यशवन्तराव होलकर का उदय**—जब परिस्थिति असह्य हो जाती है तो वह अपने उपचार के लिए विचित्र उपाय ढूढ लेती है। इसका सवश्रेष्ठ उदाहरण यशवन्तराव का उदय है। वह भूतपूव तुकोजी होलकर के अवैध पुत्रो मे से एक था। सम्भवत उसकी आयु अपने प्रतिद्वन्द्वी दौलतराव के बराबर ही थी। दौलतराव शिन्दे ने तुकोजी होलकर के पुत्र मल्हारराव की जो दयनीय दशा कर दी थी, उस पर यशवन्तराव उग्र हो उठा और उसने अन्याय का बदला लेने का दृढ निश्चय कर लिया। अपने ज्येष्ठ भ्राता विठोजी तथा होलकर परिवार के अन्य उत्साही नवयुवको—उदाहरणाथ, कुमार हरनाथसिह, अभयसिह, भारमल आदि—के साथ यशवन्तराव पूना से चल दिया। उसने जेजूरी मे अपने परिवार के इष्टदेव की वन्दना की तथा अपने उद्देश्य की सफलता के लिए शक्ति तथा आशीर्वाद प्रदान करने की प्राथना की। यह सवथा निधन नवयुवक जेजूरी से धन की खोज मे इधर-उधर दूर-दूर तक भटकता रहा। वह लोगो से मित्रता करता तथा अनियन्त्रित योजनाओ का स्वप्न देखता। दो वष तक यशवन्तराव तथा उसके साथी इसी प्रकार भ्रमण करते रहे। उनको देश की दशा का बहुमूल्य अनुभव प्राप्त होता रहा और वे पीडित जनता के भावो को एकत्र करते रहे जिससे वे निणय कर सके वि

दीन अवस्था मे कौनसे व्यक्ति उनके मित्र हो सकते है। दौलतराव के मन्त्री बालोबा तात्या ने उन कठोर कार्यों का सबल परन्तु व्यथ विरोध किया जो शिन्दे होलकर परिवार के विरुद्ध कर रहा था। इस परिवार ने मराठा राज्य के निर्माण मे शिन्दे के बराबर भाग लिया था। १७९९ के अन्त के समीप यशवन्तराव भोसले राजा से सहायता की विनय करने के लिए नागपुर गया। गुप्तचरो ने यशवन्तराव की प्रगतियो की सूचना पेशवा तथा दौलतराव तक पहुँचाई। उन्होने राजा को धमकी दी कि विद्रोही को आश्रय देने पर उसे दण्ड दिया जायेगा। उनके सुझाव पर राजा ने ३० जनवरी, १८०० को यशवन्तराव को बन्दी बना लिया तथा यह समाचार पूना भेज दिया। यशवन्तराव अपने रक्षको से छूट निकला तथा नागपुर से भागने के बाद ताप्ती और नमदा के व य-प्रदेशो मे पुन भटकता फिरा। यहाँ पर उसे लाला भवानी शकर नामक निष्ठावान सेवक तथा परामशदाता मिल गया, जिसने बाद मे सुख-दु ख मे उसका निरन्तर साथ दिया। दोनो घुमक्कडो न दो सौ भील अनुयायी एकत्र करके उत्तर खानदेश मे सुल्तानपुर तथा नन्दुरबार के प्रदेशो पर धावे करने आरम्भ कर दिये। यह सुनकर कि उसका भाई काशीराव उसके विरुद्ध प्रयाण कर रहा है, यशवन्तराव नमदा पार करके धार भाग गया। वहाँ आनन्दराव पवार ने कुछ समय तक उसको शरण दी और अपनी सेना म रख लिया। परन्तु शिन्दे ने आनन्दराव को डराकर विवश कर दिया कि वह अपने देश से यशवन्तराव को निकाल दे। यशवन्तराव ने इस समय तक विपुल धन एकत्र कर लिया था, जिससे उसने बहुत-से सवार नोकर रख लिये।[७]

प्रतिशोध की तीव्र भावना से उत्तेजित होकर वह मालवा मे शिन्दे प्रदेशा को स्वतन्त्रतापूवक लटने लगा तथा खाँडेराव को उसकी रक्षा से छीनने के विचार से अपने भाई काशीराव के विरुद्ध स्पष्ट युद्ध की घोषणा कर दी। काशीराव मल्हारराव की मृत्यु के पश्चात उत्पन्न हुआ था। यशवन्तराव न घोषणा कर दी कि काशीराव होलकर प्रदेश का न्यायसगत उत्तराधिकारी है। इस निश्चय के कारण होलकर राज्य के अधिकाश प्राचीन सेवक अपने अनुचरो सहित यशवन्तराव के साथ हो गये। यद्यपि एक आँख मे अकस्मात गोली लगने से वह काना हो गया था, फिर भी उसने शीघ्र ही जीवन की गति मे वेग प्राप्त कर लिया। उसने महेश्वर मे सुरक्षित अहल्याबाई के

---

७ यशवन्तराव की आरम्भिक प्रगतियो के लिए देखो—फालके कृत 'कोटा के पत्र', जिल्द १, पृ० १२८, १२९, १३८, १४२ तथा १४३। उसकी मुद्रा १५१ पर देखो।

विशाल कोप पर धावा किया । इस प्रकार प्राप्त धन से उसने शिन्दे के विरुद्ध लगातार युद्ध किया । १८०० की ग्रीष्म ऋतु मे दोनो विरोधियो मे घातक युद्ध आरम्भ हो गया । इसी समय पर महादजी शिन्दे की विधवाओ ने उत्तर म अपने युद्ध को पुन आरम्भ कर दिया था तथा शिन्दे के उत्तरी प्रदेशो का प्रबन्धक लकवा लाड उनके साथ हो गया था । जब शिन्दे महिलाएँ मालवा पहुँची तो यशवन्तराव उनसे मिला तथा दोलतराव को पदच्युत करके उसके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को बैठाने मे अपनी सहायता प्रस्तुत की । परन्तु अन्तिम सहमति निश्चित होने के पूव ही यशवन्तराव ने सहसा १ नवम्बर, १८०० को शिन्दे महिलाओ के उज्जैन स्थित शिविर पर धावा वोल दिया । लकवा शीघ्र ही घटनास्थल पर पहुँच गया तथा उसने यशवन्तराव और शिन्दे महिलाओ मे फिर मेल करा दिया । महिलाएँ ग्वालियर की ओर चली गयी और यशवन्तराव शिन्दे की सेनाओ से युद्ध करने के लिए नमदा की ओर लौट आया । ये सेनाएँ उसको परास्त करने के लिए तीव्र गति से बढ रही थी । दोलतराव ने दिसम्बर, १८०० मे पूना छोडा । इसके पूव उसने वालोजी कुजर को वाजीराव के पास अपने प्रशासनाधिकारी के रूप मे नियुक्त कर दिया । उसने बाजीराव की रक्षा करने तथा उसकी गतिविधियो पर दृष्टि रखने के उद्देश्य स शर्जाराव घाटगे को भी पर्याप्त दल सहित नियुक्त कर दिया । मल्हारराव होलकर की पत्नी तथा पुत्र खाडेराव सुरक्षाथ बाजीराव के महल को हटा दिये गये । यदि दौलतराव मे वह उत्साह होता जो यशवन्तराव का जन्मजात गुण था, तो वह सुविधापूवक यशवन्तराव को कुचल था । इधर शिन्दे को नमदा पहुँचने मे बहुत समय लग गया । था । इस

इस बीच शिन्दे महिलाएँ शान्त नही बैठी रही । मध्य भारत मे समय प्रभाव स्थापित करने के बाद उन्होने सम्राट का समथन प्राप्त कर प्रयत्न किया । सम्राट ने उनकी सहायता के लिए बेगम समरू को भेज इस प्रकार दौलतराव की स्थिति सकटग्रस्त हो गयी । परन्तु, वश उसके तोपखाने का मुख्य अधिकारी पेरो उसके प्रति पूणत निष्ठावान रहा । उसने झासी के समीप २ जून, १८०१ को शिन्दे महिलाओ पर आक्रमण किया । घनघोर युद्ध हुआ, परन्तु कोई निणय न हो सका । इस युद्ध मे लकबा के गहरे घाव लगे, जिसके कारण वह ७ फरवरी, १८०२ को मर गया । इस प्रकार शिन्दे महिलाओ का पक्ष निबल हो गया । अपने अद्भुत पराक्रम से यशवन्तराव ने मालवा मे हलचल मचा दी । उसने उज्जैन को लूट लिया और जो कुछ धन मिला उसको उठा ले गया ।

६ **विठोजी होलकर का वध**—जब यशवन्तराव नमदा क्षेत्र मे इस प्रकार व्यस्त था, तब उसका भाई विठोजी बेकार नही बैठा रहा। उसने सारे महाराष्ट्र मे पीडा और हत्याओ की धूम मचा दी। सभी विद्रोही व्यक्ति उसके साथ हो गये, जिन्होने बाजीराव तथा दौलतराव के कारण अब तक अनेकानेक कष्ट सहे थे। खानदेश तथा कृष्णा के बीच का प्रदेश अराजकता तथा अव्यवस्था का साकार दृश्य बन गया। सवत्र लूट तथा अग्निकाण्ड होने लगे। राजधानी की सीमाओ के बाहर बाजीराव के शासन का शायद ही कोई चिह्न रह गया था। सभी दिशाओ से उसके पास नित्य अत्याचार भरी गाथाएँ पहुँचने लगी।

विठोजी होलकर अपने द्वारा नष्ट किये गये सभी प्रदेशो मे घोषित करता था कि वह अमृतराव का कायकर्ता है। बाजीराव ने सिद्ध कर दिया हे कि वह अपने शासन के लिए अयोग्य तथा अक्षम हे। इसलिए वह अमृतराव का शासन जमा रहा है। उसका एकमात्र उद्देश्य निकटवर्ती सर्वनाश से मराठा राज्य की रक्षा करना हे। यह बाजीराव-विरोधी आन्दोलन १७९९ मे आरम्भ हुआ तथा १८०३ के अन्त तक नित्य उग्र होता गया। यह बसइ की सन्धि हो जाने के बाद समाप्त हुआ। चार वर्षों के इन उपद्रवो तथा उत्पातो से ससार को यह स्पष्ट हो गया कि बाजीराव के द्वारा कोई उन्नति सम्भव नही है। दोनो भाइयो—उत्तर मे यशवन्तराव तथा दक्षिण मे विठोजी—ने मिल कर उस सत्ता के समस्त चिह्न व्यवहार रूप से नष्ट कर दिये, जिसका उपभोग पेशवा तथा उसका अनुचर शिन्दे करते थे। पेशवा इस प्रकार भय-[illegible] गया कि उसने अमृतराव तथा विठोजी द्वारा अपने को समाप्तप्राय
प्रतिशोध
[illegible]ा। उसने व्याकुल होकर शीघ्रतापूर्वक जितने व्यक्ति मिल सके उन
को स्वतन्त्र
एकत्र करके बालोजी कुजर और बापू गोखले के अधीन विठोजी के
विचार
[illegible] भेज दिया। उपद्रव एक-एक करके विभिन्न स्थानो मे होते थे, अत बाजीराव सरलतापूवक उनका प्रतिकार करके अपने शत्रुओ को अलग-अलग कुचल सकता था। उनमे स बहुत-से पकड लिये गये और शेष मार डाले गये। बापू गोखले ने विठोजी होलकर को जीवित पकड लिया तथा बेडियो मे जकडकर पेशवा के सम्मुख ले आया। पेशवा ने आवेश मे आकर उसको हाथी के पैर से बँधवा दिया। वह महल के आगन मे इधर-उधर घसीटा गया तथा अत्यन्त निदयता से मारा गया। इस दृश्य को बाजीराव तथा उसका मन्त्री कुजर ऊपर के छज्जे से प्रसन्नतापूवक देखते रहे। शव का पूरे २४ घण्टो तक प्रदशन करने के बाद अन्त्येष्टि की आज्ञा दी गयी। यह घटना १६ अप्रैल, १८०१ को घटित हुई। मूढतावश बाजीराव यह न समझ सका कि इस उग्र

तथा विचारहीन कृत्य का उस पर क्या प्रभाव पडेगा । मराठा राज्य के कई हितैषियो ने उससे होलकर परिवार के सदस्यो के प्रति नम्र उपाय व्यवहार मे लाने के लिए आग्रहपूवक निवेदन किया, परन्तु बाजीराव ने उनकी ओर कोई ध्यान नही दिया ।

७ **यशवन्तराव होलकर रक्षक की स्थिति मे**—पेशवा के इस कृत्य से उसके भाग्य का निणय हो गया । जब विठोजी पूना मे हाथी के पैर के नीचे घसीटा जा रहा था, तब यशवन्तराव नमदा तट पर शिन्दे की सेनाओ के साथ भयानक सघर्ष मे सलग्न था । अक्तूबर १८०१ के अ त मे कुछ महीनो बाद वह शिन्दे के पजो ने छूटकर दक्षिण मे पेशवा की ओर ध्यान दे सका । इस ग्रीष्मकाल मे नमदा तट का युद्ध इतिहास मे स्मरणीय हो गया है । यहाँ शिन्दे के प्रशिक्षित यूरोपीय कमाण्डरो का पाला यशवन्तराव की अशिक्षित, अनियन्त्रित, उत्साही तथा जन्मजात विलक्षण बुद्धि से पडा । युद्धक्षेत्र नमदा के दक्षिण तट से लेकर उत्तर मे इन्दौर तथा उज्जैन तक फैला हुआ था । इसमे नदी तथा उसके आगे विन्ध्य-पवतमाला ने नाना प्रकार की बाधाएँ उपस्थित कर रखी थी । १८०१ मे जून से अक्तूबर तक चार महीने घोर युद्ध होता रहा । दोनो ओर रक्त की नदियाँ बही और सहार हुआ । नमदा तथा उज्जैन के बीच का समस्त प्रदेश निजन हो गया । दोलतराव मई के अन्त मे नमदा-तट पर पहुँच गया, परन्तु उसको नदी पार करने मे पूरे तीन माह लग गये । उसने पूना स्थित शर्जाराव के पास बार-बार आग्रहपूवक समाचार भेजे कि वह शीघ्रतापूवक उसकी सहायता के लिए आ जाये । परन्तु यह राक्षस (शर्जाराव) पेशवा से प्रतिज्ञात साहाय्यकर वसूल करने मे व्यस्त था । इस समय यह बालोजी कुजर के हाथो मरने से बाल-बाल बच गया । उस समय अधिकाश व्यक्तियो द्वारा अपनाये जाने वाले दुष्ट षडयन्त्रो का उदाहरण होने के कारण इस विचित्र घटना का अध्ययन लाभप्रद है । शर्जाराव ने अपने को कष्टपूवक मुक्त कर लिया तथा नमदा तट पर अपने खमाता का साथ देने के लिए पूना से १२ जुलाई को चल दिया ।

उत्तर को जाते हुए शर्जाराव ने लूट तथा विनाश के रूप मे अपने चरण-चिह्न छोडे । वह ९ अक्तूबर को नमदा तट पर पहुँचा । दोनो ने मिलकर यशवन्तराव को भयकर रूप से पराजित कर दिया तथा इन्दौर और उज्जैन दोनो पर पुन अधिकार जमा लिया । उन्होने गत वर्ष होलकर द्वारा उज्जैन मे किये गये विनाश का बदला इन्दौर से लिया । दोनो प्रतिद्वन्द्वियो ने एक-दूसरे के अनुचरो को अपनी ओर मिलाने के लिए घूस तथा प्रलोभन का

स्वतन्त्रतापूवक उपयोग किया । ३० अक्तूबर को होलकर न घाटगे को अच्छी तरह पछाड दिया । इसके बाद दोनो विरोवियो ने अलग होकर विभिन्न उपायो का उपयोग आरम्भ किया । इसमे केवल शिन्दे की हानि हो सकती थी, क्योकि उसके पास बहुत सा धन तथा देश था ओर आरम्भ मे अकिचन होने के कारण होलकर के लिए लाभ ही लाभ था । सब मिलकर कहा जा सकता हे कि होलकर के प्रयास सफल हुए । दोलतराव ने शान्ति-वार्ता का प्रस्ताव करके इस विवाद के एक पक्ष के रूप म होलकर का मान्यता दे दी । स्वामी के रूप मे पेशवा ने शिन्दे तथा होलकर दोनो को विशेष निर्देश द्वारा युद्ध बन्द करने की आज्ञा दी । परन्तु अब स्वामी (पशवा) के शब्दा मे कोई शक्ति नही रह गयी थी ।

यद्यपि नमदा के अभियान मे यशव तराव को निर्णायक विजय प्राप्त नही हुई थी, परन्तु उसने नेतृत्व के लिए निस्सन्देह ख्याति प्राप्त कर ली जो उसके प्रतिद्वन्द्वी दोलतराव की ख्याति की अपक्षा काफी बढी-चढी थी । होलकर ने अपने पास स्वामिभक्त अनुचरो की एक मण्डली एकत्र कर ली थी जिसम श्यामराव महादिक, फतेहसिह माने, जीवाजी यशवन्त, हरनाथसिह, अमीरखाँ तथा इन सबसे बढकर होलकर परिवार के प्राचीन सेवक एव पानीपत के युद्ध के अनुभवी पाराशर दादाजी के रूप मे गम्भीर अनुभवी परामशदाता थे । ऊपर लिखे हुए नामो का उस समय के ऐतिहासिक पत्रो मे बार-बार उल्लेख हे ।

इस प्रकार १८०१ का वप व्यतीत हो गया । अगला वर्ष बाजीराव तथा उसके राज्य के लिए नवीन विपत्तिया लेकर उपस्थित हुआ । यशवन्तराव का भाग्य इस समय उदीयमान था । तीन वष पहले का गृहहीन भगोडा इस समय होलकर परिवार का उद्धारक तथा शिन्दे और बाजीराव के लिए हौवा माना जाता था । उसका एकमात्र दोष मनमौजीपन था । मदिरापान की कुटेब से यह झक्कीपन और भी बढ गया था । इसके कारण उसकी बुद्धि अशक्त बन जाती थी । निस्सन्देह वह जन्मजात वीर था ।

८ **यशवन्तराव का दक्षिण को प्रस्थान**—अब इस नाटक की चरम सीमा शीघ्रतापूवक समीप आने लगी । दक्षिण के लिए १८०२ का वष यशवन्तराव के गूजते हुए पराक्रमो के साथ आरम्भ हुआ । वहा के लोग यशवन्तराव के आगामी आक्रमण का स्थान निश्चय न कर पाने से भयभीत थे । उसका तात्कालिक उद्देश्य अपने भतीजे खॉडेराव को दौलतराव के हाथो से छीनकर अपने पास ले आना था । उसने काशीराव को पहले ही पकडकर सेधवा के गढ मे कडा पहरा लगा दिया । बाजीराव की आज्ञानुसार अब यशवन्तराव

खानदेश मे थलनेर के स्थान पर रहने लगा और ताप्ती के तट पर अपना शिविर लगा लिया। इस स्थान से पहली बार उसने पाराशर दादाजी के द्वारा बाजीराव से प्राथनाएँ आरम्भ की। उसने अपनी शिकायत दूर कराने के लिए पाराशर को पूना भेजा। शीघ्र सचार के लिए उसने विशेप डाक सेवा की स्थापना की। रघूजी भोसले पूना पहुँचा और उसने बाजीराव को परामश दिया कि होलकर के साथ सम्मानपूवक समझोता कर ले।

पाराशर फरवरी, १८०२ में पूना पहुँच गया। पेशवा उसकी बात नही सुनना चाहता था। यशवन्तराव ने आग्रहपूवक कहा कि पेशवा होलकर तथा शिन्दे दोनो का स्वामी हे। अत उसको दोनो के साथ निष्पक्ष न्याय करना चाहिए। साथ ही उसने माग रखी कि खाडेराव हालकर को शिन्दे स छीन कर उसके पास भेज दिया जाये। बाजीराव ने उसके प्रति न्याय करने की कोई इच्छा प्रकट नही की। व्यथ समय व्यतीत किये जाने से रुष्ट होकर यशवन्त-राव ने अपने दो सरदारो—फतेहसिह माने तथा शहामतखा—को बाजीराव के प्रदेश से बलपूवक बदला लेने के लिए भेजा। स्वय थलनेर से शीघ्र दक्षिण को चल पडा। अब बाजीराव को अपने जीवन के लिए सकट दीखने लगा। पशवा की निष्कपटता के प्रथम प्रमाण के रूप मे यशवन्तराव ने खाडेराव होलकर को पुन वापस दिये जाने की माग रखी। उसने यह भी कहा कि अपने भाई विठोजी की हत्या के लिए वह कोई बदला लेना नही चाहता। बाजीराव का एकमात्र उत्तर कागज पर शान्ति प्रस्ताव का प्रदशन, शपथो एव प्रतिज्ञाओ का लिखना तथा किसी न किसी बहाने काय मे विलम्ब उपस्थित करना था। पाराशर तथा अहल्याबाई के विश्वस्त सचिव गोविन्दप त गणु न नम्रतापूवक घुटने टेककर बाजीराव से विनय की कि होलकर को शान्त किया जाये, जिससे कोई भयानक विपत्ति न आ जाये। परन्तु उसकी ओर कुछ भी ध्यान नही दिया गया। इसके विपरीत शर्जाराव ने खाँडेराव होलकर तथा उसकी माता को हटा दिया। उन दोनो तथा उनके कुछ अनुचरो के बेडियाँ डालकर उन पर कठोर पहरा लगा दिया गया। इस प्रकार यशवन्तराव और भी कुपित हो गया। इस समय दौलतराव ने अपनी सेनाओ को बाजीराव की सहायता के लिए दक्षिण भेज दिया, जिससे होलकर की ओर से कोई हानि न होने पाये। इस प्रकार यशवन्तराव पेशवा से बलपूवक कोई निश्चय कराने के लिए विवश हो गया। उसके सरदारो ने कृष्णा नदी तक बाजीराव का प्रदेश निदय क्रोध से लूट लिया। इतने पर भी यशवन्तराव की याचनाओ की ओर बाजीराव ने कोई ध्यान नही दिया। वह पूर्ण निश्चिन्तता से पूना के समीप-

वर्ती उद्यान गृहो मे आनन्दोपभोग के दैनिक क्रम मे तल्लीन रहा। साथ ही उसने होलकर परिवार का समस्त राज्य जब्त करने की आज्ञा दे दी। इस पराकाष्ठा पर झगडा और बढ गया तथा उपचार की सीमा के बाहर हो गया।

इसी समय बाजीराव ने पूना मे प्रतिनिधि को बन्दी बनाकर तथा उसकी जागीर जब्त करके अपने लिए अधिक कष्ट को निमन्त्रण दिया। भूतपूव पेशवा की विधवा यशोदाबाई को इस समय उसने रायगढ मे कठोर बन्धन मे डाल दिया, क्योकि वह उसकी स्थिति के लिए संकट का सम्भव कारण बन सकती थी।[८] ये उपकथाएँ सख्या मे अनेक है, परन्तु इस समय इनको सविस्तार वणन के बिना ही छोड देना चाहिए। वैसे इन्होने बाजीराव की स्थिति बहुत अश तक क्षीण कर दी थी। उसने निष्ठा पर सन्देह हो जाने के कारण रस्ते परिवार की सम्पत्ति का अपहरण कर लिया और पटवधन परिवार पर अत्याचार किये। पूना पर यशवन्तराव के आक्रमण से बाजीराव अपनी राजधानी छोडने के लिए विवश हो गया। इस प्रकार बहुत दिनो से राज्य की सेवा करने वाले अनेक सरदारो की दुगति होने से बच गयी। ग्रीष्म ऋतु के साथ-साथ पूना का वातावरण भयावह होता गया ओर विभिन्न सरदारो के प्रतिनिधिया के बीच रात-दिन विचार-विमश होने लगे। परन्तु बाजीराव ने यशवन्तराव की शिकायतो की ओर ध्यान देने की कोई इच्छा प्रकट नही की।

अपनी याचनाओ के प्रति बाजीराव को सवथा कठोर पाकर यशवन्तराव ने अप्रैल मे दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। उसको मालूम हुआ कि शिन्दे की कुछ सेनाएँ बुरहानपुर पहुँच गयी है। बाजीराव ने इस समय एक व्यक्तिगत दूत यशवन्तराव के पास लौटने की प्राथना करने के लिए भेजा, परन्तु उसकी माँगो के विषय मे कोई सकेत नही किया। यशवन्तराव आगे बढा और चालिसगाम के समीप कासरबाडी की घाटी पार करके उसने न्याय की प्राथना करते हुए पेशवा को सम्मानपूवक विनम्र पत्र भेजे। उसने उपहार मे हाथी और घोडे भी भेजे। बाजीराव का उत्तर केवल यह था कि वह आगे न बढे। स्पष्ट ही उसका अभिप्राय समय प्राप्त करना था, जिससे शिन्दे के अनुशासित दल आ जाये। यशवन्तराव को इस चाल का पता चल गया, अत वह गोदावरी तक बढ आया। इससे बाजीराव एकदम हक्का-बक्का हो गया और उसने होलकर के कायकर्ता पाराशर से याचना की कि वह अपने स्वामी से ताप्ती

---

८ इस महिला की मृत्यु (१८११ मे) के बाद उत्तर भारत मे १८२०-२४ के बीच एक ठगिनी प्रकट हुई। उसने इस महिला का रूप बना लिया। एल्फिस्टन के पत्र-व्यवहार मे इस ठगिनी का उल्लेख है।

तट को वापस जाने के लिए अनुनय-विनय करे। उसने वचन दिया कि यदि वह इस प्रकार वापस हो जायेगा तो उसकी मागो पर उसी के अनुकूल विचार किया जायेगा तथा समस्त भूमि और सम्पत्ति वापस कर दी जायेगी। परन्तु ये निस्सार शब्द किसी को धोखा नही दे सकते थे। पाराशर ने दृढतापूवक कहा—"मै चार महीनो से यहाँ आपके द्वार पर बैठा हुआ न्याय की याचना कर रहा हूँ। क्या आपने अब तक अपने एक भी वचन का वास्तव मे पालन किया है? मै अपने स्वामी से वापस जाने के लिए किस प्रकार कह सकता हूँ?" नागपुर के रघुजी भोसले के दो कायकर्ता इस अवसर पर उपस्थित थे, उन्होने दृढतापूवक पाराशर का समथन किया। बाजीराव की इच्छा नम्र हो जाने तथा होलकर को कुछ सन्तोष देने की थी। परन्तु इस समय बालोजी कुजर ने होलकर की शिकायतो के प्रति घृणा प्रकट की तथा बाजीराव को अपने क्रूर शत्रु (यशवन्तराव) के साथ वैर शान्ति के सकटपूण माग का अनुसरण न करने की चेतावनी दी। वास्तव मे यह कुजर ही विठोजी होलकर को दिये गये कठोर दण्ड के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी था। इस पर बाजीराव ने अपनी पूव कठोरता पुन धारण कर ली और होलकर के पक्ष मे जरा-सी कानाफूसी करने वाले को भी दण्ड देने लगा। इसके साथ-साथ वह अपनी समस्त उपलभ्य सेनाओ को भी एकत्र करता रहा जिससे राजधानी पर आक्रमण की परिस्थिति का सामना कर सके। होलकर सदृश क्षमता सम्पन्न व्यक्ति से युद्ध करने के लिए उसने अपने कृपापात्रो तथा नीच सेवको को सेना का कमाण्डर नियुक्त किया।

९ **बाजीराव पूना मे परास्त**—अपने साथ किये गये अन्यायो का बदला लेने के विचार से यशवन्तराव अत्यन्त क्रोधपूवक अहमदनगर पर टूट पडा। यह नगर उस समय शिन्दे के अधिकार मे था। यशवन्तराव ने शहर को लूट लिया और आगे बढकर श्री गोडा और जम्बगॉव के स्थानो पर बने शिन्दे के महला को खोदकर जला डाला। महादजी तथा उसके सरदारो द्वारा निर्मित भव्य भवन भूमिसात कर दिये गये। इस भयानकता का बाजीराव के मन पर ऐसा प्रभाव पडा कि उसने वस्त्रो, उपहारो तथा सन्देशो सहित पाराशर पन्त को यशवन्तराव के पास भेजकर प्राथना की कि वह समस्त विनाशपूण उपाय छोडकर शान्तिमय माग ग्रहण करे। इस समय होलकर का पीछा करती हुई शिन्दे की सेनाएँ शीघ्रतापूर्वक बढ रही थी। गोदावरी पार करने पर उनके सरदारो को समाचार प्राप्त हुआ कि बाजीराव होलकर की धमकियो के सामने झुक गया है। इस पर उन्होने बाजीराव को कडे विरोध पत्र भेजे और वस्त्र

तथा उपहार होलकर के पास नही पहुँचने दिये। इससे बाजीराव अत्यन्त व्याकुल होगया। वह भय से पराभूत हाकर अपने मित्रो तथा परिचित व्यक्तियो से इस विपत्ति का प्रतिकार करने के विषय मे परामर्श करता हुआ नगर मे घूमता फिरा। हालकर द्वारा प्रतिशोध के भय से बालोजी कुजर कॉप गया।

होलकर के सरदार फतेहसिह माने तथा मीरखॉ बहुत दिनो से महाराष्ट्र को नष्ट कर रहे थे। माने पण्ढरपुर पर टूट पडा। वहा के पुरोहितो तथा धर्माधिकारियो ने एक सप्ताह सामूहिक सभाएँ की तथा दिन-रात उत्सुकता-पूवक लूटमार से सकुशल रहने के लिए मन्दिर मे प्राथनाएँ की। माने वहाँ पहुँचा, परन्तु उसने मन्दिर को कोई हानि नही पहुँचाई। उसने देवता को कुछ उपहार भी दिये। बारामती के स्थान पर ८ अक्तूबर को बाजीराव की सेनाओ मे उसका भयानक युद्ध हुआ। इन सेनाओ का नेता बाबा पुरन्दरे था। माने ने घोषणा की कि उसका विचार अपने स्वामी पेशवा के विरुद्ध हथियार उठाने का नही है। परन्तु पुरन्दरे ने अग्निवर्षा आरम्भ कर दी तो माने को उसका उत्तर देना पडा। इस युद्ध मे कई सरदार घायल हो गये तथा पेशवा की सेनाएँ भिन्न-भिन्न दिशाओ मे तितर-बितर हो गयी। इसके ठीक एक सप्ताह बाद यशवन्तराव स्वय बारामती पहुँच गया तथा जब माने वहा पहुँचकर उसके साथ हो गया तो उसने अपना शिविर ढाड मे सगठित किया। इसके पहिले यशवन्तराव ने जेजूरी मे अपने कुलदेव के दशन किये। माने पेशवा का गर्वीला ध्वज उठा लाया था। यह ध्वज उसने पुरन्दरे को यह कहते हुए वापस कर दिया—"हम सब एक हे। एक ही प्रभु के समान है। हम विद्रोही नही है।"

बारामती का यह तुच्छ युद्ध महान भावी घटनाओ का पूव सकेत था। इससे बाजीराव सवथा सामर्थ्यहीन हो गया तथा पूना के नागरिको ने सुरक्षा की दृष्टि से नगर त्यागकर अन्यत्र आश्रय लिया। पेशवा ने अपने आभूषण तथा बहुमूल्य वस्तुएँ सिहगढ भेज दी तथा स्वय रायगढ पलायन करने के लिए तैयार हो गया। परन्तु बालोजी कुजर ने इस माग का विरोध किया तथा साग्रह कहा कि स्वामी के लिए इस प्रकार की कायरता प्रकट करना उपयुक्त नही है। उसने कहा—"यदि आप ही भागते है, तो आक्रान्ता से कौन लडेगा ?"

बाजीराव अपने प्रियतम मित्र शिन्दे से प्रतिक्षण प्राथना कर रहा था[६] कि

---

६ पेशवा द्वारा शिन्दे को पत्र, जिसमे ये शब्द है—प्राणसख्या मित्राची भेट कधी होईल ?

वह अविलम्ब आकर उसकी सहायता करे, परन्तु वह नाना प्रकार के कष्टो द्वारा अभिभूत होने के कारण उज्जैन से न हट सका। उसके पास न धन था, न अन्य साधन, क्योकि होलकर ने उसके समस्त प्रदेश तथा प्रशासन को अस्त-व्यस्त कर दिया था। तथापि उसने अपने बख्शी सदाशिव भास्कर को शीघ्रता से भेज दिया तथा उसके साथ वे सब सेनाएँ कर दी जिन्हे वह बाजी-राव की सहायता के लिए भेज सकता था। यह सेनानी अगस्त के अन्त के समीप पैठन पहुँचा तथा ८ सितम्बर को अहमदनगर। वह तीव्र गति से आगे बढा। उसने शहामतखा के अधीन होलकर की सेनाओ से टक्कर ली। यह युद्ध भागते हुए लडा गया। वह २२ अक्तूबर को राजधानी पहुँच गया। उसने अपना शिविर वनवाडी मे लगाया। इससे बाजीराव के हृदय मे नवीन साहस का उदय हुआ। शिन्दे का बख्शी विश्वासपूवक कहता था कि वह होलकर के झुण्डो को अपनी तोपो मे उडा देगा। बख्शी को धन की बहुत आवश्यकता थी। बालोजी कुजर ने तीन लाख रुपये देकर उसकी आवश्यकता पूरी की। यशवन्तराव होलकर के गुप्तचरो ने बहुत अच्छी सेवा की, अत वह वीरता और अग्रदृष्टिपूवक किसी भी दैवयोग का सामना करने के लिए तैयार हो गया। उसकी इच्छा पेशवा को व्यक्तिगत हानि पहुँचाने की नही थी। शिन्दे ने उसके साथ अन्याय किया था। उसकी इच्छा अपने स्वामी से न्याय प्राप्त करने की थी। पेशवा के कारण दुखी जनता के विशाल भाग ने यशवन्तराव की गतिविधियो का स्वागत किया। बारामती से यशवन्तराव ने पेशवा को निम्न शब्दो मे अन्तिम चेतावनी भेजी—"आप स्वामी हे। मेरी इच्छा आपके विरुद्ध हाथ उठाने की कदापि नही है। शिन्दे के साथ मेरे झगडे का शान्तिमय निपटारा करना आपको शोभा देगा। अग्रेज हमारे द्वार पर मराठा राज्य पर अधिकार करने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहे हे। इसको केवल शिन्दे और होलकर आपके साथ सहयोगपूवक निष्कपट सेवा करके रोक सकते है। व्यथ वार्तालापो मे नष्ट करने के लिए मेरे पास समय नही हे। मेरा निश्चय अपने ही बल से निपटारा करने का है। मै आपको शान्तिमय निपटारे का यह अन्तिम अवसर दे रहा हू। यदि आपकी इच्छा रक्तपात रोकने की हे तो बालोजी कुजर तथा दाजीबा देशमुख को अपनी ओर से तथा बाबूराव आग्रे और निम्बाजी भास्कर को शिन्दे की ओर से शर्ते निश्चय करने के लिए तुरन्त भेज दे। केवल ये ही लोग उत्तरदायी रूप से बात का निश्चय कर सकते है। मै और किसी से बात नही करूँगा। यदि ये कायकर्ता नही आयेगे तो मैं सशस्त्र निर्णय प्राप्त करने पर विवश हो जाऊगा। ऐसी दशा मे आपसे

प्राथना करूँगा कि आप स्वय युद्ध से दूर रहे। मे आपको या आपके पक्ष-पातियो को कोई हानि पहुचाना नही चाहता। मै केवल शिन्दे की सेनाओ से लड़ूगा। यदि इस प्रकार का रण शिन्दे के प्रतिकूल रहे, तब भी आप पूना न छोडे। आप यह अवश्य स्मरण रखे कि मै आपमे शिन्दे के समान ही निष्ठा रखता हूँ। मेरा झगडा केवल शिन्दे से है तथा मैं अपने ढग से उसका निणय करने के लिए तैयार हूँ। आप शिन्दे के हाथ की कठपुतली बन गये है तथा राज्य का नाश कर रहे हे। अग्रेज द्वार पर है। आप स्वामी का कर्तव्य करे और मुझे सेवक का काय करने दे।"

यह दृढ चेतावनी पेशवा के पास २३ अक्तूबर को प्रात काल पहुँच गयी। इसे सुनकर वह तुच्छ भय से भर गया। मराठा राज्य की उस विशाल राजधानी मे एक भी व्यक्ति ने आगे आकर बाजीराव को यह परामश नही दिया कि वह होलकर से मिलकर युद्ध को बन्द कर दे और राज्य की रक्षा करे। पूरे एक दिन के वार्तालाप के बाद बाजीराव ने बाबूराव नारायण वैद्य तथा पाराशर दादाजी के साथ अपने तीन आदमियो को होलकर से मिलने भेजा। यशवन्तराव ने उनसे मिलने से इनकार कर दिया। उसने कहा—"कुजर मुझसे मिलने से क्यो भागता है? यदि मेरी बात का उसको विश्वास नही है, तो वह जिनके नाम बताये, उन व्यक्तियो का मै पेशवा के पास शरीर बन्धक के रूप मे भेजने को तैयार हूँ। केवल कुजर वैर-शान्ति का विरोध करता है, इसलिए जब तक वह नही आयेगा, शान्ति का कोई वार्तालाप नही हो सकता। मै कल ही रणक्षेत्र मे न्याय प्राप्त कर लगा। पेशवा से मेरी विनय है कि वह पूना न छोडे। मै ऐसा कोई काय नही करूँगा जो उसके जीवन या उसकी स्थिति को सकट मे डाल दे। उस पर शिन्दे का जादू सवार है। कल अपनी तलवार से मै वह जादू उतार दूँगा।"

पेशवा के सन्देशवाहक यह उत्तर वापस ले आये तथा उन्होने कुजर से प्राथना की कि वह स्वय जाकर होलकर से मिल ले। परन्तु दीवान ने इस सुझाव को ठुकरा दिया। उसने कहा—"हम रणक्षेत्र मे होलकर का अन्त करके उसकी उग्रता को सदा के लिए समाप्त कर देगे।" होलकर के कार्य-कर्ताओ ने घुटने टेककर पेशवा से प्राथना की कि वह उनके स्वामी होलकर के साथ शान्ति तथा मैत्री का माग अपनाये। परन्तु उनके भीरु हृदय की उत्तेजनाओ तथा दुष्ट कृपापात्रो के परामश ने उसे युद्ध के आत्मघाती माग पर अग्रसर कर ही दिया।

अन्त मे हिन्दुओ के दिवाली त्यौहार का भाग्य निर्णायक सोमवार

२५ अक्तूबर, १८०२ को आ ही गया, जिस दिन महाराष्ट्र तेल तथा उष्ण जल के स्थान पर रक्त से स्नान करने वाला था। दोनो सेनाएँ जानती थी कि क्या होने वाला है फिर भी गत रात्रि (हिन्दुओ की धन त्रयोदशी) को वे तैयार हो गयी थी कि अगले दिन यथाशक्ति अपने कतव्य का पालन करेगी। यशवन्तराव ने सन्देश भेज दिया कि वह प्रात दो घण्टे तक प्रतीक्षा करेगा। बाद मे ईश्वर द्वारा दिखाये माग के अनुसार काय करेगा। बाजीराव ने जल्दी से नाश्ता किया। जैसे ही उसने पलायन आरम्भ किया, वैसे ही बालोजी कुजर उसको बलपूवक शिन्दे के शिविर मे ले गया। करीब ८ बजे शिन्दे की सेना ने यशवन्तराव के दल पर अग्निवर्षा आरम्भ कर दी। जब तक विरोधी पक्ष से पूरे २५ गोले न आ गये, तब तक यशवन्तराव अपने आदमियो को रोके रहा। होलकर ने ११ बजे आक्रमण किया। बाजीराव तथा उसका भाई चिमनाजी वनवाडी मे पेशवा के झण्डे के नीचे थे। रण आरम्भ होने पर स्वय होलकर शिन्दे की अग्निवर्षा का उत्तर देने के लिए उनकी तोपो पर वीरतापूवक झपटा, होलकर ने तोपो पर अधिकार कर लिया तथा उनके मुख उन्ही के दलो पर मोड दिये। जब पेशवा तथा उसके भाई ने देखा कि शिन्दे का दल परास्त हो गया है तथा उनके झण्डे छिन गये है तो वे अपनी जगह छोडकर पावती पवत की ओर चल दिये। होलकर के सैनिको को अपना पीछा करते देखकर बाजीराव बडगॉव के समीपवर्ती गाव को भाग गया और वहॉ से सिहगढ की तलहटी मे पहुँच गया। नवयुवक चिमनाजी की इच्छा वही पर डटकर अपने सैनिको को रण के लिए प्रोत्साहन देने की थी, परन्तु बाजीराव उसकी इच्छा के विरुद्ध उसको भी भगा ले गया। व्यक्तिगत साहस तथा समस्त सरदारो की समान रूप से उत्साहपूर्ण निष्ठा के कारण यशवन्तराव को उस रण मे विजय प्राप्त हुई। इधर शिन्दे की सेना को अपने पर दृढ विश्वास नही था। सदाशिव भास्कर मारा गया तथा उसके सैनिको ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। उन्होने किसी योग्य तथा उच्च व्यक्ति के नेतृत्व के अभाव मे अपने को होलकर की दया पर छोड दिया। उनके ६ हजार सैनिक मारे गये तथा लगभग ४ हजार घायल हुए। होलकर की हानि इसकी लगभग आधी हुई। रण की प्रचण्ड अवस्था मे यशवन्तराव निभयतापूवक प्रत्येक स्थान पर जाता, समस्त रणक्षेत्र का अवलोकन करता तथा अपने सैनिको का मागदशन करता रहा। उसकी दृष्टि मे कोई अस्थिरता आ जाती तो उसको तुरन्त रोक देता। यह सफलता उसके जीवन की शायद महत्तम उपलब्धि थी। बाजीराव का कोई भी सरदार नही मारा

गया, क्योकि उसकी भाति वे सब भी सुरक्षित स्थानो को भाग गये थे। यह रण घोरपडी, वनवाडी तथा हडपसर नामक तीन गॉवो के मैदान मे हुआ, परन्तु इसको साधारणतया अन्तिम गॉव (हडपसर) के नाम से पुकारा जाता है।

अध्याय १३

तिथिक्रम

१७९६	एल्फिस्टन का ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा मे प्रवेश करना ।
१ अक्तूबर, १७९८	बाजीराव का अपने भाई अमृतराव को जागीर देना।
२९ जुलाई, १८०२	बडौदा के गायकवाड द्वारा अग्रेजो से सहायक सन्धि करना ।
३० अक्तूबर, १८०२	बाजीराव का बम्बई के गवनर को सुरक्षा सम्बन्धी आवेदनपत्र ।
७ नवम्बर, १८०२	अमृतराव का पूना पहुँचना ।
१८ नवम्बर, १८०२	पाराशर दादाजी की मृत्यु ।
२८ नवम्बर, १८०२	क्लोज का पूना छोड़ना तथा बसई मे बाजीराव के साथ होना ।
१ दिसम्बर, १८०२	बाजीराव का हरनाई मे बम्बई के लिए ब्रिटिश पोत पर सवार होना ।
१६ दिसम्बर, १८०२	बाजीराव का बसई पहुँचना तथा ब्रिटिश सहायता के लिए वार्तालाप आरम्भ करना ।
अन्तिम सप्ताह, दिसम्बर, १८०२	अमृतराव के पुत्र विनायक द्वारा पूना मे पेशवा के वस्त्र प्राप्त करना ।
३१ दिसम्बर, १८०२	बसई की सन्धि निश्चित (गवर्नर जनरल द्वारा १० मार्च, १८०३ को प्रमाणित) ।
२७ फरवरी, १८०३	कालिन्स का बुरहानपुर स्थित शिन्दे के शिविर मे पहुँचना ।
९ मार्च, १८०३	आथर वेलेजली का हरिहर से पूना को प्रयाण ।
१३ मार्च, १८०३	चार मास की लूट के बाद होलकर का पूना छोडना।
११ माच-३ अगस्त, १८०३	कालिन्स का शिन्दे तथा भोसले से स्पष्ट उत्तर माँगना ।

२० अप्रैल, १८०३	वेलेजली का पूना पहुँचना तथा राजभवन को अपनी सुरक्षा के लिए तैयार करना ।
१३ मई, १८०३	बाजीराव पूना मे अपने आसन पर पुन प्रतिष्ठित।
जुलाई, १८०३	वेलेजली द्वारा अमृतराव मराठा सघ से पृथक ।
१६ जुलाई, १८०३	वेलेजली द्वारा होलकर मराठा सघ से पृथक ।
७ अगस्त, १८०३	वेलेजली का मराठो के विरुद्ध युद्ध आरम्भ ।

अध्याय १३

पेशवा द्वारा स्वातन्त्र्य विक्रय

(१८०२-१८०३)

१ बाजीराव का पलायन—दारुण प्रहार।
२ बसइ की सन्धि—पूना द्वारा शक्ति सग्रह।
३ बाजीराव पूना मे पुन प्रतिष्ठित।
४ अमृतराव का देशद्रोह।
५ बाजीराव राजकाय तथा उत्तर-दायित्व से मुक्त।
६ किग कालिन्स शिन्दे के पास।
७ होलकर द्वारा सघ का परित्याग।

१ बाजीराव का पलायन—दारुण प्रहार—हडपसर के रण के साढे छह मास बाद तक बाजीराव पूना से अनुपस्थित रहा। उसने अपना अधिकाश समय मराठो के सीमान्त थाने बसइ मे व्यतीत किया। वह यशवन्तराव होलकर के हाथ पड जाने की आशका से व्यावहारिक रूप से अग्रेजो की सुरक्षा मे था। होलकर ने पूना वापस आने के लिए पेशवा से यथाशक्ति अनुनय-विनय की। यशवन्तराव उसको सरलता से पकड सकता था, परन्तु अपने स्वामी के प्रति किसी क्रूर कम से वह सावधानीपूवक दूर रहा। होलकर ने उसके पलायन के दिन उसके पास कई गाडी अन्न भेजा, जिससे उसे निराहार न रहना पडे। २७ अक्तूबर को पेशवा ने अपने भाई, बालोजी कुजर तथा कुछ शिन्दे रक्षको के साथ पश्चिमी घाटो को अद्धरात्रि मे पार किया, और रायगढ भाग गया। उसने महाद के पास बीरवाडी मे एक मास व्यतीत किया। इस काल मे वह ब्रिटिश सहायता प्राप्त करने के लिए बातचीत करता रहा। ३० अक्तूबर को उसने बम्बई के गवनर जोनाथन डकन को निम्नाकित पत्र लिखा

"मेरा सेवक होलकर तथा उसका दल मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र तथा अन्याय कर रहा है। उसके नीच व्यवहार से अति भयभीत होकर मैने श्रीमान के साथ इस शत पर सन्धि करने का निश्चय किया है कि यदि इन विद्रोहियो मे से कोई मेरे शरीर की माँग रखे तो स्पष्ट अस्वीकृत कर दी जाये। मुझको

भागने का आदेश भी न दे। यदि यह प्रस्ताव आपको स्वीकार हो तो ऐसी परिस्थिति मे आप मेरे व्यय का प्रबन्ध कर दे। महाद के बन्दरगाह मे मुझको सशस्त्र पोत दिलाने की कृपा करे। आप इस विषय की अधिक जानकारी को पत्रवाहक नरो गोविन्द आवटी से प्राप्त कर सकते है।"[1]

गवनर ने इस पत्र के विषय मे उस समय बम्बई स्थित जान मैल्कम से वार्तालाप किया और भावी गतिविधि पर उसका लिखित परामश प्राप्त कर लिया। पेशवा के साथ अपने समस्त भावी व्यवहारो और वार्तालापो मे उसने इसी के अनुसार काय किया। बाजीराव को भय था कि यशवन्तराव इस बीच मे उसको बन्दी बना लेगा, इसलिए उसने अपना अधिकाश दल पूना वापस भेज दिया और स्वय थोडे-से अनुचरो के साथ सुवण दुग (हरनाई) की ओर बढा। यही से वह १ दिसम्बर को हर्कूयन नामक ब्रिटिश पोत पर सवार हो गया। यह पोत वाणकोट का तत्कालीन ब्रिटिश कार्यकर्ता कैप्टिन कैनेडी लाया था। बाजीराव का स्वागत करने के लिए उसे बम्बई से विशेष निर्देश प्राप्त हुए थे। उसकी व्यक्तिगत आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए दो लाख रुपये दिये गये। उस समय कोकण मे पेशवा का मुख्य अधिकारी खॉडेराव रस्ते सुवण दुर्ग आया तथा उसने मुजरा करके पेशवा को अपना परामश दिया। बाजीराव को बम्बई यात्रा के समय तोपो से सलामिया दी गयी और तट के समस्त ब्रिटिश पोतो तथा स्थानीय कायकर्ताओ ने भव्य रूप से उसका स्वागत किया। जिस पोत पर बाजीराव था, वह उसकी विशेष प्राथना पर दो दिन तक खेदाण्ड मे ठहरा रहा, और १६ दिसम्बर को बसई पहुँचा। यहाँ वह अपने ही क्षेत्र मे होते हुए भी शत्रु से निश्चिन्त था तथा सशस्त्र ब्रिटिश सेनाओ को आसानी से बुला सकता था।

बाजीराव ने अपनी पूना की गद्दी पुन प्राप्त करने के उद्देश्य से ब्रिटिश सहायता के लिए गवनर के साथ तुरन्त वार्तालाप आरम्भ कर दिया। १८०२ के अतिम दिन बसइ की प्रसिद्ध सन्धि अन्तिम रूप से निश्चित हो गयी। इस व्यवहार के लिए एकमात्र उत्तरदायी परामशदाता बालोजी कुजर शीघ्र ही समझ गया कि यह उपाय आत्मघातक है। इस बीच पन्से, पुरन्दरे तथा पूना के कुछ अन्य सरदारो ने जैसे ही सुना कि उनका स्वामी भाग गया है, उन्होने उससे वापस आने, होलकर से वैर शान्त करने तथा अमृतराव की सहायता से एक नवीन योजना का निर्माण करने के लिए अनुनय विनय करने

[1] आगामी पत्र-व्यवहार के लिए फोरेस्ट कृत मराठा ग्रन्थमाला देखो।

का प्रयत्न किया, क्योकि इसी से प्रशासन का पुनरुत्थान और राज्य की रक्षा हो सकती थी। बाजीराव की इच्छा कई बार इस सुझाव को स्वीकार करने की हुई, परन्तु प्रत्येक अवसर पर बालोजी कुजर ने उसे इस माग से विमुख कर दिया। इस बीच यशवन्तराव वनवाडी स्थित शिन्दे के महल मे निवास करने लगा। नगर की रक्षा के लिए विशेष रक्षक दल नियुक्त कर दिये गये तथा शिन्दे के समस्त अधिकारियो और सैनिको को निकाल भगाया गया। उसने नाना फडनिस के पक्षपातियो तथा मोरोबा फडनिस और फडके बन्धुओ को भी कारागार से मुक्त कर दिया। उसने अमृतराव को पूना लाने के लिए एक प्रतिनिधि-मण्डल भेजा जो बहुत अनुनय-विनय के बाद अत्यन्त अनिच्छापूवक ७ नवम्बर को पूना पहुँच गया। उसका विशेष सम्मान तथा सलामियो से स्वागत किया गया। दुर्भाग्यवश होलकर के वृद्ध परामशदाता पाराशर दादाजी की अल्पकालीन ज्वर के बाद १८ नवम्बर को मृत्यु हो गयी। इससे केवल होलकर की ही नही, मराठा राज्य की बहुत हानि हुई, क्योकि वह सावजनिक सम्मान प्राप्त व्यक्ति होने के कारण दोनो युद्धमग्न दलो की एकमात्र कडी थी।[२]

महाराष्ट्र के समस्त हितैषियो से सम्मुख मुख्य विषय यह था कि ब्रिटिश हस्तक्षेप के विरुद्ध स्वातन्त्र्य की रक्षा किस प्रकार की जाये ? पेशवा के स्थान पर अमृतराव को लेकर पूना मे होलकर के नेतृत्व मे शक्तिशाली सघ का सगठन किया गया। बडौदा के गायकवाड को छोडकर समस्त प्रसिद्ध सरदारो ने इसका समथन किया। गायकवाड ने २९ जुलाई, १८०२ की पहले से पृथक सन्धि द्वारा ब्रिटिश सुरक्षा स्वीकार कर ली थी। आथर वेलेजली तथा कनल क्लोज की इच्छा सघ की योजना का समथन करने की थी परन्तु गवनर जनरल इसको लेशमात्र भी पसन्द नही करता था। उसका निश्चय मराठा राज्य मे विद्यमान सकट से पूण लाभ उठाकर मराठा प्रभुत्व को समाप्त कर देने का था। इस प्रकार उसका लक्ष्य सरलता से प्राप्त हो सकता था। इन लक्ष्यो को उसने शनै-शनै प्रकट किया।

पूना से बाजीराव के पलायन के बाद रेजीडेण्ट क्लोज का आचरण अद्भुत पहेली बन गया था। वह अमृतराव तथा होलकर दोनो से सवथा प्रसन्न था। ऊपर से मालूम पडता था कि जिस माग का वे अनुसरण कर रहे है, वह उसको पसन्द है। उन्होने उससे पूना मे ठहरे रहने की प्राथना की। उसने उत्तर दिया

---

२ भवानीशकर उसकी बहुत प्रशसा करता है। सर यदुनाथ सरकार ने भी इसी प्रकार लाखेरी के रण के कारण अतीतकाल के कार्यो के लिए उसकी बुद्धिमत्ता की प्रशसा की है।

कि उसको गवनर जनरल की आज्ञा तुरन्त पूना छोड देने की हे, क्योकि पेशवा वहा से चला गया हे। २८ नवम्बर को फ्लोज पूना से बम्बई चल दिया। उसको बाजीराव की योजनाओ तथा प्रगतियो का पता था। रेजीडेण्ट की विदाई से अमृतराव तथा यशवन्तराव व्याकुल हो गये, क्योकि उन्हे फ्लोज के भविष्य सम्बन्धी कार्यो का पता था। इस विषय मे फ्लोज को काई अधिकार न था। उसका कतव्य कलकत्ता से वेलेजली तथा बम्बई से बुकन द्वारा निश्चय करके दी गई आज्ञाओ का पालन करना था। वह वीरवाडी तथा महाद से चल दिया। सम्पूण योजना फ्लोज ने सावधानी से बनाई तथा लागू की थी। बाजीराव अपने भाई चिमनाजी के साथ बसई जाते समय गवनर से भेट करने के उद्देश्य से कुछ समय के लिए रेवराण्डा से बम्बई गया। उसने सत्कार-पूवक बाजीराव का स्वागत किया तथा अनेक भोज और उपहार दिये। छोटे भाई चिमनाजी ने बाजीराव द्वारा अपनाये गये कुटिल माग का तीव्र विरोध किया। उसने कहा—यदि हमारे भाग्य मे अपना जीवन किसी स्थान पर निरोध मे ही व्यतीत करना लिखा हे तो हम इन विदेशियो की अपेक्षा अपने भाई अमृतराव द्वारा पकडा जाना ही क्यो न श्रेयस्कर समझे ? स्पष्ट हे कि ये विदेशी अपने ही स्वाथ का अनुसरण कर रहे है। बाजीराव इस युक्ति का बल समझ गया। वह पूना को वापस हाने के लिए प्रस्तुत हो गया। परन्तु अग्रेजो की ओर से सहायता के लुभावने प्रस्ताव तथा बालोजी कुजर सदृश परामशदाता का विरोध इतने अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुए कि निबल हृदय पेशवा उनका विरोध नही कर सका। वह समझता था कि उसमे उत्पन्न होने वाली किसी भी परिस्थिति का सामना करने की योग्यता है।

अमृतराव, यशवन्तराव तथा पूना के अन्य विवेकी पुरुषो ने अपने भावी कायक्रम पर बहुत समय तक चिन्तापूवक विचार किया। जब तक बाजीराव वास्तव मे त्यागपत्र न दे दे, तब तक शासन करने के लिए एक समिति नियुक्त की गयी। अमृतराव, होलकर, भोसले तथा पटवधन लोग इसके सदस्य बने। शिन्दे का नाम भी इस समिति के लिए प्रस्तावित किया गया और वह लगभग सहमत भी हो गया, क्योकि अग्रेजो को बाहर रखने का एकमात्र यही उपाय था। निश्चय किया गया कि अमृतराव के पुत्र विनायक बापू को यशोदाबाई की गोद रखकर पेशवा बना दिया जाये। परन्तु बाजीराव ने उस महिला को रायगढ मे कठोर बन्धन मे डाल रखा था। होलकर की सेनाएँ उसको मुक्त करके पूना लाने से असफल रही। इस प्रकार पेशवा पद के परिवर्तन का आन्दोलत बहुत दिनो से चल रहा था। इसका विज्ञापन बोलचाल के एक गूढ

वाक्य द्वारा किया गया, जिसका अथ था—"पुरानी अँगूठी पर एक नया हीरा लगाया जायेगा ।"[3] होलकर ने फतेहसिह माने को सतारा भेजा तथा दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह मे वह छत्रपति से विनायकराव के लिए पेशवा पद के वस्त्र ले आया। उस समय बाजीराव बसई मे सन्धि की बातचीत कर रहा था। इस प्रकार पूना मे नवीन शासन का आरम्भ हुआ। अधिकाश पूर्वाधिकारी अपने स्थानो पर पुन नियुक्त कर दिये गये तथा राज्य के विभिन्न सरदारो को आश्वासन-पत्र भेजे गये। परन्तु इस सकटमय परिस्थिति मे सगठन को नष्ट करने के लिए दुष्टबुद्धि शर्जाराव घाटगे घटनास्थल पर आ गया। इस समय वह शिन्दे का मुख्य मन्त्री था। उसको गव था कि वह होलकर का दमन कर देगा। उसने बाजीराव से कहा कि वह महाद मे ठहरा रहे। घाटगे ने बुरहानपुर मे बहुत सी सेना एकत्र कर ली। बेगम समरू दिल्ली से वही पहुँच गयी और शिन्दे की सेनाओ के साथ मिल गयी। इस प्रकार जब पूना तथा बुरहानपुर मे किसी प्रकार मामला तै करने के लिए उपाय किये जा रहे थे, तभी बाजीराव नवम्बर के अन्त मे महाद से चल दिया। उसने अपने को ब्रिटिश रक्षा के अधीन कर दिया। इस काय से पूना की परिस्थिति सवथा परिवर्तित हो गयी। अब तक के शिन्दे-होलकर सघष ने अब ब्रिटिश-मराठा शक्ति-परीक्षा का रूप धारण कर लिया। अकस्मात पूना प्रशासन का अन्त हो गया और बाजीराव, दौलतराव तथा शर्जाराव की प्राचीन त्रिमूर्ति पुन मराठा राज्य के लिए अभिशाप सिद्ध हो गयी। अमृतराव तथा यशवन्तराव ने परिस्थिति सँभालने के लिए कोई प्रयास उठा नही रखा था। उन्होने बाजीराव से वापस आने तथा अपनाये गये विनाशक माग का त्याग करने के लिए विनय-पूवक याचना की। शिन्दे का परामशक बाबूराव आग्रे रेवराण्डा मे बाजीराव से मिला तथा उसने प्रयास किया कि बाजीराव स्वय को अग्रेजो के हाथो मे सौपने से दूर रहे। परन्तु बाजीराव टस से मस नही हुआ। अब उसको अपने भाई अमृतराव से हार्दिक घृणा थी। उसने उससे बार बार बसइ आने को कहा। दौलतराव शिन्दे ने भी बाजीराव से कहा कि वह कोई ऐसा काय न कर बैठे, जिसे फिर बदलना सम्भव न हो। वह दिसम्बर मे यथाशीघ्र उज्जैन से पूना के लिए चल दिया।

२ **बसई की सन्धि—पूना द्वारा शक्ति सग्रह**—बसई मे बाजीराव के आगमन दिवस (१६ दिसम्बर) से दोनो मे व्यापक तथा जटिल वार्तालाप

अगूठीवरचा हिरा नवीन बसवायचा।

होते रहे। अब बाजीराव को मालूम हो गया कि वह अग्रेजो के जाल मे अधिकाधिक रूप से बँधता जा रहा है। उसके सामने एक-एक करके नवीन शर्ते उपस्थित की गयी। प्रत्येक धारा पर वादविवाद करने से बाजीराव को विश्वास हो गया कि उसके हाथ-पैर जकडे जा रहे है। इस पूरे समय मे विचित्र खीचतान होती रही। अग्रेज लोग फदे कस रहे थे और बाजीराव उनसे बचने का प्रयत्न कर रहा था। बाजीराव के पास इस समय कोई दूरद्रष्टा परामर्श-दाता नही था। केवल दो तुच्छ स्वार्थरत व्यक्ति उपस्थित थे—बलवन्तराव नागनाथ तथा रघुनाथ जनार्दन चिनापट्टनकर। पट्टनकर एक मराठा कार्यकर्त्ता था। इसने मद्रास मे बहुत दिनो तक कार्य किया था। यह अग्रेजो का पक्का पिट्ठू था। इसकी योग्यता केवल इगलिश भाषा का ज्ञान ही थी। इन दोनो की सम्मति मे अग्रेज सरल स्वभाव, उदार तथा अपनी प्रतिज्ञा का सदैव सम्मान करने वाले थे। बसई मे क्या हो रहा है, यह समाचार पाकर यशवन्तराव होलकर ने वहा अकेले जाने तथा पेशवा से मिलकर एकपक्षीय प्रतिज्ञा के विरुद्ध चेतावनी देने का प्रयास किया। बाजीराव ने उससे मिलना स्वीकार नही किया, जबकि सन्धि निश्चित होने के पहले शिन्दे तथा भोसले से मिलने की उसकी प्रबल इच्छा थी। इस प्रकार की अस्थिरता पर कर्नल क्लोज ने बाजीराव को अमृतराव तथा होलकर द्वारा भेजा हुआ प्रस्ताव स्वीकार कर लेने की धमकी दी। क्लोज ने कहा—"समय गम्भीर है। अत विलम्ब नही किया जा सकता। पूना सरकार को पुन स्थापित करने मे अग्रेज स्वतन्त्र है। वे जो भी प्रबन्ध उत्तम समझे, करे।" इस भर्त्सना का अभीष्ट प्रभाव हुआ और बाजीराव ने अत्यन्त क्षोभ तथा अनिच्छापूर्वक सधिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। इसकी मूल शर्ते इस प्रकार थी—

१ दोनो पक्ष इस पर सहमत है कि एक के मित्रो तथा शत्रुओ को दूसरे का मित्र तथा शत्रु समझा जाये।

२ अग्रेज अपने प्रदेश की भाँति ही बाजीराव के प्रदेश की रक्षा करे।

३ इस कार्य के लिए कम से कम ६ हजार पैदलो की नियमित सहायक सेना स्थायी रूप से बाजीराव के राज्य मे रखी जाये जिसके साथ साधारण अनुपात मे तोपखाना भी हो।

४ इस सेना के व्यय के लिए बाजीराव अग्रेजो को कुछ जिले दे, जिनकी वार्षिक आय २६ लाख रुपये हो।

५ पेशवा अपनी सेवा मे अग्रेज विरोधी किसी यूरोपीय को न रखे।

६ निजाम से कलह उत्पन्न होने की दशा मे बाजीराव ब्रिटिश निणय को मान ले।

७ बाजीराव उस सन्धि का भी सम्मान करे जो गायकवाड ने हाल मे अग्रेजो के साथ की है तथा कलह की दशा मे ब्रिटिश निणय को स्वीकार करे।

८ आवश्यकता पडने पर बाजीराव तथा अग्रेज एक दूसरे को अधिक सैनिक सहायता दे।

९ ब्रिटिश सरकार के साथ पूव-मन्त्रणा किये बिना पेशवा अन्य राज्यो के साथ युद्ध नही करेगा।[४]

बाजीराव द्वारा अपनी रक्षा के निमित्त ब्रिटिश सेनाएँ रखने के निश्चय का समाचार पूना मे अगले दिन १८०३ के नव वष दिवस को पहुँच गया। अमृतराव और होलकर को इसके कारण बहुत दु ख हुआ। उन्होने २ जनवरी को मोरोबा फडनिस, बाबा फडके तथा अपने पक्ष के अन्य व्यक्तियो के साथ सम्मेलन किया। होलकर ने बलपूवक घोषणा की—"बाजीराव ने मराठा राज्य का नाश कर दिया है। अग्रेज इस राज्य पर टीपू सुल्तान के समान ही प्रहार करेगे।" बाजीराव के पूना प्रत्यागमन का प्रतिकार किस प्रकार किया जाये, इस समय पूना के मन्त्रियो को यही समस्या व्याकुल कर रही थी। होलकर ने यशोदाबाई को पूना लाने का पुन व्यथ प्रयास किया, जिससे अमृत-राव की स्थिति वैध हो सके। अगस्त मे युद्ध आरम्भ होने तक के अगले कुछ महीनो मे वह स्पष्ट विषमता दृष्टिगोचर हुई जो अग्रेजो तथा मराठो के बीच युद्ध तथा कूटनीति मे एक दूसरे का सामना करने के उपायो मे थी। अग्रेजो ने बुद्धिसम्मत नियोजन, शीघ्रतापूवक काय और सैनिक तैयारियो का परिचय दिया। इस कारण परिणाम पूव निश्चित हो गया।

जब बाजीराव को बसई मे मालूम हुआ कि अमृतराव पूना मे किस प्रकार व्यस्त है तो उसने १२ जनवरी को लिखा—"यशवन्तराव अत्यन्त धूत है। आप उसका साथ छोडकर अविलम्ब मेरे पास चले आये। इस विषय मे कोई बहाना न करे।" उसी समय कनल क्लोज ने होलकर को इस प्रकार लिखा—"विचार-पूण समझौते द्वारा बाजीराव ने हमारा सशस्त्र सरक्षण स्वीकार कर लिया है। अब उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य हो गया है। गवनर जनरल की उत्कट इच्छा है कि वे बाजीराव तथा आपमे मैत्री करा दे। आपने प्राय

४ इस सहमति पर बाजीराव तथा कनल क्लोज ने ३१ दिसम्बर को हस्ताक्षर किये तथा १८ माच, १८०३ को गवनर जरनल ने इसको प्रमाणित कर दिया।

बाजीराव के प्रति निष्ठापूण रहने की तत्परता प्रकट की है। अब समय आ गया है कि आप अपनी सेनाओ सहित अविलम्ब पूना छोडकर अपने न्यायसगत क्षेत्र को वापस चले और इस प्रकार अपने को निष्कपट सिद्ध कर दे। यदि आप ऐसा करेंगे तो गवनर जनरल बाजीराव द्वारा आपकी समस्त शिकायतो को दूर करा देगा। आप सदैव ब्रिटिश सत्ता के मित्र रहे है। पूना छोडकर कृपया उस भावना की रक्षा करे। यदि आप ऐसा नही करेंगे तो हम लोगो के सम्बन्ध कटु हो जाने की सभी सम्भावनाएँ है।

इस सीधी धमकी को अमृतराव तथा होलकर ठीक-ठीक समझ गये। अत उन्होने निकटवर्ती युद्ध के लिए मराठा सघ को यथाशक्ति सगठित करने का प्रयत्न किया। उन्होने बाबा फडके को निजामअली के विचारो का पता लगाने तथा उसका सहयोग प्राप्त करने के लिए हैदराबाद भेजा। यह व्यथ का स्वप्न था, क्योकि निजाम पहले ही अपनी स्वतन्त्रता खो बैठा था। पूना मे स्वय होलकर ने भोसले के दोनो कायकर्ताओ श्रीधर लक्ष्मण तथा कृष्णराव माधव के सम्मुख परिस्थिति का स्पष्टीकरण किया एव वीरतापूवक अग्रसर होकर उस सकट वेला मे राज्य की रक्षा करने के लिए रघुजी भोसले से अनुनय-विनय करने को कहा। वे होलकर के साग्रह निवेदन का औचित्य समझ गये तथा योजना को क्रियान्वित करने के लिए अविलम्ब नागपुर चल दिये। दोलतराव शिन्दे ने भी अपना विशेष कायकर्ता नागपुर भेजकर ब्रिटिश चढाई का विरोध करने तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने के लिए सामूहिक प्रयत्न मे भोसले से सहायता की प्राथना की। शिन्दे को छोडकर समस्त सरदार उत्साह-पूर्वक सहमत हो गये कि यदि अग्रेज बाजीराव को पूना लायेंगे तो वे उसका सशस्त्र विरोध करेंगे। शिन्दे ने अपनी कोई इच्छा प्रकट नही की तथा होलकर ने पूना मे अग्रेजो से युद्ध का भय मोल न लेने का निश्चय किया।

पूना मे १२ नवम्बर को स्थापित नवीन शासन केवल चार मास तक रहा। १३ मार्च, १८०३ को होलकर ने नगर छोड दिया और अपनी उत्तरी यात्रा आरम्भ कर दी। यह समय अमृतराव तथा होलकर दोनो के लिए निस्सन्देह असाधारण कष्ट तथा चिन्ता का था। उनको अपने नवीन शासन का निर्माण करना था। इसके लिए विशाल सेना की आवश्यकता थी, जिस पर बहुत भारी लागत पडती थी। होलकर ने विजय प्राप्त कर ली थी, परन्तु वह सदैव भाग्याधीन साहसिक योद्धा रहा क्योकि उसकी कोई निश्चित आय नही थी। उसने अपनी सेना का वेतन चुकाने के लिए अमृतराव से एक करोड रुपया माँगा। उसने साग्रह कहा—"मैंने शिन्दे का दमन करके तथा आपको

सर्वोपरि आसन पर बैठाकर अपना काय कर दिया है। अब आप मेरे व्यय का भुगतान अवश्य कर दे।" अमृतराव के पास धन नही था और न उसको उस आसन का लोभ ही था। वह क्या कर सकता था ? प्रमुख सरदारो का सम्मेलन करके यह निश्चय किया गया कि शिन्दे द्वारा शासन के सदस्यो साहूकारो तथा समृद्ध नागरिको से धन सग्रह किया जाये—अर्थात क्रान्ति के व्यय के लिए नवीन कर लगाया जाये। कागज पर धन-सग्रह का निश्चय स्वीकार कर लिया गया, परन्तु उसकी वसूली अत्यन्त कष्टदायक सिद्ध हुई। होलकर बल प्रयोग पर विवश हो गया तथा इस काय के लिए उसने तीन कमाण्डर नियुक्त कर दिये—इनमे से एक मीर खॉं पठान था। असहाय नगर पर पठानो को छोडकर जनता को घोर कष्ट दिया गया। उन्होने कोई दया नही दिखायी। उन्होने मकानो को खोद गिराया और जो कुछ भी उनको मिल सका उसे उठा ले गये। वे केवल सोना और चॉंदी ही नही, अपितु बरतन, वस्त्र, साज-सज्जा की सामग्री तथा सभी कुछ उठा ले गये। पेशवा की स्वण अम्बारी भी छीन ली गयी। नगर मे चार महीने तक यह लूट-खसोट होती रही। अब नगर वास्तव मे यमराज का निवास स्थान प्रतीत होने लगा था। जिलो मे कुछ बडे-बडे नगरो की भी न्यूनाधिक यही दुदशा हुई। तब भी होलकर ५० लाख से अधिक धन सग्रह न कर सका। यह धन उसकी अपेक्षित धनराशि से आधा ही था। द्वितीय अधभाग उसको अन्यत्र खोजना पडा।

बाजीराव द्वारा ब्रिटिश रक्षा स्वीकार किये जाने से समस्त महाराष्ट्र मे व्यापक क्रोध तथा व्याकुलता उत्पन्न हो गयी। लोगो के मन तथा उनके साधारण व्यवसाय अस्थिर हो गये। बेराड, भील, रामुसी, कोली, पिण्डारी तथा उद्योगहीन घुमक्कड जातियो की टोलियो ने अपनी परम्परागत लूटमार आरम्भ कर दी, जिसके कारण जीवन सवत्र अरक्षित हो गया। महाराष्ट्र ने ऐसे नेता की व्यथ प्रतीक्षा की जो घटनास्थल पर आकर इस अराजकता तथा परेशानी का अन्त कर देता। जब बाजीराव को बसई मे मालूम हुआ कि पूना मे एक अन्य व्यक्ति (अमृतराव) पेशवा बनाया जा रहा है तो वह अमृतराव के विरुद्ध उग्र हो उठा तथा बसई के समीप भिवण्डी मे उनका महल लूटने और नष्ट कर देने की आज्ञा दे डाली। इस समय से अमृतराव उसका सबसे बडा शत्रु हो गया।

इस प्रकार स्पष्ट हो जायेगा कि जनवरी से माच तक के तीन महीनो का उपयोग होलकर के पक्ष तथा ब्रिटिश प्रतिनिधि ने किस प्रकार अपनी योजनाएँ विकसित करने मे तथा तैयारियॉं पूर्ण करने मे भिन्न-भिन्न रूप से किया।

६ मार्च, १८०३ को कर्नल वेलेजली बाजीराव को उसकी गद्दी पर बैठाने के उद्देश्य से हरिहर नामक स्थान से पूना की ओर चला। प्रस्थान के पहिले उसने निम्नलिखित प्रेरणा प्रकाशित की—

"पेशवा बाजीराव ने कम्पनी सरकार की मित्रता तथा रक्षा प्राप्त कर ली है। हम उसके निमन्त्रण पर मित्र के रूप मे महाराष्ट्र मे प्रवेश कर रहे है। हमारी इच्छा किसी को दुख देने की नही है और न हमे किसी से कोई द्वेष है। समस्त मामलतदारो तथा अधिकारियो से हमारी प्रार्थना है कि वे प्रेम से हमारा साथ दे। हम अपने रक्षक दल नियुक्त कर रहे है। वे ध्यान रखेंगे कि समाज के किसी शान्त सदस्य को कोई हानि न हो। हमको जो कुछ अन्न तथा वस्तुएँ अपेक्षित होगी, उनका मूल्य बाजार भाव के अनुसार पूरा-पूरा चुका दिया जायेगा।" कर्नल वेलेजली के इस कार्य ने विरोध नही होने दिया तथा उसको पूना की ओर जाने के लिए सुविधापूर्ण तथा विघ्नबाधारहित मार्ग प्राप्त हो गया।

कर्नल वेलेजली ने पूना स्थित होलकर को आश्वासन भेजा कि यदि वह अंग्रेजो के प्रबन्ध मे हस्तक्षेप न करेगा तो वे उसे कोई कष्ट नही देंगे। रण से दूर रहने के लिए यशवन्तराव ने ब्रिटिश सेनाओ के आगमन के पहले ही पूना से हट जाना उचित समझा। इस विचार से वह पेशवा के महल मे गया और २५ फरवरी को उसे बाजीराव तथा अमृतराव की पत्नियो से बिदाई के वस्त्र प्राप्त हो गये। उसने अन्तिम रूप से नगर छोड दिया। होलकर की अल्पवयस्क खाँडेराव को उसके सुपुर्द कर दिये जाने की माग पूरी नही की गयी, इसलिए शिन्दे से उसकी मैत्री न हो सकी।

३ **बाजीराव पूना मे पुन प्रतिष्ठित**—कर्नल वेलेजली के सुपुर्द अब बसई मे निश्चित सन्धि की शर्तों के अनुसार बाजीराव को पूना मे पेशवा की गद्दी पर पुन प्रतिष्ठित करना रह गया। १८०३ के आरम्भिक मास दोनो वेलेजली बन्धुओ के लिए व्यग्रता तथा उत्तेजना से भरे हुए थे। ये मराठा राज्य को परास्त करने का अपना मुख्य उद्देश्य सिद्ध करने के विचार से अपने शासन-यन्त्र को निर्देश देते थे। इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए उन्हे पर्याप्त सैनिक बल द्वारा समर्पित कूटनीति से मराठा सघ तोडना था। इसका अर्थ था होलकर तथा अमृतराव को सान्त्वना देकर अनुकूल बना लिया जाये और बाजीराव को अकर्मण्यता मे मग्न कर दिया जाये। उस समय असन्तुष्ट नागपुर के भोसले तथा बडौदा के गायकवाड का उचित रूप से नियन्त्रण करके उन्हे विद्रोही सघ मे मिलने से रोकना था। इसका अर्थ था आक्रमण से पहले केवल

शिन्दे को पृथक करके उसकी प्रशिक्षित सेना का नाश कर दिया जाये। इस काय का अधिक सम्बन्ध शिन्दे के उत्तरी प्रदेशो पर अधिकार करने तथा दिल्ली सम्राट को ब्रिटिश रक्षा मे ले लेने से भी था। इस कायक्रम का वास्तविक अर्थ यह था कि भारतीय महाद्वीप की समस्त युद्धप्रिय शक्तियाँ शान्त रहने के लिए बलपूवक बाध्य कर दी जाये। लाड वेलेजली विचित्र सगठनकर्ता था। १८०३ मे भारतीय परिस्थिति से निपटने मे वह अपने गौरव के उच्चतम शिखर पर पहुँच गया। तत्कालीन कमाण्डर-इन-चीफ लाड लेक को इस विशाल योजना का उत्तर भारत से सम्बन्धित भाग दिया गया।

नमदा के दक्षिण का क्षेत्र कनल वेलेजली को सौपा गया। उसको पूना की ओर बढने और कनल क्लोज के साथ बाजीराव के बसई से लौटने पर स्वागत के लिए तैयार रहने की आज्ञा दी गयी। बम्बई के गवनर जोनाथन डकन तथा मद्रास के गवनर लाड क्लाइव को आज्ञा हुई कि वे इस योजना के समर्थन के लिए तैयार हो जाये तथा कनल वेलेजली को सहयोग देने के लिए यथासमय काय करे। कनल मरे के अधीन बम्बई की सेनाओ का तथा जनरल स्टुअट के अधीन मद्रास की सेनाओ का सगठन किया गया। निजाम की सहायक मित्रसेना आवश्यकता पडने पर आगे बढने के लिए कनल स्टीवेन्सन के अधीन परिडा पर ठहरा दी गयी। सब मिलाकर ब्रिटिश सेना की सख्या ६० हजार से कुछ ऊपर थी। यह सेना भारत मे किसी पूव अवसर पर एकत्र की गयी किसी भी सेना से बहुत बडी थी। इनके अतिरिक्त गवनर जनरल ने मेजर फ्रिथ को भारतीय शासको के यूरोपीय तथा अन्य अधिकारियो को निष्ठाभ्रष्ट करने के विशेष कार्य पर नियुक्त किया। गवर्नर जनरल ने अपने विश्वस्त कायकर्ता कनल मरसर को समस्त उत्तर भारतीय शासको पर निगाह रखने, उनका सहयोग प्राप्त करने तथा उनको विरोध के माग से दूर रखने के लिए लाड लेक के पास नियुक्त कर दिया। गवनर जनरल ने विशेष उपाय के रूप मे सामयिक घोषणाओ द्वारा साधारण भारतीय जनता को सूचित रखा कि अग्रेजो के उद्देश्य तथा योजनाएँ क्या हे और उनसे सवसाधारण को क्या विशेष लाभ प्राप्त होगे। इन पूर्वोपायो का क्षेत्र तथा प्रभाव पर्याप्त रूप से व्यापक थे। इस प्रकार की घोषणाएँ सवसाधारण तथा ब्रिटिश सेनाओ या भारतीय शासको की सेनाओ मे सेवा करने वालो मे मुफ्त बाटी गयी। भारतीय शासको की सेवा मे रहने वाले सैनिको को तीन महीनो के अन्दर अपनी सेवा छोडकर ब्रिटिश सेना मे भरती हो जाने पर उनके तत्कालिक वेतन और अन्य सुविधाएँ मिलते रहने, उचित सम्मान और ध्यान से उनके प्रति व्यवहार किये जाने तथा

जातीय आधार पर कोई भेदभाव न रखने का आश्वासन दिया गया। अंग्रेजो के विरुद्ध हथियार उठाने तथा मराठा हित को सहायता देने पर चेतावनी दी गयी कि उन्हे फिर कभी ब्रिटिश सुरक्षा प्राप्त न होगी। इस प्रकार की घोषणाओ की पाण्डुलिपियाँ विभिन्न अधिकारियो के पास स्थानीय वातावरण तथा विशेष परिस्थिति के अनुसार आवश्यक परिवतन कर सकने के निर्देश सहित भेज दी गयी।

गवनर जनरल ने समस्त सैनिक तथा असैनिक अधिकारियो के पास इस आशय की विस्तृत टिप्पणियाँ तथा सुझाव भेजे कि युद्ध आरम्भ होने पर वे इसमे किस प्रकार सहयोग दे ? किन उद्देश्यो को प्राप्त करना ह ? किस प्रकार सामग्री प्राप्त की जाये ? किस प्रकार रणोन्मुख सेनाओ द्वारा सर्वसाधारण का अपकार, पीडा तथा हानि रोकी जाये ? विशेष सकट की दशा मे कर्नल वेलेजली को गवनर जनरल के समस्त अधिकार सौप दिये गये, जिससे कलकत्ता से पूछताछ करने मे आवश्यक रूप से होने वाला विलम्ब रोका जा सके। उत्तर भारतीय अभियान के उद्देश्य की स्पष्ट परिभाषा करके वह लार्ड लेक के पास भेज दिया गया।

वास्तविक युद्ध आरम्भ होने के पहले यह सब काय कर लिया गया। किन्तु कूटनीतिक गतिविधियो के द्वारा स्पष्ट युद्ध मे प्रवेश किये बिना वही उद्देश्य प्राप्त करने के लिए कोई उपाय उठा न रखा गया।

कनल वेलेजली ने २० अप्रैल को पूना मे प्रवेश किया। २२ को वह पेशवा के महल मे गया तथा सुरक्षा की दृष्टि से उसने वहाँ की स्थिति देखी। उसने अपने पूना आने का समाचार बसई स्थित कनल क्लोज के पास भेज दिया। तब वह बाजीराव को अपने साथ लेकर वहाँ से चल पडा। बाजीराव पूना वापस होने के लिए अत्यन्त अधीर हो रहा था। ६ मई को यह टोली चिचवाड पहुँच गयी तथा एक सप्ताह के बाद १३ मई को बाजीराव ने अपनी राजधानी मे प्रवेश किया। उसने तोपो की सलामियो और हर्षध्वनि के साथ अपनी गद्दी पुन प्राप्त कर ली। कलकत्ता, सूरत तथा अन्य महत्त्वशाली नगरो मे तोपो की सलामियो से इस घटना की घोषणा की गयी। इस समय कनल क्लोज के साथ उसका सहायक माउन्ट स्टुअट एल्फिस्टन था। इसने १७९६ मे कम्पनी की सेवा मे प्रवेश किया था। इस प्रकार शान्तिपूण ढग से ब्रिटिश कूटनीति ने बाजीराव को पुन प्रतिष्ठित कर दिया। साथ ही किसी विरोधी व्यक्ति को कोई उत्तेजना नही दी गयी। होलकर चन्दवाड मे घटनाचक्र की भावी गति की प्रतीक्षा करता रहा। अमृतराव जुन्नार वापस चला गया।

बाजीराव का मित्र शिन्दे बुरहानपुर मे ठहरा रहा तथा अग्रेजो की ओर से सम्भावित सकट का सामना करने के लिए उपाय ढूढता रहा। उसने भोसले की मित्रता प्राप्त करने के लिए नागपुर के साथ शीघ्र वार्तालाप आरम्भ कर दिया। यद्यपि नागपुर तथा बुरहानपुर के बीच बहुत ही कम दूरी थी तथापि दोनो सरदारो को परस्पर मिलने मे ८ मास का लम्बा समय लग गया। उनकी यह मूखता अभिशाप सिद्व हुई।

४ **अमृतराव द्वारा देशद्रोह**—अब मराठा इतिहास का अत्यन्त दुखद अध्याय आरम्भ होता है। जिस शीघ्रता से घटनाएँ आगे बढी, उस गति से उसका स्पष्टीकरण नही किया जा सकता। बाजीराव अयोग्य सिद्व हो चुका था। अत सवसाधारण के मतानुसार पतनोन्मुख राज्य की रक्षा करने के लिए अमृतराव पेशवा परिवार का योग्यतम व्यक्ति था। ठीक इसी कारण बाजीराव को उससे हार्दिक घृणा थी। इस समय होलकर के साथ हो जाने तथा अपने पुत्र के लिए पेशवा पद प्राप्त कर लेने के कारण बाजीराव ने बहुत पहले (१ अक्तूबर, १७९८) नाना फडनिस के आग्रह पर दी गयी उसकी ७ लाख की वृत्ति बन्द कर दी। अत अमृतराव इस समय सवथा असहाय स्थिति मे था। न उसके पास कोई सेना थी, न दूसरा कोई साधन, जिससे वह बाजीराव के क्रोध से अपनी रक्षा कर सकता। उसमे यह साहस नही था कि ब्रिटिश विरोधी सघ का स्पष्ट रूप से नेतृत्व ग्रहण कर सकता। वेलेजली ने अमृतराव के कष्टो से लाभ उठाने मे विलम्ब नही किया। इस प्रकार उसकी शत्रुभावना निबल कर दी गयी। स्वय बाजीराव ने ब्रिटिश-विरोधी आन्दोलन के पक्ष या विपक्ष मे कोई निश्चित कायप्रणाली ग्रहण नही की। उसे अग्रेजो के तत्कालीन सवग्राही उपायो से अत्यन्त खेद था। परन्तु जो प्रतिज्ञा उसने कर रखी थी, उससे हटने अथवा सधि का स्पष्ट खडन करने का उसमे साहस नही था। इस अस्थिरता के कारण स्वय उसका नाश हो गया तथा अपने उद्देश्यो की पूर्ति करने के लिए ब्रिटिश कूटनीतिज्ञो ने इसका उपयोग किया।

अमृतराव को मराठा सघ मे सम्मिलित होने से रोकने मे कनल वेलेजली सफल हो गया। उसने अमृतराव को उसके भाई बाजीराव या किसी अन्य शासक के विरुद्ध ब्रिटिश सुरक्षा प्रदान की तथा अपने ही उत्तरदायित्व पर उसको पुरानी ७ लाख की जागीर एक लाख और बढाकर वापस दिला दी। कनल वेलेजली के इस अकारण तथा अनधिकृत हस्तक्षेप का बाजीराव ने घोर विरोध किया तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गृहाधिकारियो तक शिकायत पहुँचाई। बाद को इस विषय मे कर्नल वेलेजली से उसके आचरण का स्पष्टी-

करण माँगा गया। वेलेजली का उत्तर इस विषय पर सक्षिप्त टीका है। वह इस प्रकार है—"अमृतराव पेशवा के पिता का दत्तक पुत्र है। वह मराठा राज्य के नागरिक तथा राजनीतिक कार्यो मे बहुत योग्य व्यक्ति है। उन षड्यन्त्रो और उपद्रवो से उसका गहरा सम्बन्ध रहा है जो पूर्व पेशवा की मृत्यु के बाद हुए है। उसकी योग्यता की ख्याति किसी अन्य मराठा से बहुत ऊँची है। नाना फडनिस के समस्त अनुयायी तथा देश के व्यापारी उसको बहुत चाहते थे। वह सदैव दृढतापूर्वक वतमान पेशवा के शासन के विरुद्ध रहा। यदि बसई की सन्धि के फलस्वरूप ब्रिटिश मरकार हस्तक्षेप न करती तो होलकर उसी (अमृतराव) के पुत्र को गद्दी पर बैठाना चाहता था। जब मेरे अधीन ब्रिटिश सेनाओ के आगमन के कारण होलकर पूना से हटने पर विवश हो गया, तब भी अमृतराव सबसे बाद मे नगर से हटा। जब मै पेशवा को शासन काय पुन सँभालने के लिए वापस ले आया, उस समय मुझे तथा कनल फ्लोज को अमृतराव तथा पेशवा के बीच समझौता करा देना आवश्यक प्रतीत हुआ। पेशवा अपने भाई से डरता था और घणा करता था। हमने निकटवर्ती सघर्ष मे उसको निष्पक्ष करके उसका समथन प्राप्त करना उचित समझा। हमने आग्रहपूवक उसकी शर्ते जान ली, जिनका मुख्य सम्बन्ध इस विषय से था कि बसइ की सन्धि के पहले उसके पास क्या था तथा उस सन्धि के बाद उसकी क्या हानि हुई? तब हमने उस आय पर समझौता करा देना युक्तियुक्त समझा जो कम से कम सधि से पहले वाली आय के समान हो। वार्तालाप होता रहा तथा जब अगस्त, १८०३ मे युद्ध छिड गया, तब मुझको सैनिक असुविधाओ के कारण यह काण्ड समाप्त कर देना उचित प्रतीत हुआ जो अमृतराव के प्रभाव के फलस्वरूप था। अत मैने अमृतराव से सन्धि कर ली और उसको ८ लाख की जागीर प्रमाणित कर दी। मै यह अवश्य कहूँगा कि उसके बाद अमृतराव ने हमारी जो सेवा की उसे कभी न भूलना चाहिए।"[५]

२४ जुलाई, १८०३ को जनरल वेलेजली ने गवर्नर जनरल को लिखा—"अमृतराव के विषय मे हमारी प्रस्तावित योजना से पेशवा सहमत नही होना चाहता था। उसका अभिप्राय यह था कि अमृतराव को अत्यन्त अपमानजनक स्थिति मे बन्दी बनाकर रखा जाये। मुझको विश्वास हो गया कि यदि यह समाचार मै अमृतराव के वकील को दे देता हूँ तो वह तुरन्त हमारे विरुद्ध सघ मे सम्मिलित हो जायेगा। इस बीच मे उसके वकील ने मुझसे निणय के

---

५ वेलिग्टन के पत्र, ओवेन कृत, पृ० ३४८—डण्डास को पत्र।

लिए आग्रह किया । उसका कहना था कि मेरी इच्छा पर अमृतराव होलकर तथा शिन्दे की सभाओ से अलग हो गया है । इस बात को लगभग ३ मास हुए । अब वे सरदार उसके शत्रु है । इस समय वे सरदार तथा पेशवा भी शत्रु के रूप मे उस पर आक्रमण कर सकते थे । अत मैने अमृतराव को पत्र लिखकर यह आश्वासन देना उचित समझा कि ब्रिटिश सरकार उसके लिए इस प्रकार का प्रबन्ध करने का ध्यान रखेगी जो कि उसको स्वीकाय हो । तब मैने सैनिक तथा राजनीतिक विचारो के कारण उस सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये, जिसका उल्लेख पहिले हो चुका हे ।''[६] आथर वेलेजली आगे लिखता है—

"उस समय के पत्रो को देखने से पता चलेगा कि सघ के सदस्यो ने किस प्रकार होलकर को हमारे विरुद्ध सक्रिय युद्ध मे सम्मिलित करने के लिए जी-तोड प्रयत्न किया । यदि होलकर ने शिन्दे के साथ अपनी प्रतिज्ञाओ का पालन किया होता तो मै यह कहने का साहस नही कर सकता कि मै वही सफलता प्राप्त करता जो मैने की । अमृतराव ने शिन्दे का एक पत्र पकड लिया, जिसमे उसने पेशवा से अग्रेजो की मैत्री त्याग देने का आग्रह किया था तथा प्रतिज्ञा की थी कि जैसे ही अग्रेजो की पराजय हो जायेगी, वह (शिन्दे) बरार के राजा तथा पेशवा से मिलकर होलकर का नाश कर देगा । अमृतराव ने यह पत्र होलकर के पास भेज दिया । इसका परिणाम यह हुआ कि सघ के सदस्यो के साथ सहयोग के विचार से दक्षिण की ओर दो यात्राएँ करने के बाद होलकर वापस नमदा पार लौट आया तथा वास्तव मे उसने एक भी आक्रमण नही किया । इसके विपरीत समस्त युद्ध मे वह मेरे साथ मित्रवत व्यवहार करता रहा । यह प्रतिपादन करके मै इस पत्र को समाप्त करता हूँ कि अमृतराव के साथ स्थायी समझौता करके मैने उचित काय किया तथा उसको ७ लाख की वृत्ति देना उचित था ।"[७]

इस प्रकार ब्रिटिश सरकार से स्थायी वृत्ति स्वीकार करके अमृतराव मराठा राज्य का प्रथम राजद्रोही सिद्ध हुआ ।

५ **बाजीराव राज्य कार्य तथा उत्तरदायित्व से मुक्त**—अब हमे देखना

---

६ ओवेन, पृ० २७१ । पी० आर० सी०, जिल्द ७, दिनाक ६ जुलाई, १८०५ मे उल्लेख है —"सभासीन गवनर जनरल ने मान लिया कि सर आथर वेलेजली द्वारा अमृतराव से सवप्रथम १४ अगस्त, १८०३ को की गयी तथा १८०४ के जनवरी मास मे प्रमाणित प्रतिज्ञा उचित थी । इसके द्वारा ८ लाख की वृत्ति निश्चित की गयी, जिसमे १ लाख की वे वृत्तियाँ भी सम्मिलित थी जो उसके अनुयायियो के लिए स्वीकार की गयी थी ।

७ ओवेन, पृ० ३४८

है कि बाजीराव पर उन उत्तरदायित्वो की क्या प्रतिक्रिया हुई, जिनको उसने सन्धि द्वारा अपने ब्रिटिश रक्षको तथा राज्य के सदस्यो के प्रति स्वीकार किया था। कनल वेलेजली से उसन मुख्यतया शिकायत की कि उसके पास अपना कोई श्रद्धालु सेवक या अनुचर नही है। साथ ही वह निष्ठायुक्त और निष्ठाहीन व्यक्तियो मे विवेक नही कर सकता है। वेलेजली ने सुझाव दिया कि वह प्रत्येक अधिकारी से निष्ठा की शपथ ले ले जैसा कि आजकल विधानसभाओ के सदस्यो द्वारा किया जाता है। इस प्रकार की शपथ के गुणो या अवगुणो का विचार न करके यह कहा जा सकता है कि मराठा राजनीति मे यह पद्धति सवथा नवीन थी तथा पूव शासनो मे इसका कभी उपयोग नही किया गया। बाजीराव ने इसे तुरन्त स्वीकार कर लिया तथा प्रत्येक व्यक्ति को निष्ठा की शपथ लेने के लिए विवश करने लगा। वह लोगो को भोजो तथा गोष्ठियो के लिए बुलाता ओर आरम्भ होने के पहिले इष्टदेव के सम्मुख प्रत्येक व्यक्ति से यह पवित्र शपथ करा लेता। अधिकाश व्यक्ति इस नवीन पद्धति से अप्रसन्न हो जाते, परन्तु अनिच्छापूवक स्वीकार कर लेते। जनरल वेलेजली पूना मे रहकर शिन्दे, होलकर तथा अ य व्यक्तियो से शान्ति प्रस्ताव कर रहा था।

बाजीराव ने बलव तराव नागनाथ को जनरल के पास अपने सन्देश पहुचाने के लिए नियुक्त किया। विठोजी नायक नगर कोतवाल बनाया गया तथा सदाशिव मानकेश्वर बालोजी कुजर की दीघकालीन अनुपस्थिति मे पेशवा का मुख्य मन्त्री—स्थानीय परामशदाता—नियुक्त किया गया। कुजर को बाजीराव ने बसई से वतमान परिस्थिति तथा सन्धि के परिणाम स्पष्ट करने के लिए शिन्दे के पास भेज दिया था। खॉडेराव रास्ते उसका गृह-प्रबन्धक नियुक्त किया गया। इसने बाजीराव को पूना से भगाने मे सहायता दी थी। अब राजनीति से सम्बन्धित शायद ही कोई काय बाजीराव के पास रह गया, क्योकि जनरल वेलेजली ने शान्तिपूवक समस्त कतव्यो पर अपना अधिकार जमा लिया। बाजीराव कोई दरबार न करता, किसी अभ्यागत का स्वागत न करता और न कोई सम्मेलन बुलाता। किसी समय के शक्तिशाली साम्राज्य के प्रभाहीन स्वामी की ओर से समस्त राज्यकाय सीधे जनरल के पास भेज दिये जाते थे। इस प्रकार बाजीराव को मालूम हो गया कि वह केवल दिखाने के लिए शासक है, जिसके पास राजभवन मे अपना व्यक्तिगत परिचारी वग है। १ जुलाई को एक सवाददाता इस प्रकार टिप्पणी करता है—"अब श्रीमन्त शान्त तथा सुखी है। अब उनके पास केवल स्नान, प्राथना, भोजन, मदिरापान और भोग-विलास का दैनिक कायक्रम रह गया है। अब उन्हे किसी बाह्य काय की

चिन्ता नही है। वर्षा ऋतु के चार मास वह धार्मिक कार्यो मे व्यस्त रहा है, जिनके लिए प्रसिद्ध पुरोहित विशेष रूप से बुलाये गये हे। व्ययसाध्य भोजो तथा मधुर सगीत का नित्य प्रबन्ध होता हे। भोजनपात्र विपुल प्रसाधन युक्त होते हे। एक दिन पेशवा को ज्वर हो गया, जिसकी शान्ति के लिए दान तथा प्राथनाएँ की गयी। पुरोहितो को खिलाने के लिए भोज्य-पदार्थों के निर्वाचन पर गरमागरम वादविवाद होते हे। लावनिया गाने मे निपुण जो दो सुन्दरी नतकिया बसइ से बुलाई गयी हे, उनके गायन गुप्त स्थान म होते हे। वहा केवल थोडे से चुने हुए व्यक्ति उपस्थित होते है। पेशवा अपना अधिकाश समय यही व्यतीत करता है। गत वष से उसको एक गुप्त रोग हो गया है। मोरोबा माने नामक निम्न सेवक को पुरस्कार रूप मे पालकी का सम्मान दिया गया है। उसने पेशवा को भागने मे सहायता दी थी। अब वह शरीर पर मोतियो तथा हीरो के आभूषण धारण किये रहता है। गत मगलवार को पावती मे आतिशबाजी छोडी गयी। वही पेशवा ने अपना रात्रि का भोजन किया था। उसकी इच्छा रहती है कि उसके मित्र तथा अधिकारी लोग उसे बाह्य स्थानो मे भोजो तथा गोष्ठियो के लिए निमन्त्रित करे।"

जिन चार महीनो मे मराठा इतिहास का अत्यन्त महत्त्वशाली युद्ध लडा गया, उन दिनो बाजीराव के जीवन का यह वणन पेशवा के जीवनस्तर की अधोगति का प्रमाण है। २४ जनवरी, १८०४ को कनल क्लोज को लिखे हुए पत्र मे वेलेजली ने[८] बाजीराव के विषय मे अपनी निम्नलिखित सम्मति प्रकट की हे —"पेशवा को यह सूचित करना उचित होगा कि उसके राज्य मे उच्चतम व्यक्ति से निम्नतम व्यक्ति तक कोई मनुष्य ऐसा नही है जो उसका विश्वास करता हो या जो ब्रिटिश सरकार की मध्यस्थता अथवा जमानत के बिना उसके साथ कोई सम्बन्ध या लिखा-पढी चाहता हो। उसमे कोई सावजनिक भावना नही हे। उसकी व्यक्तिगत प्रकृति भयकर हे। जब ब्रिटिश सेना सहायताथ नही होती, उस समय वह सवथा प्रजाविहीन हो जाता हे। विषयभोग के लिए अपेक्षित धन के अतिरिक्त उसकी कोई इच्छा नही है। उसकी यदि कोई इच्छा है तो यह है कि जिनको वह 'विद्रोही' कहता है, वे उसके रक्षको द्वारा पकड लिये जाये तथा प्रतिरोध के लिए उसके सुपुद कर दिये जाये।[९]

---

८ आथर वेलेजली ३ मई, १७९६ को कनल हो गया, २९ मई, १८०२ को मेजर जनरल, २५ अप्रैल, १८०८ को लैफ्टीनेन्ट जनरल, तथा ३१ जुलाई, १८६१ को जनरल।

९ ओवेन कृत वेलिग्टन के पत्र, पृ० ३६५ तथा ३९३, १२ मई, १८०४ का पत्र।

बाजीराव न अपने ब्रिटिश रक्षको के साथ मित्रता बनाये रख सका और न मराठा सघ के साथ। उसकी उत्कट इच्छा होलकर को कठोर दण्ड दिलाने और स्वय ब्रिटिश दासता से मुक्त होने की थी। पहले से युद्ध का छिड जाना सम्भव जानकर जनरल वेलेजली ने बाजीराव से कहा कि वह ऐसी आज्ञा प्रसारित करे जिससे समस्त सरदार अग्रेजो का साथ दे और शिन्दे सहित विद्रोहियो को दण्ड दे। वेलेजली के दबाव पर बाजीराव ने इस आशय की आज्ञा उसके हाथ मे दे दी, परन्तु उसके साथ-साथ उसने पटवधन, विचूरकर, पुरन्दरे, पन्से, रस्ते तथा अन्य सरदारो से गुप्त रूप से कहा कि वे युद्ध मे अग्रेजो का साथ न दे। उसने रामचन्द्र अप्पा पटवधन को मिलने के लिए आमन्त्रित किया और उससे अग्रेजो का साथ देने के लिए स्पष्टीकरण माँगा। पटवधन ने स्पष्ट उत्तर दिया—"यथा राजा तथा प्रजा।"

पेशवा की दुपल्ली नीति वेलेजली के सामने न चल सकी, क्योकि वह उससे अधिक चतुर था। जब वेलेजली ने कहा कि वह शिन्दे तथा भोसले के विरुद्ध युद्ध मे अपनी सेना सहित सम्मिलित हो तो बाजीराव हक्का-बक्का रह गया तथा अत्यन्त व्याकुल हो उठा। होलकर के अत्याचार से अपनी रक्षा करने के लिए ही उसने ब्रिटिश सैनिक सहायता प्राप्त की थी। बसई की सन्धि से सहमत होने मे उसकी हार्दिक इच्छा होलकर को उचित दण्ड दिलाने की थी। परन्तु इस प्रकार की घटना घटित होने के स्थान पर उसने देखा कि वेलेजली तथा समस्त ब्रिटिश सरदार उसके मित्र शिन्दे तथा सहायक भोसले को पराजित करने पर तुले हुए है। यह सब जिस प्रकार हुआ, उसे नीचे बताया जाता है।

६ **किग कालिन्स शिन्दे के पास**—बसई के शान्ति-वार्तालापो के बाद वेलेजली बन्धुओ का मुख्य उद्देश्य मराठा स्वातन्त्र्य का नाश करके उसके स्थान पर ब्रिटिश प्रभुता स्थापित करना था। इस सम्बन्ध मे उनको शिन्दे की अनुशासित सेना से अधिक भय था। सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर होते ही गवनर जनरल न शिन्दे से इन शर्तों पर अपनी स्वीकृति दे देने के लिए कहा। इस काय के लिए रेजीडेन्ट कनल कालिन्स को शिन्दे के पास उसके फतेहगढ शिविर मे भेजा गया। कनल क्लोज ने शिन्दे के पास बाजीराव के साथ निश्चित की गयी सन्धि की एक प्रतिलिपि भेजी। शिन्दे को यह प्रति बुरहानपुर मे ९ जनवरी को प्राप्त हुई। इसके साथ बाजीराव के शत्रुओ का दमन करने मे अग्रेजो का साथ देने के लिए निमन्त्रण भी था। शिन्दे ने उत्तर दिया—"कालिन्स शीघ्र ही पहुँचने वाला है, अत उसके साथ परिस्थिति पर वार्तालाप करके अपना उत्तर भेजूगा।" वेलेजली ने इस उत्तर का अथ लगाया कि शिन्दे ब्रिटिश रक्षा मे

बाजीराव के पूना मे पुन प्रतिष्ठित होने के विरुद्ध नही है। कालिन्स शिन्दे के शिविर मे २७ फरवरी को पहुँच गया, परन्तु बहुत दिनो तक शिन्दे ने उससे बात ही नही की। वे सर्वप्रथम ११ माच को मिले। इस दिन से ३ अगस्त तक शिन्दे तथा कालिन्स के बीच गरमागरमी होती रही। अन्त मे कालिन्स युद्ध के सकेत के रूप मे अजन्ता पहाडियो के नीचे फर्दापुर मे स्थित शिन्दे के शिविर से चल दिया। प्रत्येक अपने कूटनीतिक चातुय से दूसरे को धोखा देने का प्रयत्न करता रहा। इस समय इन समाचारो का अध्ययन ज्ञानवधक हे। इस कहानी को दोनो मुख्य व्यक्तियो के बीच सक्षिप्त सवाद के रूप मे प्रस्तुत करना सुविधाजनक होगा। दोनो ही की सहायता के लिए परामशदाता उपस्थित रहते थे। शिन्दे के स्वभाव तथा चरित्र से हम पहले से ही परिचित हे। कालिन्स सवथा विपरीत प्रकार का व्यक्ति था। वह नाटे डील का अत्यन्त आडम्बर-पूण तथा गर्वीला व्यक्ति था। वह सदैव विधिपूवक नियमित वस्त्र धारण किये रहता था। उसके स्वभाव के कारण एल्फिस्टन को उसके सहायक का काय करना असम्भव हो गया था। आथर वेलेजली उससे १८०३ मे मिला और रेजीडेन्सी के शिविर मे तोपो की सलामी से उसका स्वागत किया गया। उस समय वेलेजली ने अपने शिविर सहायक कैप्टिन ब्लैकिस्टन से कहा था—"कालिन्स को देखकर मुझे एक अल्पकाय बन्दर की याद आती हे जो पूण वेष-भूषा धारण करके बारथोलोम्यू के मेले को जा रहा हो।" उसके गव तथा आडम्बर के कारण अन्य ब्रिटिश अधिकारी उसको साधारणत "किग (राजा) कालिन्स" कहते थे।

सिन्धिया के साथ अपनी प्रथम भेट मे कालिन्स ने पूछा —

कालिन्स—होलकर के साथ आपके झगडो का हम समझौता करा देगे। आप बसइ की सन्धि अवश्य मान ले तथा हमसे अलग समझौता कर ले, जिससे हमारे पारस्परिक सम्बन्ध भूतकाल के समान स्नेहमय रहे और हमारे बीच शान्ति मे बाधा न पडे। आपके साथ हमारे सम्बन्ध मधुर रहे, इसे आप भी स्वीकार करते हे।

शिन्दे—इस विषय पर विचार करने के लिए मुझको कुछ समय अवश्य मिलना चाहिए। होककर से कलह के विषय मे मुझको ब्रिटिश मध्यस्थता की आवश्यकता नही हे।

१६ माच को शिन्दे के वकील ने कालिन्स को सूचना दी कि "हमारी हार्दिक इच्छा हे कि शान्ति बनी रहे तथा ब्रिटिश सरकार के साथ पूववत मैत्री चलती रहे। होलकर से कलह हमारा अपना विषय है। इस विषय पर हमको

पहले पेशवा से परामश करना हे। महादजी शिन्दे द्वारा की गयी साल्बई की सन्धि के प्रति हम दोनो अभी तक उत्तरदायी हे। आप अच्छी तरह जानते है कि उस सन्धि मे पेशवा तथा अग्रेजो के बीच प्रतिज्ञाओ के पालनाथ शिन्दे को प्रतिभू स्वीकार किया गया था। अत बिना महाराजा से पूछे पेशवा के साथ सन्धि करना अग्रेजो का अन्याय हे।"

कालिन्स—पेशवा स्वामी है और शिन्दे उसका सेवक। क्या आप यह कहना चाहते है कि स्वामी को अपनी इच्छानुसार आचरण से लिए सेवक की अनुमति अवश्य लेनी चाहिए? हमने साल्बई की सन्धि की किसी भी प्रतिज्ञा को भग नही किया है, तथा पेशवा अपने उत्तरदायित्व पर अन्य शक्तियो के साथ नवीन समझौता करने के लिए तैयार हे। अन्तिम उत्तर देने के पहले आपका पेशवा से मिलना आवश्यक हे, यह इसका निश्चित सकेत हे कि आपको हमारी बातो का विश्वास नही हे। अत हम अनुमान करने के लिए स्वतन्त्र हे कि आप बसइ की सन्धि को स्वीकार नही करते। क्या यही बात हे?

शिन्दे के वकील ने इस प्रश्न का उत्तर देने से इनकार कर दिया। २४ माच को कालिन्स ने पूछा—"बाजीराव को अत्यन्त आवश्यकता पडने पर हम उसकी सहायता करने आये और उसको होलकर द्वारा होन वाले सवनाश से बचा लिया। वह आप दोनो का नाश कर देता। अत अब आप हमस निष्कपट कह दीजिए कि ब्रिटिश सत्ता के प्रति आप कौनसी वृत्ति धारण करना चाहते है।"

शिन्दे—जो कुछ अग्रेजो न किया, वह उनका अपना काय था। परन्तु यह विचित्र बात है कि बाजीराव ने इस गम्भीर प्रश्न के सम्बन्ध म हमको अब तक कुछ नही लिखा है। जब तक हमको यह न मालूम हो जाये कि उसका उद्देश्य क्या हे, मे आपको स्पष्ट उत्तर नही दे सकता। मुझे सूचना मिली हे कि बाजीराव का कायकता बालोजी कुजर स्थिति स्पष्ट करने के लिए मेरे शिविर मे आ रहा हे। उसके आने पर मै आपका उत्तर दूगा। इस का यह अथ नही है कि हम सन्धि का तिरस्कार करते हे। मेरी इच्छा आपका विरोध करने तथा ब्रिटिश सरकार के साथ अपनी परम्परागत मित्रता को भग करने की बिलकुल नही है।

इसके शीघ्र पश्चात ही जनरल वेलेजली के सेना सहित पूना पहुँच जाने का समाचार मिला। तब शिन्दे ने पूछा—"पूना आने मे ब्रिटिश सेनाओ का क्या उद्देश्य है? उन्हे वापस बुलाने के लिए गवर्नर जनरल को अवश्य लिखे।"

कालिन्स—आप बसइ की सन्धि को स्वीकार करने की बात कहते हे। उसी सधि के अनुसार ब्रिटिश सेनाएँ पूना पहुँची है। फिर वे वापस कैसे बुलायी जा सकती है ?

जब कालिन्स तथा शिन्दे के बीच इस प्रकार का वाद-प्रतिवाद हो रहा था, तभी शिन्दे के वकील ने १८ अप्रैल को कालिन्स से मिलकर पूछा—"क्या अग्रेज उस हानि की पूर्ति करने के लिए तैयार है जो उन्होने मेरी जानकारी के बिना बसइ की सन्धि करके की थी ?"

कालिन्स—शिन्दे को रुष्ट करने अथवा उसकी प्रतिष्ठा को हानि पहुँचाने की हमारी कोई इच्छा नही है।

इस वार्तालाप के समय शिन्दे, भोसले, होलकर तथा अन्य सरदार अग्रेजो के विरुद्ध एक विशाल सघ का सगठन करने के कार्य मे व्यस्त थे। इसका समाचार गवनर जनरल के पास पहुँच गया। ४ मई को शिन्दे भोसले से मिलने के लिए बुरहानपुर से चल दिया। भोसले शिन्दे से मिलने के लिए अपनी सेना सहित नागपुर से चल दिया था। गवनर जनरल ने कालिन्स से पुछवाया कि वह शिन्दे से पूछे कि इन प्रयाणो का अथ अग्रेजो के विरुद्ध युद्ध तो नही हे, उसको चेतावनी दे कि यदि वह वास्तव मे अग्रेजो के साथ मैत्री सम्बन्ध बनाये रखना चाहता है तो अविलम्ब उत्तर भारत मे अपने प्रदेश को वापस चला जाये। वतमान सकटपूण परिस्थिति मे विशाल सेनाओ सहित दक्षिण मे उसकी उपस्थिति से विपत्ति का भय है। यदि इस प्रकार की चेतावनी के विपरीत शिन्दे पूना की ओर प्रयाण मे दृढ रहा तो गवनर जनरल समझेगा कि उसका अभिप्राय बसई की सन्धि को भग करना है। यह शत्रुतापूण काय अग्रेजो को अपनी समस्त शक्ति सहित रोकना ही पडेगा। गवनर जनरल न यह भी कहा कि अपने मित्र निजामअली की रक्षा करना ब्रिटिश सरकार का कतव्य है। यदि शिन्दे निजाम पर आक्रमण करेगा तो अग्रेज इसका अथ समझेगे कि युद्ध की घोषणा हो गयी हे।

गवनर जनरल ने कलकत्ते से ३ जून को कडा प्रत्यादेश भेजा तथा कालिन्स को आज्ञा दी कि वह शिन्दे का उत्तर प्राप्त करके उसे सीधा जनरल वेलेजली के पास पूना भेज दे। गवनर जनरल ने इसी प्रकार का प्रत्यादेश नागपुर के रेजीडेण्ट जोजिया वेब के द्वारा रघुजी भोसले को भेजा। जनरल वेलेजली को उसी समय आदेश दिया गया कि दोनो रेजीडेण्टो से उत्तर प्राप्त करने के बाद जो काय आवश्यक समझे करे। इनके अतिरिक्त गवनर जनरल ने पेशवा को अलग से विस्तृत पत्र लिखा, जिसमे परिस्थिति की व्याख्या करने के बाद

उसको आदेश दिया गया था कि वह् फ्लोज तथा जनरल वेलेजली की इच्छा-नुसार अपनी सेना सहित युद्ध मे पूण सहयोग दे ।

इस प्रकार जून-जुलाई मे जनरल वेलेजली युद्ध की सम्भावना हाने पर तैयारियो मे व्यस्त रहा । उसने ब्रिटिश सेनाओ को अपने विभिन्न स्थानो से बढकर बरार मे शिन्दे के शिविर के समीप एकत्र होने की आज्ञा दी । उसने यथासम्भव सरदारो को मित्र रूप मे प्राप्त करने तथा अपनी इच्छा से मराठा सघ के अनुकूल होने वाले सरदारो को प्रलोभन देने का प्रयत्न किया । वेलेजली ने तुगभद्रा से लेकर नमदा तक प्रत्येक छोटे-बडे मराठा सरदार से प्राथना करके विरोधी पक्ष को निबल करने का यथाशक्ति प्रयास किया ।

जब युद्ध की सम्भावना बढने लगी तो जनरल वेलेजली ने निश्चय किया कि वर्पा ऋतु मे सैनिक गतिविधि के लिए दक्षिण बरार का क्षेत्र सवथा उत्तम रहेगा । उसने सम्बन्धित विभिन्न कायकर्ताओ तथा सरदारो के नाम इस आशय के स्पष्ट सामयिक निर्देश भेज दिये । गवनर जनरल न इसी प्रकार की एक अन्य योजना बनाकर दिल्ली क्षेत्र मे कार्यान्वित करने के लिए मुख्य सेनापति लाड लेक के पास भेज दी ।

इन प्रवृत्तियो के कारण समस्त दक्षिण मे लगभग हलचल सी मच गयी । शिन्दे के शिविर मे कालिन्स ने निणय के लिए लगातार दबाव डाला और शिन्दे ने उसी तत्परता से इसको टालने का प्रयत्न किया । जब कालिन्स ने उग्र होकर स्पष्ट उत्तर माँगा तो उससे कहा गया कि भोसले आ रहा हे । जब तक दोनो सरदार परस्पर मिल न लेगे, तब तक कोई निश्चयात्मक उत्तर नही दिया जा सकता । इसका स्पष्ट अर्थ था कि शिन्दे तथा भोसले तैयारिया के लिए समय चाहते थे । कालिन्स ने इस कपट को पराजित करने का उपाय किया । गवर्नर जनरल न कालिन्स से कहा कि वह शान्ति या युद्ध के सम्बन्ध मे शिन्दे के निश्चय के लिए विशेप अवधि निश्चित कर दे ।

अन्त मे शिन्दे और भोसले ४ जून को मलकापुर के समीप बोडवाड म विधिपूर्वक प्रथम बार मिले । कालिन्स ने रघुजी से तुरन्त निश्चय की माँग की । रघुजी ने उत्तर दिया—"कल ही तो मुझे बसइ की सन्धि का समाचार मिला है, अत परिस्थिति पर विचार करने के लिए मुझे समय अवश्य मिलना चाहिए ।" ८ जून को दोनो सरदारो के बीच प्रथम विचार-विमश हुआ । इसके बाद कालिन्स ने उत्तर के लिए फिर दबाव डाला । सरदारो ने विलम्ब किया तो १२ जून को कालिन्स ने लिखित धमकी दी कि यदि उसको तुरन्त स्पष्ट उत्तर नही दिया गया तो वह शिन्दे के शिविर से चल देगा । इस

प्रकार यह काण्ड सकट की दिशा मे अग्रसर हुआ। सघ के दोनो सदस्य उस समय दूरस्थ होलकर से पत्र-व्यवहार कर रहे थे। १९ जून को कालिन्स ने शिन्दे को पत्र लिखकर उसमे कहा—"यदि आप दो दिन के भीतर अपना अन्तिम उत्तर मुझे नही देगे तो मै इसी मास की २२ तारीख को आपके शिविर से चल दूगा।" इस पर शिन्दे ने सुविचारित उत्तर के लिए ६ दिन का समय माँगा। कालिन्स ने इसके अनुसार २८ को उत्तर मागा। कुछ समय बाद दोनो सरदारो ने कालिन्स को सूचना दी—"हमको अभी तक बसई सन्धि की पूरी प्रतिलिपि प्राप्त नही हुई है। जब तक हमे वह नही मिलती और इस पर पेशवा के साथ व्यक्तिगत रूप मे बातचीत नही कर लेते, तब तक हम अन्तिम निश्चय पर पहुँचने की स्थिति मे नही हो सकते।" १ जुलाई को कालिन्स ने दौलतराव से मिलकर यह प्रबल चेतावनी दी—"अपने निश्चय मे विलम्ब करके आप केवल हमारी परेशानियो को बढा रहे है। आप यहाँ अपनी पूण सेनाओ सहित उपस्थित ह। ऐसे मे यदि जनरल वेलेजली विवश होकर युद्ध छेड दे तो उत्तरदायित्व आपका होगा।"

४ जुलाई को तीनो फिर मिले। वहा भोसले के वकील श्रीधर लक्ष्मण ने कहा कि बिना सब सरदारो से पूछे उन्हे अग्रेजो से पृथक सन्धि करने का कोई अधिकार नही था। रेजीडेण्ट ने पूछा—"जब बाजीराव विवश होकर पूना से भाग निकला था, तब ये सरदार उसकी सहायता करने को क्यो नही गये ? उसके जीवन तथा गद्दी की रक्षा करना अग्रेजो का दोष नही है।" इस पर सरदारो ने रेजीडेण्ट को सूचित किया कि उनकी इच्छा सन्धि भग करने की नही है। वे प्रतिज्ञा कर सकते है कि यदि अग्रेजो ने युद्ध न छेडा ता वे अपनी सेनाएँ पूना नही ले जायेगे। इस पर रेजीडेण्ट ने पूछा—"जब शिन्दे तथा भोसले दोनो ही हालकर तथा अन्य सरदारो के साथ सघ की रचना कर रहे है तथा युद्ध की तैयारियाँ कर रहे हे, तब उनके शान्तिमय वचनो का किस प्रकार विश्वास किया जा सकता है ? यदि उनका इरादा लडने का नही है तो शिन्दे को तुरन्त नमदा पार करके अपने देश को चला जाना चाहिए तथा भोसले को नागपुर।" उसने यह भी कहा—"जब आप दोना अपने उद्दिष्ट स्थानो को पहुँच जायेगे, तब मै कनल वेलेजली से वापस होने के लिए प्राथना करूँगा।"

इसके बाद शिन्दे तथा भोसले ने गवनर जनरल के लिए एक पत्र तैयार करके आगे भेजने के लिए कालिन्स को दे दिया। इस समय कलकत्ता मे गवनर जनरल को मालूम हुआ कि शिन्दे बुन्देलखण्ड मे गोसाई हिम्मतबहादुर तथा

गनी बेग को अग्रेजो के विरुद्ध युद्ध की तैयारी करन की प्रेरणा दे रहा है। अत गवनर जनरल ने कालिन्स से कहा—"वह शिन्द से पूछे कि क्या वह उत्तर भारतीय सरदारो को अग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह करने की उत्तेजना द रहा है ? १६ जुलाई को कालिन्स शिन्दे से मिला और यही प्रश्न किया।

शिन्दे—नही, मैने उत्तर भारतीय सरदारो को इस प्रकार के पत्र नही लिखे है। इसके विपरीत मैने उनको आक्रामक कार्यो के विरुद्ध चेतावनी दी हे।

कालिन्स—यदि यही बात हे तो आपका विचार नमदा की ओर जाने का कब है ?

शिन्दे—मै इस प्रश्न का उत्तर उस समय दूगा, जब मुझको उन पत्रो के उत्तर मिल जायेगे जो मैने आपको गवनर जनरल के लिए दिय हे।

१४ जुलाई को दौलतराव को जनरल वेलेजली का एक पत्र मिला। इसमे कहा गया था कि वह निजाम राज्य की सीमा से हट जाये, क्योकि अग्रेजो ने विचारपूण सन्धि द्वारा निजाम की रक्षा अगीकार कर ली है।' यदि आप नही हटेगे, और हमे कारवाई करने पर विवश होना पडा, तो युद्ध का उत्तरदायित्व आप पर होगा।" शिन्दे तथा भोसले ने इस पत्र पर गहराई स विचार करके निम्नलिखित टिप्पणी की

भोसले—मै अपने देश मे शिविर लगाये हूँ। अग्रेजो को क्या अधिकार हे कि वे मुझसे हटने को कहे ?

२५ जुलाई को व्यक्तिगत सम्मेलन मे दौलतराव ने कालिन्स को सूचित किया—"हम दोनो अपने न्यायसम्मत क्षेत्रो के भीतर है। हमन आपसे पहले ही प्रतिज्ञा कर ली हे कि हम पूना की ओर प्रयाण नही करेगे और न हमारी इच्छा बसई की सन्धि को भग करने की है। इस प्रकार स्पष्ट है कि हमको युद्ध की इच्छा नही है।

कालिन्स—जनरल वेलेजली आपके लिखित या मौखिक शब्दो पर विश्वास करने मे असमथ है। अत अविलम्ब हटकर आप अपना वचन क्रिया द्वारा सार्थक करे। ऐसा कोई शत्रु यहाँ नही है जो आप पर आक्रमण कर सकता हो। विशाल सेनाओ सहित यहाँ ठहरने की आपको कोई आवश्यकता नही है। आप हटते क्यो नही है ?

शिन्दे—२८ जुलाई को हम इसका उत्तर देगे।

उस दिन कालिन्स आया और उसने पूछा—"मै कब आपका उत्तर लेने आऊँ ?"

वकील—शिन्दे और भोसले आज मिलने वाले है। उसके बाद उत्तर दिया जायेगा।

कालिन्स—यदि कल दोपहर के पहले मुझको उत्तर नही मिला तो मै आपके शिविर से वास्तव मे चल दगा।

३१ जुलाई का कालि स ने फिर वही धमकी दी। उसके बाद शिन्दे और भोसले ने उसको व्यक्तिगत वार्तालाप का निमन्त्रण दिया। इस सम्मेलन मे उसको सूचना दी गयी—"हम दोनो इस शिविर (फर्दापुर) को छोडकर बुर-हानपुर वापस जाने के लिए तैयार हे, परन्तु इसके पहले ही जनरल वेलेजली को भी अपने मुख्य स्थान श्रीरगपट्टन को अवश्य वापस हो जाना चाहिए।" दोनो सरदारो ने कहा कि वह जनरल वेलेजली की प्रतियात्रा आरम्भ होने का एक दिन निश्चित कर दे, जिससे वे भी उसी दिन लौटना आरम्भ कर दे। कालि स ने यह प्रस्ताव स्वीकार नही किया। कालिन्स यह काय बिना जनरल के साथ परामश किये नही कर सकता था। इस पर शिन्दे तथा भोसले ने प्रस्ताव किया कि हम स्वय एक दिन निश्चित किये देते है। समस्त दल उसी दिन प्रयाण करे। तब रेजीडेण्ट ने कहा कि यह प्रस्ताव लिखित रूप मे दिया जाये, जिससे इसे अधिकारियो के पास भेजकर वह उत्तर मँगवा ले।

इन सम्मेलनो तथा वार्तालापो का अन्त मे कुछ भी फल नही हुआ तथा जनरल वेलेजली इस निश्चय पर पहुँचा कि शिन्दे तथा भोसले केवल समय प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे है, जिससे वे होलकर को अपनी ओर मिला ले। जनरल वेलेजली ने कालिन्स से कहा कि वह अविलम्ब शिन्दे का शिविर छोड दे। उसने बताया कि इन लोगो का प्रस्ताव निरथक है, क्योकि शिन्दे दो दिन के भीतर ही बुरहानपुर पहुँच जायेगा जबकि वेलेजली को अपने उद्दिष्ट स्थान तक पहुँचने मे दो मास लग जायेगे। यह सूचना कालिन्स के पास ३ अगस्त को पहुँची और वह अविलम्ब शिन्दे का शिविर छोडकर औरगाबाद चल दिया। ६ अगस्त को दौलतराव को जनरल वेलेजली का निम्नलिखित पत्र प्राप्त हुआ

"आपका पत्र मुझे मिल गया है। हमारी इच्छा आप लोगो के विरुद्ध युद्ध आरम्भ करने की नही है। आप दोनो सरदारो ने मुझको स्पष्ट सकेत दे दिया है कि आपका अभिप्राय हम पर आक्रमण करने का है, क्योकि आपने निजाम की सीमा पर विशाल सेनाएँ एकत्र कर ली है तथा अपने स्थानो से हटना अस्वीकार कर दिया है। मैने मित्रता का हाथ बढाया और आपने उसको ठुकरा दिया। अब बिना अधिक वार्तालाप के मै युद्ध आरम्भ कर रहा हूँ। इसका उत्तरदायित्व सवथा आपका है।"

अगले दिन ७ अगस्त को जनरल वेलेजली ने एक सामान्य घोषणा निकाल

कर उस परिस्थिति का वणन किया, जिसके कारण वह शिन्दे तथा भोसले के विरुद्ध युद्ध आरम्भ करने पर विवश हो गया था। सवसाधारण को प्रेरणा दी गयी कि वे युद्ध मे भाग न ले, क्योकि उनकी कोई हानि नही होगी।

इस प्रकार हम देख सकते है कि किस प्रकार सहसा युद्ध आरम्भ किया गया। सत्तात्मक राजनीति को अपने काय के समर्थन के लिए सदैव दिखावटी कारण प्राप्त हो जाते है। बाजीराव ने पेशवा पद से त्यागपत्र दे दिया था। उसको यह अधिकार था या नही कि वह अपने उत्तरदायी सरदारो की जानकारी तथा सलाह के बिना स्वतन्त्र समझौते पर हस्ताक्षर कर दे—ये ऐसे प्रश्न है, जिनका उत्तर इतिहास माँगता है। उत्तर चाहे जो कुछ भी हो, पर क्या अग्रेज यह कहने का साहस कर सकते है कि उन्होने बसई की सन्धि को अक्षरश तथा भाव सहित कार्यान्वित किया ? बाजीराव ने ब्रिटिश सहायता अपने विरोधियो—अमृतराव तथा होलकर—का दमन करने के लिए प्राप्त की थी। यह करने के स्थान पर उन्होने उसके मित्रो—शिन्दे तथा भोसले—का दमन कर दिया। वास्तव मे होलकर स्वतन्त्र रूप से भागकर बच सकता था। उसको पुरस्कृत भी किया जा सकता था, यदि उसने बाद को ब्रिटिश इच्छा के वशवर्ती रहना अस्वीकार न कर दिया होता। इसके अतिरिक्त इस सौदेबाजी मे बाजीराव मराठा सघ मे अपनी समस्त सत्ता तथा नेतृत्व खो बैठा।

७ **होलकर द्वारा सघ का परित्याग**—खानदेश को जाते हुए यशवन्त राव ने औरगाबाद पर हमला किया और वहाँ से बलपूवक कर के रूप मे ११ लाख रुपये प्राप्त किये। उसने पैठ एव जालना को भी लूट लिया और भस्म कर दिया। अग्रेजो के एक मित्र का इस प्रकार लूटा जाना उनके प्रति सीधी चुनौती था, परन्तु कनल वेलेजली ने इस अपमान को सहन कर लिया और अपने ध्यान को शिन्दे तथा भोसले की ओर अग्रसर किया। इन दोनो ने भयभीत होकर होलकर से साथ देने की प्रार्थना की थी। काशीराव होलकर ने यशवन्तराव को पुन प्रसन्न करने का काय आरम्भ किया। सामान्य सकट को समझकर वह सघ मे सम्मिलित होने के लिए सहमत हो गया। दौलतराव तथा रघुजी बोडवाड मे ४ जून को प्रथम बार मिले तथा कालिन्स द्वारा दी गयी धमकी का सामना करने के उपाय रूप मे उन्होने होलकर की समस्त माँगो को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा की। खाडेराव होलकर जुलाई मे यशवन्तराव के सुपुद कर दिया गया, परन्तु जिन जिलो पर दौलतराव ने अधिकार कर लिया था, वे वापस नही किये गये। इस बीच ७ अगस्त को अहमदनगर पर आक्रमण करके वेलेजली ने युद्ध आरम्भ कर दिया तथा भोसले ने होलकर

से अविलम्ब सघ मे सम्मिलित होने के लिए प्राथना की । यशवन्तराव ने रघुजी को २३ अगस्त को निम्नलिखित उत्तर दिया—

"मैने पहले ही पूना मे आपके वकीलो को अपनी आवश्यकताएँ स्पष्ट कर दी है तथा लिखित रूप मे उनको आपके पास भेज दिया है। अपने राज्य तथा धम की रक्षा मे मै आपका साथ देने के लिए पूणत तैयार हूँ। मेरी प्राथना स्वीकार करने के स्थान पर आपने मुझसे केवल खानदेश से छिन्दवाडी वापस चले जाने को कहा। मै तुरन्त वापस आ गया। आप जानते है कि कई गत मासो से मै आपसे किस प्रकार विनय कर रहा हूँ कि होलकर के वे प्रदेश वापस कर दिये जाये, जिन पर शिन्दे ने अधिकार कर लिया है। यदि वह यह प्राथना स्वीकार कर लेगा तो मै आपके साथ सम्मिलित होने को तैयार हूँ। भीकनगाँव मे (नमदा के समीप) मै आपके उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।[10]

शर्जाराव के परामश के कारण शिन्दे ने होलकर को सन्तुष्ट नही किया। उसने अपने द्वारा अधिकृत प्रदेशो को भी नही छोडा। वेलेजली ने अपना काय तीव्र गति से करके होलकर को मराठा मित्रो मे सम्मिलित होने से रोक लिया। उसने होलकर को लिखा—"मै व्यक्तिगत रूप से मिलना चाहता हूँ।" इसका अति सक्षिप्त उत्तर होलकर ने दिया—"भावी घटनाओ की रूपरेखा पर ही हमारा मिलना हो सकता है।"[11] इसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता है।

दौलतराव द्वारा बाजीराव को लिखा हुआ एक पत्र अमृतराव ने पकड लिया और जनरल वेलेजली के पास भेज दिया। वेलेजली ने इसे यशवन्तराव के पास भेज दिया। इस पत्र मे दौलतराव ने बाजीराव से कहा था कि वह यशवन्तराव की लेशमात्र चिन्ता न करे—"यह हमारा आडम्बर मात्र है कि हम उसकी माँगो को पूरा कर रहे है। युद्ध के बाद हम दोनो उससे अपना पूरा बदला ले लेगे।"[12]

दौलतराव के इस कपट आचरण से यशवन्तराव की आँखे खुल गयी तथा उसने सघ मे सम्मिलित होने का विचार सवथा त्याग कर सीधे मालवा की ओर प्रयाण किया। वह महत्त्वपूण पत्र यशवन्तराव के पास भेजकर वेलेजली ने चतुरतापूवक एक शत्रु को युद्ध से अलग कर दिया। उसने माल्कम को २० जून को लिखा—"शिन्दे, होलकर तथा बरार का राजा और सम्भवत अन्य सरदार भारत मे पृथक तथा स्वतन्त्र सत्ताएँ है जो सम्भवत इस समय रक्षा-

---

[10] ऐतिहासिक पत्र, ३७३

[11] 'जशा भेटी व्हावयाच्वा तशा घडतील।'

[12] ओवेन कृत, वेलिग्टन के पत्र, पृ० ३५०

त्मक सघ मे सम्मिलित हो जायेगे। हम इसका ध्यान अवश्य रखे और अपने सैनिक बल को न घटाये। जिन विषयो का पेशवा के अधिकार मे रहना आवश्यक है, उनका पालन करने के लिए पेशवा की अनिच्छा तथा असमर्थता का मैने वणन नही किया है। क्या वह इस समय शिन्दे तथा होलकर से नित्य पत्र-व्यवहार नही करता है ? शिन्दे को लिखे हुए उसके उस पत्र मे भी जो लगभग बलपूवक उससे छीना गया है, सन्धि-भग का विषय है। इस पत्र मे वह अपनी इच्छा स्पष्ट प्रकट करता है कि वह जहा है वही बना रहे, जबकि वह जानता है कि गवनर जनरल की इच्छा शिन्दे को नमदा पार भेजन की है तथा केवल इसी घटना से शान्ति सुनिश्चित हो सकती है।"[13]

२३ जून को वेलेजली ने कनल पलोज को लिखा—"सघ के सदस्य अभी तक अपने काम सभाल नही सके है। अभी होलकर उनकी योजना मे सम्मिलित नही हुआ है। इसी कारण उनकी इच्छा निश्चय मे विलम्ब करने की है। होलकर का उद्देश्य अपने प्रदेश पर अधिकार करना मालूम होता है। शिन्दे तथा हमारे बीच होने वाले युद्ध द्वारा वह अपना उद्देश्य प्राप्त करना चाहता है। यदि हममे तथा शिन्दे मे युद्ध न हुआ, तब भी वह उस प्रदेश पर अधिकार कर लेगा, परन्तु इस प्रकार निश्चयपूवक नही। उस समय भोसले की मध्यस्थता से स्थापित शान्ति द्वारा या शिन्दे के विरुद्ध अपने अविराम युद्ध द्वारा वह यह उद्देश्य प्राप्त कर सकेगा। स्पष्ट है कि होलकर का उद्देश्य यह अवश्य है कि वह हमारे विरुद्ध सघष से दूर रहे तथा दूसरो को प्रेरित करके उन्हे इसमे फसा दे। परन्तु सम्भव है कि शिन्दे और भोसले उसकी इस इच्छा को समझते हो तथा उससे अपना साथ देने का आग्रह कर रहे हो। यह कार्य करने का इस समय उनके पास अच्छा अवसर है। उसको केवल सचेत भर करना है कि अग्रेज तुम पर आक्रमण करने वाले है। इस दृष्टि से यह दुख की बात है कि कर्नल कालिन्स के मुशी से कह दिया कि हमारा इरादा होलकर पर हमला करने का है। इस समय इस प्रकार की घोषणा नीति-विरुद्ध होने के अतिरिक्त असत्य भी है। मेरी सम्मति मे गवनर जनरल के निर्देशानुसार हमको इसका दृढतापूवक खण्डन करना चाहिए। यदि आपकी भी यही सम्मति है तो इस विषय पर कर्नल कालिन्स को सुझाव देना उपयुक्त होगा।"[14]

वास्तव मे यह काय जनरल वेलेजली द्वारा कूटनीतिक प्रयोग सिद्ध हुआ कि उसने पेशवा की इच्छानुसार होलकर पर आक्रमण नही किया। इस कार्य

[13] ओवेन, पृ० २४३-४४
[14] ओवेन, पृ० २४६

के लिए उसने केवल शिन्दे तथा भोसले को ही लक्ष्य बनाया और इस प्रकार होलकर को सघ में सम्मिलित होने से रोक दिया। यद्यपि जनरल वेलेजली के प्रति होलकर की वृत्ति कठोर थी, परन्तु वह बाद को शिन्दे की चाल समझ कर युद्ध से दूर रहा। १६ जुलाई को जनरल वेलेजली ने होलकर को लिखा—

"मेरी इच्छा आपके तथा कम्पनी सरकार के बीच विद्यमान सद्भावना को प्रोत्साहन देने की हे। इस विचार से मै बसई मे माननीया कम्पनी तथा पण्डित प्रधान के बीच निश्चित की गयी सधि की एक प्रति आपके पास भेज रहा हूँ। इसकी सामान्य रक्षात्मक शर्तों से आपको मालूम हो जायेगा कि इसमे भारत की शान्ति तथा सुरक्षा का प्रबन्ध है। आपको यह भी मालूम हो जायेगा कि १२वी धारा मे समस्त महान मराठा जागीरदारो का प्रभावकारी प्रबन्ध किया गया है। इन जागीरदारो मे होलकर परिवार का नाम विशेष रूप से दिया हुआ है। आप देखेगे कि इस सधि मे आपके परिवार का हित तथा सुरक्षा सम्बन्धित है। वास्तव मे उनकी रक्षा किसी अन्य प्रकार से नही हो सकती। स्थिति इस प्रकार की है जिससे मुझे आपकी ओर से कोई सन्देह नही है कि आप अपने हितो के अनुकूल आचरण करेंगे तथा कम्पनी के साथ शान्ति को बनाये रखेंगे। मै यह पत्र एक सम्मानित अधिकारी कदरनवाजखा के हाथ भेज रहा हूँ। इन पर मुझे विश्वास है और ये मेरी इच्छाओ के विषय मे प्रत्येक वह बात स्पष्ट करेंगे[१५] जो आप जानना चाहेंगे।"

इस पत्र का अभीष्ट प्रभाव हुआ तथा होलकर सघ मे सम्मिलित होने से रुक गया। बाद मे जनरल वेलेजली ने इस कल्याणकारक परिणाम के लिए होलकर को बधाई दी। यशवन्तराव को इस समय धन का अत्यन्त कष्ट था। उसने अपने प्रदेशो सहित शिन्दे तथा भोसले से धन मागा। १० जुलाई को कालिन्स लिखता है—"कल तीसरे पहर खाँडेराव होलकर यशवन्तराव के पास पहुँच गया। दौलतराव ने निर्देश भेजे है कि होलकर का समस्त प्रदेश उसे दे दिया जाये।" ४ अगस्त को कर्नल क्लोज ने सूचना भेजी—"होलकर इस समय भी ताप्ती के समीप है। यद्यपि शिन्दे ने वैर भाव बहुत कुछ शान्त कर दिया है, फिर भी ऐसा नही मालूम होता कि उसका इरादा अविलम्ब हमारे विरुद्ध शिन्दे का साथ देने का है।"[१६] स्पष्ट हे कि होलकर आरम्भ हो चुके युद्ध के परिणाम की प्रतीक्षा कर रहा था। उसे आशा थी कि वह उपयुक्त अवसर पर

---

[१५] ओवेन, पृ० २६२

[१६] पूना रेजीडेन्सी कॉरस्पौण्डेन्स, जिल्द ६, पृ० २०१ तथा २०२

इसमे सम्मिलित हो जायेगा। जब होलकर तथा अमृतराव इस प्रकार सघ से पृथक कर दिये गये तो पटवधन परिवार तथा अन्य छोटे-छोटे सरदारो ने भी उनका अनुकरण किया। इससे युद्ध मे अग्रेजो का कार्य बहुत हलका हो गया।

जनरल वेलेजली का उत्तम प्रयास विजय का सर्वोपरि अधिकारी था। उसने अवसर पर कुछ भी नही उठा रखा। उसने मराठा सघ की शक्ति न्यूनतम सीमा तक पहुँचा दी। उसने युद्ध कार्यो के लिए उत्तम ऋतु तथा अत्यन्त उपयुक्त क्षेत्र चुन लिया। उसने अपने शत्रुओ को एक विशेष स्थान पर कीलित कर दिया तथा उनकी स्वाभाविक छापामार प्रवृत्ति को कोई अवसर नही दिया। वह पूना के इतने समीप रहा कि बाजीराव तथा अन्य विघ्नकारी व्यक्तियो की विरोधी प्रगतियो का नियन्त्रण कर सके। तुलना करने पर प्रतीत होता है कि इस राजनीतिक प्रवृत्ति के सचालनाथ मराठो मे बहुत ही कम क्षमता थी।

इस महत्त्वपूण सकट काल मे पूना की परिस्थिति का वणन इस प्रकार किया गया है—"फ्लोज साहेब पेशवा से मिलने आया और उसने कहा—'इस समय समस्त पगडी वाले सरदारो ने एका कर लिया है। इस अवसर पर क्या आपकी इच्छा है कि जो कुछ उपाय हमको उचित जचे, हम उन्हे करे?' श्रीमन्त ने उत्तर दिया—'आप सर्वथा निश्चिन्त रहे। मैं कभी आपका साथ नही छोड़ूगा। मै शिन्दे को गोदावरी तट पर बुलाऊँगा तथा अपने विचारो के अनुकूल कर लूँगा।' तब श्रीमन्त पर दबाव डाला गया कि वह सन्धि की शर्तों के अनुसार अपनी सेनाएँ भेजे। अग्रेजो के इस प्रकार के व्यवहार पर उसको बहुत क्रोध है। वह कहता है कि वे झूठे है। बलवतराव नागनाथ के द्वारा उसने गुप्त रूप से शिन्दे तथा भोसले दोनो को अग्रेजो का दमन करने को उत्तेजित किया है। होलकर का सहयोग प्राप्त हो गया है। अब तीनो सरदार युद्ध के लिए तैयार है।"[१७]

---

[१७] खरे, ६६५५ तथा ६६५६

अध्याय १४

तिथिक्रम

१७५५	पेरो का जन्म।
१७८०	पेरो का भारत पहुँचना।
दिसम्बर, १७६५	दि बायने द्वारा अवकाश ग्रहण—पेरो उसके स्थान पर।
जून, १८०३	गवर्नर जनरल द्वारा युद्धोद्देश्य निश्चित।
६ अगस्त, १८०३	निजामअली की मृत्यु।
७ अगस्त, १८०३	लेक का शिन्दे के विरुद्ध कानपुर से प्रयाण।
८ अगस्त, १८०३	वेलेजली का अहमदनगर के विरुद्ध प्रयाण।
१२ अगस्त, १८०३	वेलेजली द्वारा अहमदनगर के गढ पर अधिकार।
२६ अगस्त, १८०३	वेलेजली का औरगाबाद पहुँचना।
३ सितम्बर, १८०३	पेरो द्वारा शिन्दे की सेवा का परित्याग।
५ सितम्बर, १८०३	लेक द्वारा अलीगढ पर अधिकार।
६ सितम्बर, १८०३	शिन्दे तथा भोसले का जलनापुर के समीप मिलना।
१४ सितम्बर, १८०३	लेक का दिल्ली मे प्रवेश तथा सम्राट से मिलना।
१८ सितम्बर, १८०३	जगन्नाथपुरी पर अग्रेजो का अधिकार।
२४ सितम्बर, १८०३	मराठे असाई मे परास्त।
सितम्बर दिसम्बर, १८०३	राजपूत तथा अन्य सरदारो द्वारा पृथक-पृथक सन्धियो के आधार पर ब्रिटिश रक्षा स्वीकृत।
२ अक्तूबर, १८०३	लेक का मथुरा पर अधिकार।
१५ अक्तूबर, १८०३	स्टीवेन्सन का बुरहानपुर पर अधिकार।
१७ अक्तूबर, १८०३	आगरा पर अधिकार।
२१ अक्तूबर, १८०३	आशिर्गढ द्वारा आत्मसमर्पण।
२६ अक्तूबर, १८०३	भोसले का औरगाबाद के विरुद्ध प्रयाण।
अक्तूबर, १८०३	कटक पर अधिकार।
१ नवम्बर, १८०३	लासवाडी का रण—शिन्दे परास्त।

६ नवम्बर, १८०३	शिन्दे द्वारा युद्ध-विराम की प्रार्थना ।
२६ नवम्बर, १८०३	अडगाम का रण—अग्रेजो की विजय ।
१७ दिसम्बर, १८०३	भोसले द्वारा देवगाव मे सन्धि ।
३० दिसम्बर, १८०३	शिन्दे द्वारा सुरजी अजनगाँव मे सन्धि स्वीकार ।
जनवरी, १८०४	वेलेजली द्वारा होलकर को चेतावनी ।
२६ जनवरी, १८०४	लेक द्वारा होलकर को चेतावनी ।
फरवरी, १८०४	होलकर द्वारा लेक को चुनौती ।
२७ फरवरी, १८०४	शिन्दे के साथ बुरहानपुर की सन्धि निश्चित ।
माच, १८०४	होलकर का अजमेर, पुष्कर तथा जयपुर प्रदेश को लूटना ।
१६ अप्रैल, १८०४	गवनर जनरल द्वारा होलकर के विरुद्ध युद्ध-घोषणा ।
मई-अप्रल, १८०४	वेलेजली तथा फ्लोज बम्बई मे ।
जून, १८०४	लेक कानपुर को वापस—मालवा की घाटियो की रक्षाथ मोन्सन को उसकी आज्ञा ।
जुलाई-अगस्त, १८०४	मोन्सन से होलकर का युद्ध ।
१ जुलाई, १८०४	मोन्सन द्वारा हिगलाजगढ पर अधिकार ।
८ जुलाई १८०४	मोन्सन मालवा से वापस ।
८ जुलाई, १८०४	मरे का उज्जैन पहुँचना ।
१६ जुलाई, १८०४	मोन्सन का चम्बल पार करना ।
३१ अगस्त, १८०४	मोन्सन का वापसी मे आगरा पहुँचना ।
अगस्त-अक्तूबर, १८०४	आर्थर वेलेजली कलकत्ता मे ।
३ सितम्बर, १८०४	लेक द्वारा होलकर के विरुद्ध प्रयाण ।
८ अक्तूबर, १८०४	होलकर द्वारा दिल्ली पर सहसा आक्रमण का प्रयास ।
१७ नवम्बर, १८०४	होलकर फरुखाबाद मे परास्त ।
१३ दिसम्बर, १८०४	लेक का डीग पर अधिकार ।
१६ दिसम्बर, १८०४	लेक का भरतपुर के सम्मुख पहुँचना ।
७ जनवरी, १८०५	लेक द्वारा भरतपुर का घेरा—हस्तगत करने मे असफल ।
१० अप्रैल, १८०५	जाट राजा और लेक मे शान्ति स्थापित ।
अप्रैल-मई, १८०५	सबलगढ मे मराठो की सभा ।
जून-सितम्बर, १८०५	शिन्दे द्वारा रेजीडेण्ट (आवासी) जेन्किन्स पर रोक ।

३० जुलाई, १८०५	लार्ड वेलेजली का त्यागपत्र—कार्नवालिस उसका उत्तराधिकारी।
५ अक्तूबर, १८०५	कार्नवालिस की मृत्यु—बार्लो उसके स्थान पर।
२१ नवम्बर, १८०५	शिन्दे द्वारा लेक के साथ मुस्तफापुर की सन्धि।
२४ दिसम्बर, १८०५	होलकर द्वारा राजघाट की सन्धि।
२६ मई, १८०६	वेलेजली पर पार्लमिण्ट मे अभियोग।
अक्तूबर, १८०८	यशवन्तराव होलकर उन्मादग्रस्त।
२८ अक्तूबर, १८११	यशवन्तराव होलकर की मृत्यु।

अध्याय १४

मराठा स्वातन्त्र्य का अन्त

(१८०३–१८०५)

१ **दक्षिण मे युद्ध**—अगस्त, १८०३ के आरम्भ मे जनरल वेलेजली ने दोनो मराठा सरदारो शिन्दे तथा भोसले के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया तथा अपने कूटनीतिक चातुर्य और बाहुबल के कारण उसे चार मास से कम ही समय मे विजय के साथ अन्त तक पहुँचा दिया । दक्षिण मे वेलेजली तथा अन्य ब्रिटिश कमाण्डरो के अधीन सेनाओ की सख्या लगभग ४० हजार थी । निजामअली की मृत्यु ६ अगस्त अर्थात उसी दिन हो गयी जब वेलेजली ने वालकी मे अपने शिविर स्थान को अहमदनगर पर धावा किया । शिन्दे उस समय निजाम की सीमा से २० मील के अन्दर बुरहानपुर मे था । यह स्थान पूना के लिए प्रयाण अथवा निजाम के प्रदेश पर आक्रमण के लिए बहुत ही सुविधाजनक था । अपने देश का आह्वान शिरोधाय करके अनेक त्रुटियो के होते हुए भी मराठो ने सब मिलाकर बहुत ही श्रेयस्कर काय किया । उनका राष्ट्रीय गव तथा कठोर दृढतापूर्ण युद्ध जनरल वेलेजली की प्रशसा का पात्र बन गया । उनको सबसे बडी असुविधा अपने ही स्वामी बाजीराव के कारण हुई । बाजीराव की अस्थिरता का प्रभाव प्रत्येक मराठा के मन पर पडा ।

मराठा पत्रो मे उस प्रलोभन का वणन है, जिसे जनरल वेलेजली ने बाजीराव के दरबार मे देने का प्रयास किया, परन्तु कनल क्लोज ने इसे क्रोधपूर्वक अस्वीकार कर दिया और कहा कि इस प्रकार के नीच उपायो का

आश्रय मै नही लूगा। जनरल वेलेजली ने फ्लोज को ५ अगस्त, १८०३ को लिखा—"मुझे विश्वास हो गया हे कि पेशवा के दरबार मे जो कुछ हा रहा है, उसका यथाथ ज्ञान होना आपके लिए नितान्त आवश्यक हे और धन व्यय किये बिना आपको यह ज्ञान प्राप्त होना सम्भव नही हे। आपको तुरन्त रघुत्तमराव (पूना मे निजाम का वकील) को कुछ धन दे देना चाहिए।" उन समस्त प्रयत्नो तथा उपायो के लिए जनरल वेलेंजली ने पेशवा से लिखित आज्ञा भी प्राप्त कर ली, जिनका उपयोग उसने मराठो के दमन के लिए किया।

वेलेजली का उद्देश्य दो शक्तिशाली स्थानो—बुरहानपुर तथा अहमदनगर—के बीच एकत्र शिन्दे की सैनिक शक्ति का विनाश करना था। अहमदनगर मे गोलाबारूद, अस्त्र-शस्त्र तथा सामग्री विपुल मात्रा मे थी। शिन्दे की शक्तिशाली सेना इसकी रक्षा पर नियुक्त थी। वेलेजली का ध्यान सवप्रथम इसी गढ पर गया। वह ८ अगस्त को वालकी से चला तथा १० को उसने इस गढ पर अग्निवर्षा आरम्भ कर दी। शिन्दे का यूरोपीय अधिकारी, जिस पर रक्षा का भार था, तुरन्त वेलेजली से मिल गया। उसे पहले ही घूस देकर फोड लिया गया था। अपनी स्थिति अरक्षित देखकर ब्राह्मण किलेदार ने शर्तों के लिए प्राथना की तथा १२ को इस स्थान का समपण कर दिया। किलेदार बम्बई भेज दिया गया तथा गढ पर पेशवा का ध्वज फहरा दिया गया। इस उपाय द्वारा विदेशी विजय गुप्त रखी गयी। इस सफलता से पूना के साथ ब्रिटिश यातायात सुनिश्चित हो गया तथा शिन्दे अपना ध्यान निजाम के प्रदेश की ओर देने के लिए विवश हो गया।

वेलेजली तुरन्त गोदावरी पार करके औरगाबाद की रक्षा के लिए झपटा, जहा वह २९ को पहुँच गया। उसने पहले से ही शिन्दे की प्रगति रोकने के लिए स्टीवेन्सन को जाफराबाद मे नियुक्त कर रखा था। यह स्थान जाफराबाद से कुछ मील दक्षिण पूव मे हैं। शिन्दे की भोजन सामग्री सग्रह करने वाली मण्डलियो—अर्थात पिण्डारियो तथा स्टीवेन्सन की बाह्य चौकियो—के बीच तुरन्त झडपे आरम्भ हो गयी। भासले जलनापुर के समीप शिन्दे के साथ हो गया तथा ६ सितम्बर से दोनो शत्रु दलो के बीच भयानक सघष आरम्भ हो गये। ये सघष २४ सितम्बर को असाई के रण मे समाप्त हुए। मराठा पक्ष से गोपालराव भाऊ (लाखेरी मे यश प्राप्त) तथा भोसले परिवार की ओर से विट्ठलपन्त बख्शी चीफ कमाण्डर थे। जनरल वेलेजली को गुप्त रूप से मालूम हो गया कि वेतन न चुका सकने के कारण शिन्दे का अपनी सेना से झगडा है। उसने इस अवसर से पूरा लाभ उठाया। उसके तोपखाने के बैल बाहर

चर रहे थे। तभी २४ दिसम्बर को दोपहर के थोडे बाद वेलेजली ने शिन्दे पर आक्रमण कर दिया। गोपालराव ने धैयपूवक इसका सामना किया तथा अद्भुत सफलता के साथ उत्तर दिया। यद्यपि अग्रेजो ने निर्णायक विजय प्राप्त कर ली थी, फिर भी मराठो का पीछा करना उनके लिए असम्भव काम हो गया, क्योकि सैनिको की मृत्यु के रूप मे उनको भारी व्यय चुकाना पडा था। वेलेजली ने सूचना भेजी—"अन्त मे शत्रु की पक्ति सब ओर से टूट गयी तथा ब्रिटिश अश्वारोही उनके अस्त व्यस्त पैदलो के बीच घुस पडे। परन्तु उनकी कुछ सेनाएँ अच्छी व्यवस्था से भाग निकली तथा उनकी अनेक तोपे हमारी सेनाओ पर अग्निवर्षा करती रही। ले० कनल मैक्सवेल मारा गया तथा हम कुछ समय बाद ही इस छुटपुट अग्निवर्षा को समाप्त कर सके। हमको इस विजय का बहुत भारी व्यय चुकाना पडा है। हमारे अनेक अधिकारी तथा सैनिक मारे गये है (६६३ यूरोपीय तथा १७७८ भारतीय, जैसा कि समाचार से प्रकट है)।" इस विजय के समाचार से गवनर जनरल का हृदय प्रफुल्लित हो उठा तथा वह दुखद चिन्ताओ से मुक्त हो गया। पूना से शर्जाराव घाटगे तथा पेशवा ने शिन्दे को सान्त्वना के पत्र लिखे। उन्होने शोकाकुल शिन्दे को अधिक प्रयास के लिए उत्तेजना दी तथा अपने पिण्डारियो की सहायता से छापामार युद्ध का आश्रय लेने का परामश दिया।

क्षतविक्षत मराठा सेनाएँ महत्त्वशाली स्थान तथा उसके रक्षादुग आशिगढ की अग्रेजो के अधिकार मे जाने से रक्षा करने के लिए बुरहानपुर की ओर पीछे हटी। वेलेजली स्वय दक्षिण-पश्चिम मे ठहरा रहा और उन दोनो स्थानो को छीनने के लिए स्टीवेन्सन को उत्तर की ओर भेजा। किन्तु भोसले अकस्मात चक्कर काटकर २९ अक्तूबर को औरगाबाद के सम्मुख डट गया, जिससे वह निजाम के राज्य से पहुँचने वाली वेलेजली की रसद को रोक सके। स्टीवेन्सन ने बुरहानपुर की ओर प्रयाण किया और १५ अक्तूबर को उस स्थान पर आसानी से अधिकार कर लिया क्योकि शिन्दे ने उसकी रक्षा का प्रबन्ध नही किया था। इसके बाद स्टीवेन्सन सहसा आशिगढ के सम्मुख प्रकट हुआ। उस गढ के रक्षक ने २१ अक्तूबर को दुगस्थ सेना का शेष वेतन चुकाने के लिए नकद ७ लाख रुपये लेकर गढ का समपण कर दिया। शिन्दे की सेना के ९ यूरोपीय अधिकारी तथा कुछ सैनिक अग्रेजो से मिल गये। उन्होने उस घोषणा से लाभ उठाया जो वेलेजली ने निकाली थी। उत्तरी क्षेत्र मे लाड लेक द्वारा प्राप्त सफलताओ के समाचार से दक्षिण मे शिन्दे तथा भोसले दोनो ही निरुत्साह हो उठे। इस प्रकार उनकी अन्तिम पराजय निश्चित हो गयी।

अपनी सेना शिन्दे की सेनाओ से पृथक करने के बाद भोसले सहसा पश्चिम की ओर झपटा। उसका उद्देश्य बम्बई तथा पूना के साथ वेलेजली का सम्बन्ध विच्छेद करना था। परन्तु वेलेजली उसकी योजनाओ को विफल करने के लिए बिलकुल तैयार था। पेशवा का भाई अमृतराव भी इस समय स्वतन्त्र था। उसे नेतृत्व ग्रहण करने तथा सकटकाल मे मराठा राज्य की रक्षा करने का निमन्त्रण मिल रहा था। इसलिए वेलेजली का ध्यान उसकी ओर भी गया।

६ नवम्बर को शिन्दे का कायकर्ता यशवन्तराव घोरपडे (प्रसिद्ध सन्ताजी के भाई मालोजी का पौत्र) अपने स्वामी के लिए शान्ति की शर्तो का प्रबन्ध करने के लिए वेलेजली के शिविर मे पहुँच गया तथा १२ नवम्बर को अमृतराव भी आ गया और उस काय मे घोरपडे के साथ हो गया, क्योकि उसको अग्रेजो के युद्ध जीत लेने का विश्वास हो गया था। इसके बाद वेलेजली ने अमृतराव को अपने ही शिविर मे ठहरा लिया तथा उसकी उच्च प्रतिष्ठा का उपयोग इस प्रकार की शान्ति स्थापित करने के लिए किया, जिसके द्वारा स्वतन्त्र प्रभुत्व के लिए मराठो के सभी अधिकार नष्ट हो जाये। स्टीवेन्सन ने भोसले के दृढ दुग गाविलगढ की ओर प्रयाण किया। वह २६ नवम्बर को बालापुर से चला। वेलेजली उसके साथ हो गया था। दोनो ने मिलकर भोसले की सेना के विरुद्ध सवेग प्रयाण किया। इस बीच शिन्दे ने इस सेना को सहायता पहुँचा दी थी तथा इस प्रकार पूव निश्चित विराम सधि का उल्लघन कर दिया। २९ को दोनो अग्रेज कमाण्डरो को बालापुर से कुछ मील उत्तर मे अडगाम के स्थान पर एक ही शिविर मे साथ-साथ ठहरी हुई शत्रु सेनाओ का पता लग गया। उन्होने बहुत देर हो जाने पर भी उसी दिन तीसरे पहर आक्रमण कर दिया। वेलेजली की सेनाएँ शत्रु की तोपो की मार मे आते ही अपनी पक्तियाँ भग करके भाग खडी हुइ। इन सेनाओ ने असाइ रणक्षेत्र मे अद्भुत वीरता का व्यवहार किया था, यद्यपि उस समय की अग्निवर्षा बहुत अधिक उग्र थी। सौभाग्यवश जनरल बहुत दूर न था, इसलिए वह सेनाओ को एकत्र करने वाला पुन मोर्चा बनाने मे सफल हो गया। अन्यथा अग्रेजो की पराजय होनी निश्चित थी। बरार का राजा अपनी ३८ तोपो तथा सम्पूर्ण गोला बारूद अग्रेजो के हाथो मे छोडकर भाग गया। अडगाम के इस रण से मराठो का सवनाश पूर्ण हो गया। गाविलगढ पर बाद को आक्रमण किया गया तथा २५ दिसम्बर को अधिकार कर लिया गया।

२ **उत्तर भारतीय अभियान—पेरो द्वारा विश्वासघात**—इस अल्पकालीन परन्तु रक्तरजित युद्ध को समाप्त करने वाले शान्ति-प्रस्तावो की कथा आरम्भ

करने के पहले उत्तर भारत के रणो का वणन अवश्य हो जाना चाहिए। जब १७९२ की ग्रीष्म ऋतु मे महादजी शिन्दे पूना वापस आया, उसी समय से उसके उत्तरी क्षेत्रो की रक्षा तथा प्रबन्ध दि बायने करता था। दिसम्बर १७९५ मे उसके अवकाश ग्रहण कर लेने पर, यह काय उसके द्वितीय स्थानीय पेरो को दिया गया। "दि बायने भारत के समस्त यूरोपीय साहसिको मे बुद्धिमान तथा चरित्रवान था। वह योग्य सैनिक तथा महान नेता था। पेरो सवथा सकुचित हृदय मनुष्य था तथा परिश्रमी प्रशासक होने पर भी उसके चरित्र मे कोई आकर्षण नही था।"[1] उसने अपने उत्कृष्ट स्थान का उपयोग शक्ति-सग्रह, धन-सचय तथा अपनी जागीर को समृद्ध बनाने मे किया। उसके अधीन समस्त भारतीयो ने दौलतराव से आग्रह किया कि वह उसको हटा दे, या कम से कम आगरा को उसके अधिकार से अलग कर दे। कालिन्स ने फरवरी, १८०२ मे सूचना भेजी कि यह फ्रेचमैन गुप्त रूप से यशवन्तराव होलकर से मिला हुआ है और वर्षो तक शिन्दे के जिलो की आय का अपहरण करके अत्यन्त धनी हो गया है। उसके साथ वार्तालाप मे रेजीडेण्ट को मालूम हो गया था कि यह व्यक्ति दौलतराव तथा उसके भारतीय सरदारो का प्रबल विरोधी है। उसने कालिन्स से कहा था कि वह शीघ्र ही फतेहगढ मे ब्रिटिश सुरक्षा प्राप्त कर लेगा।

युद्धारम्भ के समय पेरो के पास ४५ हजार की सख्या वाले ५ दल थे। इनके अतिरिक्त आगरा तथा अलीगढ मे उसके पास उत्तम तोपखाने थे, जिनसे वह वीरतापूवक लेक का सामना कर सकता था। २३ जून को गवनर जनरल ने निम्नलिखित उद्देश्यो को निश्चित करके चीफ कमाण्डर के पास भेज दिया। युद्ध की दशा मे इनके अनुसार काय करना आवश्यक था।

१ गगा तथा यमुना के बीच शिन्दे के समस्त प्रदेशो पर अधिकार करना,

---

[1] पी० ई० राबट्स कृत 'वेलेजली के अधीन भारत'। एच० आर० सी०—प्रवृत्ति वर्णन १९४३, डा० हलीम का लेख "पेरो का जन्म १७७५ मे फ्रास मे हुआ था। वह १७८० मे सफ्रे के नौ-समूह मे भारत आया था। फ्रेच ध्वज का परित्याग करके वह भाग्यसेवी सैनिक हो गया। उसने क्रमश गौहद के राना, भरतपुर के राजा तथा बेगम समरू की सेवा की। अन्त मे वह १७९० मे दि बायने की सेना मे सम्मिलित हो गया तथा १७९६ मे उसके स्थान पर चीफ कमाण्डर हो गया। वह इस स्थान पर ३ सितम्बर, १८०३ तक बना रहा। उसकी जागीर की आय ४० लाख रुपये वार्षिक थी। उसको नमक कर पर एकमात्र अधिकारी था। केवल इन दो स्रोतो से उसको १६,३२,४४४ रुपये की वार्षिक आय थी। न्यूनतम अनुमान के अनुसार विविध स्रोतो से उसकी मासिक आय १ लाख रुपये थी। इसके अतिरिक्त अपनी पूजी के ब्याज से भी उसको भारी आय थी।

२ शाहआलम को अपनी सुरक्षा मे लेना,

३ शिन्दे का उत्तर भारत से निराकरण करने से लिए राजपूत राजाओ तथा अन्य राज्यो के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना, तथा

४ बुन्देलखण्ड पर अधिकार करना।

लाड वेलेजली ने यह भी कहा—"शिन्दे का भूतपूव सेनापति दि बायने इस समय बोनापाट का मुख्य विश्वासपात्र है—क्यो और कैसे, यह आप जान सकते है। मै आपको पेरो के साथ कोई भी समझौता करने के लिए पूण अधिकार देता हूँ। इस समझौते का सम्बन्ध उसके व्यक्तिगत हितो तथा सम्पत्ति की सुरक्षा से हो और ब्रिटिश सरकार की ओर से उसके लिए कोई युक्तिसगत पुरस्कार भी होना चाहिए। इस प्रकार उसे अपने समस्त सैनिक साधनो तथा अधिकार को आपके सुपुद करने का प्रलोभन मिल जायेगा।"[२]

लेक कानपुर से ७ अगस्त को चला तथा २८ को शिन्दे के प्रदेश की सीमा पर पहुँच गया। इसके पहले ही उसने शिन्दे के अधिकारियो को ब्रिटिश सेवा मे प्रवेश प्राप्त करने के लिए अपनी घोषणाएँ भेज दी थी। २० अगस्त को पेरो ने इच्छा प्रकट की कि वह शान्त वार्तालाप द्वारा कठिनाइयो को हल करना चाहता है। इस पर २९ को लेक ने अपना व्यक्तिगत कायकर्ता पेरो से मिलने भेजा तथा अलीगढ के समीप उसकी सेनाओ पर आक्रमण भी कर दिया। यद्यपि पेरो की सेनाओ की सख्या १५ हजार थी, परन्तु बिना एक गोली चलाये ही वे शान्तिपूवक पीछे हट गयी। विशाल शस्त्रागार तथा युद्ध-भण्डार और ७० लाख नकद रुपयो सहित अलीगढ का महत्त्वशाली गढ लेक के हाथ लग गया। यह काय लाड वेलेजली की सम्मति मे अत्यन्त अद्भुत था।

एक सप्ताह बाद पेरो ने सुना कि उसके निकालने की आज्ञा हो गयी है। उसने तुरन्त त्यागपत्र दे दिया तथा अपने परिवार, सम्पत्ति तथा अपने परिचारी वग सहित ब्रिटिश प्रदेश मे होते हुए लखनऊ चले जाने के लिए लेक से प्राथना की। लेक ने अपने रक्षा दल के साथ उसको लखनऊ पहुँचा दिया। इसके बाद ८ नवम्बर को पेरो लखनऊ से चन्द्रनगर चल दिया। वहा से एक जहाज मे यूरोप के लिए बैठ गया। उसके साथ उसकी समस्त सम्पत्ति तथा दो ताम्रवण शिशु थे—एक पुत्र और एक पुत्री। इनकी माता एक नीच जाति की महिला थी, जिससे पेरो ने विवाह कर लिया था। नेपोलियन ने उससे मिलने से इनकार कर दिया, क्योकि उसने सैनिक धम के प्रति असत्य व्यवहार किया

---

२ 'वेलेजली के पत्र', जिल्द ३, पृ० २०८, न० ५० पर यह साधिकार पत्र।

था। पेरो ने २ लाख ८० हजार रुपये ईस्ट इण्डिया कम्पनी की पूजी मे लगाये। उसके सम्बन्ध मे समकालीन सम्मति इस प्रकार है—"पेरो अग्रेजो की सुरक्षा मे मराठो, सिखो, राजपूतो तथा भारत की समस्त जनता के न्यायसगत प्रतिशोध से बच गया। वह अपने अपयश के चिह्नस्वरूप अपने हीरो तथा लाखो की सम्पत्ति का प्रदशन करने के लिए फ्रास वापस आया। उसने यह सम्पत्ति मन्दभाग्य शिन्दे से चुराई थी तथा उसके साथ विश्वासघात भी किया था। इस विश्वासघाती के आचरण से अग्रेजो के लिए हिन्दुस्तान का प्रभुत्व सुनिश्चित हो गया।" १८३४ मे फ्रास मे उसकी मृत्यु हो गयी।[3]

५ सितम्बर को लेक ने अलीगढ पर अधिकार कर लिया और तुरन्त दिल्ली की ओर प्रयाण कर दिया। ६ को वह शाहदरा पहुँचा। यही पर शिन्दे का सेनापति बुर्की यमुना पार करके लेक से युद्ध करने के लिए आगे बढा। वह पेरो का उत्तराधिकारी था। वह नीच वश का दुष्ट स्थानापन्न अधिकारी था। वह कलकत्ता मे रसोइया तथा आतिशबाज रहा था। वह कायर था। उसने परास्त होकर तीन दिन बाद अपने तीन अधिकारियो सहित लेक के सामने आत्मसमपण कर दिया। लेक को भेजे हुए एक समाचार मे सम्राट ने ब्रिटिश सुरक्षा स्वीकार करने की प्रबल इच्छा प्रकट की थी। लाड वेलेजली ने एक गोपनीय पत्र-व्यवहार मे इसको पहले ही स्वीकर कर लिया था। १४ सितम्बर को अग्रेजो ने दिल्ली मे प्रवेश करके गढ पर अपना ध्वज फहरा दिया तथा अन्धे शाहआलम द्वितीय को अधिकार मे ले लिया। शाहआलम अब भी समस्त भारत मे सम्मान का मूल स्थान माना जाता था। १६ सितम्बर को चीफ कमाण्डर शाहजहाँ द्वारा निर्मित राजभवन मे सम्राट के सम्मुख उपस्थित किया गया। उसने देखा कि सम्राट नाना प्रकार के कष्टो—जैसे वृद्धावस्था, अपकृष्ट अधिकार, अत्यन्त दरिद्रता—से पीडित है तथा छोटे-से फटे हुए वितान के नीचे बैठा है। यही उसकी राजसी सत्ता का शेष चिह्न था। दिल्ली को कर्नल आक्टरलोनी के अधिकार मे छोडकर २४ सितम्बर को लेक ने आगरा की ओर प्रयाण किया। यह स्थान अब तक शिन्दे की सेनाओ के अधिकार मे था।

महादजी की प्रिय राजधानी मथुरा पर २ अक्तूबर को अधिकार करने के बाद, लेक ४ अक्तूबर को आगरा के समीप पहुँच गया। उसने भरतपुर के राजा से सन्धि कर ली। उत्तर भारतीय शासको मे से सवप्रथम इसी ने ब्रिटिश सरकार के साथ मैत्री की। आगरा ने १७ अक्तूबर को आत्मसमपण कर दिया।

---

[3] पी० ई० राबर्ट्‌स कृत 'वेलेजली के अधीन भारत', पृ० २२४

यहाँ २८ लाख रुपये मिले। जनरल ने अपने अधिकारियो तथा सैनिको को इसे आपस मे पुरस्कार के रूप मे बॉट लेने की आज्ञा दी। गवर्नर जनरल को मुख्य सेनापति के इस काय पर बहुत कोध आया।[४]

उत्तर मे लेक की इन तीव्र गति वाली सफलताओ से शिन्दे अत्यन्त भयभीत तथा उद्भ्रान्त हो गया। अगस्त के आरम्भ मे युद्ध होते ही अपने उत्तरी प्रदेशो की रक्षा करने के लिए अपने १५ अनुशासित दल नमदा पार भेज दिये थे। ये दल उसकी सेना के उत्कृष्ट भाग माने जाते थे तथा सवसाधारण मे इनका नाम "दक्षिण के अजेय वीर" था। परन्तु उनके घटनास्थल पर पहुँचने से पहले ही आगरा तथा दिल्ली का पतन हो गया था और इस क्षेत्र मे शिन्दे की सेना नष्ट हो चुकी थी। केवल दो दल शेष बचे थे जो इस समय दक्षिण से आये हुए दलो मे सम्मिलित हो गये। २७ अक्तूबर को लेक इस सेना को कोई नवीन बाधा उत्पन्न करने से रोकने के लिए आगरा से चला। अपना भारी सामान फतेहपुर सीकरी के समीप छोडकर उसने भरतपुर से दक्षिण मे करीब २० मील प्रयाण किया और १ नवम्बर को वह लासवाडी मे शत्रु शिविर के समीप पहुँच गया। एक गहरे नाले की रक्षा मे शत्रु ने अपना सुदृढ शिविर बना लिया था। लेक ने तुरन्त इस शिविर पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि वह विजयी रहा, परन्तु उसको बहुत बडी हानि सहन करनी पडी। उसके सहस्रो सैनिक मारे गये, जिनमे अनेक उच्च पदस्थ अग्रेज अधिकारी थे—जैसे मेजर जनरल वीर, मेजर ग्रिफिथ्स तथा अन्य। वीरता तथा रण मे शिन्दे की सेना ने अपना उत्कृष्ट परिचय दिया, यद्यपि उनकी ७१ तोपे छीन ली गयी और १३ हजार सैनिको मे से लगभग आधे सैनिक खेत रहे। "हमारे सवार पीछे ढकेल दिये गये तथा अनेक अधिकारी तथा सैनिक मारे गये। करीब ११ बजे हमारे पैदलो ने शत्रु के सवारो पर हमला आरम्भ किया और शत्रु के सवार शीघ्र भगा दिये। लासवाडी तथा मलपुरा के गॉवो से उन्होने अत्यन्त भारी अग्निवर्षा की। हमने करीब ३ घण्टे मे शत्रु की समस्त तोपो, नगाडो को छीन लिया, परन्तु हमारी बहुत हानि हुई। हमारे १३ अधिकारी मारे गये तथा ४० घायल हुए।"[५]

लासवाडी के इस रण मे शिन्दे की सेनाओ ने फ्रेंच प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त उच्च निपुणता का परिचय दिया। स्वय लेक ने कहा—"यदि उनके फ्रेंच

---

४ वेलेजली के पत्र', जिल्द ३, पृ० ४१४

५ 'भारत मे युद्ध तथा क्रीडा' (वार एण्ड स्पोट इन इण्डिया), पृ० २१९

अधिकारियो ने सेनाओ का नेतृत्व किया होता तो परिणाम अत्यन्त सदिग्ध हो गया होता ।" इस पराजय से शिन्दे की शक्ति का सर्वनाश हो गया । लार्ड वेलेजली ने गुजरात, बुन्देलखण्ड तथा उडीसा के अन्य छोटे क्षेत्रो मे भी मराठो पर आक्रमण करने मे विलम्ब नही किया । शिन्दे के अधिकार मे गुजरात मे दो शक्तिशाली स्थान थे—भडौच तथा पावागढ । बडौदा ने ब्रिटिश रक्षा पहले ही स्वीकार कर ली थी तथा इस समय वह उस क्षेत्र मे उनकी युद्ध-प्रवृत्तियो का मुख्य आधार बना हुआ था । कनल मरे ने अपनी सेना की एक टुकडी भडौच के विरुद्ध भेजी । इसके प्राचीर पर २९ अगस्त को अधिकार कर लिया गया । और इस प्रकार अग्रेजो को ११ लाख वार्षिक आय का प्रदेश प्राप्त हो गया । उसी दल ने पूर्व की ओर आगे बढकर १७ सितम्बर को चम्पानेर के नगर तथा उसके सन्निकट पावागढ के दुग पर अधिकार कर लिया । इस प्रकार गुजरात मे शिन्दे की समस्त शक्ति का अन्त हो गया ।

उडीसा मे भी अग्रेजो की युद्ध प्रवृत्तियाँ हुई । वहाँ १८ सितम्बर को जगन्नाथपुरी पर अधिकार कर लिया गया । यह नगर भोसले परिवार के अधिकार मे था । उसी दिन बालासोर का आत्मसमपण हो गया । कटक पर अक्तूबर मे अधिकार कर लिया गया था । इस प्रकार समस्त प्रान्त ने अधीनता स्वीकार कर ली, जिससे अग्रेजो को कलकत्ता से मद्रास तक निर्विघ्न माग प्राप्त हो गया ।

बाजीराव प्रथम के समय से पेशवाओ ने उत्तर भारत का आधिपत्य प्राप्त कर लिया था । वे केवल दिल्ली के सम्राट का ही नियन्त्रण नही करते थे, अपितु अधिकाश राजपूत और जाट राजा, दोआब के नवाब तथा बुन्देला सरदार उनके अधीन थे । अब वे सब मराठा आधिपत्य से मुक्त करके पृथक सन्धियो द्वारा ब्रिटिश अधीनता मे लाये गये । सन्धियाँ प्रत्येक के साथ विशेष रूप से की गयी । इस प्रकार बहुत-से छोटे-छोटे सरदार मराठा निष्ठा से पृथक कर दिये गये—उदाहरणाथ गोसाई नेता हिम्मतबहादुर, बाजीराव तथा मस्तानी का पौत्र शमशेर बहादुर, झासी का राजा तथा अम्बूजी इगले । यह पहले महादजी शिन्दे की सेवा मे प्रसिद्ध सैनिक था । गोहद के राना के साथ भी इसी प्रकार का व्यवहार किया गया । इन सरदारो मे से प्रत्येक को किस प्रकार एक सामान्य व्यवस्था मे बाँधा गया तथा ब्रिटिश प्रतिष्ठा पर इस काण्ड की क्या प्रतिक्रिया हुई—यह उस समय की राजनीति का शिक्षाप्रद अध्ययन है ।[६]

---

[६] पाठको को गोहद के काण्ड के विषय मे ओवेन द्वारा पृ० ३९० पर उद्धृत जनरल वेलेजली के पत्र सख्या २२० का अध्ययन करना चाहिए ।

३ **भोसले तथा शिन्दे द्वारा शान्ति सन्धि**—इस प्रकार अगस्त मे आरम्भ होने वाला युद्ध १८०३ की समाप्ति के पूव ही व्यावहारिक रूप से समाप्त हो गया, तथा इसके द्वारा ब्रिटिश लोग भारत के प्रधान अधिकारी बन गये। जनरल वेलेजली ने भोसले तथा शिन्दे के साथ पृथक-पृथक व्यवहार किया। ये ही दो सरदार मराठा राज्य की रक्षा के लिए अग्रसर हुए थे। युद्ध समाप्त करने का जनरल वेलेजली का यह उपक्रम गवनर जनरल ने ठीक नही समझा, क्योकि उसके निर्देश इस प्रकार थे—"दौलतराव तथा रघुजी को पकडकर शान्ति की याचना करने के लिए लाड के चरणो मे कलकत्ता भेज दिया जाये।" जनरल वेलेजली ने उत्तर मे लिखा—"मुझमे शिन्दे को अधिक हानि पहुँचाने की सामथ्य नही है। उसकी सेना मे अब केवल सवार रह गये है, जिनको हम तग नही कर सकते और जो हमारा बहुत अपकार कर सकते है। रक्षा के लिए हमारा निबलतम स्थान गुजरात है। शान्ति के निश्चय मे मै कोई हानि नही देखता हूँ। इसीलिए मैने शान्ति कर ली है। मैं विश्वास के साथ कहता हूँ कि जो कुछ मैने किया है, वह मेरे विचार मे ठीक है। मुझे विश्वास है कि मैने गवनर जनरल की आशा से भी बढकर शान्ति स्थापित कर दी है।"[७]

जनरल वेलेजली ने शान्ति का प्रस्ताव भेजने के लिए जो समय चुना, वह सर्वथा उपयुक्त था। इस समय दोनो मराठा सरदार काफी झकझोर दिये गये थे। उनको मालूम हो गया था कि सकट उनके निकट है। वे इससे बचना चाहते थे तथा इसके निमित्त नवीन प्रयास के लिए उनको समय की आवश्यकता थी। जिस प्रकार उन्होने सम्मिलित रूप से युद्ध का सचालन किया था, उसी प्रकार उन्होने सम्मिलित शान्ति स्थापित करने का यथाशक्ति प्रयास किया। किन्तु जनरल वेलेजली ने प्रत्येक के साथ पृथक सन्धि करने का हठ किया। उसने समस्त शक्तियो पर यह सामान्य शत लगा दी थी कि आन्तरिक कलह की दशा मे अधीनस्थ मित्रो का कतव्य ब्रिटिश निर्णय को आधिपत्य प्राप्त अधिकारी के निणय के रूप मे स्वीकार करना होगा।

जनरल वेलेजली ने भोसले के पास अपनी शर्तें भेज दी तथा वह उन्हे स्वीकार करने के लिए विवश किया गया। इस प्रकार उसकी राजधानी नागपुर आक्रमण से बच सकती थी। १७ दिसम्बर को एलिचपुर से कुछ मील उत्तर मे स्थित देवगाँव मे उसने निम्नलिखित शर्तो पर हस्ताक्षर कर दिये

१ समस्त पूर्वीय समुद्रतट सहित कटक का प्रान्त अग्रेजो को दे दिया जाये।

---

७ ओवेन कृत 'वेलिंगटन के पत्र', न० १८४, १९१ तथा १९२

२ वर्धा नदी तक पश्चिम बरार का प्रान्त निजाम को दे दिया जाये।

३ भोसले उन सन्धियो का सम्मान करे जो अग्रेजो ने उसके अधीन शासको के साथ की हे।

४ भोसले मराठा मघ को भग कर दे तथा अपनी सेवा मे अग्रेजो के किसी शत्रु को स्थान न दे।

इस सन्धि के द्वारा भोसले शिन्दे से पृथक कर दिया गया। इस प्रकार वेलेजली को अपनी समस्त शक्ति शिन्दे के विरुद्ध एकत्र करने का अवसर मिल गया। शिन्दे ने स्वय को अधिक समय तक युद्ध करने मे असमथ समझ कर अपने दूत कमलनयन मुशी तथा प्रधान मन्त्री विट्ठल पन्त को वेलेजली के साथ शर्तो पर वार्तालाप करने भेजा। विट्ठल पन्त बहुत वृद्ध था तथा अपने समय का सवश्रेष्ठ भारतीय कूटनीतिज्ञ माना जाता था। कई दिनो के वार्तालाप के बाद शिन्दे ने निम्नलिखित शर्ते स्वीकार कर ली तथा ३० दिसम्बर को सुरजीअजन गाव की प्रसिद्ध सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिया

१ शिन्दे अग्रेजो को गगा-यमुना का दोआब, यमुना पर स्थित दिल्ली-क्षेत्र, बुन्देलखण्ड के कुछ भाग, भडौच, गुजरात के कुछ जिले, अहमदनगर का गढ तथा गोदावरी नदी तक अजन्ता का क्षेत्र दे दे।

२ शिन्दे सम्राट पर अपना नियन्त्रण त्याग दे।

३ शिन्दे पेशवा, निजाम तथा गायकवाड पर अपने समस्त अधिकारो को छोड दे, तथा उन सब सहायक शासको की स्वतन्त्रता को मान्यता दे, जिन्होने अग्रेजो के साथ पृथक सन्धिया कर ली है।

४ शिन्दे अपनी सेवा मे किसी फ्रेच, अमरीकन या अग्रेजो के किसी शत्रु को न रखे। शिन्दे से ब्रिटिश सहायक सेना स्वीकार करने के लिए भी कहा गया, परन्तु उसने ऐसा करने से इनकार कर दिया। अधिक प्राथना करने पर बुरहानपुर तथा असीगढ उस को वापस कर दिये गये। भोसले से लिया गया बरार का देश निजाम को दे दिया गया, क्योकि युद्ध मे उसने अग्रेजो को अपना सहयोग दिया था।

सब कुछ देखते हुए जनरल वेलेजली ने अपने दोनो परास्त शत्रुओ की ओर सैनिक सौम्यता तथा विशालहृदयता का परिचय दिया। उसको ब्रिटिश परिस्थिति की कठिनाइयो का पूरा पता था। वह जानता था कि स्वय नष्ट हुए बिना किसी प्रकार अपनी सफलता से लाभ उठाया जा सकता है। वह अपने अधीन शासको का अपमान करने की अपेक्षा उन्हे अपराध करने के लिए असमथ बना देने की नीति अधिक उत्तम समझता था। युद्ध के कारण कम्पनी

के साधनो पर अत्यन्त भार पडा था। जनरल ने बुद्धिमत्तापूवक अपने को सीमा के बाहर न जाने से रोक लिया तथा अपनी माँगे नम्र करके मराठो के मन से कटुता हटा दी। उसको यशवन्तराव होलकर की प्रगतियो का पता था। वह इस समय असहाय अवश्य कर दिया गया था, परन्तु बिना वह स ग्प के ब्रिटिश प्रभुत्व स्वीकार करने वाला नही था, जबकि बाजीराव पूना मे उसको उत्तेजित करने का यथाशक्ति प्रयास कर रहा था। इस तीव्रगामी क्रान्ति से देश की परम्परागत राजनीति मे सहसा परिवतन हो गया था। इस कारण भारत मे अशान्ति तथा क्रोध भडक उठा। रघुजी भोसले की मनोवत्ति इस परिवतन का आदश रूप है। वह युद्ध मे सहसा फँस गया था, इस कारण उसको बहुत हानि सहन करनी पडती थी। अत उसने भविष्य मे राजनीतिक प्रगति का पूणतया त्याग कर दिया। जब अग्रेजो ने उससे पूछा कि वह उनका मित्र हे या शत्रु तो उसने उत्तर दिया—"मै न आपका मित्र हूँ, न शत्रु। इन शब्दो का वास्तविक अथ मे नही जानता।" माउण्ड स्टुअर्ट एलिफस्टन नागपुर का रेजीडेण्ट नियुक्त किया गया और उसने वहा चार वर्ष तक काय किया।

इसी प्रकार वेलेजली ने अमृतराव को बनारस भेज दिया, क्योकि वह राष्ट्रीय विद्रोह का केन्द्रबिन्दु बन सकता था। पहले उसको सपरिवार अहमदनगर के गढ मे रखा गया। वह यहाँ पर अपने प्रतिहिसक भाई के शक्य अपकारो से सकुशल रह सकता था तथा साथ ही मराठा शक्ति के पुनरुज्जीवन के निमित्त उसकी प्रगतियो पर यहाँ निगाह रखी जा सकती थी। वहाँ उसने अपनी सम्पत्ति एकत्र कर ली और व्यक्तिगत सामान बाँध लिया। १८०४ के अन्त मे वह अपना स्वदेश त्याग कर बनारस चल दिया। व्यक्तिगत व्यय के लिए उसे ८ लाख वार्षिक वृत्ति मिल गयी।

दौलतराव शिन्दे की दशा भिन्न थी। उसकी परिस्थिति वास्तव मे दयनीय हो गयी थी। वह गौरव तथा शक्ति के उच्चतम शिखर से कष्ट तथा दरिद्रता के गहन गत मे गिर गया था। उसकी शक्ति तथा महादजी शिन्दे के गौरव का मूल कारण उसकी शक्तिशाली सेना नष्ट हो गयी थी। उत्तर मे अत्यन्त उर्वर प्रदेश उसके हाथ से छिन गये थे और सम्राट तथा उसकी राजधानी पर उसका मूल्यवान अधिकार जाता रहा था। पीडादायक भार के कारण उसके पास सिर उठा सकने का कोई साधन नही रह गया था। उसका शत्रु होलकर अब तक सकुशल था और राजपूत राजाओ पर अपना प्रभुत्व प्रदर्शित कर सकता था। यही प्रभुत्व दौलतराव के हाथा से निकल गया था। जॉन माल्कम ने शिन्दे के साथ सन्धि निश्चित की थी तथा अब वह उसके दरबार मे रेजीडेन्ट

नियुक्त कर दिया गया था । वह तथा एल्फिस्टन इस समय से एक पीढी तक मराठो के भाग्य सरक्षक बने रहे तथा उन दोनो ने बम्बई के गवनरो के रूप मे अपना काय समाप्त किया । यशवन्तराव होलकर उत्तर मे नित्य आक्रमण-शील होता गया तथा दौलतराव के पास उसके क्रोध से अपनी रक्षा करने का कोई साधन नही था । इस कारण शिन्दे इतना असहाय हो गया कि सुरजी-अजन गॉव की सन्धि के दो मास के भीतर ही उसने माल्कम से एक ब्रिटिश सहायक सेना के लिए याचना की । इस काय के लिए २७ फरवरी, १८०४ को एक पूरक सन्धि निश्चित की गयी जो बुरहानपुर की सन्धि कही जाती है । यह सन्धि यशवन्तराव होलकर के सवनाश का उपक्रम था । दौलतराव अब अग्रेजो के विरुद्ध कोई सघ बनाने का स्वप्न नही देख सकता था । इसके बदले मे अग्रेजो ने उसको आश्वासन दिया कि वे किसी भी शत्रु से उसकी रक्षा करेगे तथा उसके आन्तरिक प्रशासन मे किसी प्रकार के हस्तक्षेप से दूर रहेगे । इस प्रकार दौलतराव को अब मराठा राज्य मे अपनी नष्ट शक्ति पुन प्राप्त कर लेने की मूखतापुण आशा होने लगी ।

४ **आथर वेलेजली की मनोवृत्ति**—जो युद्ध अभी समाप्त हुआ था, उसको प्राय द्वितीय मराठा युद्ध कहा जाता है । कुछ हद तक यह ठीक भी है, क्योकि इसका उद्देश्य मराठो की सावभौम सत्ता को नष्ट कर देना था । पेशवा और गायकवाड कूटनीतिक उपायो द्वारा परास्त कर दिये गये तथा शिन्दे, भोसले और होलकर वास्तविक युद्ध द्वारा नष्ट कर दिये गये । किन्तु यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि इस युद्ध मे समस्त मराठा जाति ने भाग नही लिया था । दक्षिण के सरदार इससे सवथा अलग रहे । पेशवा ने अपनी अदूरदर्शिता से सब काम बुरी तरह बिगाड दिया । लाड वेलेजली का निश्चय मराठा राज्य को किसी न किसी प्रकार नष्ट कर देने का था । यदि उसकी इच्छा यह राज्य बनाये रखने की होती तो वह मराठा सत्ता का उपभोग करने के लिए सवथा उपयुक्त पुरुष के रूप मे अमृतराव का समथन करता ।

१५ जनवरी, १८०४ को जनरल वेलेजली द्वारा प्रेषित समाचार स्वमेय गवनर जनरल की नीति की पर्याप्त निन्दा करता है । वह लिखता है—"श्रीमन पेशवा की सरकार इस समय केवल नाममात्र की सरकार है । अब बाजीराव पूना से ५ मील के देश का प्रबन्ध भी नही कर सकता । यह सब देश जगल बन गया है, जहा चोरो का राज्य है । वह स्वय सरकार का सचालन करने मे अयोग्य है तथा किसी अन्य व्यक्ति का न तो विश्वास करता है, और न कोई अधिकार देता है । उसके पास देश का काय सचालन करने वाला कोई

व्यक्ति नही हे। अमृतराव अवश्य सरकार की स्थापना कर सकता था, परन्तु पेशवा को उससे इतनी घृणा है कि उससे अमृतराव का भाई के रूप मे स्वागत करने तथा सरकार मे उसकी कोई विश्वस्त स्थान देने के लिए अनुनय-विनय भी नही की जा सकती। केवल यह उपाय व्यवहार योग्य प्रतीत होता हे कि राज्य के बहुत-से उन प्राचीन सेवको का मुक्त कर दिया जाये, जिन्हे अन्याय-पूवक कारागार मे डाल दिया गया है अथवा विभिन्न पवतीय दुर्गां मे नजरबन्द रखा जा रहा है।[८]

पूना मे जनरल वेलेजली ने बहुत समय तक पेशवा के मन्त्री सदाशिव मानकेश्वर के साथ वार्तालाप किया, जिसकी सूचना गवनर जनरल को इस प्रकार भेजी गयी—"मैने मानकेश्वर से कहा कि मेरी सम्मति मे श्रीमन्त के लिए सात वष के कष्टो तथा गृहयुद्ध के बाद क्षमा तथा अनुरजन द्वारा अपना शासन तथा देश का प्रबन्ध करना अधिक उत्तम होगा। इन सात वर्षों मे राज्य का लगभग प्रत्येक व्यक्ति उसके शासन तथा सेना के विरुद्ध रहा है। सबके प्रति प्रतिशोध के चक्कर मे पडना उसके लिए उचित न होगा। वैसे उसकी इच्छा यही है। यह काय सकटपूण तथा विवेकहीन सिद्ध होगा।" यह कहने की आवश्यकता नही है कि यह लाभदायक परामश अकारण अस्वीकार कर दिया गया, तथा उसका जो परिणाम हुआ वह इतिहास मे स्थायी रूप मे लिखा हुआ है।

जनरल वेलेजली से जो कुछ बन पडा वह उसने परिस्थिति सँभालने के लिए किया। परन्तु एक ओर बाजीराव सदृश्य दुष्ट व्यक्ति था, जिससे कोई आशा नही की जा सकती थी तथा दूसरी ओर सत्ता का भूखा गवनर जनरल था, जिसका निश्चय अपनी उचित या अनुचित आज्ञा का अविलम्ब पालन कराने के लिए दृढ निश्चय था। ध्यानपूवक पत्रो का अध्ययन करने से यह तथ्य प्रकट होता है कि उस समय अधिकार सम्पन्न तथा भारत के भाग्य का निपटारा करने वाले दोनो भाइयो मे अगाध प्रेम नही था।[९]

---

८ ओवेन कृत 'वेलिगटन के पत्र', न० २०७, पृ० ३६४

९ युद्ध की समाप्ति के बाद माच, १८०४ मे जनरल पूना वापस आ गया। यहाँ पर वह तथा कनल फ्लोज कई बार पेशवा से मिले। पेशवा भी उनसे मिलने आया। हीराबाग मे पेशवा ने उनको कई भोज दिये तथा उनके आमोद-प्रमोद का प्रबन्ध किया। इसके बाद दोनो अग्रेज सज्जन साथ-साथ बम्बई वापस आ गये। वहाँ वे पूरे दो मास तक मराठा राज्य की भावी स्थिति पर विचार-विमश करने मे व्यस्त रहे। इसके बाद जून मे वे फिर पूना पहुँचे। वहा से जनरल वेलेजली अपने स्थायी स्थान

५ **होलकर का प्रकोप**—मराठा राज्य का बिखर जाना यशवन्तराव की नवजात महत्ता का मुख्य कारण था। उसकी शक्ति का रहस्य उसके प्रदेशो का विस्तार नही, अपितु उसके अनुयायियो की सख्या थी। उत्तर भारत के सब निकाले हुए सैनिक तथा निश्च्छल परिश्रम अथवा व्यावसायिक योग्यता द्वारा उन्नति करने की अपेक्षा लूट द्वारा समृद्ध होने की इच्छा रखने वाले समस्त उच्छ खल व्यक्ति उसके झण्डे के नीचे एकत्र हो गये। उसका कोई स्थिर शासन नही था। वास्तव मे उसका राज्य उसके घोडे की जीन थी। वह साहसी, स्वेच्छाचारी तथा निश्शक था। उसकी आज्ञा मे ६० हजार सवार तथा विशाल तोपखाना था।[१०]

असाई के रण तक यशवन्तराव की प्रगतियो का वणन पहले हो चुका है। वतमान युद्ध का भार केवल शिन्दे तथा भोसले पर पडा। उस समय होलकर ने युद्ध से दूर रहकर अपने जीवन की महत्तम भूल की, क्योकि वह अच्छी तरह जानता था कि अकेले अग्रेजो की शक्ति का सामना नही किया जा सकता। ५ जनवरी, १८०४ को आथर वेलेजली ने उसे इस प्रकार लिखा—"मुझे आपको यह सूचना देते हुए हष होता है कि मै शिन्दे तथा भोसले के साथ मित्रता की सन्धि द्वारा अपना पूव प्रीतिमय सम्ब ध पुन स्थापित करने मे सफल हो गया हूँ। मै आपको इस सघष से दूर रहने के लिए बधाई देता हूँ। आपने युद्ध से अलग रहकर मुझको यह सफलता प्राप्त करने के लिए समथ कर दिया। इस युद्ध मे आपके विवेकपूण आचरण तथा दूरदर्शिता की मै बहुत प्रशसा करता हूँ तथा आश्वासन देता हूँ कि जब तक आप कम्पनी या उसके मित्रो के न्यायसगत हितो मे हस्तक्षेप नही करेंगे, तब तक हम आपके माग मे कभी बाधा नही डालना चाहेंगे। माल्कम स्वय यह पत्र आपको देगा। उसको आदेश दिया गया है कि इस विषय पर जो कुछ

श्रीरगपट्टन को चला गया। वहाँ से गवनर जनरल के निमन्त्रण पर यशवन्तराव होलकर की प्रगतियो के सम्बन्ध मे विचार-विमर्श के लिए तुरन्त कलकत्ता चला गया। अगस्त से नवम्बर तक चार मास कलकत्ता मे व्यतीत करने के बाद जनरल वेलेजली दिसम्बर, १८०४ मे श्रीरगपट्टन वापस आ गया। आगामी माच (१८०५) मे जनरल वेलेजली नेपोलियन के धावो का सामना करने के लिए जहाज मे बैठकर अकस्मात मद्रास से इगलैण्ड चल दिया।

[१०] काये कृत 'माल्कम की जीवनी', जिल्द १, पृ० ३०५, 'वेलेजली के पत्र', जिल्द ४, पृ० १०७, मिल कृत 'इतिहास', जिल्द ६, पृ० ४६५

आप कहे, उससे वह हमको सूचित कर दे, जिससे कम्पनी के साथ आपके निबाध सम्बन्ध बने रहे ।"

१८०३ की ग्रीष्म ऋतु मे होलकर ने औरगाबाद स चौथ कर सग्रह किया, परन्तु जनरल वेलेजली ने उसको रोकने का काई प्रयास नही किया । उसी वष के अक्तूबर मे जब शिन्दे तथा भोसले बरार मे अग्रेजो के विरुद्ध युद्ध मे फँसे हुए थे तो होलकर ने उज्जैन को लूट लिया तथा यथापूव कर सग्रह करता हुआ शीघ्रतापूवक जयपुर की ओर बढा । जयपुर, जोधपुर तथा भरतपुर के राजाओ ने पहले ही पृथक-पृथक सन्धियो द्वारा ब्रिटिश सहायक सेना स्वीकार कर ली थी । अत जयपुर के विरुद्ध होलकर का काय अग्रेजो के विरुद्ध सीधी चुनौती थी । किन्तु होलकर ने लाड लेक को आश्वासन दिया कि वह ब्रिटिश मैत्री का बहुत मान करता है तथा जयपुर के सम्बन्ध मे वह केवल अपने परम्परागत अधिकारो का प्रयोग कर रहा है । इसी समय उसने अपने विशेष सन्देशवाहक नागपुर भेजे तथा भोसले राजा को प्रेरणा दी कि ब्रिटिश अतिक्रमण का प्रतिरोध करने तथा उससे अपने राज्य और धर्म की रक्षा करने मे होलकर का हाथ बँटाये । होलकर ने इसी प्रकार के सन्देशवाहक जोधपुर के राजा, अम्बूजी इगले तथा अन्य कई सरदारो के पास भी भेजे । उसने माछेरी के रावराजा को पत्र लिखकर सवापहारक ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध विद्रोह करने का आह्वान दिया । रावराजा ने होलकर का यह पत्र लाड लेक के हाथो मे रख दिया । इस प्रकार ब्रिटिश अधिकारियो को विश्वास हो गया कि होलकर ने अब दोहरी चाल आरम्भ कर दी है । अत लाड लेक गत वष शिन्दे के विरुद्ध निर्विघ्न रूप से युद्ध का सचालन करने के लिए भरती किये गये दलो को भग नही कर सका । साथ ही उसने होलकर से निपटने के लिए गवनर जनरल से आज्ञा माँगी । लाड वेलेजली यशवन्तराव द्वारा होलकर राज्य के अपहरण को अपनी स्वीकृति देने के लिए तैयार नही था । उसने अपनी इच्छा प्रकट की कि यदि यशवन्तराव काशीराव के हित मे अवकाश ग्रहण कर ले तो उस दशा मे उसे जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त वृत्ति दे दी जायेगी । इस विचार से गवनर जनरल ने लाड लेक से यशवन्तराव को इस आशय की लिखित चेतावनी देने को कहा—यद्यपि ब्रिटिश सरकार की इच्छा आपके साथ अपने मैत्री-सम्बन्ध सुरक्षित रखने की थी, परन्तु उसके मित्रो क विरुद्ध कोई अतिक्रमण सहन नही किया जा सकेगा । लाड लेक ने ये भावनाएँ २९ जनवरी, १८०४ को पत्र द्वारा होलकर के पास भेज दी तथा वह स्वय होलकर के शिविर के पास डट गया । इस पर होलकर ने अपने दो प्रतिनिधि

लाड लेक के पास भेजकर उससे निम्नलिखित माँगो की पूर्ति करने के लिए कहा

१ भारतीय शासको पर उसके परम्परागत चौथ के अधिकार मे अग्रेजो को हस्तक्षेप नही करना चाहिए ।

२ दोआब तथा बुन्देलखण्ड के कुछ परगने—जैसे इटावा, हरयाना तथा अन्य—होलकर के अधिकार मे पुन दे दिये जाये, क्योकि उन पर उसके परिवार का अविकार था ।

३ वह अग्रेजो के साथ उन्ही शर्तो पर मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के लिए तैयार है, जिनको उसने पहले शिन्दे के सामने उपस्थित किया था ।

लाड लेक ने इन मागो को अपरिमित समझा तथा होलकर के प्रतिनिधियो का अपने शिविर से निकाल दिया । साथ ही होलकर को स्पष्ट लिख दिया कि वह केवल युक्तिसगत तथा स्वीकाय प्रस्ताव ही भेजे । इस पर मराठे (होलकर) ने अग्रेज (लेक) को अपनी प्रसिद्ध चुनौती दी । फरवरी, १८०४ को उसने लिखा—"युद्ध की दशा मे यद्यपि मै रणक्षेत्र मे ब्रिटिश तोपखाने का सामना नही कर सकता, तथापि सैकडो कोस का प्रदेश पददलित कर दूगा । मै उनको लूट लूगा और जला दूगा तथा सतत युद्ध मे मै अपनी सेना के आक्रमणो द्वारा लाखो मनुष्यो को खून के आसू रुला दूगा । मेरी सेना के आक्रमण 'समुद्र की लहरो' की भाति विनाशकारी होते है ।"[११]

होलकर के कारण लाड लेक इतना कतव्यमूढ हो गया कि उसने गवनर जनरल को इस प्रकार लिखा—"मुझको जितना दुख इस दुष्ट के कारण हुआ है, इतना पहले कभी नही हुआ । हम भारी व्यय पर भी रणक्षेत्र मे डटे रहने के लिए विवश हो गये हे । यदि हम पीछे हटते हे तो होलकर जयपुर पर टूट पडेगा और वहा से बलपूवक एक करोड रुपये एकत्र कर लेगा । इस प्रकार वह अपनी सेना को पहले से अधिक भयावह बना सकेगा । यदि मै आगे बढता हूँ और कोई माग खुला रह जाता है तो वह भाग निकलेगा और हमारे प्रदेशो मे घुसकर उनको नष्ट कर देगा अथवा जला देगा ।"

तीथयात्रा के बहाने से यशवन्तराव अजमेर के समीप पुष्कर गया और उन दोनो स्थानो को लूट लिया । उसने शिन्दे को अपना साथ देने के लिए साग्रह प्राथनाए भेजी । वह जयपुर पर इस भयानक रूप से टूट पडा कि समस्त

[११] मिल कृत 'भारत का इतिहास', जिल्द ६, पृ० ४६५, 'वेलेजली के पत्र' जिल्द ४, पृ० १०७

उत्तर भारत भयभीत हो गया। गवनर जनरल इस परिस्थिति को अधिक सहन न कर सका। उसने १६ अप्रैल को लाड लेक तथा जनरल वेलेजली को होलकर के विरुद्ध अविलम्ब युद्ध आरम्भ करने का आदेश दिया। जनरल ने कनल मरे को गुजरात से मालवा मे प्रवेश करने तथा होलकर के प्रदेशो को छीन लेने की आज्ञा दी। लेक अपने दलो सहित जयपुर प्रदेश मे आ गया। दौलतराव शिन्दे इस प्रकार भयभीत तथा उद्भ्रान्त हो गया था कि उसने अपने को विवश द्रष्टा के रूप मे रेजीडेण्ट मालकम के हाथो मे सौप दिया। पूना मे बाजीराव भी उन दुष्टतापूण कपट प्रबन्धो तथा षड्यन्त्रो से मुक्त नही रहा जो होलकर के कायकर्ताओ ने उस क्षेत्र मे आरम्भ कर दिये। कनल क्लोज बाजीराव की प्रगतियो को अत्यन्त चिन्ता से देखता रहा। यद्यपि बाजीराव होलकर की शक्ति तथा प्रभाव वृद्धि के बहुत विरुद्ध था, परन्तु उसने ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रस्तावित उपायो को अपना कोई समथन नही दिया।

६ **कनल मोन्सन की विपत्ति**—मुख्य सेनानायक ने होलकर के विरुद्ध प्रयाण कर दिया। उसका अग्रदल कनल मोन्सन की अध्यक्षता मे उससे एक मजिल आगे था। आशा थी कि कनल मरे गुजरात से मालवा म प्रवेश कर लेगा। होलकर विवश होकर जयपुर के प्रदेश से दक्षिण की ओर हट गया। लेक के सैनिको को गरमी से बहुत क्लेश पहुँचा था तथा उनका विश्वास हो गया था कि होलकर के पलायन की अति तीव्र गति के कारण वे उसका पीछा नही कर सकते। अत उन्होने वर्षा ऋतु के अन्त तक सक्रिय युद्ध स्थगित करन का निश्चय कर लिया। जून के अन्त मे लाड लेक ने अपनी मुख्य सेना कानपुर की छावनी को हटा दी, तथा मोन्सन को बूदी और लाखेरी के मार्गों पर अधिकार करके उनकी रक्षा करने की आज्ञा दी। इस प्रकार होलकर को मालवा से उन घाटियो के उत्तर मे लौटने मे बाधा उपस्थित हो सकती थी। आशा थी कि मरे मालवा पहुँच जायेगा तथा शिन्दे के दलो के साथ सहयोग करता हुआ होलकर की देखभाल रखेगा। मोन्सन अपनी सुरक्षित स्थिति मात्र से सन्तुष्ट न था, अत पर्याप्त दलो या आवश्यक सामग्री के बिना ही वह उन घाटियो के आगे होलकर के प्रदेश मे घुस गया। मोन्सन ने बापू के अधीन शिन्दे के एक दल के साथ चम्बल को पार किया तथा मरे के साथ मिल जान की इच्छा से कोटा के दक्षिण मे करीब ३० मील मुकुन्दरा की घाटी से वेग सहित होलकर के पीछे बढा। जब वह घाटी के दक्षिणी सिरे पर था, तब उसको पता चला कि उसकी सामग्री कम पड गयी है। वह ५० मील और दक्षिण म

स्थित तथा शत्रु द्वारा अधिकृत हिंगलाजगढ के दुग तक बढ गया। उसने प्रथम जुलाई को सुविधापूर्वक इस दुग पर अधिकार कर लिया।

होलकर पहले से ही मालवा मे था। उसको धन की बहुत आवश्यकता थी। उसने अपना कोष भरने के लिए मन्दसौर को लूट लिया। यह समृद्ध नगर शिन्दे के अधिकार मे था। जब वह चम्बल पार करने को तैयार हो रहा था, तभी मोन्सन ने उसको नष्ट करने का यह अनुकूल अवसर समझा और नदी पार करते समय उस पर आक्रमण कर दिया। बाद मे उसको मालूम हुआ कि होलकर अपनी विशाल सेना सहित पहले ही सकुशल नदी पार कर चुका था। इस सेना का सामना करने मे वह असमथ था। ठीक इसी क्षण उसको बडनावर से कनल मरे का हडबडी भरा सन्देश मिला कि "मेरे पास होलकर से युद्ध करने के लिए पर्याप्त सेना नही हे, अत मैने गुजरात वापस होने का निश्चय कर लिया जहा होलकर के आक्रमण की आशका है।" इस विचित्र स्थिति मे मोन्सन ने ८ जुलाई को शत्रु द्वारा अविलम्ब आक्रमणो से अपनी रक्षा करने के उद्देश्य से चम्बल से मुकुन्दरा की ओर लोटना आरम्भ किया। मरे को अपना सन्देश भेजे हुए केवल ५ दिन ही हुए थे, जब उसको मालूम हुआ कि होलकर की इच्छा गुजरात पर टूट पडने की नही है। अत उसने अपनी योजना बदल दी। वह अविलम्ब पीछे हटा तथा ८ जुलाई को अर्थात ठीक उसी दिन जिस दिन मोन्सन ने होलकर के सामने से पीछे हटना आरम्भ किया, उज्जैन पहुँच गया। वास्तव मे मरे तथा मोन्सन दोनो एक दूसरे के इतना निकट आ गये थे कि सुविधापूवक मिलकर सकट से अपनी रक्षा कर सकते थे। इस प्रकार पारस्परिक सन्देश भेजने की एक साधारण गलती के कारण ब्रिटिश सेना पर भयानक विपत्ति आ टूटी, जिससे भारत तथा इगलैण्ड दोनो देशो मे लाड वेलेजली की नीति समाप्त हो गयी। होलकर परिवार के क्रमबद्ध इतिहास मे मोन्सन के पीछे हटने के इस काण्ड का वणन इस प्रकार है

"यशवन्तराव अपने हल्के सवारो सहित मन्दसौर पर टूट पडा। इस स्थान को लूटने मे उसे एक मास लग गया। यहाँ पर उसको मालूम हुआ कि कोटा तथा बापू शिन्दे के दलो के साथ कुछ ब्रिटिश सेनाएँ हिंगलाजगढ पहुँच गयी ह। उसने अपने साथ करीब ८० हजार शीघ्रगामी हल्के सवार लेकर ७ जुलाई को उन पर अचानक आक्रमण किया। इस विशाल सेना द्वारा परास्त होकर मोन्सन मुकुन्दरा घाटी की ओर शीघ्रतापूवक पीछे हट गया। उसके साथ का कोटा वाला दल सवथा नष्ट हो गया। सेण्ट लूकास अपने हाथी पर

मारा गया। कोटा के राजा ने मोन्सन की सहायता इस उद्देश्य स की थी कि मोन्सन सकुशल चम्बल पार कर सके। परन्तु उन पवतीय प्रदेशो के भीलों की सहायता से होलकर उन पर उग्रतापूवक टूट पडा। अपनी रक्षा के लिए भागते समय छोटा-सा ब्रिटिश दल लूट लिया गया तथा उसका सारा सामान छीन लिया गया। २४ अगस्त को बनास नदी पर एक अन्य भयानक रण हुआ, जिसमे मोन्सन के बहुत-से सैनिक मारे गये, या जब होलकर के सैनिक बहुत निकट से उनका पीछा कर रहे थे तब वे नदी मे डूब मरे। बनास नदी पर हुए इस रण मे होलकर के तोपखाने का अधिकारी माकनसिह मार डाला गया और मोन्सन ने उसकी बहुत-सी तोपे छीन ली। परन्तु यशवन्तराव स्वय साहसपूवक आगे बढा और उसने बहुत-से शत्रुओ को मार गिराया। भारी तोपखाना, चढी हुई नदी के कारण होलकर का साथ न दे सका, परन्तु उसके सवारो ने तैरकर शीघ्रता से नदी पार कर ली ओर शत्रुआ का पुन पीछा करने लगे। इस प्रकार मोन्सन आगरा पहुचने मे सफल हो गया, और होलकर ने फतेहपुर मे अपना शिविर लगाया।"

इस शोचनीय काण्ड के कुछ अन्य विवरण भी उद्धरण देने योग्य हे। इनको पी० ई० राबर्ट्स ने अपनी पुस्तक 'वेलेजली के अधीन भारत' मे भली प्रकार उद्धृत किया हे। "कोटा के राजा को लौटते हुए अग्रेजा का स्वागत करने का साहस नही हुआ तो उनको सघषपूवक चम्बल नदी तट पर पहुचना पडा। नदी पार कर ली गयी और १६ जुलाई को बडी तोपे तोडकर छोड दी गयी। २७ को मोन्सन रामपुरा पहुँचा, परन्तु होलकर के लुटेरे दलो के बढते हुए आक्रमणो के कारण वह अपनी वापसी जारी रखने पर विवश हो गया। वह २४ अगस्त को बनास नदी पर पहुँचा। जब वह नदी पार कर रहा था, तभी उस पर कष्टपूण अवस्था मे आक्रमण किया गया। उसन अपना सामान छोड दिया और अगले दिन कुशलगढ पहुँच गया। यहाँ शत्रु के टिड्डी दल ने उसे लगभग घेर लिया, परन्तु वह सघष करता रहा और २७ को वह हिण्डौनगढ पहुँच गया। थकान तथा क्षुधा से पीडित यह क्षीण दल अपनी सहनशक्ति के लगभग अन्त पर ३१ अगस्त को आगरा पहुँच गया। यह दल सवथा साहसहीन तथा अव्यवस्थित था। लौटना आरम्भ करने के ५० दिन बाद यह दल आगरा पहुँचा था।" मोन्सन की इस विपत्तिपूर्ण वापसी से ब्रिटिश अस्त्र शस्त्रो पर कलक का टीका लग गया तथा बहुत दिनो तक अनेक योग्य सैनिको तथा कूटनीतिज्ञो के लिए यह काण्ड पर्याप्त टीका टिप्पणी का विषय बना रहा।

होलकर के विरुद्ध युद्ध सचालन के विषय मे अत्यन्त धैयहीन होकर गवनर जनरल ने अपने भाई आथर को तुरन्त अपन पास बुलाया। वह उस समय मैसूर स्थित अपने स्थायी स्थान को जाने के लिए पूना छोडने ही वाला था। सितम्बर-अक्तूबर के महीनो मे दोनो भाइयो के बीच गम्भीर तथा दीघकालीन विचार-विनिमय होता रहा। सवसाधारण की माग थी कि युद्ध का सचालन जनरल वेलेजली के सुपुद किया जाये, परन्तु लाड लेक के अधीन काय करने से उसने इनकार कर दिया तथा मोन्सन प्रकरण का शान्त विश्लेषण लिखने के बाद वापस हो गया। बाद मे इस विश्लेषण की बहुत प्रशसा की गयी। अन्त मे वह इगलैण्ड चल दिया।[१२]

७ **अजेय भरतपुर**—मान्सन की पराजय से यशवन्तराव होलकर को नवीन स्फूर्ति प्राप्त हो गयी। अब उसने अपने समस्त दलो को लेकर उत्तर की ओर प्रयाण किया। उसने मथुरा पर अधिकार कर लिया तथा ८ अक्तूबर को वह दिल्ली पर टूट पडा। लाड लेक अपनी सेनाओ को पुन सगठित करके ३ सितम्बर को कानपुर से चल दिया तथा वेगपूवक होलकर का पीछा किया। वह दिल्ली को उसके हाथो मे पडने से बचाना चाहता था, क्योकि इस असामयिक घटना से होलकर की शक्ति अमित रूप से बढ जाती। दिल्ली पर अधिकार करने के लिए एक सप्ताह तक अत्यन्त प्रयास/करने के बाद लेक के असाधारण आक्रमण से बचने के विचार से होलकर को हटना पडा। तब दोआब के उवर प्रदेश को नष्ट करने तथा अवध मे प्रवेश करके ब्रिटिश जनरल के लिए कठिन समस्या उपस्थित करने के विचार से अपने सवारो को लेकर उसने बागपत के स्थान पर यमुना पार की। लेक अपने दलो को दो भागो मे विभाजित कर तुरन्त होलकर के पीछे लग गया। उस पर सहसा आक्रमण किया तथा १७ नवम्बर को फरुखाबाद के निकट वह परास्त कर दिया गया। सवथा पराजित होकर होलकर ने कानपुर स्थित मुख्य ब्रिटिश केन्द्र पर आक्रमण करने की योजना त्याग दी। वह शीघ्रतापूवक पुन यमुना पार करके डीग भाग गया। लेक उसके पीछे तुरन्त वहा पहुँच गया तथा १ दिसम्बर को उसने उस गढ पर घेरा डाल दिया। दो महीनो की लगातार भाग दौड की परेशानी तथा प्रयाण के कष्टो से भगोडा तथा पीछा करने वाला दोनो पूर्णत श्रान्त हो गये थे। उनको कभी भी २५ मील प्रतिदिन से कम नही चलना पडा था तथा

---

[१२] ओवेन कृत 'वेलिगटन के पत्र', न० २४७, दिनाक फोट विलियम, १२ सितम्बर, १८०४, पृ० ४२६

कभी-कभी वे ७० मील प्रतिदिन चले थे। होलकर समझ गया कि वह बहुत दिनो तक टिक नही सकता।

भरतपुर के जाट राजा रणजीतसिह ने इस समय स्पष्ट रूप स होलकर का पक्ष अपना लिया। उसने गत सप्ताह ब्रिटिश सरकार के साथ हस्ताक्षर करके निश्चित की गयी मित्रता की सन्धि का खण्डन कर दिया। इस प्रकार होलकर को लूटमार का कुछ और समय मिल गया। शिन्दे ने भी इस समय अनिश्चित मनोवृत्ति का परिचय दिया, क्योकि वह होलकर का पूर्णत पद-दलित होना नही देख सकता था। जाट लोग वीर योद्धा थे। अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने के दृढ निश्चय का प्रदशन वे कई बार पहले मराठो के विरुद्ध कर चुके थे। उन्होने भारत के उद्धारकर्ता के रूप मे होलकर का स्वागत किया। गवनर जनरल तथा चीफ कमाण्डर ने जाट राजा को होलकर से पृथक करने का प्रत्येक सम्भव प्रयास किया, परन्तु वह सफल न हो सका। लेक न डीग पर घेरा डाल दिया तथा १३ दिसम्बर, १८०४ को दोनो ओर से भयानक जनहानि के बाद गढ पर उसका अधिकार हो गया।

तब दोनो मित्र पत्थर की दीवारो के अजेय दुग भरतपुर को हट गये। यहा पर वे युद्ध करने को तैयार हो गये। राजा अन्दर से गढ की रक्षा कर रहा था तथा होलकर बाहर से घेरा डालने वालो को तग कर रहा था। लाड लेक १६ दिसम्बर को उस दुग के सम्मुख पहुँच गया। तब यहा उग्र तथा विक्रान्त सघष आरम्भ हुआ, जिसे भारत के इतिहास मे अमर महाकाव्य की प्रसिद्धि प्राप्त हो गयी हे। इस स्थान पर ७ जनवरी, १८०५ को घेरा डाला गया। इसे हस्तगत करने के लिए अवरोधको क सभी प्रयत्न असफल हो गये। १० अप्रल को घेरा त्याग दिया गया। इन तीन महीनो मे सामूहिक प्रयास द्वारा दुग पर अधिकार करने के कई सुनियोजित आक्रमण निरथक सिद्ध हो गये और उनके कारण भयानक हानिया हुइ।[१३]

पी० ई० राबट्स लिखता है—"६ जनवरी तथा २१ फरवरी के बीच लेक ने चार पृथक सामूहिक आक्रमण किये जो सभी भयानक क्षति सहित असफल कर दिये गये। ये अनावश्यक आक्रमण भयानक तथा अक्षम्य भूल थे। लेक की उग्र प्रकृति उस विलम्ब को सहन न कर सकी जो सामूहिक प्रयास के पहले आवश्यकतानुसार दीवारो की प्रारम्भिक तोडफोड के लिए अपेक्षित था। लेक की असफलता लाड वेलेजली के लिए भयानक तथा अन्तिम प्रहार सिद्ध

---

१३ 'होलकर कैफियत' के पृ० १०२ पर इस सघष का विशद वणन है। जान-शिप भी देखो।

हुई । अपनी चमत्कारिक सफलता होते हुए भी अन्तिम पराजय अनिवाय समझकर भरतपुर के राजा ने शान्ति की शर्तें जानने के लिए प्रतिनिधि भेजा।" एक दैनिक वत्तकार कहता है—"राजा के वकील का लाड लेक ने अपने शिविर मे स्वागत किया तथा जिन शर्तों का प्रस्ताव किया गया, उनसे अनुमान होता हे कि शाति निश्चित हो जायेगी । आशा थी कि इतने रक्तपात तथा अनेक वीर अधिकारियो एव सैनिको की क्षति के बाद उस स्थान के सम्पूण समपण की माग रखी जायेगी । परन्तु हमारी स्थिति यह हे कि मार करने वाली सभी तोपे बेकार हो गयी है और भारी गोलिया पूणत समाप्त हो गयी है । हमारे लगभग एक-तिहाई अधिकारी तथा सैनिक मार डाले गये तथा घायल हो गये है । इन सब विपत्तियो के होते हुए भी हमे अपना उद्देश्य अर्थात शान्ति प्राप्त करना अभीष्ट है । शिन्दे की प्रगतियो के समाचारो से लाड लेक को राजा के साथ सम्मानपूवक मेल करने के लिए और भी प्रेरणा मिली । भरत-पुर मे हमारी असफलताओ तथा हमारी सेना की क्षीण दशा का समाचार पाकर शिन्दे ने सन्धि को तोडकर हमारे विरुद्ध सघ मे सम्मिलित होने का यही उपयुक्त अवसर समझा । वह विशाल सेना तथा १८० तोपे लेकर हमारी ओर बढा । उसने हमारे विरुद्ध युद्ध की घोषणा नही की थी, परन्तु हमे रणक्षेत्र का त्याग करने से पहले अधिक रक्तपात की आशका करनी चाहिए । सैनिक का दु खपूण भाग्य तथा गौरव कुछ इसी प्रकार का है ।"[१४]

१० अप्रैल को राजा के साथ पृथक सन्धि कर ली गयी । वह अग्रेजो को व्यय के निमित्त धीरे-धीरे २० लाख रुपये देने के लिए सहमत हो गया तथा अग्रेज राजा के पास युद्ध के पहिले का समस्त राज्य रहने देने के लिए राजी हो गये । इसके बाद होलकर अकेला रह गया । इसलिए उसे भगोडा बनना पडा ।

८ **सबलगढ की सभा—ब्रिटिश रेजीडेण्ट का अपमान**—जाट राजा को होलकर से पृथक करने मे सफल होने पर अग्रेज अपनी समस्त शक्ति होलकर के विरुद्ध प्रयोग कर सकते थे । सौभाग्य से एक पठान सैनिक मीरखॉ उसका निष्ठापूण अनुयायी बन गया । उसने कुछ समय तक होलकर के पतनोन्मुख भाग्य की रक्षा की । जब यशवन्तराव उत्तर मे व्यस्त था, तब दक्षिण मे उसके समस्त प्रदेशो—चन्दवाड, लासलगाम, ढोडप, गलना आदि—पर अग्रेजो ने

---

[१४] 'भारत मे युद्ध तथा क्रीडा', पृ० ३९२ । एक अधिकारी की दिनचर्या से उत्तर भारत मे लाड लेक के अभियान का १८०२ तथा १८०६ के बीच का चलता हुआ वणन दिया गया है ।

सितम्बर तथा अक्तूबर, १८०४ मे अधिकार कर लिया था। उसी समय बुन्देल-खण्ड मे भी उसके प्रदेशो की यही दशा हुई। यहा मीरखॉ तथा अम्बूजी इगले ने मिलकर पर्याप्त सफलता सहित अग्रेजो का प्रतिरोध किया।

इस व्याकुल देश मे शान्ति स्थापित होने के स्थान पर गवनर जनरल की अतिक्रमणशील तथा उग्र नीति और सहायक-मित्र-सन्धियो की योजना के अशुभ परिणाम प्रकट होने लगे। जब उसे अपने भाई आथर से कोई महायता नही मिली तब उसने माल्कम को व्यक्तिगत परामश के लिए बुलाया। उसने भी स्पष्ट असहमति प्रकट की, अत उसे दौलतराव शिन्दे का नियन्त्रण करने मे असमथ बताकर उसके रेजीडेण्ट पद से हटा दिया। शि दे इस समय व्याकुल था तथा ब्रिटिश सत्ता के दु खदायी जुए को हटा फेकने का प्रयत्न कर रहा था। शिन्दे बुरहानपुर से चलकर बुन्देलखण्ड की ओर बढा। उसका विचार होलकर का साथ देने तथा ब्रिटिश विरोधी सघ का सगठन करने का था। इस सकटपूर्ण समय तथा व्यापक अशान्ति का स्पष्ट प्रतिबिम्ब अध्ययन के लिए उपलब्ध विशाल इगलिश साहित्य मे देखा जा सकता है।[१५]

इस समय शिन्दे का मन दो विरोधी निष्ठाओ—ब्रिटिश सरकार के साथ मित्रता तथा मराठा राज्य के प्रति कतव्य—के बीच फॅसा हुआ था। उसकी आय के समस्त स्रोत समाप्त हो गये थे। अत वह अपनी विशाल सेना का व्यय सहन करने मे समथ नही रहा था। नवम्बर, १८०४ मे माल्कम के उत्तरा-धिकारी वेब का देहान्त हो गया तथा सहायक जेन्किन्स ने उस पद का भार ग्रहण कर लिया। उसे १८०५ के आरम्भिक मासो मे भरतपुर के युद्ध के परिणामस्वरूप उत्पन्न डावाडोल परिस्थिति का सामना करना कठिन काय प्रतीत हुआ। अम्बूजी इगले अपनी नवीन मैत्री का स्पष्ट खण्डन करके मराठा पक्ष मे सम्मिलित हो गया। उसको इस समय दुष्टबुद्धि शर्जाराव घाटगे की ओर से कुछ समर्थन मिल गया था। जब रेजीडेण्ट का शिविर सागर मे लगा हुआ था तो उस पर शिन्दे के पिण्डारियो ने धावा बोल दिया। इसने घाव पर नमक का काम किया। लाड लेक तथा माल्कम किसी भी प्रकार भरतपुर के विरुद्ध युद्ध समाप्त करने तथा जाट राजा को होलकर के दुष्ट प्रभाव से पृथक करने मे सफल हो गये। होलकर अपनी ६० हजार विशाल सेना सहित

---

[१५] देखो, काये कृत 'माल्कम की जीवनी तथा उसका पत्र-व्यवहार' दोनो वेलेजली बन्धुओ के पत्रो के साथ तथा १८ अक्तूबर, १८०४ का लिखा हुआ गवनर जनरल के नाम शिन्दे का पत्र जो मिल के इतिहास, जिल्द ६, पृष्ठ ५०२ पर उद्धृत है।

सबलगढ मे शिन्दे के साथ हो गया। तब यहा नवीन ब्रिटिश सफलताओ को समाप्त करने के लिए उपाय सगठित करने के उद्देश्य से मराठा जाति के उत्तम विचारको तथा योद्धाओ का विशाल सम्मेलन हुआ। सतारा के छत्रपति का साहसी बन्धु चतरसिह भी प्रतिनिधि रूप मे वहा पर उपस्थित था। इसी अवसर पर किसी समय ब्रिटिश रेजीडेण्ट जेन्किन्स ने क्रुद्ध होकर धमकी दे डाली। इसका फल उसे कारावास के रूप मे भुगतना पडा। शिन्दे के अग-रक्षको ने जून से सितम्बर तक चार महीने उसे मराठा शिविर मे बन्दी रूप मे रखा। होलकर अपना उत्साह शिन्दे मे नही फूक सका। "उसकी निबलता, अकमण्यता, स्वाभाविक गौरवहीनता तथा विषयाशक्ति" के कारण उसके व्यक्तिगत हितो के साथ राष्ट्र हित का भी नाश हो गया। लाड वेलेजली वापस बुला लिया गया तथा लाड कानवालिस भारतीय घटना स्थल पर पहुँच गया।[१६]

९ **वेलेजली का वापस बुलाया जाना—नीति परिवतन**—वेलेजली ने अधीन-सहायक सन्धियो की प्रथा भारत के आकुल प्रदेशो मे ब्रिटिश आधिपत्य के अधीन शान्ति तथा व्यवस्था स्थापित करने के विचार से आरम्भ की थी। मुगल सम्राट की छत्रछाया मे अधिपति शासक के जिस स्थान का निर्माण मराठो ने लगभग ५० वर्षों तक कर रखा था, वह महादजी शिन्दे तथा नाना फडनिस की मृत्यु के बाद नष्ट-भ्रष्ट हो गया। इस व्यवस्था पर अन्तिम प्रहार उस समय हुआ, जब स्वय पेशवा ने बसई की सधि द्वारा ब्रिटिश रक्षा स्वीकार कर ली। लाड वेलेजली ने मराठा विलयन की प्रक्रिया को सहायता दी, परन्तु उसने इसे अत्यन्त शीघ्रतापूवक उपस्थित करने का प्रयत्न किया। सावधान बुद्धिमान मराठो को पहले ही मालूम हो गया था कि मराठा राज्य अधिक नही टिक सकता, क्योकि अपनी ही स्पष्ट त्रुटियो के कारण उसका शीघ्र पतन हो जायेगा। लाड वेलेजली ने स्वय १८ जुलाई, १८०४ के अपने लम्बे पत्र मे प्राप्त लाभो का गम्भीरतापूवक सक्षिप्त वणन किया है। उसने साधिकार कहा कि मैने भारत मे आन्तरिक युद्ध के कारणो पर नियन्त्रण प्राप्त

---

[१६] लाड वेलेजली के युग-प्रवतक चरित्र के अध्ययन के लिए विशाल साहित्य विद्यमान है—उदाहरणाथ उसके अपने पत्र, उसके भाई आथर के पत्र, माल्कम कृत 'भारत का राजनीतिक इतिहास', जिल्द १ और, २, काये कृत 'माल्कम की जीवनी', जिल्द १ तथा २, थान कृत 'मराठा युद्ध', 'भारत मे युद्ध तथा क्रीडा', पी० ई० राबटस कृत 'वेलेजली के अधीन भारत', तथा पी० आर० पत्र-व्यवहार के अनेक खण्ड।

कर लिया है जो अनेक वर्षो से भारत के अनेक उवर प्रान्तो को जनहीन कर रहे थे । पी० ई० राबट्स कहता है—"इन साधिकार उक्तियो से लगभग जानबूझकर किया गया अज्ञान प्रकट होता हे । वेलेजली समझ बैठा था कि भारतीय शासक सवथा इससे सहमत है एव उनका भविष्य सुरक्षित हे । सत्य यह हे कि मराठा सरदारो के हृदय मे दूसरो को लूटने और नष्ट करने की शक्ति छिन जाने की तुलना मे सभी सम्भव लाभ हेय थे । वेलेजली की योजनाओ तथा उपायो से इगलिश मन्त्रिमण्डल का भय जाग्रत हो उठा ।"

"लाड वेलेजली गृहमन्त्रालय के अधिकारियो की सवथा अवहेलना करता हुआ दक्षिण से उत्तर तक युद्धो मे व्यस्त रहा तथा उसने क्रमश अनेक शासको की शक्ति नष्ट कर दी । उसने एक महान क्रान्ति करके कम्पनी को महान मुगल की गद्दी पर बैठा दिया तथा भारत के आधे भाग पर प्रत्यक्ष रूप से शासन करने एव शेष आधे भाग पर नियन्त्रण रखने की उत्तरदायित्वपूर्ण स्थिति मे पहुँचा दिया । बोड ऑव कन्ट्रोल के प्रेसीडेन्ट (नियन्त्रण समिति के अध्यक्ष) तथा उसके मित्र लाड कासिलरा को भी अग्रेजो द्वारा नवविजित प्रदेशो की विशालता तथा अवश्यम्भावी विनाशक परिणामो के विषय मे भय हो गया । होलकर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा से वेलेजली के पापा का घडा भर गया तथा मोन्सन के विपत्तिपूण प्रत्यागमन के समाचार से लगभग भय की भावना उत्पन्न हो गयी । लाड कानवालिस के भारत आने तथा १७९३ मे उसकी वापसी पर भारतीय राजनीति की जो दशा थी, उसे पुन वापस लाने के लिए विनय की गयी । इगलैण्ड वापस होने पर भी वेलेजली निर्देशको की निन्दा से न बच सका । २२ मई, १८०६ को पार्लामेण्ट मे प्रस्ताव पेश हुआ, जिसमे "मार्क्विस वेलेजली द्वारा अवध के नवाबो पर किये गये जुर्मो तथा अत्याचारो के सम्बन्ध मे आरोप की धाराए भी थी । ससद को विश्वास दिलाया गया कि लाड वेलेजली ने भारत भूमि पर पैर रखने के अपने अशुभ दिन से लेकर वहाँ से विदा होने के दिन तक नित्य अपहरणशीलता, अत्याचार, निदयता तथा छलकपट का दृश्य उपस्थित रखा, जिसके कारण विवश होकर समस्त देश विद्रोह की दशा मे पहुँच गया ।" सौभाग्यवश ससद ने इस विषय को त्याग दिया । कम्पनी के निर्देशको तथा मालिको की सभा ने लाड वेलेजली की नीति की निन्दा की, क्योकि "उसने विजय योजनाओ तथा साम्राज्य प्रसार मे सावजनिक धन विपुल मात्रा मे व्यय कर दिया था ।"[१७]

---

[१७] माशमैन, जिल्द २, पृ० १८२

प्रधानमन्त्री पिट ने स्पष्ट कहा कि भारत के प्रत्येक रोग का एकमात्र चिकित्सक लाड कानवालिस है। कानवालिस से अनुनय-विनय की गयी कि अपनी इच्छा के विरुद्ध तथा स्वास्थ्य की बिगडी हुई दशा मे भी वह यह काय स्वीकार कर ले। वह ३० जुलाई, १८०५ को भारत पहुँचा तथा उसी दिन शासनभार ग्रहण कर लिया। इगलैण्ड के अधिकारियो से वह वतमान व्यवस्था को आमूल बदल देने की प्रतिज्ञा करके चला था। उसने कहा कि भारतीय शासको के विषय मे मेरा मूल उद्देश्य इस भावना को दूर करना होगा कि अग्रेजो की व्यवस्थित योजना भारत के प्रत्येक शासक पर अपना नियन्त्रण स्थापित करने की हे। यह भावना समस्त भारत मे फैली हुई थी। यह काय सिद्ध करने के लिए वह युद्ध भूमि को चल दिया। वह सम्मान को बिना त्यागे शान्तिपूण वार्तालाप द्वारा होलकर के विरुद्ध युद्ध समाप्त कर देना चाहता था।

कानवालिस ने देखा कि आर्थिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। लाड लेक की सेना को ५ महीनो से वेतन नही मिला था। इस धनाभाव को दूर करने के लिए चीन भेजे जा रहे नकद धन से २५ लाख रुपये ले लिये गये।

लाड वेलेजली द्वारा स्थापित मित्रताओ से नवीन समस्याएँ उत्पन्न हो गयी थी। पेशवा सदृश शासको ने ब्रिटिश रक्षा का आश्वासन पाकर सामयिक प्रशासन के प्रति समस्त चिन्ता त्याग दी थी तथा उन्हे केवल व्यक्तिगत विश्राम और भोग विलास की इच्छा रह गयी थी। प्रशासन सम्बन्धी दोषो को हटाने तथा नागरिक उपद्रवो के दमन का उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार पर आ पडा था। ब्रिटिश रक्षा के कारण पेशवा तथा निजाम दोनो का प्रशासन दोषग्रस्त हो चला था। दौलतराव, बाजीराव, निजाम तथा अवध का नवाब वजीर वेलेजली की पद्धति से उत्पन्न कुशासन तथा अत्याचार के ज्वलन्त उदाहरण बन गये थे। इनके कारण बुराइयो को प्रोत्साहन मिल रहा था तथा भलाइयो का ह्रास हो रहा था। मुनरो ने भारतीय शासको के पास सहायक सेना रखने की नीति की कठोर आलोचना की। "इस प्रकार की सेना रखने के विरुद्ध अनेक महत्त्वपूण आपत्तिया है। इसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति यह होती है कि इस प्रकार की सेना रखने वाले प्रदेश का शासन निबल तथा शोषक हो जाता है, समाज के उच्च वर्गो मे सम्मान की भावना नष्ट हो जाती है तथा समस्त जनता पतित और दरिद्र हो जाती है। ब्रिटिश सेना की उपस्थिति से शासक अकमण्य हो जाता है, क्योकि इस उपस्थिति से उसे अपनी रक्षा के लिए अपरिचित व्यक्तियो पर विश्वास करने की शिक्षा मिलती है। इस पद्धति के कारण शासक को अपनी प्रजा की घृणा का कोई भय नही रह

जाता, इसलिए वह लोभी तथा निष्ठुर हो जाता है। जहा इस पद्धति का प्रवेश हो जायेगा, वहा पतनोन्मुख ग्रामो तथा घटती हुई जनसख्या के लक्षण शीघ्र ही प्रकट हो जायेगे। अत मै निस्सन्देह कह सकता हूँ कि सहायक पद्वति अपने द्वारा सुरक्षित प्रत्येक शासन को नष्ट कर देगी। ब्रिटिश रक्षा के लाभो का मूल्य अत्यन्त भयकर है। इसका क्रय-मूल्य हे—स्वाधीनता, राष्ट्रीय चरित्र तथा राष्ट्र को आदरणीय बनाने वाली प्रत्येक वस्तु का बलिदान। वहा के निवासी केवल पशुओ की भॉति शान्तिपूवक जीवन व्यतीत करने के अतिरिक्त और कोई आकाक्षा नही कर सकते। उनमे से एक व्यक्ति भी अपने देश की विधान मभा मे या नागरिक और सैनिक शासन मे कोई भाग लेने की आशा नही कर सकता। जिन व्यक्तियो को किसी राजस्व या न्याय कार्यालय मे तुच्छ पद के अतिरिक्त कोई अन्य स्थान प्राप्त हो सकने की आशा नही है, उनसे उत्तम चरित्र की कोई अपेक्षा नही की जा सकती। अत ब्रिटिश अस्त्रो द्वारा भारत विजय का परिणाम समस्त राष्ट्र की उन्नति के स्थान पर उसका पतन होगा। हम यह अपेक्षा नही कर सकते कि विदेशी प्रभुत्वाधीन राष्ट्र मे स्वतन्त्र राष्ट्र के समान आत्मसम्मान तथा उच्च आदश मिलेगे। समस्त राष्ट्र का चरित्र पतित कर देना केवल अनुदारता ही नही हे, बुद्धि-विरुद्ध काय भी हे।"[१८]

वेलेजली के चरित्र से सम्बन्धित यह समस्त वादविवाद अब इतिहास को अर्पित हो चुका है, परन्तु हम पी० ई० राबट्स के निणय को अविलम्ब स्वीकार कर सकते है। वह यह कहता है—"मुझको अपना यह सुविचारित दृढ विश्वास अवश्य लिख देना चाहिए कि वेलेजली आश्चर्यकारी कुशलता तथा भव्य क्षमता युक्त प्रशासक था। अन्त मे उसके देशवासियो को मालूम हो गया कि उन्होने एक महान शासक को जन्म दिया जो अपने विचित्र काय क्षेत्र मे नियति द्वारा निश्चित समय पर कर्तव्य पालन कर सका।"

लाड कार्नवालिस आते ही अविलम्ब उत्तरी प्रान्तो को चल पडा। ५ अक्तूबर को गाजीपुर मे उसका देहान्त हो गया। उसके बाद शासन का भार कौसिल (सभा) के ज्येष्ठ सदस्य सर जाज बार्लो को सँभालना पडा। उसने निष्ठा तथा कठोरतापूवक उन समस्त उपायो को कार्यान्वित किया, जिनकी रूपरेखा भूतपूव गवनर जनरल ने तैयार की थी। माल्कम तथा लेक इन उपायो को कार्यान्वित करने के लिए घटनास्थल पर उपस्थित थे। उनके

[१८] ग्लीन कृत 'सर टामस मुनरो की जीवनी', प्रथम सस्करण, जिल्द १, पृ० ४६०

विचार मे अत्यन्त महत्त्वपूण काय किसी भी सुविधा से यह प्रकट न होने देना था कि वह बलपूर्वक प्राप्त की गयी है, क्योकि अधिक समय तक युद्ध जारी रखने मे वे असमथ थे। लाड लेक केवल सैनिक था—इस उत्तरदायित्व का मुख्य भाग माल्कम पर आ पडा, लेक अपने वग के पक्षपातो से मुक्त न था। वह स्पष्ट वक्ता था, उसकी प्रकृति ऋजु तथा सरल थी और वह पूर्ण रूप से सम्मानित व्यक्ति था। वह असैनिको तथा क्लर्कों का पर्याप्त अपमान करता था। उसने शिविर की भाषा मे अत्यन्त स्पष्टता से 'लिखना छोडो, लडने पर ध्यान दो'[१६] का नारा लगाया। माल्कम ने लाड लेक के नाम से शिन्दे को एक उग्र पत्र लिखकर रेजीडेण्ट जेकिन्स को अविलम्ब मुक्त करने की माँग की। अवज्ञा की दशा मे युद्ध की धमकी भी दी गयी। इस प्रकार के पत्र से शिन्दे की आशाएँ तथा भय जाग्रत हो उठे। उसकी ग्वालियर तथा गोहद पर अधिकार प्राप्त करने की इच्छा समाप्त हो गयी। शर्जाराव निकाल दिया गया, तथा बहुत पहले अवकाश प्राप्त मुशी कमलनयन को ब्रिटिश सरकार तथा शिन्दे के दरबारो के बीच पत्र-व्यवहार का साधन बनने का निमन्त्रण दिया गया। वह शिन्दे का एकमात्र परामशदाता बन गया तथा उसने चुपचाप माल्कम की समस्त इच्छाओ को पूरा कर दिखाया। जेकिन्स १३ सितम्बर को मुक्त कर दिया गया तथा अब शिन्दे ने अपने को अन्तिम रूप से होलकर से अलग कर लिया। यह काय १२ नवम्बर की नवीन सन्धि द्वारा निश्चित किया गया। इसे मुस्तफापुर की सन्धि कहा जाता है। इस पर मुशी के हस्ताक्षर थे। यह मुशी उत्तर भारत का ब्राह्मण था। जब उसको स्थायी जागीर के रूप मे पर्याप्त पुरस्कार दिया गया तो वह माल्कम के हाथ की कठपुतली बन गया। इस जागीर का उपभोग उसका परिवार अब तक करता रहा है। उसको मराठो की कामनाओ या राष्ट्रीय हितो के प्रति कोई चिन्ता नही थी। इस सन्धि-पत्र से रक्षा तथा आक्रमण के शब्द जानबूझकर निकाल दिये गये, जिससे शिन्दे युद्ध के पहले के समान अपने स्वतन्त्र शासक होने का विश्वास कर सके। इस नवीन सन्धि से सुरजी अजनगाँव की सन्धि की मुख्य धाराएँ पुष्ट कर दी गयी, चम्बल को दोनो राज्यो की सीमा निश्चित किया गया। स्वय शिन्दे के लिए ४ लाख रुपये नकद का वार्षिक भत्ता स्वीकार किया गया तथा उसकी पत्नी बैजाबाई और पुत्री प्रत्येक को २ लाख रुपये वार्षिक के हिसाब से भत्ता दिया गया। ब्रिटिश सरकार ने उदयपुर, जोधपुर,

---

[१६] काये, जिल्द १, पृ० ३४३

कोटा, मालवा और मेवाल मे अन्य राजपूत राजाओ के साथ अपनी नवीन मैत्री त्याग दी। उसने शिन्दे के सहायक शासको के साथ कोई सन्धि और ताप्ती तथा चम्बल के बीच शिन्दे द्वारा होलकर से छीने गये प्रदेशो मे कोई हस्तक्षेप न करने की प्रतिज्ञा की। एक विशेष धारा इस आशय की भी रखी गयी कि शिन्दे अपनी सेवा या मन्त्रणाओ मे शर्जाराव को कभी स्थान न देने की प्रतिज्ञा करता है। अन्तिम शत का सम्मान अस्वीकृति द्वारा किया गया।

१७ **यशवन्तराव होलकर का अन्त**—इस प्रकार कातर हृदय शिन्दे ने इगलिश विरोधी सघ की रचना रूपी साहसिक योजना मे यशवन्तराव होलकर का साथ पुन त्याग दिया। वह सबलगढ मे शिन्दे का शिविर छोडकर अजमेर की ओर चल दिया। वहाँ उसने जोधपुर के राजा से अपना साथ देने के लिए व्यथ प्राथना की। इस पर वह दिल्ली के उत्तर मे पटियाला की ओर बढा, क्योकि उसे सिख तथा अफगान लोगो से सहायता मिलने की आशा थी। लार्ड लेक निकट से उसके पीछे लगा रहा। इस समय प्रथम बार ब्रिटिश सेना ने सतलज को पार किया तथा व्यास नदी पर अपना शिविर लगाया। २६ नवम्बर, १८०५ को होलकर अपने चचेरे भाई को लिखता है—"मै पटियाला तथा अन्य स्थानो के सिख शासको से मिल चुका हूँ। वे अग्रेजो का प्रतिरोध करने मे मेरी योजनाओ का साथ देने के लिए तैयार हैं। मुझे लाहौर के रणजीतसिह तथा अफगानिस्तान के शाह के भी मैत्रीपूण पत्र प्राप्त हुए है। अधिक साधन एकत्र करने के लिए मैं १३ को सतलज नदी पार करके अमृतसर और लाहौर के निकट पहुँच गया। सिखो का समथन प्राप्त हो जाने की मुझे पूरी आशा है। शिन्दे द्वारा सघ के त्याग से महान हानि हुई है। वह अस्थायी एव स्वाथपूण लाभ का शिकार हो गया और उसने राज्य का नाश कर दिया है। मुझे अब भी अपहृत स्थिति पुन प्राप्त कर लेने की आशा है।"[२०]

स्पष्ट है कि यशवन्तराव को भारी भ्रम था। व्यक्तिगत वीरता चाहे जितनी उच्च क्यो न हो, ब्रिटिश सदृश सगठित शक्ति की तुलना नही कर सकती। रणजीतसिह वेश बदल कर ब्रिटिश शिविर को देखने गया तथा उसने लाड लेक और माल्कम के साथ समझौता करना निश्चित कर लिया। उसने समझौते मे होलकर का समथन न करने की प्रतिज्ञा की। अपने समर्थको के प्रबल परामश से यशवन्त ने सघष त्याग दिया तथा युद्ध समाप्त करने के लिए ब्रिटिश प्रस्ताव स्वीकार कर लिये। दो ब्रिटिश प्रतिनिधि उसके शिविर मे

---

२० 'होलकर राज्य', मराठी जिल्द २, न० ७२

उससे मिले। वही २४ दिसम्बर को सन्धि निश्चित हो गयी। इसे राजघाट की सन्धि कहते है। होलकर ने चम्बल नदी के उत्तर-पश्चिम मे समस्त प्रदेशो पर अपना अधिकार त्याग दिया तथा अग्रेजो ने उस नदी के दक्षिण-पूव मे उसके अधिकृत प्रदेशो पर उसका अधिकार बना रहने देने का आश्वासन दिया। नमदा के दक्षिण मे भी होलकर के प्रदेश वापस दे दिये गये।

सन्धि निश्चित हो जाने के बाद होलकर लौट आया तथा राजस्थान होकर जाते हुए उसने जयपुर के राजा से बलपूवक १८ लाख रुपये वसूल कर लिये। उसने अन्य स्थानो से भी इसी प्रकार रुपये वसूल किये। "मैने अपने पूवजो के राज्य की रक्षा करली, यह कहता हुआ वह विजयोल्लास से इन्दौर पहुँचा। यशवन्तराव के उपायो के विषय मे चाहे जो कुछ कहा जाये, परन्तु इससे इनकार नही किया जा सकता कि उसका उदय शून्य से हुआ। वह सत्ता पा गया तथा उसकी उन्नति के कारण उसकी व्यक्तिगत वीरता और साहसपूण कम थे। वह उदाहरणीय अन्तिम मराठा योधा था, जिसने इतिहास मे अपना स्थान प्राप्त कर लिया। उसके गुणो तथा अवगुणो के विषय मे भिन्न-भिन्न सम्मतियो का होना सम्भव है। उसने नागपुर के व्यकोजी भोसले को १५ फरवरी १८०६ को लिखा—"विदेशियो ने मराठा राज्य को अपने चगुल मे दबा लिया था। ईश्वर जानता है कि उनके अतिक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए मै किस प्रकार गत ढाई वर्षों मे प्रत्येक वस्तु का बलिदान करता रहा हूँ। मैने दिन-रात बिना एक क्षण का विश्राम लिये युद्ध किया है। मैने दौलतराव शिन्दे से मिलकर स्पष्ट किया कि हम सबके लिए सम्मिलित होकर विदेशी प्रभुत्व समाप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु दौलतराव ने मुझे धोखा दिया। पारस्परिक सहयोग तथा सद्भावना से ही हमारे पूवज मराठा राज्य के निर्माण मे समथ हो सके थे। परन्तु अब हम स्वार्थी हो गये है। आपने मुझको लिखा है कि आप मेरी सहायतार्थ आ रहे है, परन्तु आपने भी अपनी प्रतिज्ञा का पालन नही किया। यदि आप योजनानुसार बगाल मे बढ आते तो हम ब्रिटिश सरकार को निश्चेष्ट कर सकते थे। परन्तु अब भूतकालीन विषयो पर बात करना व्यथ है। जब मैंने देखा कि सब लोगो ने मेरा साथ छोड दिया है तो ब्रिटिश प्रतिनिधि द्वारा अपने पास लाया हुआ प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तथा युद्ध को समाप्त कर दिया।"[२१]

नीति परिवतन के परिणामस्वरूप जयपुर राज्य से ब्रिटिश रक्षा हटा ली

---

[२१] ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार, ३६४

गयी । अब शिन्दे तथा होलकर दोनो जयपुर के राजा से अपना बदला लेने के लिए स्वतन्त्र थे । इसके परिणामस्वरूप अग्रेजो पर ऐसे मित्र का परित्याग करने का अमिट कलक लग गया, जिसने सकट काल मे उनकी सहायता की थी । इसी कारण लाड लेक ने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया तथा वह इगलैण्ड वापस चला गया ।

इसके बाद यशवन्तराव होलकर की स्थिति भयानक हो गयी । उसके पास बहुत बडी सेना तो थी, परन्तु उसके निर्वाह के लिए धन नही था । उसमे नागरिक प्रशासन की योग्यता भी नही थी । उसकी अशान्त आत्मा शान्तिमय जीवन व्यतीत करना पसन्द नही कर सकती थी । प्रत्येक स्थान पर उसे पूण निराशा के दशन हुए । उसकी प्रकृति उग्र हो उठी तथा विरोध सहन करना उसकी शक्ति से बाहर की बात हो गयी । उसको मित्र तथा शत्रु का विवेक न रहा । 'शक्तिशाली तोपखाने द्वारा ही अग्रेज परास्त किये जा सकते हे', इस दृढ विश्वास के साथ उसने भानपुरा मे तोपो की एक निर्माणशाला स्थापित की तथा अत्यन्त गरमी मे भी वहॉ रात-दिन काम किया । इसका प्रभाव उसके दिमाग पर पडा । अक्तूबर १८०८ मे उस पर उन्माद का प्रकोप हुआ । इसका कारण सम्भवत उसके भतीजे खॉडेराव की मृत्यु का दु ख भी था तथा मदिरा का अत्यधिक सेवन भी । वह तीन वष तक इस दशा मे रहा तथा भानपुरा मे २८ अक्तूबर १८११ को ३० वप की आयु मे उसका देहान्त हो गया । उसकी आयु दौलतराव शिन्दे की आयु के लगभग समान थी । उसके कई पत्नियॉ थी, जिनमे से भावी इतिहास मे तुलसीबाई का स्थान रहा । उसका ९ वर्ष का अल्पकालीन चरित्र साहसी घटनाओ से परिपूण है । वह कई बार बाल-बाल बचकर निकल भागी । उसके आदमी उससे प्रेम भी करते थे तथा भय भी खाते थे । उसका क्रोध नियन्त्रण योग्य नही था । आरम्भिक जीवन मे उसकी एक ऑख जाती रही थी । थान ने इस विचित्र व्यक्ति का उत्तम रेखाचित्र दिया है । उसने बहुत दिनो तक शिन्दे को अत्यन्त समीप से देखा था ।[२२]

अपने राजनीतिक जीवन के आरम्भ मे कई वर्षों तक यशवन्तराव ने अपने भतीजे खाडेराव के नाम से काय किया, परन्तु शनै शनै यह दुराव कष्टदायक हो गया । १८०५ मे वह स्वय होलकर राज्य के प्रभु के रूप मे प्रकट हो गया । उसके भतीजे खॉडेराव की मृत्यु कोटा के समीप शाहपुर मे हैजा के कारण १० वर्ष की आयु मे ३ फरवरी, १८०६ को हो गयी । यशवन्तराव का बडा

---

[२२] 'भारत मे लार्ड लेक द्वारा युद्ध के सस्मरण', पृ० ४९७-९८

भाई काशीराव १८०८ मे बीजागढ के समीप एक युद्ध मे मार डाला गया। कहा जाता है कि इन दोनो मृत्युओ का कारण स्वय यशवन्तराव था, परन्तु प्रमाण द्वारा यह बात सिद्ध नही होती। यशवन्तराव के अपनी पत्नी सरबाई से मल्हारराव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह दस वष की आयु मे अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ। यशवन्तराव की मृत्यु के बाद तुलसीबाई ने इसी मल्हारराव के नाम से प्रशासन का सचालन किया। २० दिसम्बर, १८१७ को महीदपुर के शिविर मे उसकी हत्या कर दी गयी।

अध्याय १५

तिथिक्रम

१६ दिसम्बर, १७९३	गोविन्दराव गायकवाड का रावजी अप्पाजी तथा गगाधर शास्त्री के साथ पूना से बडौदा को प्रस्थान।
९ सितम्बर, १८००	गोविन्दराव गायकवाड की मृत्यु ।
२० जनवरी, १८०२	मेजर वाकर का रेजीडेण्ट के रूप मे बडौदा मे आगमन।
६ जून, १८०२	आनन्दराव गायकवाड का विशेष सन्धि द्वारा ब्रिटिश रक्षा स्वीकार करना ।
२६ जुलाई, १८०२	शास्त्री द्वारा बडौदा रेजीडेन्सी कार्यालय मे सेवा स्वीकार ।
जुलाई, १८०२	रावजी अप्पाजी का देहान्त ।
२ अक्तूबर, १८०४	अहमदाबाद का क्षेत्र पेशवा द्वारा गायकवाडो को १० वर्ष के पटटे पर दिया जाता है ।
२७ माच, १८०६	प्रतिनिधि वसन्तगढ मे परास्त तथा घायल ।
१७ नवम्बर, १८०६	पेशवा द्वारा अपने भाई चिमनाजी को पृथक जागीर देना।
१७ नवम्बर, १८०६	बडौदा मे ऐजेन्सी कमीशन स्थापित ।
२६ फरवरी, १८०९	जलने के कारण चिमनाजी अप्पा की पत्नी का देहान्त ।
१८१०	मेजर वाकर का त्याग-पत्र। रिवेट कानक बडौदा मे रेजीडेण्ट नियुक्त ।
२५ मई, १८१०	खाँडेराव रस्ते द्वारा विष-पान ।
१० अक्तूबर, १८१०	बापू गोखले पेशवा की सेना का सेनापति नियुक्त ।
१८ फरवरी, १८११	एलिफस्टन द्वारा रेजीडेन्सी का भार ग्रहण ।
१८१२	पूना को दूतमण्डल के नेतृत्व के लिए गगाधर शास्त्री का नाम प्रस्तावित ।
२६ मई, १८१२	चिमनाजी अप्पा का द्वितीय विवाह ।
१९ जुलाई, १८१२	पण्ढरपुर की सन्धि—अपने जागीरदारो से पेशवा की कलह समाप्त ।

१ अक्तूबर, १८१२	कोल्हापुर के राजा के साथ पेशवा की सन्धि ।
फरवरी, १८१३	कर्नल फोड पेशवा द्वारा विशेष दल मे नियुक्त ।
मई, १८१३	शास्त्री बडौदा की सेवा मे मुतलिक नियुक्त ।
जनवरी, १८१४	शास्त्री का पूना मे आगमन ।
९ फरवरी, १८१४	शास्त्री की पेशवा से भेट ।
१७ जून, १८१४	रूपराम चौधरी की मृत्यु ।
२३ अक्तूबर, १८१४	अहमदाबाद का पट्टा समाप्त ।
२७ फरवरी, १८१५	खुर्शेदजी मोदी द्वारा आत्महत्या ।
१९ अप्रैल, १८१५	शास्त्री द्वारा अपने पुत्र का यज्ञोपवीत सस्कार ।
७ मई, १८१५	शास्त्री का पेशवा के साथ नासिक को जाना ।
जुलाई, १८१५	पेशवा तथा शास्त्री का नासिक से पण्ढरपुर जाना—एल्फिस्टन का एलौरा प्रस्थान ।
२० जुलाई, १८१५	पण्ढरपुर मे शास्त्री की हत्या ।
६ अगस्त, १८१५	एल्फिस्टन का पूना वापस आना ।
१९ सितम्बर, १८१५	त्रिम्बकजी डैगले का अग्रेजो द्वारा पकडा जाना ।
२६ सितम्बर, १८१५	डैगले थाना मे बन्दी ।

अध्याय १५

न्यायसगत प्रतिफल

(१८०६–१८१५)

१ बाजीराव के कष्ट ।

२ बाजीराव का अपने जागीरदारो से झगडा ।

३ बाजीराव का प्रशासन—सदाशिव मानकेश्वर, खाँडेराव रस्ते, खुर्शेद जी मोदी तथा त्रिम्बकजी डैगले ।

४ गायकवाड द्वारा सहायक सन्धि पर हस्ताक्षर ।

५ पेशवा और गायकवाड का विवाद, शास्त्री का मिशन ।

६ शास्त्री की हत्या ।

७ कष्ट का दूसरा दौर—त्रिम्बकजी का समपण ।

१ **बाजीराव के कष्ट**—बसई की सन्धि से शिवाजी महान द्वारा स्थापित मराठा स्वातन्त्र्य का अन्त हो गया । इस शोचनीय परिणाम के उत्तरदायी मुख्य रूप से बाजीराव तथा उसका मित्र दौलतराव शिन्दे है । दोनो १८१८ मे स्वातन्त्र्य के दुखदायी अन्त के समय जीवित थे तथा इसके बाद भी बहुत वर्षो तक जीवित रहे । बाजीराव की जीवनचर्या तथा प्रशासन का वितृस्त वणन पहिले हो चुका है । इस प्रकार की कुटिलता तथा दुष्टता का इतिहास मे शायद ही कोई अन्य उदाहरण हो । विभिन्न प्रकार के अनुभवो तथा उन्नति के पर्याप्त अवसर होते हुए भी बाजीराव ने कोई शिक्षा ग्रहण नही की और अपने दीघ शासनकाल मे वह कुछ भी नही भूला । अनेक भारतीय हितैषियो के अतिरिक्त फ्लोज, मॉल्कम तथा एल्फिस्टन ने उसे सदाचरण के माग पर लाने का यथाशक्ति प्रयास किया, परन्तु इससे पेशवा को कुछ भी लाभ नही हुआ । पूना रेजीडेन्सी के पत्र-व्यवहार के दीघकाय खण्डो मे इस मनुष्य के जीवन पर दुखद टीकाएँ है । ये शिन्दे के सम्बन्ध मे लिखे गये ब्राउटन के पत्रो के समान ही बाजीराव की कहानी प्रकट करते है । १८०३ से १८१८ तक बाजीराव के शेष शासनकाल के वष अनेक घटनाओ तथा परिस्थितियो से परिपूर्ण है । अब उनका वणन किया जायेगा ।

परम्परागत पद के अनुसार पेशवा को मराठा राज्य के समस्त सदस्यो पर अपना नियन्त्रण रखने का अधिकार था। स्वय बाजीराव को बमई की सन्धि निश्चित करते समय यह ध्यान नही था कि म उस पद का त्याग कर रहा हूँ। ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियो ने इस बात को शायद जानबूझकर अस्पष्ट छोड दिया। उस समय मराठा राज्य के अन्य सदस्यो के प्रति पेशवा की स्थिति जाननी आवश्यक नही थी। जैसे ही बाजीराव ब्रिटिश रक्षा मे अपनी राजधानी को वापस आया, वैसे ही उसको आशा हुई कि अग्रेज उसको मराठा राज्य के समस्त अगो पर अधिकार स्थापित करने मे सहायता देगे। शिन्दे तथा भोसले के विरुद्ध युद्ध उनकी पराजय मे समाप्त हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होने ब्रिटिश सरकार के साथ अलग-अलग सन्धियाँ करली और इस प्रकार पेशवा के नियन्त्रण से निकल गये। इसके बाद होलकर ने युद्ध आरम्भ किया तथा उन दोनो की तरह उसने भी पृथक सन्धि स्वीकार करली। बडौदा का गायकवाड पहिले ही मराठा सघ से पृथक हो गया था। अत इन चार मुख्य सदस्यो को मालूम हुआ कि वे पूव मराठा राज्य के सम्मिलित कार्यो से पृथक हो गये है। पेशवा के न्यायसगत क्षेत्र का विस्तार अब उत्तर मे खानदेश से लेकर दक्षिण मे तुगभद्रा नदी तक रह गया था। उस नदी के दक्षिण के प्रदेश टीपू की पराजय के बाद ही पेशवा के अधिकार से निकल चुके थे। इसी प्रकार इस समय पेशवा के पूर्वी तथा दक्षिण-पूर्वी प्रदेशो की सीमा कर्णाटक के भाग तथा हैदराबाद का राज्य थे। इस प्रकार पेशवा का राज्य सभी ओर से बहुत सकीण हो चुका था।

उक्त चारो मराठा सदस्यो के विरुद्ध तथा निजाम या बुन्देलखण्ड के शासको के समान किसी बाह्य शक्ति के विरुद्ध, यदि बाजीराव को अब कोई स्वत्व उपस्थित करना था तो वह इसे ब्रिटिश सरकार के पास निणयाथ भेजने के लिए बाध्य हो गया। अपने कार्यो के फलस्वरूप उपस्थित इस स्पष्ट सत्य को बाजीराव पहिले न समझ सका। वह इस विषय पर ब्रिटिश सरकार के साथ कई वर्षो तक निरन्तर व्यर्थ वादविवाद करता रहा। अन्त मे वह अग्रेजो का वशवर्ती बनने के लिए विवश कर दिया गया। उसे विदेशी शक्तियो के साथ सीधा व्यवहार करने या पहले अधीन शासको का नियन्त्रण रखने से रोक दिया गया।

आन्तरिक प्रशासन के विषय मे भी पेशवा अपने निकटतम अधीन सरदारो—पटवधन परिवार, रस्ते, पसे, पुरन्दरे तथा कुछ अन्य व्यक्तियो—पर बिना ब्रिटिश नियन्त्रण के अपने अधिकार का प्रयोग करने के लिए स्वतन्त्र नही था। प्रतिनिधि, कोल्हापुर का राजा तथा सावन्तवाडी का राजा कुछ ऐसे

व्यक्ति थे, जिनके साथ पेशवा के सम्बन्ध न्यूनाधिक अनिश्चित थे तथा उनको निश्चित करने मे समय लगा। बाजीराव ने अपनी परिस्थिति के सामने समपण करने के स्थान पर प्रत्येक मामले मे प्रधान सत्ता के निश्चय का विरोध किया। उसमे ब्रिटिश सरकार के प्रति अपनी शत्रुता स्पष्ट प्रकट करने का साहस नही था। अत बाह्य रूप से वह पूण सद्भावना दिखाता रहा, परन्तु उसके काय उसके शब्दो को प्राय असत्य सिद्ध कर देते थे। बसई की सन्धि से ५ नवम्बर १८१७ तक उसके १६ वष के शासनकाल का यही सक्षिप्त इतिहास है। अन्त मे उसने स्पष्ट युद्ध आरम्भ कर दिया जो उसके पूण नाश का कारण बना।

शासक या प्रधान मन्त्री को अपने प्रबन्ध के लिए साधनभूत व्यक्तियो की योग्यता को पहिचान कर अधिक से अधिक लाभ के निमित्त उनका उपयोग करना पडता है। शिवाजी तथा बाजीराव प्रथम मे यह नेतृत्व शक्ति थी, परन्तु बाजीराव प्रथम के पौत्र बाजीराव द्वितीय मे इस शक्ति का खटकने वाला अभाव था। विठोजी तथा यशवन्तराव होलकर या उनका उच्छृखल बडा भाई मल्हारराव, शर्जाराव घाटगे, फतेहसिह भाने, बालोजी कुजर, त्रिम्बकजी डैगले, बाबा फडके, बालाजीपन्त नाटू, चतरसिह भोसले, बलवन्तराव नागनाथ ढोडिया बाघ इन मबमे तथा पेशवा के कार्यों मे प्रमुख भाग लेने वाले अन्य व्यक्तियो मे कोई न कोई विशेष जन्मजात क्षमता थी। यदि उसका उचित उपयोग किया जाता तो राज्य को लाभ होता परन्तु उचित निर्देश के अभाव के कारण यह क्षमता नष्ट हो गयी तथा पेशवा का नाश हो गया। पेशवा के सन्देहपूर्ण तथा दुष्ट प्रबन्ध के कारण परिचारी वग या सवसाधारण व्यक्ति के लिए ईमानदारी से परिश्रम करना या सम्मानपूवक जीवन व्यतीत करना असम्भव हो गया। पेशवा को ब्रिटिश रेजीडेण्ट से नित्य अपने कल्पित अन्याय-कर्ताओ को दण्ड देने के लिए प्राथना करनी पडती थी। अब हम उसके दुष्ट प्रशासन के विस्तृत उदाहरण देते है।

औध का प्रतिनिधि क्रोधी स्वभाव तथा दुष्ट प्रकृति का व्यक्ति था। उसने अपनी माता से झगडा किया, अपनी विवाहिता पत्नियो के साथ दुव्यवहार किया तथा अपना समय एक नीच जाति की रखैल के साथ व्यतीत किया। यह इतिहास मे ताई तेलिन (तेल पेरने वाली) के नाम से प्रसिद्ध है। इसका प्रेमी (प्रतिनिधि) जब पेशवा से सघर्ष कर रहा था तो इसने उसकी वीरता पूवक सेवा की थी। पेशवा ने उसकी समस्त सम्पत्ति तथा भूमि का अपहरण करके अपने सरदार बापू गोखले को दे दिया था। इस पर प्रतिनिधि डाकू बन

गया तथा उसने पेशवा के पूना क्षेत्र को नष्ट कर दिया । बाजीराव ने बापू गोखले को विद्रोह का दमन करने की आज्ञा दी । प्रतिनिधि परास्त हो गया तथा पकडकर एक अप्रसिद्ध गढ मे बन्दी कर दिया गया । उसकी रखैल वीर ताई ने अनेक अनुयायी एकत्र करके उस गढ पर आक्रमण किया, जहा प्रतिनिधि बन्दी था । उसने प्रतिनिधि को मुक्त करके वमोटा के दुगम गढ मे अपने पैर जमा लिये तथा बापू गोखले एव उसकी सुसज्जित सेना का प्रतिरोध किया । प्रतिनिधि ने अब अपनी लूटमार की प्रवृत्ति पुन नवीन स्फूर्ति से अपना ली । प्रतिनिधि घोषणा करता फिरता था कि मै क्षत्रपति का सेवक हू, उसकी सत्ता का अपरहण करने वाले पेशवा का नही । बापू गोखले ने उस पर पुन आक्रमण किया । २७ माच १८०६ को करहाड के समीप वसन्तगढ के नीचे भयानक युद्ध हुआ, जिसमे प्रतिनिधि के कई घाव आये और एक भुजा जाती रही । वह पूना लाकर परिरोध मे डाल दिया गया । महिला ताई को परास्त करने, पकडने, तथा पूना मे बन्दी बनाने मे ८ महीने घोर सघष करना पडा ।

२ **बाजीराव का अपने जागीरदारो से झगडा**—यद्यपि बसइ की सन्धि से महाराष्ट्र के बाहर अपने अधिकृत प्रदेशो से बाजीराव का अधिकार जाता रहा था, परन्तु पूना मे स्थिरता प्राप्त कर लेने से इस क्षति की पूर्ति हो गयी थी । इस कारण उसने अभूतपूव विश्राम तथा समृद्धि का उपभोग आरम्भ कर दिया था । १८०५ के बाद दस वर्ष तक अग्रेजो से प्राप्त प्रबल रक्षा के कारण उसके राज्य मे पूण शान्ति रही । उसकी आय आशातीत रूप से बढ गयी । खाडेराव रस्ते तथा सदाशिव मानकेश्वर उसके मुख्य परामशदाता थे । इन्होने परिश्रमपूवक रेजीडेण्ट कनल क्लोज के साथ प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर लिया । कनल क्लोज विशालहृदय तथा उदार विचारो का मनुष्य था । उसका सम्बन्ध नम्र स्वभाव वाले गवनर जनरल लाड मिण्टो से था । मिण्टो ने वेलेजली के शासनकाल मे उत्पन्न कटुता दूर करने के लिए भारतीय शासको के प्रति मृदुतापूण नीति धारण कर रखी थी ।

कनल क्लोज जुलाई १८०९ मे हैदराबाद गया । उसने पूना वाले अपने पद का भार एल्फिस्टन के आने तक अस्थायी रूप से हेनरी रसल को दे दिया तथा १८ फरवरी १८११ को अपने पद का भार स्थायी रूप से ग्रहण कर लिया । अत बाजीराव को एल्फिस्टन के आने के बाद आरम्भ होने वाले कष्टो से पहले शान्ति, समृद्धि तथा उपभोग सहित उत्तम समय प्राप्त हो गया । वह धार्मिक क्रियाओ, तीर्थयात्राओ तथा सामाजिक समारोहो मे व्यस्त रहा । वह

साधारणत अपना समय पूना के समीप पाशन, कोठरूड, बडगॉव, फुलगाव आदि स्थानो पर विशेष रूप से बनवाये हुए आमोदगृहो मे व्यतीत करता था। धनसचय के साथ बाजीराव का लोभ भी बढता गया। १० अक्तूबर, १८१० को उसने बापू गोखले को अपनी सेना का मुख्य अधिकारी नियुक्त कर दिया।

बाजीराव के अधीन अनेक सरदार थे, जिन्हे राज्य की सेवा के निमित्त बडी-बडी सेनाएँ रखने के लिए बडी-बडी जागीरे मिली हुई थी। अब ब्रिटिश रक्षा मे होने के कारण पेशवा को इन जागीरदारो की सेवाओ की कोई आवश्यकता नही रह गयी। अत उसने इन जागीरो को घटाने का यत्न किया, जिससे उसकी आय बढ सके। पटवधन, रस्ते, पसे परिवारो के सरदार तथा निपानी के देसाई बडी बडी जागीरो का परम्परागत उपभोग करते थे। उनसे छुटकारा पाने का कोई सुलभ माग दिखाई न देने पर पेशवा ने उनको पीडित करना आरम्भ किया। इसके परिणामस्वरूप उन्होने अपने दुख निवारण के लिए रेजीडेण्ट से प्राथना की। कनल क्लोज ने स्थिति गम्भीर होने तक कोई उपाय नही किया। बाद मे रेजीडेन्सी मे एल्फिस्टन का आगमन हो गया। उसने एक वर्प तक परिस्थिति का अध्ययन किया, प्रमाण एकत्र किये, जागीरदारो के साथ व्यक्तिगत वार्तालाप किये तथा शान्तिपूण समझौते के लिए पेशवा की मध्यस्थता की। इन सरदारो मे अत्यन्त महत्त्वपूण तथा बहुसख्यक पटवधन लोग थे। उन्होने १८०३ के युद्ध से पहले आथर वेलेजली से ब्रिटिश रक्षा का आश्वासन प्राप्त कर लिया था। उन्होने गत कई वर्षो मे अनेक कारणो से पेशवा तथा कुछ छोटे सरदारो की भूमियो पर अधिकार करके अपनी जागीरे भी बढाली थी तथा उनको सुदृढ कर लिया था। पेशवा के साथ उनके सम्बन्ध इन दिनो मैत्रीपूण नही थे। इस समय बाजीराव ने उनके सामने अनेक भारी माँगे रखी तथा उन्हे आज्ञापालन के लिए बलपूवक विवश करने का यत्न किया। उन्होने पेशवा का प्रतिरोध किया, उसके प्रति विद्रोह कर दिया तथा यदि ब्रिटिश अस्त्रो ने उसकी रक्षा न की होती तो वे उसे पदच्युत करने मे सफल भी हो जाते। इस परिस्थिति मे बाजीराव ने जागीरदारो के दमन मे सहायक सेना का उपयोग करने के लिए रेजीडेण्ट से अनुमति प्राप्त करने की प्रार्थना की। एल्फिस्टन ने जागीरदारो का अस्तित्व मिटा देना उचित न समझा, क्योकि उनको अपनी जागीरो पर उतना ही अधिकार था जितना कि बाजीराव को अपनी रियासत पर। रेजीडेण्ट ने समझौते की योजना का प्रस्ताव किया और उसे अनुमोदन के लिए गवर्नर जनरल के पास भेज दिया। योजना

का अनुमोदन हो गया और वह स्वीकृति के लिए पेशवा के पास भेज दी गयी। पेशवा ने अपने आन्तरिक प्रशासन मे ब्रिटिश सरकार के हस्तक्षेप का प्रबल विरोध किया तथा जब तक हो सका वह प्रस्तावित समझौते का विरोध करता रहा। अन्त मे १८ जुलाई, १८१२ को पण्ढरपुर के स्थान पर पेशवा तथा उपस्थित सरदारो ने अत्यधिक दबाव के कारण इस निणय पर अपने हस्ताक्षर कर दिये। पण्ढरपुर के इस समझौते मे निम्न शर्ते है—

१ भूतकालीन हानियो को दोनो पक्ष भूल जाये।

२ पेशवा जागीरदारो की सनदो मे दी हुई या दीघकालीन व्यवहार द्वारा स्वीकृत मागो के बाहर उनसे कोई नवीन माग न करे।

३ जागीरदार अपनी अपनी सनदो मे निश्चित सैन्य सख्या सहित पेशवा की सेवा करे।

४ ब्रिटिश सरकार की अनुमति के बिना पेशवा उनकी जागीरो को जब्त न करे।

५ पेशवा जागीरदारो के साथ यथापूव आदरपूण विधि से व्यवहार करे।

६ जागीरदार पेशवा को वे समस्त भूमिया वापस दे दे, जिन पर उनका कोई परम्परागत अधिकार नही है।

७ ब्रिटिश सरकार ने जागीरदारो तथा उनके सम्बन्धियो की व्यक्तिगत रक्षा के लिए आश्वासन दिया।

८ असहमति की दशा मे दोनो पक्ष ब्रिटिश सरकार का निर्णय स्वीकार कर लेगे।

९ ब्रिटिश सरकार ने जागीरदारो के साथ पृथक सन्धि करने का अपना अधिकार सुरक्षित कर लिया।

बाजीराव ने दावा किया कि पहले कोल्हापुर तथा सावन्तवाडी के राजा उसके अधीन थे, परन्तु अब उसके आधिपत्य को स्वीकार नही करते। एक ओर ये दोनो राज्य तथा दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार पेशवा के लिए निरन्तर कष्ट का कारण सिद्ध हुए, क्योकि उनकी सापेक्ष स्थिति की स्पष्ट परिभाषा कभी नही की गयी। पहले पेशवा माधवराव प्रथम ने कोल्हापुर के साथ काम-चलाऊ समझौता कर लिया था जो बाजीराव द्वितीय के शासनकाल मे समाप्त हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि दक्षिण के जागीरदार तथा कोल्हापुर का राजा सदैव सघषरत रहने लगे। एल्फिस्टन ने इस प्रश्न को भी ले लिया तथा बम्बई की सरकार और पेशवा के साथ राजा की स्थिति स्पष्ट रूप से

निश्चित कर दी । राजा किसी माग का निश्चय करने मे असमथ था, अत उसने विलम्ब किया तथा समझौते को टालता रहा । आक्रमण की धमकी देने पर ही वह ब्रिटिश निणय को स्वीकार करने के लिए तैयार हुआ । एक सन्धि-पत्र तैयार किया गया तथा १ अक्तूबर, १८१२ को राजा ने इसको स्वीकार कर लिया । उसने मलवन का गढ अग्रेजो को समर्पित कर दिया ।

३ **बाजीराव का प्रशासन**—अधिकाश अन्य शासको के उदाहरण का अनुकरण करते हुए बाजीराव ने अपने पास अनुशासित पैदल दल के साथ छोटा सा तोपखाना भी रखना अपने विचार से आवश्यक समझा । इस प्रस्ताव पर उसने गवनर जनरल का अनुमोदन प्राप्त कर लिया तथा चीफ कमाण्डर पद के लिए उसने मेजर जोन फोड को निर्वाचित किया । यह पहिले पूना मे कैप्टिन के रूप मे काय कर चुका था और इसका सम्बन्ध कनल क्लोज के शासन काल मे रेजीडेन्सी से रह चुका था । इस नवीन दल की रचना फरवरी १८१३ मे हुई । इसमे अधिकाश उत्तर भारत के लोग तथा थोडे-से मराठे भी थे । उन सबने निष्ठापूवक बाजीराव की सेवा करने तथा भक्ति-भाव सहित उसकी आज्ञाओ का पालन करने की शपथ ग्रहण की । शान्तिकाल मे इस दल का वार्षिक व्यय साढे तीन लाख रुपये था, परन्तु युद्धकाल मे यह आवश्यकता-नुसार बढाया जा सकता था । फोड का मासिक वेतन २,५०० रुपये था । २४ धाराओ का सहमति-पत्र विधिपूवक तैयार किया गया और मेजर फोड ने इस पर अपने हस्ताक्षर कर दिये । साथ ही उसने अपने हाथ से यह बढा दिया—"मै अपनी समस्त सेना सहित पेशवा की सेवा निष्ठा तथा भक्तिपूवक करूँगा, जब कभी ओर जहाँ कही भी वह मुझे आज्ञा देगा । मै कम्पनी सरकार द्वारा उठायी गयी किसी आपत्ति की ओर ध्यान न दूगा । पेशवा के हित सम्बन्धी किसी विश्वास को मै भग न करूँगा तथा उसके विरुद्ध किसी राज नीतिक षडयन्त्र मे मै भाग नही लूगा ।" उस गम्भीर सहमति-पत्र मे ये शब्द स्पष्ट रूप से लिखे हुए है । अब मराठी मे इसका मुद्रण हो गया है । फोर्ड ने अपना वचन किस प्रकार भग किया, यह बाद मे ज्ञात हो जायेगा ।[१] इस समय बाजीराव ने गोसाई योधाओ की भी एक टुकडी भरती की, जिनका

---

[१] इतिहास सग्रह—सरजाम यादी—न० ३५, पृ० ६३-१०१ । इगलिश लेखको का यह कहना ठीक नही हैं कि फोड ने अपनी सहमति मे अग्रेजो के विरुद्ध कभी युद्ध न करने की विशेष शत रख दी थी । इस प्रकार उसने १८१७ मे युद्ध आरम्भ होने पर पेशवा का पक्ष-त्याग करके किसी प्रकार भी विश्वास भग नही किया ।

मुख्याज्ञापक मनोहरगिरि था। मनोहर का देहान्त १८१३ मे हो गया और उसके स्थान पर रूपराम चौधरी नियुक्त किया गया।

अपने राजस्व प्रशासन मे बाजीराव ने जिस भयकर बुराई को प्रवेश दे दिया, वह थी ठेकेदारी की प्रथा—अर्थात कर सग्रह के काय को ऊँची मे ऊँची बोली बोलने वाले को दे देना। यह उपाय उसने बहुत धन एकत्र करने तथा अपनी सेवा मे रहने वाले कृपापात्रो को अत्यन्त लाभप्रद काय दे देने के विचार से अपनाया था, जिमके लिए उनकी योग्यता या निपुणता का कोई विचार नही रहेगा। यह उपाय समस्त वर्गो—विशेषकर कृपको—के प्रति विनाशक सिद्ध हुआ। इसके कारण देश दरिद्र हो गया तथा उसकी दशा दयनीय हो गयी, क्योकि राजस्व के ठेकेदार अपने समय मे अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहते थे, और वे बिना दया के जनता को पीडित करते थे। बाजीराव की वार्षिक आय लगभग सवा करोड रुपये थी तथा इसमे से वह साधारण तौर पर कम से कम ५० लाख रुपये प्रतिवष बचा लेता था। उस समय धन लगाने के लिए लाभप्रद व्यापार नही थे। समयान्तर मे अग्रेजो से बाजीराव का सघष बढने लगा तथा शीघ्र ही या कुछ विलम्ब से युद्ध होने की सम्भावना दीखने लगी। उसके कृपापात्रो—खुर्शेदजी मोदी तथा त्रिम्बकजी डैगले—ने युद्ध के लिए उसे तैयार रहने का परामश दिया। शनै शनै वह अपने दलो को बढाने लगा। अक्तूबर, १८१४ मे बाजीराव बेलारी के समीप कार्तिक स्वामी के मन्दिर के दशन करने गया। इसके लिए उसने नवीन रक्षक दल नियुक्त किया। वापस आ जाने पर भी उसने यह दल भग नही किया।

अपने छोटे भाई चिमनाजी के साथ बाजीराव के सम्बन्ध मैत्रीपूण नही थे। उसे सदैव भय रहता था कि यह छोटा भाई मेरे विरुद्ध षडयन्त्र करेगा, अत उसको स्वतन्त्रता नही दी गयी। चिमनाजी की स्थिति राजभवन मे बन्दी की स्थिति से अच्छी नही थी। वह प्राय रुष्ट तथा सतप्त रहने लगा और उसने अपने लिए स्वत त्र निर्वाह वृत्ति की प्रार्थना की। इस चिन्ताजनक कलह को समाप्त करने के लिए कनल क्लोज मध्यस्थ बना। १७ नवम्बर, १८०६ को कनल क्लोज तथा दोनो भाइयो की एक सभा हुई। चिमनाजी ने कहा कि उसकी इच्छा प्रशासन मे कोई भाग लेने की नही है। इस पर बाजीराव ने चिमनाजी को २ लाख रुपये वार्षिक का निर्वाह वृत्ति दे दी। उस समय से वह पूना मे अलग रहने लगा, परन्तु बाजीराव पूववत सन्देह करने के कारण उस पर निगाह रखता रहा। चिमनाजी का विवाहित जीवन सुखी न था। उसकी पत्नी सीताबाई का देहान्त २६ फरवरी, १८०९ को हो गया।

सीताबाई की मृत्यु का कारण जलने का भारी घाव था। यह घाव ओकारेश्वर के मन्दिर मे दिया जलाते समय हो गया था। उसके बाद तीन वष तक उसने विवाह नही किया। उसका द्वितीय विवाह २० मई, १८१२ को हुआ। जब १८१७ मे बाजीराव ने अग्रेजो के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया तो वह अपने पलायन मे भाई को भी अपने साथ लेता गया।

निरन्तर नीचतापूर्ण षडयन्त्र तथा सचाई का सवथा अभाव बाजीराव के आचरण के सारभूत पैतृक गुण थे। ब्रिटिश सरकार तथा अपने अधीन व्यक्तियो और सेवको के प्रति उसका व्यवहार इसी प्रकार का था। वह सन्देह तथा विश्वासघात से पूण वातावरण मे अपना जीवन व्यतीत करता था। उसके अभिन्न मित्रो तथा निकटतम सेवको को भी कभी निश्चय नही होता था कि आगामी क्षण क्या होने वाला है। वह अपने समस्त स्वतन्त्र समय मे यथाशक्ति विषयभोग मे तल्लीन रहता था। वैसे जनसाधारण के समक्ष इस पर धार्मिक भक्ति का परदा पडा रहता था। षडयन्त्रो की रचना तथा गुप्तचरो की नियुक्ति उसके विशेष प्रिय विषय थे। विशेषकर तब, जब उसको रेजीडेन्सी के साथ व्यवहार करना होता था। जब पेशवा रेजीडेण्ट की प्रगतियो तथा योजनाओ के विषय मे गुप्त सूचना प्राप्त करने का प्रयत्न करता तो कनल फ्लोज उसकी नीच चालो की ओर कोई ध्यान नही देता था। एल्फिस्टन आया तो वह इस गुप्त तथा नीच आचरण पर क्रुद्ध हो गया। उसने समय आने पर इस परम्परा को समाप्त कर देने का निश्चय कर लिया। बाजीराव की सेवा मे विठोजी गायकवाड तथा बाजी नायक दो काय-कर्ता थे। वह इनसे रेजीडेन्सी को मौखिक सन्देश तथा पत्र ले जाने का काय लेता था।

खाँडेराव रस्ते तथा सदाशिव मानकेश्वर पेशवा के दो कार्यवाहक अधिकारी थे। वे सदैव उसके पास उपस्थित रहते थे। त्रिम्बकजी डैगले भी बाद मे इनमे सम्मिलित कर लिया गया। क्योकि बाजीराव का प्रशासन मुख्य रूप से इन व्यक्तियो पर निर्भर था, अत इनके पिछले जीवन और व्यक्तिगत चरित्र को जानना आवश्यक है।

सदाशिव मानकेश्वर पण्ढरपुर के समीप तेमभुरनी का निवासी था और धर्मोपदेशक का व्यवसाय करता था। इस कारण वह सुवक्ता तथा व्यवहार कुशल हो गया था। उसने बाजीराव का ध्यान आकृष्ट कर लिया तथा वह सदाशिव को अपने कुछ दूत मण्डलो मे स्थान देने लगा। उसके पास न कोई राजनीतिक दृष्टि थी और न कोई विशेष बुद्धि। कनल फ्लोज उसके विषय मे

इस प्रकार कहता है—"इस प्रकार के अत्याचारपूण पडयन्त्रो के सचालन के लिए बाजीराव सदाशिव मानकेश्वर से अधिक उपयुक्त कोई अन्य व्यक्ति नही खोज सकता था जो उसकी अपेक्षा पेशवा का पूण रूप से अधिक भक्त हो, षडयन्त्र मे निपुण हो तथा ब्रिटिश सरकार का भयानक शत्रु हो। इस प्रकार के मन्त्री के अधीन ससार का कोई शासन उन्नति नही कर सकता था।"[२]

खाडेराव रस्ते सवथा भिन्न प्रकार का व्यक्ति था। उसका मूल सम्बन्ध उसी रस्ते परिवार से था, जिसने बालाजीराव की पत्नी गोपिकाबाई को जन्म दिया था। उसको उत्तराधिकार के रूप मे कोई जागीर प्राप्त नही हुई थी। वह तो पेशवा के राजस्व विभाग का एक अधिकारी था। जब बाजीराव यशवन्तराव होलकर से हारकर पूना से पलायन कर रहा था, उस समय रस्ते कोकण जिले का सर सूबेदार था। रस्ते ने महाद मे पेशवा की अच्छी सेवा की तथा बसई जाने मे उसको स्नेहपूवक सहायता दी। उस समय से वह बाजीराव का कृपापात्र बन गया और बाद मे राज्य के अनेक महत्त्वपूण कार्यों पर नियुक्त किया गया। परन्तु सदाशिव मानकेश्वर को उससे हार्दिक घृणा थी, क्योकि जनता उसकी सत्यप्रियता तथा उत्साह की सदैव प्रशसा करती थी। बाजीराव अपने दोनो मन्त्रियो को कलहग्रस्त रखकर अपने दरबार के इन दो प्रसिद्ध व्यक्तियो द्वारा एक दूसरे पर लगाये गये दोषारोपणो का आनन्द लेना चाहता था। सहसा २५ मई, १८१० को खाडेराव की मृत्यु हो गयी। सम्भवत उसने आत्महत्या करली थी। उसकी मृत्यु की सूचना पाकर ब्रिटिश रेजीडेण्ट ने समाचार भेजा—"खाडेराव ने बाजीराव की दुर्दिनो मे विशेष सेवा की। परन्तु उसमे तथा सदाशिव मानकेश्वर मे राजनीतिक शत्रुता इस प्रकार बढ गयी थी कि पेशवा के लिए किसी न किसी को निकाल देना सवथा आवश्यक हो गया था। उसके प्रतिस्पर्धी (रस्ते) की अपेक्षा मानकेश्वर से पृथक होना अधिक कष्टसाध्य काय था। अत उसने खॉडेराव का बलिदान कर दिया। उसका चरित्र तथा उसके गुण मानकेश्वर के चरित्र तथा गुणो से इस प्रकार बढे-चढे हुए थे, एव उसने पेशवा की कृतज्ञता तथा प्रेम जाग्रत करने का इस प्रकार प्रयास किया था, कि दोनो के बीच निर्वाचन की आवश्यकता पडने पर पेशवा को खॉडेराव को श्रेष्ठता देनी चाहिए थी। परन्तु व्यक्तिगत तथा गुप्त विचार का प्रभाव पेशवा की पसन्द पर अधिक पडा। राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के सभी पहलुओ मे खाँडेराव की अपेक्षा मानकेश्वर चाहे जितना

---

[२] पूना रेजीडेन्सी कॉरस्पौण्डेन्स, जिल्द ८, पृ० ८ तथा १६०

ही हेय क्यो न रहा हो, परन्तु उसके अन्त पुर मे उच्चता का जो गुण था उसका रस्ते परिवार मे कोई प्रतिस्पर्धी नही था ।"[3]

खुर्शेदजी मोदी का काय भिन्न प्रकार का था । उसका जन्म १७५५ मे हुआ था । वह कैम्बे का निवासी था । इस पारसी सज्जन का परिचय स्थानीय कार्यालय मे कम्पनी के व्यापारिक प्रतिनिधि चार्ल्स मैलेट से हो गया । मैलेट को वह चतुर तथा उपयोगी मालूम हुआ । अत उसने १७८६ मे मोदी को पूना के रेजीडेन्सी कमचारियो मे सम्मिलित कर लिया । वह मराठी तथा इगलिश अच्छी तरह जानता था । अत क्रमश आने वाले रेजीडेण्ट पेशवा सरकार के साथ विवादास्पद विषयो की व्याख्या करने के लिए उसे द्विभाषिये का काम सौपते रहे । उसको कनल फ्लोज का विश्वास प्राप्त था । उसने वैमनस्य शान्त करने मे निपुण होने के कारण बाजीराव का ध्यान आकृष्ट कर लिया । वह अपने मधुर तथा समाधानकारक समथन द्वारा रेजीडेन्सी के साथ होने वाले झगडे शान्त कर सकता था । पूना के अनेक प्रभावशाली सज्जन रेजीडेण्ट के पास पहुँचने तथा अपनी शिकायते दूर करने के लिए खुर्शेदजी की मध्यस्थता का उपयोग करते थे । सदाशिव मानकेश्वर की उससे घनिष्ठ मित्रता हो गयी थी । उसके द्वारा मानकेश्वर विश्वस्त जानकारी प्राप्त कर लेता था । पेशवा का कायकर्ता बजाजी नायक इस काय के लिए मोदी से नित्य मिलकर राजनीति से सम्बन्धित अनेक कार्यों मे पेशवा की चिन्ता शान्त कर देता था । इस प्रकार इन तीन व्यक्तियो (सदाशिव मानकेश्वर, मोदी तथा बजाजी) ने दीघकाल तक बाजीराव के हितो की सेवा की और राज्य के अनेक कार्यों का सफलतापूवक सचालन किया । पूना मे मोदी की एक साथ दो स्थितिया थी । वह रेजीडेन्सी का कमचारी था तथा पेशवा का राजस्व सग्राहक था । यह व्यवस्था कुछ समय तक चलती रही । सदाशिव मानकेश्वर को मोदी की शक्ति से ईर्ष्या हो गयी और उसके प्रति द्वेष के कारण बाजीराव के प्रोत्साहन पर उसने एल्फिस्टन से विधिपूवक शिकायत कर दी कि मोदी अपने कतव्य पालन मे घूस लेता है और इस ढग से वह सार्वजनिक हित की हानि करता है । एल्फिस्टन भारतीय भाषाए जानता था, अत उसको द्विभाषिया की आवश्यकता नही थी । वह सम्बन्धित पक्षो से सीधा व्यवहार

---

3 पूना रेजीडेन्सी कॉरस्पौण्डेन्स, जिल्द ७, न० ३५५, दिनाक ३० सितम्बर १८१० पृ० ५०१ । मराठी पत्रो के अनुसार रस्ते ने आत्महत्या कर ली । उसने अपनी पत्नी को व्यभिचारी पेशवा के महल मे जाने की आज्ञा नही दी, इसलिए बाजीराव उससे अप्रसन्न हो गया ।

करता था और उपलब्ध सावनो से पूण जानकारी प्राप्त कर लेता था। इस प्रकार वह अपने विचार और ज्ञान सवथा अपने तक ही सीमित रखता था। अत पेशवा के साथ व्यवहार सचालन के लिए उसे खुर्शेदजी की सेवाओ की कोई आवश्यकता नही रह गयी। पेशवा के षडयन्त्रो का एलिफस्टन को पूरा पता था। साथ ही उसको यह भी मालूम हो गया कि मोदी अपकार कर रहा है। उसने मोदी को बुलाकर दो कार्यो मे से एक को पसन्द करने को कहा। वह या तो अपने सम्पृण समय मे रेजीडेन्सी का काय करे या मवथा बाजीराव की सेवा मे अपना स्थानान्तरण करा ले और रेजीडेन्सी के साथ सम्पूण रूप से सम्बन्ध त्याग दे। इस पर पारसी सज्जन ने रेजीडेन्सी की सेवा करना अधिक अच्छा समझा और पेशवा के दरबार के साथ सम्बन्ध छोड दिया।

पूना मे गगाधर शास्त्री का आगमन जनवरी १८१४ मे हुआ। वह पेशवा के साथ गायकवाड की कलह का समाधान करने बडौदा के दूत के रूप मे आया था। पेशवा ने अपनी ओर से त्रिम्बकजी डैगले को शास्त्री के दूतमण्डल से निपटने के लिए नियुक्त किया। शास्त्री योग्यतापूवक अपने पक्ष का समर्थन कर रहा था तथा ब्रिटिश सरकार उसका साथ दे रही थी। ऐसे मे बाजीराव को अपना प्रयोजन सिद्ध करना एक विषम समस्या बन गयी। त्रिम्बकजी ने गायकवाड के साथ पेशवा का विवाद तय करने मे परामश लेने के लिए मोदी के साथ गुप्त वार्तालाप किया। एलिफस्टन को इस षडयन्त्र का पूरा पता था और उसने दोनो मित्रो मोदी तथा त्रिम्बकजी को एक दूसरे से पृथक कर देना आवश्यक समझा। एलिफस्टन ने परिस्थिति का समाचार गवनर जनरल को भेजा तथा आज्ञा प्राप्त कर ली कि मोदी को ५०० रुपया मासिक की पेन्शन देकर कायमुक्त कर दिया जाये तथा उससे अपनी जन्मभूमि गुजरात मे जाकर रहने को कहा जाये। इस आज्ञा से मोदी के सम्मान तथा गौरव की भावना को भारी चोट पहुँची। उसने पूना मे अपना काय समाप्त करके रेजीडेण्ट से अन्तिम बिदाई ले ली। उसी रात्रि को घर पहुँचने पर उसने विषपान कर लिया तथा २७ फरवरी, १८१५ को उसका देहान्त हो गया। इस घटना से समस्त नगर मे असाधारण हलचल मच गयी। मोदी द्वारा निर्मित पूना नगर का गणपति मन्दिर इस समय तक उस पारसी के नाम का स्मरण दिलाता है।

बाजीराव का एक अन्य अनुरक्त सेवक रूपराम चौधरी था जो गोसाई दल का कमाण्डर था। उसकी मृत्यु भी लगभग इसी समय हुई (१७ जून, १८१४)।

त्रिम्बकजी डैगले निम्बगाँव जाली का मराठा पाटिल था। वह बहुत दिनो से बाजीराव का व्यक्तिगत सेवक था तथा हाल मे जासूस (सन्देशवाहक)

का काय करता था। उसका कर्तव्य सरकार के लिए समाचार प्राप्त करते हुए भ्रमण करने का था। महाद को पलायन के समय वह बाजीराव के साथ था। उसने व्यक्तिगत भारी जोखिम उठाकर बाजीराव का गुप्त पत्र रेजीडेण्ट के पास पहुँचा दिया और इस प्रकार पेशवा की कृपा प्राप्त कर ली। उस समय से बाजीराव उसके उत्साह तथा सूझबूझ के विषय मे उच्च भावना रखने लगा। बाजीराव ने उसे अनेक कठिन तथा गुप्त कार्यो पर नियुक्त किया। त्रिम्बकजी मोडी लिपि लिखता था तथा अपने समय के अनुसार व्यवहारिक रूप से शिक्षित था। उसे हिसाब-किताब और साधारण व्यापार का पर्याप्त ज्ञान था। वह कुशाग्रबुद्धि व्यक्ति था और बिना किसी विचार के पेशवा की इच्छाएँ कार्यान्वित करने के लिए सदैव तत्पर रहता था। बाजीराव ने उसको सतारा के छत्रपति की प्रगतियो पर निगाह रखने के लिए नियुक्त किया, क्योकि उसे सन्देह था कि वह रेजीडेण्ट से मिलकर षडयन्त्र कर रहा है। त्रिम्बकजी ने छत्रपति के भाई चतरसिह को चतुरतापूवक पकड लिया। यह बाजीराव को उसकी सत्ता से पदच्युत करा देने का प्रयत्न कर रहा था। त्रिम्बकजी ने आवासी के साथ सदाशिव मानकेश्वर के सम्बन्ध प्रकट कर दिये तथा बाजीराव का विश्वास प्राप्त कर लिया। राज्य के अनेक कठिन तथा महत्त्वपूण कार्यो मे पेशवा को त्रिम्बकजी पर अधिकाधिक विश्वास होता गया। पूना मे शास्त्री के आगमन के समय से गायकवाड के साथ झगडे निपटाने मे त्रिम्बकजी पेशवा का मुख्य साधन हो गया। त्रिम्बकजी ने चतुरतापूर्वक रेजीडेण्ट की योजनाओ का पता लगा लिया तथा बाजीराव को सतक रहने के लिए पहिले से चेतावनी दे दी। इससे एलफिस्टन त्रिम्बकजी से चिढ गया। यही चिढ बाद मे रेजीडेण्ट तथा पेशवा के बीच सम्बन्ध विच्छेद का मुख्य कारण बनी। एल्फिस्टन बहुत दिनो तक त्रिम्बकजी की नीच चालो की उपेक्षा करता रहा और त्रिम्बकजी स्पष्ट गव करता रहा कि यदि पेशवा केवल उसके मार्गदशन का अनुसरण करे तो वह अपनी चतुरता से अग्रेजो को घुटने टिका सकता है। त्रिम्बकजी ने अपने गुप्त कायकर्ताओ को नागपुर एव शिन्दे और होलकर के पास भेजा तथा उनको अग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह करने की उत्तेजना दे। इस समय नेपाल का युद्ध हो रहा था जिसमे अग्रेजो को अनेक बार घोर पराजय सहन करनी पड़ी। इस कारण भारतीय शासको को ब्रिटिश आधिपत्य को उखाड फेकने की आशा होने लगी। पेशवा की जोर से रेजीडेण्ट के साथ वार्तालाप करते हुए त्रिम्बकजी ने इस प्रकार का स्वर तथा मुद्रा धारण कर ली जो अत्यन्त उत्तेजक थी। इस प्रकार वह एलफिस्टन की दृष्टि

मे सवथा निन्दनीय हो गया। उसने गवनर जनरल के पास सूचना भेजी कि जब तक डैगले पेशवा का परामशदाता बना रहेगा, तब तक पेशवा को ब्रिटिश सरकार के प्रति सत्यता, मैत्री तथा सम्मान के माग पर लाने की कोई आशा नही की जा सकती। इस प्रकार पेशवा तथा रेजीडेण्ट के बीच सम्बन्ध वैमनस्य-पूण हो गये। अब केवल ज्वाला धधकाने वाली एक चिनगारी की आवश्यकता थी। शास्त्री की हत्या से यह चिनगारी प्राप्त हो गयी।

४ **गायकवाड द्वारा सहायक सधि पर हस्ताक्षर**—१८ अगस्त, १७६८ को दमाजी गायकवाड का देहान्त हो गया। वह अपने परिवार का योग्यतम व्यक्ति था। उसके बाद उसके पुत्रो के बीच बहुत समय तक उत्तराधिकार के लिए सघष होता रहा। अन्त मे इन्ही पुत्रो मे से एक को पूना मे पेशवा ने सेना खासखेल के वस्त्र दे दिये और वह १६ दिसम्बर, १७६३ को अपनी पैतृक सम्पत्ति पर अधिकार करने के लिए बडौदा चल दिया। नाना फडनिस ने रावजी अप्पाजी नामक व्यक्ति को गोविन्दराव के साथ उपदेशक तथा पथ-प्रदशक के रूप मे बडोदा भेजा। गगाधर शास्त्री पटवधन भी इसी मण्डली के साथ आया था। वह वाई के समीप स्थित मेनावली का निवासी था और परम्परागत पुरोहित का पेशा करता था। उसने पूना सरकार मे क्लक का काय किया था। गोविन्दराव तथा रावजी दोनो ने राज्य सुरक्षित रखने के लिए घोर सघष किया। उन्हे पेशवा द्वारा पूना से सहायता प्राप्त होने की बहुत कम आशा थी, इसलिए अपनी अनिश्चित सत्ता को सहायता प्राप्त करने के विचार से उन्होने अनेक अरब सैनिको को भरती कर लिया। १६ दिसम्बर १८०० को गोविन्दराव का देहान्त हो गया तथा उसके ४ वैध और ४ अवैध पुत्रो मे उत्तरदायित्व पुन कलह का विषय बन गया। अवैध पुत्रो मे से कुछ प्राय योग्य थे, परन्तु प्रशासन मे किसी अधिकार वाले पद पर उनका कोई स्वत्व नही था। मल्हारराव गोविन्दराव का चचेरा भाई था। वह काडी मे रहता था तथा उसने वहाँ पर अपना स्वतन्त्र स्थान स्थापित कर लिया था। रावजी की सहायता से गोविन्दराव का ज्येष्ठ पुत्र आनन्दराव अपने पिता की गद्दी का उत्तराधिकारी हुआ, परन्तु उसके वेतनार्थी अरब सैनिको ने उसे बहुत कष्ट दिया, क्योकि उसके पास उनका शेष वेतन चुकाने के लिए धन नही था। इस सकट काल मे रावजी ने केम्बे की ब्रिटिश फैक्टरी से आर्थिक सहायता प्राप्त कर ली। इस समय बम्बई के गवनर जोनाथन डकन की इच्छा गुजरात मे ब्रिटिश प्रभाव स्थापित करने की थी। उसने अपने विश्वस्त कार्यकर्ता मेजर वाकर को दो हजार सेना सहित आनन्दराव की परिस्थिति

का अध्ययन तथा सैनिक सहायताथ उसकी प्राथना पर विचार करने के लिए बडौदा भेजा ।

अरबो ने बदले मे रावजी के परिवार को पकड लिया । आते ही वाकर २० जनवरी, १८०२ को आनन्दराव से मिला तथा उसको मालूम हो गया कि राजा अपने कार्यों मे अयोग्य हे तथा उसको अपने दीवान रावजी पर पूण विश्वास है । वह अपने चचेरे भाई मल्हारराव से अत्यन्त द्वेष करता हे जो उस समय काडी मे विद्रोह कर रहा था । इस पर वाकर ने आनन्दराव के दल का समथन करना तथा रावजी की योजना का अनुसरण करना निश्चित कर लिया । परिणामस्वरूप उसने मल्हारराव को दण्ड देने के विचार से रावजी के भाई बाबाजी के अधीन गायकवाड की सेनाएँ अपने साथ लेकर अविलम्ब काडी पर धावा कर दिया । शीघ्र ही मलहारराव को आज्ञाकारी बनाकर नडियाद मे जागीर दे दी गयी । ६ महीने मे ही वाकर ने आनन्दराव की स्थिति सुरक्षित कर दी । उसने समस्त उपद्रवो का दमन कर दिया तथा बदले मे एक सहमति-पत्र प्राप्त कर लिया, जिस पर ६ जून, १८०२ को विधिपूवक हस्ताक्षर हो गये । इस समझौते के अनुसार कम्पनी को व्यय के निमित्त सूरत अठवीसी का जिला सदा सवदा के लिए मिल गया । यह सहमति-पत्र रावजी कृत कैम्बे की सन्धि कहलाता है ।

वाकर तुरन्त बम्बई गया और इस प्रबन्ध के सम्बन्ध मे गवर्नर की स्वीकृति लेकर वापस आ गया । २९ जून, १८०२ को आनन्दराव ने कनल वाकर को लिखा—"अपनी प्रजा को मेरी यह प्रेरणा है कि वह मेरे प्रशासन मे किये गये मेजर वाकर के प्रत्येक काय मे सहायता करे । वाकर ने मुझे अरबो द्वारा उत्पन्न सकटपूण परिस्थिति मे सहायता दी है और मुझे बचा लिया है । किसी को मेजर वाकर का विरोध नही करना चाहिए । यदि कोई दुष्ट व्यक्ति मेरी इन इच्छाओ के विरुद्ध आचरण करेगा तो मेजर वाकर को उन्हे दण्ड देने का अधिकार है । वह निस्सकोच होकर अपना काय बलपूवक कर सकता है, चाहे रावजी अप्पाजी, उसके पुत्र तथा सम्बन्धी भी उसका विरोध करे या इसके बाद दी गयी मेरी कोई आज्ञा इसके विरुद्ध हो । इस प्रकार अग्रेजो ने गायकवाड के राज्य तथा नीति पर अपना कठोर नियन्त्रण स्थापित कर लिया ।

मेजर वाकर का प्रबन्ध निर्विघ्न रूप से न चल सका । जुलाई, १८०३ मे रावजी की मृत्यु के बाद बडौदा मे इस प्रबन्ध का प्रबल विरोध उठ खडा हुआ । रावजी के पुत्र सीताराम ने इस विरोध का नेतृत्व किया । इस पर १८०६ मे मेजर वाकर ने राज्यकार्यों का प्रबन्ध करने के लिए राजनियुक्त

प्रतिनिधियो का आयोग नियुक्त किया । आनन्दराव का भाई फतेहसिह इस आयोग का सदस्य नियुक्त किया गया । मेजर वाकर ने १८१० मे अपने पद से त्यागपत्र दे दिया । उसके स्थान पर कैप्टिन रिवेट कानक रेजीडेण्ट नियुक्त हुआ जो बहुत समय तक इस पद पर रहा । ब्रिटिश हस्तक्षेप तथा कानक की अत्याचारी नीति के विरुद्ध बडौदा मे प्रबल क्रोध उत्पन्न हो गया । बाद को कानक बम्बई का गवनर नियुक्त किया गया तथा १८३९ मे उसने सतारा के राजा प्रतापसिह को पदच्युत कर दिया ।

पहले वणन हो चुका है कि पशवा के कार्यालय का एक चतुर क्लक गगाधर शास्त्री रावजी अप्पाजी के साथ बडौदा गया था । १८०२ मे जब वहा ब्रिटिश रेजीडेन्सी स्थापित हुई, तब उसने देशी सहायक के रूप मे ब्रिटिश सेवा मे प्रवेश पा लिया । वह शीघ्र ही रेजीडेण्ट का मुख्य समाचारदाता हो गया तथा उस समय बडौदा प्रशासन मे वतमान ब्रिटिश विरोधी षडयन्त्रो तथा कपट प्रबन्धो को प्रकट करके रेजीडेण्ट का कृपापात्र बन गया । इस प्रकार राज्य के अधिकाश प्रभावशाली व्यक्तियो को शीघ्र ही उससे भारी द्वेष हो गया । इनमे रानिया तथा सीताराम रावजी भी सम्मिलित थे । इस परिस्थिति मे ब्रिटिश विरोधी दल ने गोविन्दराव बन्धुजी गायकवाड को बडौदा के साथ होने वाले अन्याय के निवारणाथ पेशवा का समथन प्राप्त करने १८१४ मे पूना भेजा । पूना पहुँचने पर गोविन्दराव बन्धुजी की खुर्शेदजी मोदी तथा त्रिम्बक जी डैगले से मित्रता हो गयी । बडोदा से अगले वष भगवन्तराव गायकवाड के रूप मे उसी मण्डल मे एक अन्य प्रतिनिधि पहुँच गया । इन प्रतिनिधियो ने बम्बई के सरकारी क्षेत्रो को भी प्रलोभन दिया तथा ब्रिटिश योजनाओ एव उपायो के महत्त्वपूण गुप्त समाचार प्राप्त कर लिये । बडौदा मे रेजीडेण्ट को इन गुप्त प्रबन्धो के विस्तृत समाचार देने के कारण शास्त्री बडौदा मे तथा उसके बाहर विशाल जनसमुदाय मे सवथा निन्दनीय हो गया ।

५ पेशवा-गायकवाड कलह शास्त्री का दूतमण्डल—गायकवाडो की ओर से पेशवा को देने के लिए विशाल धनराशि हो गयी थी । इसका मुख्य कारण २४ लाख रुपये का वार्षिक कर तथा सचित उत्तराधिकार शुल्क था जो उस समय बहुत भारी हुआ करता था । यह अधिपति शासन की आय का महत्त्व-शाली साधन था । यदि सन १७५३ से गणना की जाती तो यह सचित राशि लगभग ३ करोड की भारी मात्रा तक पहुँच सकती थी । इसके अतिरिक्त दोनो पक्षो की ओर से उपस्थित किये गये हिसाबो मे बहुत अन्तर था । किसी निश्चय पर पहुँचने के पहिले लिखित प्रमाणो का व्यक्तिगत प्रमाणीकरण

आवश्यक समझा गया। बाजीराव ने आग्रहपूवक बडोदा पर अपने स्वत्व का प्रतिपादन किया तथा वह विलम्ब सहन न कर सका। १८०७ से समझौते के लिए उपाय किये जा रहे थे। १८१२ मे फतेहसिह गायकवाड ने प्रस्ताव किया कि गगाधर शास्त्री को पूना भेजा जाये। उसने इस दूतमण्डल का व्यय देना अगीकार कर लिया। बम्बई सरकार सहमत हो गयी। उसने शास्त्री की रक्षा का विशेष आश्वासन दिया तथा इस काय को स्वीकार करने के लिए शास्त्री को प्रोत्साहन दिया। विभिन्न दलो—बडौदा सरकार, बडौदा रेजीडेण्ट, बम्बई सरकार, पूना रेजीडेण्ट तथा पेशवा सरकार—के बीच इस दूतकाय के विवरणो की रचना मे एक वष से भी अधिक समय लग गया। बडौदा से चलने से पहिले शास्त्री ने अपनी सम्पत्ति के विषय मे इच्छा-पत्र तैयार करके फतेहसिह गायकवाड से प्रमाणित करा लिया। यह ध्यान रखना चाहिए कि गायकवाड की प्राथना पर शास्त्री ने बडौदा आवासीगृह से बडोदा सरकार के पास मई, १८१३ मे अपनी सेवाएँ स्थानान्तरित करा ली थी। उसको मुतलिक की उपाधि दी गयी थी तथा ६ हजार रुपये वार्षिक का वेतन। इस सम्बन्ध मे शास्त्री के चरित्र पर एल्फिस्टन की उक्तिया उद्धृत करने योग्य है, क्योकि उसने पूना मे शास्त्री का निकट से अवलोकन किया था। वह कहता है—"यह मनुष्य महा चतुर तथा योग्य व्यक्ति है। यह समस्त बडौदा राज्य को उच्चतम व्यवस्था मे रखता है तथा यहाँ भी काय मे अपना विपुल धन व्यय करता है। यह अपनी सवारी का प्रबन्ध इस प्रकार करता हे कि समस्त नगर का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर ले। यह बहुत बडा विद्वान शास्त्री है, परन्तु अग्रेजो की बिलकुल नकल करता है। यह जल्दी चलता है, जल्दी बोलता है, विघ्न डालता है और प्रतिवाद करता है। पेशवा तथा उसके मन्त्रियो को बुड्ढे खूसट तथा निन्दनीय धूत कहता है। उसकी भाषा मे इगलिश शब्दो का मिश्रण होता है। वह किसी (उदाहरणाथ होलकर) के सम्बन्ध मे इस प्रकार बोलेगा—'बहुत ट्रिक्स वाला था, लेकिन बडा अकलमन्द कौकआई (कुक्कुटाक्ष) था'।"[४]

एक अन्य विषय के कारण भी पूना तथा बडौदा के बीच सघष बहुत बढ गया। उसका सम्बन्ध गायकवाड के साथ-साथ पेशवा के गुजरात वाले आधे भाग से था। अहमदाबाद के प्रबन्ध मे यह अधभाग पेशवा ने गोविन्दराव के पुत्र भगवन्तराव को पटटे पर दे दिया था। यह पट्टा २ अक्तूबर, १८०४ को

---

४ बहुत ही चतुर व्यक्ति, परन्तु बहुत बुद्धिमान तथा मुर्गे की सी तिरछी आँख का। कोलब्रुक कृत 'एल्फिस्टन की जीवनी', जिल्द १, पृ० २७६

पेशवा ने इस शत पर दस वष के लिए नवीन कर दिया था कि गायकवाड लोग पेशवा को साढे चार लाख रुपये प्रति वष देते रहेगे। इस प्रकार पट्टे की दस वष की अवधि १८१४ मे समाप्त हाने वाली थी। ब्रिटिश अधिकारियो की उत्कट इच्छा थी कि अहमदाबाद का प्रबन्ध बहुत समय तक गायकवाड के पास यथापूव बना रहे। पेशवा ने गायकवाड को यह पट्टा अधिक समय तक देने पर प्रबल आपत्ति की तथा २३ अक्तूबर, १८१४ को उसने लिखित आज्ञा द्वारा अपने कृपापात्र त्रिम्बकजी डैगले को उस नगर का प्रबन्धक नियुक्त कर दिया। डैगले ने अहमदाबाद स्वय न जाकर वहा का प्रबन्ध करने के लिए विट्ठल नरसिह को अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया।

शास्त्री जनवरी, १८१४ मे पूना पहुँच गया ओर पेशवा ने त्रिम्बकजी को तुरन्त ही स्पष्ट रूप से अपने विश्वास मे ले लिया। उसकी नियुक्ति बडौदा के कायकर्ताओ के साथ वार्तालाप करने के लिए की गयी। शास्त्री जब ६ फरवरी को पेशवा के सम्मुख उपस्थित हुआ, तब उसका स्वागत उत्साह से नही किया गया। वह पेशवा के लिए उपहार लाया था। उसने रेजीडेण्ट की उपस्थिति मे इन उपहारो को पेश करने का हठ किया। इस काय पर पेशवा ने प्रबल आपत्ति की। माच मे दूतमण्डल के विषय पर वार्तालाप आरम्भ हुए, परन्तु यह शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि जल्दी निश्चय होने की कोई सम्भावना नही है। जून मे पूना के रेजीडेण्ट ने बम्बई सरकार से उन षडयन्त्रो के विरुद्ध शिकायत की, जिनका सचालन गोविन्दराव बन्धुजी पूना मे कर रहा था।

शास्त्री शीघ्र समझ गया कि पेशवा की इच्छा कलह के विषय मे उसकी मध्यस्थता स्वीकार करने की नही हे। उसने देखा कि प्रत्येक व्यक्ति उससे धन झपटने पर तुला हुआ हे। अत उसने शीघ्र निश्चय किया कि वह बडौदा वापस चला जायगा, जहाँ उसे निस्सन्देह दीवान का पद मिल जायगा। दशहरा के समीप एल्फिस्टन ने शास्त्री को सूचना दी कि दूतमण्डल की सफलता की कोई सम्भावना नही है, अत उसको वापस हो जाना चाहिए। किन्तु शास्त्री को मालूम था कि यदि वह कोई उपयोगी फल प्राप्त किये बिना वापस जायेगा तो उसका प्रतिस्पर्धी सीताराम तथा बडौदा का अन्य अधिकारी वर्ग प्रबल हो जायेगा। इस प्रकार वे विरोधी सगठित कर लेंगे। इस समय पेशवा का दरबार भी समझ गया कि यदि शास्त्री हताश होकर वापस जाता है तो अवश्य ही पूना तथा बडौदा दोनो सरकारो से समान रूप से बदला ले लेगा, क्योकि ब्रिटिश सरकार ने उसका पक्ष ग्रहण कर लिया है। इस प्रकार के परिणाम को

कैसे रोका जाय, यही बाजीराव तथा त्रिम्बकजी की चिन्ता का विषय हो गया। इसी अस्थिर दशा मे १८१४ का वष व्यतीत हो गया।

१८१५ के आरम्भ मे भगवन्तराव गायकवाड पूना आया। वह गोविन्दराव का पुत्र तथा आनन्दराव का अवैध भाई था। उसने नवीन षडयन्त्र आरम्भ किये। रेजीडेण्ट के विरोध पर भी वसन्त पचमी (१४ फरवरी, १८१५) को पेशवा ने भरे दरबार मे उसका स्वागत किया। इस अवसर पर भगवन्तराव ने पेशवा को आनन्दराव का हस्तलिखित पत्र दिया। इसी समय अपने बडौदा स्थित गुप्तचरो से बाजीराव को समाचार मिला कि आनन्दराव तथा फतेहसिह वास्तव मे ब्रिटिश रक्षक दल द्वारा बन्दी बना लिये गये हे तथा उनकी उत्कट इच्छा है कि पेशवा उनके लिए काय की स्वाधीनता दिला दे। बाजीराव ने इस विषम स्थिति का समाचार एल्फिस्टन को भेजा, परन्तु उसने इस आरोप को स्वीकार नही किया। इस पर पेशवा तथा रेजीडेण्ट के बीच बडौदा एव पूना के दोनो शासको की स्थिति के विषय मे चिन्ताजनक दीघकालीन वादविवाद होने लगा। बाजीराव का कहना था कि गायकवाड उसका पुराना अधीन शासक है, अत यह जानना उसका कतव्य है कि वतमान स्थिति मे उसको कोई कष्ट तो नही हो रहा है। सत्यान्वेषण के लिए उसकी इच्छा रेजीडेण्ट से स्वतन्त्र रूप मे अपने विश्वस्त कायकर्ता बडौदा भेजने की है। एल्फिस्टन ने पेशवा के अधिपतित्व सम्बन्धी अधिकार का खण्डन किया। पेशवा ने बलपूर्वक कहा कि गायकवाड बिना उससे पूछे हुए कोई पृथक सन्धि नही कर सकता, क्योकि पेशवा उसका अधिपति हे। उसने कहा—"क्या उसको पेशवा से अपने पदवस्त्र लेने के लिए यहाँ नही आना चाहिए ?" इस प्रकार स्वत्वो के सम्बन्ध पर बहुत समय तक वादविवाद होता रहा। एल्फिस्टन का केवल यही उत्तर था कि गायकवाड अब पेशवा का अधीन शासक नही है। जब तक से काम नही चला तो पेशवा ने यह प्रश्न गवनर जनरल के पास निणयाथ भेज देने को कहा। यह १८१५ की बात है, जब अग्रेजो का नेपाल के साथ भयानक युद्ध हो रहा था और नेपाल मे अग्रेजो की सतत पराजयो के कारण समस्त देश मे उनके विरुद्ध असन्तोष उत्पन्न हो गया था। अत इस सकटकाल मे बडौदा तथा पूना के रेजीडेण्ट जानबूझकर कठोर शब्दो के उपयोग से दूर रहे। फरवरी, १८१५ मे एल्फिस्टन ने बाजीराव को सूचना दी—"यदि बडौदा राज्य पर नियन्त्रण रखने का अपना स्वत्व आप नही छोडते तो इस विवाद मे ब्रिटिश सरकार की मध्यस्थता करना निरथक है। इस समय सीताराम के कायकर्ता—अर्थात गोविन्दराव बन्धुजी तथा भगवन्तराव—यहा

हमारे विरुद्ध सक्रिय षडयन्त्रो का सचालन कर रहे है। आप उनको पकडकर मुझे अवश्य सौप दे। अन्यथा मै शास्त्री से वापस जाने के लिए कह दूगा। इसी के अनुसार एल्फिस्टन ने शास्त्री को पूना छोड देने का परामश दिया, क्योकि उसका दूतकाय असफल सिद्ध हो गया था। शास्त्री ने इस सुझाव को स्वीकार नही किया। उसने साग्रह कहा—"अब चूकि अन्य उपाय असफल हो गये है। अत आप मुझे कुछ समय दे, जिससे मै आपसे स्वतन्त्ररूप मे बाजीराव के साथ व्यक्तिगत उपाय करने का यत्न करूँ। यदि मै सफल हो जाता हू तो ठीक है, अन्यथा वापस चला जाऊँगा।"

जब इस प्रयास का समाचार पेशवा के कानो तक पहुँचा तो वह तथा डँगले कुछ-कुछ चक्कर मे पड गये। यदि ब्रिटिश मध्यस्थता का आश्रय नही लिया जाता तो उनको अपने ऋण का पैसा कैसे प्राप्त हो सकता था। यदि शास्त्री खाली हाथ वापस जायेगा तो अग्रेज इसे अपना व्यक्तिगत अपमान समझेगे तथा वे इसका बदला पेशवा से ले लेगे। इस सम्बन्ध मे वे उसके आधिपत्य तथा ऋण दोनो का हरण कर सकते है। इस प्रकार के परिणाम से बचने के लिए बाजीराव तथा त्रिम्बकजी दोनो ने शास्त्री के प्रति अपना व्यवहार सहसा बदल दिया। उन्होने पूव विरक्ति त्याग कर स्नेहपूण वृत्ति धारण कर ली। शास्त्री से तुरन्त वापस न जाकर कुछ समय ठहरने की प्राथना की गयी तथा धन सम्बन्धी विवाद के निपटारे के लिए अन्य उपाय निकाले गये। उन्होने एक अन्य उपाय के रूप मे गायकवाड द्वारा पेशवा को सदा सवदा के लिए ७ लाख रुपया वार्षिक आय का प्रदेश देने का प्रस्ताव किया। यह युक्तियुक्त प्रस्ताव दोनो पक्षो के लिए हितकारी था और वास्तव मे यह गायकवाड के लिए अधिक कल्याणकारी था, क्योकि वह इस प्रकार पेशवा की दासता से सर्वदा के लिए मुक्त हो जाता। शास्त्री ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तथा एल्फिस्टन से वहाँ ठहरने के लिए तब तक समय माँगा, जब तक इस पर पूण वार्तालाप न हो जाये और बडौदा से स्वीकृति न आ जाये।

६ **शास्त्री की हत्या**—माच तथा अप्रैल मे इस विषय पर अधिक वार्तालाप हुआ, जिसमे त्रिम्बकजी तथा बाजीराव ने शास्त्री के प्रति विपुल स्नेह तथा माधुर्य का प्रदर्शन किया। उन्होने शास्त्री के गुणो की बहुत प्रशसा की तथा उससे बडौदा छोडकर पूना मे बाजीराव के मन्त्री के रूप मे आ जाने का प्रस्ताव किया। इन लुभावनी आशाओ से शास्त्री का मन पूर्णत उनके वश मे हो गया तथा उसने इन उक्तियो का समान स्नेह से अनुकूल उत्तर दिया। विशेषकर त्रिम्बकजी उसका घनिष्ठ मित्र हो गया। १६ अप्रैल

को शास्त्री ने पूना मे अपने पुत्र का यज्ञोपवीत सस्कार अत्यन्त शोभा तथा वैभव से किया। इसमे पेशवा उपस्थित था। इस अवसर पर बाजीराव ने अपनी पत्नी की बहन का विवाह शास्त्री के पुत्र से करने का प्रस्ताव किया। पूना की जनता सहसा यह पारस्परिक स्नेह उमडता देखकर चकित हो गयी तथा इस पर स्वतन्त्र टीका टिप्पणी करने लगी। बम्बई की सरकार ने शास्त्री के आचरण का अनुमोदन नही किया, क्योकि इसका अर्थ गायकवाड राज्य के घरेलू मामलो मे पेशवा के हस्तक्षेप के अधिकार को स्पष्ट स्वीकार करना होता। शास्त्री अग्रेजो के आश्वासन पर पूना आया हुआ वैध राजदूत था। अत बम्बई की सरकार ने ८ मई को शास्त्री को दूत काय यथासम्भव शीघ्र समाप्त कर देने की आज्ञा दी। जब यह आज्ञा पूना पहुँची, तब दोनो पक्ष दौरा कर रहे थे। अत इस पर कोई ध्यान नही दिया गया। शास्त्री को असावधान करने के लिए बाजीराव ने अपने साथ नासिक, त्रिम्बक तथा पण्ढरपुर की तीथयात्रा करने का प्रस्ताव किया। नासिक मे ही उससे अपने पुत्र का विवाह करने के लिए कहा गया। इस उत्सव के लिए विशाल तैयारी की गयी।

इस बीच बडौदा से समाचार मिला कि फतेहसिह राव ७ लाख वार्षिक आय का प्रदेश ऋण के भुगतान के रूप मे सवदा के लिए पेशवा को देने का प्रस्ताव नही करता। इस निश्चय से शास्त्री की योजनाएँ समाप्त हो गयी तथा वह सभ्रम मे पडकर सोचने लगा कि पेशवा से की गयी प्रतिज्ञाओ से सम्मानपूवक किस प्रकार बचा जा सकता है। उसने अपने पुत्र का विवाह करने से इनकार कर दिया। बाजीराव बिना दु ख के यह अपमान सहन नही कर सकता था। शास्त्री की पत्नी को पेशवा की पत्नी से मिलने के लिए निमन्त्रण प्राप्त हुआ। शास्त्री ने अपनी पत्नी को व्यभिचारी पेशवा के महल मे भेजने से इनकार कर दिया। तैयारियाँ पूरी हो गयी थी तथा अतिथि आ पहुँचे थे। इस प्रकार अन्तिम समय विवाह सस्कार को छोड देना राज्य के अध्यक्ष का अपमान था, जिसको त्रिम्बकजी बिना बदला लिये नही छोड सकता था। उसने तथा पेशवा ने इस विषय मे पूण शान्ति धारण कर ली तथा अपनी दुष्ट योजना का कोई भी लक्षण प्रकट नही होने दिया।

पूना के दरबारी दल ने ७ मई को नासिक के लिए प्रस्थान किया। उनके साथ एल्फिस्टन, शास्त्री तथा उसका सहायक बापू मैराल थे। यात्रा मे त्रिम्बकजी ने बडौदा के अथितियो के प्रति अपूव घनिष्ठता प्रकट की। बिना किसी प्रतिकूल घटना के वे लोग नासिक पहुँच गये तथा जून का मास वहाँ साधारण नित्यक्रम मे व्यतीत हो गया। जुलाई मे वह एकादशी पडी, जब

पण्ढरपुर की तीथयात्रा आवश्यक समझी जाती थी। बचत के विचार से प्रस्ताव किया गया कि एक छोटी-सी मण्डली ही थोडे समय मे यह यात्रा कर ले। बापू मैराल से पूना चले जाने को कहा गया। एल्फिस्टन अपनी इच्छानुसार आचरण करने के लिए स्वतन्त्र था। उसने इस अवसर से थोडे समय के लिए समीपवर्ती एलौरा की गुफाओ को दखने का लाभ उठाया। जून के अन्त के समीप यह दल पृथक हो गया। बाजीराव, त्रिम्बकजी तथा शास्त्री नासिक से सीधे पण्ढरपुर गये तथा दल का अधिकाश भाग पूना चल दिया। एल्फिस्टन एलौरा चला गया।

पण्ढरपुर को जाते हुए माग मे बाजीराव ने अपने व्यक्तिगत रक्षक दल की सख्या बढा दी तथा उनको अपने पहरे पर सतक रहने की चेतावनी दी। उनके पण्ढरपुर आने के कुछ समय पश्चात गोविन्दराव बन्धुजी द्वारा लिखा हुआ एक पत्र शास्त्री को प्राप्त हुआ, जिसमे चेतावनी दी गयी थी कि शास्त्री फिर बडौदा नही देख सकेगा। इस चेतावनी को जानकर शास्त्री प्राय घर ही रहने लगा। उसके साथ सेवा करने वाले थोडे-से व्यक्तिगत नौकर थे। एकादशी हो गयी तथा २१ जुलाई को वापसी आरम्भ होने वाली थी। २० को सायकाल त्रिम्बकजी मन्दिर गया तथा उसने अपना क्लक शास्त्री के पास भेजकर अन्तिम बार ईश्वर प्राथना के लिए बुला लाने को कहा। उसने कहलाया—"अब यहाँ भीड-भाड नही हे। अत मन्दिर मे अवश्य आये।" शास्त्री ने अपने सेवक के हाथ यह उत्तर भेजा—"मै पूणत स्वस्थ नही हूँ। अत क्षमा करे।" इस पर त्रिम्बकजी ने वही प्राथना फिर भेजी और शास्त्री ने देखा कि इम प्रकार की मैत्रीपूर्ण साग्रह प्राथनाओ को अस्वीकार करना सभ्यता नही है, अत वह अपने घर से छोटी-सी तग गली मे होकर मन्दिर को चल दिया। उसके साथ सात निहत्थे अनुचर थे। उसने जाते समय सुना कि किसी ने प्रश्न किया—"शास्त्री कौनसा है?" तथा दूसरे ने उत्तर दिया—"वह जो माला पहिने है।" उसकी उगली शास्त्री की ओर उठी हुई थी। शास्त्री मन्दिर मे पहुँच गया। त्रिम्बकजी ने उसका स्वागत किया तथा देवता के दशन करने के बाद दोनो कुछ समय तक बैठे हुए बातचीत करते रहे। बाद मे मन्दिर के एक वृद्ध पुरोहित ने शास्त्री से कुछ कहा और मिठाई दी। इसके बाद शास्त्री लौट पडा। उसके आगे आगे त्रिम्बकजी के मार्ग-दशक थे। वह उसी गली से वापस हो रहा था जिससे आया था। अब अधेरा हो चला था। वे कुछ ही डग बढे थे कि शस्त्रधारी व्यक्तियो का एक दल 'हटो-हटो' चिल्लाता हुआ उनके पीछे दौडता आया। उन्होने शास्त्री के टुकडे टुकडे कर दिये। उसके

चार अनुचर घायल होकर भाग निकले। शोर होने पर वृद्ध पुरोहित तथा शास्त्री के तीन नौकर अपने हाथो मे जलती हुई मशाले तथा मिठाइयाँ लेकर आये और यह भयानक दृश्य देखा। उन्हे नगी तलवारे लिये हुए ५ आदमी मिले जो मन्दिर की ओर दौडे जा रहे थे। जिसने भी इस काण्ड को देखा, उसने इसका कर्त्ता त्रिम्बकजी को ठहराया। अगले दिन शास्त्री के अनुचरो ने त्रिम्बकजी से इस सम्बन्ध मे खोज करने की प्रार्थना की। उसने उत्तर दिया—"अपराधियो का पता कैसे लग सकता है ? शास्त्री के अनेक शत्रु थे। बडौदा मे सीताराम, कान्होजी गायकवाड तथा अन्य लोग।" अगले दिन शास्त्री की मण्डली शीघ्रतापूवक पूना वापस आ गयी। वहा आने पर उनको पेशवा का स देश मिला कि अब वे मुझसे मिलने न आये। बाजीराव तथा डैगले कुछ दिनो तक राजधानी नही पहुचे। वे एकान्त मे रहने लगे। उनके पास दृढ शरीर रक्षक थे। उन्होने स्वय इस काण्ड का कोई अन्वेषण नही किया तथा तीव्र चेतावनी प्रसारित कर दी कि कोई भी व्यक्ति इस विषय पर बातचीत न करे। इस प्रकार का वार्तालाप रोकने के लिए नगर मे गुप्तचर लगा दिये गये।

७ **कष्ट का दूसरा दौर त्रिम्बकजी का समपण**—प्राचीन प्रसिद्धि प्राप्त तीथस्थान मे उच्च कुलीन ब्राह्मण की हत्या के समाचार से समस्त देश मे व्याकुलता की धारा प्रवाहित हो गयी। एल्फिस्टन को यह समाचार २५ जुलाई को एलौरा मे प्राप्त हुआ। उसने तुरन्त पेशवा को निम्नलिखित पत्र लिखा—"श्रीमन्त के दरबार मे एक विदेशी राजदूत की हत्या की गयी है। आपके धम के एक महोत्सव के बीच मे लगभग म दिर ही मे एक ब्राह्मण के प्राण लिये गये है। मै श्रीमन्त से यह गुप्त नही रख सकता कि इस अपराध से सम्बन्धित व्यक्तियो को दण्ड न देने के कारण आपके शासन के विरुद्ध इस प्रकार के दोषारोपण किये गये है, जिनकी कल्पना नही की जा सकती। मै उनको प्रकट करना अपना कतव्य समझता हूँ, जिससे श्रीमन्त जान ले कि आपकी प्रसिद्धि के लिए बहुत हानिकारक होने के कारण इन आरोपो का खण्डन कितना आवश्यक है। मुझे यह कहने की आज्ञा दी जाये कि जब तक त्रिम्बकजी स्वतन्त्र है, तब तक वह अपने पद के कारण ऐसे अनेक अवैध कम कर सकता है। वह जानबूझ कर ऐसे कम कर सकता है, जिससे श्रीमन्त तथा ब्रिटिश सरकार के बीच क्षोभ उत्पन्न हो जाये। इसलिए डैगले, गोविन्दराव बन्धुजी और भगवन्तराव को अविलम्ब पकडने के लिए उपाय करना अत्यन्त आवश्यक है। श्रीमन्त से प्राथना हे कि ऐसे व्यक्ति के द्वारा उत्तर भेजा जाये, जिसका

अब पेशवा ने स्वय अपनी शरीर रक्षा के लिए प्रबल प्रयत्न आरम्भ कर दिये। नवीन सेनाएँ भरती की गयी तथा दूर-दूर से सैनिक बुलाये गये। वापसी की यात्रा मे एक हजार कर्णाटकी सेनाएँ उसकी पालकी के चारो ओर थी। एल्फिस्टन २६ जुलाई को एलौरा से चलकर ६ अगस्त को पूना पहुँच गया। त्रिम्बकजी अगले दिन वहाँ आ गया तथा पेशवा ने भी दो दिन बाद नगर मे गुप्त रूप से प्रवेश किया। उसकी पालकी ढकी हुई थी तथा उसको स्वाभाविक सलामी भी नही दी गयी। एल्फिस्टन ने तुरन्त दृढ मनोवृत्ति से काम लिया तथा निर्भीकता पूवक सब परिस्थिति स्वय सँभाल ली। उसने तुरन्त जोरदार रिपोट लिखकर गवनर जनरल के पास भेज दी। इस पत्र मे उसने अपने वाञ्छित काय का सकेत किया तथा इस सम्बन्ध मे आवश्यक अधिकारो की प्राथना की। पूना को वापस होते समय वह पण्ढरपुर मे कुछ लोगो से मिला था। इससे उसे सवसाधारण के विश्वास का पता चल गया कि यह हत्या डैगले ने की हे और स्वय बाजीराव का इसमे हाथ हे। अत एल्फिस्टन ने निश्चय किया कि यदि अन्वेषण के पश्चात उसका अपराध सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रमाण प्राप्त हो गये तथा उसके कृपापात्र डैगले को पर्याप्त दण्ड दिया जा सका तो पेशवा के लिए भी यह पर्याप्त दण्ड होगा। सकटकालीन दशा मे रक्षा की दृष्टि से उसने जालना की सहायक सेना को घोड नदी पर लगे शिविर मे जाने की आज्ञा दी तथा एक दल पूना भेज दिया।

बाजीराव तथा त्रिम्बकजी ने रेजीडेण्ट के कार्यों का छिपा हुआ आशय समझ लिया तथा वे अवश्यम्भावी प्रतीत होने वाले युद्ध की तैयारियाँ करने लगे। वे इस अपराध मे उनका हाथ सिद्ध करने वाला प्रत्येक प्रमाण नष्ट करने लगे। सारे नगर पर भयानक असमजस तथा मौन गतिविधि छा गयी। एल्फिस्टन ने अपना काय अविलम्ब किया। ११ को उसने कहा कि वह पेशवा से तुरन्त मिलना चाहता हे। पेशवा ने उत्तर दिया कि मै रुग्ण हू। अगले दिन फिर वही प्राथना की गयी। बाजीराव ने कहा कि वह तीन दिन तक अपनी पुत्री की मृत्यु का शोक मनायेगा। यह लडकी जिस दिन जन्मी उसी दिन मर गयी थी। तब एल्फिस्टन ने बाजीराव के नाम व्यक्तिगत पत्र लिखकर उसके मत्री सदाशिव मानकेश्वर के पास भेज दिया तथा यह पत्र बाजीराव को दे देने के लिए लिख दिया। मानकेश्वर ने उत्तर दिया कि मै यह पत्र पेशवा को नही दे सकता। तब एल्फिस्टन ने यह पत्र अपने मुशी के हाथ पेशवा के पास भेज दिया। परन्तु बाजीराव ने मुशी से भी मिलना स्वीकार नही किया तथा अपने दो कायकर्ता रेजीडेन्सी भेजकर पूछा कि पत्र

का विषय क्या है। इन कायकर्ताओ के सन्मुख एलिफस्टन ने स्पष्ट कर दिया—"हमको यह सिद्ध करने के लिए प्रमाण मिल गये है कि हत्यारा त्रिम्बकजी है। वह अन्वेषण के लिए अविलम्ब हमारे सुपुर्द कर दिया जाये। स्वय पेशवा के विरुद्ध हमे कुछ नही कहना हे। परन्तु यदि वह त्रिम्बकजी को कानून से बचाना चाहेगा तो वह भी हत्या के प्रति उत्तरदायी समझा जायेगा।" इस पर १५ अगस्त को बाजीराव ने पत्र स्वीकार कर लिया, जिसमे एल्फिस्टन ने समस्त काण्ड का स्पष्ट वणन किया था। पत्र मे यह भी लिखा था—"आप ब्राह्मण हे तथा एक ब्राह्मण राज्य के प्रधान है। एक ब्राह्मण की स्पष्ट हत्या हुई है जो बिना खोज के नही छोडी जा सकती—यह आप भी मानेंगे। मुझे भय है कि आपके पास तथ्य वास्तविक रूप मे नही पहुँचे हे। अत मै उन्हे आपके समक्ष उपस्थित करने के लिए विवश हूँ। मुझे इसमे कोई सन्देह नही है कि इस हत्या का उत्तरदायी त्रिम्बकजी है। जनसाधारण का भी यही विचार हे। अनेक दिन व्यतीत हो गये है तथा यह विचित्र बात है कि इस विषय मे आपने अब तक न अन्वेषण आरम्भ किया हे और न अपराधियो को अब तक पकडा है जबकि मैने अन्वेषण की माग बार-बार रखी है। इस काय की ओर त्रिम्बकजी भी ध्यान नही देता है। मेरे पास यह स्पष्ट करने का पर्याप्त प्रमाण है कि वही मुख्य अपराधी है। अत मै कहता हूँ कि आप अविलम्ब त्रिम्बकजी, गोविन्दराव बन्धुजी और भगवन्तराव गायकवाड को पकड ले। यदि आप इस प्रकार का कोई उपाय करने से इनकार करेंगे तो परिणामो के लिए उत्तरदायी होगे। मै आपको यह अन्तिम चेतावनी देता हूँ।"

शास्त्री की हत्या की योजना बाजीराव ने आरम्भ की हो या नही, पर यह स्पष्ट है कि उस पर त्रिम्बकजी द्वारा योजना बनाते समय उसे रोकने का उपाय न करने का आरोप लगाया जा सकता था। पेशवा यह सोचकर उदासीन रहा कि इसमे मेरा कोई हाथ नही है। उपलब्ध प्रमाण से यह स्पष्ट है कि हत्या का षडयन्त्र शास्त्री के शत्रुओ ने बडौदा मे रचा और उस राज्य के ब्रिटिश विरोधी व्यक्तियो ने इसको सहायता दी क्योकि उनके विचार मे शास्त्री राज्य का नाश कर रहा था। योजना पूना पहुँची तथा त्रिम्बकजी और बडौदा के दोनो कायकर्ताओ ने इसे कार्यान्वित किया। बाजीराव की इच्छा थी कि वह बडौदा राज्य पर अपने अधिपत्य का प्रतिपादन करे। वह शास्त्री को इस काय मे मुख्य बाधा समझता था। बाजीराव ने डैगले को पकडने या उसको कारागार मे डालने का कोई उपाय नही किया। इसके विपरीत वह पूना मे ठहरे हुए बापू मैराल तथा शास्त्री के दल पर अत्याचार

करने लगा। रेजोडेण्ट ने उनकी रक्षा की तथा उन्हे विपम आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए धन भी दिया। त्रिम्बकजी ने घूस देकर उनमे से कुछ को पथ-भ्रष्ट करना चाहा। उसने पूना के समीप सेनाएँ एकत्र कर ली। इस पर एलिफस्टन ने आपत्ति की। उसने बाजीराव से इन सेनाओ को हटा देने के लिए कहा तथा आज्ञापालन न होने की दशा मे समस्त सहायक सेना नगर मे बुला लेने की धमकी दी।

बाजीराब ने टालने वाला उत्तर दिया। उसने डैंगले को भ्रमण करने तथा ब्रिटिश हितो को हानि पहुँचाने वाला विद्रोह फैलाने की अनुमति दे दी। एलिफस्टन ने इन सब चालो को समझ लिया तथा वीरतापूवक सामना करने के लिए तैयार हो गया। उसने निजाम की सेनाओ को जालना बुला लिया तथा त्रिम्बकजी का सामना करने और पकडने के लिए कर्नल स्मिथ को नियुक्त कर दिया। इस प्रकार अगस्त १८१५ का मास व्यतीत हो गया। गवनर जनरल के निर्देश पहुँच जाने से एलिफस्टन के हाथ मजबूत हो गये थे। इन निर्देशो मे उसके द्वारा इस विषम परिस्थिति मे अपनाये गये तात्कालिक तथा शक्तिशाली उपायो की प्रशसा की गयी थी। गवनर जनरल ने बाजीराव को भी लिखा और आज्ञा दी कि वह हत्या का पूण अन्वेषण करे तथा रेजीडेण्ट को उसके काय मे सहायता दे। गवनर जनरल ने पेशवा को आश्वासन दिया कि यदि त्रिम्बकजी अपराधी सिद्ध हो जायेगा तब भी उसको मृत्युदण्ड नही दिया जायेगा। पेशवा को यह गम्भीर चेतावनी भी दी गयी कि यदि उसने अपना कतव्य पालन नही किया और त्रिम्बकजी को कानून के पजे से बचाना चाहा तो इसके गम्भीर परिणाम होगे। इसी समय गवनर जनरल ने रेजीडेण्ट को बाजीराव के साथ अपना समस्त पत्र व्यवहार बन्द करने तथा त्रिम्बकजी को न भागने देने की आज्ञा दी।

७ दिसम्बर को एलिफस्टन ने बाजीराव को गवनर जनरल का पत्र दे दिया तथा चौबीस घण्टे के अन्दर त्रिम्बकजी को समर्पित करने की माग उसके सामने रखी। ५ सितम्बर को पेशवा ने रेजीडेण्ट को सूचित किया—"मे स्वय त्रिम्बकजी को अपनी नजरबन्दी मे रखे हुए हूँ। आप उसके समपण की मॉग न करे।" एलिफस्टन ने उत्तर दिया—"पहले मेरे पास सूचना आनी चाहिए कि त्रिम्बकजी निरोध मे है। तब हम आगामी काय करेंगे।" ५ सितम्बर को बाजीराव ने त्रिम्बकजी को कठोर कारावास के लिए वसन्तगढ भेज दिया तथा इसकी सूचना रेजीडेण्ट को दे दी। तब रेजीडेण्ट ने कहा—"इससे प्रश्न हल नही होता। यह आश्वासन कौन देगा कि त्रिम्बकजी कैद मे है। वह भाग

सकता है तथा परेशानी पैदा कर सकता है। अत उसको रेजीडेण्ट की रक्षा मे समर्पित कर देना चाहिए । यदि आप इससे सहमत है तो यह काण्ड यही समाप्त हो जायेगा तथा ब्रिटिश सरकार के साथ आपके सम्बन्ध यथापूव बने रहेगे । अन्यथा मै आपके हित मे हानिकारक सिद्ध होने वाले उपाय कार्यान्वित करने को विवश हो जाऊँगा ।"

वास्तव मे पेशवा द्वारा सूचित त्रिम्बकजी की कैद नाममात्र की थी । इसके पश्चात शीघ्र ही बाजीराव वाई गया और नवीन सेनाएँ भरती करने लगा । एल्फिस्टन ने शिरूर से सहायक सेना बुला ली तथा निम्नलिखित सन्देश द्वारा बाजीराव को चेतावनी दी—"अब भी आप त्रिम्बकजी को समर्पित करके इस काण्ड को समाप्त कर दे । शास्त्री परिवार को कुछ निष्कृति देने के अतिरिक्त आपको और कोई कष्ट नही दिया जायेगा । यदि आप आज्ञापालन न करेगे और पूना छोड देगे तो आप परिणामो के लिए तैयार रहे ।" यह कठोर सन्देश पाकर बाजीराव ने कर्नल फोड को बुलाकर उससे परामश मागा । फोड ने उत्तर दिया—"बचने का केवल एक माग है कि त्रिम्बकजी का समपण कर दिया जाये ।" तब बाजीराव ने फोड से कहा—"आप जाकर रेजीडेण्ट को यह सूचना दे दीजिए कि पेशवा शीघ्र ही आज्ञापालन करेगा ।" ११ सितम्बर को कैप्टिन हिक्स ८५० सैनिको सहित वसन्तगढ भेजा गया । १६ सितम्बर को उसने त्रिम्बकजी को अपनी रक्षा मे ले लिया । गोविन्दराव बन्धुजी तथा भगवन्तराव गायकवाड भी उसी प्रकार २५ सितम्बर को समर्पित कर दिये गये । २६ सितम्बर को वे सब कठोर निरोध के लिए थाना के गढ मे भेज दिये गये ।

इस हत्या से केवल बडौदा राज्य को लाभ हुआ । पेशवा की ओर गायकवाड का ऋण सर्वथा समाप्त कर दिया गया । बडौदा मे ब्रिटिश हस्तक्षेप का प्रतिकार करने के सम्बन्ध मे सीताराम की योजना पूरी तरह असफल हो गयी तथा वह कुछ समय के लिए बम्बई मे बन्दी कर दिया गया ।[५] शास्त्री के पुत्र को बडौदा मे उच्च पद दिया गया । गोविन्दराव बन्धुजी तथा भगवन्तराव शासनकर्ता गायकवाड के सुपुर्द कर दिये गये । बापू मैराल का किसी रोग के कारण पूना मे देहान्त हो गया ।

---

५ बाद मे सयाजीराव द्वितीय ने १८१६ मे सीताराम रावजी को बडौदा मे दीवान के पद पर नियुक्त कर दिया । सीताराम का देहान्त १८२३ मे हुआ ।

अध्याय १६

तिथिक्रम

१८०७	शिन्दे तथा भोसले द्वारा भोपाल पर आक्रमण।
१८०९	मीरखाँ का नागपुर पर आक्रमण।
१८१३-१४	शिन्दे तथा भोसले द्वारा भोपाल का घेरा।
२९ अक्तूबर, १८१४	भोपाल के नवाब द्वारा ब्रिटिश मैत्री स्वीकृत।
मार्च, १८१६	नेपाल युद्ध समाप्त।
२२ माच, १८१६	रघुजी भोसले द्वितीय की मृत्यु।
२७ अप्रल, १८१६	अप्पा साहेब भोसले द्वारा ब्रिटिश मैत्री स्वीकृत।
१२ सितम्बर, १८१६	त्रिम्बकजी डैंगले का थाना से पलायन।
१ फरवरी, १८१७	पर्सोजी भोसले की मृत्यु।
फरवरी, १८१७	त्रिम्बकजी सतारा के समीप प्रकट।
१३ जून, १८१७	पेशवा पर नवीन सन्धि लागू।
जुलाई-सितम्बर, १८१७	बाजीराव माहुली मे।
९ अगस्त, १८१७	मालकम का बाजीराव के पास आना।
१६ अगस्त, १८१७	पिण्डारियो के विरुद्ध ब्रिटिश अभियान आरम्भ।
५ नवम्बर, १८१७	शिन्दे द्वारा अग्रेजो के साथ नयी सन्धि पर हस्ताक्षर तथा किरकी का रण।
१५ नवम्बर, १८१७	यखडा का रण।
१६ नवम्बर, १८१७	बाजीराव का पूना से पलायन।
१७ नवम्बर, १८१७	पेशवा के महल पर ब्रिटिश ध्वज फहराया।
२६ नवम्बर, १८१७	अप्पा साहेब द्वारा ब्रिटिश रेजीडेन्सी पर आक्रमण।
१४ दिसम्बर, १८१७	सतारा का राजा बाजीराव के साथ।
१७ दिसम्बर, १८१७	पिण्डारी शाहाबाद मे परास्त।
२० दिसम्बर, १८१७	तुलसीबाई होलकर की हत्या।
२१ दिसम्बर, १८१७	महीदपुर का रण।
६ जनवरी, १८१८	होलकर के साथ महीदपुर की सन्धि।

६ जनवरी, १८१८	कोंडेगाँव का रण ।
३ फरवरी, १८१८	नामदारखा पिण्डारी द्वारा अधीनता स्वीकार ।
११ फरवरी, १८१८	बाजीराव के विरुद्ध ब्रिटिश घोषणा ।
१५ फरवरी, १८१८	करीमखा पिण्डारी द्वारा अधीनता स्वीकार ।
१९ फरवरी, १८१८	अष्टा का रण, बापू गोखले का बध, सतारा का राजा अग्रेजो के हाथ मे ।
१८ माच, १८१८	अप्पा साहेब बन्दी ।
माच, १८१८	चीतू पिण्डारी का चीते द्वारा बध ।
१२ मई, १८१८	अप्पा साहेब का हिरासत से भाग निकलना—आशिगढ मे शरण प्राप्त ।
मई, १८१८	बाजीराव नमदा के समीप धूलकोट मे ।
१७ मई, १८१८	बाजीराव के कायकर्ताओ की मालकम से भेंट ।
३१ मई, १८१८	मालकम का बाजीराव से मिलना ।
३ जून, १८१८	बाजीराव द्वारा मालकम के प्रति आत्मसमपण ।
१२ जून, १८१८	बाजीराव द्वारा उत्तर की यात्रा आरम्भ ।
१६ जून, १८१८	रघुजी भोसले तृतीय नागपुर मे प्रतिष्ठापित ।
फरवरी, १८१९	बाजीराव का बिठूर पहुँचना ।
९ अप्रैल, १८१९	आशिगढ हस्तगत—अप्पा साहेब का पलायन ।
१८२९	अप्पा साहेब को जोधपुर मे आश्रय प्राप्त ।
१५ जुलाई, १८४०	अप्पा साहेब की मृत्यु ।
२८ जनवरी, १८५१	बाजीराव द्वितीय की मृत्यु ।

अध्याय १६

अन्तिम प्रयास

(१८१७–१८१८)

१	त्रिम्बकजी का अदभुत पलायन।	२	बाजीराव पर नवीन सन्धि लागू।
३	नागपुर का अप्पा साहेब।	४	पिण्डारी लोग तथा उनके काय।
५	पिण्डारियो का विनाश।	६	होलकर की सत्ता नष्ट।
७	पेशवा द्वारा युद्ध।	८	पेशवा का पलायन।
६	ब्रिटिश घोषणा—बाजीराव के कष्ट।	१०	मालकम के प्रति पेशवा का आत्मसमपण।

१ त्रिम्बकजी का अदभुत पलायन—गवनर जनरल ने त्रिम्बकजी को थाना के गढ मे बन्दी रखने तथा उस पर सवथा यूरोप निवासियो का पहरा लगा देने की आज्ञा दी। एलिफस्टन ने इस प्रबन्ध के विरुद्ध अपनी आपत्ति लिख भेजी। उसने कहा कि थाना इतना समीप है कि वहाँ रहकर बन्दी को दुष्टता करने की पर्याप्त सुविधाएँ मिल सकती है। यह बात सत्य सिद्ध हो गयी। बन्दी ने अपनी परिस्थिति से पूण लाभ उठाया तथा अग्रेजो द्वारा पकडे जाने के लगभग १ वष बाद १२ सितम्बर, १८१६ को सायकाल भाग निकला। इस प्रकार उसने अपने बन्धनकर्ताओ को चकित कर दिया।

त्रिम्बकजी के सब के सब पहरेदार यूरोप निवासी थे तथा मराठी भाषा नही जानते थे। बन्दी के साथ सज्जनता का व्यवहार किया जाता था। उसके रहने का कमरा मकान की दूसरी मजिल पर था। नीचे घुडसाल थी। बाजीराव ने एक चतुर मराठा सईस को चुनकर एक इगलिश अधिकारी के पास नौकर रखवा दिया। सईस लोग घोडो को मलते समय प्राय कुछ गीत गाया करते है। नीचे की मजिल वाली घुडसाल मे सईस का काय करने वाले इस विशेष व्यक्ति ने अपने गीतो द्वारा ऊपर के बन्दी को घुडसाल के पीछे एक पुरानी टूटी-फूटी दीवार से होकर भागने का माग बताया। बाजीराव ने घोडो का प्रबन्ध कर लिया था। सम्भव है त्रिम्बकजी ने योजना को समझ कर इसी

प्रकार उत्तर दिया हो। इस सीधे सादे दीखने वाले खेल मे योरुपीय पहरेदारो को किसी दुष्टता का सन्देह नही हुआ।[१] १२ सितम्बर, १८१६ को मायकाल डगले तथा सईस अन्धकार मे भाग निकले और जगलो को पार करके खानदेश पहुँच गये। ये लोग कुछ महीनो तक उस क्षेत्र के जगली मनुष्यो के साथ रहते रहे। कुछ समय बाद त्रिम्बकजी दक्षिण की ओर हट आया तथा सतारा मे पूव महादेव की पहाडियो मे शरण ली। बाजीराव ने वहा गुप्त रूप से उसकी सहायता की।

इस समय पेशवा ने रेजीडेण्ट के प्रति अपने व्यवहार मे इस प्रकार का मधुर स्वर तथा दीनभाव धारण कर लिया कि उसने प्रभावित होकर बाजीराव के व्यवहार के विषय मे अत्यन्त अनुकूल वृत्तात भेजे तथा उसको सूचित किया—"जनरल आपके इस परिवतन की बहुत प्रशसा करता है।" यह समय १८१७ का आरम्भ था तथा ब्रिटिश सरकार पिण्डारियो के विरुद्ध तीव्र वेग से युद्ध की तैयारिया कर रही थी। इस सम्बन्ध मे पेशवा ने कई उपयोगी सुझाव दिये जिससे वह रेजीडेण्ट के धन्यवाद का पात्र हो गया। एल्फिस्टन को यह सन्देह कभी नही हुआ कि उसके साथ बहुत बडा कपटाचरण किया जा रहा है।

फरवरी, १८१७ मे एल्फिस्टन को पता लगा कि नीरा नदी के क्षेत्र मे त्रिम्बकजी प्रकट हो गया है। तब उसने बाजीराव से उसे पकडवाने को कहा। उस समय दक्षिण म होने वाली विविध हलचलो तथा उपद्रवो के समाचार रेजीडेण्ट के पास पहुँचते रहते थे। एल्फिस्टन की प्राथना पर बाजीराव ने बापू गोखले को आज्ञा दी कि वह सेना लेकर जाये तथा विद्रोही त्रिम्बकजी को पकड लाये। गोखले यह समाचार लेकर वापस लौट आया कि कही पर हलचल नही है, सर्वत्र शान्ति विराजमान है। इसके विपरीत रेजीडेण्ट को यह सूचना मिली कि हिन्दुओ के नव वष दिवस (१८ माच) को त्रिम्बकजी विद्रोह का झण्डा खडा करने वाला है। जब बाजीराव ने एल्फिस्टन को गोखले द्वारा लाये गये सवत्र शान्ति के समाचार भेजे तो रेजीडेण्ट ने स्पष्ट कह दिया

---

[१] बिशप हिबर ने अपने जनल म इस गीत का पद्यानुवाद किया है जिल्द २, पृ० ८। उसका हिन्दी गद्यानुवाद यह है—"धनुधर झाडी के पीछे छिपे हुए है, घोडा पेड के नीचे है। ऐसा वीर मुझको कहाँ मिलेगा जो जगल-जगल मेरे साथ घूमता फिरे। वहाँ ५५ घोडे तथा ५४ आदमी तैयार खडे है। जब ५५वाँ व्यक्ति अपने घोडे पर चढ लेगा, तब दक्षिण फिर समृद्ध हो जायेगा।"

कि यह समाचार निराधार हे । तब बाजीराव ने विद्रोही का पीछा करने के लिए स्वय जाने का प्रस्ताव किया । रेजीडेण्ट ने यह प्रस्ताव स्वीकार करने से इनकार कर दिया तथा १५ माच को कनल स्मिथ को आज्ञा दी कि वह अपने दल सहित पूना के लिए कूच करे । उसने गवनर जनरल से बाजीराव के साथ युद्ध आरम्भ करने का अधिकार माँगा, क्योकि उसकी सम्मति मे बाजीराव के साथ अधिक दिनो तक शान्ति नही रखी जा सकती थी ।

२ **बाजीराव पर नवीन सन्धि लागू**—पेशवा ने भी तीव्रगति से युद्ध की तैयारिया आरम्भ कर दी तथा अपना धन एव बहुमूल्य वस्तुएँ सुरक्षा के निमित्त रायगढ भेज दी । १ अप्रैल को एलिफस्टन ने धमकी भरा पत्र लिखा कि वह डैगले को पकड कर उसका समपण नही करेगा तो उसके विरुद्ध तुरन्त युद्ध आरम्भ कर दिया जायेगा । ६ अप्रैल को पेशवा ने व्यक्तिगत स्पष्टीकरण के लिए रेजीडेण्ट को अपने महल मे बुलाया तथा कपटपूण वाग्वैदग्ध्य के साथ धाराप्रवाह रूप मे अपने मन की बात कही । इस प्रकार पेशवा ने अपने को निर्दोष तथा असहाय प्रदर्शित करना चाहा । परन्तु एलिफस्टन न इतना कोमल हृदय था, न सीधा सादा कि बाजीराव की करुणामय याचना का प्रभाव उस पर पडता या छल कपट के कारण वह पथभ्रष्ट हो जाता । पेशवा का भाषण समाप्त होने पर, एलिफस्टन ने अपना कठोर निश्चय पुन दोहराया कि उसको एक मास का समय दिया जायेगा, जिसके भीतर वह त्रिम्बकजी को पकड ले । असफलता की सम्भावना न रहने के लिए रायगढ, पुरन्दर, सिहगढ तथा त्रिम्बक के चार मुरय गढो को चौबीस घण्टे के अन्दर प्रतिभू रूप मे अग्रेजो को समर्पित कर दे । यह धमकी बाजीराव के हृदय मे चुभ गयी । फिर भी उसने इसे शान्तिपूवक सह लेने का बहाना किया । इस धमकी को कार्यान्वित करने के लिए एलिफस्टन की सेनाएँ नगर घेरने के लिए अपने शिविर से चल पडी । इस पर बाजीराव अत्यन्त भयभीत हो गया तथा १० बजे प्रात उसने एलिफस्टन के हाथो मे चारो गढो के समपण की आज्ञा रख दी । स्पष्ट था कि ऐसा करते हुए उसे कठोर वेदना हो रही थी । बाद मे डैगले के समपण के सम्बन्ध मे वार्तालाप हुआ तथा गरम ठडे आवेशो के बीच बहुत इधर-उधर करने के बाद कातर पेशवा ने त्रिम्बकजी के पकडने के लिए निम्नलिखित घोषणा प्रकाशित की[२]

"त्रिम्बकजी डैगले माननीय ब्रिटिश सरकार की हिरासत से भाग निकला

---

२ ऐतिहासिक टिप्पणियाँ, जिल्द ४, २३

हे तथा उसने विद्रोह आरम्भ कर दिया हे। जो कोई भी उसको पकड लेगा तथा जीवित या मृतक के रूप मे लायेगा, उसको एक लाख नकद रुपये का पुरस्कार दिया जायेगा। साथ ही पेशवा की सरकार पकडने वाले व्यक्ति को एक हजार रुपये की आय वाला गाव इनाम मे देगी। उसका ठीक पता बताने वाले को भी ५ हजार रुपये का नकद इनाम मिलेगा। जो जानबूझकर समाचार को छिपा लेंगे, उनको कठोर दण्ड दिया जायेगा।" इसमे डँगले के १२ सहायको के नामो का भी उल्लेख हे।[3]

पहिले ही सकेत दिया जा चुका है कि इस समय एक विशाल भारतीय पड्यन्त्र का सगठन हो रहा था तथा मराठा राज्य के प्रधान के नाते बाजीराव पर इसका नेतृत्व स्वीकार करने के लिए अनेक दिशाओ से दबाव डाला जा रहा था। बाजीराव का विश्वासपात्र बालोजी कुजर इस काय मे सिद्धि प्राप्त करने के लिए इन दिनो अत्यन्त क्रियाशील था। एल्फिस्टन शान्तिपूर्वक इन योजनाओ का अवलोकन कर रहा था। वह बाजीराव को उनसे दूर रखने का यथाशक्ति प्रयत्न कर रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि अन्त मे समस्त ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन समाप्त हो गये। ब्रिटिश कूटनीति का समथन पर्याप्त बल द्वारा किया गया तथा भारतीय दरबारो मे समस्त ब्रिटिश कायकर्ताओ ने सुसगठित रूप से यथासमय उपाय किये। ये उन प्राचीन गुप्त उपायो की अपेक्षा अन्त मे अति प्रबल सिद्ध हुए, जिनका उपयोग साधारणत भारतीय करते थे जो कि हास्यास्पद लगते है। उदाहरणाथ, भारतीय शासको ने उस समय गुप्त लिपि मे लिखे हुए पत्र स्वतन्त्रतापूवक भेजे। इनमे से कुछ को एल्फिस्टन के गुप्तचरो ने पकड लिया।[4]

बसई की सन्धि के समय मे स्थिति मे सवथा परिवतन हो गया था।

---

३ जान ब्रिग्स कृत—'सस्मरण', पृ० ६४-४५

४ एल्फिस्टन को अपनी सेवा मे शक्तिशाली गुप्तचर रखने की अनुमति प्राप्त थी। इस काय के लिए विपुल धन उसकी इच्छा पर छोड दिया गया था, जिसकी कोई जाँच नही होती थी। अपने भारतीय कायकर्ताओ को उसने उदारतापूवक धन दिया तथा उनसे महत्वशाली सूचनाएँ प्राप्त की। उसके गुप्तचरो मे से कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियो के नाम स्थानीय स्मृति मे अब तक जीवित हे—जैसे बालाजी पन्त नाटू, गणेश पन्त, सतारा के चिटनिस परिवार के व्यक्ति, बापू भट्ट आदि। स्वय पेशवा के कुछ अधिकारी तथा कुछ निकट सेवक भी रेजीडेण्ट से गुप्त वेतन पाते थे। वास्तव मे उस समय शायद ही कोई ऐसा भारतीय शासक था जो ब्रिटिश धन के लोभ मे नही फँस गया हो।

अत पुरानी शर्ते अब कायक्षम नही रह गयी थी। एल्फिस्टन ने पेशवा के साथ नवीन सन्धि करने के लिए गवनर जनरल से आज्ञा प्राप्त कर ली। १ जून १८१७ को एल्फिस्टन ने यह सन्धि स्वीकृत होने के लिए पेशवा की सेवा मे उपस्थित की। वार्तालाप तथा सकोच प्रदशन के पश्चात पेशवा ने १३ जून को इस पर हस्ताक्षर कर दिये। इस सन्धि पत्र द्वारा त्रिम्बकजी शास्त्री का हत्यारा घोषित कर दिया गया, भारतीय शासको पर पेशवा का अधिपत्य अन्तिम रूप से समाप्त हो गया, महाराष्ट्र के बाहर पेशवा के समस्त प्रदेश ब्रिटिश सरकार को मिल गये, वह विदेशी दरबारो से अपने वकील वापस बुलाने के लिए विवश किया गया तथा अब वह उनके साथ पत्र व्यवहार या दूतो का आदान-प्रदान करने से भी रोक दिया गया। इस प्रकार मराठा सघ अन्तिम तथा सावजनिक रूप से भग कर दिया गया।[५] ये शर्ते निश्चित रूप से कठोर थी तथा निश्चय था कि उनका फल बुरा होगा।

३ **नागपुर का अप्पा साहेब**—इस प्रकार की नवीन सन्धि ऊपर थोपे जाने से पेशवा कुपित हो गया तथा विवश होकर युद्ध के समीप पहुँच गया। इस युद्ध से दो अन्य युद्धो अर्थात नागपुर के राजा से युद्ध तथा पिण्डारियो से युद्ध का निकट सम्बन्ध है। होलकर की सेना का नाश पिण्डारियो के युद्ध के अन्तगत ही है।

१८०३ के युद्ध के दु खद अनुभव के बाद रघुजी भोसले मराठा सघ के समस्त राजनीतिक कार्यों की ओर विरक्ति धारण किये हुए था। वह अपना ध्यान अपने प्रदेश नागपुर की रक्षा पर ही सीमित रखता था। ब्रिटिश सरकार ने सहायक सन्धियो की व्यवस्था मे सम्मिलित होने के लिए उस पर बार-बार दबाव डाला, परन्तु इस प्रकार की सधि को स्वीकार करने से वह दृढतापूवक इनकार करता रहा था। जब यशवन्तराव होलकर ने उससे अग्रेजो के विरुद्ध सहयोग की प्राथना की, तब भी उसने उसका साथ देने से इनकार कर दिया। कुछ समय तक वह दौलतराव शिन्दे के साथ मैत्री बनाये रहा। जब कानवालिस ने लाड वेलेजली की नीति उलट दी तथा भारतीय शासको के कार्यो मे हस्तक्षेप न करने की घोषणा कर दी तो रघुजी तथा दौलतराव ने १८०७ मे भोपाल के नवाब पर दबाव डाला कि वह होशगाबाद तथा शिवनी के अपने दो जिले

---

५ 'पेशवाओ का अन्त' नामक क्रमबद्ध मराठी इतिहास है, पृ० १७६-१८६ मे यह सन्धि विस्तार से दी हुई है। देखो—कालब्रुक, जिल्द १, पृ० ३०६। लार्ड हेस्टिग्ज की व्यक्तिगत वार्ता, पृ० २६०

छोड दे। ये जिले पहिले भोसले के थे। बाद मे नवाब ने इनको छीन लिया था। मराठो की निगाह मे नवाब नवोदित शक्ति था, जिसने अंग्रेजो के समथन से मालवा के एक भाग पर अधिकार कर लिया था। इस भाग पर पूर्णरूप से मराठो का न्यायसगत अधिकार था।

१८०९ मे होलकर के सहायक मीरखाँ ने भोपाल के नवाब के सहयोग से नागपुर पर आक्रमण की धमकी दी, परन्तु रघुजी ने वीरतापूवक उनका सामना करके पीछे हटने पर विवश कर दिया। इस अवसर पर गवनर जनरल लार्ड मिण्टो ने कनल क्लोज के अधीन एक ब्रिटिश सेना रघुजी की सहायताथ भेजी थी। उसने यह सकेत भी दिया कि रघुजी को अपने ही हित मे उस सेना को स्थायी रूप से अपनी सेवा मे रख लेना चाहिए। धन्यवाद देने के स्थान पर रघुजी ने यह काय अस्वीकार कर दिया। इसके बाद १८१३-१४ मे शिन्दे तथा होलकर ने मिलकर भोपाल पर आक्रमण किया तथा उस स्थान को घेर लिया। नवाब वजीर मुहम्मदखा ने इतनी वीरतापूवक नगर की रक्षा की कि आक्रान्ताओ को हताश होकर वहाँ से भागना पडा।[६]

१८१४ मे नेपाल का युद्ध आरम्भ होने पर समस्त भारत मे अत्यन्त अशान्ति की लहर दौड गयी। सुरक्षात्मक उपाय के रूप मे ब्रिटिश सरकार ने भारतीय शासको के साथ नवीन सन्धियाँ करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार की एक सन्धि उन्होने भोपाल के नवाब के साथ कर भी ली (२९ अक्तूबर १८१४)। अब इस सन्धि द्वारा नवाब शिन्दे के प्रति निष्ठा रखने से मुक्त हो गया। माच १८१६ मे नेपाल का युद्ध समाप्त हो गया। इस मास रघुजी भोसले का देहान्त हो गया (२२ माच)। अब नागपुर मे ब्रिटिश प्रवेश को सुविधा हो गयी जिसका उसने बहुत दिनो तक प्रतिकार किया था।

पर्सोजी बाला साहेब नामक रघुजी का एक वयस्क पुत्र था। उस समय उसकी आयु ३८ वष की थी, परन्तु वह पक्षाघात का रोगी था। वह लगभग अन्धा होने के कारण राज्यकाय करने मे सवथा अयोग्य था। रघुजी के भाई व्यकोजी मन्या बापू के मुधोजी अप्पा साहेब नामक पुत्र था। उस समय उसकी आयु २० वष की थी तथा वह सभी दृष्टियो से अपने परिवार का योग्य सदस्य था, परन्तु भूतपूव रघुजी ने उसके साथ कभी कृपा का व्यवहार नही किया था। मृत्यु शय्या पर पडे हुए रघुजी ने उसको बुलाकर आज्ञा दी कि वह पर्सोजी का ध्यान रखे तथा अपने परिवार के गौरव को सुरक्षित रखे। इस परिस्थिति

---

६ पूना रेजीडेन्सी कॉरस्पौण्डेन्स, जिल्द ५

से स्वाथ पर लोगो को सुविधाएँ प्राप्त हो गयी तथा उन्होने नवीन प्रवृत्तियाँ आरम्भ करदी । ब्रिटिश रेजीडेण्ट जेकि स भी शक्ति प्राप्त पुरुष था । उसने नागपुर प्रशासन मे परिवतनो को वहा पर बलपूवक ब्रिटिश सहायक सेना नियुक्त करने की दृष्टि से देखा । उसने मुधोजी अप्पा साहेब को सहायक सन्धि स्वीकार करने पर राजी कर लिया तथा २७ अप्रैल, १८१६ को रात्रि के समय गुप्त रूप से इस सन्धि पर हस्ताक्षर करवा लिये । वैसे उत्तरदायी सरकारी नौकरो की सामान्य सम्मति इसके विरुद्ध थी । उचित समय पर गवनर जनरल ने अप्पा साहेब द्वारा हस्ताक्षर की हुई सन्धि प्रकाशित कर दी तथा अप्पा साहेब को वीरतापूण उचित काय के लिए बधाई दी । शर्तों की पूर्ति के रूप मे कनल डवटन अपनी सेनाए लेकर नागपुर पहुँच गया । पर्सोजी की माता बाका बाई तथा पत्नी काशीबाई और कुछ प्रमुख अधिकारियो को इस व्यवस्था से घणा थी । वे सब अप्पा साहेब पर क्रुद्ध हो गये, क्योकि उसने अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकाक्षा को तृप्त करने के लिए राज्य के स्वातन्त्र्य का बलिदान कर दिया था । परिणामस्वरूप सर्वत्र षडय त्र तथा परेशानी फैल गयी । अत अप्पा साहेब को नागपुर मे अपना जीवन इस प्रकार सकटग्रस्त प्रतीत हुआ कि वह बाहर जाकर नगर के समीप सहायक सेना के शिविर मे रहने लगा । यहा अप्पा साहेब ने एक षडय त्र की रचना की, जिसके द्वारा पर्सोजी की हत्या हो जाये तथा शासक के समस्त अधिकार उसको प्राप्त हो जाये । १ फरवरी १८१७ को पर्सोजी अपने बिस्तर पर मरा हुआ पाया गया । जेकिन्स ने उसकी मृत्यु के सम्बन्ध मे अन्वेषण किया, परन्तु उसको हत्या का कोई निश्चित प्रमाण नही मिल सका । पर्सोजी की पत्नी काशीबाई चिता पर सती हो गयी । अप्पा साहेब ने अपने कायकर्ताओ को अपने पद के वस्त्र प्राप्त करने बाजीराव के पास पूना भेजा । बाजीराव इस समय अपने राज्य के बाहर अधिपत्य सत्ता से वचित किया जा रहा था । अत इस समय वह ब्रिटिश विरोधी षडयन्त्र का सगठन कर रहा था । अप्पा साहेब अपने व्यवहार मे स्पष्ट परिवतन दिखाने लगा । वह सहायक सन्धि द्वारा पराधीनता को हटाने की इच्छा से पेशवा के विचारो से सप्रेम सहमत हो गया तथा उसकी सहायताथ अत्य त प्रबल आश्वासन दिये । सितम्बर १८१७ के आरम्भ मे उसने पिण्डारी नेता चीतू से मित्रता करली तथा पर्याप्त सख्या मे नवीन सेना भरती कर ली । जब उसने सुना कि बाजीराव ने ५ नवम्बर १८१७ को पूना रेजीडेन्सी पर आक्रमण कर दिया है तो उसने भी नागपुर रेजीडेन्सी पर आक्रमण द्वारा उसी मार्ग का अनुसरण किया । बाजीराव ने उसको सेना साहब सूबा के वस्त्र तथा भूषण

भेज दिये थे। उसने २४ नवम्बर को खुले दरबार मे उनका स्वागत किया, यद्यपि आवासी ने इसका विरोध किया था। यह आचरण रेजीडेन्सी पर आक्रमण का स्पष्ट सकेत था। रेजीडेन्सी नागपुर के पुराने नगर के पश्चिम मे करीब दो मील पर सीताबल्दी नाम के प्रसिद्ध स्थान पर दो पहाडियो की तलहटी मे थी। अप्पा साहेब की सेना १८ हजार थी और उसके पास २६ तोपे थी तथा ब्रिटिश सेना बहुत छोटी थी। राजा के पास अरब सैनिको का एक दल था। उसने २६ नवम्बर को प्रात काल छोटी-सी ब्रिटिश सेना पर आक्रमण किया और सीताबल्दी की पहाडी पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उन्होने नीचे की रेजीडेन्सी को घेर लिया। अग्रेज डटे रहे, परन्तु उनका गोला-बारूद और सामान समाप्त हो गया। छोटी सी सेना का एक चौथाई भाग मार डाला गया या परास्त कर दिया गया। परन्तु कैप्टिन फिजग्रेल्ड की वीरता द्वारा रणक्षेत्र सुरक्षित रह गया। वह बगाल अश्वारोही दल का कमाण्डर था। उसने निभय होकर राजा के दल के मुख्य भाग पर आक्रमण किया और उनकी दो तोपे छीन ली। दोपहर तक सघप समाप्त हो गया। ब्रिटिश सेना पूणरूप से विजयी हुई। इसका सर्वाधिक श्रेय ब्रिटिश सेवा मे वतमान भारतीय सैनिको के साहस तथा दृढता को था। शीघ्र ही समस्त दिशाओ से सहायक सेनाएँ नागपुर पहुँच गयी तथा जेकिन्स राजा से अपनी इच्छानुसार शर्तो पर सन्धि करने मे समर्थ हो गया। उसे अपनी सेनाएँ भग करने, अपनी तोपे अग्रेजो को सौपने तथा स्वय रेजीडेन्सी मे आकर रहने की आज्ञा दी गयी। अप्पा साहेब न शर्ते मान ली तथा १६ दिसम्बर को वह रेजीडेन्सी मे पहुँच गया। इसके पहिले ही राजभवन मे उसकी अरब सेनाएँ परास्त हो चुकी थी। आगामी ८ जनवरी को वह अपने पूव पद पर विधिपूवक स्थापित कर दिया गया। उसकी आत्मा पराधीन नही हुई थी। पेशवा इस समय पलायन कर रहा था, तथा उसने अप्पा साहेब के पास अपना साथ देने के लिए दूत भेजे थे। अप्पा साहेब के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार प्रकट हो जाने से उसकी योजनाएँ विफल हो गयी। १६ माच को अप्पा साहेब अपने राजभवन मे बन्दी बना कर रेजीडेन्सी लाया गया। वहा पर खोज के बाद उस पर अपने चचेरे भाई की हत्या का आरोप सिद्ध कर दिया गया। यह अभियोग आज्ञार्थ गवर्नर जनरल के पास भेज दिया गया। उसने अप्पा साहेब को इलाहाबाद के गढ मे कैद करने की आज्ञा दी। पर्सोजी की पत्नी दुर्गाबाई से पुत्र गोद लेने के लिए कहा गया। इसके लिए रघुजी की पुत्री बानूबाई के दस वर्षीय बालक बाजीवा गूजर को चुना गया। गोद लेने का सस्कार १६ जून, १८१८

को हुआ, तथा उत्तराधिकारी का नाम रघुजी बापू साहेब रखा गया। अगले दशहरे के दिन ६ अक्तूबर, १८१८ को विधिपूवक उसका राजतिलक किया गया और नागपुर प्रशासन को ब्रिटिश पद्धति के अनुसार पुन सगठित कर दिया गया।

इस बीच रेजीडेन्सी मे बन्दी अप्पा साहेब ने अपने सहायको की मण्डली सहित शक्तिशाली ब्रिटिश रक्षादल के अधीन ३ मई, १८१८ को इलाहाबाद के लिए अपनी यात्रा आरम्भ कर दी। उसके पास लगभग १०० व्यक्तिगत अनुचर थे। १२ मई की रात को वे जबलपुर के समीप रायचर नामक ग्राम मे ठहरे। माग मे अप्पा साहेब ने अपने रक्षादल की निष्ठा भ्रष्ट कर दी थी। उनको मराठा शासक की पतित दशा पर दया आ गयी। प्रभात से पूव शिविर मे सवत्र शान्ति थी। तभी एक पहरे वाले सिपाही ने अपनी वर्दी के समान एक जोडी वस्त्र अप्पा साहेब को दे दिये। अप्पा साहेब उन कपडो को पहन कर भाग गया। दिन निकलने पर ही इस घटना का पता चल सका तथा तुरन्त भगोडे का पीछा आरम्भ किया गया। अप्पा साहेब महादेव की पहाडियो के गोड प्रदेश मे चला गया। वहाँ एक गोड सरदार ने उसे शरण दे दी। शीघ्र ही वर्षा ऋतु का आगमन हुआ तथा वे वन्य प्रदेश पीछा करने वालो के लिए अगम्य हो गये। ब्रिटिश सरकार ने अप्पा साहेब को पकडने के लिए घोषणाएँ प्रकाशित की तथा इनाम की जागीरो सहित एक लाख का नकद पुरस्कार प्रस्तुत किया। बाद को यह पुरस्कार दूना कर दिया गया, परन्तु कुछ भी सफलता प्राप्त न हुई। दो वष तक समस्त मध्य भारतीय जगलो की पूरी तलाशी ली गयी, परन्तु अप्पा साहेब का पता न चला। वास्तव मे उसके भ्रमण नाटकीय सिद्ध हुए, क्योकि जनता को इस मन्द भाग्य तथा दयनीय शासक के प्रति सहानुभूति थी। नागपुर तथा पूना के निकाले हुए सैनिक कुछ पिण्डारियो के साथ उसके पास एकत्र हो गये। ये पिण्डारी मैदानो से भगा दिये गये थे। इन सबने छापामार लडाई का आश्रय लिया, तथा अग्रेजो की खोज से बहुत दिनो तक बचे रहे।

जब ब्रिटिश सेनाए गोड प्रदेश पार करके अप्पा साहेब के पास पहुँच गयी और उसको वहाँ से निकाल बाहर किया तो वह आशिगढ के दुग को भाग गया। उस दुग का रक्षक यशवन्तराव लाड शिन्दे की सेवा मे था। उसने अप्पा साहेब को शरण दे दी। अग्रेजो ने ९ अप्रैल, १८१९ को इस दुग पर अधिकार कर लिया, परन्तु अप्पा साहेब पुन भाग

निकला।[७] कई वष तक वह उत्तर भारत मे घूमता रहा, परन्तु कही आश्रय स्थान न पा सका। वह लाहौर पहुँचा। उसके पीछे-पीछे ब्रिटिश सेनाएँ भी वहा पहुँच गयी। वहा सिक्ख राजा से उसको कोई सहायता न मिल सकी। अत वह वापस लौटकर १८२९ मे जोधपुर पहुँचा। यहा के शासक राजा मानसिह ने उसको शरण दी तथा भगोडे की ओर से कोई अपकार न होने के लिए ब्रिटिश सरकार को जमानत दी। यही पर अप्पा साहेब ने १५ जुलाई १८४० को ४४ वष की आयु मे अपनी जीवन लीला समाप्त की।

४ **पिण्डारी लोग तथा उनके कार्य**—पिण्डारियो के कार्यो से मराठा शक्ति के उदय का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह लुटेरा अश्वारोही दल समस्त भारतीय सेनाओ को सहायता पहुँचाता था। उनका वास्तविक इतिहास शायद अभी तक नही लिखा गया है। उनसे सम्बन्धित ब्रिटिश वणनो मे स्वाभाविक पक्षपात है जो उनकी अन्तिम वर्षो की प्रवृत्तिया के कारण उत्पन्न हो गया था। इन प्रवृत्तियो के कारण यह विचार दृढ हो गया कि पिण्डारी समाज के शत्रु है तथा इस प्रकार के जघन्य एव हानिकारक प्राणियो का सवनाश होना ही चाहिए। एक समय वे मराठो द्वारा विकसित युद्ध-प्रणाली के सुलभ आवश्यक अग थे। शिवाजी तथा सन्ताजी घोरपडे के समय से इस शैली के अन्तगत अवेतनभोगी सहायको का एक वग विशेष होता था, जिसका सम्बन्ध प्रत्येक शासक की निश्चित सेना से रहता था। इस दल का कतव्य रण समाप्त होने पर युद्धस्थल मे प्रवेश करना होता था। ये शत्रु की सम्पत्ति तथा शिविर सज्जा पर अधिकार करके उसकी पुनरुत्थान शक्ति को नष्ट कर देते थ और इस प्रकार शत्रु पूणतया समाप्त हो जाता था। इनको नियमानुसार वेतन नही मिलता था। इनसे अपेक्षा की जाती थी कि ये शत्रु प्रदेश की लूटमार करके अपना निर्वाह कर लेगे। मुगल साम्राज्य के पतनोन्मुख काल, विशेषकर औरगजेब के शासन-काल के अन्तिम वर्षो मे पिण्डारियो का उदय हुआ।[८]

---

[७] माल्कम की सेवा मे एक ब्रिटिश गुप्तचर जगल निवासी सन्त नखी बाबा के नाम से प्रसिद्ध था। इस गुप्तचर द्वारा माल्कम को मालूम हुआ कि अप्पा साहेब का विचार पजाब जाने तथा रणजीतसिह की शरण प्राप्त करने का है। ऐतिहासिक सग्रह साहित्य, जिल्द १ पृ० १६४, २६ मई १८१९ का पत्र।

[८] मराठी शब्द पेढा या पेढार की व्युत्पत्ति सदिग्ध है। इसका अथ भ्रमणशील लोगो की टोली है और यह नियमित सेनाओ के बुगा या बाजार बुगा के समानाथक है।

उसके बाद पेशवा बाजीराव प्रथम तथा उसके शिन्दे, होलकर, पवार सदृश सरदारो के समय मे भी मराठा कमाण्डरो के शिविरो मे इन पिण्डारी भ्रमण-कारियो का एक दल रहता था। ये उपद्रवी चतुर होते थे। इनके पास अपने घोडे रहते थे परन्तु उनका कोई स्थायी स्वामी नही होता था, जिसकी आज्ञा का अनुसरण किया जाता। ये समयानुसार अपनी ही योजनाओ पर अपना कार्य करते थे। जब तक दक्ष शासको द्वारा नियन्त्रित मराठा राज्य सगठित इकाई के रूप मे अपना काय करता रहा, तब तक अपने लम्बे तथा वेगपूण प्रयाणो मे अद्वितीय और सुनिश्चित काय सम्पन्न करने वाले भ्रमणशील दल अपने नियमित व्यवसाय का अनुसरण करते रहे तथा सहाय्यप्रद माने जाते रहे, जघन्य नही। परन्तु लाड वेलेजली के समय से जब प्राचीन मराठा युद्ध शैली भग हो गयी तो राज्य बहुसख्यक अश्वारोही मराठा दल को कोई उपयोगी काय न दे सका, अत वे भी इन लुटेरे दलो मे सम्मिलित हो गये। जैसे-जैसे भारतीय राज्य एक दूसरे के बाद ब्रिटिश रक्षा मे पहुँचते गये और उनकी सेनाएँ भग होती गयी, वैसे-वैसे इनकी सख्या भी बढती गयी। बार्लो तथा मिण्टो के शासनकालो मे सहायक सन्धियो की ब्रिटिश नीति के अस्थायी परित्याग से पिण्डारियो की प्रवृत्तियाँ सहसा उन्नत हो गयी। उन दिनो कुछ समय के लिए ब्रिटिश प्रसार रोक दिया गया था तथा इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी जो पिण्डारियो के तीव्र विकास के अनुकूल थी।

इस अस्थिर काल मे मालवा तथा बुन्देलखण्ड मे पेशवा तथा उसके अधीन शासको की सत्ता शनै शनै क्षीण होती गयी और क्रोध की दशा मे उनको इन पिण्डारी दलो को शरण देना और उनकी लूटमार की प्रवृत्तियो को प्रोत्सा-हित करना लाभदायक प्रतीत हुआ। कलकत्ता स्थित प्रधान ब्रिटिश सरकार के पास उनके अधीन प्रान्तीय कायकर्ताओ की ओर से भेजे हुए समाचारो का ताँता बँध गया, जिनमे इन पिण्डारियो द्वारा वष प्रति वष बढती हुई मात्रा मे किये गये भयानक सवनाश का वणन होता था। वे निरपराध जनता पर अत्याचार करते, शारीरिक पीडा देने तथा बलात्कार करते थे। उन्होने टिड्डी दल की भाँति देश को नष्ट कर दिया। जो कुछ भला काम वे किसी समय करते थे, उसका अब लोप हो गया तथा उन्होने जनता का जीवन असह्य बना दिया।[९] लाड हेस्टिग्ज का ध्यान अपने आगमन के शीघ्र पश्चात ही इस विषय की ओर गम्भीर रूप से आकृष्ट हुआ। उसने शीघ्र ही पिण्डारियो से व्यवस्थित

---

९ देखो ईस्टविक कृत लुत्फुल्ला की आत्मकथा।

युद्ध करने के लिए गृहाधिकारियो की आज्ञा प्राप्त कर ली। नेपाल युद्ध के कारण इसमे विलम्ब हो गया, क्योकि वह पहले ही छिड चुका था।

इन पिण्डारी दलो का अधिकाश भाग शिन्दे तथा होलकर की सेवा मे था। इसी कारण इन्हे शिन्देशाही तथा होलकरशाही की विशेष उपाधिया मिली हुई थी। दो पिण्डारी नेताओ हीरा तथा बुरहान ने महादजी शिन्दे की अच्छी सेवा की थी। शिन्दे ने उनको स्थायी निर्वाह के लिए नमदा के उत्तर विन्ध्य पवतमाला के क्षेत्र मे नेमावाड के प्रदेश मे जागीरे दे दी थी। इस प्रकार वह प्रदेश उनका मुख्य स्थान बन गया। हीरा तथा बुरहान की मृत्यु १८०० के लगभग हो गयी। हीरा के दो पुत्र थे—दोस्त मुहम्मद तथा वासिल मुहम्मद। ये लोग बाद मे प्रसिद्ध नेता हुए। एक अन्य पिण्डारी सरदार करीमखा यशवन्त राव होलकर के आश्रय से प्रसिद्ध हो गया तथा उसकी योजनाओ को कार्यान्वित करने के लिए मुख्य साधक बन बैठा। भोपाल राज्य पर करीमखॉ की लूट-मार अत्यन्त असह्य हो गयी। वह तथा उसके साथी चम्बल के मुहाने से गोदावरी के मुहाने तक स्वतन्त्र घूमकर बुरी तरह लूटमार करने थे। दौलत-राव शिन्दे ने उसको व्यक्तिगत भेंट के लिए राजी करके ग्वालियर के गढ मे कैद कर दिया। ५ वप निरोध मे रहने के बाद उसने शिन्दे को भारी जुर्माना चुका दिया, अत वह मुक्त कर दिया गया। नामदारखा नामक उसका एक शिष्य था। उसने शिन्दे के प्रदेशो को बहुत कष्ट दिया। उसके गुरु के साथ जो दुर्व्यवहार किया गया था, उसका उसने भारी बदला ले लिया। इसके बाद उन दोनो ने मिलकर चीतू नामक अन्य निर्भीक व्यक्ति के सहयोग से अभूतपूव मात्रा मे विनाश काय आरम्भ कर दिया। १८११ के दशहरा वाले दिन नेमावाड मे उनकी विशाल सभा हुई। २५ हजार से भी अधिक व्यक्ति अपने सुन्दर घोडो तथा असाधारण वैभव सहित इस सभा मे सम्मिलित हुए। यहा उन्होने समस्त भारत मे फैलने की एक विशाल योजना बनायी तथा प्रत्येक दल को विशेष काय दे दिये गये।

दोनो नेताओ मे शीघ्र झगडा हो गया, अत समस्त योजना नष्ट हो गयी। शिन्दे ने चीतू को अपनी ओर कर लिया और उन दोनो ने मिलकर करीमखा पर आक्रमण किया। करीमखॉ फिर पकड कर निरोध मे डाल दिया गया। इस सफलता से चीतू का साहस बढ गया तथा वह १५ हजार अनुचर साथ लेकर नमदा स्थित अपने शिविर से चल पडा। १८ हजार का एक अन्य दल लेकर दोस्त मुहम्मद उसके साथ हो गया। दोनो ने १८१४ के दशहरा का उत्सव साथ-साथ मनाया और इसके बाद वे अपने-अपने दल लेकर साह-

सिक कार्य करने पृथक दिशाओ मे चल पडे । आगामी वष (१८१५) उन्होने उसी पराक्रम की आवृत्ति की । इस बार चीतू दो दल लेकर दक्षिण की ओर गया— एक दल ताप्ती नदी के साथ बढा तथा दूसरे ने स्वय चीतू के नेतृत्व मे निजाम के राज्य पर धावा किया। चीतू नवम्बर मे कृष्णा नदी तक पहुँच गया तथा उसके तटो पर बढता हुआ ठेठ पूर्वीय समुद्रतट पर स्थित नदी के मुहाने तक पहुँच गया। वह गोदावरी के किनारो पर बढता हुआ वापस आ गया। उसको लूट मे असख्य धन मिला, जिसे बेचने के लिए नेमावाड मे बहुत बडा बाजार लगाया गया। यहाँ बहुमूल्य आभूषणो तथा वस्तुओ की खुली बिक्री हुई। इससे उन लुटेरो द्वारा इन वर्षो मे किये गये विनाश का अनुमान हो सकता है। यशवन्तराव होलकर के पास अमीरखा तथा शहामतखा नामक दो पठान सरदार थे। उनके पराक्रमो मे उनके भाग का उल्लेख पहिले हो चुका है। जब यशवन्तराव ने १८०२ की दीवाली के अवसर पर पेशवा को परास्त करके पूना से भगा दिया था, इन दोनो साहसी वीरो ने उसे सहायता दी थी। अमीरखा ने मन्दसौर के हिन्दू व्यापारियो से बलपूवक धन सग्रह किया—वह उनकी उँगलियो पर रूई लपेट कर आग लगा देता था। स्वीकार किया जाता है कि उदयपुर की कृष्णाकुमारी की हत्या अमीरखाँ की आज्ञा से की गयी थी। शहामतखा का १८१४ मे देहान्त हो गया, परन्तु उसका सहकारी होलकर राज्य की सेवा करता रहा। महीदपुर के रण के पूव उसको प्रलोभन दिया गया कि वह होलकर की सेवा त्यागकर टोक की नवाबी स्वीकार कर ले। उसके वशज दीघकाल तक वहा शासन करते रहे।

पिण्डारी नेताओ ने १८१६ मे अपनी प्रवत्ति पुन आरम्भ की। वे अपने मालवा स्थित मुख्य स्थान से फरवरी मे चले। उन्होने ठेठ मासुलीपट्टन तक विशाल प्रदेश पर धावा बोल दिया। १० माच को वे मासुलीपट्टन पहुँच गये। वहा से उन्होने मद्रास के ब्रिटिश प्रदेशो मे प्रवेश किया। प्रत्येक दिन वे करीब ४० मील धावा करते तथा कम से कम ५० गाँवो को नष्ट कर देते थे। कडप्पा को लूटकर वे उत्तर की ओर मुड गये और अपना पीछा करने वाली ब्रिटिश सेनाओ को धोखा दे दिया। बाद मे उन्होने हैदराबाद तथा पूना के प्रदेशो को लूट लिया और १७ मई को नमदा पार कर नेमावाड स्थित अपने निवास स्थान पर पहुँच गये। यह चमत्कारपूण काय उन्होने साढे तीन महीनो मे पूरा कर लिया। हम उनके द्वारा किये गये महान विनाश की कल्पनामात्र कर सकते है तथा विभिन्न स्थानो के जिन ब्रिटिश शासको के प्रदेश मे विनाश लीला रची गयी उनकी परेशानियो का सहज ही अनुमान किया जा सकता

है। १८१५-१८१६ के दो वर्षो म पिण्डारियो न समस्त दक्षिण भारत के दो चक्कर लगा डाले। अग्रेजो ने इस विनाश का सूक्ष्म अन्वेषण किया तो प्रकट हुआ कि पिण्डारी मद्रास प्रान्त मे केवल १२ दिन तक ठहरे थे। इसी अल्प समय मे उन्होने १८२ आदमियो को मार डाला, ५०० को घायल कर दिया तथा कम से कम ३५०० अन्य व्यक्तियो को नाना प्रकार की हानिया पहुँचाइ। इसके अतिरिक्त उन्होने कम से कम १० लाख का धन लूट लिया। ब्रिटिश सरकार के प्रदेशो को अपनी प्रवृत्तियो के लिए उन्होने विशेष रूप से इसलिए चुना था जिससे अग्रेजो द्वारा पिण्डारियो के सर्वनाश के उपाय निष्फल किये जा सके। पेशवा का कार्यकर्ता बालोजी कुजर इस समय मराठा सरदारो को यह परामर्श देता हुआ भ्रमण कर रहा था कि वे पिण्डारियो का साथ दे, जिससे ब्रिटिश सत्ता के प्रसार का विरोध किया जा सके। अत ब्रिटिश योजनाओ का उद्देश्य पिण्डारियो को घेर लेने के अतिरिक्त उन्हे गुप्तरूप से सहायता पहुँचाने वाले समस्त ब्रिटिश विरोधी व्यक्तियो को भी घसीट लेना निश्चित किया गया। कहा जा सकता है कि ये ब्रिटिश विरोधी दल पेशवा, नागपुर के अप्पा साहेब तथा मालवा के होलकर के सम्मिलित प्रयासो के फल थे। मराठा स्वातन्त्र्य को सुरक्षित रखने के अस्पष्ट विचार से एक साथ विद्रोह आरम्भ करने की जो योजना बनी, ये उसकी उपशाखाए थी। अत पिण्डारी युद्ध तथा मराठा युद्ध एक तथा उसी उद्देश्य के परस्पर पूरक है, जिसके साथ बालोजी कुजर, त्रिम्बकजी डैगले तथा अन्य अनेक साहसी पुरुषो ने अपने आपको एकरूप कर लिया था। इन भारतीय शासको को अपनी सत्ता के ह्रास से अत्यन्त वेदना थी। अत जब पिण्डारी लोग ब्रिटिश प्रशासको को क्लेश पहुँचाते थे तो इन्हे अदृष्ट रूप से सन्तोष होता था। इन ब्रिटिश प्रशासको ने अब सावधान होकर प्रत्येक भारतीय शासक को केन्द्रीय आन्दोलन का साथ देने से रोकने का प्रयत्न किया। इन उपायो को आगे स्पष्ट किया जायेगा।

५ **पिण्डारियो का विनाश**—सभी विरोधो के दमन तथा समस्त भारत मे ब्रिटिश शासन का असदिग्ध आधिपत्य स्थापित करने के लिए गवर्नर जनरल ने व्यापक नीति की घोषणा की। विभिन्न स्थानीय अधिकारियो को आज्ञा दी गयी कि वे प्रत्येक भारतीय शासक से लिखित निवेदन प्राप्त कर ले कि पिण्डारी लोग शान्ति के मार्ग मे कण्टक है तथा वे पूर्ण विनाश के पात्र है। पिण्डारियो की रक्षा करने का साहस किसी को नही हुआ, यद्यपि अनेक व्यक्ति अपने हृदय मे उनके प्रति सहानुभूति रखते थे। पिण्डारी उपद्रव पर काबू पाने योग्य व्यापक प्रगति के लिए महान उपायो की आवश्यकता थी। ये महान

उपाय जयपुर, भोपाल, नागपुर, पूना तथा हैदराबाद राज्यो के प्रदेश मे कार्यान्वित किये जाने थे। इनके बीच ब्रिटिश प्रदेश भी आ जाते थे। गवनर जनरल ने समस्त शासको को इस युद्ध मे भाग लेने का निमन्त्रण दिया तथा जिन्होने इस युद्ध मे भाग नही लिया उनके साथ ब्रिटिश सरकार के शत्रुओ के समान व्यवहार करने की चेतावनी दी। स्वभावत काय की विशेष योजना तैयार करने मे सरकार को एक वष से अधिक लग गया। स्पष्ट कह दिया गया कि बार्लो तथा मिण्टो की हस्तक्षेप शून्य नीति का परित्याग कर दिया गया है तथा समस्त शासको को निमन्त्रण दिया गया कि पिण्डारियो के दमन के उद्देश्य से ब्रिटिश शासन के साथ नवीन सन्धिया करे। गवनर जनरल ने देश को दो भागो—उत्तरी तथा दक्षिणी—मे विभक्त कर दिया। इनके बीच मे नमदा नदी थी। तत्कालीन ब्रिटिश दूत चार्ल्स मेटकाफ को उत्तरी शासको के साथ सन्धि करने के लिए नियुक्त किया गया तथा जौन मात्कम को दक्षिण मे यही काय सोपा गया। १८१७ की वर्षा ऋतु मे इन दोनो दूतो ने अपने सुपुद किया हुआ काय सम्पन्न किया। मेटकाफ ने कोटा, भोपाल, बूदी, उदयपुर, जोधपुर तथा जयपुर के शासको के साथ विशेष सन्धिया कर ली। अत ब्रिटिश अधिपत्य स्वीकार कर लेने के कारण उनमे से अब एक भी पिण्डारियो को शरण नही दे सकता था।

इसी प्रकार जौन माल्कम पूना, नागपुर तथा हैदराबाद गया। निजाम पहिले से ही अग्रेजो का मित्र था। माल्कम पेशवा या नागपुर के राजा को नही मिला सका, क्योकि वे ब्रिटिश शासको को पहले से परेशान कर रहे थे। माल्कम ने भ्रमण करके ब्रिटिश रणनीति की योजनाएँ सयुक्त की। उसने विभिन्न क्षेत्रो मे नियुक्त रेजीडेण्टो तथा कमाण्डरो को पूण निर्देश दिये। उसके बाद माल्कम तथा मेटकाफ गवनर जनरल से मिले तथा उन्होने ऋतु अनुकूल होते ही अभियान आरम्भ करने की पूरी तैयारी कर दी। गवनर जनरल स्वय आगरा के सम्मुख यमुनातट पर स्थित ब्रिटिश शिविर मे आ गया और बाद मे वहा से बुन्देलखण्ड चला गया।

पेशवा ने इस बीच मे मराठा सरदारो को एक साथ विद्रोह करने के लिए गुप्त सन्देश भेजे तथा अपनी सेना बढा ली। इसका बहाना उसने यह बनाया कि माल्कम से पिण्डारियो के विरुद्ध युद्ध मे सहयोग देने का निमन्त्रण पाकर मैने ऐसा किया है। शिन्दे दो परस्पर विरोधी आह्वानो मे फँसकर कतव्य-विमूढ हो गया था। उसको मराठा सघ के सदस्यो से सहानुभूति थी, परन्तु वह ब्रिटिश सेनाओ से घिरा हुआ था। अत असहाय होकर उसने ५ नवम्बर, १८१७ को ब्रिटिश सरकार के साथ नवीन सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये

तथा पिण्डारियो के विरुद्ध युद्ध करने मे उनका सहयाग देन के लिए बाध्य हो गया। ब्रिटिश सेना दो विशाल विभागो मे सगठित की गयी। एक विभाग उत्तरी क्षेत्रो के लिए था। वह जनरल आक्टरलोनी के अधीन यमुना पर नियुक्त किया गया। दूसरा विभाग सर टामस हिस्लप के अधीन दक्षिण म युद्ध करने के लिए नमदातट पर नियुक्त किया गया। राजनीतिक विपया पर परामश देने के लिए माल्कम इस सेना के साथ था। इन दो मुख्य विभागो के अधीन छोटी-छोटी टोलियाँ सामरिक महत्त्व के विभिन्न स्थानो पर नियुक्त की गयी। पिण्डारियो की सख्या उस समय लगभग २३ हजार थी। वे तीन शिविरो के अन्तर्गत तीन विभागो मे बटे हुए थे। उनके नेता चीतू, करीमखा तथा वासिल मुहम्मद थे। उन्होने मराठा शासका का समथन प्राप्त करने का उत्साहपूण प्रयत्न किया। पूना, नागपुर और इन्दौर के शासको स उनका आशिक सहायता मिली भी।

गवनर जनरल ने १६ अक्तूबर, १८१७ का अपना अभियान आरम्भ किया। ब्रिटिश सेनाए अपने मुख्य स्थानो स चल पडी और मालवा मे पिण्डारियो के आश्रय स्थानो की ओर बढी। करीमखा तथा वासिल मुहम्मद १३ दिसम्बर को झालावाड के समीप शाहाबाद के स्थान पर परास्त कर दिये गये। वे उदयपुर के जगलो मे भाग गये। वे शीघ्र ही अपने आश्रय स्थानो मे निकाल दिये गये। उग्रतापूवक पीछा किये जाने पर वे नमदा की ओर भाग निकले। वे सवथा किकतव्यविमूढ हो गये और उनके अनुयायियो ने उनका पक्ष छोड दिया। गवनर जनरल न तुरन्त आत्मसमर्पण कर देने वालो को क्षमा करने का वचन दिया। वासिल मुहम्मद ने अपने को शिन्दे के सुपुर्द कर दिया और जब वह पलायन का प्रयास करता हुआ पकड लिया गया तो उसने विषपान कर लिया। करीम खा ने १५ फरवरी, १८१८ को माल्कम के समक्ष आत्मसमपण कर दिया। गोरखपुर के समीप उसको छोटी-सी रियासत दे दी गयी। एक अन्य नेता नामदारखा ने ३ फरवरी को भोपाल के समीप देवराजपुर मे कनल ऐडम्स के प्रति आत्मसमपण किया। पिण्डारी सरदारो मे सर्वाधिक भयकर चीतू का अविराम तथा कठोरतापूण उत्साह से तब तक पीछा किया गया, जब तक वह आशिगढ के समीप जगल मे न भाग गया। वहाँ एक चीता उसको खा गया। इस प्रकार कई वष पुराने पिण्डारी उपद्रव का शीघ्र ही लोप हो गया।

६ **होलकर की सत्ता समाप्त**—पिण्डारी युद्ध मराठा सत्ता के समस्त चिह्नो का सर्वनाश करने तथा सम्पूण भारत मे असदिग्ध ब्रिटिश अधिपत्य

स्थापित करने के लिए एक विशाल ब्रिटिश योजना थी। योजना के अन्तगत एक दीघकालीन प्रक्रिया मे पूना के अतिरिक्त न्यूनाधिक रूप से इन्दौर, नागपुर, बडौदा तथा ग्वालियर सम्मिलित थे। इनके साथ पृथक-पृथक रूप से निपटा गया। यशवन्तराव होलकर की मृत्यु के बाद उसकी नवयुवती सुन्दरी पत्नी तुलसीबाई ने मल्हारराव के नाम से सत्ता सँभाली।* तुलसीबाई मे राज्यकाय की असाधारण क्षमता थी। मल्हारराव यशवन्तराव का अन्य पत्नी से उत्पन्न पुत्र था। उसकी आयु उस समय चार वष की थी। तुलसीबाई ने अपने कृपा-पात्र गणपतराव तथा उसके साथ तात्या जोग की सहायता से होलकर राज्य का बहुत योग्यता से प्रबन्ध किया। इस काय मे उसने राज्य के प्राचीन सेवको, अपने पति के मुस्लिम सहकारियो अमीरखाँ एव गफूरखा तथा एक पडौसी मित्र कोटा के जालिमसिह का सहयोग प्राप्त कर लिया। उसके कष्ट का प्रमुख कारण धनाभाव था। बिना धन के वह सेना नही रख सकती थी और बिना सेना के राज्यकाय चलाना असम्भव था। उसका कष्ट दौलतराव शिन्दे के कारण और भी अधिक हो गया। शिन्दे ने होलकर के अरक्षित प्रदेशो पर अत्यन्त उग्रता से धावा किया ओर तुलसीबाई तथा मल्हारराव को मार डालने का भी यत्न किया। इस प्रकार की विषम परिस्थिति मे उसको पूना से पेशवा का अग्रेजो के विरुद्ध तीव्र आक्रमण मे भाग लेने के लिए सेना भेजने का आग्रहपूण निमन्त्रण मिला। निराश होकर वह मल्हारराव को अपने साथ लेकर इन्दौर से रामपुरा को चली गयी तथा कोटा के पास जालिमसिह के यहा शरण ली। ब्रिटिश शासक ध्यानपूवक उसकी गतिविधि देखते रहे तथा उन्होने उसकी सेना का दक्षिण की ओर कूच रोकने के लिए अविलम्ब उपाय किये। १८१७ के अतिम मासो मे यह सेना दो दलो के बीच फँस गयी। माल्कम ने तुलसीबाई की परिस्थिति का ध्यानपूवक अवलोकन किया तथा उसके सम्मुख वही शर्ते उपस्थित की जिन्हे शिन्दे स्वीकार कर चुका था। तात्या जोग ने उसे इन शर्तों को स्वीकार करके ब्रिटिश रक्षा ग्रहण करने का परामश दिया। परन्तु इस समय वास्तविक सत्ता उसके हाथो मे नही थी। वास्तविक सत्ता सेनानायक पठान नेताओ, विशेषकर रोशन बेग तथा रामदीन के पास थी। रोशन बेग अनुशासित दलो का नेता था और रामदीन के अधिकार मे मराठा अश्वारोही थे जो उस समय भारत मे सर्वोत्तम माने जाते थे।[१०]

---

[१०] मिल कृत 'भारत का इतिहास', जिल्द ८, पृ० २८३। काये कृत 'माल्कम', जिल्द २, पृ० २०१

यह जानकर कि ब्रिटिश प्रस्ताव स्वीकार करने से उनकी शक्ति का सवनाश हो जायेगा, पेशवा के पास से पर्याप्त धन आने तथा अधिक धन की प्रतिज्ञा से प्रोत्साहित होकर दोनो सरदारो ने रण का माग ग्रहण करने का आग्रह किया तथा महिला को होलकर सेना को दक्षिण की ओर प्रयाण करने की आज्ञा दे देने के लिए विवश कर दिया। होलकर राज्य का एक मुख्य समथक अमीरखा था। उसने दिसम्बर के आरम्भ मे अग्रेजो का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया कि उसकी सेनाओ का शेष वेतन चुका दिया जायेगा तथा उसको टोक की नवाबी दे दी जायेगी। अमीरखा द्वारा यह पक्षत्याग सकेत सिद्ध हुआ। अन्य सैनिक सरदारो का विश्वास था कि तुलसीबाई तथा उसके परामशदाता उनको अग्रेजो के हाथ बेच देना चाहते हे, अत उन्होने इस विश्वासघाती योजना को विफल करने का निश्चय कर लिया। १९ दिसम्बर को सायकाल उन्होने राज-प्रतिनिधि तथा मन्त्री को पकड कर कठोर निरोध मे डाल दिया तथा एक सभा बुलायी। इसमे वन्दियो के साथ व्यवहार निश्चित करने के लिए गरमागरम वादविवाद हुए। २० की प्रात तुलसीबाई कारावास से बाहर लायी गयी तथा सिप्रा नदी के तट पर स्थित महीदपुर पहुँचायी गयी (उज्जैन के उत्तर मे ३० मील पर)। वहाँ इस अभागी महिला का सिर धड से अलग कर दिया गया तथा रक्तरजित अवशेप नदी मे डाल दिये गये। उस समय उसकी आयु पूरे ३० वष की भी नही थी।

हिसलप के अधीन विभिन्न ब्रिटिश सेनाओ ने होलकर की सेना का शिविर तुरन्त घेर लिया (२१ दिसम्बर) तथा वे सामने वाले तट पर डट गये। हिसलप ने अत्यन्त साहस से होलकर दल पर आक्रमण किया, यद्यपि उसके शत्रु उस पर घोर अग्निवर्षा कर रहे थे। उसमे ७७८ आदमी मारे गये अथवा घायल हो गये, फिर भी उसने निर्णायक विजय प्राप्त कर ली। अल्प-वयस्क मल्हारराव होलकर वश परम्परागत वीरतापूवक लडते हुए दलो के बीच अपने घोडे पर घूम घूमकर अपने सैनिको से पीठ न दिखाने की प्राथना करता रहा। उसकी २० वर्षीया विधवा बहन भीमाबाई ने भी रण मे वैसी ही वीरता का परिचय दिया। वह विजय प्राप्त करने के लिए सुन्दर घोडे पर सवार होकर अपने अश्वारोही दल का नेतृत्व कर रही थी। विठोजी के पुत्र हरिराव होलकर ने अत्यन्त वीरता से युद्ध किया तथा अग्रेजो को बहुत हानि पहुँचाई। परन्तु इस प्रकार का साहस तथा उत्साह ब्रिटिश सेना के उत्तम तोपखाने के सामने कुछ नही कर सका। विजेताओ ने ६३ तोपो तथा विशाल रण-सामग्री सहित होलकर के समस्त शिविर पर अधिकार कर लिया। रण

के बाद अमीरखा और गफूरखा ने मालकम के समक्ष अपनी मध्यस्थता प्रस्तुत की तथा तात्या जोग के सहयोग से ६ जनवरी, १८१८ को सन्धि कर ली। इसे मन्दसोर की सन्धि कहते हे। इसमे उल्लिखित धाराओ के अनुसार ब्रिटिश अधिपत्य का सम्मान करना तथा बदी के उत्तर एव सतपुडा पवतमाला के दक्षिण मे होलकर के समस्त प्रदेश अग्रेजो को देना निश्चित हुआ। इसके अतिरिक्त होलकर ब्रिटिश सहायक सेना को अपने यहाँ स्थान देने तथा अपनी सेना को घटाकर ३ हजार करने के लिए सहमत हो गया।[११] गफूरखा को जावरा की जागीर मिली। उत्तर भारत के निर्भीक ब्राह्मण योधा रामदीन ने आत्मसमपण करने से इनकार कर दिया। अन्य किसी व्यक्ति से यह काय न हो सका। वह अपने अधीन सैनिको को लेकर भगोडे पेशवा का वीरतापूवक साथ देने के लिए चल पडा।

७ **पेशवा द्वारा युद्ध**—बाजीराव ने कडे दबाव तथा वेदना के कारण १३ जून वाले सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये थे, परन्तु उसके हृदय मे अन्याय की कटु अनुभूति विद्यमान थी। वह अपनी वार्षिक यात्रा पर पण्ढरपुर गया तथा लगभग तीन महीने तक अपनी राजधानी को नही लौटा। वह अग्रेजो के विरुद्ध युद्ध की तैयारियो मे व्यस्त रहा। ब्रिटिश सरकार से पिण्डारियो के विरुद्ध युद्ध का समथन करने के लिए निमन्त्रण प्राप्त हुआ। उससे पेशवा को नवीन सेनाएँ भरती करने का उचित कारण मिल गया। अग्रेजो की ओर से भी छलकपट कुछ कम स्पष्ट नही था। गवनर जनरल ने पेशवा को उसकी दोहरी नीति के कारण सदा सर्वदा के लिए समाप्त करने का निश्चय कर लिया था। वह बहुत दिन से इसी प्रकार का व्यवहार कर रहा था। २५ जून को आषाढ पूजा करने के बाद बाजीराव पण्ढरपुर से माहुली गया। उसका प्रकट उद्देश्य वहा अधिक मास मे धम-ग्रन्थो द्वारा विहित स्नान करना था। इस समय उसका अनुयायी दल बहुत बढ गया था। उसने कई भारतीय शासको को गुप्त रूप से अग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह करने को उत्तेजित किया था। बर्मी साम्राज्य का सहयोग प्राप्त करने के लिए भी विस्तृत षडयन्त्र किया गया था।[१२]

इस समय जान मालकम पिण्डारी युद्ध मे सहयोग प्राप्त करने के लिए दक्षिण के दरबारो का दौरा कर रहा था। माहुली मे वह पेशवा से मिला।

---

[११] होलकर के राजपत्र (१९४५ मे मुद्रित) जिल्द २, न० १४७

[१२] लाड हेस्टिंग्ज का व्यक्तिगत वृत्त, पृ० ३६९

वह अपनी भेंट का वणन इस प्रकार करता हे—"९ अगस्त को ७ बजे प्रात काल मै महाराजा से मिलने गया। ६ वष पहिले मे उससे मिला था तथा उस समय से उसमे कोई अधिक परिवतन न हुआ था। वह चिन्ताग्रस्त अवश्य मालूम होता था। उसने हृषपूवक मेरा स्वागत किया ओर कहा—'मुझको गद्दी पर बैठाने मे वेलेजली तथा क्लोज के साथ आप भी थे। इतनी दूर से मिलने आकर आपने सिद्ध कर दिया हे कि आप अब भी मेरे साथ सहानुभूति रखते है। मुझको हृष है कि ऐसे व्यक्ति के समक्ष अपना हृदय खोलकर रखने का अवसर प्राप्त हुआ हे जो मुझ पर विश्वास करता है।' हम साढे तीन घण्टे तक वार्तालाप करते रहे। जो बातचीत हुई वह राजनीतिक विषय होने के कारण गुप्त है, परन्तु परिणाम सन्तोषजनक था।" मारकम को मालूम हुआ कि पूना की अपमानजनक सन्धि से बाजीराव के हृदय को गहरी चोट पहुँची है। अत बाजीराव ने पुन पुन अभिवादन किया तथा आश्वासन भरी बाते कही। उसने कहा कि वह सदैव अग्रेजो का मित्र रहा हे। उसने पिण्डारियो के विरुद्व युद्व मे सहायता देन के लिए लम्बी-चोडी प्रतिज्ञाएँ की। अपनी स्थिति के कष्टा का उसने स्वतन्त्रतापूवक वणन किया तथा पुन कहा कि उसके साथ कठोर व्यवहार किया गया है। साथ ही एल्फिस्टन ने उसकी कटु निन्दा की हे। स्पष्टत वह चिन्तित तथा हताश हे। माल्कम ने दु खी पेशवा का सान्त्वना तथा प्रोत्साहन देने का प्रयत्न किया तथा उसको बिदा होते समय पेशवा के सन्तुष्ट होने का विश्वास हो गया, यद्यपि वह आश्वासित नही हुआ था। हो सकता हे, उस समय बाजीराव निष्कपट हो गया हो, परन्तु उसमे चरित्र की स्थिरता लेशमात्र भी नही थी। अत उसके वचनो का कोई विश्वास नही किया जा सकता था। माल्कम ने १० अगस्त को पूना वापस आकर एल्फिस्टन से आग्रह किया कि बाजीराव के आचरण पर सन्देह न किया जाये तथा इस सन्देह का कोई प्रभाव सरकार की सैनिक योजनाओ पर न पडना चाहिए। एल्फिस्टन ने अपनी वीरतापूण मनोवृत्ति के कारण इच्छा न होते हुए भी इस विषय मे अपनी सहमति दे दी।[१३]

बाजीराव के प्रति अधिक नम्रता से व्यवहार करने से सम्बन्धित माल्कम के सुझाव से एल्फिस्टन सवथा असहमत था। उसका विचार था कि वर्षा के निकटवर्ती अनुभव के कारण केवल मै ही उस गम्भीर छल-कपट को समझ

[१३] काये कृत माल्कम की जीवनी, जिल्द २, पृ० १७०, १७२

सकता हूँ, जिसे पेशवा सुविधापूवक कर सकता है। जो मनुष्य थोडे समय के लिए इसके सम्पक मे आते है, वे उसके मधुर व्यवहार तथा वाक्चापल्य के कारण धोखा खा जाते है। माल्कम के परामर्शानुसार एल्फिस्टन ने पेशवा के प्रति अपनी पूर्व कठोरता शिथिल कर दी। उसने स्वय लिखा है कि केवल इसी सुविधा के कारण रेजीडेन्सी को जलाया जाना तथा बाद के समस्त घोर कृत्य सम्भव हो सके।

माहुली मे अपने पास माल्कम के आगमन का अपनी गुप्त योजनाओ के विकास मे उत्तम उपयोग करने मे पेशवा सफल रहा। अगस्त मे माहुली के स्थान पर वार्षिक मेला होता है। इसके महत्त्वशाली अग मल्लयुद्ध तथा व्यायाम सम्ब धी आमोद-प्रमोद होते है। इस समारोह के प्रतिस्पर्धियो मे से पेशवा ने नवीन सेनाओ के लिए शक्तिशाली तथा उपयोगी रगरूट छाँट लिये। उसने अपनी सेना के चीफ कमाण्डर बापू गोखले से विधिपूवक शपथ ग्रहण करा ली कि वह उसके द्वारा युद्ध सचालन मे हस्तक्षेप न करेगा। पेशवा ने निपुण सेना तैयार करने के लिए बापू गोखले की इच्छा पर एक करोड रुपये दिये। अपहृत रियासतो वाले सरदारो तथा जागीरदारो से अपने आयोजित अभियान मे हार्दिक सहायता प्राप्त करने के लिए प्रलोभन देने की दृष्टि से सबकी रियासते लौटा दी गयी। जिन सरदारो से उसका वैमनस्य था, उनको पुन प्रसन्न कर लिया। उसने पटवर्धन, पसे, रस्ते परिवारो तथ अन्य सरदारो और निपानी के अप्पा देसाई को व्यक्तिगत रूप से मिलने के लिए निमन्त्रण दिया तथा प्रत्येक से मित्र के रूप मे यथाशक्ति सहयोगपूण प्रयास के लिए निवेदन किया। उसने छत्रपति से मिलकर अपने विचार प्रकट किये तथा उससे सहयोग और भेद गुप्त रखने की शपथ ले ली। जब बाजीराव को पता लगा कि राजा गुप्त रूप से ब्रिटिश रेजीडेण्ट के साथ हानिकारक षडयन्त्र कर रहा है तो उसे तथा उसके परिवार को पकड कर वसोटागढ मे कठोर बन्धन मे डाल दिया। बाजीराव ने गोविन्दराव काले, अन्याबा मेहेण्डले, दादा गडरे तथा नाना फडनिस के शासनकाल के अन्य वृद्ध तिरस्कृत कूटनीतिज्ञो को अपनी सेवा मे बुला लिया और प्रत्येक शक्य उपाय से अपनी स्थिति सबल करने के लिए उनके विचार ज्ञात किये। सितम्बर के अन्त मे पेशवा माहुली से पूना वापस आ गया।

दोनो प्रतिद्वन्द्वियो—बाजीराव तथा एल्फिस्टन—ने अपनी योजनाओ को किस प्रकार विकसित किया, इस सम्बन्ध मे ब्रिग्स के सस्मरण अच्छा वणन

देते है ।[१४] एल्फिस्टन की गतिविधि की सूचना प्राप्त करने के लिए बाजीराव ने रेजीडेन्सी के सेवको को घूस देने तथा कम्पनी की सेनाओ को प्रलोभन देने मे बहुत धन व्यय किया । बाजीराव की सेना के इगलिश कमाण्डर को दो लाख रुपये मिले कि वह त्रिम्बकजी तथा उसकी गतिविधि के सम्बन्ध मे जानकारी देता रहे । भारत के देशी दरबारो के साथ सम्पक रखने के लिए एल्फिस्टन ने नियमित डाक व्यवस्था स्थापित करली और इस विभाग का प्रबन्ध उसने पूना के ब्रिटिश पोस्ट मास्टर को सौप दिया । एल्फिस्टन के इस पूण प्रबन्ध के कारण उसके पाम नित्य सूचनाएँ पहुँचती रही कि पेशवा के दूत विभिन्न भारतीय दरबारो मे किम प्रकार व्यस्त हे तथा अपने स्वामी के हित मे वे किस प्रकार विपुल धन व्यय कर रहे है । बाद मे पता चला कि अपनी डेढ करोड रुपये की वार्षिक आय मे से बाजीराव प्रति वर्ष एक तिहाई बचा लेता था । इस प्रकार १८१७ के अन्त मे उसके पाम रत्नो तथा नकदी के रूप मे ८ करोड से अधिक धन अवश्य रहा होगा । उसने रेजीडेन्सी के प्रत्येक कमचारी को घूस दी, परन्तु एल्फिस्टन की सतकता उसके लिए प्रबल विघ्न सिद्व हुई । बालाजी पन्त नाटू, यशवन्तराव घोरपडे, सतारा का चिटनिस एव अन्य व्यक्ति एल्फिस्टन के गुप्त सम्वाददाता थे । वे लोग बाजीराव की प्रत्येक गति और योजना का समाचार भी उसको पहुँचा देते थे । इसके विपरीत बाजीराव का ढग असस्कृत था तथा उसके कायकर्ता बाह्य जगत से अपरिचित थे । अत वह सावजनिक उपहास का विषय बन गया । कम्पनी के सिपाहियो को भ्रष्ट करने का काय वामन भट्ट कर्वे तथा शकराचाय स्वामी को दिया गया और इगलिश अधिकारियो को भ्रष्ट करने का भार सन्दूर शाखा से यशवन्तराव घोरपडे को सौपा गया । यशवन्तराव ने बाजीराव से धन स्वीकार कर लिया, परन्तु एक अन्य स्रोत से एल्फिस्टन को इस तथ्य का पता चल गया । इस प्रकार हम जान सकते है कि बाजीराव की समथक पुरोहित मण्डली ने किस निपुणता से उसकी सेवा की होगी ।

बाजीराव ने पिण्डारियो के विरुद्ध युद्ध मे महयोग की गम्भीर प्रतिज्ञा की थी, अत एल्फिस्टन ने कैप्टिन फोड तथा उमके सम्पूण दल को अपनी आज्ञा मे ले लिया । बाजीराव ने इस दल का पालन-पोषण सावधानी के साथ अपने ही उपयोग के लिए किया था ।

दशहरा का वार्षिक समारोह ६ अक्तूबर को हुआ । उस दिन पेशवा ने

[१४] कोलब्रुक कृत 'एल्फिस्टन की जीवनी', जिल्द १, पृ० ३०१

रेजीडेण्ट के साथ जानबूझकर अपमानजनक व्यवहार किया। १४ अक्तूबर को दोनो एक दूसरे से मिले जो दैवयोग से उनका अन्तिम मिलन था। इस अवसर पर पेशवा ने असाधारण रूप से कठोर भाषा का उपयोग किया। "मेरे ऊपर किसी प्रकार का विश्वास नही किया जाता"—इसका पेशवा ने निवारण करना चाहा। वार्तालाप मे स्पष्ट गतिरोध उपस्थित हो गया तथा आगे क्या होने वाला है, इस विषय मे दोनो अपने पृथक विचार लेकर एक दूसरे से अलग हो गये। एल्फिस्टन ने इसका परिणाम निकाला कि बाजीराव निश्चय रूप से शत्रु तो है, परन्तु उसको सहसा युद्ध का साहस न हो सकेगा। बापू गोखले के अतिरिक्त उसका कोई अन्य परामशदाता इस माग पर चलने के लिए अनुमति नही देगा। बाजीराव की तैयारियो से पूरी जानकारी रखने वाले विटठलराव विंच्रकर ने युद्ध-घोषणा के विरुद्ध अपनी दृढ सम्मति प्रकट की। गोविन्दराव काले ने[१५] कुछ कुछ सशयात्मक शब्दो मे विंच्रकर का समथन किया। बाजीराव को अच्छी तरह मालूम था कि शिन्दे पूणत अग्रेजो के वश मे है तथा होलकर और नागपुर का भोसले उसको ठोस सहायता नही दे सकते।

८ **पेशवा का पलायन**—रेजीडेण्ट का निवास स्थान पेशवा का पूण आक्रमण सहन करने मे किसी प्रकार समथ न था। सगम वाली रेजीडेन्सी उसका केवल दो पैदल पलटनो वाला व्यक्तिगत अगरक्षक दल था। उस समय की नियमित छावनी नगर से पूव गारपीर नामक स्थान पर थी। यहाँ इस समय डाकघर है। वहा देशी पैदलो की दो पलटने कनल बर के अधीन थी। नगर के इस निकटवर्ती स्थान को कुछ समय से अरक्षित समझा जाता था, अत एल्फिस्टन ने बर की सेना को किरकी गाँव हटा दिया था। वहाँ उसको उत्तर-पश्चिम मे लगभग ५ मील पर डपुरी मे नियुक्त कैप्टिन फोर्ड की सहायक सेना की सहायता प्राप्त हो सकती थी। फोड तथा उसके अधिकारियो की पेशवा के दरबार से—विशेषकर मोरो दीक्षित तथा बापू गोखले के साथ—अच्छी मित्रता थी। ३० अक्तूबर को बम्बई के योरुपीय दल की अनायास सहायता बर को प्राप्त हो गयी तथा रेजीडेण्ट के साथ परामश द्वारा उसने किरकी मे अपना स्थान इस प्रकार तैयार कर लिया कि पेशवा के सहसा

---

[१५] यह काले प्राचीन समय का अन्तिम मराठा कूटनीतिज्ञ था। १३ सितम्बर १७८६ को अपने पिता की मृत्यु पर उसने निजाम के दरबार मे राजदूत का काय सँभाला था। उसने मराठा राजनीति के विचित्र उत्थान-पतन देखे थे। उसका देहान्त नवम्बर, १८२३ मे हुआ।

आक्रमण का सामना कर सके । समस्त ब्रिटिश सेना मे ३ हजार से अधिक सैनिक न थे और उनके पास केवल ५ तोपे थी ।

३ नवम्बर को एल्फिन्स्टन ने अपनी परिस्थिति इस प्रकार भयावह पाई कि उसे सिरूर को सहायता के लिए आग्रहपूर्ण सन्देश भेजना पडा । सिरूर अहमद-नगर की सडक से ३६ मील दूर था । पेशवा ने यह समाचार सुनकर ५ तारीख को विठोजी गायकवाड के हाथ अपना अन्तिम आदेश भेजा और माँग रखी कि बम्बई का दल दूर भेज दिया जाये तथा सिरूर से आने वाली सेना को लौटने का आदेश दे दिया जाये । एल्फिन्स्टन ने इसका पालन करने से इनकार कर दिया । उसने उत्तर दिया कि स्वय पेशवा की तैयारियो के कारण सेनाओ का बुलाना आवश्यक हो गया है । विठोजी के वापस आने के एक घटे के अन्दर ही मराठा सवारो के विशाल दल ब्रिटिश शिविर की ओर बढते हुए दिखाई पडे । रेजीडेण्ट केवल यह प्रबन्ध कर सका कि अपने कर्मचारी वर्ग तथा रक्षा दल के साथ घरो से निकलकर होलकर पुल को पार करता हुआ सकुशल बर के शिविर मे पहुँच जाये । इसके तुरन्त बाद पेशवा की सेनाओ ने रेजीडेन्सी को आग लगाकर भूमिसात कर दिया । इसमे एल्फिन्स्टन का बहुमूल्य पुस्तका-लय तथा भारत के इतिहास के लिए हस्तलिखित सामग्री थी । इतिहासकार ग्राण्ट डफ इस समय रेजीडेण्ट के कर्मचारियो मे था । रेजीडेन्सी मे आग लगाने के बाद बापू गोखले ने गणेश खिण्ड के मैदान से किरकी के ब्रिटिश शिविर पर आक्रमण आरम्भ किया । होने वाले रण के नाम इन दोना स्थानो अर्थात किरकी एव गणेश खिण्ड के नामो पर पड गये है ।

५ नवम्बर को तीसरे पहर ४ बजे दोनो सेनाएँ एक-दूसरे के सम्मुख खडी थी । पेशवा ने पार्वती पहाडी से रण का अवलोकन किया । एल्फिन्स्टन ने अपनी ओर से वीरतापूर्वक आक्रमण करने का निश्चिय किया तथा बर को परामर्श दिया कि आक्रमण की प्रतीक्षा करने से स्थान पर वह मराठो पर टूट पडे । ब्रिटिश सेनाओ की निर्भीक प्रगति से मराठा विश्वास तुरन्त नष्ट हो गया । ब्रिटिश वाम पक्ष के सामने गहरा नाला था जो शीघ्रगामी मराठा सवारो के लिए विनाशक सिद्ध हुआ । ब्रिटिश दक्षिण पक्ष पर अलग लडाई हुई । यहाँ आक्रमण का नेतृत्व करते हुए मोरो दीक्षित को तोप का गोला लगा और उसका देहान्त हो गया । अँधेरा हो जाने पर बाजीराव के आग्रहपूर्ण बुलावे पर बापू गोखले गणेश खिण्ड मे अपने शिविर को वापस हो गया । रणक्षेत्र पर अग्रेजो का ही अधिकार रहा । उनकी बहुत कम हानि हुई । कुल ८६ व्यक्ति मरे और घायल हुए, जबकि मराठो के ५०० सैनिक हताहत हुए ।

मराठो की सेना अनुमानत १८ हजार सवारो तथा ८ हजार पैदलो की थी और उनके पास १४ तोपे थी ।

अब बाजीराव अनिश्चय तथा भय के कारण युद्ध-सचालन मे पहले के समान असमथ रहा तथा ५ नवम्बर को युद्ध न कर सका । यह युद्ध उसने अकारण आरम्भ किया था और बापू गोखले की सभी गतिविधियो मे हस्तक्षेप किया था । इस समय उसको बहुत बडी सहायता मिल गयी थी, क्योकि अधिकाश मराठा सरदार तथा रामदीन के अधीन होलकर की सेना उसके साथ थी । जनरल स्मिथ सिरूर से १३ तारीख को किरकी पहुँच गया तथा उसने रेजीडेण्ट की सहायता से तुरन्त आक्रमणात्मक युद्ध आरम्भ करने का निश्चय किया । उसके तोपखाने की भयानक अग्निवर्षा का सामना मराठे नही कर सके । स्मिथ ने तोपखाने का सहारा लेकर १५ नवम्बर को वतमान बन्द के पास यखडा के स्थान पर नदी पार कर ली तथा घोरपडी पर अधिकार कर लिया । १६ की रात्रि को २ बजे बाजीराव अकस्मात पुरन्दर को वापस हो गया, यद्यपि उसके परामशदाता उससे ऐसा कम न करने के लिए आग्रहपूवक विनय करते रहे । उसने अपने भाई चिमनाजी को भी वहाँ न ठहरने दिया और न सेनाओ का नेतृत्व करने दिया । पेशवा के इस काय से परिस्थिति अग्रेजो के अधिकार मे चली गयी । एलिफस्टन ने धमकी दी कि यदि बाजीराव की सेनाओ ने विरोध किया तो वह नागपुर पर गोलाबारी करेगा । बालाजी पन्त नाटू ने एलिफस्टन पर अपने प्रभाव का उपयोग करके राजधानी पर आक्रमण नही होने दिया । उसने स्वय पेशवा के महल पर ब्रिटिश ध्वज फहरा दिया । एक प्रत्यक्षदर्शी लिखता हे—"जब गोखले तथा उसके सैनिक दृढ निश्चयपूर्वक रण का प्रयास कर रहे थे, तभी श्रीमन्त रात को भाग निकला । इससे उसकी सेनाएँ अपना साहस खो बैठी तथा समस्त सम्पत्ति सहित उसके राज्य और राजधानी पर अग्रेजो का सुविधापूवक अधिकार हो गया । बाजीराव माहुली गया तथा एलिफस्टन उसके पीछे-पीछे लोनी चल दिया । सोमवार १७ नवम्बर को नाटू और राबिन्सन केवल २५ सैनिक लेकर शनिवार भवन को गये तथा बिना विरोध के उन्होने वहा ब्रिटिश ध्वज फहरा दिया । नगर मे पहरा लगा दिया गया है तथा साधारण काय पुन आरम्भ हो गया है । अब राबिन्सन ने राजभवन मे अपना कार्यालय खोल लिया है तथा वही प्रशासन का सचालन करता है ।"[१६]

---

[१६] ऐतिहासिक टिप्पणिया, जिल्द १, ३१

पूना के पतन पर युद्ध का परिणाम पूर्वनिश्चित-सा हो गया। अब शेष कार्य केवल यह था कि भगोडे पेशवा का पीछा करके उसे पकड लिया जाय। नवम्बर १८१७ से मई १८१८ तक अपने पलायन के सात मासो मे पेशवा ने अपना जन्मजात अनिश्चय तथा कायरता स्पष्ट प्रकट कर दी। पूना मे होने वाले पेशवा के युद्ध को सहायता देने के लिए नागपुर तथा महीदपुर के रण उपयुक्त समय पर हुए थे। बापू गोखले यरवडा से भगोडे पेशवा की रक्षार्थ निकला। पेशवा जेजुरी होकर दक्षिण गया। उसका अभिप्राय छत्रपति तथा उसके परिवार को अपने अधिकार मे लेना था, जिससे वे अग्रेजो का पक्ष ग्रहण न कर ले। उसके माहुली पहुँचने पर निपानी का अप्पा देसाई एक हजार वेतनार्थी अरब सैनिक लेकर उसके साथ हो गया। अब पेशवा को वह दशा सहन करनी पडी जिसको ब्रिटिश सेनाओ द्वारा चलता हुआ नेग कहा जा सकता है। भगोडे को इच्छानुकूल कार्य के लिए विवश करने मे बहुत समय लग गया।

पेशवा ने माहुली से नरो आप्टे को भेजा कि वह छत्रपति को वसोटा के गढ से ले आये तथा स्वय और भी दक्षिण की ओर मिरज के समीप चला गया। यहा २९ को उसने सुना कि कुछ ब्रिटिश सेनाएँ दक्षिण से उस पर आक्रमण करने के लिए आ रही है। वह बापू गोखले से उनसे निपटने के लिए कहकर स्वय पण्ढरपुर वापस हो गया। यहाँ १४ दिसम्बर को अपनी माता तथा दो बन्धुओ के साथ छत्रपति प्रतापसिह उसके साथ हो गया। पेशवा द्वारा पलायन की दशा मे सहसा परिवर्तन तथा शीघ्र प्रयाणो के कारण उसका पीछा करने वालो को उसके बराबर चलना कठिन कार्य हो गया। जिस किसी दिशा मे ब्रिटिश सेनाएँ दिखायी पडती, बापू गोखले उनको तग कर डालता। इस प्रकार पेशवा अहमदनगर की ओर बढ चला। परन्तु वह पुन अपना मार्ग बदलने पर विवश हो गया, जब उसको पता चला कि एक अन्य ब्रिटिश सेना पूर्व से उसे घेर रही है। अब वह सगमनेर की ओर बढा और उसका विश्वासपात्र मित्र त्रिम्बकजी उसके साथ हो गया। त्रिम्बकजी अपने साथ उस पहाडी प्रदेश मे भ्रमण करने वाले लुटेरे दल भी लाया था।

पेशवा ने सगमनेर से जुन्नार तथा नारायणगाँव की ओर प्रयाण किया तथा कल्पना की जाने लगी कि वह पुन अपनी राजधानी पर अधिकार कर लेगा, क्योकि उसका प्रवेश रोकने के लिए वहा कोई ब्रिटिश रक्षादल नही था। बापू गोखले ने अपनी स्वामी की रक्षा का सदैव यथाशक्ति प्रयत्न किया तथा अपने इकलौते पुत्र गोविन्दराव की मृत्यु के रूप मे आने वाली व्यक्तिगत

विपत्ति वीरतापूवक सहन कर ली । ३० दिसम्बर को थकावट के कारण उसके पुत्र का देहान्त हो गया था । बाजीराव खेड तथा चाकन की ओर बढा । उसने एक मास से कुछ ही अधिक समय मे ४०० मील का चक्कर लगा लिया था ।

एल्फिस्टन अभियान के सचालन मे स्वय व्यस्त रहा । वह पीछा करने मे लगी हुई सेनाओ को सूचनाएँ भेजता और जहा आवश्यकता होती सहायक सेनाएँ भेजने का प्रबन्ध करता था । पेशवा खेड पहुँचा तो एल्फिस्टन को भय हुआ कि उसका आगामी लक्ष्य पूना होगा । अत उसने कैप्टिन स्टान्टन के पास सिरूर शीघ्र आह्वान भेजा कि जो कुछ सेना उसके पास हो, उसे लेकर पूना की रक्षा के निमित्त दौड आये । थोडी-सी पैदल सेना तथा दो तोपे लेकर, जिन पर २४ यूरोप निवासी नियुक्त थे, स्टान्टन तुरन्त चल दिया तथा पहली जनवरी, १८१८ की प्रात भीमा नदी पर स्थित कोडेगाव की उच्च भूमि पर ठहर गया । पेशवा उस समय समीप ही था तथा उसने बापू गोखले को शत्रु सेना नष्ट करने की आज्ञा दे दी । अचानक आक्रमण के कारण स्टान्टन को गॉव का आश्रय लेना पडा । यहाँ दिन भर भयानक युद्ध हुआ । बाजीराव निश्चिन्त होकर पास की पहाडी से इस रण को देखता रहा । अपने लम्बे प्रयाण के कारण स्टान्टन तथा उसके सिपाही थक गये थे तथापि वे सारे दिन अत्यन्त साहस से युद्ध करते रहे । सायकाल के समीप उनमे थकावट के लक्षण दिखायी पडने लगे । उनके लगभग १७५ सिपाही मारे जा चुके थे, जिनमे से चार ब्रिटिश अधिकारी भी थे और बहुत-से घायल हो गये थे । परन्तु बाजीराव ने अपना पलायन सहसा पुन आरम्भ कर दिया, क्योकि उसको सूचना मिली थी कि जनरल स्मिथ उसका पीछा करते हुए समीप पहुँच गया है । अपने घायल सिपाहियो को लेकर स्टान्टन सिरूर वापस आ गया । बाद मे उस स्थान पर इस यशस्वी रण मे प्राण देने वाले सिपाहियो की स्मृति सुरक्षित रखने के लिए एक स्मारक बनाया गया ।

ब्रिटिश दलो ने पेशवा को विश्राम नही लेने दिया । पीछे से जनरल स्मिथ के पहुचने की सूचना पाकर वह पुन दक्षिण की ओर मुडा । मुनरो तथा प्रिज्लर भी उसके पीछे-पीछे आ पहुँचे । तब वह पण्ढरपुर की ओर चल पडा । अष्टा मे जनरल स्मिथ बापू गोखले पर आ चढा । १९ फरवरी, १८१८ के घोर रण मे बापू मारा गया । इसे वतमान युद्ध का अन्तिम घमासान रण कहा जा सकता है । अपने अनुरक्त सेनापति की मृत्यु से पेशवा की पूव स्थिति प्राप्त करने सम्बन्धी समस्त आशा टूट गयी । उसने रण का परिणाम देखने की प्रतीक्षा नही की और अपनी पत्नी तथा तीन अन्य महिलाओ को पुरुष

वेश मे घोडो पर बैठाकर शीघ्र ही भाग निकला । बाजीराव ने लगभग एक करोड रुपया मूल्य की अपनी समस्त सम्पत्ति तथा सतारा के राजा और उसके दल को असहाय रूप मे शिविर भूमि पर छोड दिया था । वे सब अंग्रेजो के हाथो मे पड गये । जनरल स्मिथ ने शीघ्र एलफिस्टन को निम्नलिखित सन्देश भेजा—"मै आपको अपने सौभाग्य का व्यक्तिगत वर्णन भेज रहा हूँ, क्योकि राजा का परिवार मेरे पास है और गरीब गोखले आज सायकाल विधिपूर्वक जला दिया जायेगा । वह वास्तव मे योधा की भाति लडा था । मेरा निवेदन है कि आप मुझे राजा के परिवार के भार से मुक्त कर दे, क्योकि मै उनके साथ रहकर कोई उपयोगी काम नही कर सकता ।" एलफिस्टन ४ मार्च को बेलसर के स्थान पर जनरल स्मिथ से मिला तथा राजा को अपने अधिकार मे ले लिया । राजा अपनी मुक्ति पर बहुत प्रसन्न हुआ । उसके विषय मे एलफिस्टन ने लिखा है—"वह लगभग २० वर्ष का नवयुवक है । हँसमुख तथा निष्कपट है, पर बुद्धिहीन नही है । उसकी माता मे भी कुछ योग्यता तथा दक्षता है । वह सुन्दर वृद्ध महिला है । उसकी आँखे बहुत सुन्दर है । उसका स्वभाव बहुत अच्छा है और कहा जाता है कि उसमे अनेक गुण है ।"

६ **ब्रिटिश घोषणा—बाजीराव के कष्ट**—शीघ्र ही पेशवा का सर्वनाश करने के लिए एलफिस्टन ने पेशवा के अधीन अधिकारियो को उसकी सेवा छोडने के लिए प्रलोभन दिया । गवर्नर जनरल की आज्ञा से उसने एक घोषणा प्रकाशित की, जिसमे बाजीराव के विरुद्ध ब्रिटिश पक्ष का प्रतिपादन किया गया था । यह घोषणा इस प्रकार थी—"जब से बाजीराव ने शासन ग्रहण किया, तभी से नाना प्रकार के राजद्रोह तथा विद्रोह होते रहे है । उसके शासनाधीन प्रदेश मे उसकी सत्ता कभी स्थापित न हो सकी । होलकर विद्रोह कर रहा था, तब उसने अपने देश को छोड दिया और कातरभाव से बसई पहुँचकर ब्रिटिश सरकार के साथ सन्धि कर ली । सम्मानित कम्पनी की सेनाओ की सहायता से वह अपने शासन पर पुन स्थापित हो गया और कम्पनी की रक्षा मे देश की समृद्धि पुन जीवित हो उठी । कम्पनी सरकार की इच्छा थी कि न्याय के सिद्धान्तो के अनुसार गायकवाड शासन के साथ उसका झगडा निपटा दे । गायकवाड सरकार ने कम्पनी के आश्वासन पर अपने दूत गगाधर शास्त्री को पूना भेजा । बाजीराव के एक सार्वजनिक अधिकारी ने पण्ढरपुर की पवित्र भूमि पर इस शास्त्री की हत्या कर दी । कम्पनी सरकार ने हत्यारे त्रिम्बकजी के समर्पण की माँग प्रस्तुत की । एक विशाल सेना एकत्र करनी पडी, तब कही वह हमारे अधिकार मे किया जा सका । इसके बाद बाजीराव ने विदेशी

शासको को पत्र भेजे तथा उनको अपनी सेनाओ को तैयार रखने की प्रेरणा दी। उसका उद्देश्य कम्पनी सरकार को युद्ध मे फँसाकर उसकी क्षति करना था। पेशवा ने घोषणाएँ की तथा बार-बार अनेक रूपो मे उनकी आवृत्ति की कि उसका राजनीतिक अस्तित्व एव सुख-शान्ति का उपभोग केवल कम्पनी सरकार के कारण है। उन पर ध्यान देकर पेशवा के साथ नवीन सन्धि निश्चित की गयी, जिससे कि उसकी सत्ता सुरक्षित रहे तथा वह उपद्रव करने के साधनो से वचित कर दिया जाये। इसके बाद कम्पनी के शासन का निश्चय पिण्डारियो के दमन के उपाय करने के सम्बन्ध मे हुआ। बाजीराव ने स्वीकार किया कि ये उपाय उसके लिए बहुत कल्याणकारी होगे। इस काय मे उसने अपना हार्दिक सहयोग भी प्रस्तुत किया। इस बहाने उसने अपना धन कम्पनी के हितो के विरुद्ध उद्देश्य रखने वाले विदेशी शासको के पास भेज दिया। तब उसने अकस्मात अपनी सेना को सुसज्जित करके कम्पनी की सेनाओ पर आक्रमण कर दिया। उसने ब्रिटिश प्रतिनिधि के निवासस्थान तथा उसकी छावनी लूट ली और भस्म कर दी। तलेगाव के समीप उसने दो ब्रिटिश अधिकारियो का वध भी कर दिया। पेशवा ने गगाधर शास्त्री के हत्यारे त्रिम्बकजी डैंगले को अपने साथ कर लिया है। कम्पनी की सरकार को विश्वास है कि बाजीराव अपने राज्य पर शासन करने मे अयोग्य है। उसे समस्त सावजनिक अधिकारो से वचित करने के प्रयत्न किये जा रहे है। उसके पीछे एक छोटी-सी सेना लगा दी गयी है। थोडे-से समय मे किसी भी वस्तु का सम्बन्ध बाजीराव से नही रह जायेगा तथा सतारा के राजा की वृद्धि के उपाय किये जायेगे। अपने पद तथा गौरव ओर अपने दरबार के पद एव गौरव की रक्षा करने के लिए उसे राज्य दिया जायेगा। इन उपायो को क्रियान्वित करने के लिए महाराजा का ध्वज सतारा के गढ पर फहरा दिया गया है तथा उसके अनुयायियो को सन्तोषजनक आश्वासन दिये गये है। महाराजा अपने प्रदेशो पर प्रशासन करेगा। जो प्रदेश माननीय कम्पनी के लिए सुरक्षित कर दिये गये है, उनका शासन इस प्रकार किया जायेगा कि वेतनो, इनामो तथा निर्वाहो को कोई हानि न पहुँचे। प्रत्येक व्यक्ति अत्याचार तथा दुराचार से सुरक्षित हो जायेगा। जो लोग बाजीराव की सेवा मे है उनको चाहिए कि वे यह सेवा छोड दे तथा दो महीने के अन्दर अपने निवास-स्थानो को वापस चले जाये। यदि वे ऐसा नही कर सके तो नष्ट हो जायेगे। बाजीराव की सेवा मे जो सावजनिक अधिकारी है, उनको चाहिए कि वे अपनी सूचना भेज दे तथा अपने घरो को वापस हो जाये। उन्हे बाजीराव को

कोई सहायता अथवा राजस्व कर का कुछ भी धन नही दना चाहिए। सार्व-जनिक अधिकारी बाजीराव का सहायता देगे तो उनके वतना और सावजनिक भूमियो का अपहरण कर लिया जायेगा। दिनाक ११ फरवरी, १८१८—५ रबीउल आखिर।"[१७]

इस घोषणा से बाजीराव की समस्त आशाओ पर तुषारापात हा गया। अग्रेजो ने छत्रपति का सतारा स्थित उसकी गद्दी पर बैठा दिया तथा घोषणा मे विस्तारपूर्वक वर्णित उपाय कार्यान्वित कर दिये। प्रस्ताव से लाभ उठाकर बाजीराव के बहुत-से अनुचरो ने उसका पक्ष त्याग दिया। मुख्य ब्रिटिश सेना उसके पीछे लगा दी गयी तथा जनरल प्रिज्लर के अधीन एक अन्य दल उन मराठा गढो को हस्तगत करने के लिए सगठित किया गया, जिन पर इस समय भी बाजीराव के प्राचीन रक्षको का अधिकार था।

अब कोई स्थान ऐसा नही रह गया जहाँ बाजीराव जा सके। वह उत्तर मे इस आशा से बढा कि दौलतराव शिन्दे तथा नागपुर का अप्पा साहेब उसको शरण देगे। परन्तु शरण देने के स्थान पर उसे अप्पा साहेब से सहायता का दु ख भरा आह्वान प्राप्त हुआ। अब इस प्रकार की विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गयी जैसी दो डूबते हुए मनुष्यो द्वारा परस्पर सहायता की याचना मे होती है। बाजीराव ने गोदावरी को पार किया तथा बिना किसी विशेष योजना के बरार होता हुआ चादा की ओर चल दिया। अप्रैल के आरम्भ मे वह वर्धा पहुँचा तथा यह जानकर बहुत दुखी हुआ कि अप्पा साहेब पहले ही बन्दी बनाकर किसी दूसरे स्थान को भेजा जा रहा है। वह वापस होने पर विवश हो गया और तभी कनल ऐडम्स ने उसको आ दबोचा। उसने १७ अप्रैल को माहुर तथा उमरखेड के बीच शिवनी के समीप पेशवा पर अग्निवर्षा आरम्भ कर दी। बाजीराव भयभीत होकर अपनी प्राणरक्षा के लिए घोडे पर तेजी से भाग निकला तथा थोडे-से अनुचर साथ लेकर खानदेश से वेगपूर्वक भागा। उसने ५ मई को ताप्ती पार की। पेशवा को उस समय शिन्दे द्वारा अधिकृत आशिगढ मे शरण प्राप्त होने की आशा थी। वास्तव मे गढ के रक्षक यशवन्त-राव लाड को अपने स्वामी की गुप्त आज्ञा प्राप्त हुई थी कि वह पेशवा को आने दे तथा रक्षा करे।[१८]

---

[१७] ब्लैकर कृत मराठा युद्ध, पृ० ४६२। मिल तथा विल्सन, जिल्द ८, पृ० ६०१

[१८] मिल द्वारा उद्धृत पत्र, जिल्द ८, पृ० ६०५

परन्तु भिन्न-भिन्न दिशाओ से ब्रिटिश सेनाओ के बडे-बडे दल उस स्थान पर टूट पडे तथा लाड ने देख लिया कि वह् बाजीराव को किसी भी प्रकार की सहायता देने मे असमथ है। भगोडे पेशवा को उस समय जो कष्ट भोगने पडे या उसके समक्ष उपस्थित थे, उनका वणन एक मराठी गीतिकाव्य मे इस प्रकार है

(गद्यानुवाद)

"राजभवन के भोग-विलास मे पालित-पोषित श्रीमन्त इस समय जगलो मे भ्रमण कर रहा है। कडी धूप मे उसको काटो तथा झाडियो से होकर अपना माग निकालना पडता है। वह् अपने घोडे की स्वय मालिश करता है तथा घास-दाना देता है। वह् एक छोटी पतली चद्दर को असम भूमि पर बिछा लेता है और उसी पर रात्रि व्यतीत करता है। कभी सूर्यास्त के पहले और कभी अद्धरात्रि के बाद कुछ चावल उसको खाने के लिए मिल जाते है। वह् उनको लकडी के प्याले मे रखकर खा लेता है। प्रत्येक विश्राम स्थान पर उसके कृपापात्र सेवक साथ छोडते चले जाते हे। हा ! बालाजी विश्वनाथ के परिवार के किसी भी व्यक्ति की ऐसी दशा कभी नही हुई। हाथी, घोडे, ऊँट, धन सभी कुछ पीछे छूटता जा रहा हे। बाजीराव को अपने जीवन मे न जाने कितना कष्ट सहन करना होगा। माग मे उसकी आखो से आसू टपक पडते है। जब किसी से उसकी भेंट हो जाती हे, तब वह ये शब्द कहता है—यह् हमारा अन्तिम मिलन है। यदि आप जीवित रहे तो कृपा रखे तथा मिले।"

यह् करुणा भरा वणन पेशवा के दु खो को यथाथ रूप से प्रतिबिम्बित करता हे। पेशवा ने दौलतराव शिन्दे को एक करुण पत्र लिखा, जिसमे अपने पूर्वजो, उसके वश पर की गयी कृपा तथा उदारता का वणन किया गया था और बाद मे अपनी सकटग्रस्त दशा मे उसकी सहायता की योजना थी। यह् पत्र अपने उद्दिष्ट स्थान पर न पहुँच सका। यदि पहुँचा भी होता तो दौलतराव क्या कर सकता था ? यह् पत्र माल्कम ने पकड लिया। वह् नमदा क्षेत्र मे भगोडे पेशवा की गतिविधि को ध्यानपूवक देख रहा था। केवल अबा पुरन्दरे तथा विचूरकर को छोडकर लगभग समस्त सरदारो तथा उसके भाई ने भी इस समय उसका साथ छोड दिया था। उसने दौलतराव शिन्दे के पास पहुँचने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। परन्तु वह् ऐसा करने मे समथ न हो सका, क्योकि धूलकोट के समीप समस्त दिशाओ से ब्रिटिश सेनाओ ने उसको अति समीप से घेर लिया था। यह् स्थान नमदा के समीप था तथा इस पर शिन्दे का अधिकार था। अब केवल एक आश्रय अर्थात अपनी रक्षा के लिए माल्कम की उदारता

को जाग्रत करना रह गया था । अत बुलकोट स उसन अपन सन्देशवाहको — आनन्दराव चन्दावरकर तथा रामचन्द्र भोजराज—को मालकम के पास अपन व्यक्तिगत पत्र के साथ भेजा, जिससे वे उस अधिकारी के प्रति उसकी आत्म-समपण की शर्तो पर बातचीत करे । बाजीराव के कायकता १७ मई को मऊ पहुँचे तथा उनको मालूम हुआ कि मालकम बाजीराव को नाममात्र की सत्ता भी पुन दिलाने की आशा नही दे सकता । उसने कहा कि बाजीराव उपाधि या राज्य के प्रति अपने समस्त अधिकार खो चुका हे । यदि वह बिना शर्त के तुरन्त अधीनता स्वीकार कर ले तथा अन्यायपूवक छेडा गया युद्ध समाप्त कर दे तो शायद वह अपनी सरकार को उसकी पतित दशा पर दया तथा उदारता-पूवक ध्यान देने को राजी कर सकेगा । उसने कहा—"अब विरोध करने से कोई लाभ नही हे । पेशवा को चाहिए कि वह अपने को ब्रिटिश सरकार की कृपा पर छोड दे । इस प्रकार वह सवनाश से बच जायेगा ।" इस पर मराठा दूत ने मालकम से याचना की कि वह शिविर मे उसके स्वामी से मिलने की कृपा करे । मालकम ने इस प्रार्थना को तो अस्वीकार कर दिया, परन्तु एक विश्वस्त अधिकारी भेज दिया कि वह पेशवा से मिल और उसके द्वारा समपण की शर्तो पर वार्तालाप करे । इस काय के लिए मालकम ने मद्रास सेना के लेफ्टीनेण्ट लो को चुना तथा उसको पूण और विस्तृत निदश दे दिये । इनमे पेशवा की व्यक्तिगत रक्षा का आश्वासन भी था । मालकम स्वय पेशवा के शिविर की ओर गया तथा उसे अपने परिवार एव समीपवर्ती अनुचरो सहित आत्मसमपण करने के लिए निमन्त्रित किया ।

१० **मालकम के प्रति पेशवा का आत्मसमर्पण**—ठीक इसी समय मालकम को समाचार मिल गया कि नागपुर का अप्पा साहेब कारागार से भाग गया है । उसने बाजीराव से चलने वाले वार्तालाप को इस घटना की प्रति-क्रिया से सुरक्षित रखना आवश्यक समझा । अत उसने पेशवा के साथ व्यक्ति-गत भेट के प्रभाव की परीक्षा लेने का निश्चय किया । ३१ मई को रक्षादल के ३०० पुरुषो के साथ मालकम खेडी नामक गाव गया, जहाँ पेशवा भी आ गया था । उसके पास करीब २ हजार सवार, ८०० पैदल तथा दो तोपे थी । प्रथम जून को इगलिश जनरल पेशवा के शिविर मे गया और उसको दीन तथा उदास दशा मे पाया । गुप्त वार्तालाप के लिए दोनो एक छोटे-से डेरे मे चले गये । पेशवा के साथ दो परामर्शदाता थे तथा मालकम अकेला था । यह भेट बहुत दु खद रही । "भाग्यहीन पेशवा बहुत देर तक अपने दुखो तथा भय के विषय पर तत्परता पूर्वक बातचीत करता रहा । उसने विश्वास दिलाया कि

वह निर्दाष तथा दया का पात्र है और उसे सच्चे मित्र की आवश्यकता हे। उसने कहा कि मेरे परिवार के व्यक्ति भी रक्त का सम्बन्ध भल गये है। इस दुखपूण दशा मे माल्कम के अतिरिक्त वह किसी मित्र का आश्रय नही ले सकता। अपनी आखो मे आँसू भरकर उसने माल्कम से अपनी रक्षा तथा सहायता की याचना की।"

इसका माल्कम ने नम्रता परन्तु दृढतापूवक इस प्रकार उत्तर दिया—"मै वास्तव मे आपका सच्चा मित्र हूँ, परन्तु यह मित्र का कतव्य नही है कि वह आपको झूठी आशाएँ दिलाये। अब समय आ गया है कि आप अपने समस्त धैर्य तथा साहस से काय करे और वीरोचित दृढता से अपने मन्द भाग्य को सहन करे। यह निश्चय कर लिया गया है कि आप शासक नही रह सकते। दक्षिण के किसी भाग मे आपका रहना भी असम्भव है। श्रीमन्त की जाति समस्त युगो मे अपने साहस के लिए प्रसिद्ध रही है। ब्राह्मण ललनाएँ अपने पतियो की चिताओ पर सती हो गयी है। पुरुषो ने अपने इष्टदेव को प्रसन्न करने के लिए पवतो की चोटियो से कूदकर अपना बलिदान कर दिया हे। आपको तो ऐसा कोई बलिदान नही करना पडा। आपसे केवल इसी बलिदान की अपेक्षा है कि आप अपनी अविकृत सत्ता त्याग दे। आप इसे पुन प्राप्त करने की आशा नही कर सकते। यह आपके दुर्भाग्य का स्थल रहा है, अत इस देश को छोड दीजिए। आपको केवल यही बलिदान करना हे और इसके बदले मे आपको सुरक्षित आश्रय स्थान तथा उदार निर्वाह-वृत्ति मिल जायेगी।"

इन सबके प्रति बाजीराव सहमत हो गया, परन्तु उसने इन कठोर शर्तो का रूप परिवर्तन करने के लिए जी-तोड प्रयत्न किया। माल्कम ने उत्तर दिया कि इन मूलभूत शर्तों के शिथिल किये जाने की आशा नही है। पेशवा को चाहिए कि वह अपने को ब्रिटिश सरकार की उदारता पर छोड दे, अन्यथा सामना करने के लिए तैयार हो जाये।

अब पेशवा मे सामना करने की कोई शक्ति नही रह गयी थी। वह केवल विजेता की उदारता से ही कुछ आशा कर सकता था। उसने कहा—"नही! मै आपके पास हूँ। आप मेरे मित्र है। मै आपको नही छोडूगा। एक समय मेरे तीन मित्र थे—वेलेजली, फ्लोज तथा माल्कम। पहिला यूरोप मे है—वह बडा आदमी है। दूसरा स्वर्ग मे है। केवल आप यहाँ है। क्या नष्ट पोत का नाविक अभीष्ट बन्दरगाह पर पहुँचकर उसको छोडने की इच्छा कर सकता है?"

परन्तु जनरल अपने निश्चय से डगमगाने वाला न था। उसने उत्तर

दिया—"आज ही सायकाल को मै आपके पास वे प्रस्ताव भेज दूगा जो मुझको अपनी सरकार की ओर से मिले हे । यदि वे २४ घण्ट के अन्दर स्वीकार नही किये गये तो आपके साथ अविलम्ब शत्रु तुल्य व्यवहार किया जायेगा ।" जब मालकम चलने लगा तो बाजीराव ने धीरे से उसके कान मे कहा—"अब मुझ को अपनी सेना पर कोई शक्ति या अधिकार नही हे । मुझको स्पष्ट अवज्ञा का भय है । आपको जाने देने की मेरी बिलकुल इच्छा नही हे । इसका कारण यह है कि आपकी उपस्थिति मे मेरी स्वाधीनता तथा प्राण सुरक्षित होने की भावना है ।"

रात को दस बजे मालकम अपने डेरे को वापस आया । प्रात काल ही पेशवा की स्वीकृति के लिए प्रस्ताव भेज दिये गये । इनमे ये शर्ते थी

१ पेशवा द्वारा सत्ता का परित्याग ।

२ मालकम के प्रति आत्मसमपण । उसके पास केवल थोडे से अनुचर रहेगे तथा उसके साथ सम्मानपूवक व्यवहार का आश्वासन दिया जायेगा । वह बनारस या गवनर जनरल द्वारा उसके निवास के लिए निश्चित किसी अन्य स्थान को सकुशल पहुँचा दिया जायगा ।

३ वह उत्तर की ओर अपनी यात्रा पर तुरन्त चल पड । उसके परिवार को उसके पास पहुँचने की अनुमति बाद मे दी जायेगी ।

४ अपने तथा अपने परिवार के निर्वाहाथ उसको उदार वृत्ति दी जायेगी । वृत्ति की मात्रा गवनर जनरल द्वारा निश्चित होगी, परन्तु मालकम बचन देता है कि यह ८ लाख प्रतिवष से कम न होगी ।

५ बाजीराव के प्रति अनुरक्ति के कारण सवनाश सहन करने वाले जागीरदारो तथा वृद्ध अनुयायियो, चरित्रवान ब्राह्मणो तथा अब तक पेशवा द्वारा सहायता प्राप्त धार्मिक स्थानो के सम्बन्ध मे बाजीराव की प्राथनाओ और याचनाओ पर उदारतापूवक ध्यान दिया जायेगा ।

६ बाजीराव स्वय २४ घण्टे के अन्दर मालकम के शिविर मे आ जाय ।

इनके अतिरिक्त मालकम की मॉग थी कि बाजीराव अपने मन्त्री त्रिम्बकजी डैगले का समपण कर दे । पेशवा ने सविनय कहा कि शक्तिशाली सेना का स्वामी होने के कारण डैगले को पकड लेना उसके बूते की बात नही है । पेशवा ने अपने मन्त्री का त्याग कर दिया तथा मालकम को सूचना भेज दी कि अग्रेज उसके साथ इच्छानुसार व्यवहार कर सकते है । परन्तु इस विषय मे भी दुष्ट पेशवा अपनी नीच चाल से नही चूका । उसने अपने कुछ अनुयायियो को डैगले के पास से वापस बुलाने की आज्ञा माँगी तथा इस

बहाने उसके पास सन्देश भेज दिया कि वह किस प्रकार बन्दी होने से बच सकता है ।

बाजीराव ने माल्कम के शिविर को कुछ ओर सन्देश भी भेजे, जिनमे विलम्ब के कारणो के रूप मे कुछ नये प्रस्ताव थे । परन्तु माल्कम ने उनको स्वीकार करने से इनकार कर दिया तथा उनको वापस भेज दिया । वह निश्चित समय पर पेशवा के शिविर पर आक्रमण करने की तैयारी भी कर रहा था । अगले दिन उसके शिविर से कुछ दूरी पर माल्कम को एक सवार अपनी ओर आता हुआ मिला । माल्कम ने पूछा—"क्या तुम्हारा स्वामी आ रहा हे ?" दूत ने उत्तर दिया—"यह दिन अशुभ है ।" "वास्तव मे पेशवा के लिए यह दिन अशुभ होगा, यदि वह यहा पर दो घण्टे के अन्दर नही पहुँच जाता ।" दूत ने कहा—"वह पहरे वालो और सन्तरियो से डर रहा है ।" माल्कम ने उच्च स्वर से कहा—"भाग जाओ ।" बाद मे उसने लेफ्टिनेण्ट लो को पहले से ही पेशवा के पास पहुँच जाने को भेज दिया । ३ जून की प्रात १० बजे पेशवा पहुँच गया । वह उदास तथा निराश था । उसने आत्मसमपण कर दिया । इस प्रकार दुखद नाटक के अन्तिम दृश्य का अभिनय हुआ और परदा गिर पडा । पेशवा की श्रीमन्त की उपाधि छिन गयी । अब वह महाराज कहा जाने लगा । लाड हेस्टिग्ज ने माल्कम द्वारा स्वीकृत शर्तो के लिए उचित समय पर अपनी अनुमति प्रदान कर दी, परन्तु उसने उस भारी वृत्ति के प्रति आपत्ति की, जिसका वचन माल्कम ने दिया था । माल्कम ने आग्रहपूवक कहा कि बाजीराव को अपने भाई अमृतराव से कम वृत्ति नही दी जा सकती, यद्यपि वह पेशवा नही है ।"[१८]

बाजीराव द्वारा १२ जून को नमदा पार कर लेने पर उसकी सेना भग कर दी गयी । उत्तर को जाते हुए उसके परिचारी वग मे ६०० सवार, २०० पैदल तथा रामचन्द्र पन्त सूबेदार, बलोबा सलफडे तथा अन्य आश्रितजन थे । बाजीराव की प्राथना पर लेफ्टिनेण्ट लो को उसके साथ रहने की आज्ञा दी गयी । बिठूर तक वह धीरे-धीरे गया, क्योकि उसके अन्तिम निवास स्थान के निश्चय करने मे कुछ समय लग गया । वह अजमेर होकर गया तथा कई महीने मथुरा मे व्यतीत किये । मुगेर या गोरखपुर की अपेक्षा उसने बनारस को अच्छा समझा, यद्यपि इन स्थानो का भी सुझाव रखा गया था । अन्त

---

[१८] इस विषय पर एक विवाद उपस्थित हो गया, जिसका अध्ययन काये कृत 'माल्कम की जीवनी' मे किया जा सकता है, जिल्द २, पृ० २३७-५४

मे कानपुर के समीप बिठ्र का स्थान पसन्द किया गया। यहा पर वह फरवरी, १८१६ मे पहुँच गया। यही पर २८ जनवरी, १८५१ का उसका देहान्त हुआ।

बाजीराव ने बिठूर मे अपने जीवन को धार्मिक कृत्यो मे व्यतीत किया। अपनी सत्ता, पद या मराठा राज्य के स्वातन्त्र्य के नाश पर उसको प्रत्यक्ष रूप से कोई शोक या पश्चात्ताप नही था।

तिथिक्रम

अध्याय १७

१७७७	शाहू द्वितीय का छत्रपति के रूप मे गोद लिया जाना।
८ जुलाई, १७८६	कैप्टिन ग्राट डफ का जन्म।
१८ जनवरी, १७९३	प्रतापसिंह का ज म।
१७९५	रामचन्द्र भाऊ साहेब का जन्म।
१८०५	शाहजी अप्पा साहेब का जन्म।
१८०५	चतरसिंह सबलगढ की सभा मे।
४ मई, १८०८	शाहू द्वितीय की मृत्यु—प्रतापसिंह उसका उत्तराधिकारी।
अगस्त, १८१०	चतरसिंह बडौदा मे।
१० फरवरी, १८११	चतरसिंह का पकडा जाना और हिरासत मे रखा जाना।
४ माच, १८१८	प्रतापसिंह तथा एल्फिस्टन की भेंट।
१० अप्रैल, १८१८	प्रतापसिंह सतारा मे प्रतिष्ठापित।
१५ अप्रैल, १८१८	चतरसिंह की मृत्यु।
जुलाई, १८१८	त्रिम्बकजी डगले का पकडा जाना तथा चुनारगढ मे उसकी नजरबन्दी।
१५ सितम्बर, १८१९	प्रतापसिंह की स्थिति स्पष्ट करने के लिए सन्धि।
१८२०	यशवन्तराव लाड की मृत्यु।
५ अप्रैल, १८२२	प्रतापसिंह को शासक के अधिकार प्राप्त।
अप्रैल, १८२२	ग्राट डफ द्वारा अवकाश ग्रहण—सतारा मे ब्रिग्स उसका उत्तराधिकारी।
१ सितम्बर, १८२४	बिशप हीबर का डैगले से वार्तालाप।
१८२६	ग्राट डफ कृत "मराठो का इतिहास" प्रकाशित।
१० अक्तूबर, १८२९	त्रिम्बकजी डैगले की मृत्यु।

जून, १८३०	चिमनाजी अप्पा की मृत्यु ।
४ सितम्बर, १८३९	प्रतापसिह राजच्युत— शाहजी प्रतिष्ठापित ।
१४ अक्तूबर, १८४७	प्रतापसिह की मृत्यु ।
५ अप्रैल, १८४८	शाहजी अप्पा साहेब की मृत्यु—सतारा का राज्य अपहृत ।
जून, १८५७	नाना साहेब सिपाही विद्रोह मे सम्मिलित ।
१८ जून, १८५८	झासी की रानी की रणभूमि मे मृत्यु ।
२३ सितम्बर, १८५८	ग्राट डफ की मृत्यु ।

अध्याय १७

अन्तिम दृश्य

(१८१८-१८४८)

१	चतरसिंह भोसले तथा छत्रपति का परिवार ।	२	प्रतापसिंह की सतारा मे स्थापना ।
३	विजित प्रदेश का प्रबन्ध ।	४	प्रतापसिंह की दुखद कथा ।
५	मराठा पतन के कारण ।	६	सस्मरण ।

१ **चतरसिह भोसले तथा छत्रपति का परिवार**—१७४६ मे शाहू प्रथम की मृत्यु के बाद सतारा का छत्रपति मराठा राजनीति मे केवल शून्य तुल्य ही नही हो गया, अपितु शनै -शनै पेशवा के हाथो मे उसकी स्थिति प्राय बन्दी की सी हो गयी । सतारा के गढ मे उस पर कठोर पहरा लगा हुआ था । उस पर इतने प्रतिबन्ध लगे थे कि उसका तथा उसके परिवार का जीवन असह्य हो गया था । अब छत्रपति का कतव्य केवल नवीन पेशवा के अधिकार ग्रहण करने पर उसको पेशवा के अधिकृत वस्त्र भेज देना रह गया था । शाहू के उत्तराधिकारी रामराजा का देहान्त १७७७ मे हो गया, परन्तु उसने मरने के पहले वावी निवासी त्रिम्बकजी भोसले के ज्येष्ठ पुत्र विठोजी को गोद ले लिया । अब वह शाहू द्वितीय के नाम से उसका उत्तराधिकारी हुआ । इसके बाद त्रिम्बकजी अपने परिवार तथा अपने कनिष्ठ पुत्र चतरसिह के साथ सतारा आकर रहने लगा । नवीन छत्रपति (जन्म लगभग १७६३) पुष्ट शरीर वाला नवयुवक था । अपना उच्च पद ग्रहण करते समय उसको अपने परिवार की दशा को सँभाल लेने की पूण आशा थी । वह सोचता था कि जहाँ तक मेरे वश की बात होगी, मैं मराठा राज्य की सेवा करने का यत्न करूँगा । परन्तु शीघ्र ही उसकी आँखे खुल गयी । उसको पता चल गया कि छत्रपति की गद्दी पर आरोहण के कारण उसकी दशा उन्नत होने के स्थान पर और भी बिगड गयी है । विशेषकर नाना फडनिस के दीघ शासनकाल मे, जिसने राजपरिवार की वृत्तियो को कम करके उन पर अधिक प्रतिबन्ध लगा दिये थे । पूना की

सरकार छत्रपति को केवल एक खर्चीला पुछल्ला मानती थी, जिसका कोई निश्चित कार्य नही था। उसका समस्त परिवार अपनी दास तुल्य स्थिति से चिढने लगा तथा उन्होंने पेशवा सरकार की स्थिति को खोखला करने योग्य कोई अवसर हाथ से नही जाने दिया। वे प्राय पेशवा से लडने या उपद्रव करने मे पेशवा के विरुद्ध कोल्हापुर के राजा का साथ देते थे। विशेपकर चतरसिह को अपमान की यह स्थिति असह्य जान पडी तथा इस दु ख को मिटाने के लिए वह उपाय करने लगा। उसका जन्म १७७३ मे हुआ था। वह वीर तथा होनहार बालक था। उसे अपने उच्च वश पर गव था। उसने मराठा राज्य के पुनरुज्जीवन का स्वप्न देखा तथा अनेक विषम तत्त्वो के बीच सामजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया।

राजा शाहू द्वितीय की रानी आनन्दीबाई माई साहेब से तीन पुत्र हुए थे—प्रतापसिह बाबा (जन्म १८ जनवरी, १७९३), रामचन्द्र भाऊ साहेब (जन्म १७९५) तथा शाहजी अप्पा साहेब (जन्म १८०५)। इस महिला का वणन करते हुए एलिफस्टन मुक्त कठ से प्रशसा करता है। वह कहता है—"वह मेधाविनी है। गुणसम्पन्न तथा व्यवहारकुशल है। उसका आचरण सुन्दर है तथा वह शुभगुणो से युक्त है।" एक अन्य इगलिश सज्जन लिखते है—"माई साहेब घोडे की सवारी मे निपुण है। उसकी स्वाभाविक रूप से सुन्दर आकृति शोभन मराठा वस्त्रो मे निखर उठती है। वह परदा नही करती तथा अपने मधुर निष्कपट वार्तालाप द्वारा दशको पर तुरन्त प्रभाव डाल लेती है। उसका स्तर उच्च तथा नैतिक है और उसमे असाधारण क्षमता है। भारतीय महिलाओ की स्वाभाविक भीरुता उसको छू तक नही गयी है। मुझे उसके तीनो पुत्रो मे बहुत रुचि है। उनका पारस्परिक तथा माता के साथ प्रेम, सारल्य एव अनुरक्ति दशनीय है।"[१]

४ मई, १८०८ को राजा शाहू द्वितीय का देहान्त हो गया। उसका उत्तराधिकारी प्रतापसिह हुआ। पेशवा बाजीराव द्वितीय को राजपरिवार के इन व्यक्तियो के साथ कोई विशेष प्रेम न था, अत माई साहेब तथा वीर साहसी चतरसिह बाजीराव के पुन प्रशासन के कारण शीघ्र ही होने वाले नाश से वे अपने हितो की रक्षा करने का उपाय करने लगे। चतरसिह योग्य साथियो की एक मण्डली एकत्र करके भाग्य की खोज मे निकल पडा। उसने शर्जाराव घाटगे से मित्रता कर ली। घाटगे ने उसको अनुरोध सहित बाजीराव

---

[१] कोल ब्रुक कृत 'एलिफस्टन की जीवनी', जिल्द २, पृ० ३५

के पास भेजा, परन्तु बाजीराव उसको बिना दया के कठोर दण्ड का पात्र विद्रोही समझता था। तब लगभग एक हजार व्यक्ति अपने साथ लेकर चतरसिह पूना से चल दिया। उसको यह देखकर बहुत दु ख हुआ कि बाजीराव ने अंग्रेजो की अधीनता स्वीकार कर ली है। उसने उस समय अंग्रेजो के साथ युद्ध मे व्यस्त दौलतराव शिन्दे से भी व्यर्थ ही प्रार्थना की। इस समय उसके अनेक सतारा निवासी मित्र उसके साथ हो गये थे। उन्होने नागपुर जाकर रघुजी भोसले से गम्भीर परामर्श किया। उसने चतरसिह तथा उसके साथियो को १५ हजार मासिक वेतन पर नौकर रख लिया। कुछ दिन बाद १८०५ की ग्रीष्म ऋतु मे सबलगढ नामक स्थान पर वह दौलतराव शिन्दे से उसके द्वारा आयोजित सम्मेलन के अवसर पर मिला। सम्मेलन व्यर्थ रहा, अत चतरसिह दिल्ली जाकर लार्ड लेक से मिला। अंग्रेजो की सेवा मे वह सरलता पूर्वक नौकरी प्राप्त कर सकता था, परन्तु इस अवसर को अस्वीकृत करके उसने ब्रिटिश विजयो से मराठा राज्य की रक्षा मे व्यस्त यशवन्तराव होलकर का साथ दिया। जोधपुर के राजा मानसिह तथा उदयपुर के राणा ने उसका भव्य स्वागत किया। परन्तु उसे मराठा राज्य के पुनरुज्जीवन के लिए आशा की एक भी किरण कही दिखायी नही पडी। कान्होजी गायकवाड नामक एक अन्य नवयुवक वीर से उसकी भेट हो गयी जो उसी की भाति गायकवाड राज्य का नाश रोकने के निमित्त प्रयत्नशील था। मालवा मे मन्दसौर नामक स्थान पर दोनो नवयुवको की भेट हुई। वे गुजरात गये, परन्तु कोई निश्चित परिणाम प्राप्त न कर सके। तब चतरसिह उज्जैन वापस आया। वहाँ उसको मालूम हुआ कि सतारा मे उसके भाई शाहू द्वितीय का देहान्त हो गया है तथा उसकी पत्नी और पुत्र को पेशवा ने निरोध मे डाल दिया है। यशवन्तराव होलकर का मानसिक सतुलन नष्ट हो जाने का समाचार पाकर वह और भी अधिक हताश हो गया। तब वह जुलाई, १८०९ मे धार गया, जहा वह दो वर्ष तक अपने राज्य मे आरम्भ होने वाले उपद्रवो के दमन मे व्यस्त रहा।

इसी समय बाजीराव ने अपने विश्वासपात्र त्रिम्बकजी डैगले को किसी न किसी शक्य उपाय से विद्रोही चतरसिह का दमन करने की आज्ञा दी। त्रिम्बकजी ने चतरसिह के पास अपने दूत भेजे और बाजीराव के नाम से पदोन्नति के दिखावटी वचन देकर उसको सतारा बुलाया। अपने परिभ्रमणो से तग आकर अगस्त, १८१० मे चतरसिह बडौदा पहुँचा और उसने गगाधर शास्त्री से परामर्श किया। गगाधर ने कहा—"शक्तिशाली ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध मराठा राज्य के पुनरुज्जीवन विषयक आपकी योजना की सफलता

के लिए लेशमात्र भी आशा नही है तथा उत्तम मार्ग यही है कि जो कुछ सेवा अग्रेज आपको देना चाहे, उसको स्वीकार कर लीजिए।'' इस परामर्श को अस्वीकार कर चतरसिह त्रिम्बकजी डैंगल के प्रलोभन मे फस गया तथा गिरना नदी पर स्थित मालगाव मे उससे मिलने गया। दोनो सरदारो के शिविर आमने सामने दोनो तटो पर थे। पवित्र शपथों द्वारा त्रिम्बकजी ने चतरसिह को व्यक्तिगत रूप से अपने पास मिलने आने के लिए राजी कर लिया। १० फरवरी १८११ को भोज का प्रबन्ध किया गया, जिसमे चतरसिह तथा उसके साथी पहुँच गये। व्यक्तिगत वार्तालाप के लिए गुप्त स्थान को जाते समय चतरसिह तथा उसके साथियो पर सहसा आक्रमण किया गया तथा मालेगाव के गढ मे बन्दियो के रूप मे उनका निरोध कर दिया गया। इसके बाद चतरसिह को बेडिया पहनाकर रायगढ के समीप कोगोडी के गढ को हटा दिया गया। यहाँ मन्दभाग्य नवयुवक ने कष्टप्रद कारावास के सात वर्ष व्यतीत किये। १५ अप्रैल, १८१८ को मृत्यु ने उसके क्लेशो को समाप्त कर दिया।

चतरसिह का यह विफल जीवन मराठा राज्य को जकडने वाले ह्रास का एक दृष्टान्त है। इसका कारण अन्तिम पेशवा की मूर्खता है जो उसने अनेकानेक उत्साहशील तथा देशभक्त नवयुवको की सेवाओ का उचित रूप से उपयोग नही किया।

२ **प्रतापसिह की सतारा मे स्थापना** - अपने पिता की मृत्यु के बाद शीघ्र ही प्रतापसिह का अभिषेक हुआ तथा अपनी माता के मार्ग-दर्शन मे उसने छत्रपति का जीवन आरम्भ किया। वे पेशवा की सद्भावना प्राप्त करने तथा अपने जीवन की कठोरता कम करा सकने के प्रयत्न मे सफल नही हो सके। गगाधर शास्त्री की हत्या से मराठा राज्य की आशाओ का नाश हो गया तथा प्रत्येक उच्च स्थानीय व्यक्ति केवल अपनी ही रक्षा की चिन्ता करने लगा। प्रतापसिह तथा उसकी माता ने पूना के रेजीडेण्ट से गुप्त प्रयत्नो द्वारा बाजीराव की दुष्ट योजनाओ के विरुद्ध सहायता की प्रार्थना की। बाजीराव ने अग्रेजो के विरुद्ध अपना युद्ध आरम्भ करने पर छत्रपति को सपरिवार सतारा से वसौटा के एकान्त दुर्ग को हटाकर बन्दी कर दिया। इसका वर्णन पहले हो चुका है कि बाजीराव किस प्रकार अपने पलायक युद्ध मे छत्रपति को साथ ले गया तथा छत्रपति किस प्रकार १९ फरवरी, १८१८ को अष्टा के रण के बाद अग्रेजो के हाथो पड गया। आवासी एल्फिस्टन ने टामस मुनरो के परामर्श से अपनी प्रसिद्ध घोषणा प्रकाशित की, जिसमे बाजीराव की

अपराधशीलता का वर्णन किया गया तथा मराठा शासन के अध्यक्ष पद से उसको च्युत कर दिया गया। एल्फिस्टन तथा जनरल प्रिज्लर ने १० फरवरी को सतारा के गढ पर अधिकार कर लिया और वहा प्रतापसिंह को उसके पूर्वजो के स्थान पर पुन स्थापित करने की तैयारी की। एल्फिस्टन तथा प्रतापसिंह ४ मार्च, १८१८ को ससवाड के समीप बेलसार नामक स्थान पर परस्पर सप्रेम मिले। वहा से एल्फिस्टन छत्रपति को सतारा ले आया और १० अप्रैल को प्रतापसिंह को उसकी पुरानी गद्दी पर बैठा दिया गया। कैप्टिन ग्राण्ट (भावी इतिहासकार) को उसका रेजीडेण्ट तथा सरक्षक, और विश्वस्त कार्यकर्ता बालाजी पन्त नाटू को उसके सहायक के रूप मे नियुक्त किया गया। गवर्नर जनरल की आज्ञा से सतारा के वर्तमान जिले के लगभग बराबर का छोटा-सा प्रदेश छत्रपति द्वारा शासन के लिए दिया गया। इस समय की ब्रिटिश परिस्थिति का सक्षिप्त वर्णन एल्फिस्टन इस प्रकार करता है—"हमने कभी पहले सम्पूर्ण देश की विजय का प्रयास नही किया था। एक राजा की स्थापना द्वारा मैसूर की भी रक्षा कर ली गयी थी। अब यही कार्य हम पूना तथा नागपुर मे कर रहे है। यदि हम असफल रहे (अपनी नीति मे सफलता प्राप्त करने मे) तो शिन्दे से युद्ध करना होगा। होलकर विद्रोह करेगा, सिक्ख और गोरखे उसका साथ देंगे और हैदराबाद भी उबल पडेगा। यदि किसी मूलभूत स्थान पर आक्रमण किया गया तो अन्य प्रान्तो मे भी ज्वाला फैल जायेगी तथा हमारा समस्त साम्राज्य ताश के पत्तो के घर की भाँति धराशायी हो जायेगा। जितना हम पचा नही सकते उससे अधिक हडप लेना निश्चय ही बहुत बुरी योजना है। इतने राज्यो को नष्ट करके तथा उनका क्षेत्र घटाकर हमने कलह के कारण बढा ही दिये है, जबकि हमारा उद्देश्य उनको दूर करना था।"[२]

फिर भी गवर्नर जनरल ने पेशवा द्वारा विजित प्रदेश का अधिकाश भाग ब्रिटिश राज्य मे मिला लेने का निश्चय किया तथा उसने प्रतापसिंह के शासन के लिए छोटा-सा भाग छोड दिया। राजा को आज्ञा हुई कि वह ब्रिटिश सत्ता का मित्र बना रहे। मराठी जनता ने इस व्यवस्था का तुरन्त अनुमोदन नही किया, क्योकि अब छत्रपति तुच्छ शासक की दशा को प्राप्त हो गया था। कुछ समय बाद २५ सितम्बर, १८१९ को प्रतापसिंह के साथ विधिपूर्वक सन्धि की गयी, जिसमे उसके राज्य क्षेत्र तथा अधिपति सत्ता के साथ उसके सम्बन्ध

---

२ कोलब्रुक कृत 'एल्फिस्टन की जीवनी', जिल्द २, पृ० ४०-४४

स्पष्ट कर दिये गये । वह न बाह्य शक्तियो के साथ पत्र-व्यवहार कर सकता था और न अपनी सेना बढा सकता था । ब्रिटिश सरकार के प्रति उसको सवदा निष्ठा रखनी थी । आरम्भ से ही राजा प्रतापसिह नाट से अप्रसन्न हो गया, क्योकि नाटू के विषय मे स्वार्थी एव षडयन्त्रकारी होने की प्रसिद्धि थी ।

कैप्टिन ग्राण्ट जो प्रतापसिह से साढे तीन वष बडा था, सतारा मे तीन वष तक बना रहा तथा १८२२ मे उसने ३४ वर्ष की आयु मे अवकाश ग्रहण किया । इसके कुछ ही समय बाद प्रतापसिह को प्रशासन के पूण अधिकार दे दिये गये । इस समय ग्राण्ट मराठो के इतिहास के लिए सामग्री सग्रह करने मे अधिक व्यस्त रहा । यह सामग्री वह अपने साथ इगलैण्ड लेता गया । वहा पर उसने अपना महान ग्रन्थ लिखकर १८२६ मे प्रकाशित किया । इस ग्रन्थ मे शासक जाति के प्रति पक्षपात का कुछ पुट है । कैप्टिन ग्राण्ट न बाद का अपने मूल नाम के साथ डफ शब्द जोड दिया । ६६ वष की आयु म २३ सितम्बर, १८५८ को उसका देहान्त हो गया ।[3]

३ **विजित प्रदेश का प्रबन्ध**—पेशवा के अधीन हो जाने तथा प्रतापसिह की पुन स्थापना से १८१८ के युद्ध का मुख्य उद्देश्य पूण हो गया । मराठा सरदारो के अधिकार वाले गढो को जीतने म अधिक समय नही लगा । केवल थोडे-से गढ इसके अपवाद थे—उदाहरणाथ, शोलापुर, थलनेर, आशिगढ तथा मालेगॉव । इनके कारण विजेताओ को कुछ कम कष्ट नही हुआ । शिवाजी की राजधानी रायगढ ने ७ मई, १८१८ को प्रिज्लर के प्रति आत्मसमपण कर दिया । उस समय अग्निवर्षा के परिणामस्वरूप १६८६ के मुगल अवरोध से बचे हुए शिवाजी के समय के समस्त प्राचीन बहीखाते नष्ट हो गये । शिन्दे के सरदार यशवन्तराव लाड ने आशिगढ की बलपूर्वक रक्षा की । अन्त म वह बन्दी बना लिया गया । उसकी वीरता से उसके विजेता इस प्रकार प्रभावित हुए कि उसका वध करने के स्थान पर उन्होने उसे घर जाने की स्वतन्त्रता दे

---

3 इगलैण्ड के एक अल्पसख्यक वाणिज्य समुदाय द्वारा भारत विजय विस्मय-कारक अदभुत घटना है । इसका स्पष्टीकरण करने के लिए उस समय के अनेक ब्रिटिश अधिकारियो ने कई ग्रन्थ तथा पत्रक लिखे जो एक शताब्दी से अधिक समय तक वास्तविक राष्ट्रीय इतिहास का आसन ग्रहण किये रहे । टाड, माल्कम, विल्कीज, मुनरो, जेकिन्स, वाकर, दोनो फोब्स, स्वय डफ को छोडकर भी, उन अनेक लेखको मे से थोडे-से व्यक्तियो के नाम है, जिन्होने इस क्षेत्र मे आरम्भिक सहायक लेखको का काय किया । बाद मे बहुत-सी लीपापोती भी की गयी ।

दी। लार्ड का देहान्त १८२० मे अत्यन्त कष्टपूर्ण दशा मे हुआ। आशिगढ मे दौलतराव शिन्दे, अप्पा साहब भोसले तथा अन्य व्यक्तियो के गुप्त पत्र व्यवहार की विशाल राशि मिली, जिसका अपने 'संस्मरण' लिखने मे माल्कम ने यथेष्ट उपयोग किया।

बाजीराव के प्रति निरन्तर निष्ठापूर्ण रहने वाले इने-गिने मराठा सरदारो मे विचूर का सरदार विट्ठल नरसिंह भी था। उसने अन्तिम समय तक बाजीराव का पक्ष त्यागने मे तथा ब्रिटिश प्रस्तावो का लाभ उठाने से इनकार कर दिया, जिसका परिणाम उसका सर्वनाश हुआ। बाद मे वह गवर्नर एल्फिस्टन से मिला तथा अपने दावो के प्रति न्याय करने की प्रार्थना की। उसने कहा कि उसको अपने स्वामी के प्रति निष्ठापूर्ण आचरण का पुरस्कार मिलना चाहिए न कि दण्ड। एल्फिस्टन पर इस तर्क का प्रभाव पडा, तथा उसने विट्ठल को छोटी सी जागीर दे दी जो अब तक उसके परिवार के अधिकार मे रही।

बाजीराव के दुष्ट कर्मो मे मुख्य सहायक त्रिम्बकजी डैंगले बहुत दिनो तक लापता रहा। बाजीराव द्वारा अधीनता स्वीकार करने के बाद उसने विजेता अंग्रेजो को बहुत कष्ट दिया। आत्मसमर्पण की शर्तों के लिए उसने जनरल डवटन से प्रार्थना की। डवटन ने उसकी प्राणरक्षा के अतिरिक्त और कोई आश्वासन देने से इनकार कर दिया। तब उसका निरन्तर पीछा किया गया। वह बिना किसी निश्चित निवास स्थान के इधर-उधर घूमा करता तथा अनेक स्थानो मे गुप्त रूप से शरण प्राप्त कर लेता था। अन्त मे नासिक जिले मे डिण्डोरी के समीप स्थित अहिरगाव मे उसका पता लग गया तथा जुलाई, १८१८ मे वह चन्दवाड के गढ मे बेडिया डालकर बन्दी कर दिया गया। ब्रिटिश अधिकारियो ने उसका प्राणहरण न करके उसे बनारस के समीप चुनारगढ भेज दिया। यहा पर १० वर्ष से अधिक समय तक बन्दी का जीवन व्यतीत करने के बाद १० अक्तूबर, १८२९ को वह मर गया।[४]

बाजीराव के आत्मसमर्पण पर मराठा राज्य का इतिहास समाप्त हो गया बताया जाता है, परन्तु मुझको विश्वास है कि मराठा जाति का इतिहास समाप्त नही होता। यह आवश्यक नही है कि प्रस्तुत ग्रन्थ मे प्रबन्ध के उस कार्य का

---

४ बिशप हीबर ११ सितम्बर, १८२४ को कारावास मे उससे मिला। उसने डैंगले का रोचक वृत्तान्त लिखा है। डैंगले ने बिशप को बताया कि एल्फिस्टन मित्र तथा शत्रु दोनो था—मित्र इसलिए कि उसने मेरे परिवार का ध्यान रखा और शत्रु इसलिए कि उसने मुझे अपना जीवन कारावास मे नष्ट करने पर विवश कर दिया।

वणन किया जाये जो एलिफस्टन तथा उसक पद पर रहन वाल उत्तराधिकारिया ने किया, और न इसका सम्बन्ध उसके आगामी शताब्दी मे भारतीय प्रश्नो क निपटाने म ग्रहण किय गये ब्रिटिश राजनीति क रूपा मे हे । ये ब्रिटिश भारत के इतिहास के अश है, परन्तु अग्रेजो के अखण्ड लाभा के विषय मे कुछ कह देना आवश्यक हे । अपहृत जागीरा को छोडकर बाजीराव के राज्य की आय १८१५ के वृत्तान्त के अनुसार लगभग ६७ लाख वार्षिक थी । उसमे मे लगभग २३ लाख आय का प्रदेश सतारा के छत्रपति के लिए अलग निकाल दिया गया । बाजीराव की निर्वाह वृत्ति ८ लाख रुपये प्रतिवष थी । अन्य व्यय चुकाने के बाद ब्रिटिश सरकार के पास ६२ लाख रुपये वार्षिक की अखण्ड आय रह गयी थी । बाद को अपहृत भूमियो से २५ लाख वार्षिक की आय और भी बढ गयी । प्रिसप कहता हे कि मराठा राज्य की आय से प्रशासन का व्यय निकालने के बाद ब्रिटिश सरकार को ५० लाख रुपय प्रतिवष का अखण्ड लाभ होता था ।

एलिफस्टन न विजित प्रदश का तुरन्त ही ४ भागा या कमिश्नरियो म विभाजित कर दिया । कृष्णा क दक्षिण प्रदश पर उसने मद्राम प्रान्त के योग्य प्रशासक चैप्लिन को नियुक्त किया । उसके काय की बाद म बहुत सराहना हुई । एलिफस्टन के गवनर होकर बम्बई जाने पर चैप्लिन पूना का प्रथम कमिश्नर हो गया । कृष्णा तथा नीरा के मध्यवर्ती प्रदेश के प्रबन्ध के लिए कैप्टिन राबट् सन नियुक्त किया गया । यह प्रदेश बाद मे प्रतापसिह को दे दिया गया । हैनरी पाटिजरे को मध्य कमिश्नरी सौपी गयी । इस क्षेत्र का विस्तार भीमा से चन्दवाड तक था । खानदेश की उत्तरी कमिश्नरी कैप्टिन ब्रिग्स को दी गयी । असाधारण रूप मे इन चारो योग्य अधिकारियो ने एलिफस्टन के निर्देश मे राजस्व, पुलिस, न्याय तथा सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक स्थितियो से सम्बन्धित मराठा शासन तथा प्रशासन के विषय मे परिश्रमपूवक बहुमूल्य ज्ञानराशि का सग्रह करके सावधानी से लेखबद्ध कर दिया । इस प्रकार उन्होने स्थायी ख्याति प्राप्त कर ली । एलिफस्टन ने एक विशाल प्रश्नमाला तैयार करके चारो कमिश्नरो से उसका उत्तर मागा तथा उनसे विशेष अध्ययन के लिए उपयोगी बहुमूल्य ज्ञान तथा आँकडे एकत्र कर लिये । जो उत्तर इन चार अधिकारियो ने दिये, उनके आधार पर स्वय एलिफस्टन ने विशाल वृत्तान्त लिखा जो इस समय इस प्रान्त की भूतकालीन शासन प्रणालियो पर उत्तम पुस्तक है ।

पटवधन परिवार पर बाजीराव की कृपा कभी नही रही थी । एलिफस्टन

की घोषणा से लाभ उठाकर वे युद्ध से दूर रहे तथा उन्होने अपनी जागीरो का प्रमाणीकरण करा लिया । ये जागीरे अब तक उनके पास रही । भोर का पन्त सचिव, प्रतिनिधि, फालटन का निम्बालकर सरदार, अकालकोट का सरदार, जट का सरदार तथा वाई का शेख मीरा—इन ६ सरदारो ने छत्रपति के शासनाधीन रहना पसन्द किया तथा वे सतारा राज्य के अन्त तक अपने स्थानो मे निरन्तर बने रहे ।

४ **प्रतापसिह की दुखद कथा**—इस छोटे-से राज्य का निर्माण शुद्ध सामयिक आवश्यकता के कारण हुआ था । यह राज्य सवथा एलिफस्टन की कल्पना का परिणाम था । भारत और इगलैण्ड के शासनो द्वारा विहित सामान्य नीति के विरुद्ध एलफिस्टन ने इस राज्य का निर्माण किया था । इस प्रकार आरम्भ से ही ब्रिटिश अधिकारी इस नवीन राज्य को यथासम्भव शीघ्र नष्ट करना चाहते थे । प्रतापसिह और उसकी माता द्वारा एलफिस्टन से बाजीराव के अत्याचार के विरुद्ध रक्षा की प्राथना पर उनको आश्वासन दिया गया था कि आपके स्वत्वो पर सहानुभूतिपूवक विचार किया जायेगा । फरवरी, १८१८ मे बापू गोखले के वध के बाद वे अग्रेजो के अधिकार मे आ गये, तब उनसे स्थायी प्रबन्ध होने तक अल्प निवाह वृत्ति की प्रतिज्ञा की गयी । प्रतापसिह की आयु उस समय २६ वष की थी । वह अपने कार्यों का प्रबन्ध करने के लिए सवथा योग्य था । उसको प्रशासन की कला का प्रशिक्षण देने के लिए एक अधकचरे ब्रिटिश सैनिक को नियुक्त किया गया । इस प्रशिक्षण मे ढाई वष का समय लग गया तथा ५ अप्रैल, १८२२ को प्रशासन का अधिकार प्रतापसिह को प्राप्त हो गया । उस समय कैप्टिन ग्राट ने अपने ही उत्तरदायित्व पर उसके कार्यों का प्रबन्ध किया । उसका निश्चित लक्ष्य ब्रिटिश हितो का विकास था । प्रतापसिह की क्षमता के विषय मे उसकी रिपोट बहुत कुछ पक्षपातपूण है । उस पर ब्रिटिश सत्ता के सगठन की अधीरता का रग चढा हुआ है ।[५]

एक समकालीन मराठा साक्षी प्रतापसिह के चरित्र के विषय मे यह प्रमाण उपस्थित करता है—"उसकी बुद्धि बहुत कुशाग्र थी तथा वह असाधारण रूप से व्यवहारकुशल था । वह निपुण अश्वारोही तथा वीर योद्धा था । उसका हृदय शुद्ध तथा उदार था । साथ ही वह परम्परागत ज्ञान से सुपरिचित था । जिन व्यक्तियो के सम्पक मे वह आता, उनके गुणो तथा अवगुणो को शीघ्र

---

५ ये वृत्तान्त एल्फिस्टन के लेखो के भाग है, जिनका प्रकाशन इस समय सरकार द्वारा पी० आर० सी० माला, जिल्द १५ मे हो रहा है ।

जान लेता था। वह अत्यन्त निष्पक्ष भाव म जटिन एव कलहग्रस्त प्रश्नो का निणय कर देता था। वह प्रशासन का सचालन दृढता एव नियमपूर्वक करता था। उसका स्वभाव बदला लेने की अपेक्षा सदा क्षमा करने का था। अपन धार्मिक कृत्यो मे वह सावधान था तथा दुखी दरिद्र जनता के क्लेश दूर करन मे उसको आनन्द प्राप्त होता था।[६] इस राजा के चरित्र तथा काय के विषय मे इसी प्रकार के उद्धरण आरम्भ मे उसके पास रहन वाले ब्रिटिश अधिकारियो ने भी लिखे हे। १४ लाख वार्षिक की अखण्ड आय मे से उसने अपन २० वष के प्रशासन मे ४० लाख रुपये केवल सावजनिक कल्याण पर व्यय किय।

उसको शनै-शनै ब्रिटिश विरोधी पक्षपात कैसे हो गया, यह रोचक प्रश्न है। इसी के कारण प्रतापसिह का चरित्र बदनाम कर दिया गया है। अपनी किशोरावस्था मे पेशवा का बन्दी रहते हुए उसने कोई अवगुण ग्रहण नही किया और सरल योद्धा के रूप मे उसका विकास हुआ। वह अपने व्यवहार मे उदार तथा स्पष्टवक्ता था। अपनी जाति और धम के नियमो के पालन मे उसको बहुत निष्ठा थी। सवप्रथम जो कुछ उसके मन मे आता, उसको प्रकट करने मे वह कभी भय नही करता था। उसका यह लक्षण ब्रिटिश सत्ता के अधीन शासक वाली उसकी स्थिति के प्रतिकूल था। उसके आन्तरिक विचारो का यह सघष हम उसके अपनी दिनचया म दिये लेखा से देख सकत है। कैप्टिन ग्राट के परामर्शानुसार यह दिनचर्या वह प्रतिदिन नियमपूवक लिखता था। यह दिनचर्या इस समय पूना मे पेशवा के दफ्तर मे कई खण्डो मे सुरक्षित है। इसमे उसने गवनरो तथा प्रसिद्ध ब्रिटिश अधिकारियो के साथ अपने वार्तालापो का वणन कही कही दे दिया है। इस दिनचर्या से अपने छोटे भाई के प्रति उसकी दया तथा शिकार का शौक प्रकट होने है। अपने राज्य मे उसने पाठशालाएँ खोली। इस प्रकार सतारा मे उसके द्वारा सावजनिक शिक्षा का सवप्रथम आरम्भ हुआ। कैप्टिन ग्राट ने १८२१ मे अवकाश ग्रहण कर लिया, परन्तु प्रतापसिह ने उसके साथ पत्र-व्यवहार द्वारा बहुत दिनो तक नियमित सम्पक जारी रखा। वह इगलैण्ड म प्राय दुष्प्राप्य वस्तुए तथा विदेशी निर्माण के अद्भुत पदार्थ मॅगाता और उनके मूल्य का धन नियमपूवक भेज देता था। वह इगलैण्ड की रायल एशियाटिक सोसाइटी का सदस्य बनाया गया। इस प्रकार उसको जीवन मे स्वस्थ प्रवेश प्राप्त हो गया तथा भविष्य मे उससे अधिक उन्नति की आशा हो चली थी। उसका सेनापति बाला साहेब

---

६ शेडगॉव का क्रमिक इतिहास, पृ० १५६

उत्साही नवयुवक था। वह अपने स्वामी पर निष्ठा रखता था और उसके कायवाहक अधिकारी का काय करता था।

अगले रेजीडेण्ट कनल ब्रिग्स की इच्छा से प्रतापसिह ने महाबलेश्वर के पठार तक दृढ तथा स्थायी सडक बना दी। महाबलेश्वर उसके राज्य के अन्तगत था। यहा पर उसने यूरोपीय तथा भारतीय आगन्तुको के लिए उपयुक्त ग्रीष्मकालीन निवास स्थान स्थापित किया। यह सडक बाद मे महाद तथा पश्चिमी समुद्रतट तक बढा दी गयी। महाबलेश्वर का पवतीय आश्रयस्थान १८२७ मे रचित विशेष समझौते द्वारा ब्रिटिश सरकार को दे दिया गया। पहाडी पर बाजार लगाया गया और इसका नाम माल्कम पेठ रखा गया। इसके बदले मे प्रतापगढ का दुग तथा शिवाजी द्वारा निर्मित वहा का भवानी मन्दिर प्रतापसिह के अधिकार मे दे दिये गये। इस समय महाबलेश्वर मे दशको को जो अनेक पहाडिया तथा उनकी चोटिया दिखायी पडती है, वे कई प्रसिद्ध ब्रिटिश सज्जनो के नामो का स्मरण कराती है। बम्बई के कई गवर्नर प्रतापसिह से सतारा मे मिले तथा उन्होने नव स्थापित शासन की स्वस्थ उन्नतिशील प्रगति पर उसको बधाई दी। इगलैण्ड के गृहाधिकारियो ने उसकी सेवाओ की सराहना की तथा १८३५ मे प्रशसात्मक प्रमाणपत्र सहित रत्नजटित तलवार भेजी। परन्तु इन सम्मान चिह्नो के भारत पहुँचने के पूव ही राजा तथा बम्बई सरकार के सम्बन्ध बिगड चुके थे, अत ये वस्तुएँ रोक ली गयी। इस परिवतन के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है।

१८१९ की सन्धि के अनुसार प्रतापसिह बाह्य जगत से कोई सम्पक नही रख सकता था। राजा को यह शत कष्टदायक मालूम हुई, क्योकि इसके कारण वह अपने राज्य के बाहर न तो विवाह का प्रस्ताव कर सकता था और न अन्य व्यक्तियो से मिल जुल ही सकता था। प्रथम बार रेजीडेण्टो—ग्राट, ब्रिग्स, राबट्सन तथा लाडविक—के शासनकाल शान्तिपूवक निर्विघ्न समाप्त हो गये परन्तु जब कनल ओवेन्स ने १८३७ मे कायभार ग्रहण किया तो दोनो के बीच की स्वाभाविक मैत्री क्षीण होने लगी। रेजीडेण्ट का जासूसी भरा सन्देहशील आचरण राजा के लिए दुखदायी हो गया। साम्राज्यवादी महत्त्वाकाक्षा की नयी लहर का प्रभाव बम्बई सरकार पर भी पडा। अब वह प्रतापसिह को अनावश्यक शक्ति समझने लगी तथा उसका राज्य छीनने के उपाय ढूढने लगी। प्रतापसिह सदृश गव तथा गौरवयुक्त पुरुष इस परिवतन को कैसे सहन कर सकता था। उस पर राजद्रोह का आरोप लगाया गया कि वह ब्रिटिश सरकार के उन्मूलन का प्रयास कर रहा है। ४ सितम्बर, १८३९ को वह

राज्यच्युत कर दिया गया। उसे अपना आचरण स्पष्ट करने का अवसर भी नही दिया गया। इसके बाद वह बनारस भेज दिया गया। लम्बी स्थल-यात्रा मे उस पर पहरा रखने वालो ने उसे तथा उसके परिवार को हृदय-विदारक यातनाएँ दी। अपनी अयोग्यता के लिए बदनाम उसके छोटे भाई शाहजी अप्पा साहेब को राजा बना दिया गया। प्रतापसिह बनारस मे अपना कष्टप्रद जीवन १४ अक्तूबर, १८४७ अर्थात अपने देहान्त तक बिताता रहा। २ दिसम्बर, १८४४ को उसने गवनर जनरल लाड हार्डिंग्ज के पास प्रबल विरोध पत्र भेजा, जिसमे अपने साथ किये अन्यायपूर्ण व्यवहार का वणन किया गया था। यह पत्र भाषा तथा तक का दुलभ उदाहरण है। इसे प्रतापसिह के कायकर्ता जाज टामसन ने तैयार किया था।

प्रतापसिह के निस्सन्तान उत्तराधिकारी शाहजी का देहान्त ५ अप्रैल, १८४८ को हो गया तथा सतारा का अल्पजीवी राज्य ब्रिटिश राज्य मे मिला दिया गया। प्राचीन होते हुए भी इस नवनिर्मित राज्य का सम्पूण इतिहास भारत मे ब्रिटिश नीति पर अद्भुत टीका है। सतारा का मिलाया जाना १८५७ के विद्रोह का प्रेरक कारण बन गया।

पेशवा परिवार मे सबसे अधिक लम्बे जीवन अर्थात ७६ वष की आयु का उपभोग बिठूर मे पेशवा बाजीराव ने किया। धोडो पन्त नाना साहेब उसका दत्तक पुत्र था। अपने पिता की निवाहवृत्ति न मिलने पर उसने १८५७ मे विद्रोही सिपाहियो का साथ दिया। इसी कारण वह ब्रिटिश भारतीय इतिहास मे बदनाम हो गया। उसके बाद उसके परिवार का लोप हो गया।

बाजीराव के भाई चिमनाजी अप्पा को दो लाख रुपये वार्षिक की वृत्ति मिलती थी। अपने भाई के आत्मसमपण के बाद वह १८१९ के आरम्भ मे बनारस चला गया। वहाँ ९ जून, १८३० को उसका देहान्त हो गया। उसके कोई सन्तान न थी। उसके पश्चात उसका वश भी नष्ट हो गया। उसके आश्रित जनो मे मोरोपन्त ताम्बे भी था, जिसकी पुत्री लक्ष्मीबाई का विवाह झासी के राजा गगाधर पन्त से हुआ। उसने १८५७ के सिपाही विद्रोह मे झासी की रानी के नाम से ख्याति प्राप्त की। वह १८ जून, १८५८ का ग्वालियर के समीप अग्रेजो से युद्ध करती हुई मारी गयी।

बाजीराव के दत्तक भाई अमृतराव के वशज इस समय भी (१९४८) जीवित है। केवल उन्ही के कारण भारतीय इतिहास मे स्थायी स्थान पाने वाले पेशवाओ के प्रसिद्ध वश की स्मृति अब तक शेष है।

५ **मराठा पतन के कारण**—पूव पृष्ठो मे मराठा राज्य की मुख्य कथा

का वर्णन है— किम प्रकार इमका उदय हुआ ? किस प्रकार इसका विस्तार हुआ तथा किस प्रकार शीघ्र ही इसका अन्त हो गया ? भारत मे मराठो का आकस्मिक उदय सदैव तन्मयता भरी रुचि का विषय रहा है तथा अनेक योग्य विद्वानो ने उन कारणा की व्याख्या करने म अथक परिश्रम किया है, जिनके द्वारा वह राज्य अन्तिम अध्यायो मे वर्णित दुखद अन्त को प्राप्त हुआ । उस समय के विचारका के लिए भी यह कोई कम आश्चय की बात न थी कि शिवाजी की विलक्षण बुद्धि द्वारा निर्मित तथा प्रथम चार पेशवाओ द्वारा परिश्रमपूवक सुरक्षित यह विशाल भवन किस प्रकार इतनी सरलता से भूमिसात हो गया । उसके पतन पर प्रतीत होता है कि प्राचीन प्रतिभा, विवेक तथा वीरता आदि इस गुणसम्पन्न जाति से सहसा विदा हो गये थे । समय पर इस दुदशा की रोकथाम क्यो न हो सकी तथा भारत का स्वातन्त्र्य सुरक्षित क्यो न रखा जा सका ? इस प्रकार के प्रश्नो से केवल मराठो का मन ही नही, अपितु अनेक भारतीय तथा विदेशी विचारको का मन भी बहुत समय से आकुल है । अनेक विद्वाना ने उनका उत्तर दिया है । इस प्रकार के ऐतिहासिक तक के विषया मे सवसम्मत निणय की अपेक्षा नही की जा सकती ।

मानव इतिहास की यह विचित्र तथा आश्चयजनक घटना है कि एक छोटी-सी पश्चिमी सत्ता का प्रवेश हजारो मील दूर मे भारत मे हो जाये तथा वह इस महाद्वीप को अधीन कर ले, जहा पर असीमित साधन सम्पत्ति वाली वीर सैनिक जातियो के निवासस्थान हो । इसकी व्याख्याथ अनेक प्रकार के सिद्धान्त उपस्थित किये गये है । कुछ लेखको ने एक मोहक सिद्धान्त का निर्देश किया है कि पश्चिमी यूरोप की जातियो के शारीरिक तथा मानसिक गठन मे कोई ऐसा तत्त्व है जो उनको एशिया निवासी निरक्षर लोगो पर सुविधापूवक विजय प्राप्त करने की क्षमता देता है । आधुनिक काल मे गोपाल हरि देशमुख, रानाडे, भण्डारकर, तिलक, प्रो० लिमये सदृश अनेक महाराष्ट्रीय विचारको तथा लेखका ने अपने-अपने ढग से इस विचित्र घटना की व्याख्याथ प्रबल युक्तियाँ दी है । इनमे पक्षपात तथा अनुराग का पर्याप्त पुट मालूम होता है । मराठा इतिहास के दो प्रमुख विद्वानो—रजवाडे तथा खरे—ने विशेष रूप से इस विषय पर बहुत कुछ लिखा है । खरे ने एन० सी० केलकर के ग्रन्थ "मराठे तथा इगलिश" का विशाल परिचय लिखा है जो मराठा राज्य की नाश शताब्दी के स्मरणाथ १६१८ मे प्रकाशित हुआ । खरे ने अपने लेख मे मराठा चरित की जन्मजात निबलताओ तथा न्यूनताओ की तीव्र आलोचना की है । उसने उदाहरण भी उपस्थित किये है । वह कहता है—(१) मराठो मे कोई

राष्ट्रीय भावना न थी। (२) आन्तरिक ईर्ष्या तथा स्वार्थी विश्वासघात ने जनहित पर विजय प्राप्त कर ली। (३) व्यक्तिगत रूप से मराठे चतुर तथा वीर थे, परन्तु उनमे राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य के लिए आवश्यक एकात्मभाव का सवथा अभाव था। (४) अन्वेषण तथा उन्नति की वैज्ञानिक मनोवृत्ति का सवथा अभाव था। (५) उन्होने रक्षा के मुख्य साधन तोपखाने की उन्नति की उपेक्षा की। (६) सैनिक सेवा के लिए वेतन के बदले मे जागीर देने की हानिकारक प्रणाली विनाशक सिद्ध हुई। (७) पेशवा माधवराव प्रथम की मृत्यु के बाद महाराष्ट्र मे कोई योग्य नेता प्रकट नही हुआ। (८) एक जाति के रूप मे मराठो मे अनुशासन तथा विधिपूवक पूवरचना के गुणो का शोचनीय अभाव है। (९) अग्रेज कूटनीति की कला मे सिद्धहस्त तथा पूण अधिकारी थे। इसमे मराठो के साथ उनकी कोई तुलना नही हो सकती।

यह सम्भव नही है कि मानव की उद्योगशीलता या मानव मस्तिष्क की कायक्षमता का माप या ज्ञान उसी यथाथता से प्राप्त किया जा सके जो प्राकृतिक विज्ञान मे अपेक्षित होती है। अत किसी व्यक्ति विशेष की चाटु-कारिता या व्यक्तिगत अनुभव के समथन मे इस प्रकार के अनेक सामान्य कारण प्रस्तुत किये जा सकते है। हम सुविधापूवक उनको मान सकते है तथा उनका बल स्वीकार कर सकते है। कई गत शताब्दियो से पूर्वी मस्तिष्क की सामान्य प्रवृत्ति जीवन मे विज्ञान द्वारा मागदशन को स्वीकार करने से इनकार करती रही है, किन्तु साधारण पश्चिम निवासी का यह विशेष गुण है। एशिया के शासको को गणतन्त्रीय या सस्कारी समाज के नियमो से कभी भी कोई प्रेरणा प्राप्त नही हुई। वे अपने व्यवहार मे सवदा स्वतन्त्र रहे। पूर्वी देशो मे राष्ट्र का भाग्य केवल व्यक्ति ही बनाते-बिगाडते थे तथा व्यक्तियो मे साधा-रणत वे निबलताएँ पायी जाती है जिनकी ओर खरे ने अपने विद्वत्तापूण विश्लेषण मे सकेत किया है। इस सूची मे हम कुछ और निबलताओ को भी जोड सकते है। पूर्वी राजनीति का एक भयानक दोष यहा पर पितृपरम्परागत सेवा तथा व्यवसाय का विनाशक नियम स्वीकार किया जाना है। यह नियम हमारे व्यक्तिगत जीवन को नियन्त्रित करता है। पितृपरम्परागत स्वत्व योग्यता के विचार के बिना समस्त देश मे दुर्निवाय हो गये तथा शक्तिशाली शासक भी उनका तिरस्कार नही कर सके थे। शनै -शनै इस प्रथा के कारण व्यक्ति-गत क्षमता तथा उपक्रम का ह्रास हो गया और भयानक सामाजिक पतन आ धमका। यदि किसी पिता ने अपने को योग्य व्यक्ति सिद्ध कर दिया तो यह आवश्यक नही है कि उसका पुत्र या पौत्र भी उतना ही योग्य निपुण सिद्ध

होगा। ४० दिन के शिशु माधवराव द्वितीय को पेशवा के पद पर बैठा दिये जाने का परिणाम शोचनीय ही हुआ। वास्तव मे मराठा पतन का यह एक प्रबल कारण है।

किन्तु राजवाडे इन साधारण कारणो मे से अधिकाश को अस्वीकार करते है। वह बलपूर्वक कहते है कि वैज्ञानिक मनोवृत्ति का अभाव ही मराठा पतन का मुख्य कारण है। इस अभाव के कारण मराठे अपने पश्चिमी प्रतिद्वन्द्वियो पर सफलता प्राप्त करने मे समर्थ नही हो सके जो विज्ञान तथा अनुशासन मे प्रशिक्षित थे। हम राजवाडे के स्वाभाविक ढग मे लिखित इस प्रकार के विवरण से पूर्ण सहमत है—"जब १८१८ के आरम्भिक मासो मे पेशवा बाजीराव द्वितीय जनरल स्मिथ तथा अन्य कमाण्डरो के अधीन ब्रिटिश दलो के सम्मुख भागने मे व्यस्त था, उस समय यदि पेशवा का साथ देने वाले किसी मराठा सवार से यह प्रश्न किया जाता कि वह क्यो भाग रहा है, क्या उस पर कोई विशेष भय छा गया है, तो वह निश्चय ही बिना अधिक विचार के उत्तर देता कि उसको दो टागा वाले गोरे का कोई भय नही है। वह तो उसके हाथ मे लगी लम्बी मार करने वाली बन्दूक से डरता है। युद्ध-सचालन मे प्राप्त उसकी वैज्ञानिक सुसज्जा से भी डरने की बात कहता।" मराठा राज्य के पतन के मुख्य कारण के सम्बन्ध मे राजवाडे का विचार सक्षेप मे इस प्रकार है। इसको पश्चिम की वैज्ञानिक उन्नति से हार खानी पडी। इसका आरम्भ कोलम्बस के साथ हुआ तथा इसके द्वारा पुर्तगालियो का जैसा छोटा राष्ट्र भी पूर्वी देशो मे अपना साम्राज्य स्थापित करने में समर्थ हो गया। आर्थर वेलेजली की शक्तिशाली बन्दूको ने ही असाई तथा अडगाव के रणक्षेत्रो मे शिन्दे के दलो की शक्ति चूर्ण-चूर्ण कर दी। ब्रिटिश तोपखाने ने ही यशवन्तराव होलकर की शक्ति को नष्ट कर दिया था। इसी शक्तिशाली अस्त्र से क्लाइव ने तुलाजी आग्रे को पराम्त कर दिया था। यदि बाजीराव द्वितीय के पास सगठित तोपखाना होता तो वह अपने समस्त दोषो के होते हुए भी अग्रेजो के विरुद्ध युद्ध मे इस सरलता से परास्त नही हो जाता। सक्षेप मे राष्ट्र की स्वाधीनता तथा स्वातन्त्र्य को केवल निपुण सेनाएँ ही सुरक्षित रख सकती हैं—अर्थात वे सेनाएँ जिनके सैनिक सुशिक्षित है, जो नवीनतम अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित है तथा जिनके सेनापति योग्य है। राष्ट्र के रूप मे मराठो मे युद्ध के इस परमावश्यक आधार का अभाव था। इसकी अपेक्षा उनके समस्त अन्य दोष नगण्य है। रानडे लिखते है—"यदि इस नूतन नीति (शिन्दे के प्रशिक्षित दल) के साथ-साथ सैनिक कौशल के आवश्यक ज्ञान तथा उच्च अस्त्रो के निर्माण और

उपयोग मे वैज्ञानिक पद्वति भी प्राप्त की जाती तो यूरोपीय अधिकारियो द्वारा छोडे जाने पर देशी दलो को निश्चेष्ट कर देने वाली निराश्रयता उत्पन्न न होती। परन्तु मालूम होता हे कि इस दिशा मे कोई ध्यान नही दिया गया तथा वे युद्धक्षेत्र मे अभूतपूव रूप से असहाय हो गये।"[७]

वैज्ञानिक उन्नति के इस विषय पर विचार करते समय यह बात अवश्य ध्यान मे रखनी चाहिए कि आवश्यक ज्ञान रखने वाले दि बायने तथा पेरो सदश थोडे-से सेनानी ही सेना को युद्ध मे निपुण बनाने के लिए पर्याप्त नही हे। वैज्ञानिक भाव तथा सुसज्जा सेना के प्रत्येक भाग तथा समाज के जन समुदाय मे व्याप्त होने चाहिए—समस्त जनता उपयुक्त अस्त्रो के प्रयोग मे योग्य हो तथा जनसाधारण सैनिक कोशल के पालनार्थ अनुशासन और विधिपूवक सगठन मे प्रशिक्षित हो। इस विषय मे विज्ञान की जो सामान्य उन्नति यूरोप मे हुई थी, उसका लेशमात्र प्रभाव भी एशिया निवासियो पर नही पडा। साधारण भारतीय किसी भी यूरोप निवासी के सम्मुख सवथा असहाय था। भारतीय समाज मे ज्ञान तथा शिक्षा का सामान्य स्तर भी शोक का विषय था—वह यूरोपीय आक्रमण के विरुद्ध भारत की रक्षा के लिए आवश्यक स्तर से बहुत नीचे था। अपने दृष्टिकोण मे भारतीय मस्तिष्क अति आध्यात्मिक हो गया था।

इस सम्बन्ध मे हम एक अन्य तत्त्व की उपेक्षा नही कर सकते। वह तत्त्व निस्सन्देह जातिपाति की परम्परागत व्यवस्था मे निहित सकीण कट्टरता एव जातीय गर्व था। बाद मे पूना सरकार की गतिविधि मे यह प्रबल हो गया था। इसके ब्राह्मण शासको ने प्रतिक्रियावादी शक्तियो को प्रेरणा दी तथा समाज के पुनरुज्जीवन के लिए सुधारो का वीरतापूवक समथन करने के स्थान पर जीणशीण प्रथाओ को प्रोत्साहन दिया। इस दोष के कारण अलग होने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गयी तथा अनेक मराठा सरदार राज्य की सेवाथ सामान्य सकट के समय एक दूसरे का साथ न दे सके। १८वी शताब्दी के अन्त तथा १९वी शताब्दी के आरम्भ मे मराठा राज्य के भाग्य मे निस्सन्देह एक विनाशक सगठन घटित हुआ—जब पूना का शासन दो अपक्व दुष्ट नवयुवको—पेशवा बाजीराव द्वितीय तथा दौलतराव—के अधिकार मे आ गया। वे दोनो समान रूप से अयोग्य थे। युद्ध तथा कूटनीति के क्षेत्रो मे सहसा उनका पाला ब्रिटिश क्षमता की तेजस्विता से पडा। उस समय के ब्रिटिश शासको की सूचीमात्र

[७] विविध लेख, पृ० ३५४। प्रो० लिमये का भी यही विचार है।

पर ध्यान देने से इसका हम सुविधापूर्वक अनुमान कर सकते है।[८] आंग्ल भारतीय इतिहास में भी इस प्रकार के प्रतिभावान पुरुषो का समूह अपवादस्वरूप है, जैसा कि १८वी तथा १९वी शताब्दियो के मिलन समय पर यह समूह उपस्थित हो गया था। यदि इस प्रकार के विरोधियो से टक्कर होने पर दोनो मराठा नवयुवक खडे रह सकने के लिए अति दुर्बल सिद्ध हुए तो क्या हमको आश्चर्य करना चाहिए? इस सम्बन्ध मे राजवाडे आगे लिखते है—"अपने जन्म से ही इंगलिशमैन राजनीतिप्राणा है। उस पर सज्जनता की कलई चढी हुई है, परन्तु अपने हृदय में वह पिशाच है। जहा पर राजनीति आ जाती है, वह स्वयं अपने पिता का भी आदर न करेगा। तब वह किसी अन्य व्यक्ति का आदर कैसे कर सकता है? अतः कोई आश्चर्य की बात नही है कि आध्यात्मिक महत्ता के अपने उच्च गर्व सहित हम इंगलिशमैन के सामने अल्पकाल में ही पराजित हो गये।'

मनुष्य का भाग्य बहुधा इस प्रकार निश्चित हो जाता है, जिसके कारण की खोज कारण-कार्य के सिद्धान्तानुसार सदैव नही की जा सकती। उसके विकास मे हम दैवयोग अथवा अदृष्ट का प्रपंच मानना पडता है। अपने महान ग्रन्थ 'यूरोप का इतिहास' में फिशर लिखता है—"इतिहास के पृष्ठ पर उन्नति का तथ्य स्पष्ट तथा विशाल रूप मे लिखा है, परन्तु उन्नति प्रकृति का नियम नही है। एक पीढी द्वारा प्राप्त उन्नति दूसरी पीढी द्वारा नष्ट की जा सकती है।" उसके विचार से इतिहास को वे तत्त्व ध्यान मे रखने पडते है, जिनको "दैवयोग" तथा "अदृष्ट" शब्दो द्वारा व्यक्त किया गया है। मराठा इतिहास में इस प्रकार के अनेक तत्त्व है। उसके अनेक महापुरुषो की असामयिक तथा असम्भावित मृत्यु हो गयी—उदाहरणार्थ शिवाजी, बाजीराव प्रथम, माधवराव प्रथम तथा अल्पवयस्क होनहार बालक मन्दभाग्य पेशवा माधवराव द्वितीय। जिस समय से मृत्युएं हुई, उनसे निस्सन्देह राज्य को क्षति पहुँची तथा हमारे भावी इतिहास के क्रम में मौलिक परिवर्तन हो गया। पाठक को अपने मन में उन स्थितियो का ध्यान करना चाहिए, जिनमे इन महापुरुषो की मृत्युएँ हुईं। ये समस्त मृत्युएँ असामयिक तथा सर्वथा असम्भावित मृत्युएँ थी। शिवाजी की मृत्यु के कारण ही मुगल सम्राट महाराष्ट्र पर आक्रमण कर सका। बाजीराव की मृत्यु से निजाम निश्चित सर्वनाश से बच गया तथा उसका वंश दक्षिण मे स्थायी हो गया। पेशवा माधवराव प्रथम की मृत्यु पर आन्तरिक

८ अध्याय १२, भाग ३ का अन्त, पृ० ३६०

तथा विदेशी दोनो प्रकार की छिपी हुई विघटनकारी शक्तियो को महाराष्ट्र की भूमि पर खुली छूट मिल गयी और उन्होने नाश की गति तीव्र कर दी । १७९५ मे माधवराव द्वितीय की मृत्यु के कारण मराठा नेतृत्व पर दुष्ट-बुद्धि बाजीराव द्वितीय का अधिकार हो गया । यदि यह घटना घटित न हुई होती तो मराठा राज्य का स्वतन्त्र जीवन बहुत दिनो तक बने रहने की सभी सम्भावनाए थी । यह बात दूसरी हे कि वे सदा सवदा के लिए न हो । यदि इतिहास से मानवता को कोई शिक्षा प्राप्त करनी है तो इन सम्भावनाओ पर अवश्य ध्यान देना होगा । एल्फिस्टन लिखता हे—"अग्रेजो के सौभाग्य से न तो बाजीराव मे और न शिदे मे यह बल तथा साहस था कि वे सकटग्रस्त समय पर वीरता-पूवक प्रतिरोध करते । यदि उस समय पेशवा के स्थान पर उससे अधिक वीर कोई अन्य होता तो यह कल्पना करना कठिन नही है कि अग्रेजो की क्या दशा हुई होती । सफलतापूवक युद्ध करने के विपुल साधन—सेनाएँ, धन, अस्त्र-शस्त्र, गोला-बारूद—मराठो के पास थे । प्रत्येक वस्तु उपलब्ध थी, केवल नेता का अभाव था । दक्षिण मे बाजीराव तथा उत्तर मे दौलतराव दोनो ही अपने राष्ट्र के प्रति देशद्रोही थे । अत वे युद्ध मे हार गये ।[९]

६ **सस्मरण**—१८१८ मे मराठा शासन ने अपना स्थान ब्रिटिश आधिपत्य को दे दिया । उस समय से अब तक (१९४८) १३० गर्मिया व्यतीत हो चुकी है । भारत के इतिहास मे यह असामान्य घटना महत्त्व की हुई । अब लगभग डेढ शताब्दी के बाद इस देश ने ब्रिटिश शासको से अपना स्वातन्त्र्य पुन प्राप्त कर लिया हे । यह स्पष्ट हे कि इस विदेशी शासन ने भारतीय जीवन मे विशाल परिवतन उपस्थित कर दिये है । इसका मुख्य कारण यह तथ्य ही है कि इसने ससार की दो विचित्र जातियो के बीच परस्पर प्रत्यक्ष सम्पक स्थापित कर दिया है । पूववर्ती मराठा शासनकाल की स्मृति भी धुधली हो गयी है, जिसके इतिहास का वर्णन अब तक किया गया है । इस इतिहास से हमको क्या शिक्षा मिलती हे ?

जीवन सतत सघर्ष है—मनुष्य का मनुष्य के विरुद्ध, मनुष्य का अपने वातावरण के विरुद्ध सघर्ष जो शारीरिक बौद्धिक तथा नैतिक धरातलो पर हुआ करता है, इससे नवीन रूप, नवविचार तथा अज्ञातपूर्व समस्याएँ उत्पन्न होती है । वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय जीवन मे विनाश तथा निर्माण साथ-साथ विद्यमान रहते है । जीवन की प्रगति विकास के नियमानुसार होती है । हम

---

[९] कोलब्रुक कृत जीवनी, जिल्द १, पृ० ३७२

कभी निष्क्रिय नही रहते । इस विचार दृष्टि से किसी को मराठा शासन के लोप पर न तो शोक होना चाहिए, न वतमान विकास पर अनुचित रूप से हृष । हमारी मुक्ति हमारे ही हाथो मे है ।

मराठे छोटे-छोटे ग्रामीण पाटिलो तथा कृषको से किस प्रकार अपने देश के स्वामी तथा शासक बन गये, इस ग्रन्थ का ध्येय इसी प्रश्न की व्याख्या करना है । शिवाजी के नेतृत्व मे मराठो का उदय तथा पेशवाओ के नेतृत्व मे उनका प्रसार—इनका सम्बन्ध केवल दो विशेष परिवारो की प्रवृत्तियो से है । उनके प्रतिनिधियो का इतिहास के पृष्ठ मे लोप हो गया है, अत इस समय पक्षपातहीन पुनरावलोकन तथा सहानुभूति के आलोक मे उनके प्रति ठीक न्याय किया जा सकता है । इन दोनो परिवारो ने अपनी बुद्धि के अनुसार जो कुछ भी बन सका वह अपने राष्ट्र के लिए किया ।

हिन्दू जीवन के स्वाभाविक आध्यात्मिक रूप तथा नम्र एव उदार चरित्र का मुसलमानो के अमानुषी दुष्ट व्यवहार, उनकी लूटमार, लोभ, विनाश तथा बलपूर्वक धर्म परिवर्तन से घोर विरोध है । निजाम आसफजाह को पालखेड से सम्मानपूर्वक भाग जाने दिया गया । पेशवा माधवराव प्रथम ने अपने चाचा की हत्या नही की । ऐसा करने से अनेक भावी सकटो से राज्य की रक्षा हो जाती । तुलाजी आग्रे का निर्दयतापूर्वक वध न करके उस पर ३० वर्ष तक मृत्युपर्यन्त कठोर पहरा लगा रहा । हमको मानना पडेगा कि अत्यन्त अल्प अवधि वाले मराठा शासन पर मुगल शासनकाल के समान धब्बे नही लगे है— उदाहरणार्थ अपने ही सगे भाई के हाथ से दारा शिकोह की निर्दय हत्या या अलीवर्दीखाँ द्वारा २१ मराठा सरदारो की पैशाचिक हत्या या शाहआलम द्वितीय का अपने ही सेवक तथा सहधर्मी गुलाम कादिर द्वारा नीचे गिराया जाना तथा अन्धा किया जाना । सब मिलाकर मराठा शासन सदय तथा कल्याणकारक था । वह अकारण अत्याचार से मुक्त था तथा उसको लोकहित का ध्यान था । शुद्ध गृहकलह के कारण सम्पन्न पेशवा नारायणराव की हत्या को छोडकर उनसे कोई ऐसा पाप नही हुआ, जिसके विषय मे हम कह सके कि यह पाप मराठा इतिहास के पन्नो को कलकित करता है । पेशवाओ के पराक्रम का सर रिचर्ड टेम्पुल निम्नलिखित प्रमाण उपस्थित करता है— "उच्चतम तथा अत्यन्त सुसस्कृत जाति के ब्राह्मण पेशवा परिवार ने एक राजवश स्थापित किया तथा सौ वर्ष से अधिक समय तक इसको सुरक्षित रखा । इस परिवार ने भारत के अशान्त भाग्य तथा ससार के एक अत्यन्त विपुल जनसख्यक साम्राज्य पर शासन किया। भारत के विविधतापूर्ण

इतिहास मे यह ब्राह्मण राजवश शायद अपूव तथा विचित्र है। ममाग की किसी अन्य जाति की अपेक्षा ब्राह्मणा ने अपनी रक्तशुद्धि का मबसे अधिक सुरक्षित रखा। अत उनसे आशा थी कि गाजत्व का प्राप्त करने पर वे राजाओ के रूप मे किसी विशेप क्षमता का परिचय देग। प्रथम चार पेशवाओ ने इस आशा को पूर्ण कर दिया। भारत के हिन्दू गजाओं के अनेक वशो मे एक ने भी पेशवाओ के ममान योग्य शासको की वश-परम्परा उत्पन्न नही की। इतिहास का विद्यार्थी तुरन्त प्रश्न करेगा—"क्या भारत के मुसलमान गजवशो मे कोई भी वश ऐसा है, जिसने पेशवाओ के ममान योग्य चार राजाओ को जन्म दिया हो ? केवल एक वश मे—अर्थात महान मुगल वश मे—इनके समानान्तर चार व्यक्ति मिल सकते है। अकबर से औरगजेब तक चारो मुगल सम्राट इन चार पेशवाओ के ममान ही महान थे।"[१०]

यद्यपि पेशवाओ का शासनकाल स्वल्प था, तथापि उन्होने भारत के इस विचित्र महाद्वीप मे राष्ट्रीय शासन का अत्यन्त प्रेरक आदश सदा सवदा के लिए उपस्थित कर दिया। इस प्रकार हमारी आधुनिक राजनीति के लिए भी मराठा इतिहास शिक्षाओ से परिपूण है। मराठो को अपनी फूट का दण्ड सहन करना पडा। यदि भविष्य मे भारतीय राष्ट्र को अपना सम्मान उन्नत रखना है तो यह काय केवल इसके विभिन्न तत्त्वो मे हार्दिक ऐक्य बना रहने से ही हो सकता है। अपने मुस्लिम पूर्वाधिकारियो की तुलना मे मराठे प्रशासन कला मे सामान्यत अधिक निपुण तथा चतुर सिद्ध हुए। परन्तु ब्रिटिश लोग मराठो की अपेक्षा निश्चित रूप से अधिक बढ-चढकर थे। अत उन्होने सरलतापूर्वक मराठो का स्थान ग्रहण कर लिया। उनका उदय बहुत मन्द गति से हुआ हो, यह बात दूसरी है। मुगल सम्राट—कम से कम प्रथम ६—वास्तव मे योग्य पुरुष थे, परन्तु वे भी इस आरोप से बच नही सकते कि उन्होने इस विशाल महाद्वीप की समुद्री रक्षा समस्या के प्रति अपराधपूण उपेक्षा की। जब बाबर ने दिल्ली मे अपना ध्वज लहराया, उसके कुछ ही वप पहले पुर्तगालियो ने गोआ पर अधिकार कर लिया था और अपने पैर स्थायी रूप से जमा लिये थे। सम्राटो को इस विषय पर अवश्य विचार करना था कि इस छोटी-सी विदेशी टोली ने महान सफलता किस प्रकार प्राप्त कर ली। एक शताब्दी के भी बाद अग्रेजो ने मद्रास मे अपना उपनिवेश स्थापित किया तथा १६३६ में सेन्ट जाज तथा सेन्ट डेविड के नामो पर प्रसिद्ध दो गढ बना लिये। यह घटना शक्तिशाली

---

१० 'औरिएटल एक्सपीरिएस', पृ० ३८८ तथा ४०२

शासक शाहजहा के समय की है। जब शाहजहाँ के उत्तराधिकारी औरगजेब ने आगरा म अपने समक्ष शिवाजी को झुका दिया था, तभी अग्रेजो ने बम्बइ को प्राप्त कर निया। उन्होने १६६६ के लगभग कलकत्ता मे फोट विलियम नामक गढ बना लिया जब यह सुयोग्य सम्राट बगाल पर शासन करता था।

इन तिथिया को ध्यान मे रखकर आप देखे कि समकालीन राजनीति मे अज्ञात शासक शिवाजी ने अपने ढग से किस प्रकार काय किया। १७वी शताब्दी के सप्तम दशक के आरम्भ मे जब औरगजेब दिल्ली मे अपनी युवावस्था मे था तभी शिवाजी ने कल्याण से विनगोर्ला तक पश्चिम तट के कई चक्कर लगाये (१६६०-१६६४) और समुद्री रक्षा की आवश्यकता समझकर विजयदुग, मलवन (सिन्धुदुग) सुवणदुग तथा कोलाबा मे दृढ जलदुग स्थापित किये। इनमे पोतप्रागण तथा आयुधागार भी थे। औरगजेब ने स्थल पर शिवाजी के विरुद्ध जोरदार कारवाई की, परन्तु विद्रोही की समुद्रतटवर्ती प्रवृत्तिया उसके ध्यान मे न आयी, क्योकि सम्राट को केवल सूरत से मक्का तक तथा मक्का से सूरत तक मुसलमान यात्रियो के सुरक्षापूवक पहुँचने भर की चिन्ता थी। एक बार औरगजेब की झडप अग्रेजो से भी हुई थी, परन्तु उनकी समुद्रटतवर्ती अतिक्रमणात्मक प्रवृत्तियो का दमन करने का उसने कोई यत्न नही किया।

यदि बुद्धिमान औरगजेब की दृष्टि ऐसी थी तो उत्तर मुगलो के ह्रासोन्मुख शासन पर आश्चर्य करने की किसी को क्या आवश्यकता है? खान दौरा, कमरुद्दीनखाँ, सआदतखा, सबने पश्चिम समुद्रतट पर मराठा प्रवृत्तियो की उपेक्षा की, जहाँ बहुत समय तक आग्रे परिवार त्रास का कारण बना रहा। पेशवा बसई की विजय का अनुसरण न करने के कारण निन्दा का पात्र अवश्य है। बसई पर पुतगालियो का अधिकार था। मराठा राजनीतिज्ञ समीपवर्ती क्षेत्रो की धार्मिक स्वाधीनता की रक्षा करते थे, परन्तु उन्होने समुद्री आयुधागारो तथा पोतागारो को भी उन्नत करने की ओर ध्यान नही दिया, जहाँ युद्धपोतो का निर्माण किया जा सकता। ये स्थान पहले से विद्यमान थे। नवीन मराठा शासको का काय उनको उन्नत करना था। मराठे अपनी तोपे तथा बन्दूके प्राय अग्रेजो से मोल लेते थे। अग्रेज निरथक जीण शीण वस्तुओ को बेचकर भारी दाम ले लेते थे। भारत की समुद्री रक्षा का प्रश्न अभी तक विचाराधीन हे, क्योकि भारत का विदेशी व्यापार इसी पर निभर है। अत इस समस्या की प्राचीन कहानी से हमको अत्यन्त बहुमूल्य शिक्षाएँ

प्राप्त हो सकती हे। सैनिक शक्ति के बल पर ही राज्य का शासन किया जाता है, यह प्राचीन कहावत स्वाधीनता की रक्षा के लिए स्थायी महत्त्व रखती हे।

"मनुष्य की अपनी स्थिति स्वय उसकी बनायी हुई हे तथा मनुष्य की स्थिति वही होगी जो वह बनायेगा।" यह स्पष्ट सत्य समस्त इतिहास का सार है। महाराष्ट्र निवासी न्यायाधीश रानाडे ने ह्रासोन्मुख मराठा शासन के इस परिवतन का लगभग दैवी विधान के रूप मे उत्साहपूर्वक स्वागत किया। वह अपने देश के परमभक्त थे तथा ब्रिटिश विजेताओ द्वारा भारत मे प्रचारित नवीन व्यवस्था के तेजस्वी परिणाम थे। वे लिखते है —"यह केवल आकस्मिक घटना का फल नही हो सकता कि इस देश का भाग्य एक ऐसे राष्ट्र द्वारा मागदशन के सुपुद किया गया हे जो अपने स्वभाव स शक्ति सम्पन्न हे, जबकि हम स्वभावत निबल हे, जिसका जीवन सम्बन्धी विचार आशामय हे, जिसकी सगठनात्मक शक्तियो का कभी भी अतिक्रमण नही हुआ है। तब तक यह धारणा सुविधापूवक नही बनायी जा सकती कि भारत मे निवास करने वाल इस प्रकार के विशाल जनसमुदाय, विदेशी प्रभुत्व के प्रभाव तथा निग्रह मे शताब्दियो तक बने रहे, जब तक ईश्वर के विधान मे यह अपेक्षा न हो कि जनता के चरित्र तथा शक्ति के निर्माण मे उनके (अग्रेजो) द्वारा उन दिशाओ मे स्थायी कल्याण हो सके, जिनमे भारतीय जनता सवथा असमथ है।" महाराष्ट्र का सवा सौ वष के ब्रिटिश प्रभुत्व का इतिहास रानाडे के आशावाद को सर्वथा न्यायसगत सिद्ध करता है, चाहे हमको इसका कितना ही शौक क्यो न हो कि शिवाजी की प्रतिभा द्वारा निर्मित भवन इस प्रकार शीघ्रतापूवक ध्वस्त हो गया।

आधुनिक समय के एक अ य महान विद्वान सर जदुनाथ सरकार ने भी हाल मे इसी विचार को भिन्न रूप से प्रकट किया है। मराठों के नवीन इतिहास के इस अन्तिम खण्ड का नाम रखा गया है—"महाराष्ट्र मे सूर्यास्त"। सर जदुनाथ को इस नाम पर आपत्ति हे। वह इसको "नवप्रभात का आगमन" कहते है। उनका तक यह है —"तथाकथित सूर्यास्त उस राज्य तथा समाज का हुआ जो अन्दर तक सड गया था। यदि १८०२ मे अग्रेज हस्तक्षेप न करते तो प्रकृति अवश्य इसको नष्ट कर देती। अपने भूतकाल पर शोक मत करो, क्योकि वह मर चुका है और कभी वापस आने वाला नही है। आगे देखो तथा वतमान अवसर से लाभ उठाओ। विश्वोन्नति तथा विश्वविचार की तीव्रगति से प्रवाहित आधुनिक धारा मे प्रवेश करो। जब हम

राग रहित होकर दूरदर्शितापूर्वक विचार करते है तो मराठा इतिहास हमे यही शिक्षा देता है ।''

इस प्रकार अपने भूतकाल पर विचार करने के बाद हमको साहसपूर्वक नवीन कार्यों के लिए तैयार हो जाना चाहिए । आज के स्वतन्त्र भारत मे ये कार्य हमारी प्रतीक्षा कर रहे है । यह कहकर मै अपने राष्ट्र के इतिहास के जीवनव्यापी अध्ययन को समाप्त करता हूँ ।